

प्रसाद काव्य-कोश

प्रसाद काव्य साहित्य के सम्बन्ध में
सन्दर्भ-ग्रन्थ



हिन्दी प्रचारक संस्थान
वाराणसी • लखनऊ • कलकत्ता



प्रसाद

काशी

काशी

सुधाकर पाण्डेय

हिन्दी प्रचारक संस्थान
द्वारा प्रकाशित

श्रवण कृष्णचन्द्र बेरी एंड सन्स]

प्रधान कार्यालय

ट बॉक्स न० १०६, पिशाचमोचन,

वाराणसी-१

शाखाएँ बलकृष्ण, सखनऊ

संगोपित परिवर्धित द्वितीय संस्करण

मूल्य ७५.००

नागरी मुद्रण

की प्रचारिणी समा, वाराणसी द्वारा
मुद्रित

निवेदन

गानू जगशकर प्रसाद हिन्दी की रचनी शैली की कविता के या आधुनिक कविता के शीर्षस्थ विद्वु हैं। हिन्दी साहित्य में उनका अनुमान ऐतिहासिक और मौलिक मन्त्र का है। आधुनिक काव्य को उन्होंने न केवल नई शिखा दी, अपितु, उन्होंने इतिवृत्तात्मक आधुनिक काव्य को रस का धरातल दिया। कामायनी हिन्दी का अपने ढंग का मौलिक काव्य है। ऐसे तो नाटकों के क्षेत्र में हिन्दी में उनका शानी नहा, क्या के क्षेत्र में वे एक विशेष शैली के सन्धा-पक हैं और निरर्थकों के क्षेत्र में अपने चिन्तन के कारण उनके निरर्थक गौरव-शाली हुए हैं। फिर भी उनका कविरूप सहज ही हृदय को ग्राह्य कर लेता है और उनके काव्य के द्वारा रचनी शैली की अभिव्यक्तिक्षमता का भान होता है। साहित्य के सहज प्रेमी होने के नाते प्रसाद जी के प्रति मेरी सदा से रुचि रही है। यह ग्रन्थ उसी का परिणाम है।

हिन्दी कविता पर अनेक कोश प्रकाश में आए हैं और नवम्बर १९५७ में प्रसादजी के सत्रध में मने भी एक प्रयत्न किया था। वह प्रयत्न समाप्त हुआ है। नास्त्य में यह शब्दकोश ही नहीं है, प्रसादजी के काव्य का ज्ञानकोश भी है इसे मानने में आपत्ति नहा होनी चाहिए।

शब्द का चयन उनके निम्नांकित काव्य प्रथा से किया गया है—

(१) आँसू, (२) कक्षालय, (३) कानन-कुसुम, (४) कामायनी, (५) चिन्तागार, (६) भरना, (७) प्रेम-पथिक, (८) महाराणा का महत्त्व और (९) लहर। इसने साथ ही उनकी जो रचनाएँ उन सग्रहा में संगृहीत हैं या संगृहीत नहीं हैं उनमें भी शब्दचयन किया गया है। प्रसाद के नाटकों के गान नई ओजस्वी हैं। उन्हें भी उनके सुपुत्र ने 'प्रसाद संगीत' में संकलित कर दिया है। उनकी चतुर्दशदियों के साथ उन्हें भी इसमें ले लिया गया है। एक ही निशिष्ट शब्द किन्तु प्रथा में आया है उनका सत्रध भी दे दिया गया है। लेकिन ऐसे शब्दों के जो त्रियापद हैं या त्रिभक्ति हैं उन्हें केवल दे दिया गया है। उनका सत्रध पूरा नहीं दिया गया है, क्योंकि भाषा के वैज्ञानिक अध्ययन की दृष्टि से उसकी आन्वययता अनुभव नहीं की गई।

कही-बही सामासिक शब्द भी एक साथ ले लिए गए हैं ताकि पद का जोष हो जाय और जहाँ सामासिक योग के कारण या शब्द योग के कारण नए अर्थ की संभावना है वह भी प्रकट हो जाय। यह उदा श्रमनायकाम है, सहज काम नहा है। उसे अपनी शक्ति भर प्रामाणिक ढङ्ग से करने का यत्न किया गया है। शब्दों के अर्थ देने में इस बात की सावधानी रखी गई है कि उसने सभी सम्बन्धित अर्थ दे लिए जायें ताकि भावों में सुन्दर अर्थ निकाल सके। छायावादी और रहस्यवादी परम्परा शब्दों को नया अर्थ भी देती रही है। उसका भी ध्यान रखा गया है। ब्रज भाषा और गूड़ी गौली दोनों भाषाओं में प्रमाणी ने रचना की है। इसलिए शब्दों का वह मौलिक रूप ही इसमें रहने दिया गया है।

प्रत्येक रचना और प्रत्येक पुस्तक का परिचय भी उसकी गरिमा के अनुरूप सव्यारया दे देने का यत्न किया गया है। ये रचनाएँ किन पत्रिकाओं में प्रकाशित हुईं यह भी इसमें दे दिया गया है। जो ऐतिहासिक और प्रागैतिहासिक या भौगोलिक बातें या, चाहे वह व्यक्ति के सन्ध में हों या स्थान के सम्बन्ध में हों, उसने जहाँ भी सक्षिप्त रूप से पारचय दे दिया गया है। अतः एक उपयोगी परिशिष्ट भी इसमें सम्मिलित कर दिया गया है। इस प्रकार इसे प्रसादजी के काव्यसाहित्य के सम्बन्ध में प्रथम ज्ञान का यत्न किया गया है।

निश्चय ही किसी ग्रन्थिनिष्ठ कवि का इस प्रकार का कार्य जो साहित्यिक भी हो और भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से भी सामग्री प्रस्तुत करता हो, इस दग का शायद ही कोई ग्रन्थ हो। ज्ञान का लायन देने काय है। फिर भी मने यत्न किया है कि वह उपयोगी रचना प्रकाश पा सके। यह कार्य केवल आस्था के कारण सम्भव हो सना है। हो सना है कि इसमें सुधार हो। यह भी सम्भव है कि इसमें और कुछ सामग्री देनी चाहिए या। किन्तु जीवन की इस व्यस्तता के बीच भा जो कर सना हूँ न मने किया है और श्रद्धा तथा आस्थापूर्वक किया है। आस्था कभी निष्फल नहा जाती। आशा है कि लोग इस दृष्टि को सम्बन्धित रूप में पसन्द करेंगे।

मुझे विश्वास है कि अपनी उपयोगिता के कारण इस ग्रन्थ के अनेक संस्करण हाने और प्रत्येक संस्करण में इसमें सम्बर्द्धन होता रहेगा, क्योंकि प्रमाणी का साहित्य अमृत है। उसकी छाया भी निश्चय ही लोगों की पसन्द आएगी।

—सुधाकर पाट्टे



प्रसाद काव्य-कोश

● सकेत

- (अ०) अग्नेयी
- (अ०) अरवी
- (अव्य०) अन्यय
- (अप०) अपभ्र स
- (क्रि०) क्रिया
- (त्रि० अ०) क्रिया अवमक
- (क्रि० स०) क्रिया सक्रमक
- (त्रि० वि०) क्रिया विनोपण
- (दे०) देशज
- (दे०) देखिए

- (पु०) पुर्विलग
- (पूर्व० क्रि०) पूर्वकालिक क्रिया
- (फा०) फारसी
- (बहु०) बहुवचन
- (वि०) विशेषण
- (अ० भा०) व्रजभाषा
- (स०) ससृष्ट
- (सना) सना
- (सव०) सवनाम
- (स्त्री०) स्त्रीलिङ्ग

● पुस्तक सकेत

अनुक्रम मे इस पुस्तक में श्री जयशंकर 'प्रसाद की जिन रचनाओं का उपयोग एवं प्रयोग किया गया है उनका संस्करण और सकेत निम्नलिखित है—

आसू—दशम संस्करण	२०१३ वि०	प्रा०
करणालय—तृतीय संस्करण	२०११ ,,	व०
कानन-कुसुम—पंचम संस्करण	,, ,,	का० कु०
काश्यापिनी—नवम संस्करण	२०१३ ,,	का०
चित्राधार—द्वितीय संस्करण	१९८५ ,,	वि०
भरना—सानवाँ संस्करण	२०१३ ,,	भ०
प्रेम पथिक—द्वितीय संस्करण	,, ,,	प्रे०
महाराणा का महत्व—तीसरा संस्करण	,, ,,	म०
सहर—पंचम संस्करण	२०१३ ,,	ल०

[ये सभी पुस्तकें डबल माउज सोलह पेजी आकार में हैं]

प्रसादकाव्य कोश

अ

अक = का०, १८, १७६, २८६ । चि०, १६२, १८०, १८२ ।
 [स० पु०]
 (स०) अक, चिह्न, छाप, निशान । लिखावट, लेख, अक्षर । सख्यासूचक चिह्न । गोद, क्रोड, अक्वार । दुख, पाप । वार, दफा । धंश, दाग । डिठोना, नजर बचाने के लिये बच्चा के माथे पर लगाया जानेवाला काजल का टाका । भाग्य, तकदीर, विस्मय । नाटक का एक अंश जिममें सामान्यतः अनेक दृश्य होते हैं । पत्र पत्रिकाया की कोई एक सख्या । रूपक का एक प्रकार ।

अक मेंह = चि०, ७२ ।
 (अ० भा०) अक में (दे० 'अक') ।

अकर्मों = चि०, ७३ ।
 (अ० भा०) अक म (दे० 'अक') ।

अकित = अॉ०, २२, ३२ । का० कु०, १२० ।
 [ि]
 (सं०) चिह्नित । चित्रित । अंकित । निशान बना हुआ, अक बना हुआ ।

अकुर = का० कु०, २७ । का०, ७३, २१० ।
 [स० पु०]
 (स०) अ०, ५६ । ल०, ७७ ।

अखुआ, गांभ, नया उगा हुआ वृण, वह नवीन कोमल डठल जो बीज से पहलपहल निकलता है और जिससे पत्तियाँ फूटती हैं । अंख । बॉपल । भराव । अमूर । निमी पाव के दानेदार धण । जल । नोक । कलिका ।

अकुरित = का०, १८२ ।

[ि]
 (सं०) अखुआ निकला हुआ । अकुर रूप में दिखाई पड़नेवाला । उत्पन्न । विकसन-शील वस्तु का आरंभिक रूप ।

अग = का० कु०, १२, ६५ । का०, ८३, ६८, १६२, २४७ । चि०, २, ३८, ७७, ६३, १५६, १७७ । अ०, २२, ३२ ।
 [स० पु०]
 (स०) प्रे०, १, ११ । ल०, ६२ ।

शरीर, बदन, तन, गात, देह । पत्र । माग, अण, टुकड़ा, खंड । भेद, प्रकार । कार्य संपादित करने का साधन, उपाय । पात्र । जमलन । सहायता पहुंचानेवाला । मुहद तरफदार । प्रवृत्ति । उपाय ।

अग अग = चि०, ५६, ६६ ।

[स० पु०] (हि०) प्रत्येक अग ।

अग अगन = चि०, १, ५६ ।

[स० पु०] (अ० भा०) अग अग में ।

अगडाई = का०, २३ । ल०, ४५ ।

[स० ख०]
 (हि०) शरीर का मद से दूटना । सोकर उठने पर, आलस्य के समय अथवा ज्वर की स्थिति होने पर शरीर का कुछ क्षणों के लिये ढँककर तनना । जमुहाई ।

अगडाईयो = ल०, ६२ ।

[स० ख०]
 अगडाई का बहुवचन ।

अगभगियो = का०, ११ ।

[स० ख०]
 (हि०) अगभगी (म०) का बहुवचन । हावभाव प्रदर्शन । क्रिया द्वारा अग प्रत्यय

अंगराई

द्वारा प्राकृतिक बरने के आयोजन का संकेत। त्रियो की मोहित करने की भग द्वारा की गई क्रिया।
 का०, २६३। ल०, २०।
 (दे० भगवाडी।)

अंगराई = ल०, ६।
 [७] (ब० भा०) अंगराई के समान।
 अंगलतिना = ल०, ६०।
 [स० ली०] [म०] शरीर रूपां वेन या लता।
 अंगहि = चि०, १४।
 (ब० भा०) अंग वी।

अंगुलिया = ल०, ८६।
 [स० ली०] (हि०) उगली वा बहुवचन।
 अचल = श्री०, १६, २३, ३२, ३३, १६, ६६।
 [स० पुं०] फा० कु०, १८। का०, ८, २६, ४० ६३
 ७३, ७४, ६७, ६८, १०६, ११६, १३१, १४८, १६८ १७२। चि०, ६२
 भ०, २८ ३४, ३५। ल० १०, १६, २०, ३० ३२, ६१।

अचल, छोर, किनारा। सट्टी, धानी
 अथवा चादर के बने का एक भाग।
 लट। देश या राज्य की सीमा वा
 कोई प्रदेश।
 का०, १५६।

अजन = का०, १०३।
 [स० पुं०] आजन, मुरमा काजल। रात्रि। स्माही,
 (घ०) मति। एक पवत। एक वृक्ष। अन्कार
 की एक वृत्ति। माया।

अजन सी = का०, १०३।
 [चि०] अजन के समान कासी।

अजलि = श्री० ४५, ५८। वा०, १२३, २०५।
 [स० ली०] ल०, ३२।
 (घ०) दोनों हथेलियों वा मिताने से बना हुआ
 वह गड्ढा, जिसमे भत्कर कुछ दिया
 अथवा लिया जाता है।

अत = श्री० ५२। का०, कु०, २६। वा०, १६,
 [स० पुं०] ८१। चि०, १४१, १६६। ल०, ७०, ७७।
 (घ०) भाबिरी। समाप्ति। मृत्यु भवमान।
 नाम। परिणाम। प्रलय।
 ल०, ७६।

[वि०] (म०) अत या नाम बरनेवाला।
 अतकाल = प्रे०, ५।
 [स० पुं०] (म०) अतिय समय, प्रागिरी वक्त, मृत्युवात।
 अतरग = का०, १२१, १६२। प्रे०, १०।
 [वि०, पुं०] (म०) अतिय सतिप्रत वा व्यक्ति।
 अतर = श्री०, १, ३४ ५१। का० कु०, २०,
 [स० पुं०] ७३। का०, ७२, ७३, ८१, ६८, १०१,
 १०५, १०६, १५४। चि०, १७४,
 १७६, १८६। भ०, ४४, ६८, ६५,
 प्रे० २०।

अतरतम = का०, ६, ११०, १२१। भ० ३१।
 [स० पुं०] अत करण। किसी वस्तु के सबसे भीतर
 (म०) वा भाग। हृदय का आंतरिक स्थल।
 अतरिच = श्री०, ४६। का०, ११, १३, २६,
 [स० पुं०] ३५, ६३, ६५ ७३, १७८ १८५,
 (घ०) २०२, २५२, २६३। भ०, ४१, ४५
 ६०। ल०, ५७।

अतरिच = का०, ६, ११०, १२१। भ० ३१।
 [स० पुं०] अत करण। किसी वस्तु के सबसे भीतर
 (म०) वा भाग। हृदय का आंतरिक स्थल।
 अतरिच = श्री०, ४६। का०, ११, १३, २६,
 [स० पुं०] ३५, ६३, ६५ ७३, १७८ १८५,
 (घ०) २०२, २५२, २६३। भ०, ४१, ४५
 ६०। ल०, ५७।

अतरिच = का०, ६, ११०, १२१। भ० ३१।
 [स० पुं०] अत करण। किसी वस्तु के सबसे भीतर
 (म०) वा भाग। हृदय का आंतरिक स्थल।
 अतरिच = श्री०, ४६। का०, ११, १३, २६,
 [स० पुं०] ३५, ६३, ६५ ७३, १७८ १८५,
 (घ०) २०२, २५२, २६३। भ०, ४१, ४५
 ६०। ल०, ५७।

अतरिच म अमी सी रही—'लहर' म पृष्ठ ४५ पर
 सकलित गीत। >—लहर। एक मुदर
 रमात्मक गीत। उपा रूपा मधुवाला
 अमी सो हा रही थी और न तो प्राची
 की मधुवाला ही धनी खुली थी। बिटन
 भी अमी नौवा मे अगडाई ही से रहे
 थे, रात अमी बाकी ही है कि भिलारी
 अपना हृद ध्याला लेकर दान मीगता
 फिरता है और आवाज देता है कि
 कुछ मुनकी दे दो और मग से तो।
 उससे कवि बटला है कि तू तुल मुष
 के दोनों लग भरता हूया शरीर धारण
 किए हुए है। दिन मे कहीं रास्ता

बाटना है और कहाँ तू नेवल चलने मे ही रात कर देगा । तू अपना अविचन स्वर छोड़कर बढ़ता जा और जो सोए है जगने पर अपने मुख का स्वप्न दर्शें ।]

अतरिच्छ — चि०, १८० ।
(ब्र० भा०) (दे० 'अतरिच्छ' ।)

अतर्द्दहि = का०, ११६, १२१ ।
[सं० पु०] (स०) अतर्वेदना ।

अतर्निहित = का०कु०, ७१ । का०, २३ । ल०, ७४
[वि०] (सं०) अदर छिपा हुआ ।

अतर्यामी = का०, १६७ ।

[सं० पु०, वि०] ईश्वर, मगवान् । दूसरे के मन की बाता को समझनेवाला ।

अतस्तल = आ० ४७ । का०, १३८, १६७ ।
[सं० पु०] मन अथवा हृदय का भीतरी भाग,
(सं०) अतहृदय ।

अतहीन = का०, १६७ ।
[वि०] (सं०) जिसका अत न हो, अतत ।

अत सलिला = का०, ६७ ।
[सं० स्त्री०] (स०) अत सात, गुप्त गंगा, भावधारा ।

अतिम = का० कु०, १२२ । का०, ८२, ८८ ।
[वि०] ल०, ४१ ।

(सं०) हर प्रकार का । सबसे बढ़कर । अत का । आखिरी ।

अत करण = का० कु०, १५ । अ०, १६, ३१ ।
[सं० पु०] (स०) मनुष्य के अदर की वह शक्ति जिससे वह सक्ल्प विकल्प, अच्छे बुरे की पहचान, निश्चय, स्मरण आदि करता है । हृदय, मन ।

अत पुर = का०, कु०, ६७ । का०, ३० ।
[सं० पु०] (स०) घर या महल का भीतरी भाग ।

अथ = का०, ८८, १६६ । अ०, ५१, ७७ ।
[वि०] (स०) ल०, ५७, ७६ । चि०, १६६ ।

अथा, जिसकी नेत्रा की ज्योति चली गई हो, नेत्रहीन, बिना आँख का । अज्ञानी, नासमझ, अविवेकी, मूल । उमत्त, मतवाला, अचेत, अनजान ।

उल्लू, चमगादट । अधेरा । आँखें बंद कर परिपाटी से चले जानेवाले कार्य को करनेवाला । रुद्धिपस्त ।

अधकार = का०, ७३ । का०कु०, ४१, १२३।१२५ ।
[सं० पु०] का०, १४, १८, ७० ११२, १२६, १३६,
(सं०) १५६, १७२, १८४, २०६, २२१;
२५१, २६७, २७१ । चि०, २२, ४०,
११४ । अ०, ३५ । ल० १० २४,
३५, ३७, ४१, ४३, ५७, ७४ ।

तिमिर, अधेरा, प्रकाशहीनता । अज्ञान ।

अधकारमय = का०, ७ । प्र० २० ।
[वि०] अयकार से परिपूर्ण, तमोयुक्त, अधेरा । अज्ञानमय ।

अधकार सा = का०, २६६ ।
[वि०] (हि०) अधकार के समान, तिमिराच्छन् ।

अधकारि = चि० १६४ ।
(ब्र० भा०) (दे० 'अधकारि')

अधड = का०, २०० । अ०, ५५ । ल०, ५७ ।
[सं० पु०] आधो, धूल सना भयकर हुवा का
(हि०) आका, सूकान । अभा । दबी दुर्योग या नियति से प्राया अष्टप्रद समय ।

अधतमस = का०, २२७ ।
[सं० पु०] धीर अयकार, अयकर अधेरा, धार
(सं०) अयकार से आच्छादित नक ।

अधानुरक्त = प्र०, २४ ।
[वि०] आँख मुँदकर पीछे चलनेवाला । अयभक्त । अयधदालु ।

अधानुरक्ति = का०, २३७ ।
[सं० स्त्री०] अथी श्रद्धा । विवेकरहित भक्ति ।

अधियारो = चि०, १६४ । अ०, ६२ । प्र०, १, ५ ।
[सं० स्त्री०] अयकार, अधेरा, धुधलापन, धुध । एक प्रकार की आँसो पर बाँधी जाने वाली पट्टी जो घोडा और अयकर जनुमो के नेत्रा का डौकन के काम म लाई जाती है ।

अधेर = क० २६ ।
[सं० पु०] अयाय, अत्याचार । ऐसा काय जिसमे कर्तव्यावर्तव्यका विचार न किया गया हो । दुर्व्यवस्था । कुप्रवध । गड़बडा ।

अघेरा

अघेरा
[सं० पुं०]
(हि०)
अघेरी

= का०, ११४। बि० १६।
तम, अघनार, धुप। प्रकाश वा उलटा
अपवा विलोम। परछाद, काली छाया।

अघर
[सं० पुं०]
(म०)

= भा, २७, ३४। का० कु० ४३। का०
६३, ७४ १६२, २५७, २६३। बि,
३८, ७१ १४६ १५७, १५८, १६१,
१८६। ल, १४, १६ २७ ४२, ४४।
आवास। मध, बादल। अमृत। वस्त्र
कपडा।

अनरअवनिहि = बि०, ५३।
[सं० स्त्री०] (सं० भा०) आनाश और पृथिवी की।

अवरचुवी = का०, ११०।
[वि०] आकाश भूमनेवाला। बहूत उँवा।
गगनचुवी।

अवरतल = म०, ३३।
[सं० पुं०] बादल की सतह। आवास की सतह।

अवरपथआरट = बि० १५७।
[वि०] (सं० भा०) आकाशमार्ग में विचरण करता दृष्य।

अवु = बि०, २८, १४०।
[सं० पुं०] (सं०) जल। सुगंधमाला। चार वा सख्या।

अवुधि = ल०, ३०।
[सं० पुं०] (सं०) सागर। समुद्र।

अवुनिधि = का०, २८६।
[सं० पुं०] (सं०) सागर। समुद्र। सात की सख्या।

अवे = का०, २३६।
[सं० स्त्री०] अवा का संबोधन। हे माँ। हे दुर्गे।
(सं०) हे पावती। हे मीरी।

अश्रा = का०, कु०, १०८। का०, १६, १६५।
[सं० पुं०] बि० १६१। म०, २४।

विसी पूरा वस्तु का कोई भाग, टुकड़ा।
उन अवयवों या अशो में से कोई एक
जिनसे किसी पदार्थ या वस्तु का निर्माण
होता है। हिस्सा। भाग्य अक्ष। पृथक्।
चंद्रमा की कला। भिन्न की लकार के
ऊपर की सख्या। वृत्त की परिधि वा
३६०वीं हिस्सा।

अशुमाली = का०, कु०, २।
[सं० पुं०] (सं०) शुभ, पदमावर। वारह वा सख्या।
अस = का०, ४७।
[सं० पुं०] (सं०) (हि०) 'अस'। (सं०) वया। मर्य।
अ

अकडे
[हि० अ०]
(हि०)

= का०, २६६।
घमड करना लूटना, राव दिखाना,
हट करना। लिंठाई करना तनना
प्रभिमाम, गैली या गवभाव का
प्रदशन करना।

अकथ
[वि०]
(सं०)

= का०, २२४।
वणन करने से जो परे हो। जिनका
वणन करना अमान्य हो। जा बढ़ान
जा मदे।
ग्रे० १।

अकपट
[वि०] (सं०)

= छत्ररहित। प्रपचरहित।

अकवर

= म०, ११, १६ २०, २१, २३।
विख्यात भारतीय मुगल सम्राट,
हुमायूँ का सुपुत्र। जन्म १५ अक्टूबर
राज्यकाल-२० जनवरी १५५६ से १६
अक्टूबर १६०५ ई०। अकबर द्वारा
चित्तौड़ पर चढ़ाई १५६० ई०।
उसके प्रधान सेनापति अब्दुरहीम
खानखाना को प्रताप की चारित्रिक
महत्ता का नाम १५७२ ई०। [२०—
खानखाना अक्रुहोम।]

अकरुण
[वि०] (सं०)

= ल०, ३४।
बहणारहित, निदय, कठोर, निन्दुर।
अकस्मात् = बि०, १७, २२।
[वि०] दवयाग से, आकस्मिक, अचानक,
एकाएक, सहया, एकदम से, तत्क्षण,
अचाराण।

अकारन
[हि० वि०]
(सं० भा०)

= बि०, ४।
विना किसी हेतु के, निःप्रयोजन, कारण
रहित, व्यय, या ही। स्वयम्भू। आप से
आप रोनेवाला।

अकाल
[सं० पुं०] (सं०)

= क० १८, २८।
कुममय, अनुपयुक्त समय। अनुकूल समय

से पहले का या बाद का समय ।
दुर्भिक्ष, महती । ऐसा समय जब अनादि
की अत्यन्त कमी हो । दवा प्रकाप ।

अकाश = चि०, १६६ ।
(ब्र भा०) (२० 'आकाश' ।)

अकास = चि०, ६३ १५६ ।
(ब्र० भा०) (३० 'आकाश' ।)

अकिंचन = आ० १७ । वा० कु०, ११३ । वा०
[वि०, सं० पु०] ४०, १३६, १७७, २४० । ल०, १७
(सं०) ३४, ४५, ७०, ७८ ।

दरिद्र, गरीब, निधन, धनरहित, अगान
दीन धनहीन । निधन व्यक्ति । सामा य
विलकुल मामूली । परिग्रहयोगी,
आवश्यकता से अधिक संपन्न न बन
वाला । जन धमानुकूल मोह माया
से जिन विराग उत्पन्न हो गया हो ।
निरीह ।

अकुलाड = चि०, ६४ ।
[क्रि० प्र०] (ब्र० भा०) (२० 'आकुल' ।)

अकुलाई = चि०, ७१, ७३ । ल० १७ ।
(क्रि० प्र०) (ब्र० भा०) (२० 'आकुल' ।)

अकुलाय = चि०, ५६ ।
[क्रि० वि०] (ब्र० भा०) (२० 'अकुलाड' ।)

अकूल = वा०, ६२ १६२ । ल०, १५ ।
[वि०] = धनीम, अनत, जिसका कोई कून,
(सं०) किनारा अथवा घट न हो ।

अकेला = वा०, ५२, १३४, १६४, २०० ।
[वि० पु०] = एकाकी जिसका कोई सहायक न हो,
(हि०) जिसका कोई साथ दनवाला न हो ।

अकेली = आ०, ६० । वा० ४, १४४, २६० ।
[वि० स्त्री०] प्रे०, ५ ।

(हि०) अनेना वा स्त्रीनिग ।

अकेले = आ०, ७३ । वा०, ३२, ३७, ५६, १३३
[क्रि० वि०] १७६, २०८ । चि०, ६५ । अ०, ५२ ।

(हि०) केवल, सिर्फ । एकाकी, तनहा ।

अकेल्यो = चि०, १०७ ।
(ब्र० भा०) (२० 'अकेला' ।)

अक्षय = वा०, ३६ ६६ । प्रे०, २५ ।
[वि०] (सं०) अनश्वर । अनिनाशा । नित्य ।

अक्षयवट = प्रे०, २२ ।
[सं० पु०] प्रयाग तथा गया वा प्रसिद्ध वरगद का
(सं०) वृक्ष । (किंवदन्ती है कि इसका नाश
कभी नहीं होता ।)

अक्षर = प्रे० २० ।
[वि०] (सं०) नाशरहित । नित्य ।

अक्षोहिणी = चि०, ६७ ।
[सं० स्त्री०] चतुरागणी सेना । वह सेना जिनमें
(सं०) १०८३५० पद न निपाही ६५६१०
मुष्टमवार, २१८७० रथ मवार और
२७८७० हाथी मवार होते थे ।

अखण्ड = वा०, २५२, २६४ । चि० १३६,
[वि०] १५५ ।
(सं०) अविच्छिन्न । जमके टुकड़े या ढंड हान
सकें, अटूट । पूरा, संपूर्ण । क्रमवद्ध ।

अखियाँ = चि०, १८३ ।
[सं० स्त्री०] (ब्र० भा०) (२० 'आ' ।)

अखिल = आ०, ६६ वा० कु० ८६ ८२ । का०
[वि०, सं० पु०] १५, १८, ५८, १२२ १६७ १७१ ।
(सं०) अ०, ३०, ३१, ३५, ७५ । ल०,
२१, ६१ ।

गवागपूग, अग्रत गपूग, समस्त,
सब, सारा, समग्र । जगत, विश्व ।

अग्र = वा०, १५७, २४६ ।

[वि०] (सं०) अग्रत । स्थिर । अग्रत ।

अग्रणीत = वा० कु०, २५ ।
[वि०] (सं०) अग्रस्थ, अग्रगणित, अग्रगणनीय ।

अग्रतिमय = का०, १८ ।
[वि०] स्थिर । जो गतिमय न हो ।

अग्रन्य = चि०, ६७ ।
[वि०] मामांय, सुच्छ, नगण्य । बहुत अधिक ।
(ब्र० भा०) जिसे गिन न सकें ।

अग्रम = का० ३१ ।
[वि०] न जान योग्य, जहाँ नाई न जा सक
(हि०) जहाँ पहुँचना दुलभ हो, दुगम, गहन,
कठिन, विकट । गहरा, अथाह । दुर्नभ ।

अग्रर = का० १८३ ।
[सं० पु०] (सं०) अग्रर की मुगधित लकड़ी ।

- [वि०] १५७, २५१, २५२ । चि०, १७७,
[सं०] ऋ० ३० ।
निश्चय, स्थिर, टिकाऊ, ठहरा हुआ ।
- अचला = का०, २६ १२६ ।
[सं० स्त्री०, वि०] पूर्वी । जो न चल, ठहरी हुई, स्थिर
(हि०) (सं०) साधुशा का गले में पहनने का
वस्त्र ।
- अचानक = का० २६, का० कु० १५, का० ६, १७,
[कि० वि०] २४, ४१, १८४, १८५ । ऋ०, १५,
(हि०) १६, २६ ।
अचानक, सहमा ।
- अचेत = का०, ४७, ४६, ८६ ।
[वि०, सं० पु०] चेतनारहित, सज्ञान्य । भ्रातृकुल, विह्वल,
(हि०) नासमर्थ, अनजान । जड़ । अचेतय ।
- अचेतन = ल०, ३७ ।
[वि०] जिममें चेतना न हो, बेहोश, जीवन या
(सं०) प्राण से रहित । सनाहीन । चेतनारहित ।
- अचेतनता = का०, १३२ ।
[सं० स्त्री०] (हि०) जड़ता, बेहोशी निष्प्राणता ।
- अच्छा = का०, ११, १६ । का० कु०, ७६, ८४ ।
[वि०] ऋ०, ४४, ६१ प्र०, ५ । म०, २४ ।
(हि०) ल०, ११ ।
उत्तम, बढ़िया, खरा, चाखा, भला ।
ठीक । बड़ा आदमी, श्रेष्ठ पुरुष ।
- अच्छी = का०, ६ । का० कु०, ११६ । का०,
[वि०] १८०, २११ । ऋ०, ६० । प्रे०, ५ ।
(म०) अच्छा का स्त्रीलिंग ।
- अच्छति = का० कु० ६१ । का०, २७१ ।
[वि० सं० पु०] पवित्र, बिना छूया गया, प्रयाग रहित,
(हि०) जा काम में न लाया गया हा, नया,
बारा । निम्नकोटि का व्यक्ति या जाति,
अत्यंत असुस्थ ।
- अज = वि०, १२ ।
[वि० सं० पु०] अजमा जिमका जन्म न हा, स्वयम्
(सं०) (ईश्वर) । कामदेव । ब्रह्मा । विष्णु ।
शिव । बकरा, भेड़ा । माया, शक्ति ।
रघु के पुत्र तथा दशरथ के पिता ।
'रघुवश' में कालिदास ने अज इदुमती
विवाह, इदुमती श्युए एक अज विलाप
का अत्यंत रसात्मक वर्णन किया है ।
पुराणों में भी इनकी चर्चा है ।
- अजगम = का०, १८५ ।
[सं० पु०] (सं०) शिवजी का धनुष, पिनाक ।
- अजमेर = म०, २४ ।
[सं० पु०] (हि०) मध्यप्रदेश का एक नगर ।
- अजय = चि०, ६१ ।
[सं० पु०] (सं०) पराजय, हार ।
- अजर अमर = का०, २७० ।
[वि०] ईश्वर का एक विशेषण । जो जरा-
(म०) मरण से रहित हो ।
- अजस्र = ल०, ५६ ।
[वि०] (सं०) अपरिमित, अत्यधिक । निरंतर, सदा ।
- अजहूँ = चि०, १५, ६७ ।
[म०] अर्भीतक, इस समय तक, आज तक,
(श्र० मा०) भव भी ।
- अजान = का०, ३०, १६३ । चि०, १५२ । ल०,
[वि०, सं० पु०] ७४ ।
(हि०) अनजान, अज्ञेय, अनभिज्ञ, नासमर्थ,
अबुद्ध । जो न जाना जाय । अपरिचित,
अज्ञात । अज्ञान, अनभिज्ञता । एक
प्रकार का पीपल के तरह का ऊँचा
पेड़ जिमके नीचे जान स बुद्धि अष्ट हो
जाती है । प्रातः भसजिद में पुकारे
जानेवाले शब्द ।
- अजित = ल० ७४ ।
[वि०, सं० पु०] अपराजित, जिसे जात न सकें, जा हारा
(सं०) न हो । बुद्ध, शिव, विष्णु । जनिया
के दूरतर तीर्थकर ।
- अजिर = का०, ६४ । ऋ०, ३१ । ल०, २३ ।
[सं० पु०] वायु, हवा । इन्द्रिया का विषय ।
(सं०) आगम रहने । शरीर । भेड़क ।
- अजी = का०, १८ । का० कु०, ८२ ।
[म०] (हि०) सवाधन सूचक शब्द । हे, धर, जी ।
- अजीर्त = का०, १७ ।
(सं० पु०) शुन रोप के पिता ।
- अनीर्त = भृगुकुत्र म उत्सव एक ग्राह्यण, जा शुन -
पुच्छ शुन रोप और शुनालायन—नोन
पुत्रा का पिता था और वरुण को बनि
दत्त के लिय अर्पण पुत्र शुन रोप का
हरिश्चन्द्र व हाथ विक्रय कर दिया

या । ऐतरेय ब्राह्मण तथा लिंग पुराण
मे द्दमकी पद्या है ।

अज्ञे = चि० ४८ ।

[सं० पु०] (ब्र० भा०) हार, अजय, पराजय, असफलता ।

अचौ = चि०, ४१ ४८ १६८ ।

[त्रि० वि०] आज भा, अब तक, अभी भी ।

अज्ञात = का० कु०, ४८ ७३ । का० ५२, ८३ ।

[वि०] (स०) अ० २८ ५८ ८२ । प्र०, ८, १२ ।
जो पात न हा । जिसके बार मे कुछ
ज्ञात न हा ।

अज्ञान = का०, १३ । का० कु०, ११६ ।

[सं० पु०] (स) ज्ञान का अभाव । भ्रमता, अनाडीपन ।

अटकता, अटकते = का०, १६०, २२७ ।

[क्रि० अ०] रुकना, चलत चलत रुकना, फस कर

[हि०] रुकना, अडना अगड्य करना, जलभना,
लगा रहना । प्रम मे फसना । विवाद
करना ।

अटकाव = का० ८१ ।

[सं० पु०] अटवने की क्रिया का भाव । रुकाव,
(हि०) प्रतिबन्ध, रोक, बाधा, विन्ध ।

अटनी = ल०, ५७ ।

[त्रि० अ०] (हि०) अटका (= रुका) का स्त्रीलिंग ।

अटल = का० कु०, ३७, का०, २३२, ल०, ६७ ।

[वि०] (स०) न टननेवाला, स्थिर, निर्य । दृढ,
अचल ।

अट्टे (अट्टैना) = चि०, ६४ ।

[क्रि० अ०] (ब्र० भा०) अटना, समाना । जो न अट्टे, जो
न समाय ।

अट्टहास = का०, १२ ३६, १६५ । ल०, ६५, ६८ ।

[सं० पु०] अधिक जोर की हसी, वाग्भस हसी ।
(स०) ठाकर हसना, ठहाका ।

अट्ट = का०, २१६ ।

[सं० पु०] (हि०) टुक, जिद, टक, प्रण ।

अडना = का० कु०, ११३, का०, ८१ ।

[क्रि० अ०] रुकना, ठहरना, हठ करना ।

अडे = का० ३ ।

[त्रि० अ०] रुने, ठहर ।

अडे = चि० १०६ ।

[त्रि० अ०] (ब्र० भा०) अडे ।

अगु = का०, ६५, २६६, २७० । अ० ३८ ।

[सं० पु०] (सं०) कण छोटा टुकडा, परमाणु से बडा
कण, धूलकण, साठ परमाणुओं का
एक प्राचीन मान । संगीत के अनुमार
तीन बाल के चतुर्थाय समय, एक मुहूर्त
का ५४६७००० वाँ भाग । सूक्ष्म
कण । अयत सूक्ष्म माग ।

अगु अगु = का०, २०३ २८६, २६१ ।

[सं० पु०] (सं०) प्रत्येक अगु । कण कण ।

अतल = का०, १६८ । अ०, ५१ । ल०,
[वि०, सं० पु०] ७४ ७६ ।

(सं०) गहरा, जिसका तल न हो विना पेंदी
का । सात मे दूसरे पाताल का नाम ।

अतलात = ल०, १५ ।

[वि०] (सं०) जिसके तल का अत न हो ।

अति = का०, १५, २२ । का० कु, ३३, ४६,

[वि०, सं० स्त्री०] ६६ १०६ । का०, १५, १० ५५, १२१,
(सं०) ११७, ११८, १६३, १६८, २०२,
२३६, २४२, २४६, २४८, २६८, २७६,
२८०, २६१, २६३ । चि०, १, ५, ५६,
५८, ६०, ६१, ६२ ६३, २२ ६७,
६८ ७१ ७२, ७३, ७५, १४७,
१५०, १५१, १५८, १६२, १७३ ।
अ०, ३८, । प्र०, ७ । सं०, ६ । ल०
३४, ४१, ६४, ७१ ।

बहुत, अधिक, अतिशय । अधिकता,
अत्यधिकता ।

अतिक्रमण = चि०, ६८ ।

[वि०] (सं०) गहरे वाले रग का । बहुत वाला ।

अतिक्रमण = का०, २०८ ।

[सं० पु०] पडन, चडती, उल्लसधन, भग, अपने
(सं०) काय या अधिकार क्षेत्र आदि को
सामा पार करके ऐसी जगह पहुचना
जहाँ जाना या रहना अशुभ तथा मयात्
विच्छेद या अनुचित है । उपाधन ।

अतिचार = का० ७१ ।

[सं० पु०] व्यतिक्रम । साध जाना, अपने अधिकार
(सं०) या अधिकृत सीमा के बाहर अनुचित
रूप से और इस प्रकार जाना कि दूसर
के अधिकार में बाधा पहुचे । ग्राह की
शोभ चाल । अनुमतानुसार विधाता ।

अतिचारी

अतिचारी = का०, १६६, १८५ ।
 [वि०] धूमने फिरनेवाला । वह जो अतिचार
 (स०) करता हो, अतिचार करनेवाला ।
 अतिछवि = वि०, ७२ ।
 [सं० शी०] (हि०) मादर्व की अधिकता, अत्यंत सुंदरता ।
 अतिथि = का०, ८१, ८३, ८५, ८६, ८७, ८८
 [सं० पु०] ८९, ९० । वि०, १५६ । ऋ०, ८२
 (स०) ८३ । प्र०, ५ ।

पाहुन, अग्न्यागत, मेहमान, घर में आया हुआ अनात व्यक्ति । वह साधु जो एक स्थान पर एक रात में अधिक न ठहर, आरव । यात्री मुनि, स घासी, जटमाधु । जिसकी तिथि नियत न हो । यमि । या में सोमलता लानेवाला ।

[अतिथि— 'भरना' गृह (८२-८३) पर सकलित प्रेम विषयक कविता । कवि के मन में घर शीघ्र बसाने की बात हृदय गुफा झुनी रहने के कारण उठी । अपरिचित 'प्रेम' अतिथि बनकर नि शब्द आकर घर बसा गया जिससे मन की विनाद और कवि के हृदय को बड़ा आनंद मिला । उसकी पहचान नखरेव लगने पर कवि को हुई । यद्यपि वह अतिथि था लेकिन तो भी वह घर के बाहर न था और उसका खेल देखकर कवि को अनुभव हुआ कि वह बहुत बाहर था ।]

अतिथिसेवा = वि० १४० ।
 [सं० शी०] (स०) अग्न्यागत की सेवा । पाहुन का स्वागत सत्कार । (अतिथि का स्वागत सरकार भारतीय मजाल का आवश्यक अंग है ।)

अतिथिसेवारत = वि०, १४० ।
 [वि०] अग्न्यागत की सेवा करने में लीन ।
 [सं०] पाहुन का स्वागत करने में तमय ।
 अतिभायो = वि०, १७५ ।

[क्रि० अ०] (प्र० भा०) अत्यंत पसंद आया ।
 अतिरजित = का०, ४, १०९, ११५ ।
 [वि०] (मं०) बहुत बढ़ा चलाकर कही गई । अत्युक्ति पूर्ण ।

अतिनाद = का०, १३ ।
 [सं० पु०] बडोर वचन, कड़ शब्द । सखी बात, ररी बात । अत्युक्ति । डींग हाँकना, बड़ा बड़ाकर बातें करना ।
 अतिशय = वि०, ४० ।

[वि०, सं० पु०] बहुत अत्यंत ज्यादा, अधिक । एक प्रकार का अलंकार जिसके द्वारा उनका स्तर सभावना या अमभावना प्रदर्शित की जाती है । (अतिशयोक्ति) ।

अतिहि = वि०, १६१, ६४, १०६, १७९ ।
 (प्र० भा०) २० प्रति ।
 अतिही = वि० ५१ ।
 (प्र० भा०) (६० 'अति') ।
 अतीन्द्रिय = का०, ३५ ।

[वि०] (स०) अगोचर । जिसका अनुभव इन्द्रियो द्वारा न किया जा सके ।

अतीत = का० ७७ । का०, ६, ४९, ८९, १०३,
 [वि०] १२७, १४१, १६२, १६५, १७७,
 (स०) २०९ । वि०, १४१ । प्र०, ६ । ल०,
 ४३, ४४, ५३ ।
 भूत, व्यतीत, बीता हुआ, गत । पृथक्, अलग, पारा, निलेप, विरक्त विलग, असंग । मत, मरा हुआ । संगीत शास्त्रानुसार परिमाण विज्ञाप ।

[अतीत — 'प्रसाद' अतीत को अभिव्यस्त करने करनेवाली व्यक्तिगत शोषक विशाल की कविता । ३०—प्रसाद संगीत ।

अतीतकथा = का० कु०, ११० ।
 [सं० पु०] (स०) अतीत की कथा । पुरा काल का आख्यान । पूवजो की गाथा ।
 अतीतकथा मकरद = का० कु० ११० ।
 [सं० पु०] (म०) अतीत की कथा का रस ।

[अतीत का गीत—सबप्रथम 'माधुरी' में 'अतीत का गीत' शोषक से वष ५, सड २, सख्या ३, सद् १९२७ में प्रकाशित, 'कामना' का गीत । प्रसाद संगीत में सक्लित ।

दे० प्रसाद समीत—सधन वन बल्लरिया
के नीचे ।]

अतीताद्वि = का० कु०, ६८ ।

[स० पु०] (हि०) अतीतरूपी सागर ।

अतुल = का०, ४० । ऋ०, ३८ । ल०, ३२ ।
[वि०] अनुपम, अद्वितीय, अपूर्व, अनुलनीय,
(स०) जिमका तुलना न की जा सके वेजोड,
अकेना । बहुत अधिक, अमित, असीम,
अपार । जो तोना या कूतान न जा सके ।

अतुल = वि०, ६६ ।

[वि०] (स०) > अनुत् ।

अतुल = आ०, २१ । ऋ०, ६४ ।

[वि०] (स) असतुष्ट, जो तृप्त या सतुष्ट न हो,
जिसका मन न भरा हो । भूखा, जिसका
पेट न भरा हो ।

अतृप्ति = का०, १२, ६१, १०२, १८४ २२६,
[सं० लो०] २३७ । तृष्टि का न होना । मन न
(स०) भरने की दशा । चित्त का अशांति ।

अत्यंत = ल० ३४ ।

[वि०] बहुत अधिक, आवश्यकता से अधिक,
(स०) अतिशय, दृढ से ज्यादा, बृहद् ।

अत्याचार = का०, १६६ । ल०, ५२ ।

[सं० पु०] दुर्व्यवहार, कुर्व्यवहार, अपाय कु म,
(स०) विरडाचरण, ज्यादाती, आचार का
अतिभ्रमण, मदाचार का उल्टा । पाप,
दुराचरण आडंबर, पाखंड, ढकीमला,
दोग । दूसरा के साथ किया जानेवाला
बहु काम जिससे उनको कष्ट हो ।

अत्याचारी = का० कु० १०८ ।

[वि०] अत्याचार करनेवाला, अपायी दुरा
(स०) चारा जालिम, वट्ट जो अपने बल के
आधार पर दूसरो के साथ बहुत बुरा
व्यवहार करता है, बहुत अधिक कष्ट
पहुचानेवाला । निष्ठुर, पारख डोगी ।

अथक = ल०, ७६ ।

[वि०] न थकनेवाला, जो न थके, अथात ।
(हि०) परिश्रमी ।

अथवा = का०, २७ । का० कु०, १०७, १२१ ।
[स०] (सं०) म० २३ ।

वा, या, क्वा (एक प्रकार का अव्यय
जो विभोजन होता है । इनका प्रयोग
यहाँ होता है जहाँ कई शब्दों या पदों
में स एक वा ग्रहण अभीष्ट हो ।)

अथहि = का० कु०, ७० । का०, २४१ ।

[वि०] जिमका थाह न हा बहुत गहरा,
(हि०) अथाव । कठिन, गूढ, गभीर, अपार
अपरमित जिमका कोई पार न
हा सके ।

अथम्य = प्रे०, ४ ।

[वि०] प्रचड, अजय, उग्र । जा दबाया न जा
(सं०) सके, जिसका दमन न हो सके ।

अदृश्य = का० कु०, १०१ ।

[वि०] गुप्त, गायब, अलक्षित, छिपा हुआ,
(स०) अगोचर, पराक्ष जिसका ज्ञान इन्द्रियो
को न हो । अलख, जो दिखाई न दे ।

अदृष्ट = का०, १३१, १६७ । ल०, २२, ५३, ७६ ।

[वि०] अतथान, विरोहित, गुप्त, गायब,
(स०) अोक्त, अलक्षित, न देखा हुआ ।
प्राज्ञातक (प्रकृति न उत्पन्न), भाग्य
अग्नि या जलादि से प्राप्त अथ ।

अदृष्टानाश = का० कु०, ११२ ।

(सं० पु०) (सं०) अलक्षित आवाश । भाग्यही आवाश ।

अदृष्ट्य = का०, २६३ ।

[वि०] (हि०) (सि० 'अदृश्य')

अद्भुत = का० कु०, ६४ । का०, १६७, २४७ ।

[वि०] (स०) वि०, १६, ७५, १४२, १५८, १६३
ऋ०, ५५ । प्र०, ३ । ल० ६६, ७२ ।
अनोना, अनुडा, विलक्षण, अजीब,
विचित्र अपूर्व अलौकिक, आश्चर्य
जनक । वाक्य शास्त्र के अनुसार नी
रसा म स एव ।

अधसिले = ल०, ६२ ।

[वि०] (हि०) अध विकसित, प्राथे सिले हुए ।

अधसुला = का०, ४६ ।

[वि०] (हि०) प्राया सुला दुष्ठा ।

अधम = का०, ३१ । का०, १८, ८४, २२७ ।

[वि०] (स०) विलकुल नाच या निष्ठुर कोटि वा जाव,

बुरा, खोटा, निवृत्त । बहुत बड़ा पापी, दुष्ट या दुराचारी ।

अधर = क०, १७ । का० कु०, ४५ । का०, [सं० पु०] १२० १३४ १३५, १८० । ल०, ६, [सं०] १७, २७, ४१, ४७ ६० ।
आठ, होठ, नाच का आठ ।

अधर्मी = चि०, १७८ ।
[सं० पु०] पापी, दुराचारी, पातकी, धम क (हि०) विरुद्ध कार्य करनेवाला, कृत्तमा, बुरा कार्य करनेवाला, अध्याय ।

अधराति = चि०, १६८ ।
[सं० स्त्री०] (२० भा०) अधराति ।

अधरान = चि०, १७६, १६१ ।
[सं० पु०] (२० भा०) अधर म ।

अधरानहि = चि०, ४६ ।
(२० भा०) अधराने ।

अधरा = प्रा०, ६१ । का०, ६७, ६६, १५७ [सं० पु०] १८४, २६१ । ल०, १० १८ २१ । (हि०) सं० अधर वा व्युत्पन्न ।

अधार = चि०, ४८, १७५ ।
(सं० पु०) (२० भा०) (२० आचार ।)

अधिक = प्रा०, १६ । का०, ४७, ५१, ५२, ८६, [वि०] १३८, १५७, १५८, १६१, १७६, (सं०) १६६, २१३ । चि०, ५८, ६१ ।
अवशिष्ट, आंतरिक, शेष, बचा हुआ, फलानु । विगण, बहुत, ज्यादा । तलछट ।

अधिकार = का०, ५४, ८२, १६२, १६०, १६२, [सं० पु०] १६४, २२० । चि०, ५१, ५६, ५८, (सं०) ३१ । ल०, १२, १३, ७०, ७८, ७९ ।
याम्यता, मान, परिचय । प्रभुत्व, आधिपत्य । कर्जा, स्वत्व, अस्तिपार, हक । क्षमता, शक्ति, सामर्थ्य । प्रकरण, शोषक । कतव्य ।

अधिकारछुध = क०, १२ । का०, १२६, २३७ । चि०, [वि०] (सं०) १२, २२ । १० ७७ ।
प्रभुत्व से व्याप्त । अधिकार से परवान । आधिपत्य और कायमार से परवान ।

अधिकारी = का० १६२ ।
[सं० पु०] प्रभु, मानिक, स्वामी । वह जिससे कोई हक या स्वत्व प्राप्त हो । अफसर, ज़िमी बाय या पद पर कार्य करने वाला । वह जो विशेष योग्य हो । उपयुक्त पात्र ।

अधिकारों = का०, १८६, २७२ ।
[सं० पु०] अधिकार का बहुवचन ।

अधिकृत = चि०, ५३ । ऋ०, ६३ ।
[वि०] (सं०) स्वत्ववाला, अधिकारी, अध्याय । जो किसी के अधिकार में हो, जिसपर अधिकार कर लिया गया हो । जिसका कोई काम करने का अधिकार दिया गया हो । जिसको कोई काम करने का प्रभुत्व प्राप्त हो ।

अधित्य = चि०-४८ ।
[सं० पु०] (हि०) (२० 'अधित्यका' ।)

अधित्यका = का० कु०, १०१ ।
[सं० स्त्री०] पवल व ऊार की समतल भूमि, टेबुल लैंड, उपत्यका वा उलटा । (सं०)

अधिपति = का०, १७० ।
[सं० पु०] (सं०) राजा, प्रभु, स्वामी । नायक, मुखिया ।

अधीर = का०, १२, २७, ३६, ५१, ५२ ५५, [वि०] ५६, ८६, ८६, ६१, १३६, १४६, (सं०) १५४, १५७, १६६, २५०, ५०, २६ ३८, ६५ । ल०, २१, २५, ३७, ४४, ५४, ६६ । क०, १८ ।
अध्र, उद्विग्न, वर्चन । च चन, अस्थिर । असंतोषी ।

[अधीर न हो चित्त शिरज मोह जाल में—अजात शत्रु की विधवा मल्लिका की प्राथना । दुःखमय यह मसार है तो भी दुःख भी सदाव नही रहता । उसका जीवन क्षणिक है । हे प्रभा विश्व के माह-जाल में हमारा चित्त अधीर न हो । उक्त कविता का यही भाव है । ८०—प्रसाद मगत ।]

अधीरतम = का०, ३६ ।
[वि०] (सं०) व्याकुलतम, विह्वलतम, चंचलतम, अत्यंत अस्थिर, उतावला, अत्यंत

- आतुर, अयत तज, अत्यत धैर्यहीन, अत्यधिक बेचत ।
- अधीरता = वि०, १७२ ।
[सं स्त्री०] व्याकुलता, विह्वलता, चंचलता, (सं) उतावनापन ।
- अध्ययु = का० कु०, ११४ ।
[सं पु०] (सं) यज्ञ करानेवाला यज्ञवेदीय पुरोहित ।
- अनग = आ०, २४। का०, ११, ७७, १५६ ।
[वि०, सं पु०] वि०, ३ १८२ । ल०, ४७, ७७ । (सं) बिना शरीरबाला । कामनेव ।
- अनग वालिनाएँ = ल०, ६० ।
[सं स्त्री०] कामिनीयाँ, कामवती लडकियाँ । काम बालिकाएँ ।
- अनत = आ०, ११, ६६ । का० कु०, १ ।
[वि० सं पु०] का०, ६, १०, १८, २६, ४०, ६८ (सं) ८७, ९१, ११३, १२०, १२३, १२८, १६६, १६३, २६० । वि०, २२, २३, ६६, १३६, १६० । अ०, २६, २६ ३३, ३८, ६३ ।
- असीम, बेहद, अघार, जिसका मत न हो, अत्यधिक, असत्य । नित्य, अविनाशी । शिव । विशुद्ध । गेपनाम । लक्षणा । मन्त्राम । आकाश । अवरक । एक जन नीयकर का नाम । भुजा में पहना जानेवाला एक गहना । एक व्रत । रामानुजाचार्य का एक परम शिष्य ।
- अनत नीलिमा = ल० ११ ।
[सं पु०] (सं) एनी नीलिमा जिसका अत न हो । अघार नीलिमा ।
- अनत मंदिर = का० कु०, ६ ।
[सं पु०] (सं) अनत का मंदिर । ईश्वर का निवास ।
- अनतता = का०, १२८ ।
[सं पु०] (सं) अनत के गुण धर्म वाता ।
- अनद = वि०, ६, ३१, ५६, १५२, १५६ ।
[सं पु०] (सं भा०) (दि०) 'मानल' ।
- अनदमय = वि० ५६ ।
[वि०] (सं भा०) (सं) 'मानलमय' ।
- अनदित = वि०, ५६ ६७, १५० ।
- [वि०] (सं भा०) (दि०) 'मानलित' ।
- अनलकर = अ०, ५६ ।
[क्रि० अ०] (दि०) लुठकर, रिसियाकर, क्षय करखे ।
- अनले = वि०, १८८ ।
[वि०] (दि०) भुझनाएँ हुए कौन भर हुए, सिर ।
- अनगदे = का०, ४७ ।
[वि० पु०] बिना गदे हुए जो किसी के द्वारा न बनाया गया हो, बेडगा, अनादी, अपरिप्लुत, वैतुका स्वयभू ।
- अनगगिनित = वि०, १६३ ।
[वि० पु०] बिना गिना हुआ, अगण्य, अगणित, (दि०) बहुत, बेगुमार ।
- अनजान = का०, ४६, ५१, ५२, १६४ । वि०, १४३ । अ०, २४, ३८ । ल० ७४ । (दि०) अज्ञात, अपरिचित, नासमझ, अनभिज्ञ, नादान, माथा, अज्ञ, अज्ञानी । बिना जान पहचान का ।
- अनजानि = वि०, १७६ ।
[वि०] (सं भा०) (दि०) अनजान' ।
- अनजानी = आ०, १५ ।
[वि०] (दि०) दे० अनजान' ।
- अनजाने = का०, १६३ । ल०, १७ ।
[वि०] (दि०) (दि०) 'अनजान' ।
- अनत = वि० १८८ ।
[क्रि० वि०] (सं भा०) तुमरी जगह, अयत ।
- अनत्य = का०, १४७, २०८ ।
[वि०, सं पु०] दूसरे से सबन न रखनेवाला, एकनिष्ठ, (सं) एक हाँ में लीन । विप्लु ।
- अनयन = का० कु०, ६५ ।
[सं स्त्री०] विरोध, विगाड, भगडा, भ्रमट, विद्रोह । (दि०) { वि० } अलग, पृथक्, भिन्न, विविध, नाना (प्रकार) ।
- अनमना = वि०, ११ ।
[वि०] (दि०) सिद्ध, अयमनस, उपास, मुक्त । अत्यत्य, बीमार ।
- अनमनी = का०, १४२ ।
[वि० स्त्री०] (दि०) उपास सिद्ध । अत्यत्य ।
- अनमिल = का० कु०, ३०, ५३ ।

[वि०] असबद्ध, बेमेल, असगत । अलग, भिन्न,
(हि०) रिलिप्त, पृथक् ।

अनमेल = चि०, १४२ ।

[वि०] बेमेन, असबद्ध, बलुका असगत । बिना
(हि०) मिलावट का, विमुद्ध, खालिस ।

अनरण्य = चि०, ४८ ।

[म० पु०] रावण द्वारा अश्वत्थ इक्ष्वाकु वश का
(सं०) एक सुयवशी राजा ।

अनराजघता = चि०, ४८ ।

[सं० स्त्री०] (हि०) अराजकता ।

अनगीत = चि० १५६ ।

[म० स्त्री०] बुरीति, बुरी बाल, कुप्रथा अनुचित
(हि०) व्यवहार ।

अनल = भा०, ३० । का०, कु० ५ । का०,

[म० पु०] ११६, १५७ । ल० ६५ । चि ६७ ।

(सं०) अग्नि, प्राण ।

अनलादिक = चि० १८६ ।

(ब० भा०) अग्नि आदि ।

अनलशिखा = ल०, ४६ ।

[सं० स्त्री०] (म०) अग्निशिखा । अग्नि की ज्वाला ।

अनरत = का०, १६४ ।

[क्रि० वि०] निरतर, सतत, सदैव, अत्रन्त, लगातार,
(सं०) हमेगा ।

अनप्रस्था = का०, २७१ ।

[म० स्त्री०] अव्यवस्था, अनियमितता । व्यग्रता,
(सं०) अप्रारता । न्याय की वह दृष्टि जिसमें
वक निकलता जाता हो और विवाद
का अंत न हो ।

अनस्तित्व = का०, २० ।

[वि० पु०] (सं०) अस्तित्वहीनता । मत्ता का अभाव ।

अनहित = का०, १६७ ।

[सं० पु०] (हि०) अहित, अमंगल, अपवार, बुराई ।

अनाथ = क०, २५ । चि०, १४४ । प्र० २१ ।

[वि०] बिना स्वामी का, असहाय, बेसहारा,
(म०) दीन-बुद्धि, नाथहीन, जिसका कोई
रक्षक न हो ।

अनाया = प्र०, २० ।

[वि०] (सं०) अनाथ का स्त्रीलिंग ।

अनादि = का० कु०, १ । का०, ३५, ७२ ।

[वि०] (सं०) जिसका आदि न हो, जो सत्ता से हो ।

अनामिका = आ, ६६ ।

[वि०, म० स्त्री०] सबसे अच्छी, बिना नाम या तुलना की ।

(सं०) कनिष्ठा और मध्यमा के बीच का उंगली ।

अनायास = क०, ६१ ।

(क्रि० वि०) सहसा, अचानक । बिना

(सं०) प्रयास या परिश्रम के, बिना उद्योग,
बिना प्रयास के ।

अनार्य = का०, कु० ११४ ।

[वि०] (सं०) जो आर्य न हो स्वेच्छ अग्र्येष्ट ।

अनाहत = का०, २४३, २७३ ।

[सं० पु०, वि०] बिना चोट बिना हुआ जिसपर
(म०) आघात न किया गया हो । योगशास्त्र
में अँगूठा से दोना बानों को बंद कर
लेने से मुनाई देनेवाला शब्द । हठयोग
के भीतर के छह चक्रों में से एक ।

अनिच्छित = का , १६४ ।

[वि०] (सं०) बिना इच्छा के, अनचाहा ।

अनियारे = चि०, १७४ ।

[वि०] नोकीना, बटोला, तील्हा, पंना,

(ब० भा०) तीली धारवाना ।

अनिर्वचनीय = का० कु ८१ ।

[वि०] जिसका वर्णन न किया जा सकता हो,

(सं०) अवगनीय, अकथ्य, अकचनीय । [पु०]

ब्रह्मा, परमात्मा । माया । जगत् ।

अनिल = भा०, १० । का० कु०, ५, ६६ । का०,

[सं० पु०] १८, १५७, २३४ । चि , १४०,

(सं०) १८२, १८५ क०, परिचय । ल०, २६ ।

वायु पवन, हवा, समीर, मारत ।

अनिलनिर्देश = का० कु०, ६६ ।

[सं० पु०] (सं०) हवा का हल ।

अनिघार्य = क० ५६ ।

[वि०] जिसका निवारण न हो, जिससे बचा

(सं०) न जा सके । जिसे लेना, रखना या

मानना आवश्यक हो । जो हटाया या

छोड़ा न जा सके ।

अनिष्ट = प्र० ५ । का० कु०, १०८ ।

[वि०] (सं०) जा इष्ट न हो, अनभिलषित ।
अनिहलवाडा = ल०, ६५ ।

[सं० पु०] (हि०) एक स्थान का नाम । गुजर प्रदेश
का कुतुबुद्दीन ऐबक तदनंतर अलाउद्दीन
द्वारा विजित नगर । लहर म 'प्रलय'
की छाया' म वर्णित स्थान । ०—
प्रलय की छाया म श्रीर लहर ।

अनी = वि०, ५३ ।
[सं० छा०] सिरा कीर, नोक । वेद ग्लानि ।
(हि०) कुड, समूह दल ।
अनुकरण = ल०, ६३ ।
[सं० पु०] (सं०) नवन, दलादखी बिया जानेवाला काय ।

अनुकूल = व० ६ । वा० कु० ५० । वा०
[वि०] १३६ । वि० १४ ६ १० १५०
१६० । प्र० १० । अनुवार मुभाषिक ।
हितकर पक्ष म रहनेवाला । प्रम न ।
वा० ७६ ।

अनुकृति = व० ७६ ।
[सं० शी०] (सं०) अनुकरण ।

अनुगत = ल०, ६५ ।

[वि०] अनुयायी अनुगामा, पीछ चलनेवाला ।
(सं०) अनुकूल, मुभाषिक अनुसार ।
अनुगामी = व० २२ ।

(वि०) अनुसरण करनेवाला । समान आचरण
(सं०) करनेवाला आज्ञाकारी ।

अनुमह = ल०, ७३ ६६ ।

[सं० पु०] (सं०) दया, दया, अनुकृपा । अनिष्ट निवारण ।

अनुचर = व०, २६ । वि० ६६ । न० ७२ ।
[सं० पु०] (सं०) पीछ चलनेवाला । सबक दास । सहचारी, साथी ।

अनुचरन = वि०, ४० ।

[सं० पु०] (सं० भा०) पाद चलने का क्रिया ।

अनुचित = वि० ७३ । म०, ११ ।
[वि०] अयोग्य अनुक्त वुरा खराब जा उचित
(सं०) न हो, नायुक्तानिव ।

अनुन = वि०, ६४ ।

[सं० पु०, वि०] (सं०) जो बाद म पण टूटा हो । छोटा भाई ।

अनुतापद = वि० = ७२ ।

[न० भा०] जलन से । नपन से ।
अनुदिन = वा०, ७१, १०५ ।

[क्रि० वि०] (सं०) प्रति दिन । हर दिन । रोज ।
अनुनय = ऋ, ४३ । ल० ७१, ७३ ।

[सं० पु०] विनती, विनय प्राथना । रुठे हुए को मनाना ।
(सं०)

[अनुनय (१)]—इदु पला = जनवरी १६२७ मे
सबप्रथम प्रकाशित । चद्रगुप्त का गात
'युवा साकर से नहला दा' । प्रसाद
समय म सकलित । ०—युवा सीतर
से नहला दो श्रीर प्रमाद समीत ।

अनुनय (२)—'करना' म प्रकाशित एक लघु
काव्यता । इग छाठ पात की काव्यता वा
मकरद उसक । इन दो पत्तिया म है—
क्राय सं, विपाद स दया वा पून प्रीत
हो स किमी भी वहाने से ता या'
बिया कीजण ।]

अनुनयवाणो = वा० १२७ ।

[म० शी०] (सं०) प्राथना स भरो हुई सादाबली ।
विनती ।

अनुपम = का० कु० ६७ । वि० ४२ ५६ ६६,
[वि०] १६० १६३ । म० = १३ ।
(सं०) बजाड अनुठा, उपमारहित, जितकी
टकर वा दूसरा न हो, अत्यत उत्तम ।

अनुपस्थिति = म० १४ ।
[सं० शी०] (सं०) अविद्यमानता मौजूद न होना गैर
मौजूदगी, गहराजिरा ।

अनुभव = श्रौ ५४ । वा० कु० ६०, ६७ ।
[सं० पु०] (सं०) वा० २२७ २६, २६१ । प्र० २५ ।
ल० ६६ ।

योग द्वारा प्राप्त ज्ञान । पराज्ञा स प्राप्त
ज्ञान सजबा । प्रयोग द्वारा प्राप्त ज्ञान ।
= वा० ६४ ।

अनुभाव = वा० ६४ ।
[सं० पु०] (सं०) प्रभाव महिमा बढाई । रग का वाक्य
करानवान गुण श्रीर क्रिया । माहित्य
या वाक्य म रम क अनगत चित्त क
भाव प्रकट करनेवाल बढाई रामांच
भाषि बढाण ।

अनुभूत

- अनुभूत = का० कु०, ८६ । ऋ०, ८६ ।
 [वि०] अनुभव से नात, परीक्षण, तज्जमा
 (सं०) किया हुआ ।
- अनुभूति = का०, २६ । ल०, ६८ ।
 [मं० स्त्री०] (सं०) अनुभव, परिचय, तज्जमा । प्रत्यक्ष ज्ञान ।
- अनुमान = का०, ३५ । ५२, ८३, १७७ । चि०,
 [मं० पुं०] १८६ । ऋ०, ६३ ।
 (सं०) शपन मन से यह समझना कि एना
 हा सकता है या होगा, अदाज, अटकन । विचार, भावना ।
- अनुमानि = चि०, १७६ ।
 [क्रि० वि०] अदाज लगाकर, अनुमान करके,
 (श्र० भा०) अनुमानत ।
- अनुरक्त = का० कु०, २६ । ३०, ७५ । का०,
 [वि०] १० । ऋ०, ३५ । ६७ ।
 (सं०) आसक्त, अनुरागयुक्त, प्रेमयुक्त, लान ।
 रगीन । लालिमा युक्त । प्रमन ।
- अनुराग = का० कु०, ११, ४६, १११ । का०
 [मं० पुं०] ११, ७३ । ७२, ८८, ६८, १६८,
 (सं०) १७६, २१८, २३७ । चि० २१,
 २२ । १७५ । १८० । ऋ०, २८ । ६६ ।
 ल० ३८ । ६२, ७६ ।
 प्रेम प्रीति । (द० 'अनुरक्ति') ।
- अनुरागमयी = का०, ६५ ।
 [वि०] (सं०) अनुराग से भरी हुई । लालिमा युक्त ।
- अनुरागिनी = ल० १११ ।
 [वि० स्त्री०] (सं०) प्रेम या आसक्ति रखनेवाली । अनुराग
 रखनेवाली स्त्री ।
- अनुरागी = चि०, १४ । ऋ० ५५ ।
 [वि०] (सं०) प्रेमी, अनुराग रखनेवाला ।
- अनुरागी = चि० ६८ ।
 (श्र० भा०) अनुराग करता है ।
- अनुरूप = चि० ७३, १८० ।
 [वि०] (सं०) समान रूप का । अनुकूलन । योग्य ।
- अनुरोध = का०, १४० ।
 [सं० पुं०] (सं०) मायट । स्थावट वाया । प्ररणा, उने
 जना । विनययुक्त हठ ।

[अनुरोध — 'मसृति के व सुदरतम क्षण यों ही
 भूत नहीं जाना' स्वदगुप्त का यह
 गीत उक्त शीपक से 'मुष्ठा', वप १,
 खड ३, मितवर १६२१, सख्या १,
 पूरा सख्या २, मे प्रकाशित हुआ और
 स्कन्दपुराण तथा प्रयाद सगात मे
 सकलित । १०—प्रसाद सगीत एव
 मसृति के वे सुदरतम क्षण ।]

- अनुलेप = ल०, ५० ।
 [सं० पुं०] (सं०) लीपना । लेपन ।
- अनुलेपन = का०, १५ ।
 [सं० पुं०] (सं०) लीपना । लेपन ।
- अनुशय = का०, २५० ।
 [मं० पुं०] (सं०) पश्चात्ताप, अनुताप । पुराना वर,
 अदावत, भगडा, वादविवाद, विग्रह ।
- अनुशासन = का०, २४०, २७२ ।
 [सं० पुं०] (सं०) आदेश, आना । उपदेश, शिक्षा ।
 आचार, व्यवहार के नियम ।
- अनुशीलन = का०, ७१ । प्रे०, १५ ।
 [सं० पुं०] चिंतन मनन । बार बार किया जानेवाला
 (सं०) अध्ययन या अभ्यास ।
- अनुश्रुति = का०, ७३ ।
 [सं० स्त्री०] परंपरा से प्रचलित या प्राप्त कथा, उक्ति,
 (सं०) बात आदि ।
- अनुष्ठित = का० कु०, ११३ ।
 [वि०] (सं०) पूरा, सपन, जिसका सबवि अनुष्ठान
 हुआ हा ।
- अनुसरण = का० कु०, ७३ । का०, ५६ । चि०,
 [मं० पुं०] १८८ ।
 (सं०) पीछे पीछे चलना । अनुकरण, अनुकूल
 आचरण नकल ।
- अनुसारिण = चि०, १७१ ।
 (श्र० भा०) पीछे चलाने । अनुकरण करिण ।
- अनुसूया = चि०, ५६, ५६ ।
 [सं० स्त्री०] शशुनला की मसृती का नाम । अत्रि
 मुनि की स्त्री । अत्रि ऋषि का धार
 उपनिवन्ती पत्नी । गन्ध पुराण मे
 इस दक्षकथा की बताया गया है ।
 ऋग्वेद मे भी इसका अत्रि की त्रिव
 पत्नी के रूप मे उल्लेख है । वा पीवि

रामायण म जनवात के समम सीता को इनके उपदेश का बर्णन है तथा इन्हीने सीता को ब्रह्म, भूषण उषटन, अनुलेप को वस्तुएँ भी दी थी। य परम सती के रूप में प्रतिष्ठित हैं। (हि०) हमारे के गुण म दोष न निकालना ईर्ष्याहीन होना।

अनुहारत = वि०, १६३।

[क्रि०] (प्र० भा०) समान बुच, सहज बरानर करना।

अनुहारि = वि० ३४।

[वि०] समान, सहज, बराबर बोध्य, उपयुक्त,
(प्र० भा०) अनुहार लावक।

अनुहारो = वि०, १४८।

(प्र० भा०) दे० 'अनुहार'।

अनूठा = वा० कु०, २१६।

[वि०] अप्रव निराला, अनोखा, विलक्षण,
(हि०) अच्छा।

अनूप = वा०, १४३। वि०, ६२, ६६, ७२,
[वि०, सं० पु०] १५२, १५६। अ, ६४।

(हि०) जिसका कोई उपमा न हो अनुपम,
बजोड, अद्वितीय। (सं०) अधिक
जनवाता स्थान।

अनूपम = वि० ५६, ६०, ७२। वा० ४१।

(प्र० भा०) (प्र० 'अनूपम')।

अनेक = वि० ३१ ४८ ५२ ५८ ६०, ६५

[वि०] १११ १६२। अ०, ६४।

(सं०) एक से अधिक बहुत, अत्यथ।

अनेकरूपी = का० कु०, ६।

[वि०] (सं०) अनेक रूपवाला। बहुरूपिया।

अनोरथा = का, ७७।

[वि०] अप्रव, विलक्षण निराला, विविध,।

(हि०) सुदर, मनाहर।

अनोरथे = वि० ५८ १८८, १ प्र० ४।

[वि०] (हि०) दे० 'अनोरथा'।

अनोरथी = अ०, ३७। वा कु०, ४१, ४३, ११४,

[वि०] (हि०) ११५। वि, ४६ ५८, १४३।

प्र०, १६।

अनोखा का स्त्रीविण।

अन्न = वा०, ३२, ५२, ८४, १४१।

[सं० पु०] साध पत्ताप। भवान, धान, गन्ना,
(सं०) नाज। पृथ्वी। प्राण। जन। वह जो

सबका चण तथा ग्रहण करे। मूय।
विद्युत्।

अच्य = वा०, ६६, १२४, १३३, १४४,
[वि०] २८७। प्र० २।

(सं०) कोई दूसरा। शीर व्यक्ति। भिन्न।

अन्यमतस्क = वा० कु० १८।

[वि०] जिस व्यक्ति का मन कही शीर लगा

(सं०) हो। जिसका ध्यान किमा दूसरा बात
के सोचने म तथा हो।

अन्योन्य = वि०, १५।

[सव०, सं० पु०] परस्पर। आपस म। एक प्रयात्कार
(सं०) जिसमें दो पदार्थों के किमा गुण या
क्रिया को एक दूसरे के कारण उत्पन्न
हुया कटा जाय।

अन्हात = वि०, १७६।

(प्र० भा०) स्नान किमा हुमा।

अपदार्थ = अ० ४१।

[वि०] (सं०) अयाय, अवस्तु, बुद्ध, नावीज
पदार्थ भिन।

अपना = अ० २३। का०, १८, २६, ३१।

[सव०] का०, कु०, २२। का०, ३१, ६३,

(हि०) १०२, ११०, ११४, ११७, ११८,

११६ १२६, १८५, २१०, २३७,

२४८। प्र०, १। म०, २, १८। सं०,

२१, ४५।

हरएक की दृष्टि से स्वकाय। निज
का, निजी।

अपनापन = का०, २४१।

[सं० पु०] (हि०) आत्मीयता। आत्माभिमान। स्वाध
बुद्धि। अपनत्व।

अपनाया = का०, १७२, २०१। अ०, ५८।

[क्रि० सं०, हि०] अपनाया, स्वाराज
किया, शरणा में लिया।

अपनी = वा०, २६ २६। वा०, कु०, ६, ८७।

[सर्व०, स्त्री०] का० ३१ ८६ ८८, १०२, १०६,
११८, १७७, २०२, २३५, २६२,

२७१। चि०, १४२, १५७। ल०, ६,
५६, ६३, ६४, ६६, ७५, ७८।
निजा।

अपनी अपनी = का०, १८।
[सर्व०] (हि०) प्रत्येक का। मिय अपनी अपना।

अपने = का०, ६, २६। ना० कु० २८। का०
[सर्व०] (हि०) ७, ३२, १०४, १०६, १६६, २०६,
२१०, २२६, २३७, २८२, चि०, ७२,
१४५, १४७, १५८। ऋ०, १६।
प्र० २। म० १३, १५। न० २८,
४१, ४१, ४८, ५०, ६४, ६८, ७८।
निजा। आत्मीय। स्वभाव।

अपनेपन = चि०, ६६।
[म० पु०] आत्मीयता। अपन व।

अपनो = चि०, ६६।
(३० भा०) (३० 'अपना')।

अपमान = का० कु०, ४५। का०, १८६। चि०,
[स० पु०] १३, १०२। म०, १४। ल०, ५२,
(स०) ७७।
अनादर। अचना। अचानना। तिर
स्कार। बदज्जती।

अपमान जवाला = ऋ०, ७८। ल०, ७, ६६।
[म० स्त्री०] तिरस्कार की लपट। तिरस्कार का
(म०) अग्नि। अपमान की दाह।

अपमानित = का०, २७। का० कु० ६४।
[चि०] (हि०) तिरस्कृत। जिसका अचना की गई
है। जिसे ताबा दिखाया गया है।

अपमानित हिय = चि० ५८।
[चि०] (वह हृदय) जिसका तिरस्कार किया
(३० भा०) गया है। तिरस्कृत हृदय या मन का।

अपयश = म०, १७।
[म० पु०] (स०) अपकीर्ति, बदनामा। बलक लाछन।

अपर = चि०, ५६।
[चि०] (म०) पट्टे का। पूर्व का। दूसरा। अय।

अपरचित = 'माधुरी' वष ४ गड २ मनु १६२६,
सत्या १ म सबप्रथम प्रकाशित।
अज्ञातशत्रु का 'निजम गाधूति प्रातर
में खाल पणकुटी के द्वार।' गीत।

प्रमाद संगीत म भी मकलित। ३०—
प्रमान संगीत एव निजम गाधूति।

अपराध = का०, ३१। का०, ८४, १०२, १७७,
[म० पु०] २०८, २४८।
(म०)

वह अनुचित काय जिमम किमी को
हानि पहुच। विधान के विरुद्ध कोई
एना काय, जिमक कारण फना का द
मिल सजना हा। चुरा काम। दोष।
पाप। मलती।

अपराधी = का०, २१०, २२८, २३८।
[चि० पु०] तोप करनेवाला। पापा। कमूखवार।
(म०) मुनजिम।

अपरिचित = का०, ३२, ८१। चि०, २०।
[चि०] अनात। अनान। जिमके बारे म कुछ
(स) ज्ञात न हा। जा जाना पहिचानान हो।

अपरिमित = का०, २७६।
[चि०] असीम। बृहद। असख्य। अनत।
(म०) जिमकी माप न की जा सव।

अपरूप = ना०, ६१। चि० १८६। ऋ०, ८३।
[चि०] बदशकल। महा। वैनील। अद्भुत।
(म०) अयूव।

अपलक = का०, १८। का०, १२, २८०।
[चि०] ल०, ३१।
(म०) जिमकी पलकें न गिरें। निरतर।
निनिमप। जिना खाल भये।

[अपलक जगती हो एक रात—नहर, पठ २१।
कविता का भाव है कि अभाव लेकर
याए हुए लोगों का प्रात न हो ताकि
व अभाव का शोध कर सकें। स्वप्न
म हा वे खाये रह। जस पथ हरियाली
म और मुमन डाली म मोते हे।

अपहस = का० ८४। म०, २।
[चि०] जबदस्ती छीना गया। हरण कर लिया
(म०) गया। छाना हुआ। चुराया हुआ।

अपाग = ऋ०, १६, २५।
[म० पु०, चि०] (स०) जिसका कोई अंग टूट गया हो। खाल
की कार, कटाक।

अपार = का०, ४, ८, ८, ५२, १५६, १६६,

[वि०] २३४। ऋ०, २१, ४२। चि०, १४६,
(सं०) १७७।

जिमका पार न हो सीमारहित। अनत,
असीम, असरय अतिशय।

अपारा = चि० ७७ १५०।

[वि० सं० श्री०] (हि०) जिमका पार वा अन न पाया
(सं०) जा सके। पृथिवी। दुगा। महाशक्ति।

अपावन = आ०, ७४।

[वि०] (सं०) अपवित्र। न छूने योग्य।

अपर्युक्त = वा० कु०, ८१। वा०, ११८ १६०

[वि०] १६१ १६४ १६४।

(सं०) अघूरा। अममात। कम। जा पूरा या
भरा न हो।

अपूर्णता = वा०, १६३।

[सं० श्री०] (सं०) पूरा न होना। भरा हुआ न होना।
अघूरापन।

अपूर्ण = चि०, ११।

[वि०] जो पहले न रहा हा। अद्व्युत।

(सं०) अनाया। विचित्र। उन्नत। अष्ट।

अप्रकटित = प्रे० २२।

[वि०] जा प्रकट न किया गया हा। जो प्रका
(सं०) शित न हा। जा प्रत्यक्ष न किया गया
हा। अप्रत्यक्ष।

अप्रतिम = चि० १०। ल० ७३।

(वि०) जिमके समान कोई न हा। अनुपमय।

(सं०) जो अद्वितीय हो।

अप्रतिष्ठित = वा० २०६।

[वि०] जिमका कियत न किया गया हा।
(सं०) अपराजित। न रोका हुआ।

अप्रत्याशित = प्रे० २३।

[वि०] जिसका आगा न वा गयी हा। अचानक
(सं०) या अचानक होनेवाला।

अप्रमाद = वा० १६७।

[सं० पु०] (सं०) प्रमा या पागलपन वा अभाव।

असरा = चि० ६ १६ १७ ६१। ल० ६०।

[सं० श्री०] स्वयं का चर्या। चारागना। अनुपम
(सं०) मुन्ना। जन बग। वात बग।

अस्मरगान = चि० ११३।

[सं० पु०] अप्पराश्री के गीत। स्वर्गीय गान।
(हि०) सु दर स्त्रियो द्वारा गाया गया गान।

आसन्नियो = वा०, २६४ २६०।

[सं० श्री०] अप्पराए। सु दर स्त्रियां।

अप्सरे = वा०, १२७।

(हि०) अप्परा का मवावन।

अन = आ०, १२ ३०। वा०, १, १०, २१,

२२ २८। वा० कु०, ५६, ८३।

[क्रि० वि०] वा०, ४ ८१ ८७ १०६, ११३, १४५,

१६२ १६३, १७३, १७७ १८२ १६६,

२०७ २५६ २६० २६६। चि०, ५७,

७२ ७३ ७४, ११८ १६०, १७०,

१८३। ऋ० समपण। प्र०, ४।

म० १० १२ १७, २०, २१। ल०,

२४, ५१।

अनी। इन समय। अर्चकी।

इसी बार।

[अथ जागो जीवन के प्रभात—लहर (पृष्ठ २४) मे
मनलित गात। इम प्रभाता मे कवि ने
जीवन व प्रभात वा मनोहित कर उसे
जगाने का उद्भावन किया है क्यकि
वसुधा पर पडे मोस को जो ज्ञान के
आमु के समान है अहणगात उपा बटा
रने लगी है। तम के नयन तार किरण
दल म मुद रहें हैं और मलयज समार
चलने लगा है। रजना की लज्जा समट
कर (निद्रा त्यागकर) कलरय (जाग
रण) स भेंट करा और जागा।]

[अन भी चेत ल त नीच— प्रसाद सगात।
जयश्री म दिनाकर मित्र का नेपथ्य
का गीत। इ नीच पू अथ भा चत
न। दु ल स परित्त घरा का स्नेह के
जल स माच। ट्टाणापान स पने नर
कठ का करणा गरारर म स्नान करा
ताकि कीच छुत जाय।]

अनला = चि०, १०३। म०, ११, १२। ल०,

[वि० सं० श्री०] ६८ ७१।

(सं०) स्या। महिना। नारा। उन्नरहिता (स्या)।

अनर्हि चि०, ११८।

[क्रि० वि०](हि०) इमी समय । इमी वक्त । अभी ।
 अवही चि०, १५६ ।
 (प्र० भा०) (२० 'अवही')

अवहूँ = चि०, ६६ ।
 (प्र० भा०) भय भी, इस पर भी, अग्र तक भी ।

अवहूँ = चि० १८८ ।
 (प्र० भा०)[क्रि० वि०] अब भी । इसपर भी । अग्रतक भा ।

अवाध = का० ७८ ५४ । ल०, ७६ ।
 [वि०] (म०) निर्विघ्न । बाधा रहित । अनियमित ।
 अघोर । असीम ।

अवोध = का०, १५७, १६३ ।
 [वि०, म० पु०](म०) अनजान । नादान । मूर्ख । अज्ञान ।
 बोधहीन ।

अव्र (अव्र) = का०, १४८ ।
 [म० पु०] गदल । मेघ । आकाश । स्वण,
 (म०) सोना । अव्रक धातु ।

अवग = का० १५६ ।
 [वि०] (म०) अरुच पूण, क्रमवद्ध । जिमरा भग न
 हुआ है । पुरा ।

अवय = का०, १६८, २४४ ।
 [वि०] (म०) निभय । निडर । बलौक ।

अवया = ल०, ३२ ।
 [वि० म० स्त्री०] (स०) भयरहिता । हरीतकी । हरे ।

अवागा = ल०, ७२ ।
 [वि०] (हि०) भाग्यहीन । बदकिम्मत । मद भाग्य ।

अवागिनी = प्रे०, १८ ।
 [वि० स्त्री०](हि०) भाग्यहीना । भाग्यरहिता ।

अवाव = का०, कु०, ६७ । का०, ५, १८ ३०,
 [सं० पु०] १२८, १३१, १४५, १५१ । प्रे०, ३
 (म०) ल० ३१, ७४ ।
 अस्तित्व । अस्त । अस्तता । टाटा ।
 कमी । घाटा ।

अवनिदन = का०, १०२ । ल०, १३, २८ । चि०,
 [म० पु०] ७, ६१, ६२ ।
 (म०) प्रायदा । प्रो साहव । धानद । प्रशता ।
 उत्तना । सतोष ।

अविनय = का०, ७६ । व०, १० । का०, कु०,

[सं० पु०] ५६ । का०, १०४, १३५, १५८, २२४,
 २४७, २६३ प्रे०, १३ । ल०, ६५ ।
 (स०) वनावटी । हाव भाव द्वारा किसी विषय
 का वास्तविक अनुकरण करके दिख
 लाना । हृदय के भावा की व्यक्त करने
 के लिए अगा द्वारा की गयी चेष्टा ।

अविनयमय = ल०, ४६ ।
 [वि०] (स०) अविनय से युक्त ।

अविनव = का०, १६४ २२५ २६०, २७७ २८५
 [वि०] २६२ । चि० ६६ । म०, ६७ । प्रे०,
 (म०) १८ । ल० ३६ ।
 नया । नवीन । नूतन । ताजा ।

अविनवेष्टु = चि०, १६८ ।
 [म० पु०] (स०) नवीन वद्रमा । नया चाँद ।

अविभाकर = प्रे० १० ।
 [वि०] (म०) रक्षक । सपरस्त । देखरेख करनेवाला ।
 पराजित करनेवाला । तिरस्कार करने
 वाला ।

अविमान = का० २८ । का०, कु०, ४५, ८३ ।
 [सं० पु०] का० ४६, १५७, १७७ । चि० १६४,
 (म०) १७७ । म०, ३८, ६४ । ल०, ४६,
 ६७, ७५, ७६ ।
 अहंकार । गव । घमट । अपन का
 अधिक योग्य और समथ समझने की
 भावना ।

अविमानी = का०, १७७, २५७ । चि०, १६४ ।
 [वि०] (म०) अहंकारी, घमडा, गर्वीना ।

अविराम = का०, कु०, ६७ । का०, ४६, ४७ ५३ ।
 [वि०] (स०) चि०, १५६ । म०, ५६, ६३, ६६ ।
 प्रे०, ७ ।
 मनाहर । मुदर । शासन ।

अविलपित = का०, १६४ ।
 [वि०] (म०) जिसकी अभिलाषा की जाय । वाञ्छित ।
 चाटा हुआ ।

अविलाप = चि०, १७७ ।
 [म० पु०] (स०) इच्छा । कामना । चाह ।

अविलाषा = का०, ३८, ६५ । का० कु०, ४८ ।
 [म० स्त्री०] (सं०) का०, ४८, ६६, १०२, १०९,

११३, १३०, १४८ १/० १६६
१८६। ऋ० ३६ ४३ ५१। प्रे०, ३,
१६। १०, २०, ६०।
कामना। आकांक्षा। चाह।

अभिलाषाया = श्री० ११। का० १६४ १७७।
[म० गी०] ऋ० ७०।
अभिलाषा का बहुवचन।

अभिलाषा शलभ = वा १७८।
[म० पु०] (म०) इच्छा रूपा पतंग। चाह या कामना
रूपी फलिया।

अभिलाषित = चि० १८।
[नि] (ि०) इष्ट। चाहा हुआ।

अभिवादन = व० २१। म० २०।
[म० पु०] प्रणाम नमस्कार वदना स्तुति
(म०) किमी बडे व प्रति प्रकट का जानरानी
श्रद्धा या आदर भावना।

अभिवाचिक = वा० १४०।
[ग० म्वा] स्पष्टाररण। साक्षात्कार। आधिभार
(म०) उस वस्तु या प्रत्यक्ष होना या पट्ट
प्रत्यक्ष न हा।

अभिशाप = श्री० ७८।
[वि] (म०) शाप पाया हुआ। वददुष्प्रा पाया हुआ।

अभिशाप = श्री० ७७। वा० ५ १८ ५३ १६२
(स० पु०) १६७ १६६ २२८। ल० ७६।
(म०) शाप वददुष्प्रा। मिथ्या दोषारोप।

अभिषेक = श्री०, ६६। वा० कु० ११३। ग० ३
[म० पु०] ४१। म० २७।
(म०) शानि या मंगल क निमित्त मन्त्र पत्रकर
पुत्र तथा द्रव स जल छिन्नना।
जन्मिचन। विधि व अनुमार मन्त्र
द्वारा जल छिन्न कर अधिहार प्रदान
करना। राय पत्र पर निवाचन।
यत्र व पशवात् शानि व निमित्त
स्नान। छत्रमुक्त बहु घटा या शिवांग
पर जत्र टपकन व तत्र निशा पर
रखा जाय।

अभिसारि = वा० ११।
[वि] नायन या नासिका का परस्पर मिलन

क लिय सकलिन स्वान पर जाना
युद्ध। चत्पाद। आक्रमण। सहारा।

अभी = व० १७ १६। वा० कु०, १२०,
[क्रि० नि०] १२१ १२४, १२५ १२६। वा०,
(ि०) ८२ १२८ १४०, १६० १८३, १८१
१८४, २०६। चि०, १६६। म०, १,
३ ७ ५ १७। ल० ४५ ७६।
इमी समय। दमा वक्त।

अभीष्ट = वा० कु० २८। म० १८।
[नि०] (म०) वाछित। चाहा हुआ। मनोतान।
पमद का। अभिप्रत। अभीष्टित।
अभिपतित।

अभीत = चि० ६६ १४१। ऋ० ७०।
[वि०] (म०) न टरा हुआ। भय न खाया हुआ।
भय रहिन। निभय। निडर।

अभूतपूर्व = व० ६८।
[नि०] (स०) ज्ञा पहत न हुआ हा। अपूर्व।

अभेद = वा०, २८८। ऋ०, ६३।
[म० पु०] भेद का अभाव। फत्र का न रहना।
(स०) माहित्य म एक अन्कार का नाम।

अभ्ययना = म० १४।
[म० ११०] निवय। प्राथना। दरहवास्त। भ्रम
(स०) वानी। ममान व लिये आगे व
कर अभिवादन करना।

अभ्यास = वा० ५१ २८७।
[म० पु०] किना काय का वार वार करना। पुन
(म०) पुन अनुशालन। पुनरावृत्ति। दोह
राना। स्वभाव। मुत्पावरा। आत्न।
टव। शिवा। एक काव्यान्कार का
नाम निमम किमी दुप्पर वात को
मिद्ध करनवात काय का वर्गन हा।

अभ्युत्थ = वा० कु०, ३६। वा०, ५६।
[सं० पु०] मृय यादि मृदा का उत्थ। अभीष्ट कार्य
(सं०) या काम का मिद्ध। उपरति। वानी।
उमव। शुभ फत्र। देवभाग।

अभ्युत्थ = वा०, ५६ १६८। चि० १ २५ ६१,
[नि०] (म०) १२८ १४०, १६१, १६२, १६४,
१६५, १६६, १७६। ल० १८।

अभ्युत्थ = वा०, ५६ १६८। चि० १ २५ ६१,
[नि०] (म०) १२८ १४०, १६१, १६२, १६४,
१६५, १६६, १७६। ल० १८।

मद या धीमा या मध्यम न होना । तेज । उत्तम । श्रेष्ठ मुदर । उद्योगी । वायकुशल । चलता पुरजा ।

अमर = का०, ५, १४, २८, ७४, ११२, २२२ ।
[म० पु०] ल०, १४ ।
(म०) देवता । पारा नामक धातु । मँडूक का पेट । अमरकोश के रचयिता अमरसिंह का नाम । उचास पवना मे से एक पवन । विवाह के पूव वर कया कं राजिवग के मयोग वं निमित्त नक्षत्रा का एक गण ।

अमरतरंगिनि = चि० ७१ ।
[म० स्त्री०] देवताप्रो की नगी । देवनगी ।
(हि०) देवगगा ।

अमरता = का०, ७, १८ ।
[म० स्त्री०] (म०) अमरत्व, दनत्व ।

अमरते = का०, १२ ।
(म०) अमरता का मवाधन ।

अमरत्व = का०, १६६ ।
[म० पु०] अमर का भाव । अमरता । दवत्व ।
(स०) दवों का जीवन । ज ममरण से मुक्ति ।

अमरवेलि = का०, ७३ ।
[म० स्त्री०] कभी नष्ट न होनवाली लता । आकाश बवर ।

अमरप = चि० ११ ।
[सं० पु०] (हि०) अमप । प्राय । कोप । रस के नतीम मचारी भावो में म एक ।

अमरपभरे = चि०, ४१ ।
[वि०] प्रायमुक्त । कोपयुक्त । क्षोभयुक्त ।
(हि०) क्षोभ स भरा हुआ ।

अमरसिंह = म० ७ ।
[म० पु०] महाराणा प्रताप के पुत्र का नाम । महाराणा प्रताप सिंह की मृत्यु के पश्चात् यह विनामी हा गया था । 'अमर महल' का निर्माण टमी न कराया और जहाँगीर स मधि का था ।

अमरार्द्ध = का० कु०, ३६ ।
[सं० स्त्री०] (प्र० भा०) अम की बारा । अम का भाग ।

अमरावती = चि०, ६७ ।
[सं० स्त्री०] (स०) देवो की नगरी । इर की राजधानी ।

अमल = का० ७१, का० कु०, ६२ । चि०, १
[वि०] १० १६० १७४ १७६, १७७ ।
(स०) ल०, ३५ ।
निर्मल । दापरहित । पापशून्य ।

अमला = का० ७६ । चि०, १४६ ।
[वि०, म० स्त्री०] (स०) दापरहित । स्वच्छ । पवित्र । लक्ष्मी । अत्रि ऋषि को ब्रह्मवादिनी कया ।

अम्या = का० १६४ । चि० १०१ । म० ८५ ।
[म० स्त्री०] (स०) अमावस्या । वह रात्रि जिसम चंद्रमा की काद कला उदित नहीं होता ।]
[अम को करिये सुदर रात्रा—(२० बिंदु) सब प्रथम अरुना मे प्रकाशित इनक पूव इहु कत्रा ५ फरवरी १८१४ इ० किरण २ म 'अमा को करिए सुदर रात्रा' शीपक से प्रकाशित ।]

अमाय = चि० ५२, ७१ ।
[म० पु०] (स०) मत्री । वजीर ।

अमिट = का० २२२ ।
[वि०] (हि०) न मिटनेवाला । नष्ट न होनेवाला ।

अमित = चि०, १ ६ २२, १५४ । प्रे०, १७ ।
[वि०] (म०) असीम । बहत् । अरधयिक ।

अमिताभ = ल०, १३ ।
[वि० सं० पु०] अययिक चमक मक वाता । अमाम (स०) प्रमा मपत्र । भगवान बुद्ध (ई० पूव ५६३-४८) । कपितवस्तु के राजा शुद्धा दन के पुत्र आर बोद्ध धम क प्रवतक । ऋषि पत्तन (मारनाथ) म अपन धम का प्रचारारम लगभग ५२७ इ० पूव ।

अमुक = म० ७५ ।
[वि०] (स०) फता । वह या यह । वार्द ।

अमूल्य = म०, ८० ।
[वि०] (स०) मूयरहित । अममान ।

अमृत = का० १८, १२४, १४७, १५२, २२४, २६४ । चि०, ७४ । म०, ३० ।
[सं० पु०] (स०) ल०, १५ ।

समुद्र मयन से निकरने १४ रत्ना म स एव । मया । य.पूव । जल । रागहारी शीपवि । दव । इद । सूर्य । शिव । पारा । धत्र हरि । उदद । माना । अत । मोमरय । मुक्ति ।

अयि = वि०, १३२ ।
[मव्य०] (स०) स्त्री वा यवायन, हे, भर, घरी ।
अयोध्या = अक्षराज करणालय एव प्रयोऽयाद्वार [स० पु०] (स०) मे वर्णित । हरिश्चंद्र, इक्ष्वाकु, राम की राजधानी । कुश द्वारा उद्धार । सरजू नदी के किनारे पजाबाद के निकट अवस्थित तीर्थ ।

अमृत राम = वा० १६० ।

[वि०] (स०) धमन का घर ।

अमृतसतान = वा०, १८ ।

[वि०] (स०) अमर पुत्र । भगवान क पुत्र ।

[अमृत ही जायगा विप भी = १० प्रवाद संगीत, पृष्ठ १७ । अजातशत्रु का चार पत्नियों का गीत । प्रयामा की शर्त क प्रति आसक्ति इतनी बढ ग० है कि मार ममार को भुना कर वह उसका नाम अपना है उनक रूप क रचने देखती है । उसकी चलना बोजन लगा है और पलनें देख चुकी ह । यदा तक वि शर्ते क राय का दिया हुआ विप ना उनक निय अमृत बन जाण्य यद मान बढी है ? और इन गान का यही भाव है ।]

अमोघ = वा० १६५ ।

[वि०] (स०) निष्पन्न न टनवाला । अमूर्त । लक्ष परपहुचने वाला । व्यय न जान वाला ।

अमोल = वा० ८१ १४८ १६८ । अ०, ७४ ।

[वि०] (हि०) अमूल्य ।

अम्लान = वा० ९८ । वा १२ २५ ४० १६८,

[वि०] (स०) ७४६ । जो कुम्हनाया या उदाम न हो । प्रसून । प्रसन्न ।

अयउ = वि०, ६५ ।

[त्रि०] (६० भा०) माए ।

अयश = वा० कु० ११६ ।

[स० पु०] (स०) अक्षरानि । वनामा ।

अयाचित = वा० कु० १०५ ।

[वि०] (स०) न मांगा हुआ । जा बिना मांग बिना ही ।

[अयोध्याद्वार—इदु कला १, किरण १०, वशात ६७ मे संवप्रथम प्रकाशित । चित्राधार म सबलित प्रथम सम्बरण म अयो ध्याद्वार शीपक से और दूसरे तथा तीसर मस्करण म अयाध्या का उद्धार शीपक से (चित्राधार) तृतीय मस्करण, पृष्ठ ५१ । ५७ छंदो में १० पृष्ठ की लकी रचना । प्रसादजी ने इस रचना मे कालिदास का अनुसरण किया है और समुच्चय क १६वें संग का आधार बनाया है क्योंकि वाल्मीकि रामायण मे राजा अशुभ द्वारा अयाध्या के प्रसने की बात है और उत्तर बाड के विषय मे एसा भी मा यता है कि यह याद का है । एमी सिधात में सभय है कि कालिदास के समय तक यह गीत प्रचलित न हो । इसलिय प्रसादजा न कालिदास का आधार बनाया अथिब उचित समझा और कविता क पूव इस मवय म टिप्पणा भी की है । महाराज रामचंद्र के पुत्र कुशावती नश कुश का अयाध्या की राजवलमी न स्वप्न मे उनक पुवजा हरिश्चंद्र, इक्ष्वाकु और राम की नगरी अयाध्या का नागवशी कुमुदा द्वारा ह्मनगत करने की बात बता उनक उद्धार क लिय उपरित किया और महाराज कुा न प्रसात हान ही अयाध्या का उद्धार किया और नाए राज ने अघना कया भा उह अघिन कर दी । प्रथमचव की नयमता एक कपदा का माधुन वननाया का इन रचना म है । मस्तन क अतर धरने का भा प्रयाग इयम है ।]

अरघ = चि०, ४५।
 [म० पु०] सोनह प्रकार के उपचारा में से एक।
 (म० अघ) दवता के मामने फून, अन्न, जल गिराने का काय। महापुरुष के आग मन पर हाथ धुनाने के लिय दिया जानवाला जल। पूजा के लिय जल। मुल धान के लिय जल। अतिथि क मकार क लिय जल।

अरण्य = क०, १६।

[म० पु०] (म०) वन। जगल।

अरसोहे = चि०, ३।

[वि०] (हि०) आलस्यभूग। आलस्य भरा।

अरराय = का०, १६८।

[वि० वि०] (हि०) अरर शब्द करके विदीर्ण होने हुए।

अरविद् = का० कु०, २६, ६७, ८३, ११२।

[सं० पु०] (म०) २, २१ २२, १४५। क०, परिचय।
 प्र०, १०।

कमल। पत्र। सारस। तीर्था।

अरबिंदविकाससहित = चि०, १४५।

[वि०] कमल क विकास के साथ।

अरसी = चि०, २२।

[वि०] (हि०) तीसी।

अराएँ = का० २६४।

[सं० स्त्री०] (सं० अरा) पृथिवी क मध्य चारो पार लगे लकटियाँ।

अराति = का०, कु० ११२।

[सं० पु०] (म०) शत्रु। दुश्मन।

अराम = चि०, २५, १४५।

[सं० पु०] (सं०) उद्यान, बाग।

अरामहिं = चि०, १५८।

[सं० पु०] (त्र० भा०) उद्यान बाग।

अराल = का, १६८।

[वि०, म० पु०] (सं०) टंग। कुटिल। मस्त हाथी। राल।

अरावली = ल०, ५७।

[सं० पु०] राजस्थान का प्रसिद्ध पर्वत शृंखला जा तीन सी मौल तक फैली है।

अरि = क०, १५। चि०, २०, ५३, ६६, ६७, १०३, ११२।

[सं० पु०] (सं०) शत्रु दुश्मन।

अग्निगन = चि० ५०।

[सं० पु०] (२० भा०) शत्रुया का ममूर। दुश्मन का दन।

अग्निर्ष = चि०, ६७।

[म० पु०] (सं०) शत्रु का घमड।

अग्निमन = का० कु०, ११०।

[वि०] (सं०) शत्रु का दमन करनेवाला। शत्रु का नाश करनेवाला।

अरिशिर = चि० ६७।

[म० पु०] (सं०) शत्रु का सर बरी का कपाल।

अरी = का० कु० १०६। का ५, ६, ७,

[अ०] ३६ ८४, १२७, १७७, १८४। ल०

(हि०) ११ १०, ५१।

विस्मयवोधक।

[सं० पु०] (सं० अरि) शत्रु।

[अरी वरुणा को शात बद्धार—'जागरण', वष

१, राड १ माघ १६८८ वसंतपंचमी,

११ फरवरा १६३० में मुद्रित,

सारनाथ में मूलगणकुटी विहार के

उत्सव के भवसर पर नातिक म०

१६८८ का पठिन और लहर में पृष्ठ

१२ १३ पर मकलित। मूलगणकुटी

विहार अंतरराष्ट्रीय बौद्ध तीर्थ सारनाथ

का आकषण है। मूलगणकुटी विहार

की स्थापना के भवसर पर यहा एक

अंतराष्ट्रीय समलन हुआ था उमा पर

इन स्थान की बारेमा का वाच कराने-

वाला यह मान जिनमे बुद्ध की गरिमा

का भी आस्थान है और उन खंडहर

में विश्व मानव के जयघोष की शता-

ब्दिमा बाद इन नई प्रतिध्वनि का

विश्ववाणी के रूप में प्रवर्तित करने-

वाला विहार वन यह मंगलकामना भी

है। द०—लहर।]

अरुची = चि०, १, ५७।

[वि०] (त्र० भा०) अनिच्छा। घृणा। नकरत।

अरुण = का०, ६७। क०, १०। का० कु०,

[सं० पु०] १०, ३६, ११८। का०, ६, ४६, ४७,

(सं०) ८३, ८६, १३५, १४६ १६७, १७५,

१७६, २२१, २६१, २८४। वि०, १८, २१, २८, १५, ६३, १७०। भ० पश्चिम, २१, २२, २५, ६६। प्रे०, १०। ल०, १०, १५, ४१, ५६, ६०। लाल। मूय। मूय का सारथी। गहड़। मध्या की लालिमा। एव दानव। प्रातःकाल की लाली। कुकुम। मिट्टर। मजिष्ठा। पुत्राग वृद्ध। लाल कपल। गाल मणि।

अरे = क०, १०, २७, २८। का०, ७, २५, ११४, १२७, १२३, १६२ १७७, १७८, २११, २१२ २२६, २५७। वि०, १५२, भ०, ८३ का० कु०, ८८, १२२। म०, ६। ल०, ५, ५७। मबोधन। ह। ऐ। अयि।

[अरे आ गद्दे है भली सी—द०—नहर, पृष्ठ ४०। सतत पतम्भमय जावन में भूलकर वमत घाने पर कवि कहता है कि मरा नपु प्राची में ठपा जवानुमुम के पुप भी खिलगी। जीवन क काष्ठखड से सुचे तिनके हटेंग और किमलय का यह लघु मसार किमी को खेलेगा भा नहीं। इसलिय कवि इस एकात नव सृजन के सवध में कहता है—इस एकात सृजन में बोई बुद्ध बाभा मत डाला। जा कुछ अपने मुदर से है दे देने दो इतको।]

[अरे कहीं रेखा है तुमने—द० लहर, पृष्ठ ३८। लहर का यह गीत रहस्यात्मक सत्य की ओर संकेत करता है। वह ओरों में घाबर घाँस बनकर डरता है। मुँह हृदयाकाश में घाग जताकर उम गलाता है और उससे जावनरूपी सध्या का नहलाकर रिक्त मानस रूपी सागर का भरता है। रजना के लघु से लघु रूप म ससार ऊया के बन मे तथा उसपर पढ़नेवाले सधन तुपाएपात म भी वह धिया रहता है पर वह जीव से डरता है और धत म कवि कहता है—

विष्टुर छला पर जा भ्रमन रहा दरता मुख क सपने भाज लया है क्या वह कपन देग भी मरनवात को।]

अर्चना = का० ६१। भ० ३६, ३७। [म० मी०] (म०) पूजा। अर्द्धा की भावना। स्वागत मन्वार करना।

[अर्चना—नर्वप्रथम 'इदु', कथा ६, परवरी १६१५ म

अरुण कपोल = ल०, ११। [म० पु०] (म०) लान गाल। रनाभ कपोल। अरुण किग्ण = वि० २१। [म० मी०] (म०) लाल किरण। रक्त किरण।

अरुण यह मधुमय देश हमारा—पसाद मगीत में पृष्ठ १०६ पर सवतित चद्रगुप्त नाटक का एक गीत जो श्रीस कुमारी कान्ति-लिया के भारतीय आकषण की प्रति व्यक्ति का प्रतीक है। यहाँ की मस्तिष्क प्रकृति और जीवन का सौंदर्य और मगनसौख्य इसत प्रकट होता है। द०—प्रसाद मगीत।

अरुण योवन = भ० ६७। [म० पु०] (म०) लाल जवानी। नई जवानी।

अरुणसिद्धविभूषित = वि० २८। [वि०] (हि०) लाल सिद्धर से मुमजित।

अरुणाचल = का०, २२२। ल०, २४। [म० पु०] (म०) रक्ताचल। लाल अचर।

अरुणाश्रित = वि०, २८। [वि०] (म०) अरुण का आश्रित। लालिमायुक्त।

अरुणिमा = वि०, १६८। ल०, १०, ६०, ७६। [म० मी०] (म०) ललाई। लालिमा। मरुणता।

अरुणे = मी० ६१। अरुण का मवापन।

अरुणोदय = का०, ३१, ७७। भ०, ३८। प्रे० [म० पु०] १८ २६। (म०) प्रातःकाल। सुमोदय।

अरुनारे = वि०, १७२। [वि०] (म० भा०) माल। रक्तम।

प्रकाशित घोर भ्रमना पृष्ठ ३६, पर
मकलित। प्रियतम का हृदयभवन म
लोट चले आने के लिये पचम स्वर
म कवि ने अर्चना की है। यद्यपि वह
प्रियतम का नृत नहीं कर सका है
इसलिये मत्र कुछ ममभान बुभान के
उपरान्त कवि बहता है कि इतने निश्चय
न बनो, अश्रुमयित का अभिप्रेत भी
तुम्हें नृत न कर सका फिर निराश मन
म जब कभी हमारा ध्यान आयेगा
ता तुम्हें दया आवेगी। फिर भी
अगर तुम धुष हीं ता भलोभाति
सोच लो फिर जैसा मन आवे वैसा
बरो। कविता अनुकूल है।]

अर्चियाँ = का० ३२।

[म० ली०] (स० अर्चि) किरणें।

अर्जुन = का० कु० ११५। चि०, ६१।

[म० पु०] (स०) पाहुं घोर कुना के पुन। युधिष्ठिर
क एक भाई का नाम। पाँच पादव—
युधिष्ठिर भीम अर्जुन नकुल और
महर्देव म मे तृतीय अनय योद्धा
एव धनुर्धर। महाभारत म कृष्ण
स्वय इन्के सारथा बन थे। अश्वमेध
यज्ञ म अश्व का रक्षा करत अर्जुन
मगिकूट (मगिपुर) गए। वहाँ पुन
बभ्रुवाहन द्वारा क्षत्रियावित ममान
न प्राप्त हान पर अर्जुन न उनकी
भयना की। अपनी मा उरुषा के
प्रात्याहन पर बभ्रुवाहन न अर्जुन म
युद्ध किया जिसम अर्जुन मूर्च्छित
हूए। बभ्रुवाहन की मा रणनेत्र म
आइ और पिता पुत्र की यह स्थिति
देख विनाप करने लगी। फिर जलुषी
का भस्तना की गई और मजावन मसि
म अर्जुन का जाणत किया गया।
२०—बभ्रुवाहन मज्जन।

अर्थ = का०, ८७, ११०, १४६। १० ३५।

[म० पु०] (म०) शत्रु का अभिप्राय मानी। प्रयाजन।

हनु। वाम। चार पुण्यायों म एक।
स्वाय। मूय। फन। परिणाम।

अर्द्ध = १०, ७५।

[म० पु०] (म०) आधा।

अर्ध = का० ३३। ऋ०, २४।

[म० पु०] (म०) आधा।

अर्धक्षेम = ऋ० ३८।

[म० पु०] (म०) आशिक वस्याण।

अर्धांगिनी = का० २८१।

[म० ली०] (स०) धर्मपत्नी। विवाहिता स्त्री।

अर्पण = का०, १०५। ऋ०, ममपण।

[स० पु०] (स०) देना। सत्त्व त्याग। एकदम द देना।

अर्पित = का०, २०, १२८।

[वि०] (स०) दिया हुआ। स्थापित। प्रदत्त।

अर्बुदगिरि = म० का० ७।

[स० पु०] (स०) आर्बु नामक पर्वत जा राजस्थान मे है।

अलक = का० १७६। चि०, ५० ६६ १७५।

[म० पु०] ऋ० ३१।

(म०) मस्तक के इधर उधर लटकनवाना
गान। घुघराल वाल। कु-फ।

अलनारसी = का० कु० १८ १८। ल० १८। का०

[म० ली०] २५२।

(म०) घुघराल वाला की पत्ति।

अलकजाल = का० २४२।

[म० पु०] घुघराल वाला का समूह। वेशपाण।

अलका = (म०) कुदर की नगरी।

[अलका की जिस निम्न निरहिणी—^{२०} प्रगाण

मगत। अजानशत्रु का एक छाया

वादी रमात्मक गीत। विरहक का

गीत। वह कम गान क मायम

म मल्लिका क प्रति अपने भावांगेन

को छाया प्रतीका के मायम से व्यक्त

कर रहा है क्योंकि अतीत की प्रणय

पिपासा उसकी स्मति म चपना सी

जग रही थी।]

अलकें = का०, २५। का०, १४२, १६८, २०१।

(श० भा०) अन्ध का बहवचन।

अलफाँ = फाँ०, ७७। का०, ३६ ६६ १०३
[स० पुं०] १२५, १५६, २८६। ल०, १०, १८,
(स०) ७८। अलक वा बटुवन।

अलकक = ल०, ६०।

[स० पुं०] (स०) अलता। आलता। महार।

अलर = ल०, २०।

[वि०] (हि०) अहथय। न दीखनवाला। भगवान।

अलग = श्री०, २०। का० कु०, १०६ ११६।
[वि०] (हि०) का०, ११७, १६३, १६५, २६१।
ल० ४०
पृथक्। यारा। भिन्न। जुग। लटस्य।
मुरक्षित।

अलग अलग = का० १८६।
[वि०] (हि०) भिन्न भिन्न।

अलगाया = का०, १३६।
[त्रि०] (हि०) अलगाना का भूतवाल। पृथक् हुआ।
अलग हुआ।

अलनेली = श्री० २४। चि० ५६।
[वि०] (हि०) मुदरी। अप्रक सौंदर्यमयी।

अलभ्य = ल०, ७०, ७३।
[वि०] (स०) प्राप्ति के अयोग्य। न मिलने योग्य।
दुर्लभ।

अलम् = ऋ०, ८१।
[अ०] (स०) बम। पयास। पथ। निष्फल।

अलम्बुपा = का०, २६३।
[स० स्त्री०] गाररमुडा। स्वर्ग का एक अप्सरा।
(स०) घुसन से राकने के लिय रतीची गई
रेखा। लज्जावती।

अलस = श्री०, ६७। का० १८ ३५ १२०
[वि०] (स०) १० १६६। ऋ० २४। ल० २५
३१, ४५ ६१।
आलस्ययुक्त। आलसी।

अलस कटाक्ष = प्र० १८।
[स० पुं०] आलस्ययुक्त कटाक्ष। मदभरे कटाक्ष।

अलसाई = श्री०, २७। का० २५, ६३, ६७,
[वि०] ८८, २३१।
(श० भा०) शिथिल। क्लान्त। आलसभरी।

अलाउद्दीन = ल०, ७७।
[स० पुं०] ए। सिन्धी सराट का नाम।

[अलाउद्दीन गिलगी—राज्यपाल १२८६-१३१६
ई०। मन् १२६६ ई० म अफन बाद
उलूग राँ और यजार उगरत गौ की
गुजरात विजय के लिय भजा। गुजर
नरश वरुदेव मिह बघेला भागवर
अपना पुत्री दवल दवी क साथ दवगिरि
में छिप गया। उनको राना यमना दवा
उनक हाथ नग गई और गिल्ली हरम
म भेजी गई। २०—प्रलय का छाया।]

अलान चक्र = का० २००।
[स० पुं०] किमी अलता हुई तक्का का घानान
(स०) मं घुमान से बना हुआ घेरा। वनेठी।

अलि = व० १६। चि०, १७१ १७५।
[स० पुं०, स्त्री०] कायल। भौरा। बौवा। बिच्छू।
(स०) कुत्ता। ससा सहला।

अलि अलना = श्री० १२।
[स० पुं०] गौरों क नमान काल वश।

अलिअयली = का० कु० ६७। चि० २।
[स० स्त्री०] अमरो की पत्ति। सतिया का पात।

अलिकुल = श्री० ३१।
[स० पुं०] (स०) अमरो का कुल।

अलिकुलमिपित = चि० १४४।
[वि] (श० भा०) अमरो क समूह द्वारा मर्दित।

अलिगन = का० कु० ३६।
[स० पुं०] (हि०) भार।

अलिन = चि० १६७।
[स० पुं०] (श० भा०) भौर। अलि का बहुवचन।

अलिपुज = का० कु० १४। चि० १५।
[स० पुं०] (स०) भवरो का मुड।

अलियों = श्री०, ३०। ऋ० १७।
[स० पुं०] (हि०) भौर।

अलिष्ट = प्र० १२।
[स० पुं०] (स०) अमरो का समूह।

अलसम = चि०, १५।
[वि०] (श० भा०) भौरों के समान।

अली = चि०, ६।

[म० स्त्री०] (हि०) सखी, सहनी। पत्ति। (पुं०) भौरा।

[अली ने क्यों भला अवहेला की—अज्ञानशत्रु का चार पत्तिया का एक त्रुषु गीत। प्रसाद मगत से पृ० ४४ पर सरलित। १० 'प्रसाद समीत'।]

अलीक = का०, २५१।

[वि०] (मं०) घस्य। झूठा। बमिर पर का।

अलीगण = का० कु०, १३।

[स० पु०] अमरा का समूह। भारा का दन।

अलीकिक = का० कु० ५६। चि०, ३६।

[वि०] अयुव। अत्रयमय। अभूतयव। अमा माय। अमाधारण।

अल्पना = चि०, १५६।

[स० स्त्री०] (मं०) सामी। आगन पूरने का कला।

अल्हड = ल०, २३।

[वि०] (हि०) अल्पवयस्क। कमसिन। अनुभवहान।

अप्रकाश = का०, १३, ४१, ४८। का०, १००

[मं० पु०] १७६, २३५, २५६। का०, २१, ३३, ४३।

(मं०) छुटा। विश्राम।

अप्रकाशगत = का० कु०, ६३।

[वि०] (सं०) अवकाश स सबद्ध। छुट्टी स सबद्ध।

अप्रगत = चि०, २५।

[वि०] (सं०) नात। जाना गया।

अप्रगहिते = का०, कु०, २७, ८४।

[अ० क्रि०] (हि०) नहाते। अच्छी प्रकार समझते।

अप्रगाहन = प्रे० १५।

[मं० पु०] (सं०) नहान। समझ। पठ।

अवगाहना = का० कु०, ८४।

[क्रि०] (हि०) नहाना। यहाना।

अवगुठन = का० ६५, ६८। का०, ६८।

[सं० पु०] (सं०) घूषट।

अप्रचय = चि०, ३०। प्रे०, ११।

[सं० पु०] (मं०) फूल प्रादि चुन कर झट्टा करना।

अवज्ञा = चि०, ७४, ६६।

[सं० स्त्री०] (सं०) अपमान। तिरस्कार। माना या नियम का उल्लंघन करना।

अप्रतार = का० कु०, ६४।

[सं० पु०] प्रादुर्भाव। अवतरण। उतरना। ज म लेना। शरीर धारण करना।

अवधराज = चि०, ५०, ५३, ५४।

[मं० पु०] राज्य, जहा बंध का अभाव हो। काणल देण। अयोधा। अयोधा का राजा।

[अप्रगण—३०] अयाप्यादार। अवधराज की शोभा देखकर अतना भी मुग्ध हो जानी थी। इत्यादि रघु दिलीप, आदि ने जिनका काति पताका फरारी और पालन किया वही नगरी नागकुन क अमान हो गई और उनकी विलासता वहा व्याप्त गई है। कुश तुम उमका उद्धार करा।]

अप्रधि = चि० ५६। ल० १५, २६।

[मं० स्त्री०] (मं०) सामा। हृद। बाल। मनोयोग। अपा दान। (अप्रचय) लव, पयत।

अप्रनत = का०, २३४, २३७।

[वि०] (सं०) गिरा हुआ। पतित। झुका हुआ।

अवनति = मं०, २।

[मं० स्त्री०] (सं०) पतन। गिरावट। नीचे झुनना।

अवनति करण = का०, २३६।

[मं० पु०] नीचे झुनाना। गिराना।

अवनि = चि०, ५३, १८६। ल०, १४।

[सं० स्त्री०] (सं०) भूमि। पृथिवी।

अप्रभृत = ल०, ६३।

[मं० पु०] मन के अत म किया जानेवाला स्नान। वह गेप कम जिसके करने का विधान मुख्य यज्ञ के समाप्त होने पर है।

अप्रचय = का०, ४, १४, १०४, २७७, २८७।

[सं० पु०] (मं०) भाग। अग। हिंसा।

अवराधि = चि०, २६।

[क्रि० प्र०] (ब्र० भा०) पूजकर।

अप्रद्ध = का०, १४५।

[वि०] (म०) गवा हुआ। गतिविहीन। गवा हुआ।
अपरेखो = चि०, २७।

[क्रि०] (प्र० भा०) दखा। चित्रित करने। मोचो। कल्पना
करो। अनुमान करो।

अचरैरयो = चि०, ७४।

[क्रि०]
(प्र० भा०) देखा। चित्रित किया। साचा। कल्पना
किया। अनुमान किया।

अप्रलव = क०, २८। का० ५६ १३५ १६८
[म० पु०] १७० २१३, २१८ २१६ २६।
(म०) म० १२। ल० ७४।
प्राथम्य। ठिकाना। आधार। महारा।

अप्रलन = का० २६ ६८, १२१ २३७।
[म० पु०] प्रे० १८।
(म०) महारा आश्रम यागार ठिकाना।

अप्रलवित = का० ४७।

[वि०] हि०) महारा निया हुआ। आश्रित। निभर।
अप्रली = चि० ६३ ७१ ७२, ६३ १४७
[म० भ्य०] (हि०) १७५। पक्ति। समूह।

अप्रलीन = चि० ६८।

[वि०] (म०) छिपा हुआ। नान धमा ह्या।

अप्रशिष्ट = का० ३२, १०३ १६७। म०।

[वि०] (स०) बचा हुआ। शेष पडा हुआ।

अप्रशोप = चि० १७०।

[म० पु०] (म०) काय न बचा हुआ। नेप।

अप्रश्य = म० १६।

[वि० म०] (म०) जन्म।

अप्रसर = क० ११। का० कु० ३३ ३४, ४८।
[म० पु०] का० २००। चि० १० १८ ६५।
(स०) समय। काल। अवकाश। मोक्षा।
पुरमन। मयाग।

अप्रसाद = का० ६, १८ ५५ ७० ८२ १२६
[म० पु०] २०६। क० ३५। ल० ५६। ७७।
(स०) नाग। क्षय। विपाय। तीनता। यका
यट। रज।

अप्रसाद धोर = का० १३६।

[पु० क्रि०] (हि०) दु ख या चिन्ता को दूर करव।

अप्रसात्मयो = का०, १०३।

[वि०] (हि०) दु खमयी। चिन्तामया।

अप्रसान = का० ५। म० ३४ ८८।

[म० पु०] (म०) ममाप्ति। अनिम स्थिति। अत समय।

अप्रस्था = का० २००। प्रे० ४, ६, ६।

[म० स्त्री०] (म०) दशा। स्थिति।

अप्रहेलना = ल० ७६।

[म० स्त्री०] (म०) अपमान। निरस्कार।

अप्रहेलि = चि० ५६ १४२ १४३।

[क्रि०] (प्र० भा०) निरस्कार करवे। अपमान करवे।

अप्रहेली = चि० ५६।

(वि०) (प्र० भा०) निरस्कार अपमान करनेवाला।

अप्राय = का०, १५७ २०८।

[म पु] (म०) निरतर। विना बाधा व। बराबर।

अप्राय = म० २२।

[वि]
(म०) न रोना जाने योग्य। निमुक्त। रोकने
स न माननेवाला।

अप्रिखल = का० कु० ८३। चि० १६।

[वि०]
(म०) ज्या का त्या। विना उलटपेर का।
पूण, पुरा।

अप्रिचल = प्रा० ६८। का० १६१ २२०।

[वि०] चि० ३३।

(म०) स्थिर। अटल। अचल।

अप्रिजात = का०, २६६।

[वि०] (म०) न जाना हुआ। न समझा हुआ।

अप्रिनाशी = का० कु० ६०, ८१।

[वि०]
(स०) जा कमान न हो। निर्या। मर्णा
एकरम रहनेवाला। अन्नर।

अप्रिनीत = का० १८६।

[वि०] अविनया उद्ग उच्छ गन।

अविरल = का कु० १३। का०, ८१ १७०।

[म० पु०] विराम वा अभाव। निरतर लगातार।

अविरल = का० कु०, १३, ५३। का०, २३४,

[वि०] २४०, २४५ २६४ २७३, २७८ ।
 (म०) चि०, ५५ । ऋ०, २६, ७० ।
 मिना इमा । अभिग । घना ।

अभिज्ञ = का० १ ५ ।

[वि०] (स०) अनुज्ञ न । जा प्रतिज्ञ न हा ।

अभिज्ञास = ऋ० ८० ।

[सं० पु०] (स०) विश्वास का अभाव ।

अभ्यस्त = का०, ७२, ८० । चि०, ७२ ।

[सं० पु०] (म०) विष्णु । कामदेव । शिव ।

[वि०] जा स्पष्ट न हा । जा प्रत्यक्ष न हा ।

अभ्यस्थित = (स०) जा व्यवस्थित न हा ।

[अभ्यस्थित—माधुरी, वप २ २५१ १ मर्या ५,
 मन् १८२० २४ में सदप्रथम प्रकाशित
 और भरना' म पृष्ठ १७ पर म
 नित कविता । मानम को जबजब कवि
 शात करने का यत्न करता है ता मी
 हलचन विश्व क नारव निजन में हाती
 है कि कवि भ्रात होकर विश्व के
 मुमुक्षित कानन में भटकने लगता
 है । और विश्वपति के प्रांगन मे
 विचरना बढ़ती जाती है जब वह
 बलरिया से दान लेने लगता है और
 कवि कहता है—

जग करता हूँ कवि प्रार्थना,
 कर मकलित विचार,
 नभी कामना के नूपुर की ।
 हा जाती भनकार,
 और उह मन चमत्कृत हो जाता है ।]

अशानीरी = का० २६४ ।

[वि०] (म०) आकार या शरीररहित । निराकार ।
 आट्टतिविहीन ।

अशात = का०, ८५ ६२, ६३, १४४ १५८,

[वि०] (स०) १६०, १६१, १६७, २४०, २४१ ।

जो शात न हा । बचल ।

अशुद्ध = का० १६६ ।

[वि०] (स०) अपवित्र । जो शुद्ध न हा । जा गदा हा ।

अशोष = का०, १४ ।

[सं० पु०] (स०) पूरा । समूचा । गेप रहित । अतहीन ।
 अत । अघात ।

अशोक = चि०, ५७, १४० १५४, १५५ ।

[सं० पु०]

(स०)

जागरहित । एक वृक्ष जिसकी पत्तिया
 आम की पत्तिया के समान लंबी
 तथा लट्कार हानी हैं । पारा ।
 एन भारतीय प्रसिद्ध सम्राट का
 नाम जिमन समस्त एशिया म बौद्ध
 धम का प्रचार किया । राज्यकाल
 २७६ इ० पूव से २३६ ई० पूर्व ।
 शासनमूर्ध ग्रहण करने क नगभग दम
 क्य बाद रनिग का मुद्र । इस मुद्र के
 भयकर हिना के परिणाम न उस
 बौद्ध धर्म का अनुगामी बना दिया ।
 वह धमज्ञान और लारजमी महान्
 सम्राट क रूप म विश्व क इतिहास मे
 प्रसिद्ध है ।

[अशोक की चिता—०—लहर पृष्ठ ४६ । निवाग
 छद म 'अशोक की चिता' कालिगविजय
 मे उत्पन्न पीडा को आधार बनाकर
 लिखा गई है । इसम विजय पराजय
 के दुःख की भरवना का गद है, तथा
 मानव म मानव क प्रति स्नेह की
 याचना की गई है । जग का वैभव
 की मधुशाना मे पागल बंताकर उठने
 और गिरनेवाला कहा गया है तथा
 इस क्षणिक रागरग के रूप म
 मायता दी गई है । इस रचना द्वारा
 धुनती वसुधा और तपन जग पर स्नेह
 का कल्या बरनाड गइ है और मरुति
 की मंगलकामना का गइ है ।]

अश्रात = का० कु०, ११६ । का०, ४७, ८१,

[वि०] (स०)

६१ । ऋ०, २८, ५६, ७१, ७२ ।

ल०, २१ ।

अम रहित । न वका मादा ।

अशु

[सं० पु०]

= का० कु०, ४५ ४६, ६८ । का०,

१७७ । चि०, ५६, ७३ । प्र०, २० ।

अश्रुक्षण

(म०) नेत्र, जल, घौमू। घौल वा निरनन वाला जल। वायव के नव मात्विब प्रनुभावा म एए प्रनुभावा।

अश्रुक्षण = वा० कु०, २१। म० ४०।
[म० लो०] (म०) घौमू की दू०।

अश्रुजल = वा० १०६। प्र० २२।
[म० पु०] (म०) घौमू का जल। अश्रुगारि। घौमू।

अश्रुभरे = वि० ११०।
(वि० हि०) घौमू भर।

अश्रुमय [वि] (म०) वा० १३।
अश्रुमया [वि०] (म०) घौमू म भरा हुआ।

अश्रुगारि [म० पु०] (म०) घौमू का पाना। घामू।
अश्रुसर [म० पु०] (म०) घामू का ताजाव।

अश्रव [म० पु०] (म०) वा० कु० ४४ उ० ११५। वि० २ ६४। म०।
(म०) घाहा। सुरग। वाजि।

अश्रमी [म० ली०] (म०) = म० ७२, ८१। प्र० ११।
(म०) घाठनी। घाठनी तिथि। टूला का ज मन्नि।

अश्रमूर्ति = [म० पु०] (म०) शिव।
[इडु बला २, निरला ३] घाम्बिन ६७ में मवप्रया प्रवागित क्विता।

चित्राधार में 'वराग' के मतगत मक लिता। (उताय मस्करण, गूळ १४१)।
६ छोटे में परमात्मा व स्वरूप वा स्थिति कवि ने ब्रजमाया म बताइ है।
घाठ घदा में उनकी मद्दिमा है घोर नवें में उपसहार इस प्रकार है —
बभुवरा शयु, धनजयादि में।
विहायसी, पति, दिनेग भादि में।
शशाक श्री सज्जन में मुभावती।
प्रभो तिहारी, मुखमा प्रभावती।

असरय [वि०] = वा० १६ २५२ २६१। वि० १४०। म०, ६८। ल०, ११।

(म०)

असतोप = म०, ४१।

[म० पु०] (म०) मताप का प्रभाव। मथय। घनूमि।

असयत = वि० १।

[वि] (म०) मयम रहित। उड्ड।

अस्र = वि० २२ ३३ १०७।

[म० वि] (प्र० भा०) म्मा। घट। इन प्रकार का।

अस्रत् = वा० २५१।

[वि०] (म०) घमल। मिथ्या। सत्य रहित।

असत्य = वा०, १५।

[वि०] (स०) मिथ्या। भूठ।

असफल = वा०, ७, ५३ १२३ १८६।

[वि] (म०) न० ८०।

असफलता = वा० १०३।

[वि०] (म०) सफाता वा प्रभाव।

असफलताओं = वा०, ३७ ६५, १२१, १४८।

[म० आ०] (हि०) प्रतिद्वियो, नावाप्रयाविवा।

असभ्य = वि० ८४।

[वि०] (म०) अशिष्ट। गवार। उज्ज्व।

असमय = वा० ७६। कुममय।

[म० पु] (उ) घुरे समय।

असल = प्र० ६। म०, २२।

[वि०] (हि०) मन्वा। दरा। अष्ट। शुद्ध। उज्व।

मन्वारहि। घना। घगणित।
घगणय।

मन्वारहि। घना। घगणित।

मन्वारहि। घना। घगणित।

मन्वारहि। घना। घगणित।

मन्वारहि। घना। घगणित।

मन्वारहि। घना। घगणित।

मन्वारहि। घना। घगणित।

मन्वारहि। घना। घगणित।

मन्वारहि। घना। घगणित।

मन्वारहि। घना। घगणित।

मन्वारहि। घना। घगणित।

मन्वारहि। घना। घगणित।

मन्वारहि। घना। घगणित।

मन्वारहि। घना। घगणित।

मन्वारहि। घना। घगणित।

मन्वारहि। घना। घगणित।

मन्वारहि। घना। घगणित।

मन्वारहि। घना। घगणित।

मन्वारहि। घना। घगणित।

मन्वारहि। घना। घगणित।

मन्वारहि। घना। घगणित।

मन्वारहि। घना। घगणित।

मन्वारहि। घना। घगणित।

मन्वारहि। घना। घगणित।

मन्वारहि। घना। घगणित।

मन्वारहि। घना। घगणित।

मन्वारहि। घना। घगणित।

मन्वारहि। घना। घगणित।

मन्वारहि। घना। घगणित।

मन्वारहि। घना। घगणित।

मन्वारहि। घना। घगणित।

मन्वारहि। घना। घगणित।

मन्वारहि। घना। घगणित।

मन्वारहि। घना। घगणित।

मन्वारहि। घना। घगणित।

मन्वारहि। घना। घगणित।

मन्वारहि। घना। घगणित।

मन्वारहि। घना। घगणित।

मन्वारहि। घना। घगणित।

असवारी = चि०, ७२ ।

[सं० स्त्री०] वह चीज जिमपर सवार हा । पालकी, नालकी ।

असहाय = का० २५, २८ । का०, ४०, ४८, ५६, ८२, ११६ ।

सहारा रहित । निरवलव । प्रनाथ ।

असीम = श्री०, ७, ३४ ४८ । का० कु० २ । का०, २६ १६५, १५७, १५४ १८८, १८८, २०६, २४५, २६० । चि०, ५६, १३८ । का०, २२ ।

मीमा रहित । अनत । अवधिरहित ।

असीस = चि०, १५२ ।

[स० पुं०] (न०भा०) आशीर्वाद, दुआ ।

असुर = का० ५६, १११, ११४, २०१ ।

[सं० पुं०] (सं०) दत्य, दानव । राज्ञम । देवा व शत्रु ।

असुरों = का०, १६१ ।

[सं० पुं०] (सं०) राज्ञमा ।

अस्त = का०, ८४ ८८, २६१ । चि०, १०१ । [चि०] (सं०) ऋ०, ८५ । ल० ४४ ।

हूना हूमा । समाप्त । मृत । खम । गुप्त । लुप्त । छिपा हुआ ।

अस्तधाम = चि०, ६६ ।

[चि०] (सं०) अस्ताचल । यमधाम । मृत्यु का घर ।

अस्त व्यस्त = चि०, १४ । ऋ०, २२, २४, ५४ । [चि०] (सं०) अव्यवस्थित, बिखरा हुआ । परशान । चिंतित ।

अस्ताचल = श्री० ५६ । प्रे०, ५ ।

[सं० पुं०] पश्चिमाचल पर्वत जिमव पीछे मूय अस्त होना है ।

[अस्ताचल] पर युवती सध्या—^०—प्रगाद सगत पृष्ठ १२२ । ध्रुव स्वामिनी का गीत । शंकराज कं दुग म नवकिया द्वारा गाया जानवाला एक मात्क गात जिमका सार निम्नांकित चार पक्तिया म इस प्रकार है—

भर उठी प्यालियां मुमनों ने सौरभ मकर मिलाया है ।
कामिनिया न अनुसरा नर अघरा ग उठ लगाती है ।
कमुधा मदमाती हूइ उपर आवाण लगा दया भुवन ।
मव भूम रह अघने मुम म मुमने क्या बाधा डाली है ।]

अस्ति नारित का० २७० ।

[क्रि० चि०] (सं०) सत्ता या अभाव ।

अस्तित्व = का० कु०, ७८ । का० २६, ३३, [सं० पुं०] ७२, १४०, १४१, १५७ । प्रे० १० । (सं०) लहर, ७८ ।

सत्ता का भाव । विद्यमानता मौजूदगी ।

अस्तु = का०, ३०, ३१ । चि०, ६४ ।

[चि० चि०] (सं०) जा हा । अच्छा । भरा ।

अस्र = का०, १४६, २०० । ऋ०, ८८ ।

[सं० पुं०] ल०, ६५ ।

(सं०) पेंचकर चलाया जानवाला हथियार । वह हथियार जिसक द्वारा बार्द वस्तु पेंची जाय, जस बद्ध, ताप ।

अस्थि = का०, ११६ । ल०, ५७ ।

[सं० स्त्री०] (सं०) हड्डी ।

अस्थिर = का० ३३, २८१ । ल० ४६ ।

[चि०] (सं०) जा स्थिर न हा । चञ्चल । अवाडोल ।

अस्पष्ट = का०, ६४ १७५ ।

[चि०] (सं०) जा स्पष्ट न हा । जा प्रकट न हो ।

अस्पृष्ट = का०, १०५ । चि०, १६६ ।

[चि०] (सं०) बिरल । अत्यक्त । जो गाफ न हा । गून् । जटिल, दु सट ।

अहकार = का०, कु० ८१ ।

[सं० पुं०] (सं०) घमड, अभिमान, गहर ।

अहता = का०, १६१, १६५ ।

[सं०] (सं०) अह का भाव ।

अहा, अहा ! = का०, कु०, १०३ । का०, ८ । का० कु०, १५, ५३, १०८ । ऋ०, १८ । प्रे० २ ।

आश्चय मुचक उद्गार ।

अहेर = का०, ११० । चि०, ६ ।

[सं० पुं०] (सं०) शिकार । मृगया ।

अहेरी = का०, १४२ ।

[सं० पुं०] (सं०) शिकारी । आषटक ।

अहो

३०

अहो = वि०, १५, २६, १७, ७२, ७३, ६१
[मि०] १०३, १४०।
(२० भा०) हैं।

अहो = व० १६, १७ २८। वा० कु० २०
[म०] (म०) २८ ३६ ४४ ६१, ७५, ८३। वि०,
११ ७२ ७३ १५०, १५६ १५७,
१७२, १८३ १८४। म० ४३।
म०, ४ ६। म० १६ १७।

एक अथवा जिनका प्रयोग कभी सवा
भन के समान और कभी मरणा भन,
प्रगसा ह्य और विन्मय प्रवट करने
के लिये किया जाता है। हाय। भर।
वाह वाह। शाबास।

[अहो नित प्रेम करत दिन गयो—इडु बला ४
किरल ६ जून सन् १९१३ म सवप्रथम
प्रेमापालन गोपक से प्रकाशित।
मकरद विदु शार्पक से चित्राधार में
पृष्ठ १८४ पर मन्वित।] *—मकरद
विदु प्रमापानन और चित्राधार।]
त० ७८।

अहोभाग्य = भाग्यशाली लुगकिस्मत।
[वि] (हि०)

अहो = वि० ५०।
[क्रि०] व० भा०) हैं।

अहो = वि० ३१ १४१ १७१ १८६।
[क्रि०] हैं।

आ = क०, २६। वा० २५७।
[क्रि०] (हि०) आया।

आर्य = आ० २० ३० ३६ ४६। क०
[म० स्त्री] १०। वा० कु० ६० १०७। वा०
(हि०) ५१ ६६ ७८ ८५, ८६ ८८ २१८,
२६१। म० १६ ३०। त०, ३२
६३।
नत्र। चत्त।

[आर्य वबाकर न फिरकरा कर दो—बाजू
की बेला गोपक से माधुरी वय २,

अर्धोत्थ

गड २, मन् १६२४, म० ५ मे
प्रजापिता तथा भरना पृष्ठ २२ पर
मन्वित। * बाजू का बन्ना, घो
भरना।]

आर्यमित्रीनी (कीडा) = म०, १७।
[म० पु०] (हि०)

उठना का गग मन जिनम एक उठता
तिनी दूर तन्ने ती धौल तद कर
दना है और बाका उठा दूर उबर
पियन है। धौल पूद उठन का उठ
दूद कर छूता पटा है।

= वि०, ६२।

धौल का उठवचन।

= म०, ५७, ६५। वा०, १७ ३५ ६३,
६७, २१५, २२१, २६४। वि०, ५६।
म०, २३, ४०। म०, ६।
धौल का बहुवचन।

आर्यो (हि०)

आर्यो (हि०)

= म० ५३ ५८ ६८। वा० कु०,
= ७७। वा०, ६४ ६५ ६६ ८८,
६७ १०१, १०४, १२२ १४२ १५१
१८४, २१६। म०, २१, ३६, ४४,
४६, ४७ ४८ ६१। त० १६ २०
२२ २३ २७ ३७ ३८ ५२।
धौल का बहुवचन।

[आर्या से अरलप जगाने को—लहर पृष्ठ ३० पर
मन्वित वारह पक्ति की कविता। इनका
भाव है कि आज धातो से अरलप
जगाने के लिये भरवी धाई है। उमवी
धातो मे ज्या नी भ्रगाय (बितनी ?)
ललिमा भरा हुई है। मनय पवन
दिगत से कहता है कि रात मधुवन
मे धूम धाई है और यह प्रावी वा
लाजभरा बितवन है और धानस्पुग
रजनी का अगडाइ है और—इहो मे
यह काडा बवल सागर का उदलित
अवन। है पांडू रहा आर्यो छन छन,
किमन यह चोट नगाई है। यह
रहस्यमयी गीत है जिनम भरवी

का स्वर ही नहीं स्पष्टिद भी सुवर (हि०)
हूया है।

आँगन = घां, १६ ५१ ५१। का०, २६२।
[म० पु०] (हि०) = ऋ० २८। प्र० १२।

घर व अदर वा महन। अजिर।
चोक। अगना।

आँच = वा० कु० ५१। ऋ, ३४।
[म० ला०] (हि०) बि०, २४।

धमक। अग्नि की जपट। गमा।
जगना।

आतंरिक = वा० कु० १५, १६ २६ ५५, १२३
[नि] (स०) १२५। बि, १८ २००। प्र० २४।
मीनरा। अदर का।

आइोलन = वा०, १६८, १८६।
[म० पु०] (स०) हनचन। घूम। उयन पुयन।

आदोलिन = ल०, ६२।
[वि०] (स०) हनचन भरा। भाका खाना हुआ।

आँवी = वा०, २२३ २२८। बि०, १६। ऋ०,
[स० स्त्री०] (हि०) ५२, ८४। न०, १६, ७१, ७७।

बहुत रग का हया जिमम दवना घूत
उत्ता है कि चारा आर अभियात्रा
छा जाना है।

आँसुओं = (हि०) आँसू का बहुवचन।

[आँसुआँ के प्रति—वागी, वय २ अक १२,
जुलाई १६३३ म प्रकाशित। आँसू
के नृताय मस्वरण म समाहित कुछ
छा जा दूसर मस्वरण म नहीं हैं।
२०—आँसू।]

आँसुन = (प्र० मा०) आँसुआँ द्वारा।

[आँसुन अन्दात—इदु कला ५ किरण ५ मई
१६१४ म मकरन्दिदु शोधक म
प्रकाशित। चित्राधार मे उसी शीर्षक
के अतगत पृष्ठ १८० पर सक्तित।
८०—चित्राधार और मकरन्दिदु।]

आँसू = घां०, ११ १२, १३, ३२, ५३, ७८
[म० पु०] (हि०) ७६। का० कु०, २३, ३१। का०,

१०६, १६४, १७८। ऋ० २१ ३१,
४६। प्र० १/ १०, २४ ३०,
३० ३८, ४२ ४८।

आँव का पाता, अथु आँव का जन।

[आँसू प्रमाद को यह ग्मात्मक नाव्यवृत्ति है,
जिमकी आर मक्का 'आन सहज ही
आट्टा टा जाना है। 'आँसू' का प्रथम
मस्वरण विप्रमाय म० १८८० म
गाहिय मत्न, चिरगांर, भासी स
प्रकाशित हुआ आर उगवा द्वितीय
परिवर्द्धित मगायित मस्वरण आठ
वर्षा पश्चात् भारता भडार, नाट्य
प्रेम प्रयाग स निकता। प्रथम मस्वरण
म द्वितीय मस्वरण परिवर्द्धित है,
इमका नाव्यत्रम परिवर्द्धित है एव
इमम अन्त स्थाना पर नवीन पद्य है।
तीगर मस्वरण म जा प्रमादजी की
शुभु व उपरात हुआ कुञ्ज नवीन
मगायन है। 'आँसू' शृंगार का रचना
है। शृंगार व दा वन्त हैं, मिनन
श्रीग विद्याम। 'आँसू' का सवय वियोग
शृंगार स है।

प्रसादकाव्य जहाँ लाजमगन व लिय सचेष्ट है,
वही वह आत्मपरक भावा को व्यक्त
ररने के लिय कम मवदनशील नहीं।
व्यक्ति की आत्मपरक अनुभूति जीवन
म अभिक्त तीर हुआ करती है। अपन
पूर्ववर्ती काव्य म कवि अपन प्रम के
लिय विह्वल है। अनुनय, विनय, विवक
व्याख्या, उपालम, मभा कुञ्ज एक एक
कर ममाम हा गण हैं, पर प्रेम की
निन्दुरता उमके प्रति इतनी भयकर हा
गद है कि दुर्दिन का एकान बेला म
स्वय 'आँसू' छनक पडन हैं।

माच, मन् १६३२ म 'आँसू' के सशोधनवाले नवीन
अण पत्र पत्रिकाआम म प्रकाशित हुए।
वन्ना की भूमि निदिष्ट करने के लिय,
तथा एक समकित प्रभाव का सृष्टि के

जिसे प्रमाजी ने उगा बिगा हो
 नयोवि प्रसादजी दुराग्रह पर जमे
 रहनेवाणी अथ जडना मे पक्षपाती
 नहीं थे। व अपनी रचनाप्रा मे घरावर
 प्रिय गुधार करनेवाल जाव थ।

भ्रामू' त वतमान सस्वरण मे विरहजय पाडा लय
 तरलवदी विभिन्न भाग वा विभिन्न
 क्रमो मे वगन है। प्रारभ म कवि
 कफलाकनिन हृदय म विक्वा रासिनी
 वजने और असीम वेदना व हाहाकार
 स्वरो मे गरजने की बात का जिनासा
 भरी वागी स पूछना है। साथ ही वह
 अतीत की बाता की स्मृति प्रागमन,
 विनखाता हृद्द पगली मानम की प्रति
 ध्वनि के प्रत्यावतन तथा चेतना की
 तरंगा की नई हितार की और भी
 जिनासा भरी दृष्टि स दखता है।

जिनासा के पथचाव वतमान स्थिति के मूल म
 उपस्थित जीवन की अभिर्घति है।
 इस अभिव्यक्ति की उपनयि के रूप
 मे महाभिलन के नेप चिह्न, अथाव कवि
 का स्मृतिया की बस्ती उम हृदय म
 दाख पडती है और ऐसी प्रत्येक स्मृति
 अब इस उवागमयी जलन के लिय
 स्फुलिंग है। इन नवस्फुलिंगो से
 हृदय म शीतल ज्वाला जलती है।
 भ्रामू वहते हैं और भ्रामू विरह उवाला
 का प्रज्वलित करने मे इधन वा काम
 करते हैं। सारा सुप्त सपना हो जाता
 है। जीवन निरधक जान पडता है
 और कवि अनुभव करता है, मन
 बहलाने की वह प्रणयनीडा जो वभा
 मादक और मोहपयी थी, आज वही
 प्रेम की पीडा बनकर हृदय हिला
 दती है। दुधिन म रा रो कर सिसक
 कर भ्रामू से भा अधिन करण अपना
 कहानी कवि कहता है। अपने इम
 मिथ्या जग के विरमुदर और सरय
 प्रियतम के प्रथम मादक दशन की बात
 भा वह कृता है। उम ममय उनका

प्रियतम उगे गुग गुग से परिकित
 नगा था और उग ममय मधु वा रावा
 मुसबरा रही था। जावन की मूखी
 पुनबारी म कवि वा प्रियतम नवकुमुम
 निष्ठाकर निमन्त्र मा प्राया और
 उनकी मुश्रिबि श्रोता म समा गई।
 उगम वेगन रूप वा मग्न नहीं, कवि
 व मन वा भा मग्न था क्याकि उनकी
 कभनीपना कना की मुपमा कवि वा
 प्रति प्यारी नगी।

दगने पश राव कवि अपने प्रियतम के मुदर मुग,
 मादक नेत्र, अजनरखा क सौन्द्य,
 वरीनीन्पी कमान, लाली की मिर्मति
 रता, भी क बल, माती से दौत, वान,
 शरीर, मन, हृदय, अक्के, तथा तज्ज
 नित भावपण का मादक बरान
 करता है। फिर प्रणय के हावभावों
 एव व्यापारो का—डुबन, भ्रमरा वा
 मुरनी, परिभन श्रमसाकर, मिलनकुज
 म शिथिन चोदनी का शयन, प्रादि
 वगन करत करते कृता है कि प्रियतम
 मानम वा सब रस पीकर तुमने मुला
 प्याला जुका दो और बिकसे स्नेह
 सराज को मुप्रा दिया।

वह प्रकृति के विभिन्न चित्रा में हृदय का पीडा
 वा साक्षात्कार करता है और उनकी
 मिलन के समय के दृश्या स तुलना
 करता है। मादकता का नया उतर
 गया है और उस बनवभाभा की चचा
 बनि करता है जो उसके प्रियतम
 छोटकर बले गए। अब जब प्रियतम
 वा स्पशकर शीतल समीर धावा
 है तो कवि सिट्टर उठता है और पुन
 निराशा क भ्रामू वह जात है। उस
 प्रतीक्षा व्यथ लगती है और वह
 मान बठा है कि दुःख ही केवल मेरा
 एक मान सहारा है। वह लाचार हो
 जाता है पर उलाहना देना अब भी
 नह नहीं भूलता।

उसमे कोई शक्ति और सहारा तोप नहीं रह गया है। श्रीमू नद मे उसका हृदय मग्ग्यल डूब गया है, वह प्रत्यावर्तन की बात भी करता है। पर उम पथ मे पदचिह्न का भी तिरोधान हो चुका है। त्रेपुन का प्रेम श्रीमू का धार म कवि की नौका लिए बना जा रहा है, पर प्रियतम का कहां न कही पापे की बात को भी कवि तिलाजलि नहीं दे पाता। पुन अनुनय विनय व आभार पर कवि प्रेम की दाहाई देने लगता है। बार बार पढनेवाली चाट उम दाग निक बना दनी है और वह कह उठता है कि मानव जीवन का वेणी पर विरह मिलन का परिणय हो दुख मुप दाना उम अचमर पर नाचग वह विरह मिलन को आँसु और मन का खेन मानने लगता है।

फिर वह आश्रयान के छन की बात और प्रियतम के भागन की बात प्रियतम का मवनाम में पुकारकर कहता है और रटे हुए व मनावन की बात भा करता है। जबतक दुख मुप का मेल न हो तबतक समस्त सृष्टि मे वदना का प्रलय छा जाय, ऐसी वह कल्पना भी करता है वयाकि उमके लिये प्रियतम के बिना सारी सृष्टि सूनी है।

वह मोचता है कि मेरे दुख स दुवो होकर प्रियतम आग्नि विंतु प्रतीक्षा इम जिनामा की करग कहानी का अंत कर देना है।

वह इम अंत का विस्मृति की ममाधि पर यव डूप सुप के सोन की कामना करता है ताकि वह विपत्ति स मुक्त हो सके।

इसके बाद तद्जनित परवशता क ध्यान ज्ञान का आश्रयान करता है और उमे अपमान का भी बोध होता है, फिर भी वह स्वय को परिताप देना है और पुन अनुनय करता है कि नई वरमात होन दो और कसिया का खिल जान दो। प्रवृत्ति

के नियम की दुर्गद देता है अयाव विरह व बाद मिलन की कामना करता है।

यह मत्र तो हाता है, पर जब मारा समार शांत हो जाता है तब भी उसके प्रेम की ज्वाला नियति मत्र पर अरुणी जलनी रहती है। वह इम ज्वाला स निवदन करता है कि पाडा का मारा कनुप मिटाकर अनल वाला सा जनकर शांति दो। और कवि यह कामना कर उठता है कि हृय की यह जलनी ज्वाला निमम जगती का मगलप्रकाश द।

फिर वह प्रेम की अश्रयना पर उम जगान का प्रयन करता है। मानगमने के प्रतीक प्रेम स यौवन मधु के अनत मोत क प्रगाह का याचना करता है और यह भा कता है कि मरा वना मधुर हो जाय और उम सहृयना मिने।

आतागत्य उम विरह मे जान व्यतात हान जाने पर कष्ट हाता है, पीडा हाती है। उमकी कामना का मुपूर भवार श्रीमू की वरमा स दोना टा कूना का हरा करन व लिप उद्वलित हो उठता है। वह यह चाहने लगता है कि मुह डक कर पडी हुई मन का ममस्त पीडाए कागल क्रोडाग करती हुई मुमन सी हमने लगे। इम पाडाग्नी पाप को निमल पुण्य म बदलने के लिये ज म ज म के जावनसाधी म कवि पुन आग्रह याचना कर उठता ह।

वह अपनी पूरी कया को सवेनसूना म दोहराता है और पूजता है वया तुमने जाने म स्थित कुटेया म लजु स्नेहभरे दापन को रजना भर जलत दसा है और फिर उस एकात बुझते भी। इम विरहदशन के अंत म निबाड के रूप मे वह श्रीमू से विषय सदन म हि। वण के रूप म वरस कर याचना करता है तथा मगल प्रभात क पूवानास देने का।

मत्स्य म श्रीमू मे महा वखन बिया गया है। इन वखन मे निदिष्ट भूमि ता है पर किमी एन भावकथा का गठन नही, अपितु विह्वल मन का भागुल ग्वागुल विशृंगुल विरहस्पदन है। इग वाक्य की निदिष्ट भावभूमि प्रम वे प्रति व्यन विरह की पाडा है। यदि कथा म कोई गठन नही है तो मुक्तक रह जाने स ही श्मामू का महता कम नही टाना।

श्रीमू विरहकाव्य है। श्रीमू व माध ही एक प्रश्न यह उठा दिया जाता है कि इम विरह का श्रानवन क्या है। कवि का प्रेम किमी छी क प्रति है या बिसा पुण्य के प्रति। यह जका दृगनिय उठाई जाती है कि प्रगाज न कुद स्वाना पर श्रपन प्रमी का पुण्य के रूप म नवाधित किया है। इमका उतर प्रमाद जी न श्रीशृण्णद्व प्रसाद गोड का श्रीमू की उनकी प्रति म निम्नरूप स श्रजित बिया है

मा मरे प्रम वता द
तू नारा है कि पुण्य है ॥
दानो ही पूछ रह है
तू कीमल है कि पण्य है ॥
उनका बसे बतलाऊ।
तर रहस्य का बातें ॥
जा तुमको समझ चुके है
श्रपने बिलास की बातें ॥”

बहुल स लाग ‘श्रीमू’ के सब म यह श्रम भा उपन करते हैं कि यह रचना रहस्यवाद व श्रतगत भाएगी तथा वे इसमे श्मामा और परमात्मा क विरह निवदन का रूपक भी डूढ लन हैं। किंतु जो लाग ध्यान से श्रीमू तथा उसने पूव का प्रमाद काव्य पडेग व श्मामू का निश्चिन रूप म मानवाय बतलायेंग। श्मामू मे छायावादी पद्धति पर भाको का अभिव्यजना हुई है। उसम प्रमाभिव्यक्ति प्रशु त प्रतीको म लक्षणाप्रधान शला

द्वारा का गर्द है। हमने माध हा श्रीमू म श्रनार श्रौर गमामाक प महज गुरर ग स भाए है। ‘श्रीमू’ का छायावादी का अभिव्यजना शैली व मुक्तक काव्य व रूप म प्रतिष्ठित मानता श्राधिक उपादय हाणा श्रौर जचित भी।

इग गवध मे यह पाठव्य है कि श्रपन दश म नरगिख वगन का प्रथा माटिय म बडी प्राचीन है। जउ नरगिख वखन म पर व नापून म मिर का श्रार धीर बार श्रम प्रयग का वखन किया जाता है ता यह शीर्षाभिव्यक्ति दवा मानी जाती है। मानवीय शीदयवखन म मिर स पर की श्रार कवे उलता है। प्रमादजी नखशिल वगन म मिर स पर की श्रार टा चल है। इसलिये यह महज हा बटा जा सकता है कि भारताय काय परपरा के ममन प्रसाद का प्रियतम मानव है परमात्मा नही। श्रीमू विप्रश्न शृंगार का शीचनमय काव्य है। उमम भावा की चित्रमय ध्वनिमय एव रममय श्रजियति है। स्मृति के महार १६ छदा म प्रमिका क शीदय का वखन बिया गया है तथा ती छन म मिलन क मुला का। यह वखन प्रमिना के नाप्य का मदभरा श्रनूप स्वल्प रडा कर दता है। उदाहरण व रूप म, मुख का यह शीदय देख—

बाधा था विषु का बिसने,
दन काली जजीरो स,
मण्डिताले वण्डियो का मुख,
बयो भरा हुमा हीरो से।

केवल महा नहीं जिम भी श्रग का वखन कवि ने किया उसम सुम गभीर शीदयवखन है। उमन रूप की जिन मुदर दशामा का सवाक चित्र उपमिमत कर दिया है, वे मधुस्नात शीवन की प्रणाय व स्नैट मूव मे श्रातिगन करन के लिय भावा मत्रण देते हैं। बाजल का रक्षाभा से

लेकर शरीरसौन्दर्य की ममत्त सोदय-प्रभा के कण कण को जिनना मधुमय मौवनोचित रूप में कवि ने खड़ा कर दिया है, उतना मदभरा विश्व हिंसी के किसी एक मुक्तक में अत्यन्त मिलना दुर्लभ है। एक एक मादक हाव भाव का उमन जीवन दकर सवारा है। यद्यपि शृंगार मिनन के पव पर खुन कर घाया हू अथात् शृंगार व उत्तम रूप का निरूपण कवि ने किया है ता भी उम एसा बाराक वनामूचा स एसा मवारा है कि कवन भाव, चत्र क सोदय पर मन मुग्ध हो नाच उठता है।

जहाँ कवि ने व्यक्तिगत पीन्य में आत्रात हाकर श्राम् की मृष्टि की है, वही उमका परिहार हान पर वह अपने व्यक्ति स भी ऊनर उठा है। अपना कथा का ज्वाला स विरदग्ध दुखा वमुग्ध का वह श्रातल घानाक दन को बात भा करता है। यह तथ्य कवि क जागरित विवक का परिचायक है। वह पाटा म खा नहीं जाता है, हूवकर भा विवक व महार पीडितो के लिय मगल सृष्टि का रचना का भाव उद्याग करता है जिनकी पूणात्ति 'कामायनी' के रूप में आग चलकर होनी है।

यह तथ्य इस बात का साक्षी है कि प्रसादजा व्यक्तिपरक माघना की पृष्ठभूमि में भी लोकमगल का मगनभावना 'श्रीमू' में नहीं भूले हैं।

अब हम 'श्रीमू' के वस्तुवगान व मवध में विचार करेंगे, यद्यपि त्रियाग शृंगार क अतगत स्मृति के दाग अनागत मिनन-मूव का रूपकल्पना श्रीमू में की गई है और जीवन मधुमय का विकसित कवनवाल उपाप्तानो का सबन एकत्र किया गया है ता भी 'श्रीमू' मूलत त्रियाग का वर्णन है। वमत, ऊपा, सव्या, पराग,

त्रिमलय, कसौ सबका महारा लेकर प्रियतम का रूप रखा किया गया ह। इन रूपसृष्टि में माहमया, माहक माहकता है जो मुठवि मयन ह, एव घाला म वम जाती ह। जब सबन म रूपचित्र खड़ा करना पटना है ता कवि-यम अथत दुष्ट हू जाता है। उम दुष्टता में महजना लाने व त्रिये परिविन मकरद भन मनप्रताका का प्रयाग किया जाता है। और प्रमात्जी ने जिन रूप में वह नाव किया ह, वह काय पूर्ववर्ती कविया में कवन त्रिहारी' ही कर सके है। 'प्रमाद' ने इस रूप सृष्टि में अपनी विजिष्टता भी म्यापिन का है। उम त्रिशिष्टता व रूप में प्रवृत्ति में उहाने व्याख्याना का नाव लिया है और उमका भररूप उपयाग उपमान व लिय किया है। रूपचित्र का मजीव भूतिकरग जिनम मादकता को रूप-ज्वाला है प्रमाद का अपना विनोपता ह। उनाहरण क रूप मय पत्तिवा दो जा रही हैं—

बानी आवा म जिननो
 योन के मू का लानो
 मानिक मदिरा म भर दा
 जिनन नानम की प्याना।
 तिर रझे अतृप्त जलधि म,
 नीलम की नाव निरालो,
 बाना पानी बला मो
 ह अजन रखा वाली।

विरट की म्यिति का मूम निराज्ञाकर जिस रूप में उहोन उनका वगन किया है वह मूम निरीक्षण आधुनिक कविया क विरट-वगना में अयन नहीं दाखना। एस मूम वगन का कारण है, कवि का गभीर दृष्टिदगन। उदाहरण व रूप में य पत्तियाँ पयात हामा—
 जैन मरिता के तट पर
 जा जहाँ खडा रहता है,

विद्युत् का झानोत्तर तरल पथ
समुद्र देखा करता है ।

बकि ने परपरा से प्राप्त बणन की पाती की नई
कल्पनाओं तथा उद्भवानाओं से समृद्ध
बिया है । प्रणय के काय व्यापारा
एव वणनी मे ये वार्ते जगद् जगद् पर
छन्नकती मिलेंगा । इस नवानता के
प्रवाह मे परपरा हूवी नहीं अपितु
अभी भी अविक्रि निखर कर
उभर आई है । उदाहरण के रूप
मे रचनाए दवर व्यथ मे स्थान नही
भरना चाहता । सामा द्यत यह मत्र
आँसू मे सव्य दृष्टगावर होगा ।
उदाहरण के रूप मे काजल का वणन
या उम आँसूव प्रणय चक्र का वगन
निया जा सकता है ।

विग्र २७ शृंगार मे जिन तत्वा का वगन प्राचान
ममय मे साहित्य मे विद्या जाता रहा
ह उन सभी त ना का दगन आँसू मे
होगा । आत्मविभूत आत्मसमपण,
उनाहना राजकार प्रलय असीम
पाडा, मधुमृत अक्षर्य करण स्थिति
नाचारा आह विश्राम मिनन का
प्रमत्त, स्नेह नवल और अतोगत्वा
व्यक्ति का इम करण वेदना से उपनय
सजीव अनुभूति से ममस्त मस्तुति का
मगलवामना ।

वाद के घेर में वधा दृषा साहित्य सीमित तो
होना हा है जीवनविहीन भी
इमानिये आँसू किमा वाद की रचना
नहीं है । वह जीवन के सरल हृदय का
पुकार है । यह पुकार सृष्टि व गावत
त वी व ममान ही अतत ज वनमया
है । प्रमादजा दुखवादा नही मे
मानवादा य । जिन मानद स उनका
सव्य था, वह मानद सृष्टि व आरभ
स प्रलय व अतत ज वात ररनवाना
है जिनमे महर और सजन दाना व
क्रियात्मक मे मानम धम का रम है ।

प्रसादजी से यदि किसी बात का
सव्य जोडा जा सकता है तो वह
छायावाद का । छायावाद भाव प्रका
शन की प्रवृत्तिमयी प्रणाली है, बुद्धि
विवेक व जीवनदर्शन नही ।

आँसू प्रमाद के व्यक्तिक जीवनदर्शन के अतर पक्ष
का एर अघ्याय मात्र है । वह उनकी
ममय सृष्टि नही । इमानिय आँसू को
दुखवाद के अतगत केवल इतिनये
समेटना उचित नहीं हागा कि उसम
दुखय व कातरता का अत्यत व्याकुल
वर्णन है । आँसू मन की उत दशा का
वगन है जहाँ दुख का प्राया य हाता
है । इमानिय इमम करणा के अतिरिक्त
और क्या दीख पड सकता है ? किंकि
इम करणा म मगलसृष्टि की बात भा
हो गड है । अतगव दुखवाद और
आँसू को एक बता देना भूव है ।

कुछ लाग निम्नलिखित उदाहरण दत है और कहे
है कि आँसू मे प्रसादजा नियति
वादी है ।

अचती है नियति नटा सी
बहुक झोडा मी करता,
इस व्यथित विश्व प्रागन मे
अपना अमृत मन भरती ।' (आँसू) ।

प्रमादजी ने लिखा है कि मनुय प्रवृत्ति का अनुवर
तथा नियति का दाम होता है
(भजातयधु) ।

नियति जीवन मे प्राती है जीवन को नचाती है ।
इस चरम तथ्य काई भी नचेतन नही
मानता किंतु उमका मना की अम्वी
वार भा को समझार व्यति नही
कर सकता । प्रमादजी नियत व
माननेवान तो य और नियति के माय
प्रवृत्ति व अनुवर हान की बात भा
प्रमादजा करत है । प्रवृत्ति की चतन
गला जीवन का प्ररण व निय चिर
प्रातात्मयो है । इम मानाक प्राभा क

मूल मे प्रगति और गति की चेतना का विकास ह। ऐसी स्थिति मे नियति की बात देखकर प्रवृत्ति के अनुचर होने की बात न मानना अग्रय है। बिना कुछ सोचे समझे भी अज्ञातशत्रु का यह उन्माहरण अपनी बात का पुष्ट करने क लिये नाग दे देने है—

नियति का डारी पकड़ कर मैं निभय कमरूप में ब्रूँ सकता हूँ। क्योंकि मैं जानता हूँ कि जा होना ह वह ता हांगा ही फिर कतव्य से विरत क्यों रहूँ ?'

यहाँ नियति की डार ता लोमा को दिखाई पड़ जाती है किन्तु कमरूप का दशन लोग नहीं कर पात। अतएव श्राम् मे नियति का उतना तो स्थान दना चाहिए जा जीवन र्थ उसका है।

प्रवृत्तिसाम्य पर आदृत अनुभूति की अभिव्यक्ति विरहवेदना के मयोग से रहस्यवाद नहीं होनी अपितु आत्मा का परमात्मा मे विलीनीकरण, अपरोक्ष अनुभूति तथा समरमतामय ममत्व रहस्यवाद है। प्रसाद का प्रियतम अपरोक्ष नहीं था, पराक्ष था इसलिये रहस्यवाद की बात भा श्राम् से संबध नहीं रहता। और रहस्यवादा हा जान से ही काई चीज बडो भी तो नहीं होती।

श्राम् भारतीय विरह काव्य परंपरा का नवरत्न है। सटी बोनी मे वह अपन ढग का अकेला विरहकाव्य है। सामा यत् ऐसी धारणा है कि प्रसादजी क श्राम् पर अनेक प्रभावो का सकलन है किन्तु सत्य यह है कि विरह के सर्वोत्तम तत्वा की भावयाती को युग के अनुरूप 'श्राम्' मे निखारकर उहाने रखा है। और सौंद्य और विरहवर्णन की परंपरा का भाा बढ़ाया है।

प्रसादजी ने अपने देश के गौरवमय साहित्य के रत्नो को नई खराद देकर, काव्यरत्न

मजूपा मे नई साजमजा के साथ रखा है। हमें पूव मनीषियो का प्रभाव तो है, पर यह प्रभाव उनना ही है, जितना पूव नान का प्रभाव किमी अनुभवान कर्ता की मौलिक खोज के मून मे रहता है। कहा यह जाता है कि श्राम् पर उद्ग और फारसी का प्रभावो भी बह नहीं दीखता है। उन प्रभावो को मूनत वहाँ माना जाता है, जहाँ करवट बनने की, छाना फाडन की और विरह मे सृष्टि की प्रलयममावि लगान का बात घाती है। विरह में करवट बदनना साधारण सो बात है। छाना की बात भी नई नहीं है। ये चीजें उद्ग मे आइ हैं और उद्ग हिंदी की एक शली है, अपनी उस शली से भी प्रसाद ने कुछ निमा है, ता इस व्यापार भावना की प्रशसा होनी चाहिए तथा निश्चित रूप से प्रसाद की दृष्टि की प्रशसा की जाना चाहिए। प्रसादजी के श्राम् को यह श्रेय प्राप्त होता है कि विरह की आदि भारतीय परंपरा स आधुनिकतम मा यताआ तक के सुंदर तत्वो की छवि का उसने प्रहण किया है। यह हमारी परंपरा की महान् धाता तो है ही, साथ ही हमारे साहित्य मे नय रूप से मौलिक जीवनमूव्य की स्थापना भा है।

एक वान और बहन की है। वह यह कि केवल मेघदूत ही एक एसा काव्य है जिससे श्राम् का तुलना की जा सकती है। लेकिन यह तुलना केवल विरह और रूपसाम्य के वरण स ही हा सकती है, क्याकि दोना की भावभूमि अलग अलग है।

श्राम् धारा = माँ०, ३६। का० कु०, १३।

[म० खी०] (हि०) श्राम् का प्रवाह। अशुधारा।

श्रा आकर = ल० ६०।

[अ०] (हि०) उपस्थित होकर।

आइ

आइ = ति० ५७।
[क्रि० प्र०] (प्र० भा) आर।

आई = श्री०, ७६। व०, ३०। का० १६६
[क्रि० प्र०] (हि०) १७४, १७२, २२६ २३३। ति०,
८६। ल० ६२।
आई। उपस्थित हुई।

आओ = श्री०, ५१। वा० कु० १० ८४,
[क्रि०] (हि०) ८८। बि ३४। भ०, १३।
उपस्थित हाथा।

[आओ हिण में आई प्राण प्यार—चार पक्ति वा
षडजातगन्ध का गीत जो प्रसात्मगीत
म भी मनलिन है। मागधा का प्रणय
गीत जा उदयन का रिभान व लिए
गाया गया है। हृदय में प्राणप्यारे
आओ ताकि तन घोर मन का तपन
कुंभे घोर हम तुम एक पल भी धन्य
न रहें क्याकि सबका धाडकर तुम्ह
पाया है। प्रसाद मगीत।]

आकर = श्री, १६, २८, ३४। का०, कु०, ३०,
[म पु०] (म) ३४। का०, २१२, २१५ २६१। म०
३६ ४८, ७८। प्र०, १४। १०,
१५, ३८।
पर, खजाना भडार।
उपस्थित हाकर।

[क्रि० प्र०] (हि०) का० कु०, ४१।

आनठ = का० कु०, ४१।
[वि०] (म०) मूलरूपेण। गल तक।

आकर्षक = बि०, ३०।
[वि०] (म०) मु दर। अपनी धार खींचनेवाला।
आनपण करनेवाता।

आनर्पण = वा०, २०, ४७ ५८ ७२,
[म० पु०] (म) ७३ १२८ २२७, २३७, २४४।
बि० ३१।

निचाव। किता वस्तु का दूसरी वस्तु
व पाम उनका गति या प्रेरणा से
नाया जाना। तत्र शास्त्र में एक प्रकार
का प्रयोग जिनके द्वार हृदय मनुष्य या
पत्न्य पर पाम धान के न्तिये प्रभाव
डाला जाता है।

आनर्पणमय = वा०, ११२। १०, ३०।
[वि०] (म०) मोनमय।

आनर्पित = १० १२। प्र० २।
[वि०] (म०) बिना हृया। मुय।

आनर्पिक = वा०, १८६।
[वि०] (म०) प्रचानव या महमा हावाना। बिना
पटनावग या मयामवग हा जानवाना।
प्रवाचन।

आनर्पिता = का० १६८ ४६७।
[म० मी०] (म०) दन्दा व ट, प्रामनाया।

आनर्पिता जलनिधि = वा०, १६१।
[म० मी०] (म०) प्रविनाया न्यो नागर। दन्दागिबु।

आनर्पिता वृत्ति = वा० ७४।
[म० मी०] (म०) दन्दा की पूति। प्रविनाया की गुष्टि।
सतुष्टि।

आनर = व०, ३२। का०, मु०, ६२। का० ७२,
[म० पु०] (म०) १०१, १२६, १७६, १६२, २८६।
आनृति रूप। स्वरूप। डालडोन
बचा। बनावट। मपटन। चिह्न।
वेण।

आनरा = श्री० ४८ ४८ ७३। व० ८ ११।
[म० पु०] (म०) वा० कु० ५ ६ १७ २६ ४२,
१०। का० ८१ १६० १६१। बि०
८ १०१ १३८। म०, २४। प्र० १४।
नम। गगन। प्रातमान। धनरिह।

आनरा पट = वा० कु० ८।
[वि०] (म०) प्राकाश का या प्राकाशरूपा वस्त्र।
दियबर।

आकाशबिहारी = व०, १५।
[वि०] (हि०) धाममान पर विचरनेवाता (गुर्वादि
ग्रह) पत्ता।

आकाशरघ = का० ६६।
[म० पु०] (म०) प्राकाश का छिन्।
का० १८। का० १५०। बि०, ६८।

आकुल = ल० १५।
[वि०] (म०) यत्र, व्यस्त, लवडाय हृया।

आकुलता = वा०, ११६, १२८, १४५। बि०, ७३।

[सं० स्त्री०] , विचलता । अस्थिरता । लचकना । (हिं०)
 (स०) विक्षोभ ।

आकुलि = का०, १११ ११२ २०१ ।

[स० पु०] (स०) अमुर पुराहित का नाम । मनु का पुरो
 हित । दे०—नामयनी की कथा
 शीर चरित ।

आकृति = का०, २६३ ।

[सं० स्त्री०] (स०) आकार । रूप । स्वरूप ।

आक्रमण = स०, २३ ।

[सं० पु०] (स०) हमला, चढ़ाई, वार ।

आनात = का० ६, ६३ । चि० ३ ।

[वि०] जिन पर आक्रमण या हमला किया
 गया हो । पराजित । अभिभूत ।

आके = का०, कु०, १६ ।

[क्रि० घ०] (दे० 'आकर') ।

आस्पेट = चि०, १५१ ।

[सं० पु०] शिकार, मृगया ।

आगतुक = का०, ५०, ५५, १६१ ।

[वि०] आनवाला । आगमनशील । जा इधर-
 उधर से घूमता हुआ आ जाय । अतिथि ।
 अन्त्यागत ।

आग = का०, २०० । चि०, १७ । ल० ३८ ।

[सं० स्त्री०] (हिं०) अग्नि । ताप । सुदर ।

आगत-पतिका = का०, ७ ।

[सं० स्त्री०] (स०) जिनका पति परदेश में आ गया हो ।

आगम = चि०, १५६ । प्र० २ ।

[सं० पु०] आगमन । होनहार, भवितव्यता । आध,
 (सं०) आगमनी । वत्, शास्त्र । नीति ।

आगमन = का०, कु०, ६६, १२४ । चि०, ३१,

[सं० पु०] ६३ । ल०, १५ ।

(स०) आगम । आगम । आना ।

आगरे = स०, २० ।

[सं० पु०] उत्तर प्रदेश का प्रसिद्ध नगर आगरा ।
 यह मुगल आगम की राजधानी थी ।

आगे = का०, ६४ । का०, ६६, ११६, १४१,
 [क्रि० वि०] १८१, २५७, २७८, २८३ । का०,

कु०, २१ । प्र० ४ । स० ५ ।

अग्रभाग में । समक्ष । सामन । जीवन
 काल में । जोते जी । बाद में । अनन्तर ।
 आदि । भविष्य में ।

आग्रह = चि०, ५ । स०, ७४ ।

[सं० पु०] (सं०) अनुरोध । हठ । परायणता । तत्परता ।
 बल । जार । प्रारंभ ।

आगत = चि० १३ ।

[सं० पु०] (स०) ठहर । चक्का । मार । चाट ।
 आक्रमण ।

आघातों = का०, कु०, ६२, ६३ । का०, १८१ ।

[सं० पु०] (हिं०) आघात वा बहवचन ।

आन्ध्यादित = का० कु०, १२२ । प्र० ३ ।

[वि०] (सं०) ढका हुआ ज़िमा हुआ गुप्त । आवृत ।

आज = का०, २६, २६ । का०, १० १२, १३,

[सं०] ४८, ५२ ५८, ८६ १४२, १५४ ।

१६२, १६७, १७० १७७ २००,

२८६ । का० कु०, १०६, ११८ । स०,

२८, ३६ ४५, ४६, ५६, ५६ ६१,

६६ ६६ । स०, १२ १४, १५ ।

वर्तमान दिन । जो दिन बोल रहा है ।

[आज इस घन के अधिचारी मे—इडु कला ५

किरण ३, मितवर १६१४ में मकरद

विदु के अतगत प्रकाशित श्रीर भरना में

'विदु !' शोपक स पृष्ठ ६२ पर सक-

लित । "हरियाली में य दानो ह्य कयो

बरस रहे हैं । हँकर विजनी सी चमका

कर हम कौन रचाता है । इस सजी

हुई मुमन की क्यारी में कौन तमाल

भूमता है" ? दे०—"भरना" श्री

विदु ।]

[आज इस यौवन के माधवीकुज मे—चद्रगुप्त

का गीत । प्रसाद संगीत म पृष्ठ ११२

पर सकलित । मुवासिनी का गीत ।

आठ पक्ति की कविता मे दा दाह है ।

मुवासिनी क यौवन के माधवीकुज मे

कानिन बोन रहा है क्यकि उसका

हृष्य काम का मधु पीकर पागल हो

गया है और अपने आप प्रलाप कर जिया होना जाता है अतः लज्जा के सारे बंधन हीन यह गण हूँ। ज्या म्ना बन्धित छवि म प्रतवाली राग है और नापते हुए अघर से चट्कानेवासी बात कर रही है। यह वासना वा मधु मदिरा वीन घाल रहा है। ०— प्रसाद मगत।]

[आज तो नीके नेह निहारो—मवरद बिदु जीर्णक के अतर्गत इदु, वजा ५, त्रिरण ३, सितवर १६१४ और चित्रागार मवरद बिदु के अतर्गत अतिम पृष्ठ (१८८) पर सन्निहित। कवि की आवाजा है कि—
"बातक जी नित रटन रटत हम,
हे सुदर पा प्यारो।
हरित वरो यह भरमम मो मन
देह प्रसाद पियारो॥"
विरह की बात भूनी और समझो कि वह बिजली की भांति जा जीवन में चमक उठा था वह बरसा में वह गया।
०—चित्रागार और मवरद बिदु।]

[आज मधु पी लो—विशाल मे नर्तकी द्वारा नरदेव के दरबार में गाया जानेवाला दूसरा गीत। प्रसाद संगीत पृष्ठ १६ पर मन्वित भाठ पत्तिपा का गीत। नर्तकी कटवी है कि काम भा मधु पीले क्योंकि जीवन का वसत बिना हुआ है। प्रकृति वानावरण प्रस्तुत कर रही है और यह जीवन का धम है क्योंकि कोकिल शीतल एकान्त प्रभात में दृश्यरूपी बुज म कारव कर मुख-मुज का बरसा कर रहा है जिससे मजरित रसात हिन रहा है। चन्दन वन की छाया से आनेवाला मद मन्वय समीर नि शशास वा कर अमीर कर रहा है। अघर का मधु मुकुर से मिलने का क्या कारण है ? यह प्रश्न बह पृथक्ता है और सन्त स उत्तर भा देती है। जीवन का वसत बिना है इमनिये आज कामना ५५ पी ले। ३०—प्रसाद-मगीत।]

आनीना = १०, ७८। म० ६।
[त्रि० वि०] (म०) जीवन पया। त्रिदगी मग।

आजु = वि०, ७१, ७४।

[अ०] (म० भा०) (०० आत्र।)

आज्ञा = १०, ११, २१, २३। का० २४३।
[म० म्नी०] ६१, वि०, ४१, ६४, ६६। म०, ४६,
(म०) ८५। ल०, ७३। म० ३।
आद्यन हुक्म अनुमति।

आज्ञा पत्र = म०, २४।

[सं० पु०] (म०) आद्यपत्र, हुक्मनामा।

आटा = ल०, ५२।

[म० पु०] पितान। विमी अत्र वा मूल। बुकनी।
(हि०)

आडधर = म०, १४।

[सं० पु०] गभीर शब्द। ऊपरी बनावट। भूटा
(सं०) आयोजन। मुद्र म बजाया जानेवाला
बडा ढोल। ६५।

आड = का० पु०, ६३।

[म० म्नी०] (हि०) आट, परदा। रत्ता। शरण।

आतक = का०, १६५। म०, १।

[सं० पु०] राग। दबदबा। प्रताप। भय। शका।
(म०) रोग। ज्वर। पोडा।

आतक अम्त = का०, १२१।

[वि०] (म०) रोव से डरा हुआ। भय में परेशान।

आतप = का०, ३८। म०, ३६।

[म० पु०] धूप, दीप्य, शर्मा, उष्णता। मूष का
(म०) प्रताप।

आना = म० २७।

[त्रि०] (हि०) आगमन करना।

आती = श्री०, ३५। व०, ८। का०, ३४, ३८,
[त्रि० म्नी०] ३६, ४०, ६६, १२२, १४०, १६०,
(हि०) १८३, २०५, २४६। का० पु०, ४२,
६६। ल०, ६, १५, ४४, ४६।
आगमन करता।

आतुर = का०, १२२। म०, ६५। ल०, २४,
[वि०] ४४।

(स०) व्याकुल, व्यग्र, उद्विग्न, घमराया हुआ ।
 प्रधीर, उत्सुक ।
 आते = भ०, १६, ५२ ।
 [क्रि०] (हि०) भागमन करत ।
 आत्म = का०, १६१ । चि०, ६५ ।
 [वि०] (स०) भपना, स्वकीय, निजा ।
 आत्मकथा = प्रे०, ४ । ल०, ११ ।
 [स० स्त्री०] (स०) भपनी जीवनी, भपनी कहानी । स्वनिखिन
 जीवन चरित्र ।

[आत्मकथा—'हम' के आत्मकथाक जनवरा परवरी
 १९३२ शायक स 'मधुप गुन गुना कर
 कह जाता ? शोषक से प्रदाशित
 शोर 'लहर' म पृष्ठ ११ पर सकनित ।

'प्रगाद' की यह आत्मकथा विदु मे मिधु छिगाए हुए
 है । यह उनके चरित्र क ममल मुत्रा
 पर पूण प्रकाश डालती है । इस यह
 सृज ही जाना जा सकता ह कि
 उनका ब्यक्तित्व कितना गभार था ।
 उनके बड़े जीवन का यह सक्षप म कहा
 गई क्या अत्यत प्रभावशालिनी है ।
 वे शौरों का मुनन शोर देखनवाले
 गभोर द्रष्टा शौर स्रष्टा थे । उहान
 भपन भोल जावन म शौरा का दखा
 था । जीवन की अन्त नीलिमा म
 असुख्य जीवन इतिहासा का व्यग्य
 मलिन उपहास भा उहान देखा था ।

यह सब होत हुए भा वे भपनी शार स दृष्टि
 फेरनेवाल ब्यक्ति नहीं थे । उह भपना
 मधुर भूसा का ज्ञान था, उनका
 उहाने भपन जीवन म परिष्कार
 करना भा सीला था । इतना हात हुए
 भी उनका भना भालापन उनक जीवन
 की सहज प्रवृत्ति था ।

यह गात इन बात का माझी है कि कवि शौरा
 को मुनना चाहता है पर विगत जावन
 की स्मृति अब भा उनक गीता का
 प्रेरणा है । साथ हा कवि सकेत मुत्रा
 मे यह भी सदश दता है कि अभी
 आत्मकथा कहने का समय नहीं आया
 है क्योंकि अभी उनके प्रयन की

पूणना, हृदय का कामना के अनुसार,
 भपनी सृष्टिरचना नहीं कर पाई
 है । यह जनामावृत्ति सतत गनिशील
 वेतना के मगत विकाम का मणिदीप
 है । उसके भालपन का हनी बराबर
 उडाई गई, लखिन वह तटस्थ रहा ।
 उसन दूररा की प्रवचना नहीं का ।
 शार श्रत म कहता है—

मुनकर क्या तुम भला करान—
 मरी भाना आत्म कथा ।
 अभी समय भी नहो—
 धरों साई है मरी मोन व्यया ।
 "—'प्रसाद' शोर लहर ।]

आत्म गौरव = ल०, ६३ ।

[म० पु०] (स०) भपना श्रुता । भपनी बडाई ।

आत्मज्ञा = का०, १८५ ।

[स० स्त्री०] (स०) पुना कथा । स्वय से उत्पन
 होनेवाली ।

आत्मजल = प्रे०, २२ ।

[म० पु०] (स०) आतरिक शक्ति । आत्मिक बल ।

आत्मबलि = का० कु०, ४८ ।

[स० पु०] आत्मबलिदान, भपने आपकी हाम कर
 देना या छपा देना ।

आत्मभगल = का०, १६१ ।

[म० पु०] (स०) भपना कथाए ।

आत्म विश्वास = का०, १६१ ।

[स० पु०] (स०) भपनी शक्ति या योग्यता पर विश्वास ।
 निजी भरोसा ।

आत्मविश्वासमयी = का०, १३२ ।

[वि०] (स०) भपने ऊपर विश्वास रखनेवाली ।

आत्मसमान = ल० ७७ ।

[म० पु०] (स०) भपना आदर । निज गौरव ।

आत्मविस्तार = का०, ५६ ।

[म० पु०] (म०) भपना फलाव ।

आत्मसमर्पण = प्रे०, २४ ।

[स० पु०] (म०) भपने आप को अर्पित करना ।

आत्मा = का० कु०, ६, ११६ ।

[स० स्त्री०] चित्त, चतय, मन, बुद्धि । जीवात्मा ।
 ब्रह्म । मन या श्रत करण के व्यापारा
 का ज्ञान करानेवाली सत्ता ।

(स०)

आत्मोपमा

- आत्मोपमा = का०, २१६।
 [म० श्लो०] (स०) अपनापन, मित्रता। घनिष्ट सख्य।
 आत्मोत्सर्ग = म०, १५।
 [म० पु०] (म०) अपना त्याग। दूसरो का भनाई म
 अपमें हित की बलि करना।
 आदर = म०, ३५।
 [म० पु०] (म०) समान, सत्कार, प्रतिष्ठा, इज्जत।
 आदि = का० कु०, ४७। वि० ५२, १४०,
 १४३।
 [म०] (स०) प्रिन्सुल प्रथम। पहना। आरम्भ का।
 आदि = का० कु०, ४७। वि० ५२, १४०,
 १४३।
 [म० पु०] (स०) आरम्भ। बुनियाद। मूलकारण। ईश्वर।
 आनिक = वि० ५०।
 [म०] (स०) आदि। बगरह। इ गदि।
 आदित्य = वि० १०१।
 [म० पु०] (म०) अदिति के पुत्र। सूर्य। इन्द्र।
 आदेश = का०, १२, १५। १०, १३।
 [म० पु०] (म०) आना। हुक्म। उपदेश। नमस्कार।
 प्रणाम।

[आदेश—भरना, पृष्ठ ७७ पर सकलित कविता।
 गुड मानम मे उठनेवाली भाव लह
 रियो हा पावन पत्कियो के समान है
 रिहै पढकर सहा आदेश का बोध
 होना है कयाकि विद्वान् अथ,वशवासा
 कृदित आदेश जतात है। द्रव का
 विपमान मत कर अपिनु जावन व
 घट को बाधा बनन ओट भेद ताडकर
 गुधा वे भर ले। निज पापो स डर कर
 प्रार्थना और तपस्या अपना अपमान
 है और यह किसी के प्रति भक्ति नहीं
 हो सकती। प्रहरो प्रायना करन की
 अपेक्षा दुखियो पर क्षण भर की करणा
 अधिक धारममान की निष्पत्ति करणा।
 ऐसा कवि वा सखा विश्वास है।
 द०—करना।]

- आधार = का० ३१। का०, ४८, २०६, २६०
 [म० पु०] (स०) म० ७५।
 [म०] गहारा। आश्रय। भवलव। योग
 गात्र मे एष चक्र का नाम।
 आधि = का० कु०, ७२।

- [सं० छा०] (स०)
 आधीन =
 [वि०] (हि०)
 आन =
 [सं० पु०] (म०)

मानसिक व्याधि, पाटा या निता।
 रहन। गिरवा। बचन।

- वि०, १०।
 आश्रित, मातहत, बन्धीभूत।
 का० २६। का० २, ५३, ५५,
 ५६, ६२, ६४ १०१, १०२, १३६
 १६१, २४२, २५४ २८६, २६४।
 का० कु०, १६ २७, २८, ३०, ३१,
 ३, ४७, ६३, ८६, ६६, ११६,
 १८४। वि०, ६, १७, ६०, ६२, ७३,
 ११६ १४३। म० १६, २० ३८,
 ४१ ५१। प्र०, ८।
 ह्य। प्रसन्नता। खुशी। माद। मीज।
 [निनेप ०—नामापनी की क्या घोर
 नामापना का दजन।]

- आनन्द अथ निधि = प्र०, २५।
 [म० पु०] (स०) प्रसन्नता रूपी सागर।
 आनन्द आसन = का० कु०, ३१।
 [म० पु०] (म०) प्रसन्नता का निवास। आनन्दरूपी
 आसन।

- आनन्दकन्द = वि०, १५५।
 [म० पु०] (स०) प्रसन्नता का मूल। आनन्दमय।
 आनन्द धन = का० कु० ४३। वि०, ५६।
 [म० पु०] (स०) प्रसन्नतारूपी धन। प्रसन्नता का
 राजान।

- आनन्ददायक = का० कु०, ७२।
 [वि०] (स०) प्रसन्नता प्रदान करनेवाला।
 आनन्द हरय = का० कु०, १६।
 [म० पु०] (स०) खुशा का दशन, प्रसन्नतादायक वस्तु या
 पटना वा दजन, आनन्द प्रदान करने
 वाला द्रव्य।

- आनन्दपथ = का०, २५३।
 [वि०] (स०) प्रसन्नता से भरा दुःखा। खुशा स युक्त।
 आनन्द भवन = का० कु० १६।
 [वि०] (हि०) प्रसन्नता का घर।
 आनन्द मन्दिर = का० कु०, ३०।
 [सं० पु०] (स०) प्रसन्नता वा भवन। आनन्दरूपी
 मन्दिर।

आनन्दमय = का० कु०, १६, १२४ ।
 [वि०] (स०) प्रमत्ता म भरा हुआ ।
 आनन्दचाल = (१०—वामायनी का दशम ।)
 आनन्दमयी = प्रे० १ ।
 [वि०] (स०) प्रसन्नतामयी ।
 आनन्द त्रिभोर = का०, ६ ।
 [वि०] (स०) खुशा म मस्त । प्रमत्ता में मान ।
 आनन्द शिखर = का०, ६६ ।
 [सं० पु०] (स०) प्रमत्ता का चाटा ।
 आनन्द समन्वय = का०, ७४ ।
 [सं० पु०] (स०) प्रमत्ता का मिथल ।
 आनन्द सहित = वि०, ६३ ।
 [वि०] (स०) प्रसन्नतायुक्त । खुशी के साथ ।
 आनन्द सुधा रस = का० २८ ।
 [सं० पु०] (स०) प्रमत्ता रसा मयुत ।
 आनन्दित = वि०, ५८, १६, ७५ ।
 [वि०] (स०) प्रमत्त । खुश ।
 आनन्द = का० कु०, ४२ ।
 [सं० स्त्री०] मर्यादा ; शपथ । मोगध । प्रतिभा ।
 (हि०) प्रण ।
 आनन = का०, १६८ । का० कु० ६६ ।
 [सं० पु०] (स०) मुख । मुह ।
 आनन सरोज = १०, ६२ ।
 [वि०] (स०) मुखरूपी कमल ।
 आनि = वि०, १६८ ।
 [क्रि०] (प्र० भा०) लाकर ।
 आनी = वि०, ५७ ।
 [द्व० क्रि०] (१० आनि ।)
 (सं० भा०)
 आने = का०, १२५, १७८ १८६, २२० ।
 [क्रि०] (हि०) ऋ०, ३२ ।
 लाण । ल घ्राण ।
 आप = का०, ११, २१, ३१ । का०, कु०, ६८ ।
 [मव०] (हि०) का०, १३६, १६३, १६६ । वि०,
 ५३, ६४, ६५, १०६ । ऋ०, ६३,
 ६४ । म०, २१, २३ । ल० ५५ ।
 स्वयं । खुण । तुम, तय, व क स्थान म
 भादराय प्रयुक्त शब्द ।

आपान्मस्तक = का० कु०, ३० ।
 [क्रि०] (स०) एका में चाटा तन ।
 आपान्मश्री = का०, ६ । १०, ६६ ६८ ।
 [सं० ग्वा०] (हि०) घापण रा वृहवचन । दुग्, वने ।
 विपत्ति मवट ।
 आपान्मवृत् = का०, १४ ।
 [सं०] (स०) घापनिया का समूह ।
 आपानक = ऋ०, २१ ।
 [म० पु०] (स०) मन्त्रालय । मधुगात्रा ।
 आभा = का० ११८, २८८ । का० कु०, १०० ।
 [सं० स्त्री०] (म०) वि०, २१ २८, ६० १०७, १०६ ।
 वाति, प्रभा द्युति दास । भात
 छाया प्रतिबिम्ब ।
 आभारी = का० २२६ । ऋ०, १७ ।
 [वि०] (स०) उपरुत ।
 आभास = ऋ०, ४६ ।
 [म० पु०] (म०) भक्त, छाया प्रतिबिम्ब । मवन ।
 आभूषण = का०, १८१ १८२ । म०, १३ ।
 [सं० पु०] (स०) धनहार, गहना ।
 आभरण = का०, १२५ ।
 [सं० पु०] (स०) निमन्त्रण, यात्रा ।
 आभ्रित = ल०, ३३ ।
 [वि०] (स०) निमन्त्रित ।
 आमलास = का० कु०, १०८ ।
 [सं० पु०] (स०) मट्ट क भातर राजा स रागा के
 मिलने का स्थान ।
 आमिष = का०, १११ ।
 [सं० पु०] (स०) भोग्य वस्तु । ताम, वृष्णा । माम ।
 आमृत = वामादना ।
 [सं० पु०] (स०) भूमिका । प्रस्तावना । [वामायनी की
 प्रसादना द्वारा त्रिवा पृष्ठ ३ से ८ तन
 का मट्टवपुष्प भूमिका जा वामायनी के
 अध्ययन व लिय सकतमृत प्रस्तुत
 करती है । ३०—वामायनी की क्या
 और वामायनी का रूपन तत्व ।]
 आमोद = का० कु०, ५१, ५३ । का०, ६४,
 [सं० पु०] (स०) १३३ । वि०, १ ।
 प्रसन्नता, हस, खुशा ।

आमोद्भरी

आमोद्भरी = का०, १८३।
 [वि०] (हि०) प्रसन्नता से भरी हुई। हृदयमान।
 आशय = चि०, २२।
 [वि०] (स०) विस्तृत, दीर्घ विनाल।
 आया = क०, २१। वा० कु०, १६ ३४,
 [क्रि० घ०] (हि०) १०२। २६१। वा० १४३, १६७।
 ऋ०, ६६। म० ११, १५। १६६,
 १७८, २०६ २१६, २५०। ल०, ३६,
 ६८। उपस्थित हुआ।

[आया देसो विमल वसत—दूध बला ५ किरण
 २, पदवरी १६१४ में विनाद बिंदु के
 मतगत प्रकाशित तथा भरना में सक-
 तिन मतिम रचना (पृष्ठ ६६)। कव
 वा कथन है कि विमल वसत मा गया
 हैं देखो कसा मुद्रावना मुदरतर समय
 आया हुआ है। है नाथ मनमानल
 पर धार धार हसत हसत पधारा जसस
 सभी मुमन खिल जाए स्वागत में हम
 स्वयं माला लिए हुए खड ह मोर प्राण
 हवी कोकल भी स्वागत में पचम स्वर
 लहरी में गा रहा है। ०—भरना
 धोर बिंदु।]

आयी = वा० २८५, २८६।
 [क्रि० घ०] आया वा खालिग।
 आयुध = वा० १४१।
 [सं० पु०] (सं०) शस्त्र।
 आये = वा०, ११२ ११४, १४२ १६० १७५,
 [क्रि० घ०] (हि०) २८५, २८७, २८८। ऋ० ३२,
 ६३ ६३।
 उपस्थित हुए।

आयो = चि० ५३ ५४ ६० ७३।
 (सं० भा०) (०० भाव'।)
 आरक्षि = चि० १६३।
 [वि०] (सं०) रत्नाम। मरणाणाम।
 आरक्षक = ७० १२।
 [वि०] (सं०) जगती। वय। बनना।
 आरति = चि० ४१।
 [सं० श्लो०] (हि०) विरक्ति।

आरभ = वा० कु०, ४८। वा०, ३४, ७५।
 (सं० पु०) ऋ०, ८८। म०, ५। ल०, ६५।
 शुभ्रात। प्रारभ।

आरभिक = वा०, ७२, ७६, १४०।
 [वि०] (सं०) प्रारभिक। शुरु की।

आरसी = चि०, ७१।

[सं० श्लो०] (हि०) दृषया। गीणा।

आराधना = वा० कु०, ७२।

[सं० श्लो०] (सं०) पूजा। उपासना।

आराधो = चि०, ७४।

[क्रि० घ०] (ब्र० भा०) पूजा करो। उपासना करा।

आराध्य = वा०, १६१।

[वि०] (सं०) पूज्य। पूजनीय। उपास्य।

आराम = वा० कु०, ६६। चि० १६, ४६,
 [सं० पु०] (सं०) १६४।

उद्यान। बाग। कुनवारी। उपवन।

आरुढ = चि० १५७।

[वि०] (सं०) चढ़ा हुआ। विचरण करता हुआ।

आरोहण = वा०, १८१।

[सं० पु०] (सं०) चढ़ना। सवार होना। शत्रु निक
 लना। माली।

आर्त = ल०, ६५।

[वि० पु०] (सं०) पीड़ित। वदनामन्त्र। चोट खा
 हुआ। दुःखित।

आर्तग्राण = चि० २।

[सं० पु०] (सं०) दुखी की रक्षा। पीड़ित का उद्धार।

आर्त = प्र० १५।

[वि०] (सं०) गीणा। संर। लपपय। गीना।

आर्य = वा० ६, १०, ३१। वा० कु० ६८,
 [वि०] (सं०) १०१ १०२। चि० २। म० ८।

श्रेष्ठ। उत्तम। बड़ा। पूज्य। श्रेष्ठ
 कुतोत्पन्न।

आर्य जाति = म० ६।

[सं० पु०] प्रादि मध्य जाति।

आर्यनाथ = म०, १०।

[वि०] श्रेष्ठ पुरुष। स्वामी। शार्य जाति क
 स्वामा।

(सं०)

आर्यपताका = ४०, १० ।

[मं स्त्री०] (सं०) प्राय जाति की ध्वजा ।

आर्यमन्दिर = वा० कु०, १२० ।

[सं० पुं०] (सं०) प्राय जाति का देवस्थान ।

आर्यराज्य = म०, १० ।

[मं० पुं०] (सं०) ध्येष्ठ राज्य । प्राय जाति का राज्य ।

आर्यवीर = चि०, १३ ।

[मं० पुं०] श्रेष्ठ वीर । महान योद्धा । आर्य जाति (मं०) का बनवान पुत्र ।

आर्यवृद्ध = वा० कु०, १०५ ।

[मं० पुं०] श्रेष्ठ युवकों का समूह । आर्यों का (सं०) समुदाय ।

आर्यशिल्प = वा० कु०, १०८ ।

[सं० पुं०] (सं०) आर्यों का बना-बोधा ।

आर्योन्नत = चि०, ३ ।

[सं० पुं०] (सं०) आर्यों का निवास स्थान । उत्तरी भारत ।

आर्य = वा० कु०, ४५ । चि०, १२ । ३३,

[वि०] (सं०) १०० । म०, ६, ७ ।

ऋषि सबधी । ऋषिभृत । वदि ।

आलमगीर = वा कु०, १०८ ।

[सं० पुं०] (प्र०) मुगलसम्राट् बहादुरशाह घोरगद्दव को एक उपाधि ।

[आलमगीर—मुगल सम्राट् मुहोउद्दीन मोहम्मद घोरगद्दव न सन् १६५८ ई० म अपने पिता शाहजहाँ को फद कर मिहामना-रूढ़ होने पर अपने लिये 'आलमगीर' उपाधि धारण की, जिसका अर्थ होता है विघ्नजयी । मृत्यु—महमदनगर दक्षिणी भारत में १७०७ ई० ।]

आलस = भा०, ७४ । वा०, ११, ७०, ७२

[सं० पुं०] ११८, १४२ । चि०, १०६ । ऋ० ३१, ६४ । प्रे०, १८ । न० ३१, ६४ ।

आलस्य, सुस्ती ।

आलस्य = का०, ४५ ।

[सं० पुं०] (पुं०) सुस्ती, काहिली ।

आलाप = वा०, १७८ । चि०, २६ ।

[सं० पुं०] (मं०) बातचीत । बातना । गाते समय सातो स्वरों का राग सहित उच्चारण । तान ।

आलिंगन = भा०, ७३ । वा०, १२, ११, २०,

[मं० पुं०] (मं०) ८६, ६७, १२५, १४०, १७५ १७७, १८१, २४५ २५२, २६३ । चि० ३६, ६४ । ऋ० ३६ । न०, ११, २१, ३४ ।

परिरभण, भ्रववारी, गले में लगाना ।

आलिंगित = वा०, २३५ । चि०, १६३ ।

[वि०] (सं०) परिरभित ।

आलियों = चि०, ४६ ।

[मं० स्त्री०] (हि०) (२० 'भलिपा' ।)

आली = का० कु०, ३६ । चि० ५८ । ल०,

[सं० स्त्री०] १६ । ('० आली' ।)

आलोक = भा०, २४, ५५, ५७, ७२ । का०

[सं० पुं०] कु०, २५, ४३ ६३, ६६, ६२, १२६ ।

का०, ३४, ६५, ६६, ८१, ८७,

११२, ११४, १६७, १६८, २४१,

२५२, २६१ । चि०, २० । ऋ०, ३४ ।

म०, १३, १८ ।

प्रकाश, उजाला, ज्योति । दशन ।

बौद्धों । किमी विषय पर लिखित

टिप्पणों प्रथवा सूचना ।

आलोक अधीर = का०, ११ ।

[मं० पुं०] (हि०) प्रकाश के लिये धर्मरहित ।

आलोक किरन = वा०, २२५, १८१ ।

[मं० स्त्री०] (हि०) ज्योति किरण, प्रकाश रश्मि ।

आलोकपुरन = वा० कु०, ४२ ।

[वि०] (हि०) प्रकाशपूर्ण । आलोक से भरपूर ।

आलोक भिरवारी = वा०, १८४ ।

[वि०] (हि०) प्रकाश का भिन्नुक । आलोक का इन्नुक ।

आलोक मणि = का० कु०, २६ ।

[सं०] (मं०) प्रकाशमय रत्न ।

आलोकमय = ऋ०, ५७ ।

[वि०] (मं०) प्रकाशमय । प्रकाश से युक्त ।

आलोकमयी = भा०, ६८ । का०, १०४, १६६ ।

[वि०] (सं०) प्रकाशयुक्ता । प्रकाश से भरी हुई ।

आलोक रश्मियों—का० १२० ।

[सं० स्त्री०] (हि०) प्रकाश का किरणें ।

आलोकत्रिदु = का०, ७५, २६४ ।

[म० पु०] प्रवाश का फ़द। प्रवाश का मुख्य स्थान।

श्रालोन शिगमा = का०, १८२।

[म० स्त्री०] (म०) प्रवाश की चोटा। प्रकाश का उजाति।

श्रालोमहु = चि १३६।

[त्रि०] (श० भा०) भलाभाति देखो। (‘श्रवलोक्त्त’)

श्रालोभित = का० कु०, १२०। का० १८१। चि०, २०। अ०, ८६।

(स०) प्रकाशित। उजातिमय।

श्रालोहन = का०, १७।

[म० पु०] (म०) मयन। हिडोरना। मयना।

श्रावत = चि० १४ १६ ५८, ६४ ७०।

[त्रि०] (श० भा०) घाना।

श्रावत द्वी = चि०, १४७ १५६।

[त्रि०] (श० भा०) घात ही।

श्रावन = चि० ६६।

[म० पु०] (श० भा०) घागमन।

श्रावरण = का०, ६५ ६६ ६८ ६९, १३६

[म० पु०] १४७ १४९ १६४। अ० ६२।

(म०) ल०, १७६ १६२ २०६, २५२।

श्राच्छादान। ढकनन। ढपना। किमी वस्तु पर लपेटा गया वस्त्र। पदा। वेठन। दावाल इत्यादि का घेरा। घान।

श्रावरणयुक्त = का०, २८।

[चि०] (म०) श्राच्छान्ति।

श्रावर्जिता = का० १०२।

[चि० स्त्री०] (म०) त्यक्ता छाडो हूँ।

श्रावर्तन = का० ११ २० ७२।

[म० पु०] किराव। घुमाव। चक्कर दना।

(म०) श्रवर्तन मयन।

श्रावश्यक = अ० ७५।

[चि० म] जिम अवश्य टाना चाहिए। जरूरी। काम का। मापत।

श्रावश्यता = का० २०। प्रे० ३।

[म० स्त्री०] (म०) धरेडा। जरूरत। प्रयाजन। मतनव।

श्रावही = चि० ५१।

[त्रि०] (श० भा०) घात है।

श्रावहु = चि०, १५६।

[त्रि०] (श० भा०) घाण।

श्रावास = का० कु०, ६६ १०८। का० ८७।

[म० पु०] (श०) घर। निवास स्थान। रहने का जगह।

श्रावाहन = का० कु० २६।

[म० पु०] (म०) बुलाना। पुकारना। निमंत्रित करना।

[श्रावाहन—इदु कला ३, किरण ३ फरवरी १६१० में प्रकाशित कवित्त। चित्राधार में सकलित। १०—मकरद बिदु ग्रोर चित्राधार।]

श्रावुत = का० १६। १६६ १७२, २७७

[चि] (म) श्रवमुठन। छिपा हुआ। किरा हुआ।

श्रावे = का०, १४८, १६५, १८२, २१६

[त्रि०] (हि०) का० कु० ५६। चि०, १०८। अ०,

३६, ४३।

उपस्थित हो।

श्रावेग = का० कु० ५३। चि०, ५६।

[म० पु] (म०) जोश। चित्त का प्रबल वग। उ कठा

महित मन का वग।

श्रावेश = का० १८।

[म० पु०] (म०) जाश। मन का प्रेरणा। नाव। वग।

व्याप्ति। संचार। दौरा।

श्राशाएँ = का० १०६।

[म० स्त्री०] (हि०) शका। शक। सदह। भय। डर।

श्राशा = चि०, १६६।

[म० स्त्री०] (हि०) (देखिण ‘श्राशा’।)

श्राशा = घा०, ६७। का०, १८। का० कु०,

[म० स्त्री०] ५० ६५। का०, २७, ५०, ६४

१०६, ११३, ११४, १३० १४५

१६६, १६६, १७७, १८४ २२५,

२६४। चि०, ८, १७ १८, ६४

१४९ १४३। अ०, २३ २७ ३३

४० ४१ ४८, ७०, ७१ प्रे० १।

ल०, १८, ४०, ५४, ५७ ६१, ७२

७४ ७५।

किमा पनाथ व पान का इच्छा या

कामना। घप्रात का पान की श्राशाया।

[श्राशा—३०—कामामनी की कथा।]

आशामय = का० कु०, ११६। चि०, ६८।
[वि०] (स०)

आशा से पूछ। आशा से भरा हुआ।
कामनामय।

आशामयि = का०, २३७।

[म०] (हि०) आशामयी का संबोधन।

आशालता = भ०, ५६।

[म० स्त्री०] (म०) आकांक्षा स्त्री। बल्लरी।

[आशालता—करना, पृष्ठ ५८ पर ३० पक्ति का ५ पदो में सवलिप्त गीत। प्राणेश की कहणा ने नव माहन वश बनाकर दीनता का अवनयना और इगस स्नह बढ़ाया। इनलिपे लता कहणा का शुभ हाय पा अनात बढ चली। नित्य स्वण घट में प्रवृत्ति के याग स काति का जल दानता अथात भरती थी। दया व स्पण स वह मुरभि का धाम बन गई। मधुपों को बुलाया और व उसपर प्राण योजावर करने लगे। सिचन का यह अविरल अनिदार्थ क्रम बहुत दिनों तक चलता रहा। फनत लता को अक्षुर मात्र मिला और एसा करत करते एक दिन बरणा ऊन्न गइ और वाली "आशालता बहुत ले चुवा और बह वाजित दाव नहीं दती। सीचन का फन ता यही मिला कि फल भी हाय न लगा।" मार नाल घनमाला केवल दीनता का वृष्टि करती था। २० करना।]

[आशा विकल हुई है मेरो—राज्यश्री' एव 'प्रसादनगीत' का पहला गीत। प्रेम के लिये अर्पण मुरमा गाती है कि उसक मन की प्यास कभा नहीं बुझी और उमका आशा व्याकुल हो गई है। नव फन की ध्वनि भी उन्न नहीं मुन पढ रहा है और शातल सरावर उमस दूर हट रहा है, यहाँ तक कि वह आभल हा होनेवाला है और प्रतीक्षा व प्रति उमका आस्था शिथिल होती जा रही

है। और अत मे कहती है कि र वेन्दी। पीडा से हारी अथमरी धायन दुखियारी में जावनधन की गठि भूनकर मिमक रही है। यह दम पक्ति का गीत है। २०—प्रमाद सगीत।]

आशिप सह = चि० ७३।

[य०] (ब्र० भा०) आशीर्वाद के साथ।

आशीप = चि० ६०।

[म० स्त्री०] (ब्र० भा०) अमीस। आशीर्वाद। हुआ। शुभ वा ब्याग की कामना।

आशुतोप = चि० ६६, १५२।

[वि०] (स०) शास्त्र मनुष्य हानवाला।

आशुशांति = चि०, ६६।

[म० स्त्री०] (स०) शीघ्र शमन।

आश्चर्य = का० कु०, १०६। का०, २२। प्र०, ४।

[स० पु०] (म०)

अचभ। ताज्जुब। रस के नौ स्यायो भावो मे स एक।

आश्रम = का०, १८, ३०। का० कु०, १०५,

[स० पु०] (स०) १०६। चि०, ५८।

ऋषियां, मुनियों के रहन का स्थान। निवान स्थान।

आश्रय = का० कु०, २८, ४४, १२५। का०,

[म० पु०] (म०) १००, १८१, १८२, १८५, १६३।

५०, ३६। प्र०, ११।

सहाय। आभार। अवलव। भरोसा।

जीवन निर्वाह का अवलव। पर।

मकान।

आश्रित = का० कु०, ४४। का०, २२६।

[वि०] (स०)

आधार पर ठहरा हुआ। वशवर्ती,

अधीन। सबक, दाम।

आश्वासन = मा०, ४६।

[स० पु०] (स०) सात्वना। भरोसा।

आस = का०, २४७। चि०, ५, २७, ६६

[स० स्त्री०] (ब्र० भा०) १०१, १०६।

(२० 'आशा'।)

आसक्त = भ०, ६७।

[वि०] (स०)

अनुरक्त। लान। लिप्त। मोहित। मुग्ध।

आसन = का०, १५। का० कु०, २६। का०,

- [स० पु०] (स०) १२३। प्र०, ४, ६।
 उठको। जिम बस्तु पर बटा जाता है।
- आस पास = का० कु०, ५४, ६७।
- [क्रि० नि०] (हि०) चारों ओर। अगल वगल। पटोस।
- आस भरी = चि०, १५१।
- [वि०] (श० भा०) आशा भरी।
- आसत्र = का०, १८३। ल० ४७।
- [स० पु०] (स०) फल वा अन्न के रस स बनाया गया मद्य। छाना हुए तरल रामीर। अक।
- आसीन = चि०, ४१।
- [वि०] (स०) विराजमान। बैठे हुआ।
- आसीस = चि०, ३१।
- [स० पु०] (हि०) आशीर्वाद। दुआ।
- आसु = चि०, १५।
- (श० भा०) आसरा। आश्रय। आशा।
- आसुर = का०, २७।
- [वि०] (स०) असुर मन्वषी। राक्षसी।
- आसुरी = क०, २७, ३१।
- [वि० स्त्री०] (स०) असुर सभ्या। राक्षसा।
- आह = श्रा० ६५।
- [ध०] (हि०) क०, ६, ११। का०, ६, ७, ३८, ४६, ५१, ५२, ५५, ८४, ९२, ९४, १०६, २०७, २१५, २४८, २४९। चि०, १२। अ०, २६। ल०, १०, ४०, ५७, ६४।
 दुस चिन्ता और शोक व्यक्त करने क लिय प्रयुक्त ध्वनि। हाय। हस्त। हा।
- [आह—चन्द्रमुम का गान 'निकल मत बाहर दुख बाह'। प्रसाद संगीत म पृष्ठ १०७-१०८ पर संचित। 'बाह' शीघ्र स माधुरी यय ५ राठ १ सन् १८२६-२७ म प्रकाशित। ०—'निकल मत बाहर दुख बाह' श्री प्रसाद-नगात।]
- आहत = श्रा १२। का० २०० २४५।
- [वि०] (स०) चि०, १६।
 पायल, जस्मी।
- आहरण = चि०, २७।
- [स० पु०] (स०) धुराना। दानवा। जबरस्था लना।

- आह रे = ल०, २१।
- [स०] (हि०) दुःख व्यक्त शब्द। हाय र।
- [आह रे यह अधीर यौवन—'हय', अग्रिम १६३१ मे प्रकाशित श्रीर लहर, पृष्ठ २१ पर संचित एक लघु गीत। ०—'नहर।]
- [आह वेना मिली जिदाइ—विदाई शीघ्र से माधुरी, वर्ष ६, नड २, सन् १९२७-२८ मे प्रकाशित स्वर्गुम का गान, प्रसादसंगीत मे पृष्ठ १०० पर संचित। देवसना का अतिथि गीत। उसका आशय है कि मीने अमवशा जीवन में संचित प्रेम लुटाया। मेरी यह यात्रा नीरव चलती रही। अमित स्वप्न की मगया में जनीदे इस पथिक का यह विटाग का तान किसने सुनाई। सबका लालची दृष्टि नव से बचाकर मैं फिरती ही रहों फिर भी पगली आशा न सारी बचाई ली ही। मेरे जीवनरूपा रय पर काल स्वय बढ कर चल रहा है फिर भी अपने इन दुःखल पावा के बल पर मैं उससे हाड लिया पर अब—
 लौटा ला यह धपनी याती,
 मेरी करण हा हा लाती।
 विश्व। न सभलगी यह मुभसे,
 इसने मन की लाज गवाई।
 यह रगसिद्ध गीत अत्यंत भावप्रबल तथा गीति के सभी तत्वा से संचित है। ८०—प्रसाद संगीत।]
- आहृति = का०, ३२, २३६, २४२। चि०, ९७।
- [स० श्रो०] (स०) मत्र द्वारा अग्नि म घृत, सामग्री आदि उल्लना। होम। उमग, त्याग।
- आहृतिर्षा = ल०, ५६।
- [स० स्त्री०] (हि०) आहृति का बन्वचन।
- आहार = क०, १३। चि०, ५८। ल०, ५५।
- [स० पु०] (स०) म०, २२।
 भाजन। नाथ वस्तु।
- इ
- इंगित = का० कु०, ५७। ल० ६५।
- [स० पु०] (स०) दगा। चेटा। मदन बिल।

इंदिरा = का०, २८ ।

[सं० स्त्री०] (सं०) लक्ष्मी । शांभा, छवि ।

इंदीवर = का०, ६५, १४२ १७५ । चि०, ६७ ।

[सं० पुं०] (सं०) वनन । नील वनन । नीलाखण्ड ।

इंदु = का० कु०, १, १७, ४३ ५१, १०० ।

[सं० पुं०] (सं०) चि०, १०७ । ल०, ३५ ।

चंद्रमा, शशि । कपूर ।

[इंदु—प्रगादजी का प्रेरणा से उनके भाजे बाबू ध्रुविनाप्रसाद गुप्तजी ने इस पत्रिका का प्रकाशन थावण सुदी २ सं० १९६६ में किया, इस पत्रिका में प्रगादजी की भारभ की रचनाएं प्रकाशित हुईं । यह पत्रिका लगभग १॥॥ वर्ष लगातार निकलती रही । फिर बीच बीच में बंद होती रही, और यह क्रम सं० १९७३ तक चलता रहा । फिर १० वर्ष के पश्चात् इनका प्रकाशन भारभ हुआ । पांच वर्ष इनके पुनः प्रकाशित हुए और पत्रिका सप्ताह के लिए बंद हो गई ।]

[यह पत्रिका प्रसादजी के आरंभिक साहित्यिक विचारों का व्यक्त करती है । इस लिए इनका महत्व ऐतिहासिक है ।]

इंदुकर = का० कु०, ४२, १०० ।

[सं० पुं०] (सं०) चंद्रकिरण ।

इंदुकला = चि०, १४५ ।

[सं० स्त्री०] (सं०) चंद्रकिरण । चंद्रमा की कला ।

इंदुहि = चि०, ५६ ।

(सं० भा०) (सं० 'इंदु') ।

इंद्र = का०, १५ । का०, ४७, १६० ।

[वि०, सं०] (सं०) विष्णुविष्णु । षष्ठ्यमान । भारत का प्रथम सम्राट् । देवताओं का प्रथम सम्राट् ।

[इंद्र—इंद्र का चचा उवशी वपु, बरखाखण्ड, कामायनी, अशुवाहन, ब्रह्मपि म है । कामायनी के इंडा सर्ग में बुधामुर के वप के प्रसंग में भी इनका उल्लेख है ।]

इंद्रजाल = का० ३८, ४६, ६७, १३६, १७०,

[सं० पुं०] (सं०) २२६, ७६१ । ल०, ७३, ७७ ।

जाडू । माया वप ।

[इंद्रजाल—और यह दगा सुंदर दृश्य,

नयन का इंद्रजाल शशिराम ।

कामायनी श्रद्धा सर्ग का यह प्रसंग (पृष्ठ ४६-४८ तक) इंद्रजाल शायब से 'माधुरी' वर्ष ७, खंड १, सन् १९२८-१९२९ में छपा था । २०—कामायनी की कथा ।]

इंद्रधनुष = श्रा०, ३४ । का०, १६४ ।

[सं० पुं०] (सं०) वह सात रंगों का अपवृत्त जा वर्षा ऋतु में सूर्य के विलाम दिशा में दीख पड़ता है ।

[इंद्रधनुष—'इंद्र' का २, किरण २, भाद्रपद १९६७ में सप्तम्यय प्रकाशित । चित्राधार में 'पराग' के अंतर्गत पृष्ठ १६४ पर संकलित । इंद्रधनुष के रंग और शोभा का वर्णन करने के उपरांत कवि कल्पना करता है कि यह क्या क्या है और अंत में कहता है—

पावम ऋतु की विजय वजयती मैं फहरत ।
नवल चिनरो सब रंगन को लिरि अनुहरत ॥

विषीं मनु के सप्त अक्षय का बग्या यह ।
विषी मेघ वाहन वाहन मैं घरे धनुष यह ॥

२०—चित्राधार और पराग ।]

इंद्रनील = का० २४ ।

[सं० पुं०] (सं०) नीलम, नीलमणि ।

इंद्रनभूटी = चि०, १५७ ।

[सं० स्त्री०] (सं० भा०) वारवहटा ।

इंद्रिय = का०, १३० । का० कु०, ८२ ।

[सं० स्त्री०] (सं०) शरीर के दश अंग या अवयव जिनसे बाह्य जगत् का वाघ या शरीर त्रिया संपन होती है । य दस हैं—पांच ज्ञानेंद्रिय और पांच कर्मेंद्रिय तथा म्यारहवा मन ।

इक्षु = चि०, ७४ ।

[वि०] (सं० भा०) एकांत । निरन्ता ।

इक = का० कु०, १८, ४२, ५१ । चि०, ३५ ।

[क्रि० वि०] (सं० भा०) ४२, ५१ । क०, ५६ ।

एक ।

इकट्टा = का०, १३१ । चि०, १० ।

[वि०] (हि०) एकत्रित । एक जगह बटोरा हुआ ।

इन्द्राकु = चि०, ५०, ६६।

[स० पु०] (सं०) एक प्रमुख सूर्यवंशी राजा।

इन्द्राकु नरा = व०, २६।

[म० पु०] (सं०) इन्द्राकु का कुल। राम दशरथ अन्न रथ्य आदि प्रतापी मघाट इन्द्राकु के वंशज थे।

[इन्द्राकु—ववस्वत मनु के पुत्र जो मूय वंश के आदि सस्यापक सघाट थे। प्रमराज्य और करणालय में इनकी चर्चा है।]

इन्द्राकुकुल = व०, १०।

[म० पु०] (सं०) इन्द्राकु राजा का वंश।

इच्छा = का०, कु० १२२। का०, ५३ ७२,

[म० स्त्री०] (सं०) १२२ १४१ १४३, २६२। बि० २२। ऋ० ७७।

वाछा चाह अभिलाषा।

इच्छित = व० १४।

[वि०] (सं०) राक्षिन् अभिलाषित।

इठलाना = आ०, १७। व०, ६। का० १००

[क्रि० अ०] (हिं०) १४० २५८ २६२, २८१।

इतराना गम्हर करना, गव स अचडना।

इडा = वा०, १६६, १७२, १८१, १८३

[म० स्त्री०] (सं०) १८५ १८६, १८६, १६० १६१ १६७ २०६, २०७, २१२, २१३ २१४ २२६, २३०, २४४, २७७, २७६, २८०।

मनु की बुद्धिता। बुद्धि की अविष्टायी देवा। इरा सरस्वता, भारती। वारणी।

[इडा—बुद्धि का अविष्टायी देवा तथा सरस्वत प्रदेश का रानी। >—कामायनी की कथा और कामायनी के चरित्र।]

इत = चि० ४१, ५३, ६६ १४७।

[क्रि० वि०] (हिं०) यहाँ। इपर।

इतना = आ० ४८। व०, १३। वा०, ८,

३८, ८४ १००, १०४, १४४, १४५ १६०, १६१, २०८, २२३, २३४, २३६, २७२। ऋ०, ७६। म०, १५। ल०, ४४ ७१।

इत मात्रा में, इत कदर इत समय में, इत बाव में।

इतर = व०, ६४।

[वि०] (सं०) अथ। दूमरा। नीच। माधारण।

इतराई = चि०, १४७, १५२।

[अ०] (अ० भा०) गम्हर स भर कर।

इतराई = आ०, ६८।

[क्रि०] (हिं०) इतरा गई।

इतराता = वा०, ६८।

[वि०] (हिं०) इठनाता हुआ।

इतिप्रलोना = चि०, १३३।

[अ०] (सं०) इस प्रकार छिपा हुई। इस प्रकार हुआ हुई।

इतिहास = वा०, ३८। ल०, ५२।

[म० पु०] (सं०) विगत प्रसिद्ध घटनाओं और पुरुषों का वानप्रम में अनुमार वगण। तवारीख।

इधर = वा० ११, ५२ ८२, १८१, २३३।

[क्रि० वि०] (हिं०) इस तरफ। इस ओर।

इधर उधर = वा० १७८।

[क्रि० वि०] (हिं०) इस तरफ उस तरफ। इस ओर, उग आर। इतस्तत।

इन = आ० ४४। व० ३१। वि०, ६४

[सं०] (हिं०) ७४। ल०, ४६, ७६।

इस शब्द का बहुवचन।

इही = ल० ७६।

[सं०] (हिं०) इन लोगों को हा।

इमि = चि०, ६१।

[क्रि० वि०] (हिं०) ऐम, इस तरह।

इष्ट = का० कु०, २८।

[वि०] (सं०) चाहा हुआ, ईमित, आकांक्षित।

इस = व०, ६ ११, २५, २६, ३०, ३१।

[सर्व०] (हिं०) वा० ८४, ८७, १५६ १५४, १७०,

२७०। ऋ०, ४०, ४१, ४८, ५६, ८१।

वर्तमान वस्तु का और सवेतबोधक शब्द।

इसीलिए = वा०, १६३। ऋ०, ५४।

[क्रि० वि०] (हिं०) इसी वजह से। इसी कारण से।

ई

ईयाँ = वा० कु०, ३१। वा, ८४।

[सं० स्त्री०] (सं०) दूमरे का नाम या उत्पन्न देखकर

जचना।

- [ईर्ष्या—कामायनी का एक सग। द० कामायनी की कथा।]
- ईर्ष्यापजन = का०, ८४।
[म० पु०] (म०) ईर्ष्या की हवा। दूसर के उत्कर्ष का दखकर जलन का भावना की हवा।
- ईप्सित = का०, १४।
[वि०] (म०) इष्ट। चाहा हुआ। प्रत्याशित।
- ईश = का० कु० ११६। का०, ६ ५३।
[म० पु०] (म०) चि०, ७४। प्रे०, ३।
ईश्वर। भगवान्। स्वामी। राजा।
मालिक। शिव।
- ईशकृपा = का० २६।
[म० ली०] (म०) ईश्वर की कृपा। भगवान् की दया।
- ईशान = चि०, १५५।
[म० पु०] (म०) अधिपति। स्वामी मालिक। शिव।
महादेव। परमात्मा। ग्यारह उपास्य म से एक। ग्यारह की मख्या। पूरव और उतर का कोना।
- ईश्वर = चि०, ५, ७४।
[म० पु०] (म०) भगवान्। परमात्मा। शिव। याग शास्त्रानुरूप बलेश। बर्माविपाक तथा अक्षय स पृथक।
- उ
- उंगली = का० कु०, ६३। का०, ६७, २००,
[म० ली०] (हि०) २१३। क्र०, ७२।
हथेली से जुड़ा हुई पाँच शाखाएँ जिनमे नीचे पकड़ी जाती हैं। इन पाँचों में से प्रत्येक को उंगली कहते हैं।
- उह = चि० ४।
[म०] (हि०) धम्बीकार घृणा या बेपरवाही का सूचक शब्द। वेदनासूचक शब्द। कराहने का शब्द।
- उकसाना = ल०, ५६।
[क्रि०] (हि०) उभारना। ऊपर उठाना। उठा देना। उत्तेजित करना।
- उखडी = का०, १६।
[क्रि०] (हि०) दृढ स्थिति से हटी।
- उगना = म्रि०, १४ ७८।
[क्रि०] (हि०) उदय होना। जमना प्रकुरित होना। उपजना। उपजना।
- उगलना = म्रि०, २०। का० कु०, २४, २५।
[क्रि०] (हि०) का०, १४।
गुम तथ्य या बात बता देना। पट के भीतर की चीजा का मुख द्वारा बाहर निकालना।
- उम = ल० ७७।
[वि०] (म०) कठार। भयकर। उकट। तीव्र। प्रचंड। प्रचल। घोर। रौद्र।
- उचित = का०, २३। का० कु०, ७३। चि०, ६२, ७।
[वि०] (म०) योग्य। ठाक। मुनामिव। वाजिव।
- उम्र = का० २२८।
[वि०] (म०) उतन। ऊँचा। श्रेष्ठ। उत्तम। महान। बडा।
- उञ्जु हल = का० ३८ २२०। प्रे० २४।
[वि०] (म०) जो श्रुतबद्ध न है। क्रमहीन। निरकुश। म्वञ्जावारी। उड्ड।
- उञ्जुलित = का० १६१।
[वि०] (हि०) छतका हुआ।
- उच्छ्वास = म्रि०, ५३, ७१। का० ५४, २६०।
[स० पु०, (म०) ल०, ११।
उसास। ऊपर का आर रीची हुई माम। श्वास। प्रय का विभाग या प्रकरण।
- उच्छ्वासमय = का० कु०, ७३। का०, ६१, १६५,
[वि०] (म०) २८२।
उच्छ्वास से पूरा।
- उछलि = चि०, ७०।
[क्रि० वि०] (ब्र० भा०) उछल कर।
- उछाल = का०, ८३। चि०, १६१।
[म० पु०] (हि०) महत्ता ऊपर उठने की क्रिया। ऊपर उठने की हद। ऊचाई। छोटा। फलौंग।
- उछालित = चि०, ४२।
[क्रि०] (ब्र० भा०) उछालकर।
- उछाह = चि०, ६६।
[स० पु०] (ब्र० भा०) उत्साह। उमग।
- उजडा = का०, २०, ४६, १५८, १६०, १६६,
[वि०] (हि०) १७१।
ध्वस्त। मस्त। यस्त। नष्ट।

उजरी = चि० ५१।
 [चि०] (१०) उजली। नष्ट हुई।
 उजला उजले = का०, १६६, २३३।
 [चि०] (हि०) उज्वल, निमल, साफ। श्वेत।
 उजरी = चि०, ५६।
 [क्रि०] (१० भा०) उजाड़ी हुई। नष्ट की गई।
 उजाला = का०, ५१, ६२, ६३। का०, १६,
 [स० पु०] (हि०) २८४। फ० ४८।
 प्रकाश। अपने कुल, परिवार या दश
 काल में उत्तम।

उज्जल = चि०, ४३।
 [चि०] (१० भा०) (१० उज्वल)।
 उज्जल = का०, १७, ५८, ७२। का० कु०,
 [चि०] (म०) ३८, ४१, १२०। का० १०२ १२५,
 १३०, १४१ १६८ २५१ २७६।
 चि० ७१, ७२। फ०, ६६। म०
 ८। ल० ११, १२, ३०, ३४, ६७।
 उजला। सफे। साफ। चमकता
 हुआ। निर्दोष। पवित्र। निमल
 स्वच्छ।

उठजों = ल०, ३२।
 [स० पु०] (हि०) कुटियो, भोगडिया। (म०) उठज ग
 का हिंसा बचवचन।

उठ = ल० १।
 [क्रि०] (हि०) उठो। (द० 'उठना')।

[उठ उठ री लघु टाघु लोल लहर—स्व० कृष्णदेव
 प्रसाद गीत बेच बनारसी का 'तरंग'
 पत्र के पहले खं में सन् १६३३ ई० में
 'लहर' शीर्षक से मुद्रणपृष्ठ पर सवप्रथम
 प्रकाशित और 'लहर' का पहला गात।
 भवजीवन के मुखे तट पर कण्ठा की
 अगडई के समान और मलयानल की
 सुखद छाया के समान मानद की लोल
 लहरिया टिक कर छहरे। उठना
 हुई मानद लहरा शीतल कामल चिर
 भाङ्गा सी और दुर्लभित हठोले वचपन
 की भाँति लोट जाती है जब कि कवि
 का भाग्रह है कि मानद का खेल वह
 ठहरकर कवि स खेल ले। मानस में
 उठ उठ कर गिर गिर कर माने में वह
 जो निगलन छाट जाता है उसमें जीवन

तट की रेत में और भी दुख का रेखाए
 उमट जाती है और उसमें मानद
 उर्मिया का तरल हृदी भर जाती है।
 इसलिए कवि उमस भाग्रह करता है—
 तू भूत न री, पवज बन में,
 जीवन के इस मूने पद में
 धो धार पुलक स भरी दुलक
 भा जून पुलिन के विरस भवर।
 १०—लहर।]

[उठती है लहर हरी हरी—सुथवा का चार पक्ति
 का गायन। प्रसाद मगीत पृष्ठ १३ पर
 संकलित। सुथवा नाम गाता है कि
 मङ्गधार में धार निशा म बड़ा है न तो
 नक्षत्र दिखाई पडत है, सत्तार निम्नत्व
 है वही कुछ दिखाया नहीं पडता, प्रलय
 पवन का पडदा लग रहा है और पतवार
 पुरानी है, कहीं कुछ नहीं फिर भा
 सपर्य मचा हुआ है। ऐसी स्थिति में भी
 घमडाया नहीं। धर्म स बड़ा पार लगेगा
 —यह स्वर किमने छेड़ा है। द०
 'प्रसाद मगीत'।]

उठना = का० १७, ३०, ५०, ५१, ७७।
 [क्रि०] (हि०) क०, ८। का० कु०, ८, १६, ७५,
 ६५। ल०, ८, १०, ३१ ३६, ५१
 ६८, ८२ ६६, ११८, १२५, १३६,
 १३६, १४३, १४८, १५३, १५६,
 १६४ १६८, १६६, १८४ १८५,
 १८६, १६०, २०६, २१२, २२१,
 २३३, २४६, २४८, २५४, २५६,
 २६३, २६२। चि०, ३४, ४६, ५८,
 ६५, ७०, ७४ १४३। फ०, २६, ६६,
 ७३। म०, १। ल०, ६ १३, ३४, ४२,
 ४५, ४७, ४८ ५२, ६६, ७० ७६।
 अगर बढना, उमट होना। घमात्त
 होना।

उड़ = का०, २५३। फ०, ६८।
 [क्रि०] (हि०) उडकर। उडो।

उड़ती = का०, १७५।
 [क्रि०] (हि०) हवा में एक स्थान से दूसरे स्थान पर
 जाता। पृथक होना। पाकी पडता।
 उडना = का०, १४। का० कु०, १८, २५।

(हि०) ६६ १०७। कर्ण, ८८, १६२, १८६।

वायु मे एक स्थान से दूसरी जगह जाना। पख के सहारे हवा में ऊपर उठना। सहराना फहराना। फीका पडना, नष्ट या लुप्त होना।

उडा = ऋ०, ७०।

[क्रि०] (हि०) उडना का भूनकालिक क्रिया।

उडाय = चि०, ५, १७०।

[क्रि०] (प्र० भा०) उडाकर। वायु में तैराकर। भगाकर।

उडाती = ऋ०, २८।

[क्रि०] (हि०) उडने में प्रवृत्त करना।

उडावत = चि० ६२।

[क्रि०] (प्र० भा०) उडा रहा है।

उडुगन = का०, १७८, चि०, ३१, १०८।

[सं० पुं०] (हि०) तारा मडल। नक्षत्र मडल।

उडु दल = का०, २३५।

[सं० पुं०] (म०) ताराओं का समूह। तारा मडल। पद्म दल। पद्मिया का ऋड।

उडुराज = चि०, १४६।

[सं० पुं०] (हि०) ताराओं व स्वामी। नक्षत्राधिपति। चंद्रमा। पक्षीराज।

उतना = का० कु०, ६, ६१।

[वि०] (हि०) उस मात्रा मे, जितना वह है उसके बराबर।

उतरना = का० कु०, ३०। का०, १४, १६, २७१। चि०, ४७, ५८, ५६, ६२, १०१। ऋ०, ४८।

[क्रि०] (हि०) ऊँचे स्थान से क्रम से नीचे की धार माना।

उतराई = ल०, ४३।

[सं० स्त्री०] (हि०) ऊपर से नीचे धाने की क्रिया। नदी के पार जाने का महसूल।

उतारना = प्र० सं०, ८५। ऊपर से नीचे लाना। हटाना। दूर करना।

[उतारोगे अथ कव भू भार—स्कंदपुराण का गीत, प्रसाद संगीत में पृष्ठ ८५ पर सकलित। मानृपुराण और मुगदल का समवत मान। प्रलय का हाहाकार मचा हुआ है। भूभार हटने के लिए अथ कव

अवतार लोमे। कवि पुकार पुकार कर भगवान् को सावधान कर रहा है अथ वह जाने क्याकि वह पुकार चुका। द० प्रसाद संगीत।]

उताली = चि०, ५८।

[म० स्त्री०] (प्र० भा०) शीघ्रता। उतावली।

उत्कटा = का०, ५०, १७६, १। ऋ०, १२, ५४।

[सं० स्त्री०] (सं०) प्रबल इच्छा, प्रबल कामना।

उत्तम = का०, १६२। चि०, ५।

[वि०] (सं०) सर्वश्रेष्ठ सर्वोत्कृष्ट।

उत्तमता = का० कु०, ८२, ६३, १। का० २७१।

[म० स्त्री०] (सं०) श्रेष्ठता, उत्कृष्टता।

उत्तर = का० कु०, ४५। का०, ८१ १००,

[म० पुं०] (सं०) १५८। चि० ६८। म०, ३।

दक्षिण दिशा के सामने की दिशा। जवाब। प्रतिवाद। प्रतिकार। एक बहिक गीत। विराट राजा का पुत्र।

[उत्तर—उत्तर] शीर्षक से विनोद विदु मे 'इदु' कला ४ किरण ६ जून १६१३ मे प्रकाशित और मकरद विदु के अतगत चिन्ताधार मे पृष्ठ १८४ पर सकलित। द०—चिन्ताधार एव मकरद विदु।]

उत्तरगिरि = का०, १७।

[सं० पुं०] (सं०) उत्तरी पहाड। हिमालय।

उत्ताल = भा० ६०।

[वि०] (सं०) लहराता हुआ। उच्चो तरगावाला।

उत्ताल जलधि = भा० ६०।

[मं० पुं०] (सं०) ऊँचो तरगोवाला लहराता समुद्र।

उत्ताल जलधि वेला = भा०, ६०।

[सं० स्त्री०] (सं०) महासागर का किनारा। विशाल सिंधु का तट।

उत्तुग = का०, कु० ५३, १०४, का०, ३।

[वि०] (मं०) चि०, ६६।

बहुत ऊँचा।

उत्तेजना = का०, ६२। ऋ०, ५३। ल०, ७१।

[सं० स्त्री०] (सं०) प्रालाहन। प्रेरणा। बगवा।

उत्तेजित = का०, १३४। १६५, २३७। म०,

[वि०] (सं०) १५। ऋ०, ३१।

प्रालाहित। उत्प्रेरित।

उत्सर्ग = का०, ३०। पा०, ५७, १०५।
 [म० पु०] (म०) त्याग। छोड़ना। दान। यौत्रावर।
उत्सव = का० ८८ १०२, ११५। चि० ६४।
 [म० पु०] (म०) प्रे० १३।
 उछाह। मंगल काय। धूमधाम।
 शानद मंगल का समय। त्यौहार।
 पव। ममारोह।
उत्सवशाला = ल० ४८।
 [म० का०] (स०) शानद मंगल का काय सपन्न करने का
 स्थल। रंग शाला।
उत्साह = का० कु० ११७। वा० २७ ५१।
 [म० पु०] (म०) १४, ६०, १०६, ११०, १८१ १८२।
 प्र० १८। ल० ७०।
 उमग। उछाह, जोश। हीमला।
 साहस। वीर रस का स्थायी भाव।
उत्साह पूर्ण = का० कु०, १६।
 [वि०] (स०) जोश से भरपूर।
उत्साहित = चि० ६५।
 [वि०] (स) जोश से भरा हुआ उमगित।
उत्साही = का० २५७।
 [वि०] (स०) उमग से पूर्ण। जाशाला। उन्माह से
 पूर्ण। होमलवाला।
उत्सुक = का० कु० ८०। का० ५५।
 [वि०] (स०) उत्कण्ठित, इच्छुक।
उत्सुधि = घ्रां० ४१। का०, १६, १२१ १६०।
 [म० पु०] (स०) समुद्र। सागर। सिंधु।
उत्सुधी = चि० ४८।
 [स० पु०] (ब्र० भा०) (' ' उदधि')।
उत्स्य = का०, २४१ २४४। चि०, २४ ३६,
 [म० पु०] (स०) १०१। क० ३८, ५६ ६७।
 उगना। निकलना। प्रकट होना।
 बाहर आना।
उत्स्यत = चि० १०७।
 [क्रि०] (ब्र० भा०) उदय होता हुआ। निकलता हुआ।
उद्दार = का० ३२। वा० ४६ ८१ १५६
 [वि०] (स०) १७२ २३८, २४८। चि० ४७ ५२,
 १४८। क०, ४१। ल०, ३४। म०
 , १७।

विशाल हृदय का, व्यापक हृदयवाला,
 दाता।
उत्पारता = का०, १४८। क०, ५२।
 [म० स्त्री०] (हि०) सहृदयता, उद्योग, दानशालता।
उत्पास = का०, १८० २३४। चि०, १६६।
 [वि०] (हि०) ल०, ४४ ४८।
 रंजीत, विरक्त हुआ। तटस्थ।
उदासी = का०, १०६ ११० १२०।
 [म० स्त्री०] (हि०) विरक्तता। उदासीनता।
उदासीन = घ्रां० ५०। क० ६१।
 [वि०] (म०) विरक्त। जिसका किसी कारण से
 किसी वस्तु से मन दृट गया हो।
 तटस्थ। निरपेक्ष। भगडे से प्रलग।
उदासीनता = का० २६६।
 [म० स्त्री०] (स०) विरक्ति, उदासी।
उद्धित = ६५। का० कु०, का०, २३, ६७,
 [वि०] (स०) २६१। चि०, १६४ म० ६।
 उग हुए। प्रकट हुए। निकले हुए।
 प्रकाशित।
उद्गम = का० १४० १६३, २६५।
 [म० पु०] (स०) निकाम। निकलने का जगह। मूल
 स्थान। श्रकुर।
उद्गीथ = का०, ३४।
 [स० पु०] (म०) सामवेद के गायन का एक ऋग।
उद्गीथ = का० ८३।
 [वि०] (स०) ऊपर गदन किए हुए।
उद्घोषित = प्रे० ७।
 [वि०] (म०) सावजनिक रूप से सूचित की गई।
उद्दाम = का०, ६१, ११६।
 [वि०] (स०) बधन रहित। निरकुश। उग्र। उच्छ-
 खल। स्वतंत्र। गभार। मदान।
उद्देश्य = का० कु०, ८३। क०, ८६।
 [वि०] लक्ष्य। इष्ट। मतलब का। कहने योग्य
 वह वस्तु जिस पर ध्यान रख कर
 कोई बात कहा जाय। अभिप्रेत (पदाय
 या बात)।
उद्धत = ल० ७८।
 [वि] (स०) उच्छ खल। उत्कट। उग्र। प्रबड
 प्रगल्भ।

उद्धार = वि०, ५२। ल, १२।
 [सं पु०] (सं०) मुक्ति। छुटकारा।
 उद्बुद्ध = का० ६०।
 [वि०] (सं०) जाग्रत। बुद्धिमान्। प्रबुद्ध। चतय।
 ज्ञान प्राप्त किया हुआ।
 उद्भ्रात = का० ४६, ६२। ल० २१।
 [वि०] (सं०) भ्रान्ति स युक्त। भूला हुआ। चकित।
 भौवक्का। घूमता या चक्कर मारता
 हुआ। उमत्त, पागल। विह्वल।
 उद्यत = क० ३१।
 [वि०] (सं०) मुहूर्त। तत्पर। तगा हुआ। उठाय
 हुआ। ताना हुआ।
 उद्यम = क०, ३०।
 [सं० पु०] (सं०) प्रयाम। प्रयत्न। उद्योग। मेहनत।
 काम। धमा। व्यापार। व्यवसाय।
 पशा।
 उद्यान = क०, ६। वि० २१।
 [म० पु०] (मं०) धमीचा। बाग। फुनवारा। झाराम।
 [उद्यान लता—विनाधार' म पराग के अंतर्गत उद्यान
 लता शाक स पृष्ठ १५३ पर सकनित
 ब्रजभाषा की एक पारपरिक कविता।
 लता तुम एकांत नीरस तर से जितना
 ही पंच बटाकर मिलना चाहती ही
 उतनी ही इसका दक्षता बढ़ता जाती
 है पर क्या किया जाय माली तुमको
 जहाँ सीचकर लगाता है वही तुम्हारा
 मन भाता है इसलिए उम नीरम के
 गले लोड कर तुम लग रही हो। द०—
 विनाधार और पराग।]
 उद्योग = क०, ११। का० कु०, १३। वि०, ६,
 [सं० पु०] (सं०) ६५, १०१।
 प्रयत्न। मेहनत। परिश्रम, प्रयास।
 व्यवसाय।
 उद्विग्न = म० ३।
 [वि०] (सं०) उद्विग्न। घाकुल। घबडाया हुआ।
 व्याकुल।
 उद्वेग = का० कु०, १३, ७३। का०, ५२।
 [म० पु०] (सं०) म०, ५४।
 चित्त की व्याकुलता। घबडाहट।

मनोवेग। घ्रावण। जोश। भाक।
 सचारी भावों म से एक।
 उद्वलित = का० ६ १२१ २२१। ल, २।
 [वि०] (सं०) छनका हुआ। छनछनाया हुआ।
 उधर = का० ४, २३ ३२ ८६, १० १४१,
 [क्रि०वि०] (हिं०) १८५, १८६, २१५ २१८ २३३
 ५३, २१७।
 उम तरफ। उम घार। उहाँ।
 उगार = का०, २६। ल० ३६।
 [म० पु०] (हिं०) ऋग। वज्र। छुटकारा। उडार।
 उन = श्रा० २५, ४६। का० कु० २५
 [मव०] (हिं०) २६। का०, १० ६६ १५३, १५८,
 १७१, १७६, १८५, १८६, २००,
 २३६, २५४, २७८ २६१। वि०,
 ६५। म० २, ३। ल, ४४, ४६।
 'उम' का बहुवचन।
 उनीदा = वि०, ३। ल०, ३१।
 [वि०] (हिं०) नीद स भरा हुआ, ऊनना हुआ। उतिद्र।
 उन्नत = का० कु०, ३०। का०, १३१, १६६
 [वि०] (सं०) २४७। वि०, १३। ल०, ६३।
 उत्कृष्ट। श्रेष्ठ। ममूद्ध। बडा हुआ।
 बडा। महान्।
 उन्नतहृदय = म०, २३ २४।
 [वि०] (सं०) विशाल हृदयवाता। उगार। मटान्।
 उन्नति = का०, ११० १८१, २३५, २६८।
 [म० श्रौ०] (सं०) म० ६६।
 वृद्धि। बढती। बढोत्तरी। ममूद्धि।
 का राग।
 उन्निद्र = का० कु०, १००। का० ६८, १७१।
 [वि०] (सं०) (०० ऊनीग'।) (पु०) नीन न तगने
 का रोग।
 उन्मत्त = का०, ६८, ७१, ६२।
 [वि०] (सं०) मतवाला। पागल। मदाध। वयुध।
 उमद = का०, १८४, १८३, २६२।
 [सं० पु०] (सं०) पागलपन, उमाद। (वि०) पागल। मत्त।
 उन्मन = का० २८५।
 [वि०] (सं०) श्रयमनस्क।
 उन्माद = श्रा०, ५४। का०, ७०, ६१, ६७
 [सं० पु०] (सं०) १००, ११६, २०१।

पागतपन। विनिता। रग र हावीग
मातारी भावा म स एष।

उमात्क = प्र० १८।

[नि०] (म०)

नाग करनवाला। पागत करानाया।

उन्मीलन = बा० ११ ७१।

[म० पु०] (म०)

(घटित वा) खुलना। तितना। विरगित
हाना।

उन्मीलित = सं० ३७।

[नि०] (म०)

विघगित। गुना हुआ। प्रघागित।

उमक्त = बा० कु० ७। बा० ८६ १५७।

[नि०] (म०)

१५८ १६१ २३४ २११। म० ६।
गुना हुआ। वनरहित। तिगप। मुक्त
किया हुआ।

उमेप = बा० कु० १२।

[सं० पु०] (सं०)

अति वा खुलना। चमक। विघाम।
तिलना।

उही = बा० कु० ७१। बा०, २७८ २८७।

[सव०] (हिं०)

प्र० ६।
उनको।

उपन्रण = बा० १०। बा० १७ ५८ ८२

[सं० पु०] (म०)

१४१।
सामन। मामशी। सामान।

उपकार = बा० १०० २०६ २२६। ऋ ६१।

[सं० पु०] (म०)

हित साधन। भलाई। नेकी। लाभ।

उपकारी = बा० १४६ २१०।

[नि०] (सं०)

उपकार करनेवाला। भलाई करनेवाला।

उपकूल = बा० १६०।

[म० पु०] (सं०)

तट किनारा। किनारे का भूमि।

उपचार = बा० ६७ ६५ १०५ १६६।

[सं० पु०] (सं०)

व्यवहार। प्रयोग। विनिता। इलाज
या सेवा। पूजन व अग।

उपजती = ऋ० ६१।

[क्रि०] (हिं०)

पदा हाती। उत्पन होती। बरता।

उपजावन = वि०, ६३।

[क्रि०] (अ० या)

पना करते हैं। उत्पन करते हैं।

उपद्रव = बा० १६३।

[सं० पु०] (सं०)

उत्पात। हलचल। ऊपम। दम।
पसाद।

उपधान = बा० ३६। म०, २०।

[म० पु०] (म०)

तर्किया। गृष्ट्या। विगत। प्रय।
प्रणय।

उपभोग = बा० ६६।

[म० पु०] (म०)

निधी वस्तु व व्यवहार का मुग वा
घाननना। काम म नाना। भरतना।

उपयुक्त = प्र० २१। म० २७।

[नि०] (म०)

वाग उचित। याजिव। मुनातिव।

उपयोग = बा० कु० १३। बा० १६३। म०,

[म० पु०] (म०)

१६ १६।
काम। व्यवहार। प्रयाग। वामना।
नाम पायना। प्रयाजन। धावश्यकता।

उपयोगी = बा० १७६।

[नि०] (सं०)

काम म धानेवाला। प्रयोजनय।
सामकारी।

उपल = बा० १६७ २७८।

[म० पु०] (सं०)

परयर। रल। बात्त। घाता।

उपलग्रह = बा० कु० ५७ ६६।

[सं० पु०] (सं०)

परयर का दुकष। गान्त का दुकष।
रल का दुकष। घान का दुकष।

उपलत्र = बा० कु० ३०।

[नि०] (सं०)

प्राप्त।

उपलोपम = बा० २३६।

[नि०] (सं०)

परयर के समान। बात्त के समान।
रल के समान। घोला व समान।

उपजन = बा० कु०, २ ३५ ४६। वि० २२

[म० पु०] (सं०)

६३। प्र० १३।
वाग कुज आराम उधान वाटिका
पुनवारी।

उपस्थित = बा० ३३।

[नि०] (सं०)

विद्यमान। मौजूद। हाजिर। ध्यान म
ध्यावा हुआ।

उपहार = बा० १७। बा० कु० ५२। का०

[म० पु०] (सं०)

१८१। ऋ० ७२। वि०, ५७। ल०,
६२ ७६। प्र०, १३।
भेंट। नजर। नजराने की वस्तु।

उपहारों = बा० १०। ऋ०, ६७।

[सं० पु०] (हिं०)

उपहार (सं०) का बहुवचन।

उपहास = का०, २३। चि०, ६७। ल०, ११,
[स० पु०] (म०) ७६। ऋ०, ३३।
निदामुक्क हास। ह्मा। ठ्ठ्ठा। मखीन।

उपादान = का०, २३७।
[म० पु०] (म०) प्राप्ति। मिलना। स्वीकार। ग्रहण।
वह कारण जो स्वयं कार्य रूप में परि
णत होता है।

उपाधि = चि०, १३६।
[म० स्त्री०] (स०) प्रतिष्ठामुक्क पद। खिनाव। श्रौर को
श्रौर बतानेवाला छन। कपट। उपद्रव।

उपाय = का०, ११२, १२४, १७०, १७१,
[स० पु०] (स०) १८१, १६६, २६। चि०, ५०।
समीप पहुंचना। प्रयत्न। साधन।
युक्ति, तरकीब। तरीका।

उपाख्यान = चि० ४६।
[म० पु०] (स०) प्राचीन वृत्तत। कथा-कहानी। पुरानी
कथा।

उपालभ = का०, १२७। ऋ०, ४६।
[म० पु०] (म०) निदा, बुराई। उलाहना। शिवायत।
शोरहना।

उपात्र = चि०, १६६।
(ब्र० भा०) { ३० 'उपाय'। }

उपासना = का०, ७१, १५७, १६१, २४०, २६४,
[स० स्त्री०] (स०) २६७।
आराधना। पूजा। परिचर्या।

उपेक्षा = का०, १५७, १७५। ऋ०, ८६।
[स० स्त्री०] (स०) उदासीनता। लापरवाही। विरक्ति।
[उपेक्षा करना—करना पृष्ठ ८६ पर सकलित
कविता। तुम शीतल रहो, हम जलने
दो। तमाशा इसका तुम देखो श्रौर
मुझे हाथ मलने दो। तुझे हमारी शपथ
है क्याकि प्रेम के आश्रय म कवि
कहता है कि किमी पर मरना यहा
सा दुख है श्रौर इस प्रकार सवस्व
निष्ठावर करनेवाले की उपेक्षा करना
यह भी उपेक्षित का मुख ही है।
३०—करना।]

उपेक्षामय = का०, ४।
[वि०] (स०) उपेक्षा से पूर्ण। विरक्तिमय।

उपेक्षित = का०, १६७। ऋ०, ३७।
[वि०] (स०) जिमकी उपेक्षा की गई हो। तिरस्कृत।
अनादृत। जिसका अनादर किया गया
हो। अवमानित।

उफनी = ल०, १७।
[क्रि० वि०] (हि०) ऊपर आई। उफनाई। उबली। सोनी।

उगार = का, कु०, १२।
[म० पु०] (हि०) मुक्ति, उद्धार। किमा को जिमी कष्ट
स बचा लेना।

उभचूभ = का० कु०, १५।
[क्रि० वि०] (हि०) खचालच। मुष्टमुह। ऊपर तक भरा।

उभरी = का, २५८।
[क्रि०] (हि०) सतह से ऊपर उठी हुई। ऊपर का
आर निकली हुई।

उमग = का०, ८५, २२६। चि०, ४२। ल०,
[स० स्त्री०] (स०) ४६, १४।

उल्हाह। चित का उभाड। मुख
दायक मनावेग। जाश। अधिकता।
पूणता।

उमगित = चि०, ६४।
[वि०] (स०) उत्साह पूण। उमग से भरा हुआ।

उमगा है = चि०, ६५।
[क्रि०] (ब्र० भा०) उमगित या उल्हाहपूण होता है।

उमड = का०, ८, २६, १०६, १२२। ल०,
[म० स्त्री०] (हि०) ५७।

उमडन की क्रिया। वाट। वडाव।
[उमड कर चली भिगोने आज—'सवोधन' शीपक
से मनारमा, खड २ भाग २, स० १,
सन् १६२७ में प्रकाशित, प्रमादमगीत म
पृष्ठ ६० पर सकलित स्फदगुप्त नाटक की
आठ पक्तिया की कविता। विजया
द्वारा ग्रिय की स्मृति म गाया गया
गीत। 'तू इस श्रौर फिर कर दख ले
तुम्हारे निश्चल अचल का छोरे नयन
का प्रतिकूल जलपारा उमड कर भिगान
चला है। तुम्हारा यह क-पनामय
लोक श्रौर हृदय की अतरतम मुसकान
प्रेम की उस अरणिमा में लय है लव
लीन है? इन भासा की कोर का श्रौर
तो देखो।]

उमङ्गता = का० कु० ६०। १० का० ५४। ६६।
[वि०] (हि०) बड़ा हुआ। गोमा स घाफर निर
ताता हुआ।

उमङ्ग = वि० ११ ६५।

{त्रि०} (प्र० भा०) बड़ा। गोमा स घाफर निरलतन।

उर = शी० ५४। का० १८, २१० २४६।

{म० पु०} (म०) वि० २२ २२। भ० २६। ल० २३।
हृत्प। मन। तिन। धाती। वक्ष्यवत।

उरस्थल = का० कु० २६।

{म० पु०} (म०) हृत्पस्थत। वक्षस्थल।

उराहिनो = वि० ६०।

{म० शी०} (प्र० भा०) (०० उराहना।)

उमियौ = १० २६।

{म० शी०} (हि०) नहरिया। तरगें। पाडा। दुस। निगात।
(म०) ऊमि वा हि० बहूनवन।

उमिल = शी० ६८। का० ३५ ३६ १७६।

{वि०} (हि०) तरगिन। जिसम जहरेँ उठा ही।

उर्रे = का० कु० ५७।

{न} (म०) उपजाऊ। जरछज।

उरेशी = वि० १ ६ ७ ८ ९ १० ११।

{म० मी०} (म०) इशपुरी का एक प्रथमा।

[उचशी—एक कविता। ०० विवाधार।]

उलम्भ = का० २१६ २३०।

{म० मी०} (हि०) फसाव घटवान। गीठ। वित्त।

उलम्भना = का०, ३५।

{क्रि०} (हि०) फनना। घटवता।

उलम्भन = शी०, २५। का० २११ २३५

२८६। प्र० ६।

उलम्भन का स्थिति या भाव। (०
'उलम्भ')।

[उलम्भन—'उलम्भन' शीपक स मनोरमा खड ०,
भाग २ म० ५, सन् १६२७ मे प्रका
शित स्वदगुप्त का अगरे धूम की श्याम
वहूरिया गात प्रसाद संगीत म पूछ
६६ पर सक्कित। एक समाहक
माषक रसमिद्ध गीत। विजया स्वदगुप्त
की अपने की अर्पित करती हुई इस
गाता है—अगरे धूम का सोरभ मेरा
इत अनको स उनम्भा हुआ है और माद
कता की लाली क डार पनकी स

रमि है। हृत्प रना मनेग पनमात
म तुम ध्यातुन विजरी गा चमका।
गताधु रनी म उनभ हा घोर
घाफर प्रस क प्यार म। प्रणुप वा
ग्राहुतना गी गी वन गावर जावन
स उनभे घोर उगाव मन वा मागा
प्रेम प्रनाभन म घटकी रह। जावन क
भविष्य म घाति क प्रवाशन वा विराणु
उरम्भा रह क्याकि य मुनरित रय
पना घाफ क ममकनन क बारण
नायेगा। इय घाटुन जावन वा पहियो
दन प्रमाघाता ग घोर मर दुम के
अगणिा घनुनावा ग मुगर रह। जावन
वा घ उलटी शीमे प्रम वा घटवन म
बुद्ध मासित हा घोर भीर क निग
घनुदय (प्रमा क) निरकार से नाछित
राना रह। प्रम वा घ टुवन पानना
उनभा रह। फिर चाट निर्यता क
क चरणु म इम टुवरामो ताकि मुमका
भी मुम मित्र। यह घल्यत भावप्रकण
प्रमवधान है। ००—प्रसाद मगीत।]

उलम्भन क्षतिरा = का० १६५।

{म० मी०} (हि०) फनने की बल। उलम्भान रूपा सता
वा कलरा।

उलम्भना = का० २०५।

{क्रि० प्र०} (हि०) फसना घटवना लगेट मे पटना।

उलम्भा = शी० ६७। का०, १२७ १३५ १५८।

{क्रि०} (हि०) ल० ४४, ४८।
फमा।

उलम्भाये = शी० ६०।

{क्रि०} (हि०) फनाए।

उलम्भी = का० ३६ ११५ ११६ १७७ १८२।

{वि०} (हि०) फमी हुई।

उलम्भी अलम्भे = का० २६।

{सं० भा०} (वि०) फसा हुई या फापन म सुयो हुई वाली
की लटे।

उलटता = ल०, ५४।

{क्रि० प्र०} (हि०) पलटता।

उलटी = का० १६२।

{वि०} (हि०) विपरीत, विरुद्ध।

उल्लाहना = का० कु०, ८४।
[स० स्त्री०] (हि०) उपासक, गिना, शिक्तायत । निदा ।

उलीच = ऋ, ३२।

[स० त्रि०] (हि०) उडेल ।

उल्का = का०, १४।

[स० स्त्री०] (स०) तीर प्रकाश । तज ज्वाना । जलती तकडी ।

उल्काघारी = का०, २०४।

[वि०] (हि०) जलती तकडी का प्रकाश या ज्वाना लिए हुए ।

उल्लाधन = का० कु०, १२१।

[स० पुं०] (स०) लापना । पार होना । टांकना । प्रति क्रमण करना ।

उल्लासित = का० २५८।

[वि०] (स) प्रमत्त । खुश ।

उल्लास = का० कु०, १० ५४ ६६, ७२। का०

[स० पुं०] (स०) ३० ६३, ६५, ६४ ११६ १४० १४५ १८१, २२० २७८ । भ० ३६, ८६ । प्र० ११ । ल० ६५ । प्रमत्तता । खुशी । उमग ।

उल्लासपूर्णा = का०, २४२।

[वि०] (स०) प्रमत्ततामय । उमगमय ।

उल्लासशील = का०, १६१।

[वि०] (स०) प्रमत्त स्वभाववाला ।

उल्लास सहित = का कु० ४६।

[वि०] (स०) प्रमत्ततापूर्वक ।

उवारो = वि० ५२।

[क्रि०] (प्र० भा०) उद्धार करें ।

नशीर गृह = का० कु०, ६२।

[स० पुं०] (स०) सुगन्धित खम स बना हुआ घर ।

उपा = का० कु०, ६६, ७६ । का०, १०, २३,

[स० स्त्री०] (स०) १६८, १७१, १७२, १७६, १६७ २१७, २८६ । भ०, २८, २६, ४८ ६४, ६७ । प्र०, ८ । ल०, १०, ११, २०, ३२, ३५ ४० ।

[उपा सुनहले तीर धरसती—कामायनी का एक पद । विनाय २०—कामायनी क्या ।]

उपा पट = का० कु०, ११ । वि०, २८ ।

[स० पुं०] (स०) लाल दख ।

उपा सी = का० १७२, २१७ । न० १६१२० ।

[वि०] (हि०) ज्ञा व समान ।

उप्या = का ७७ । भ० ८६ ६ ।

[वि०] (स०) गरम । तज । उप्पा ।

उस = श्रा०, ७८ । व० ८ ६, ३१ का०

कु०, ४२७ । का० ६ ४६, ७०, १०० १ १, १३६ १६०, १४८ १६६, १७०, १८४ १८५ २१६, २६५ । प्र० २, २० । ल० ५६ ६०, ६१ ६५ ६६ ७५ । भ० २४ ४१, ४७ ५२, ७३ ७४, ८३, ८६ । वह' का कनकारक ।

[स दिा जत्र जीवन रे पथ मे—लहर पृष्ठ १७—१८ पर मकलित रहस्यवादा गात । जीवनयात्रा में उम दिन जब कवि का अक्लिकन चतन अपना दूटा पान ल मानस मदिर मे आनन का रटन लकर प्रविष्ट हुआ ता उमके हृदय के छित्र पात्र मे वह रम इतना भर भर धाता था कि बरबस उसमे समाता न था । इस निकटस्थ अपरिचित प्रदेश म यह दृश्य देखकर वह म्बय चकित हा गया कि एसा आनद कहा छिया था । आनदरूपी मगल की वपा हो रहा थी, कष्ट भी मुवद ये और रीती हुई आशा उह अपना धन समझकर बटार रही थी । ३०—लहर ।]

उसपर = का० कु०, ४२ । ल०, ३८ ।

[सर्व०] (हि०) वह का अतिकरण कारक का रूप ।

उसास = का०, १४२ । वि० ५६ ६६ ।

[स० स्त्री०] (हि०) लवी सौम । ऊपर का लीची हुई माम । उज्जवास । ठडा माम । टुल या शोक्नुवक सास ।

उसी = भ०, २३, ५८, ५८ ।

[सर्व०] (हि०) उसका ही ।

उसे = भ०, ७५ ७६ ।

[सर्व०] (हि०) उमको ।

उह = का०, १७६ ।

[प्र०] (हि०) धाट ।

उ

ऊँचा = का० कु०, ११८। का० २६, २४७।
[वि०] (हि०) ल० ४६ ५४ ७४। म० ८।

दूर तक ऊपर का ओर गया हुआ।
उठा हुआ। उन्नत।

ऊँचाई = का० २५७।

[सं० स्त्री०] (हि०) ऊपर की ओर का विस्तार। उन्नत।
उन्नता। गौरव, बड़ाई।

ऊँची = ल० ५७।

[वि० स्त्री०] (हि०) ('—उचा')।

ऊँचे = का० ८८, १७७ १८२ २५८। म०
[क्रि० वि०] (हि०) ४५।

ऊपर की ओर। ऊपर से (शब्द
करना)। बड़े।

ऊँचे ऊँचे = का०, २५७।

[क्रि० वि०] (हि०) बड़े बड़े। उन्नत। विशाल।

ऊजड़ = का० १६०।

[वि०] (हि०) उजड़ा या ध्वस्त। जनहीन। विजन।
जगल। विद्यावान।

ऊन = का० १४२ १४७।

[सं० पुं०] (हि०) भैंस, बकरी आदि का रोग जिसमें
[वि०] (सं०) कमत बनता है। (सं०) कम, घाटा।
उदास। मुस्त।

ऊपर = का० ३ ६८, १८२ १८५, १८५

[क्रि० वि०] (हि०) २४५ २७६, २५८, २६०। वि०
६५, ७०। ल० ४०।

ऊँचे स्थान में। ऊँचाई पर। आगार
पर। सहारे पर। ऊँची श्रेणी में।
सर्व म सर्वम पत्तल। ऋषियर ज्योतिष।
प्रणेत म। दखने म। तट पर। प्रति
रिक्त सिवा।

ऊपर नीचे = का०, १७०।

[पुं०] (हि०) एक पर एक। उन्धान पतन। ऊपर से
लहर नाच तक।

ऊय = म० ५८।

[सं० स्त्री०] (हि०) ध्यातुवता। ऊबने का क्रिया या
भाव। उद्वेग। ध्वराहृद। उन्माद।
म्यम।

ऊर्जस्वित = का०, ४। ल०, ५४।

[वि०] (सं०) बलवान। वीर्यवान। तेजस्वी। चढा
हुआ।

ऊर्जित = ल० ६३।

[वि०] (सं०) बलवान। शक्तिमान। उन्मादित।

ऊर्ध्व = का०, २५७।

[क्रि० वि०] (सं०) ऊपर। ऊपर का ओर।

ऊर्मिल = का०, ७३।

'[वि०] (सं०) तरंगित। जिसमें तरंगें उठती हैं।
प्रादोक्षित।

ऊर्मा = का० २६१। ल० ३८।

[सं० स्त्री०] (सं०) गर्मी।

ऋ

ऋग्वेद = (वामावनी ब्राह्मण में वना।) मन्वार का ऋग्नि
[सं० पुं०] (सं०) ऋषयः १०२८ सूक्त, १०५८० मंत्र।

ऋजु = का० ११८ १८२।

[वि०] (सं०) सीधा सरल सट्टन।

ऋण = का० ७६, ११० २४८, २४९।

[सं० पुं०] (सं०) कर्ज उधार।

ऋतु = का० १७८ २१७।

[सं० स्त्री०] (सं०) मौसम।

ऋतुओं = का० २६१।

[सं० स्त्री०] (सं०) ऋतु का (हि०) बहवचन।

ऋतुपति = का०, ७३ १०१।

[सं० पुं०] (सं०) बसंत, ऋतुराज।

ऋतुनायक = वि० १७७।

[सं० पुं०] (सं०) ऋतुराज ऋतुपति बसंत।

ऋषि = का०, २७।

[सं० पुं०] (सं०) मन्त्रज्ञ। परम बुद्धिमान, गान विगान
का ज्ञाता दूरदर्शी। सचरित्र
त्याग। परोपकारी। तपस्वी।

ऋषिपुत्र = वि०, ५६।

[सं० पुं०] (सं०) ऋषिया का परिवार।

ऋषियों = ल० १२।

[सं० पुं०] (सं०) ऋषि का (हि०) बहुवचन।

ऋषियर = वि०, ५८।

[सं० पुं०] (सं०) ऋषिया में शत्रु।

ऋषिचर्य = का० कु०, १०५ ।
[मं० पु०] (स०) श्रेष्ठ ऋषि । महर्षि ।

ऋषे = क०, ३० ।
[सबा०] (म०) ऋषि का संबोधन ।

र

रक = का० २७७, २७८ । म० २३ ।
[वि०, सञ्ज्ञा] (हि०) सबसे छोटा सरुपा, अथम गिनती ।
एकताबद्ध । अभिन ।

रकटक = वि०, ११ ।
[क्रि० वि०] (हि०) अनिमप या स्थिर दृष्टि से । जमातार
देखत हुए ।

रकती = वि०, १४८ ।
[स० स्त्री०] (ब्र० भा०) एक जगह । एकर ।

रकता = का०, १६४ ।
[स० स्त्री०] (स०) मिलकर एक होने का भाव । एक
[वि०] (हि०) मत । मेल । समानता । बराबरी ।
अवेला । अनोखा । अद्वितीय । यत्ता ।
धनुषम ।

रकत्र = का०, १६८, १८२ १८६, २७२ ।
[क्रि० वि०] (स०) का०, कु०, ११८ । ल०, ६० ।
एकट्टा । एक जगह ।

रकत्रित = म०, ७८ । प्रे०, १२ ।
[वि०] (म०) सगृहीत । एकट्टा किया हुआ ।

रकत = का० कु०, १३ । का० २४ ३४, ४५
[वि०] (म०) ६५, १३२, १३४ २४६ । म०, ७१ ।
ल०, ४१ ।
अत्यत, बिल्कुत । अलग । अवेला ।
निर्जन । मूना ।

[एषात मे—इदु क्ता ३, किरण ७ सन् १६१२
में सर्वप्रथम प्रकाशित एव काननकुमुम
म पृष्ठ ५२-५३ पर सकलित ३० पक्ति
की कविता । प्रकृति का, एषात वर्षा
ऋतु का श्रीसपन एव सजीव चित्र
उपस्थित करने के उपरात अत मे
कवि अपना दर्शन इस प्रकार अभिव्यक्त
करता है—

बलचित्त चंचल वेग को तल्लात करता घोर है
एषात में विश्रात मनः पात, सुशीतल नीर है,

निस्तपना समार की उम पूग से है मिल रही,
पर जट प्रकृति सब जीव म सब आर ही अनमिल रही ।
>०—कानन कुमुम ।]

रकृणक = वि० ५ ।

[क्रि० वि०] (हि०) अकम्पात् । अचानक । सहसा ।

रकाम = वि०, १० ।

[वि०] (म०) एक रूप में स्थिर । चंचलनारहित ।
ध्यानमग्न ।

रकाधिपत्य = वि० १७ ।

[म० पु०] (स०) किसी वस्तु पर एक व्यक्ति का पूग
अधिकार या पूण प्रभुत्व ।

रडनर्ड सप्तम = (३०—शोकोच्छ वास ।)

रपणा = का०, २६६ ।

[स० स्त्री०] (म०) इच्छा । अभिलाषा ।

रहि = वि०, २३, ५७ ।

[सब०] (ब्र० भा०) इसे । इका ।

रे

रेठ = ल०, ६६ ।

[म० पु०] (हि०) ऐंठने की क्रिया या भाव । अकड ।
ठमक । गव, घमड ।

रेठी = म्रौ०, २५ । का०, ११६ ।

[वि० स्त्री०] (हि०) मुहा हुई । फिरी हुई । अकडी हुई ।
घमड में चूर ।

रेरावत = वि०, २८ ।

[स० पु०] (मं०) इद्र का हाथी । इद्र का धनुष । इरा
वान नामक मध । विजली । एक नाम
का नाम । नारगी ।

रेश्यर्य = का०, २७० । ल० ६८ ।

[स० पु०] (स०) विभव, सपना । गौरव महिमा,
महत्व ।

रेसा = म्रौ०, ६७ । क०, २२ । का० ४०,
[वि०] (हि०) १४४, १८६, १६१ २५८ । म०,
म० ४ । ल०, १८ ।

इस प्रकार का । इस ढग का ।

रेहें = वि० ६४ ।

[क्रि० म्र०] (ब्र० भा०) आयेंगे ।

ओ = क० १९। का० ५१ ४० ६५ १५४
 [अ०] (हि०) १७० १८४ १९६ २०१। ल०, ९,
 ४३।
 सयापन श्रीर आश्रयवाचक शब्द।

ओघ = का० ७१।
 [म० पु०] (मं०) समूह। २२। घन व घनापन।
 बहाव। धारा।

ओघ सा = ल० ६६।
 [वि] (हि०) प्रवाह का तरह। उलटे दृण व गमान।
 पनटे हुए के समान।

ओच = का ८७। वि ९४, १४३। ल०,
 [म० पु०] (म०) ५६।

प्रताप तज। उजाला प्रकाश। साहित्य
 शाल का एक गुण। शरीर में रेशों का
 सार भाग।

ओम्ल = का० २४६।
 [म० पु०] (हि०) घाट घाड़।

ओट = का० कु० ५३। म० ६४।
 [म० पु०] (हि०) घाड़। परदा। रात।

ओठ = ७० ४३।

[क्रि० स] (हि०) शरीर का ढक्कर आच्छादित कर।
 अपन मिर उबर। अपन ऊपर या
 जिम्मे लकर।

ओढ़ि = वि० २४।
 [क्रि० म०] (प्र० भा०) (देखिए घाट १)

ओढ़नी = म० १३।

[स० मी०] (हि०) लियों व घाटन का वस्त्र। चाट्टर।
 ओढ़े = का० ३० २३५।

[क्रि० म०] (हि०) शरीर का आच्छादित किए ढके।
 अपन मिर लना या जिम्मे लना।

ओत प्रोत = का० कु० ९४। का ४।
 [वि] (म०) बन्त मित्त जुता। गुया हुआ।

ओपकार = वि० ६२।

[क्रि०] (हि०) उगार म मयव रखनेवाला। उपकार
 स भगा हुआ।

ओ मर्ग नोवन की स्मृति—चद्रगुप्त का गान।
 अपन प्रियतम व लिय अपना उत्सव

ओस = का० ९४ २७१। ल० २४। ७०
 [स० मी०] (हि०) हवा में मिला हुई भाप जा राग का
 मर्ग म जमकर बगा व रूप म मिश्री
 है। शवनम।

ओस सा = ल० ७०।
 [वि०] (हि०) काम व समान मुँट या नश्वर।
 चण्डिन।

ओस सा
 कर रहा मालविका जिसका नामने कान
 लडा है सतीश्रुवक उसकी पुरानी
 स्मृतियाँ उमा प्रकार उयव पाम धा
 धतीत को जगाना है जैसे धनत मागर
 म अनग धनुराग स्वस्तिम पान बन
 लटरा रहा हो। और वह नाविक से
 कहती है—

कहाँ ले चले बोनाहन सं पुपरित तट का छाड मुदर।
 प्राह। तुम्हारे निम्न झाडो से होती हैं लहरें चूर।
 तल नहीं सकते तुम दोनों चकिन निराशा है भीमा,
 बहूको मत क्या न है वता दो खितिज तुम्हारी नय यामा।
 यह गात प्रसाद संगीत में पृष्ठ ११६ पर
 सकलित है। >—प्रसाद सगात।]

[ओरी मानस की गहराई—लहर पृष्ठ ४३ पर
 सकलित गात। यह मानस सुन, शात,
 निर्वात जल से भरे बापल का भाति
 शीतल नूतन मुडुर और नीलमणि क
 फलक व समान पारदर्शी और चिर
 चचल हा जिमम विश्व का परछाई
 दिखता है। तरा विपान तरल गरल की
 भाति है लेकिन पानेवाला उभी प्रकार
 सूछिन नही रहता जैसे गरल पान स।
 त्र मुय की मुदर मुँट भविरल लहर
 उठा। तुमभे जीवन के सादर्य का हया
 है। तुम्हारी हसी हा प्रकृति की हसी
 है। इसलिये—

हस ले भय शोच प्रम या रण,
 हस ल काला पट धो मरण
 हस ले जीवन के लघु लघु लण
 दर निब बुबन के मयु कण
 नाविक धतीत की उतराई।
 ६०—प्रसाद सगात।]

श्री

श्री = का० कु०, १२६। चि०, १९ १०१।
[स०] (हि०) ऋ० २६।

कविना म श्रीर वा सूचक शब्द।

श्रीद्वय = का० कु०, १०५।

[स० पु०] (स०) उग्रता। श्रवणहृषण। घृणता। घवि
नीतता। श्रगालानता।

श्रीर = का०, ८, ९१। का० कु० ४१ ५७
८३। का० ५, १० ५१ ८४, ८५,
१०५, १२६, १२९, १८३, १९७
२६२ २६५। चि० १५ ४६ ६५,
७३, १४०। ऋ० २५, ४४, ७४।
प्रे०, ४, ६। म०, १०। ल०, ४०,
४४, ५२, ५६, ६२, ६५, ६७, ६८,
७०, ७९।

संयोजक शब्द। तथा।

[श्रीर देखा यह सन्त्र न्य—० कामायनी की
कथा, इन्द्रजात।]

[श्रीर जय कहिहै तब न रहिहै—इदु बना ५
खड १ निरण ३ माच १९१४ म
प्रकाशित चित्राधार पृष्ठ १८६ पर
मकरद्विदु के अतगत सक्तिन।
०—चित्राधार एव मकरद्विदु।]

श्रीरहु = चि०, ५२ ५७, १४४।

[स०] (न० भा०) श्रीर भी।

श्रीरौ = का० कु०, ७५। का०, १३२, १७२,

[स०] (हि०) २१०। ऋ०, ४४, ५३। ल०, ११।
श्रीर दूमरे भी। दूमरो को, अ य को।

श्रीपथी = म०, ८८।

[स० खी०] (स०) दवा।

श्रीपथीश = चि०, १६४।

[स० पु०] (स०) श्रीपथि के स्वामा वध, हकीम।
चद्रमा।

- ' क

कन्यकप्रणित = का०, ११।

[स० पु०] (स०) ध्वनिमय कनका।

ककन = चि०, ६१।

[स० पु०] कनार्ई म पहिनेने वा ग्रामभूषण, कडा,
(श० भा०) फगन कगना ककण, चूडा खडुआ।
वट धागा जा हिंदू मस्ट्रुति के अनुमार
विवाह क धनसर पर वर बधू क
गहिने हाथ म रक्षाथ बांधा जाता है।

ककल = का०, २२७।

[स० पु०] (स०) श्रमिपजर। शरार की ठठरा मात्र।

कचन = चि० ६१।

[स० पु०] (स०) मुवण मोना, मपति घन। धनूरा।
निरोग, स्वस्थ। मनाहर।

कचन सा = का०, २०७।

[वि०] (हि०) मुवण सदृश। साने की तरह।

कज = शा०, ३०। का० कु० ९४। चि०,
[स० पु०] (स०) ३, २३, १८८, १८९। ऋ० ६४।
कमल, सरोज। ब्रह्मा। अमृत। केश।

कजकली = का० कु० ८६।

[स० खी०] (स०) कमल की कली। सरोज की कविता।

कज कानन मित्र = का० कु० १०।

[स० पु०] (स०) कमल वन का मित्र, मूर्ध।

कज-कोरा = चि०, १८१।

[स० पु०] (स०) कज = ब्रह्मा। कमल। अमृत। शिर क
बाल केश। कोश = अड अडा।
डि वा, गालक। फून की कनी। श्राव
रण। वेदात के अनुमार पाव मपुट।
कजकोश = कमन के फूल का पराग
स्थान।

कजनाल = चि०, १४।

[स० खी०] कमल, कुमुद आदि फूलों की पाली
श्रीर लवी डनी पीने का डठल, काड,
नली, नाल।

कजलोचन = का० कु०, १००।

[स० पु०] (स०) कमल क समान शाल।

कटक = का० कु०, ४, ५०, ६३। चि० १०,
[स० पु०] (स०) ११, १६४ १८४। ल०, ५०।

काटा। मुई का अग्रभाग या नोक। काम

मे होनेवाली बाधा । ऐसा काम जिससे बिसा की दुख हो । रोमाच । कवच ।

कटक सग = का० १६३ ।

[मं० पु०] (स०) काँटो ने साय । काँटा क सहित ।

कटकाकीर्ण = का० कु०, ५५ ।

[वि०] (म०) काटो से बिधा हुआ, काँटो से बिधा हुआ । आपत्तिमय ।

कटकित = का०, १२६ ।

[वि०] (स०) काटेदार । रोमाचित । पुलकित ।

कठ = का० कु० ४३ ४८ । का०, १८३ २६

[मं० पु०] (स०) ४२, ७० १४६, १५४, १७५, २७४ । भ०, ४५, ५० ४८ ल०, ३४, ७१ ।

गला । गले का वे नलिया जिनसे भाजन अंदर उतरता है और आवाज आती है । घाटी । स्वर । तीर, लट, करार ।

कथा = ल०, ११ १५ ।

[मं० स्त्री०] (स०) गुदड़ी । चिथड़ा ।

कदरा = वि० १५६ २२ ।

[मन्ना स्त्री०] (म०) गुफा, गुहा ।

कनैल = प्रे० १५ ।

[मं० स्त्री०] (भ०) मिट्टी अथवा कागज, लाटा आदि की बनी हुई वह लालटेन जिसका मुह ऊपर की ओर रहता है । भारत में कालिक मास में सनातनधर्मावलंबी उती को आकाशदीप के रूप में जलाते हैं ।

कटुक = का० कु० १० । वि० १६१ । का०

[सं० पु०] (स०) २६८

गेंद ।

कथ = वि० ६६ ।

[सं० पु०] (हि०) डाली शाला । कथा स्वध ।

कथर = वि०, ४१ ।

[मं० पु०] (स०) गरदन, शीवा । बादल मय ।

कप = का० २४६ । ल० २५ ।

[सं० पु०] (सं०) कापना । नाहिय म सारिवन अनुभाव ।

कप कप = ल०, २५ ।

[क्रि० भ०] (हि०) काँप काँप कर, भयभीत होकर ।

कपन = का ३५, ६५, १५७, १६४, ६६,

[सं० पु०] (सं०) २६३ । ल०, ६४६ । का कु० १०८ ।

कंपकपा, थरथराहट ।

कपन सी = का० कु०, १०८ । ल०, ६ ।

[वि०] (स०) थरथराहट के समान ।

कॅप सी = का० ५ ।

[वि०] (हि०) वापने के समान ।

कॅपाइ = वि० ५ ।

[पूर्व० क्रि०] (हि०) कॅपाकर, थरथराकर ।

कपित = का० १६ ४४ १४४, १५३ १६२,

[वि०] (म०) २५३ २६७ । ल०, १७, ३४ ।

वापता हुआ । चनायमान, चबल । भयभीत । डरा हुआ ।

कॅपती = का० १४ ।

[वि०] (हि०) थरथराती वापती ।

कॅपते = प्रे०, ४ ।

[वि०] (हि०) थरथरात कापत ।

कॅपा देना = प्रे०, ११ ।

[क्रि० सं०] (हि०) थरथरा देना, चलायमान कर देना ।

कॅपी = म० १३ ।

[क्रि० भ०] (हि०) काँप गईं । भयभीत हो गईं ।

कप = का० कु० ४३ ।

[मं० पु०] (स०) शल । शल का कूड़ी । हाथी । घोषा ।

[रुस—] श्रीवृष्ण जयती श्री वृष्ण । यह उपसन का पुत्र और भगवान् वृष्ण का मामा था । वृष्ण ने इस अनाचारी का वध किया था ।]

कई = का०, २३४ । म०, १८ ।

[वि०] (हि०) एन से अधिक । अनेक । वृत्तिपय ।

कक्षा = का०, ५ ।

[सं० स्त्री०] (म०) परिवे घेरा । प्रत्याग । श्रेणी ।

कव = वि० ६८ ।

[सं० पु०] (सं०) केश, बाल । वृत्स्पर्ति वा पुत्र । कुट्ट । बाल । धन या कुम्भ का शब्द या भाव ।

कचनार = चि०, ७० ।
 [स० पु०] (हि०) एक सुगन्धित पुष्प वृक्ष । पुष्प विशेष ।
 कचभार = का० कु०, १७ ।
 [स० पु०] (स०) केश का भार या बोभ । बादल का धारा ।
 कचोट = ऋ०, ७३ ।
 [स० पु०] (हि०) घमने या चुभने का भाव, क्रमक, टीस ।
 कच्छप = वा०, १५, ५६ ।
 [म० पु०] (स०) कच्छुआ । दम भवतारा म स एक ।
 कछार = प्र० ३ । ल०, १२, १३ ।
 [म० पु०] (हि०) समुद्र या नदी के किनारे की तर ओर नीचा भूमि । दलदल ।
 कछु = चि०, ४६ ६०, ६४ ।
 [वि०] (हि०) घोडा कुत्त ।
 कछुक = चि०, ६२, ७२, १४१, १८४ ।
 [वि०] (हि०) कुछ । घोटा ।
 कछुक वेर = चि०, ६० ।
 [वि० वि०] (हि०) कुछ समय बाद या पश्चात् । उपरान्त ।
 कटक = चि०, ४२, ५२ ।
 [स० पु०] (स०) सेना । राजशिविर । कण । पर्वत का मध्यभाग । समूह । एक नगर का नाम ।
 कटना = वा०, २१४ । ऋ०, १५ । म०, ६ ।
 [क्रि०] किमी वस्तु का शोकार स कटकर (हि०) टुकड़ा म (विभक्त) होना । अलग होना । युद्ध मे मरना ।
 कटाक्ष = वा०, १५३ । ऋ०, ८१ । ल०, ७६ ।
 [स० पु०] (स०) घा० २६ । का० कु० ६० ।
 तिरछा चितवन, मोहक नयनभंगिमा ।
 घाक्षप मे व्यंग्यपूण वात ।
 कटि = का०, १४३ । चि०, २२, २४ ५५, [सं० ऋ०] (सं०) ६४, १४८ ।
 कमर, शरीर का मध्यभाग । हाथी का गर्हस्थल ।
 कटिवद्ध = चि०, १५ ।
 [वि०] (सं०) कमर बांधे हुए, तैयार, तत्पर, उद्यत ।

कटीला = ऋ०, ४८ ।
 [वि०] (हि०) काट करनवाला । तीक्ष्ण, चापा, बहुत तीव्र प्रभाव डालनवाला । मोहित करनवाला । काटेदार ।
 कटु = का०, १०६ ।
 [वि०] (म०) छह रमा म से एक रस । कटुवा, चरपरा । बुरा लगनवाला अप्रिय ।
 कटुता = वा०, ३६ ११६ १५७ ।
 [म० ऋ०] (स०) कटु वापन, कटुवाइ । मतभद्र ।
 कटुवचन = चि० ४१ ।
 [स० पु०] (हि०) कठार वात अप्रिय वाणी ।
 कटे = वा०, ११५, १४८ ।
 [क्रि० अ०] (हि०) वात, समाप्त । टुकड़े हुए ।
 कठिन = वा० कु०, ८ ११२ । का० ३, [वि०] (स०) १७८ । चि०, ४१ । ऋ०, ८३ । ल०, ६६ ।
 कडा, सख्त, कठार । जल्दा समझ म न आनवाता, दुष्कर दुसाध्य ।
 कठिनाई = वा० कु०, ४५ । चि० ७२ ।
 [स० ऋ०] (हि०) कठिनता, कठारता, कडाई ।
 कठार = आ०, ६८ । क०, २४ । वा० कु०, [वि०] (म०) ८२, ११२ । का०, १७०, १६४, २४८ । चि०, १४ ।
 वाटन । सख्त, कडा, निदय, निष्पूर ।
 कठोरता = ऋ०, १४३ ।
 [स० ऋ०] (म०) कडाई, निदयता, उरहमी, सख्ता ।
 कडाकर = वा०, ७७ ।
 [पूर्व० क्रि०] (हि०) सख्त कर, कठोर कर, तान कर ।
 कडियाँ = आ०, ७०, वा० ७७ ।
 [म० ऋ०] (हि०) जजोरें, लडी । गात का एर पद ।
 कडी = क०, २ । वा० कु०, ५१ । वा०, [सं० ऋ०] (हि०) १५८, ६ । ऋ०, ८ । म०, ३ ।
 सिक्का का लडा वा छल्ला, जजोर । गीत का एक पद । वाठ को धरन । सकट ।
 कडे = म०, १, ५ ।
 [सं० पु०] (हि०) सख्त, कठिन । एक प्रकार का आभूषण ।

- कडे = चि०, १०६।
 [म० पु०] (ब० भा०) बडाई, बडोरता, निर्दयता।
- कदत = चि०, १५४।
 [त्रि० घ०] (हिं०) निकतता बाहर होना, आग बगना।
- कन्ना = चि०, ६, १८४।
 [त्रि० घ०] (ब० भा०) निकल जाना, बाहर हो जाना।
- कटि = चि० १८६।
 [पू० घ०] (ब० भा०) निकत कर, बाहर हाकर।
- कटो = चि०, १८।
 [त्रि० घ०] निकत गद, बाहर हो गई, आग बगना (हिं०)।
- कटे = चि०, १६६।
 [त्रि० घ०] (ब० भा०) निकल जाय, बाहर हो जाय।
- कण = आ०, ११। का०, ६, ३६, ८४, ८८, ८९, ९०।
 [म० पु०] (म०) ८७, १२३, २४२, २६३। ऋ०, ३१। प्रे०, २५।
 बूत छोटा टुकड़ा, तिनका, रवा, दाना।
- कण कण = का०, १६, १२५, १७८, २८६।
 [म० पु०] (म०) ल०, ४६।
 प्रत्येक स्थान, हर जगह जरा जरा।
- कण सा = का०, ६१।
 [वि०] (हिं०) कण के समान छोटा दान के समान।
- कण-सी = का०, २०।
 [वि०] (हिं०) 'कण पा' का स्त्रीलिंग।
- कणहिं = चि०, १५३।
 [म० पु०] (ब० भा०) कण मात्र बहुत घाडा।
- कण्य = चि०, ५८।
 [म० पु०] (म०) एव ऋषि का नाम जि हाने 'शकुतला' का पालन किया था।

[कण्य ऋषि—शकुतला] नाटक में कालिदास ने इनका तथा इनके आश्रम की चर्चा की है। महाभारत आदिपर्व में इनकी चर्चा है। मालिनी क तट पर इनका आश्रम था जहाँ शकुतला का दूतान पालन पोषण किया था। कण्य का अनु प्रस्थिति में शकुतला और दुष्यत का

आश्रम में ही गायत्रि विवाह हुआ गया। आश्रम में आन क उपरात इ ह इनकी सुचना दी गई। शक्य आश्रम विजयनौर के पास बनाया जाता है।]

- कण्य चरण = चि० ५, ६०।
 [म० पु०] (म०) कण्य ऋषि का चरण।
- कण्य महर्षि = चि० १५, ८५।
 [म० पु०] (म०) (द० कण्य)।
- कण्युं = चि०, ५५।
 [घ०] (ब० भा०) वही।
- कण्यार = चि०, १५८।
 [म० मी०] (घ०) पक्ति, अणा समूह कुड।
- कथन = का०, १०८।
 [म० पु०] (म०) बुझ करना। किसी की नहीं हुई बात। किसी के समुल किया गया बात य।
- कथन सन्श = प्र०, ७।
 [वि०] (म०) कहने व समान, कही बात के समान।
- कथा = का०, १३, ५८। का०, ३७, ६५, ६६।
 [म० मी०] (म०) २७६। चि० ४६। प्र० ६। म०, २। त०, ११।
 वह जा कहा जाय। धार्मिक आख्याना या चर्चा।
- कथाओं = म० १५।
 [म० मी०] (हिं०) कथा का बहुवचन।
- कथानुसूल = चि० ६०।
 [वि०] (हिं०) कथा के अनुसार। धर्म विषयक वाता क पक्ष में प्रथवा हित में।
- कथ्य = का० ६८, २२३, २८५। चि०, ५५, ६२।
 [म० पु०] (म०) एव बुद्ध तथा उसके पुत्र का नाम।
- कथ्य-जानन = का०, २२३।
 [म० पु०] (स०) कथ्य वा वन प्रथवा उपवन।
- कथ्य सा = का०, ९४। ल० ५६।
 [वि०] (हिं०) कथ्य व समान। रोमांचित।
- कथ्यी = चि०, ७०।

[स० स्त्री०] (स०) केला । काले तथा ताल रग का हिरन ।

कन = श्रा० ३२ । का०, २१७ २३५ । ल०,
[स० पु०] (हिं०) ३४ ।
(देगए कएण' ।)

कनक कुसुम रज = का २६१ ।
[स० पु०] (स०) पनास क पुत्रो वा पराग ।

कनिष्ठ = का०, १८ ।
[वि०] (स०) मयम डाटा । नट्टा ।

कनी = चि०, २८ ।
[स० स्त्री०] (हिं०) छोटा टुकड़ा, हीर का बहुत छोटा टुकड़ा । किनकी ।

कन्या = चि० ३३ ।
[स० स्त्री०] (स०) बचारी लटकी पुधा, रूमी । वाग्द रागिया म सएक ।

कपट = चि०, ४२ । भ०, ५२ । प्र०, १६ ।
[स० पु०] (स०) छत्र, घोघा, दुराव, छिपाव ।

कपटी = चि०, २६ ।
[वि०] (स०) कपट करनेवाला, धोखेबाज धूर्त ।

कपाल = का०, १२२, १८७ ।
[स० पु०] (स०) खोपड़ी, ललाट, मस्तक । द्रव । भाग्य, अष्ट । नियति ।

कपिश = ल०, ५१ ।
[स० स्त्री०] (स०) एक नगरी का नाम । मघ, मुरा ।

[कपिश—> गरमिह का शत्रुसमपण । यह प्रदश हिंदुकुश पर्वत क दक्षिण मे है । कपिश एक नदी का नाम है जो उत्तर प्रदेश में है ।]

कपूर = का० कु०, १० ।
[स० पु०] (हिं०) कपूर । कपूर ।

कपोल = श्रा० २२ ३२ । का० १०, ६६ ।
[स० पु०] (स०) चि० । ६ ७० । भ०, २२ । म०,
१३ । न० ११ ।
गाल ।

कपोल-कला चि०, १६६ ।
[स० स्त्री०] (स०) कपोल का सीदय ।

कपोलन = चि०, ३ ।
[स० पु०] (न० भा०) कपोल का बहुवचन ।

कपोली = का० १०३ १७१ ।
[स० पु०] (हिं) कपोल का बहुवचन ।

कबध = चि० ४७ ।
[स० पु०] (स०) जन, पानी । मेघ, बादल । प्रिना मिर का यड । एक राज्ञ का नाम । एक मुनि का नाम । एक गवय का नाम । राहु वैतु ।

कव = श्रा० १७ २० । का० १५ १६ २८,
[क्रि० वि०] (हिं०) ६३ ८१ १४, १४/ १५७, १५८ १७०, १८४ १६० २३२ २७८ ।
विश समय ।

[कव—मातुरी यप र ख? मक्या? सन् १८२३ २४ म मवयम प्रकाशित भरना पृष्ठ ३८ पर मकनिन १० पत्तिका की कविता । इसका भाव यह है कि कव शून्य हून्य मे प्रम चनमाला विरगी और कव आला व म्नेह विचन म मुम छाएगा । मुपनकलिका मधु मे रिक्त हो रही है और उनका गौरव दुर के आतप से मूल रहा है कव वट खिलकर विस्तार कर मकेगी । इम लकी विश्वव्यथा में भरस मधुर शाति आनर कव उमी प्रकार बस जाएगी जम निद्रा मे अलि म सुवद स्वप्न । आदि आदि सारी कामनाए आनद स्यात म लीन हा कव विरति पाएगी? *—भरना ।]

कवच = का०, १७, २७ १८१ ।
[क्रि० वि०] (हिं) विम समय तव ।
कव से = का० २५७ ।
[क्रि० वि०] (हिं०) विम समय रा ।
कवरी = का० २१२ ।
[क्रि० वि०] (हिं०) वताभा कव ।
कवहुँ = चि०, १६१ ६४ ।
[क्रि० वि०] (ब० भा०) कव स । विमी समय भी ।
कवी भा ।

कवौ = चि०, १५, १५६ ।

[क्रि० वि०] (सं० भा०) किसी समय। कभी।

कभी = भा०, १७। क०, ७ ११, २६, २६,

[क्रि० वि०] (हिं०) ३१। वा० कु० २३। वा०, ३३,

५५, ८३, १०५ १४१, ११८, १४८,

१५१, १५३ १७७ १७८ १८६,

१६०, १६२ २१४, २४४। भ०

८९। प्र०, ३ ५ १३ १५ १६,

२०, २६। म०, ५ ११ १२ १४,

१८ २२ ल०, १० ३४ ३४। (प्रायः

अनेक पृष्ठा पर।)

अथ किसी समय। किसी समय।

कभी कभी = वा० १६१।

[क्रि० वि०] (हिं०) किसी किसी समय।

कभी मत = वा १३।

[क्रि० वि०] (हिं०) किसी समय भी नहीं।

कमनीय = भा० ३८। वा० कु० ४८ १३। वा०,

[वि०] (म०) २/४ २६२। म० ६१।

मनोहर। मनोरंजक। मुन्डर। कामना

करने योग्य।

कमनीयता = भा० २०। वा० कु० ८२। भ० ६३।

[म० श्ल०] (म०) सोल्य मनाहरता।

कमल = वा०, २६ ४५ १६८ २६१। चि० २

[म० प्र०] (मं) १४१ १५७। प्र० १३। ल०, ४४।

जल में उगनेवाला एक पौधा जो

अपने मुन्डर फूल के कारण प्रसिद्ध है।

जल पानी। गभाशय का अग्रभाग।

फूल। एक प्रकार का पित्त रोग का

रोग। कुकम। आस का कोम।

दीपक राग का दूसरा पुन। छह

भात्राओं का एक छत्र। छप्पय क ७१

भेदा में स एक। एक प्रकार का राग।

हिरल की एक जाति।

कमलश्लो = वा० कु० १६। चि०, १२०।

[म० श्ल०] (सं०) कमल की श्लो या वारक।

कमलकौश = वा० कु० १२२। चि० १६५।

[म० प्र०] (सं०) कमल का काश जिगमें पराग रहता है।

कमलदल = वा० कु० ४८।

[सं० प्र०] (सं०) कमल का पसुडियां।

कमललोचना = म०, १७।

[म० श्ल०] (म०) कमल जस नत्रावाला।

कमला = वा० कु०, ८०। चि०, १४६। ल०

[म० श्लो] (म०) ७८।

लम्बा। घन। एश्वय। नारगी, मतरा।

एक नदी का नाम। मुदरी।

[कमला—कमलावती। गुजरनरेश कण्विह मिह के पराजित हान पर उसका पत्ना कमला अलाउद्दीन क हूरम में आवर भारत का सम्राज्ञी हुई। १० प्रलय की छाया, अलाउद्दीन काफूर एव माणिक।

[कमलावती—> कमला।]

कमलावली = वा० कु०, ५०।

[म० श्लो] (सं०) कमला का समूह।

कमलिनी = चि० २४ १७०। भ०, ७०।

[म० श्लो] (म०) कमल। कुमुदिना। छाया कमल।

कमली = म० ५ २१।

[म० श्लो] (हिं०) आग कवल कमला। कुमुदिना।

कमान = चि० ३ १६३।

[म० श्लो] (पा०) धनुष। इदधनुष। महाराजदार बना

वट। तीप, बटूक। फोजी काय का

माना। नौकरी। द्यूटी। फोजी काम।

कमाल = वा० कु० ४३।

[सं० प्र०] (सं०) परिपूर्णता। निपुणता। काबलियत

भाश्चय। अद्भुत काय।

कभी = वा०, ११४ १८५ २८७। भ०

[सं० श्लो] (का०) ८६। ल० ६४।

यूनता अ पता। हाति।

कर = वा० २६ २८ २६, ३२ ३३, ३६

[म० प्र०] (सं०) ३६, १२ ५३, ६७ ६२ ६८ १०५

११६ ११७, ११८, १३२ १२७

१३३ १३६, १५७ १६५ १७०,

१७५, २४४ १८३ १८५, १८६

१६६ २००, २२८ २३०, २३७

२३८ २४२ २४३, २५८ २७०।

प्र०, ४। म०, २ ३, ५ ६ ७ ८।

ल०, १। भ० ३७। चि० ३०।

हाय। हाथी का मूँड़। मूय या चंद्रमा की किरण। शोला, पत्थर। महमूल। टकम। करनेवाला। छत्र, युक्ति। पाण्ड। श्रवधी श्रौर श्रजभापा की सप्तमी की विभक्ति।

[क्रि०] (हिं०) (१०—'करना')।

करकमल = का०, ८५। चि०, २।

[सं० पुं०] (म०) कमल के समान हाथ या कमलरूपी हाथ। करसराज।

करका = का० ६।

[सं० पुं०] (मं०) शोला, बनीरा।

करका घन = का०, ६।

[सं० पुं०] (म०) शोले गिरानेवाले या बरमानेवाले बादल।

कर जोरे = चि०, ६४।

[वि०] (श्र० भा०) हाथ जोड़े हुए।

करत = (१० 'करना')।

[करत सनमान को—इदु कथा ३, किरण ११, सन् १६१२ में बिंदु के अतगत प्रकाशित और चित्रधार में मबलित। ३० चित्राधार।]

करतल गत = का०, १३६। चि०, १ ६, ६३

[वि०] (सं०) १४१। ऋ०, ५३। म० ३।

हाथ में धाया हुआ, मरल। अघिग्न।

करतूत = का० कु०, ६६।

[सं० पुं०] (हिं०) कार्य, कर्म करनी। कला, हनर।

करना = ग्रा० १५। क, १५ २१। का० ६,

[क्रि] (हिं०) १५ २०, २३ २६, २८, २९ ४५

५०, ५१, ५२, ५३ ५५, ५६, ६४,

७०, ७१, ८३ ८४, ८८ ८०, ६२,

६६, १००, २०३, १०४, १०५ १२३

१३३ १६१, १६१ १६४, १६५,

१६७, १७०, १८१ १८३, १८४

१६१ १६४ १६६, २१६, २१८,

२२६ २३६, २४३, २४७, २५०,

२५१, २५६, २६२, २६७, २७०,

२७१, २७३ ३८१, २८६, २८५।

वि० ५६ १४८। प्रे०, ५, २५।

म०, ३, ६, १४। ल०, ११।

(१० करने)

करनी = का०, २३६।

[सं० स्त्री०] (हिं०) करतून।

करने = का०, ८४ ६४ १०४ ११७ १४६,

[क्रि०] (हिं०) १४७, १५० १८३।

एक रूप से दूसरे रूप में जाने की क्रिया। बनाना।

करनेनाले = ल०, ११।

[वि०] (हिं०) क्रिया का आरंभ में ममाति की श्राव ले जानेवाले, सपादित करनेवाले, बताने।

कर पल्लव = का० २५०।

[सं० पुं०] (सं०) पत्त रूपा हाथ या हाथ।

कर पै = चि०, ७३।

[क्रि० वि०] (हिं०) हाथ पर। मूँड़ पर, किरण पर।

[कर रहे हो नाथ जब तुम—विशाख का गीत।

प्रसाद सगीत म प्रुष्ठ ३४ पर सकलित

चदलला का चार पक्ति का गान।

हे नाथ, जब तुम स्वय विश्वमगल की

कामना कर रह हो ता हमी क्यो

चितित रह और हमारा दुःख का

सामना क्या हा। दय खुद जीवन

के लिय हम इतने कष्ट क्यो सह। अपनी

पतवार ह कणधार सम्हाल कर

धामना। १० प्रमाद सगत।]

करबीच = म० ८।

[सं०] (हिं०) कर के मध्य में।

कर लाघज = म० ६।

[सं० पुं०] (म०) वायपटुता, दक्षता, निपुणता, त्रिमो

काम को शीघ्र और निपुणता क साथ

करने का भाव।

करवट = ग्रां० ११। का०, १८८।

[सं० स्त्री०] हाथ या पाश्व क बल लटने की स्थिति

(हिं०) या मुद्रा।

करवा = क० २६।

[सं० पुं०] (हिं०) जल देने का टाटीदार पात्र।

करवाल = चि०, ४६, १०३। म०, ८।

[सं० पुं०] (सं०) तलवार। नाखून।

कररपर्श = का० कु०, १६।

[सं० पुं०] (म०) हाथ से छूने का भाव, छूना, सहलाना।

आरंभ करना।

करहु = वि० ३० ५७, ७२, ७६ १४१।

[क्रि०] (प्र० भा०) (० करहूँ)।

करहुगे = वि०, १५७।

[क्रि० म०] (प्र० भा०) कराग।

करहूँ = वि०, ८६।

[क्रि० म०] (प्र० भा०) करो। (० करना)।

कराती = वा०, २१०।

[क्रि०] (हि०) कराता हूँ। (० करना)।

कराना = म० ७।

[क्रि० ग०] (हि०) किसी काम का दूसरे से संपादन कराने की क्रिया।

कराल = वि० १०६।

[वि०] (म०) कठिन, दुःख भयङ्कर, भयानक।

करालिका सी = वि० १०।

[वि०] (हि०) भयावता भीषणता प्रदर्शित करनेवाला के समान।

कराह = क० २४८।

[म० पु०] (प्र०) व्यथा मूक शब्द।

कराहती, कराहते = वि० १६४। वा०, २६६।

कराहना = वा० कु०, ४ ४५। वा० १। न

[क्रि० प्र०] (प्र०) ५२। 'ययामूक शब्द निकालना।

करि = वि० १६ २८ ४६।

[म० पु०] (म०) हाथी।

[पूर्व क्रि०] (प्र० भा०) करक।

करिम्बर = वि० २२।

[म० पु०] (म०) हाथा का मूढ़।

करिम्बर सम = म० ८।

[वि०] (म०) हाथा की मूढ़ के समान।

करि के = वि० १५ ६६।

[पूर्व क्रि०] (प्र० भा०) करक।

करि कै = वि० ८० १४८ १५२।

[पूर्व क्रि०] (प्र० भा०) (० करि के)।

करिर्ष्य = वि० ४१।

[म० पु०] (म०) मद मस्ती।

करियो कछु = वि०, ६।

[क्रि०] (प्र० भा०) कुछ करा है। कुछ करा।

करी = वि०, १८ ३१, ४१।

[म० पु०] (म०) (० करि)।

कर = वि०, १००।

[क्रि० ग०] (प्र० भा०) करा किसी काम का करने का प्राप्तापूर्व क्रिया।

करण = वा०, १३। वा० ८० १ १२६

[म० पु०] (म०) ८६। क०, २७ ३। न०, ५६, ७०।

दृष्ट स्पष्ट वक्रगायुर्भाव।
साहित्यशास्त्र में एत रम का नाम।

करण कथा = वा० २०६।

[म० स्त्री०] (म०) दयाद रहानी तथा स पूण गाथा।

करण कहानी = वा० १५ ७६।

[म० पु०] (हि०) दया से पूण कथा।

करणद्वन्द्व = वा० कु०, ७-८।

[म० पु०] (म०) करणा से भरा हुआ राना।

[करणकद्वन्द्व—दृष्ट, कला ४, विरण ४, अग्रल
१६१३ में प्रकाशित श्रीर कानन कुमुम
में पृष्ठ ७-८ पर सङ्गित। हे प्रभा।
मान्यता ज्ञान हमका दीजिए' का
शला में लिखा गई प्राथना है जिसकी
अंश में दा पाल्पाई इन प्रकार हैं—

हे नाथ, मर सारथा वन जाव मानम मुद्ध म।

फिर ता ठहरने स चबन एक भौ न विरुद्ध मे ॥

०—कानन कुमुम।]

करण कामना = वा०, ४७।

[म० स्त्री०] (म०) वह अभिलाषा जिसमें बूट बूट कर
त्यनायता भरी हो वातरता।

करणज्यथा = वा० कु०, ६३।

[म० स्त्री०] (म०) करणा के कारण प्राया हुआ दुःख।

करण वेदना = वा०, २१२।

[म० स्त्री०] (म०) (० करणा 'यथा)।

करणा = श्री, ७ ११ २५ ३८, ६६। क०,

[म० स्त्री०] (म०) २५, ३०। वा०, ४ ८३, १६५,
१८०, २८१। प्र०, १६, २२। म०
६। ल० ६ २८ ३२।

मन का वह दुःख भाव जो दूसरा का
दुःख देखने से उत्पन्न होता है और

जो कुछ दूर करने की प्रेरणा देता है।
प्रिय के विभाग से होनेवाला दुःख।

कल्याणटाक्ष = भा०, २६। का० कु०, ८०।
[म० श्लो०] (म०) कल्याणपी कटाक्ष। उसे विशिष्ट
प्रकार से देखना जिमसे कल्याण
निहित हो।

कल्याणकलित = भा०, १। का० कु०, ५३।
[वि०] (म०) कल्याण से पूरा या भरी हुई।

[कल्याण कल्याणनि धरसे—राज्यभ्रा का गीत
जिमसे इस नाटक की रचना का मूल
भाव है। प्रसाद मगत में पृष्ठ ७
पर नमनित चार पंक्ति का गीत।
दुःखतत धरा प्रमुत्तित है, जगती में
प्रम का प्रचार है, दया दान है,
कलह का नाम है, जब जगम सबसे
मगल शांति प्रवृत्त हो। २० प्रसाद
मगत।]

कल्याणकुज = का० कु०, १४।
[म० पु०] (म०) कल्याण से भरा हुआ स्थल। कल्याण की
प्रतिपूर्ति।

[कल्याणकुज - इन्द्र बना ३, विररा ४, मार्च १९१२
में सबसे प्रथम प्रकाशित और जानन
कुमुद में पृष्ठ १२-१४ पर प्रकाशित
एक महत्वपूर्ण रचना। अपने ऊपर
भारी बोझ लाद लिया है जो न ता
सह्य रहता है और सतत वृष्टि सहते
रहने पर भी 'उमस' उबार नहीं है।
श्रीधर, वषा, शरत्, प्रकृति आदि की
सुंदर सुपमा रहते हुए भी सतत वाम
लेकर चलते रहने के कारण वह दाख
नहीं पड़ते। इसी भ्रम पहिलिका म
सुम भ्रमित हो। इमलिय—

दस्त पथिक, देखा कल्याण विप्रवश का
खड़ी दिलाती तुम्हें याद हृदय का
शीतांत का भांति बना मकती नहीं,
दुःख ता उसका पना न पा सकती कही
आत शांत पथिका का जीवनमूल है
इसका ध्यान मिटा देना सब भूल है

कुमुदित मधुमय जहाँ मुखद धलिपुज है
शांत हनु देखा वह करगा कुज' है।
२० कानन कुमुद।]

कल्याणनिधान = वि० १७ = १८५।
[म० पु०] (म०) जिमका हृदय कल्याण से परिपूर्ण है।
बन्त बड़ा दयातु।

कल्याणनिधि = का० कु०, ७, ६३। [वि०, १८।
[म० पु०] (म०) प्रे० २०।
(२० कल्याणनिधान)।

कल्याणपट = भा० १४।
[म० पु०] (म०) कल्याणपी वस्त्र या परदा।

कल्याणप्लावित = प्रे०, ७।
[वि०] (म०) कल्याणपी जल की बाढ़। तनुदिक
कल्याण से व्याप्त।

कल्याणमय = का० ४।
[वि०] (म०) मकरण, प्रत्यधिक कल्याणवाला।

कल्याणमिश्रित = म०, ८।
[वि०] (म०) कल्याण से युक्त।

कल्याणर्त कथा = भा०, १३।
[म० श्लो०] (म०) कल्याण कहानी।

कल्याणलय = का०, २६, ३०।
[म० पु०] (म०) कल्याण का घर। न्या का घर।

[कल्याणलय— इन्द्र, काग ४, राड १ किरण १,
परबरी १९१३ में प्रथम प्रकाशन,
विद्यापार प्रथम सस्करण १९१८ में
पुस्तकाग रूप में। सन् १९२८ में
स्वतन्त्र पुस्तकाकार प्रथम सस्करण।

'इन्द्र' के प्रकाशन से प्रसादजी एक प्रयोगकर्ता के रूप
में हिंदी जगत् के मसुख प्राण।
'कल्याणलय' की लोग गीतिनाट्य य
भावनाट्य की सजा क्षे है। नाटक के
क्षेत्र में यह अपने पूर्ववर्ती प्रयागो, यथ
सन्न, प्रायश्चित और कल्याणीपरिणः
से सबसे भिन्न नया प्रयाग है जो
ममवत हिंदी का प्रथम भाव य
गीतिनाट्य भी। नाटक की विधा
'कल्याणलय' काव्यरचना है तथा मूल
कविता ही है। गीतिनाट्यों के क्षेत्र

हिंदी में यह निम्न ही प्रथम प्रयोग है। इस गीतनाट्य का कथानक पौराणिक है। राजा हरिश्चंद्र साधना में व्यग्न का बलिभक्त पुत्रप्राप्ति के लिये प्रतिपाद्य है। प्राप्त करते हैं। हरिश्चंद्र की यह प्रतिज्ञा थी कि वह गृह्य अपने पुत्र का बलिभक्त कर देंगे। तब पुत्रप्राप्ति के बाद वह उम्र व्रत से विचलित होना ही तथा निरंतर हाता हथाली कर इस काय की स्थिति करत जाते हैं। एव तब सेनापति व्यातिष्मान ने साध नौका बिहार करते समय आकाशवाणी होती है और लहरों में भयकर लूना मच जाता है। साध प्रयत्न करने पर भी नौका बिनारे नहीं गग पाता। उसी बीच आकाशवाणी सुन पडती है जिसका आशय यह है कि पूव व्रत की अपेक्षा का परिणाम यह गजन तर्जन है। हरिश्चंद्र अपने पूव व्रत के पालन का पुन वचन देत है। नौका फिर चल देती है।

हरिश्चंद्र का पुत्र रोहिताश्व वन में विचरण करने हुए यह चिंतन करता घूम रहा है कि व्रत के कारण बलि के मन्त्र में पिता से प्राप्त आना का पालन श्रमकर है अथवा नहीं। अतः उक्त उमके हृदय की तक और बित्त इद्र के मन्त्र स्वर में अयोध्या छाडकर अथय प्रस्थान के लिये उत्प्रेरित करते हैं।

अकालपीडित मज्जीगत और उनकी पत्नी तारणा ने आश्रम में राहिताश्व पट्टचकर उनके दय का लाभ उठाता है और गायन के बदले उनके मन्त्रे पुत्र शुन शंभ का सोप करता है। शुन शंभ से मा और पिता का ममता नहीं, बसोव वह नती उनका बडा पुत्र है और न छोटा ही। रोहित शुन शंभ के साथ पुन अपने पिता के समुद्र उरस्थित हाता है। उसे पिता के कोमरे स्वर सुन

पटा हैं। तब रोहित का तक और पुन वनिष्ठ की गृहमति शुन शंभ की बलि के लिये हरिश्चंद्र का उद्यत कर उनका काय शांत करना है और हरिश्चंद्र वशिष्ठ का यज्ञव्यवस्था करने की अनुमति देता है।

यग धारम होना है पर वनिष्ठ का पुत्र नरबलि का म दनाकर करता है। इपर भोजी गत भी गीतों का लाम में धायुष दना स्थोतार कर अपने पुत्र पर शक्तप्रार करन क्षतता है उभर शुन शंभ काया बरणालय का प्रायना करता है। आकाश में गजन तर्जन धारम होता है। सज चितित हा जात है। तब तब विश्वामित्र अपने ही पुत्रों का साथ बलिभूमि में प्रविष्ट होना है और नर बलि का धार कथाय कम घोषित करत है।

वशिष्ठ का यह कहना है कि आप अपने पुत्र की बलि नहीं दे सकन। यहाँ उनी समय राजा का एक शमा जो विश्वामित्र का पला और शुन शंभ की माता है प्रविष्ट होती है। उसकी गमिणी श्वस्था ही में विश्वामित्र तप करने चल गए थे। अकाल में आकाश वादितता मुत्रता की गाँव छोडना पडा राजासी बनना पडा। पुन शुन शंभ को मज्जीगर्त की सापना पडा। मन्त्र सभाटा छा गया। करणा व विपाद से वातावरण बरुणा हो उठता है। विश्वामित्र पत्नी की ग्रहण करन है बिना नरबलि के हा बरुणा भा समुद्र होना है।

मुत्रता की प्रणयचर्चा इसमें है जो प्रमाद साहित्य का विनिष्ठता है। यहाँ बीज रूप में ही यह लक्षित होनी है। विश्वामित्र की प्रधानता इसमें है। करणालय काव्य में कहानी ही है। यह बहुत उच्च कोटि की रचना नहीं है। तबु समाज के समुख

जिस भादश का भाख्यान कवि ने किया है, निश्चय ही वह मानव हृदय की विशालता का भाख्यान है, कवि के मानवप्रेम का प्रतीक है। वह इस बात का साक्षी है कि बिना नर की बलि चढ़ाए हा वाछिन उद्देश्य का प्राप्ति की जा सकती है, मानव की मनाबामना पूरा की जा सकती है। जिनकी बलि चढ़ाई जाती है व एक दूसरे के भ्रम ही है। एक दूसरे को समाप्त करना मानव उत्थान की उपादयता नहीं। जहाँ तक कथा का प्रश्न है साम सरल रूप में यह कथा पुराण से ला गड ट। उस छ्ना में बाध दिया गया है किन्तु छाटो मा कथा पाच रूडा में कटकर जिस तरह जिनासावृत्ति जगाइ गई, है वह कौशल मराहनाय है। प्रयत्न का विशुद्ध मूल्याकन यहाँपर स्पष्ट ही दीख पडता है। जहाँ तक छदा का प्रश्न है, उम भवुकात धरिल्ल छद म यह रचना है जिस बाद म लागो न ग्रहण किया। खडा बोली म इसक प्रधान प्रयोगकता काववर प्रसाद ही है। सम्व है कि कुछ लागा का इसमें कोई मौलिकता और काइ कला न दिखाई पडे। किन्तु यह उनका दाप नहीं, वह कामायना क शिखर पर प्रसादजा को देखने क भम्भाम का दोष है। इसकी काव्यकला पहले से विकसित है। कही कही भन्ने स्थल भा है जहा काव्य म चिधात्मक शली दृष्टिगत होती है। प्रयत्न का थोडा सु दर रूप भी दिखाइ पडता है।

“नोक। धार और जरा धीर चला,
माह, तुम्ह क्या जल्दी है उस भार का
कही कही उपात प्रभजन का यही,
मलयानिल भपने हाथा पर है धर
तुम्हें, लिये जाता है अन्धे चाल स,

प्रयत्न सचचरी सी कसी है साथ में
प्रेम सुधामय चद्र तुम्हारा दीप है।”]

- कल्यालोक = का०, ८२।
[म० पु०] (म०) कल्या का मसार।
- कल्यासन्न = का०, ६।
[म० पु०] (म०) कल्या का घर, कल्यालय।
- कल्यासमुद्र = चि०, १७८।
[म० पु०] (म०) कल्यारूपी मागर। कल्या का समुद्र। अत्यंत कारणिक।
- कल्यासिंधु = का० २५।
[म० पु०] (म०) (२० कल्यासमुद्र)।
- कल्यानरदन = चि०, २७।
[म० पु०] (म०) विलाप।
- करू = का०, ११, १८। का०, १३४, १५३,
[क्रि०] (हि०) २३०। प्र०, ६। म०, १६, २३, ३०। करना क्रिया का रूप।
- कर = का०, ८५ १३२ १४६ १७० १७८,
[क्रि०] (हि०) १८४ २१० २८३। प्र०, ४। म०, २, १८। (० करना)।
- करेरे = चि०, ६६।
[वि०] (ब० भा०) कठार, बटा वठिन। करेर।
- करें = चि०, ६, १०१।
[क्रि०] (ब० भा०) (३० करना)।
- करे = चि०, २३, ६६।
[क्रि०] (ब० भा०) (२० करना)।
- करा = का०, १३८।
[क्रि०] (हि०) (२० करना)।
- करों = का०, १११, ११४ १६५, १७१,
[स० पु०] (हि०) १८७। कर का बहुवचन।
- करुश = का० पु०, ४५, ११६।
[वि०] (म०) कठार, हिसक। तलवार। क्रूर, निदय, साहसिक, प्रचंड। पुगुरा, काटदार।

कर्म = वा०, ६८।

[मं० पु०] (सं०) मूय का पुत्र। भगदेश का दानी सञ्जाट।

[कर्म—विवाह स पूव ही मूर्ध द्वारा कुती के गभ स उत्पन्न पुत्र। गया यमुना म बक्स मे बंद बहूत दुःख उठाया। धृतराष्ट्र के सारथा क्षाधरथ द्वारा इसका उद्धार हुआ धीर दवप्रदत्त पुत्र मान कर राधा ने इसका पालन किया। यह महाभारत मे कौरवो का, भजुन के समकक्ष, महान् योद्धा था। भजुन ने इसका बंध किया। यह मेधावा तेजस्वा तथा दाना था।]

कर्मद्वार = ल० ७५।

[मं० पु०] (सं०) गुर्जर देश के एक नरेश का नाम।

[कर्मदेव सिंह—कमला का पति गुजरनरेश जो कमला के सौम्य पर मुक्त था। १० प्रलय का छाया।]

कर्मधार = व० ६। वा० कु० ८। मं० ११।

[मं० पु०] (सं०) मल्लाह, मौजो। पतवार। प्रथम देने वाला। पथप्रशक। नाविक।

कर्मधार रचित = मं० ११।

[वि०] (सं०) प्रथममास रचित।

कर्मिवार = वि० ५२।

[सं० पु०] (सं०) कर्मा का वृत्त।

कर्मव्य = मं० ६ ६। वा० कु० १०८।

[वि०] (सं०) करने के योग्य जिसे करना धाव स्थक हो।

कर्मव्यपथ = वा० कु० १०८।

[सं० पु०] (सं०) कर्ममाग, कर्मव्य का राह।

कर्त्ता = वा० २६८।

[सं० पु०] (सं०) करनेवाला करने या बनानेवाला।

कर्त्तृत्व = वा० १६५।

[सं० पु०] (सं०) कर्त्ता का भाव कर्त्ता का गुण धर्म।

कर्मवृत्त = वि० ५५।

[सं० पु०] (व० भा०) धारणाण जा कान म पटना जाना है।

कर्मर = प्र०, ३।

[सं० पु०] (सं०) कर्मर नामक गुण, भद्र द्रव्य।

कर्म = १०, २३, २५, २७। वा० कु०, ६४,

[सं० पु०] (सं०) ६४। वा०, ३३, ५६, ७५, ८२,

१०६ ११३, ११५, १४६, १८७,

१८३, २०५ २८०, २४२, २४४,

२६८। प्र०, ५। सं०, १३, ३८।

वह जा किया जाय। क्रिया, कार्य, काम। धामिब कृत्य। व्याकरण मे बहू शब्द जिसक वाच्य पर कर्त्ता का क्रिया का प्रभाव पड़। भाष्य।

[कर्म—कामायनी की कथा।]

कर्मकलाश = वा० १६८।

[मं० पु०] (सं०) कर्मव्यवस्था।

कर्मकुसुम = वा० १२३।

[सं० पु०] (वि०) कर्मव्यवस्था फूल।

कर्मचक्र = वा०, २६६ २६७।

[सं० पु०] (सं०) भाष्यचक्र समय का फेर।

कर्मजगत् = वा० २६६।

[सं० पु०] (सं०) क्रियाज्ञान।

कर्मजाल = वा०, ३३।

[सं० पु०] (सं०) कर्मों का समूह।

कर्मपथ = व० १५। वा० कु० ११६।

[सं० पु०] (सं०) (१० कर्मव्यपथ)।

कर्मफल = मं०, ८।

[सं० पु०] (सं०) कर्मों का फल परिणाम या नतीजा।

कर्ममयी = वा० ३१।

[वि० छा०] (सं०) कर्म से युक्त। कर्म से युक्त वातावरण।

कर्ममाग = व०, १४। वा० कु० १२५।

[सं० पु०] (सं०) (१० 'कर्मपथ')।

कर्मयोगरत = मं०, ७, १८।

[वि०] (सं०) कर्म में निष्ठ।

कर्मलौन = वा० १७१।

[वि०] (सं०) कर्म करता हुआ कर्म में दत्तचित्त।

कर्मलोफ = वा० २६६।

[सं० पु०] (सं०) मगार मर्त्यलोक।

कर्महि = वि०, १५५।

[मं० पु०] (प्र० भा०) = कर्म का।

कर्मि = वा०, २६७।

[सं० पु०] (दि०) कर्म का कर्मव्यपथ।

कर्मों की पुस्तक = वा०, १७२।

[सं० पु०] (हिं०) कर्मों की प्रणाली, क्रम करने की प्रेरणा।

कर्मोन्मत्ति = वा० २५१।

[सं० स्त्री०] (सं०) क्रम करते हुए प्राणों बढ़ने का प्रवृत्ति।

कलक = चि०, ६७। ऋ०, ७३। ल०, ५६।

[सं० पु०] (सं०) चिह्न। अथवा। घातुघ्रा का मल विचार, दोष।

कल = घां०, २६। वा०, २६, ११६। चि०,

[सं० पु०] (हिं०) २३, १७३। ऋ० ६८।

अथक मधुर ध्वनि मुदर। भाराम।
साल बुद्ध। प्राण प्राणवाला दिन।
शाति।

कलकपु = वा० ६३। चि० ४७।

[सं० पु०] (सं०) मुमधुर ध्वनि करनेवाला शक मा कठ।
वाक्विन श्म बवृत्तर।

कलकमल = वा० कु०, ३६।

[सं० पु०] (सं०) मुदर कमान पुण विवमित कमान।

कलकल = घां० ८। वा०, ८। वा० ६३ २७८।

[सं० पु०] (सं०) चि०, १५०। म०, ४ २४।

भरती भादि क गिरत या चलत वा
श ॥ वागाहल, शार।

कलकल ध्वनि = वा कु०, ६७।

[सं० स्त्री०] (सं०) प्राणवक् ध्वनि, मुमधुर शब्द अथवा
भार भाष्ट्ट करनेवाली गुजार। भरती
भादि के गिरत स उत्पन्न ध्वनि।

कलकल नाद = वा० कु०, ५७।

[सं० पु०] (सं०) (० कलकल ध्वनि।)

कलकलनादिनी चि०, १। ल०, ३२।

[वि० स्त्री०] (हिं०) मुमधुर ध्वनि करनेवाली, नदी।

कलकपोल = वा०, ११।

[सं० पु०] (सं०) रोमविहान कोमल चिक्ना गाल।

कलकिंकिनी = चि०, ५१।

[सं० स्त्री०] (हिं०) चुम्बकदिना, करघनी की तरह का मुधुर-
दार प्राभूषण विणय का नाम।

कलकिशोर = चि०, ७०।

[सं० पु०] (सं०) ग्यारह स पदह का धवस्था का मुदर
बासक, पुत्र, बटा।

कलनेली चि०, १६१।

[सं० स्त्री०] (सं०) मुदर विनवाड मुदर हँसो। रति,
मधुर स्त्री प्रमग। ठटठा दिन्तगी।

कलना = वा० ८।

[सं० स्त्री०] (सं०) गगना, विचार लनदन, व्यवहार,
धारण या प्रत्यक्ष करना विनोप नाम
प्राप्त करना।

कलना = वा० कु० २६। चि० २, ६१, ६३।

[सं० पु०] (सं०) मधुर ध्वनि।

कलनादिनी = चि० १६४।

[सं० स्त्री०] (सं०) मुदर ध्वनि करनेवाला नदी।

कलनिनाम्बिनी = चि० १६७।

[सं० स्त्री०] (सं०) (० कलनादिना)।

कलभ = चि०, २२। वा० कु० ५१।

[सं० पु०] (सं०) हाथी का पंचवर्षीय बच्चा। ऊट का बच्चा।

कलरज = घां० ३१ ६५। वा० कु० १६ ३३,

[सं० पु०] (सं०) ७५३। वा०, ११ ६४, ६८, ६९
१००, १५० १६८ १७२ १८८,
२७७, २८५। चि० २३, १८४। प्र०,
१८। ल० १५ २४, २६।

मधुर ध्वनि या भावाज गुजार शार।

कलश = वा०, १८२।

[सं० पु०] (सं०) घट, घटा गगरा। मंदिर का ऊपरी
भाग। चाटो या शिग्रर। पूजा का
का एक विशेष उपकरण।

कलसी = चि०, ६६।

[सं० स्त्री०] (हिं०) (३० 'कलश')।

कलहस = वा०, २८५।

[सं० पु०] (सं०) हस राजहम। श्रेष्ठ राजा। परमात्मा।

कलह = वा०, २१६। ऋ० ८८।

[सं० पु०] (सं०) शिवाद भगडा।

कला = घां०, २०, ३८। वा० कु०, ५०, ५१,

[सं० स्त्री०] (सं०) ५२ ५३। वा० १०५, १५३ १६५,
१७५ २६४। ल०, ३७। चि०, ८२,
१४६।

अथ हिस्मा। चद्रमा का सालहवां
भाग। सूर्य के प्रकाश का बारहवां
हिस्मा। ममय का एक विभाग जा ३०
बाष्ठा का होता है। राशि के तीसवें

भ्रम का साठवाँ भाग राशि चक्र के एक भ्रम का साठवाँ भाग। कौशल। काम शास्त्र का चौसठ कलाए। विभूति, तज शोभा छटा। कौतुक खेलवाड। छल कपट। त्र्य, युक्ति, नटो का एक कसरत हुनर।

कलाकार = ल० ३७।

[म० पु०] (म०) कौशलपूर्ण कार्य करनेवाला कला कुशल।

कलाशौशल = का० कु० ५१।

[म० पु०] (म०) किमा बना का निपुणता।

कलाधर = का० १५३।

[म० पु०] (स०) चंद्रमा। शिव। कला का पाता।

[कलाधर—प्रसादजी का धारा। भव कविताधो म उपनाम।]

कलानिवि = का० कु० ५०।

[म० पु०] (म०) चंद्रमा।

कलाप = चि० ४८।

[म० पु०] (म०) गुच्छा गुच्छ ममूट।

कलापी = चि० २३।

[म० पु०] (म०) मोर। कवित्र।

कलिका = श्री० ३५। का० ६७। चि० ५६।

[स० श्री०] (स०) विना रिखा हुआ फूल। फूल का बली।

कलिंग = ल० ४६।

[स० पु०] (म०) एक प्राचीन प्रदेश जा गान्धरा और कतरला का बीच था। यहीं पर अशोक ने नरसंहार द्वारा प्राप्त विजय से विरक्त हो महिमा का व्रत लिया।

कलित = श्री०, ७ १६। का० २६ ४८ ८१।

[चि०] (स०) चि० २२ ३३ ६८ ७५। म०, ८०।

भरा हुआ युक्त, मुग्धाभिन।

कलिन = चि० ३८ ६८, १६७।

[स० श्री०] (श्री०) बना का व्यवचन। (२ 'कलिका'।)

कलियाँ = श्री० ५३८ ७८। का० कु० १८

[स० श्री०] (स०) ६१ ७००। का० ६१ १२३ १/८

१७५। चि० ३५ १८०। म० ६।

(२० कलिका।)

कलो = का० कु० ८ ३४, ५२। का०, १८१,

[म० श्री०] (हि०) २१२। चि०, ६, २६, ५६। प्रे०, २। (२० 'कलिका'।)

कलीकुल = प्रे० २।

[म० पु०] (हि०) कलियों की जाति या वन।

कलीनिकर = चि०, २४।

[५० पु०] (म०) कलिया का समूह।

कलुपित = का० २२६। ल०, ७६।

[चि०] (म०) मलिन मला, निदित।

कलुपित शया = का० २२६।

[म० श्री०] (स०) भक्ति या पापा शरार, निदित या कलकित शरार।

कलुस = श्री० ६१। का०, १२० १६३, १८५।

[म० पु०] (हि०) कोट। पाप, मलानता।

कलुपर = का०, २६२। चि०, २२।

[म० पु०] (म०) शरार, वह।

कलोल = का० २५२। चि०, ८३।

[म० पु०] (हि०) मामाद प्रमोद झाडा।

कलोलिनी = ल० १८१।

[चि०] (स०) झाडा करनेवाली बलो कलनवाली।

कलोलै = चि० ४६।

[त्रि० श्री०] (श्री०) मामाद प्रमाद करता है। क्रीडा करता है।

कल्पना = श्री० २६। का० कु०, १८ ७५।

[स० श्री०] (म०) का०, ३७ ५०, १२६ १८२, २११,

२२६। चि०, ७२, १०५, १६५। प्र०,

६। ल०, ८४।

अच्छा रचना, मजाबट। वह शक्ति जो अत कारण से नई और अनोखी वस्तुया के स्वप्न की उपस्थित करती है। उद्भावना। निगा वस्तु से दूसरी वस्तु का धाराय मान लेना, अनुमान करना।

कल्पनाचम = का०, १७८।

[स० पु०] (स०) धारायित मगार मतपड़ित दुर्नया।

कपना का मगार।

कल्पनातीत = श्री० ५१।

[चि०] (स०) कपना से पर या बाहर। जिसका अनुमान या अनुमान से लगाया जा सके।

कल्पनामन्दिर = प्रे० ३, ।

[म० स्त्री०] (म०) कल्पना का मन्दिर । उम स्थान के महेश जहां से हृदय को अधिक से अधिक भावनाओं में विचरणा करने की प्रेरणा मिलती हो ।

कल्पना मराल = चि०, १४३ ।

[म० पु०] (म०) बनावटी हंस मनगढ़न हंस । कल्पना रूपी हंस । नीर छीर विवकी कल्पना ।

कल्पनालोक = वा०, १५८ ।

[म० पु०] (म०) कल्पना का मसार । वह देश या प्रदेश जहाँ से भक्त को प्रेरणा मिलती हो । उद्भावना का मसार ।

कल्पनावीणा = वा० कु०, ६३ । वा०, २६ ।

[म० स्त्री०] (म०) कल्पनारूपा या कल्पना की वीणा ।

[कल्पनासुर—इंद्र, कला १, किरण ५ मगहन ६६ तथा चित्रामार पृष्ठ १४३-१४४ ।
वर्तमान भूत और भविष्य को रजित करनेवाली शक्ति कल्पना है जो मनुज के जीवन का प्राण है। कल्पना सारे मसार को शासन छाया देनी है और मनुष्य को मुख भी। कल्पना के प्रति यह भाव उमके काव्य माहिय के अध्ययन में सहायक है। '० पराण एव चित्रामार ।]

कल्पनाहि = चि० १४३ ।

[म० स्त्री०] (श्र० भा०) कल्पना ही, कल्पना को, कल्पना मे।

कल्पवृक्ष = वा० ११ । चि०, १५३ ।

[म० पु०] (स०) नदन वानन या इद्र के बन का वह कल्पित वृक्ष जो इच्छित फल देता है। कल्पतरु। समुद्र मथन से प्राप्त चीन्हा रत्नो म से एक रत्न ।

कल्पित = वा० कु०, ७२ । वा०, २३४ । चि०, १४१ ।

जिनकी क पना की गई हा। मन से गढ़ा हुआ । बनावटी । नरनी ।

कल्पितगोह = वा० । ५४ ।

[म० पु०] (स०) मन से गढ़ा हुआ घर । हवाई महल ।

कल्याण = श्रा०, १०, ५२ । वा०, १०१, १६२ ।

[म० पु०] (म०) प्रे०, २३ ।

मंगल भलाई, कुशल क्षम ।

कल्याणकला = वा०, २२८ ।

[म० स्त्री०] (म०) वह कला जिससे कल्याण प्राप्त हो
श्रयात् श्रद्धा ।

कल्याणकामना = प्रे०, १६, २३ ।

[म० स्त्री०] (म०) मंगल की अभिलाषा या इच्छा ।

कल्याणभूमि = वा० १६६ ।

[म० स्त्री०] (म०) वह भूमि या लक्ष जहाँ सब प्रकार का श्रयात् श्रय, धर्म, काम और मातृ-जनित कल्याण प्राप्त हो ।

कल्याणमयी = वा० २४६ ।

[मि०] (म०) कल्याण या मंगल करनेवाली ।

कल्याणमार्ग = प्रे० २३ ।

[स० पु०] (म०) पुरुषार्थ साधन का पथ या उन्नति का मार्ग । मंगलपथ ।

कल्याणी = श्रा०, ६३ । का०, २६४ ।

[म० स्त्री०] (म०) कल्याण करने वाली देवी, (श्रद्धा) ।

कल्लोल = वा० ६८ ।

[म० पु०] (म०) ('० कलाव' ।)

कत्रच = चि० ३८ ।

[म० पु०] (म०) युद्धस्थल में शरीर को रक्षा करने वाला पहनावा, वर्म । तत्रशास्त्र का एक प्रकार का यथात्मक अस्त्र । एक वृत्त विनोय का नाम ।

कत्ररी = ऋ०, ४४ ।

[म० स्त्री०] (स०) चाटी, जूड़ा, वेणी ।

कत्ररीभार = ऋ०, २१ ।

[म० पु०] (म०) जूड़ा, केशो का बोध या समूह । अलका की राशि का भार ।

कवि = वा० ४४ ५० । चि० ४८, १४२, १६४ ।

काव्यरचना करनेवाला । काव्यमग्न । श्रद्धा । त्रिवालयार्थी ।

कशाघात = वा०, २६७ ।

[म० पु०] (म०) चाबुक के मारने से लगी हुई चोट ।

दशरथ = वा० कु०, १०६ । चि०, ५८ ।

[सं० पु०] (सं०) एक ऋषि का नाम जो मरानि ऋषि क पुत्र थे। विविष्ट प्रकार क ऋषि। मृग एव मछलिया क नाम।

कष्ट = का० ११४ १६६। वि० ३५, ३६,

[सं० पु०] (सं०) १०१। प्र०, ६ ७।

दुख पीडा अथा।

कष्टपूर्णा = का० ७७।

[वि०] (सं०) ध्यापन, दुःखित पाहिन।

कसक = का० ११६ १६०, १७१। ल०

[सं० ली०] (हि०) ४२।

बहत हल्का मोठा दद, टीस। साल।

गिनोका भारी द्रव या वर। होगना।

कसकर = का० ७१। ल० ५७।

[पुव० क्रि०] (हि०) बौधकर।

कसत = वि० १७६।

[वि०] (श० भा०) कसता हुआ बाधता हुआ।

कसता = का० १२४, १४५।

[क्रि०] (हि०) बाधना।

कह = का० १६८ ११४ १७७ १७८

[क्रि०] (हि०) १८६, १८८ १६४ १६५ १६६,

२००, २०१ २०६ २१२ २२०

२३४ २४५ २७८। ल० १० ११।

शब्दोच्चारण द्वारा अभिप्राय व्यक्त

करना। कथना।

कहता = का० १५७।

[क्रि०] (हि०) श श्वाकारण द्वारा अभिप्राय करता।

कहती = का० ७७ १०० १०६ १११ १३१,

[क्रि०] (हि०) १३६ १५६ १६५ २०१ २११,

२१६ २४८ २६० २७३।

वर्णन करती। शब्दों द्वारा अभिव्यक्त

करती।

कहते कहते = का० ६४ ६० ३६।

[प्र०] (हि०) बलान करत-करत।

कहते हैं = का० १०७ १२० २१५ २२०

[क्रि०] (हि०) २३८।

बगन करत है।

कह तेना = का०, १२०।

[क्रि०] (हि०) कथना का भविष्यत् कान।

कहना = का० ३७।

[क्रि०] (हि०) कहने का घादस दना।

कहना = वि०, ६२।

[सं०] (श० भा०) कथन।

कहना = प्री०, १५। का०, २७, १० ५६ ५५

[क्रि०] (हि०) ६३, ६८ ७३ १६७, १८६ १६२,

१६८ २८२। प्र०, २ १६, २०।

बोलना।

कहने = का० ६० १२७ २१६।

[क्रि०] (हि०) कहना का बहुवचन।

कह रे = का० २८६।

[प्र०] (हि०) कहा, बाना।

कहाँ = प्री० २६, ४०। क०, ४, २४। का०,

[प्र०] (हि०) १०, १६, १८ २६ ३७, ६१ ७०

८४, ८६ १११ १२३, १३३, १४०,

१४४ १७५ १७७, १७६, १८३,

१६६, २११, २१३ २१६ २२४

२३० २४५ २५८ २५६ २६१

२७८ २६२। प्री०, ८ १७ १८

म० ७

किस जगह।

कहा = का०, ४८ ८५, ८६, ८७ ८६ ११२,

[क्रि०] (हि०) ११४ १६२ २१५, २८०। प्र० ५

७ ८, २३। म०, ४, ५ १०, १४

१६ १८ २१, २३।

कथना का भूतकालिक क्रिया।

कहानी = प्री०, ५२ ७८। प्री०, ६, २२। ल०

[सं० ली०] (हि०) ११।

मन स गढा या किसी घटना क

आधार पर प्रस्तुत किया हुआ विवरण,

कथा किस्सा आख्यायिका भूठा या

मनगढत बात। गल्प।

कहानी सी = का० ४।

[वि०] (हि०) कहानी की तरह कथन किंतु व्याप

हारिक सत्य का तरह।

कहानीति = वि० १८३।

[क्रि०] (श० भा०) कटा जाती है।

कहि = वि० ५७, ६४ ७४, १८१ १६१।
 [प्र० क्रि०] (ब्र० भा०) बहकर।
 कहिये = क०, १७। वि०, ४, ७४। म०,
 [क्रि०] (वि०) १०, २०।
 बानिए।

कही = क० १, २८ ३०। का०, ३०, ४१
 [प्र०] (हि०) ५२, ५३ ४८, १०४ १४६,
 १४८, १५८, १०५ १७१, १७७
 १८० २१८, २१९। म० ७६१, ६२,
 ८६। प्र०, ५ १० १४ २६। म०,
 ४ १८। १० १० ११।
 किसी स्थान पर।

कही = का० १६४।
 [क्रि०] (ब्र० भा०) कहा वा खागिग।
 कहें = वि० १५, १७१।
 [प्रत्य०] (ब्र० भा०) कही किसी स्थान पर।

कहरे = वि० ५।
 [क्रि०] ' कहोर।
 कहें = का० ८६, ११७, १६१। वि०, १।
 [क्रि०] (हि०) प्र० ८, ११।
 कहना वा प्रथम पुत्र्य मे रूप।

कहूक = वि० १।
 [प्र०] (ब्र० भा०) कहीं वा किसी स्थान का।

कहे = का० १६५ १७१ १७७। प्र०,
 [क्रि०] (हि०) १५, २०। म०, १७।
 कहा का बहुवचन।

कहै = वि० २५, ४८।
 [क्रि०] (ब्र० भा०) कहने है।

कहो = का०, ३७ ६०, ६१ ६४ १२२,
 [क्रि०] (हि०) १६६, १६६, १८४। म०, ६, १०,
 १४ २१, २३।

शत्रु उच्चारण करो, बानो।

[कहो—इन्हा बना ३ क्रिया ३ फरवरी १६१२
 में प्रकाशित और करना पृष्ठ ४४ पर
 सकलित बाठ पत्तियों की कविता।
 आज प्रति पत्र पर छत्र व्याकुल है,
 बाया भ्रमने में मस्त है, कुछ कहने

नही बनता, गदगद कठ वह स्वयं
 मुनता है जा कहता है। आज क्या
 हो गया है प्रियतम बाह्य या भ्रतर
 विप्राग, एक मिलन का क्या कारण
 है, बताना। > भरना।]

कह्यो = वि०, ४१, ७४।
 [क्रि०] (ब्र० भा०) कहा।

कहो = वि० ३१, ६७, १६५।
 [क्रि०] (ब्र० भा०) कहा।

कसौटी = वि० १७६। म० ८०।
 [स० स्त्री०] (वि०) मोना का परतण करनेवाला पत्थर।

कस्तूरी = १०, ५६।

[स० स्त्री०] (हि०) एक सुगन्धित पत्थर जा हिरण की
 नाभि स निकाला जाता है। एक
 प्रकार का हिरण।

कस्तूरीकुरग = का०, १५३।

[स० पुं०] (स०) कस्तूरी जानि का हिरण, वह मृग
 जिममे कस्तूरी हो।

काचनीय = वि०, २६, १६१।

[वि०]
 (स०) स्वरायुक्त, स्वागम। कचनारमय। चपा
 सदृश। घनूरा के तुल्य।

कॉटन = वि०, ३५।

[स० पुं०]
 (ब्र० भा०) कटक काटा, वृक्ष का टहनियों का
 नुवाला अक्रुर जो पित का तरह तेज
 होता है।

कॉटे = क०, ७। का० कु०, ४६, ८२।
 [स० पुं०] (हि०) का०, १५४, १५८। म०, २१, २६,
 ५२। प्र०, १२, १६। म०, २। ल०,
 १८, ३५।
 (१० कॉटन।)

कात = का०, ८२ १३१, २४२, २४५। म०,
 [स० पुं०] (स०) २८, ५६ ७१। ल०, १३।

पति, शोहर। चद्रमा। मुदर एक प्रकार
 का बडिया लाहा, कतिसार। कुतुप।

कानि = का० कु०, ६, १३। का०, ३७,

[सं स्त्री०] (मं०) २३६। वि०, ११, ३०, ४५ ७०
१४६, १५३। ऋ०, २७ ३४।
दासि, चमक, शोभा, छवि। एक
प्रकार का ग्राम छद्र।

कातिसिंधु = का०, २५४।

[मं० पुं०] (स०) शोभा गागर अत्यधिक शोभा या
छवि। छवि का रस्ताकर।

काँपना = का० २५, ८६, १२० १८४ १८६,
[क्रि०] (प्रनु०) १६८।

हिलना, धरधराना धरना भय से
शक्ति होकर काँपना।

काई = का० ८४।

[सं स्त्री०] (हिं०) जल के ऊपर जमा मल।

काई सी = का० ४०।

[वि०] (हिं०) त्याग्य उजड़ित।

काकती = का० कु० १६। का० ६३, १७५

[सं स्त्री०] (स०) १६२। वि०, १७१।
मधुर ध्वनि बलनाद कोकिल या मार
का मधुर तथा मीठा स्वर।

कादे = वि० १७।

[सर्व०] (हिं०) निसके।

काटत = का० कुं० ५। वि० ४२ १७३।

[पुं० क्रि०] किसी वस्तु को दो टुकड़ों में किसी
तोड़े धारदार औजार से विभक्त
करते हुए पीसते हुए समय विलात
हुए बिनष्ट करते हुए, डसन हुए।

काटपेच = वि० १८१।

[मं० पुं०] (हिं०) छलछिद्र। दाँवपेच। काटछाट।

काटना = का० २५७। म०, ६।

[क्रि० सं०] (हिं०) किसी वस्तु को औजार से काटकर
टुकड़ा में करने की क्रिया। विताना
जस समय काटना। घटना जस
चकर काटना।

कोटि = वि० ४२।

[मं० स्त्री] (स०) श्रेणी। कराड।

काठ = न० ५०।

[मं० पुं०] (हिं०) पठ का बाई भग जा बत्कर या गिर
कर मूल गया टा, लफटी।

काठों की सधि = का०, १३६।

[मं० पुं०] (हिं०) १। मूली हुई लकड़ियों का जोड़।

कातर = का० ११६। ऋ०, २४।

[वि] (स०) अधीर, व्याकुल, डरा हुआ, भयभीत,
घात, दुःखित।

कानरता = का० १६।

[सं स्त्री०] (मं०) अवीरता याकुलता भयभीति, अत्यंत
दुःख युक्त हानि का भाव।

कातरताएँ = का० १२।

[मं० स्त्री०] (हिं०) कातरता का बहुवचन।

कादवनी = का०, ५६। वि० १५०, १५७। ऋ०,

[मं० स्त्री०] (मं०) ३६।

वाला का समूह मेघमाला।

कादर = का० कु० ११५। मं० ६।

[वि०] (हिं०) डरपोक, भीर। अधीर याकुल।

कातरता = वि० ६३ ६५।

[मं० स्त्री०] (हिं०) भीरता डरपोकपन। अधीरता,
याकुलता। कातरता।

कान = का०, २७ १०३ १६० १८५, १८४।

[न० पु] (हिं०) सुनने का इंद्रिय अथवा श्रुति श्राव।

कानन = का० कु० ८२। का०, ३२ ७३

[मं० पुं०] (मं०) १४४ २६२, २७६ २८४। प्र०, ४,
७ १४ १६ २०। मं० १ ५, ७,
८ १५ १६।

जगन बन, घर।

कानन अचल = का० ४८।

[मं० पु] (स०) वन, जपवन रूपी अचल।

काननकुसुम = का० कु० ११३।

[मं० पुं०] (मं०) वन गुण, जगल व प्रमून।

[काननकुसुम—काननकुसुम शब्द जिस रूप में है
उमरु सदा वाता का रचनाएँ मात्र
मिलती हैं और सन् १६२६ ई० में इन
कविताओं में प्रमाणा न महाभन,
परिवदन एवं परिवतन भी किया था,
एमा तामरे मस्वरण व वक्तव्य से
प्रकट होता है। प्रवागक व अनुमार
दम रचना का प्रथम मस्वरण मन्
१६१२ (सं० १६६६) में हुआ है जिसमें

चित्राधार भी था। पर रचनाओं के बालक्रम तथा पत्र पत्रिकाओं की पाइना का दखन एए ठाम आधार पर बाबू किशोरालाल गुप्त ने इमे १८४३ की ही रचना माना है।

संवत् १९६६ से स० १८७४ तक की स्फुट कविताओं का संग्रह काननकुसुम म है और काननकुसुम के मुख पृष्ठ पर क्या मरि-त्सागर का यह श्लोकाथ है— 'राधिका हि बहत्का य पुण्यामादामवालेन' ।

रचनाएँ	पृष्ठ
१ प्रभा	१
२ वदना	३
३ नमस्वार	४
४ मंदिर	५
५ वरुण व्रतन	७
६ महाक्रीडा	९
७ कर्णावुज	१२
८ प्रथम प्रभात	१५
९ नव वमत	१७
१० मम क्या	२०
११ हृदय वदना	२२
१२ ग्राम का मध्याह्न	२४
१३ जलद आवाहन	२६
१४ भक्तियाग	२८
१५ रजनीगवा	३३
१६ सराज	३६
१७ मलिना	३८
१८ जल विहारिणी	४१
१९ ठहरा	४४
२० बाल क्राडा	४६
२१ बोक्लि	४८
२२ सौंदर्य	५०
२३ एवात मे	५२
२४ दानि कुमुदनी	५४
२५ निशोय नदा	५६
२६ विनय	५८
२७ कुम्हारा स्मरण	६०

२८ याचना	६२
२९ पतित पावन	६४
३० राजन	६६
३१ विरह	६८
३२ रमणी हृदय	७०
३३ हा, मारये । रय राक दा	७२
३४ गगामागर	७४
३५ प्रियतम	७६
३६ माहन	७८
३७ भावसागर	८०
३८ मिल जाया गल	८२
३९ नही डगते	८४
४० महाकाव तुनसोदास	८६
४१ धमनीत	८८
४२ गान	९०
४३ मकरद विदु	९२
[क] तप्त हृदय ५१ जिन उशीर	९२
[ख] ह पलक परद खिचे	९२
[ग] हृदय नाँट मरा शूय रहे	९३
[घ] मिल प्रिय इन चरणा की धूल	९३
[ङ] प्रथम परम आदश विश्व	९३
[च] गज ममान है द्रस्त	९४
४४ चित्रकूट	९५
४५ भरत	१०४
४६ शि-प मोदय	१०७
४७ कुम्हारा	१११
४८ बार बालक	११८
४९ श्री वृष्ण जयती	१२३

इनमें पत्र पत्रिकाओं में विन्मार्जित रचनाएँ प्रकाशित हुई थी—

इष्ट कला २,	किरण २	आवण ६७	चित्र
" "	" ५	" ४	जलविहारिणी
" ३,	" १,	आखिन ६८	प्रभा
			रजनामथा
			दव मंदिर
" "	" २,	कानिक ६८	एकान मे
			ठहरा
			बालक्रीडा
			राजराजेश्वरी
			नव वमत

ट्ट	बला ३,	४, मार्च '१२	मरोज महाम्रीडा करगावुज सौम्य कोविल
"	३	" १०, मिन० '१२	मम क्या
"	३,	" १२ नव० '१२	हृदय वदना
"	४,	" १ जनवरा '१३	मत्स्यप्रत (चित्रकूट) भरत ।
"	४,	" ४, अप्रैल '१३	कल्याणवदन भक्तिप्राग निशाव नदी
"	"	" ५ मई	दलित बुधुन्ता प्रथम प्रभात भूल गजल
"	"	६, जून	नमस्कार
"	४	२५ २ किरग २ अगस्त	नमस्कार वृष्णा जयती
"	५	२४ १ विरग १, जनवरी १९१४	पतिन पावन रमणा हृदय
"	"	" २ फरवरा १४	याचना राजन विनाद बिदु
"	'	३ मार्च १९१४	हा मारष । रम राव दी ।
"	"	४ अप्रैल "	गगामापर विरह मार्ग
"	"	५ मई '	मिलन-है पलक

इन रचनाओं के भातर प्रसाद के विवाह के चिह्न स्वयं स्पष्ट हैं। प्रसाद के समुल खडी बाला के था उनक प्रववर्ती आधुनिक युग के जितन भा कवि वतमान थे मवका रचनापद्धति का उ हान प्रयाग रूप म ग्रहण किया यथा यहा पर भारतदु भा हैं, आबर प ठक भा हैं हरिऔध और मयिला गरण गुप्त भी ह तना स्वयं प्रसाद जी भा ह । इसमें रमान सादा सुगंध वानी मकरद और परागवाली मभा प्रकार का रचनाए एक साथ एकत्र हा गइ हैं । इतना विविध चयन उस यक्ति का हा प्रतात हाता ह जा गसा राह पर गवडा हा जहा म रास्त अनक दिशाशा का आर मुड रह हा । प्रसादजा भा यहा वस हा दाखल ह । व मभा रास्ता पर याडा दूर चलकर पुन दूमर रान्त पर चलन लगत ह । और मभा रास्ता पर चलकर अत म सवुष्टि न पा सय रास्ता वनात दाखन है । उत पथ का बाजबिदु दन रचनाओं म है । य प्रयागकालान रचना है । इम रचना म यह सजत उम चित्रकार का भात स्पष्ट रूप स मित जाता है जा चित्रकार वत बड़े आदक व त्रिप चित्र बनानेवाला हा तथा धुन म अपना प्रयागवाला म त्रिप रान बाध कर रहा हा ।

मरन तथा मन्त्र है। स्वभा वरनाएँ
 धपना म्ह व रना है। प्रकति धना
 धन माया व रूप में यही निर्वाह
 पहनी है धोर कवि का धरि धयिन
 विश्व है जहाँ पर प्रकृति का वानन
 धारण है यही रव धोर नरन गमान
 है। कवि ने उग मरि व दबता की
 विश्व गृहस्थ माना है। कवि न पुण्य
 की म्हात्राडा भी प्रकृति के साथ रना
 है धोर द्य क्मगात्रुज का हा धानि
 का हेतु माना है। इम क्मगात्रुज म
 प्रथम प्रभात भा है नव वसन भी है
 धोर उमव भातर की मर्म कया भी
 है। मर्म कया ने ह्म्य का वना पूजा
 है धोर व ह्म्यवना माकार हा धान
 भी उठा है। यद् ह्म्यवना प्राणप्रिय
 का है। इम निरछा चितवन भा है।
 मानन तथा मनन का धोर धांगू
 वरमाने की बात भा है, प्राधिन द्वार
 सतान का वान भी है धोर म्हार की
 बात भा है। प्रमा व काव्य व मध्य
 म प्रमयी जिन पाडा का स्वर मुटना
 मुसरित र्मा वद् यही भा है। कभा
 कभा उम पाडा का कया रूप हा जाता
 है धोर वह नितनी विवन हो जाती
 है, इमका चित्र दबना धप्रामगिक
 न हागा।

कभी कभी हा ध्यान वचिना यडा विबल हो जाती है
 प्राधिन होवर फिर यह ह्मका प्रियतमा वत्त सताता है
 इम तुम्हारा एव महारा, बिया करा इमम प्रोडा
 मैं ता तुमकी भूल गया हूँ पावर प्रममया पीडा।
 प्राकृतिक दृश्या स मवधित रचनाएँ भी इममे हैं।
 धीम का मध्याह्न भी धीमवक्र भा
 धूल उडाता, प्रवल प्रमजन व साथ
 एड एड धम् यही उपास्थत करता
 है। नत्र निभर व सलित्य स जलाध
 का धावाहन धानधुर उगान व लिय
 महीं बिया गया है। रजनागधा भा

धना गौरव ग गिन प्रमुन कस्ती
 ह्म कृपि बाया भा मजा। गीन पहनी
 है। मन्त्र भी मपुदन धाण्य व
 परागमय वनर ग मृगधिन हा यही
 प्रतिगि है। इग् भा धरती निरणावनी
 ध्याम में प्रगाग्नि ररता दृग्मा पाग
 पटना है तथा प्रकृति भा रजनाग म
 जवनिहाग्नि का रना र्म धान
 की धना ग निर धि रना है। वानिन
 भा नवा कमाना कठ लरर मना
 मुसवानी धरि उधियन कर रता है।
 एतांत म निस्तन्धना है, पर साथ ही
 श्रोमपटना भी है। प्रोडागर व वाच
 ननिन कुमुनिना भी यही मुनकरा रहा
 है। चित्रवृत्त धोर तुनगीदाग तथा
 ग्मज जयता मवधा रचनाएँ भी त।
 इमम कवि न प्राय उन गभा विपया
 पर जा उमवे गामन ध्राए हूँ भाव
 ध्यन किए है। रचना म न व र प्रम
 प्रमया का परमना तथा जिन रूप र्मा
 उपासक कवि रह मवता धा उसका
 दशन करना धधिव उपाद्य होगा।
 इमम गृध ६० धोर ८१ पर निग गण
 गान ता धार ध्यान ध्राकृष्ट कग्ना
 चाहूँगा।

उपमुन रचना म एम युवता व चिरजाव हान का
 बाधना का गर्द है जा दग, समाज,
 विश्व धोर मानवता व कन्यागण व
 न्रिय धविनामा हा। या ता यह रचना
 इतिवृत्तामन है। इमम काव्य व विगप
 गुण मभवत न दार्गे। साथ सरल
 भाव हा स्पष्ट रूप स ध्राए है। किंतु
 प्रमा व जीवन का ममस्त धादध
 जा बाद म उनव काव्य का धाधार-
 बिन्दु विना, यही पर जिन भाति एरुत्र
 दृग्मा है मभवत यह म यन न गध।
 मभवत धादध पुण्य का इतम मुदर
 चित्र भा प्रसा र्म की भावना क धनुसार
 म यन न, मिल सकगा। बाधा का

- इंदु कला ३, ४ मार्च '१२ मरोज
महाक्रीडा
कम्पाकुज
सौंदर्य
कोविल
- " ३ " १०, सित० '१२ मम कथा
- " ३, " १२ नव० '१२ हृदय वदना
- " ४ " १ जनवरा '१३ सत्यव्रत (चित्रकूट)
भरत ।
- " ४ " ४ अप्रैल '१३ कर्णव्रदन
भक्तियाम
निशाथ नदी
- " " " ५ मई दलित कुमुन्नी
प्रथम प्रभात
भूल गजल
- " " ६, जून नमस्कार
- " ४ म्च २ किरण २ अगस्त नमस्कार
वृष्णा जयती
- ' ५ खंड १ किरण १, जनवरी १९१४ पतिंग पावन
रमणी हृदय
- " " " २ फरवरी १४ याचना राजन
विनो विदु
- " " ३ मार्च १९१४ हा मारय । रय
राज दा ।
- " " ४ अप्रैल " गगानागर
किरह
मोहन
- " " ५ मई " मिलन-है गलक
परद खोज
- " ५ ३ मितबर " भवरविदु—हृदय
तहि मरा शून्य रहे
- " ६, १ जनवरी १९१६ तुम्हारा स्मरण
टमारा हृन्ध
- " कला ६, किरण ४ १५-मकनू० नव० मिन जाभा गल
सरस्वती—वप १३ अक ६ जून १२ जलद ब्राह्मण
नागराप्रचारिणा परित्रा—जय हा पुनगागम की
(पुनगागम की क अमर पर)

इन रचनाओं व भीतर प्रसाद के विकास के
बिह्व स्वय स्पष्ट हैं । प्रसाद क समुह
खडी गंगा क या उनक पूनवर्ती
प्राधुनिक युग क जितने भा कवि
वतमान थ, मक्की रचनापद्धति का
उ हान प्रयाग रूप म ग्रहण किया,
यथा यहाँ पर भारतेंदु भी हैं, थायर
पठक भा हैं, हरिऔध और मधिली
शरण गुप्त भा ह तथा स्वय प्रसाद
जा भी ह । इसमे रमान, सादा सुगम
वाला मकरद और परागवाला
मभी प्रकार का रचनाए एक साथ
एकत्र हो गई हैं । इतना विविध चयन
उस व्यक्ति का हा प्रतात हाता ह जा
एसा राट पर उठा हो जहा स रास्त
अनेक दिशाओं का अार मुठ रह हा ।
प्रसादजी भा यहाँ वस हा दाखत ह ।
व मभी रास्तो पर थाटा दूर चलकर
पुन दूसर रास्त पर चलन लगत ह ।
और मभा रास्ता पर चलकर अत म
सतुष्टि न पा स्वय रास्ता बनात दाखत
है । उस पथ का बाजबिदु इन
रचनाओं म है । यह प्रयागवातान
रचना है । इस रचना म यह मकत
उम चित्रकार का भाति स्पष्ट रूप स
मिल जाता है जा चित्रकार बहुत बड़
आदश क निय चित्र बनानवाता हा
तथा छुत स अपना प्रयागशाला म
दिन रात काम कर रटा हा ।

इसम तुकबंदियाँ और मारमता है साथ हा बहुत
बडा वस्तु और भा है और वह वस्तु
है उम परिधि का गान जिम परिधि
में भविष्य म कवि का अपने काव्य का
वृत्त बनाना था । इसम स्वतंत्र इति
वृत्तात्मक कथा, इतिवृत्त बाल प्रतीति
दशन पौराणिक आस्थान तथा
रामाष्टिक रचनाए हैं । कुछ रचनाए
भाया और भाव का दृष्टि स म अत

मरत तथा मन्त्र है। इसका वर्णनाई
 धरना यह व रमाता है। प्रकृति धरनाई
 धरन माया व रूप में यही शिवाई
 पढती है धीर कवि का मन्त्र धरित
 विश्व है जहाँ पर प्रकृति का धरन
 धाराम है यहाँ रव धीर नरक ममान
 है। कवि ने उम मन्त्र व दबता का
 विश्व शूरस्य माना है। कवि ने मुग्ध
 की मन्त्रावाहा भा प्रकृति व माय रत्ना
 है धीर इम कर्मगात्रुंज का हा धानि
 का हेतु माता है। इम कर्मगात्रुंज म
 प्रथम प्रमात ना है, नव वसा भी है
 धीर उनव भीतर की मर्म कथा भा
 है। मर्म कथा से हृदय की घटना पूजा
 है धीर यह हृदयवदना मातर ह। धान
 भी उठा है। यह हृदयवदना प्राणुत्रिय
 की है। इमम निरछा चितवन भा है।
 मानने तथा मानन का धीर धानु
 वर्मान की वान भा है, प्राधिन होर
 ममान का वान भी है धीर महार की
 बात भा है। प्रमाद व काव्य व मध्य
 म प्रममया जिन पाठा का स्वर मुरनी
 मुसरित दृष्टा यह यही भा है। कभा
 धभी उम पाठा का कथा रूप हा जाता
 है धीर यह कितना विवचन हा जाता
 है, इसका चित्र दबना धप्रामागिक
 न रोग।

कभा कभा हा ध्यान वचिना यही विवचन हो जाता है
 प्राधित होर फिर यह मन्त्राप्रियतम। बहूत मताती है
 इन तुम्हारा एन महारा, किया करा इमम प्राडा
 मै ता तुमकी भूल गया है पाकर प्रममया पाडा।
 प्राकृतिक दृश्या से मबधित रचना भा इमम है।
 प्राप्य का मध्याह्न भा मग्निचक्र मा
 धून उढाता, प्रबल प्रमजन व माध
 गड रड घा यही उपास्थल करता
 है। नत्र निभर व लालित्य से जलाध
 का भावाहन धानदापुर उमान व नित्य
 यही किया गया है। रजनीगधा भा

धरत मीरुम म विन प्रयुन करता
 हूँ दुगि याता मा सजाता मीव पढती
 है। मगाज भी मधुमन धारण कर
 परानमय कशर म मुग्धिन हा यहा
 प्रनिश्रित है। इदु भा धरता विरगावना
 धरन म प्रनारिन करता म्मा म्मा
 पढता है तथा प्रकृति भा त्रयताग म
 जयविहारिणा का म्मा दूण धानद
 का घना म विर यिर रगी है। कानिन
 भी तथा कपनाय कड सत्र मनापर
 मुग्धारी धानि उपस्थिता कर रता है।
 एतात म निस्तन्वता है, पर माध ही
 धीमप्रना भा है। प्राथमर के बाव
 लीना मुमुनिनी भा यही मुग्धरता रहा
 है। चिकनू धीर तुनमापाय तथा
 कृष्ण जयता सवधा रचनाए भी ह।
 इमम कवि ने प्राय उन मभा विपया
 पर जा उमव गामन घाए है भार
 धन किए है। रचना म व व न प्रम
 प्रयया का परखाता तथा जिन म्म का
 उपायक कवि रट मबता था उसका
 म्मन करना धधिव उपादय होगा।
 इमम पृष्ठ ६० धीर ६१ पर लिपि गण
 'मान' का धार ध्यान भाट्ट करना
 चाहेगा।

उपयुन रचना म एम मुग्धका व चिरजाय हान का
 कामना का गई है जा दश, समाज,
 विश्व धीर मानवता व कन्वण व
 विव धविनाशा हो। या ता यह रचना
 द्रितिवृतात्मक है। इमम काव्य व विगप
 गुण मभवत न दारों। माध सरल
 भाव हा स्पष्ट रूप से घाए है। किंतु
 प्रमाद व जीवन का समस्त घादश
 जा बाद म उनक काव्य का धाधार-
 विदु विना यही पर जिस भाति एकत्र
 दृष्टा है मभवत यह मधन न दाध।
 सभवत धादग पुरुष का इमम मुदर
 चित्र भा प्रसात् की भावना क धनुमार
 मन्वत्र न, मिन सवगा। कासा वा

यागाररत्न प्रमाणं वा विज्ञातं प्रियं
 यो, यह इत्यम ही जात जा गवता
 है। जननी, ज मभूमि, विराट्प्रेम,
 विश्वबंधुन इति धीर कथा गवता
 प्रेम जितव जीवत की इति या सं
 घटत गव्य मव प की भक्ति गात
 धीर जायता है। गव्य ही जितम
 कथा का कथा कथा भी है। किन्तु
 एतौ गवत निय मुना है। कथा र
 ममां ह्य मुनाभिन है। जितम प्रम
 भरा है। यह रूप उम ध्यति वा है।
 एता अग्नि धीर ममां एता मुवत
 है। उता ध्याता वा म्यत भी वा
 मयुग्य भी वा घयाता भी वा
 धीर यो ध्यायता प्रमाणं व वाच्य
 म वा म भी प्रमुटित हृद्। य वचन
 ध्यति व पूजक मात न रत। उता
 मन विश्वगुण व रूप म कामायो
 म पत्त। घनएव जानसुत्रम् वा
 महता वाय व मध्ययन व निय घ्यात
 भावश्यक है।

दुर्गरी बान जा इन रचना वा घार मह्या ध्यान
 घाट्ट करती है यह है उन न कथा
 वा बाजारपण जित् छायावा धीर
 रट्ट्यवाद व नाम म मवाधित किया
 जाता है। वतमान रुद्रिराग्रह द्वारा
 व्याप्त परपराभा व प्रति ह्य का
 सत्य वाणा वा उद्घाप रामाटितता
 वा प्राण है। यही पूव निवन्त किया
 जा चुका है कि विराट वा छाया कवि
 वा सर्वत्र दिवार्द पठता है तथा सभा
 प्रकार की बदनामा धीर विस्मृतिवा
 म विराट व रूप का है। बोध विश्व मे
 कवि वा होता है। सभी सालाए इमा
 विराट व कीतुन हैं, चकल ह्य व
 समीप होती जाता हैं, ज्या ज्या उतका
 बोध व्यक्ति वा होता जाता है। यह
 बात बुद्धि द्वारा स्मरण, प्रभो, नमस्कार,
 मदिद मादि रचनामा स होता ही है,

गव्य है। प्रुति व घ वियत म भी।
 इन गीत का अन्त म है। गव्य धीर
 मुन का प्रमुतरण गभा है। वा प्रिय
 एत म है। कवि का मिया। कथा
 प्रम कथु म प्रिय वा है। कीतु
 गीत ध्यात है धीर प्रम कवि वा
 प्रिय है। मयं ध्यात है। इनम उता
 गीत का प्रभा गवत गगी है। वह
 मानात है। घयात प्राग्वत है।
 गवत गव शिव गीत व कथाकोत
 है। प्रमाणं म मानात गीत धीर
 प्राग्वत मुनमा व गव्य शिव गीत
 वा जो इत्यानात वा म प्रकट ह्य
 उता गता जान सुत्रम् व गीत
 म है।

दगना जा भर इन दगा करो
 दम वतम वित पर रगा करो
 निगा विगा वित यह वा जायगा,
 गव्य मुन तव प्रकट है जायगा।

धाकार्यं महाभारतप्रमाणं द्विधा व प्रभातयुग म
 परस्पर प्रम वा मानव व भातर
 मानवाय प्रेम द्वारा शिव प्रम वा बात
 कथा वत यह गाह्य वा बान वा
 धीर कथा न हाया वि प्रमाद न वह
 गाह्य जानसुत्रम् म दिगाया। इन
 दृष्टि स इम रचना वा बूत वभा मह व
 है। ह्य वनावाली रचना म प्राण
 प्रिय वा बात वा स्पष्ट उन्नेत। कथा
 जा चुका है। धीर काव न मर्मववा
 म स्पष्ट कहा है कि हम सुम जप एव
 है साग वचन किंरें यो नोतव प्रम
 की ममकवा स्पष्ट उभाड पर है।
 उम उभाड म महज जीवत का सौंदर्य
 है इमम नो मत नही हो सतत।

उनका भाषा व मवम म पहल हा कहा जा चुका है।
 उन समय तन प्रचलित विशिष्ट वृति
 कारो द्वारा प्रयुक्त प्राय सभी छंदो
 का प्रयोग इसमे किया गया है।
 अरिल्ल छंद व प्रयोगकता क रूप मे

प्रतिष्ठित जगद्वरी १६१३ की 'मरत' रचना इगम मननित है। उग गमय यह रचना इदु' म प्रकाशित थी। गभी दृष्टिया ग यह रचना प्रताद क बाध्य क विक्ताम क' अध्ययन क' लिय घपना मह्यव ररती है। इगम बाध्य का नया शम्ता, जो प्रगाद का सपना था, मवन्न स्पष्ट हुआ है।

फानन कोने = प्र०, ३।

[सं० पु०] (हि०) जगन क' एक कान म या घर क' एर कोने म।

फाननचारी = का०, १६६।

[सं० पु०] (सं०) जगन मे विचरण करनेवाले जगती जनु, प्राणी। घर में विचरण करने वाले मानव।

फानन सा = का०, २२३।

[सि०] (हि०) जगल या घन के समान। घर के समान। वन मह्य।

फानी के फान गोल = का० ७०।

[मु०] (हि०) श्रयत ध्यान स मुनना।

फाफूर = ३०, ७०।

[सं० पु०] (प्र०) एक मुस्लिम व्यक्ति का नाम।

[फाफूर—कमना के साथ ही सनापतिमा द्वारा मलिक बाफूर जिसका श्रमरी नाम मानिक था और जा एक हजार तानार म खरीदा गया प्रति सुन्दर युवा म था— दिल्ली भेजा गया (३० अलाउद्दीन)। मलिक कमना का बाल सहचर था। सन् १२६२ म उमने अलाउद्दीन की मोहित किया। कुछ समय बाद सेना पनि बना लिया गया। उसने दक्षिण में चारंगन का विजय की और कहा जाता है कि फिर पटयन्न द्वारा अलाउद्दीन का सन् १३१६ म हत्या करवाई। अलाउद्दीन के छोट लडक सुतारक न उम मरवा डाला।]

फाम = का०, ६, ५२, ५३, ७१, ७४ ८८,

[सं० पु०] (सं०) ६०, ६३, १०८, ११०, १३६, १४७ १६०, २६०।

इच्छा, मनोरथ। इन्द्रिया की घपने घपने विषया की श्रार प्रवृत्ति। सहवात या मधुन की इच्छा। कामदेव। महा दन। सतुवग या धार पनाया मे स ए। वट जा क्या जाय। व्यापार। बाय।

फामवासता = प्रि०, ११।

[सं० स्त्री०] (सं०) प्रिय मह्यम एक मधुन की इच्छा।

फाम = का० कु० ६६।

[सि०] (सं०) कामना का पूग करनेवाता। मनुषि प्रदान करनेवाला।

फाम फानन = का० कु० ६६।

[सं० पु०] (सं०) अभिमार वन। मनुषि प्रदायक वन।

फामना = का० ३८। का० ३८ ८७, १३१,

[सं० स्त्री०] (सं०) २८० २६३। म० १८, ३७ ३६, ६४। प्रि०, ६६, २५, ल०, १८। मन की इच्छा, मनाथ स्थाहि।

कामायनि = का०, १७७।

[सं० स्त्री०] (सं०) ह कामायनी। कामायनी का मनाथन।

कामायनी = का० ११८ १२६ १७, १८०,

[सं० स्त्री०] (सं०) २१४, २३०, २६०, २६५, २६०।

मनु की पत्नी, अर्द्धा का एक नाम।

[कामायनी—पय पत्रिकाप्रमे मे ह्य रूप म इनके अल प्रकाशित हुए—'इन्द्रजाल' माधुरी, वर्ष ७, पृ० १, सं० १, सन् १८२८-२६ (अर्द्धा मग से)। 'कौन' माधुरी, वर्ष ८, पृ० १, सं० १ सन् १६२६ ३०— कौन ही रुप स्वीचकर या मुझे अपनी श्रा (वासना, मग पृष्ठ ८६, ८७) मानवता का विक्ताम—डरा मत छो अमृत सतान, ह्य, मई १८३० (अर्द्धा मग, पृष्ठ ५८ स अत तक), जीवन सगात—नया, वही, क्या वही में भ्रम पुज, प्रमा, जनवरी ३१, कोशोत्सव म्मारक मग्रह १६२८ म (चिता मग का अश) मनु की चिता, हिमगिरि

ने उगुग गिरर पर गुमा
घातूर १६०८ (कामायनी का
घारभ) मरगया, जनवरी १६३६—
कामायनी संग १६३६—गीता)
घानि घानि घज प्रवागिा हू। गुमका
का प्रथम मरगण मनु १६३६ म
प्रवागिा हू। प्रगाना प्रारभ
म इमका नाम 'अदा' रगता थाह
ये। 'ग' म कामायनी' नाम इम वष
का रगा। इम प्रका मट रचना प्रका
रूप म १६०८ म गी घाने लगी था।

कामायनी पथा

चिन्ता— कामायनी' का कथा का घारभ इम
म बार क प्रथम मनु की उग स्थिति
म होा है जा जलप्लावन क तलाव
वा क था। इम प्रथम मग का नाम
चिन्ता है। कथा का घारभ जलप्लावन
या मड प्रलय का ममासि स हूा है।

हिमगिरि ने उगुग गिरर पर गिला का
जातन घाट म बटे भीम नयनो म
नरग मनु प्रलय का प्रवाह चिन्ताकार
ने दग र ग थ। जलप्लावन उतर
कता था घोर वी मूध म महावट
स उनका नीहा बधी था। उह घब
पृथ्वी भी दिलाई पढन लगी थी।
मनु चिन्ता करत है। उग चिन्तन म
बिना को विश्व वन की ब्याला घोवित
करन हू तथा उस बटरी बसात हू
उमस पूछने है कि क्या तू दतना मधिक
मनन कराएगा कि अमर जाति का
अवगण मट जाव भा मर जायगा।

भविय्य उह निराशापूर्ण दिगई पडता है।
अग्नि का धुवन म स्मृति उनक ममुल
घा जाती है। व जलप्लावन क पूव
का दवसृष्टि पर व्यग करत हू कहते
है अर अमरता क बमनीये पुतला।
तुम्हारे जयनाद क्या हू ? प्रट्टि ता
दुर्जेय रह गई पर तुम्हारा सारा बभव
अपार दुखभागर म हूव गया।' फिर

अग करो हू पूछा है कि तुम्हारी
मट मणि क्या हू जिगद म म
प्रट्टि तुम्हारे मरन म दिनमबिनी
जाकर प्रति निन बीनी था ? अर
इम मग लम रतना वन मग ना घोर
कथा हा मका था? इमन हा घाता का
गारा माग बिनाम ममास हा मया।
व दतनावा क नाह की मान्य स्थिति
का मभरा विर उस्थित करा है
घोर उद्या रग करा है कि विश्व
वागना क व मर प्रतिनिधि मुम्मा
का वन मग।

मनु पर भा परनागाद करन है कि एव
कामिनिषा क नयनों म जही नाव
नचिना का मृष्टि हानी था बही घात्र
प्रलयकर कथा हा रगे है। इम हृष्य
का मरवर भात्र मुभ राता पड रहा
है। उ हा प्रलय का स्थिति का पुन
बगुन किया है घोर मट कथाया है कि
प्रलय ममस्त धरा का हुआ चुगा है।

पुन इम रूप म घपना घवस्थिति का कथा मनु
कहन है एक नाव का जिम तरल
तराये नियति क पथ पर निए कता
जा रहो था। उम समय का प्रलयकर
स्थिति का व बणन करते है—'ता
नहा कितने प्रटर घोर दिवस उम
प्रलयचक्र म बीन घोर नीहा उतर
गिरि स भावर टकराई। उसी समय
दवसृष्टि क दवस मनु की स्वास चलने
लगा। देवसृष्टि की अमरता क जजर
दम के प्रतीक अघ वेवल मनु थ।
अपने ऊपर अव्य करते हू कहन है
कि दवसृष्टि की उस दमयी अमरता
का सत्य वेवल मोन नाश विवस
घोर अंधेरा है तथा मत्यु का अमरता
का बात उसके भग की हिमानी सा
शोतल बसाकर व कहने हैं। जल
प्लावन म मत्यु क समान निराशा उनक
माप था तथा सबक घना कुहासा दील

पट रहा था। इस स्थिति में भीगग जनमघात वाग्य के रूप में उड़ता चला जा रहा था या प्रभात का मंदिर लेकर मूय निकट आता जा रहा था यह मनु को ममभ नहीं पटना था।

आगा—एनी ही स्थिति में प्रकृति का विवगग मुख पुन हमन तगा और ज्या जयलपमा नी उदित दुई। सृष्टि की वपा शीत गई। शरद का विकास नए मिर स आरंभ हुआ। घरा न हिम का आच्छादन होने लगा। वनस्पतिया उगन रगी। विधुघज पर मकुचिन घरावधु प्रकट हान लगी। भव मनु व मन का खटका बात चना।

व माचन तग विमव क्षामन में विश्वेदव, सविता पूषा, दद, मरुत, पवन, वरुग आदि धम्बान हाकर धूमन है। य मर क मव घोर हम दव नहीं थ, अपितु परिवतन के पुतले थ।' पुन उनकी यह जिनासा जगती है कि सृष्टि का मूत्रमबालव यह विश्वदव वीन है। उनके मन में ममना जगती है और जीवन का लालसा पुन उअनी है। फिर न स्वय प्रश्न करत हैं कि क्या धव में और जाऊ लेकिन जाकर मुझे क्या करना होगा ?

मन में भ्रम हटना है। प्रकृति का मौन्य उहें जीवन की नव प्ररणा दना है और मनु एक गृहा में रहन तगत हैं। व सागर व तीर पर धमिहाज जगतन लन और उहाने जीवन का तप म तगा थिया। भव व कम की शीतन छाया में स्वम्ब हाकर युध नयन स प्रकृति का विभूति शान हाकर दखन लग। उहति पाव यन आरंभ थिया।

थ यह भा मोचने लगे कि मभवन मेरी ही भाति बाड और जीव भी बचा ह। इमनिय बचा हुआ भ्रन दूर रख आते थ नाकि इनमे एया अपरचिन मुख पा मक।

सहानुभूति का मूख्य उम अरलवन म भी व ममभन तग और एकान चिन्तन करने लग। नित्य नाग प्रश्न उपस्थित हान, जा पलवन में अणना तग बदलन। उनका भय प्रस्तुटित चिन्तन उत्तर दना और व धपने जावन का अस्तित्व बनाए रखन व निय ध्यम्न भी रहत ? उनक कम गिनातर बढन ना।

उनक मन में प्रकृति का दखतर अनात्ति वानना जगी और मितन की अभिनापा जीवन के ठमिल सागर के उम पार हमन लगी। उहें ममवदना का चोट लगा तथा व साचने लग कि कल्पना का लाक भी वितना मधुर हाता है। व धपन स ही पूछने लगे कि भव और कव तक अनेले रहना हागा ? प्रकृति में मन की इम कामना का व रहम्य दूढने लग तथा प्रकृति का प्रेमिका सा अनुराग दन तग। उम अनुराग में व चिन्तन करने तग कि मैं कुछ भूल गया हूँ, वट भ्रम है, वेदना है या भ्रांति है। वह चाह ना ना निश्चय ही उममे मन का मुख मोता है।

भाषा मग यही समाप्त हाता है तथा अगवे मग में अद्या प्रकट हाती है।

अद्या—अद्या न मनु स पूछा कि मसुनि सागर व तीर पर प्रभात के अग्रदूत म तुम वीन हो ? यह स्वर उह मधुक्वरी के गुजार सा मधुर लगा। मनु न अद्या का धार दन्वा। अद्या का गाधार दश व नीन रामबाले मेपा के कम से दवा हुआ

समस्त मूर्खरूप मानने लगी। यह उल्टा लगा माना था। य मान सुनारी रंग के चित्र का पुन गिता है। मनु का जडा म उम गीतर रगि ड धारा भर दी। मनु थडा क प्रश का उत्तर दिया,

‘तब धीर भगवा क मय म समताम धीर फिर रहा है। मरा जाना पता म ध्यम है धीर मी धाजाना उतभा हुमा जानापापा कर रहा है।’

थडा उमम पुन पूछती है कि दम तारम पतभ म वगा क दूत क समता तथा दम सपन म जीवल म वगा क गहम तुम कीन हा ? तुम्ह दगवर मानम का हलचन शक्ति पाती है।’ मनु भी भागतुन का परिषय जानने का कामना स धातुन हा उछा है।

भागतुन बहने लगा कि मरा धूमन का दम्य म है। मी ह्यय की मसा का मु दर मय दूढने पती। मर मन म ललित कना का पान गीतरन क नये नव उत्साह था। इधर गधकों के दश पला धाई। सपने पिता की प्यारी सतान है। एक दिन अपार सिधु सुंघ हाकर पवत से टकरान लगा धीर यह जीवन निरुपाय हावर प्रवेत धूम रहा है। यहाँ किमी प्राणा ने दान स्वहप वसि का धन रख दिया था अतएव मन म ऐसा अनुमान हुमा कि अभी इधर कोई मजीव बचा है।

थडा पुन मनु से पूछने लगी कि तपस्वी तुम इतने कतात क्या हो ? तुम अनात दुख क डर स भविष्य से आजान हावर भिभक रह हा। मगलमडित कामका तिरस्कार करतुम भूल कर रहे हा। इससे सतार असपन बन जाता है। जिसे तुम अभिशाप धीर जगत् ज्वालाधो का मूल समझने हो, यह

मन भूत जाया कि यह ईश का रथमय वरणा है। मगरमगा ने मुम का प्रति शारी है विगमना की पादा म हा महानु विगन ध्यम धीर शक्ति है। यहाँ तुम मुम विगम मय है।

मनु विगमना कउन तप कि जीवन विगना विगम है म मीन दम दिया है। उमम मुने मंद् नही है। विगन म गपनता क तना है। काम का परिणाम सग विगममय है।

पुन मसा थडा ने मनु का उदाभिषा करत हुमा कता कि जिम जीवन का मर कर धीर जीवन है तुम दाने मभिषा सपार हा। गण हो कि जीवर भी उम जीवा क दीव का हार रह हो। तप नही जीवा मय है। प्रकृति पतिवतन मय है धीर नियम नूनन है। यह विस्तृत भूगड प्रकृतिमय स पूछ है जिमना उपयोग करने क लिय प्रवत तुम हा। कर्म स भाग धीर भाग स कर्म हा है। यही जड चतन सज का धान है। जो तपस्वी धानर्यण स हीन होना है वह भारतविस्तार नही कर सता। मी तुम्हारी सहरा बनने के लिय तयार है। मी कसृति का पतवार तुम्हारे हाथा गोपती है धीर धाज स यह जावन उत्तम करता है। दया माया ममता माधुर्य धीर अगाध विश्वासपुवन मरा स्वच्छ हृदय तुम्हारे नये खुला है। उठो ! तुम ससृति के मूल रहस्य बनो धीर तुम्हारा सोरभ समस्त विश्व म भर जाय।

धीर क्या तुमने विधाता का यह मगल वरदान नही मुना विश्व म यह जय गान गुन रहा है कि शक्तिशाली होकर विजयी बनो। उठो ! विधाता की कल्याणी सृष्टि इस भूतल पर पूछ मफल हो धीर तुम्हारी चेतना का

गुंर इतिहास प्रमित मानव भावा वा
सत्य सत्तर त्रिय विश्व व हृश्य पटन
पर त्रिय प्रसंगा स प्रमित हा। त्रिन
व विद्युत्प्रकाश वा तिरताम ध्यस्त विरत
विरत है, उनका समन्वय करा तात्रि
मानवता विज्ञानिता हा जाय। यहीं
श्रद्धा मय समाप्त होता है।

काम—मनु वा जीवनरजनो व विद्यन परा म
शुभके स मधुपय वनत गलने लया।
जावन वा घाता म एव भस्मष्ट
ज्वातिमयो त्रिपि भरवर मनु धपन मन
में बुद्ध साचने तय। विर भा प्रगत
की प्रभिलाषा न ग्या। मजाय उनाय
नाशन तया। गुंरता व उम परद म
व साचने लग त्रि करा पाद ध्रय था
नी धरा है। इन रक्ष्य गान म उ ट
प्रेरणा भिना धीर मनु बर्तन तगत है
त्रि नक्षत्रा गुम्ह बना मात्रुम वि इय
ज्या का जाला क्या है? क्या यह
गुणमा दुर्भेद्य बनेगा धीर म इद्रिया
की धनता हा मरा हर बनगा।

पुन मनु धपना स्वाट्टि दन हैं त्रि हां पीता
है, मी पाना है यह रूप रम गव भरा
प्रट्टि रम। मधु लहरा म टररान स
मनु का ध्यनि म गुजार भर गया है।
पुन उनमें कामना जगता है धीर उनन
भातर वट धनादि कामना सेलता है।
उस यह मद्यति की निमात्रा पापित कर
मायुरी ध्याय म भावपण्णाद्रुत मित्त
की चिन्ता करत हैं। शला व गल पटा
नरिताम्रा की भुजतलाण सनाम हात
दक्ष, धव व घाना स पूण हीन है।
मनु निज ट्टि व त्रिय श्रृंगशाव की बात
करने लगत हैं। उनर भातर कामना
व वारणा प्ररणा वा धीर भाधव
विवास ह्यमा। निमाण का यह लीला
प्रमचना की मूल शक्ति उन विवमित
हृद। उह धामन्वान सहमा मुनाइ
पदी धीर व धीव खाल कर पूछन

मग वि विग राता स मित्त मंदिर
जाना होता है तथा उम ज्वातिमयो
दवा सव काई नर कम पट्टेन पाता
है। पर वही काई उत्तर दनवाला नही
था। यह धनर का स्वर भंग हा गया।
मनु न दया, प्रारा म प्ररणादय वा
रागरग लन रहा था। काम गय वा
यही समाप्ति हाती है।

कामना—ध्रय वा धपरिचिना वा विान पव पर
मधुर जावनगत तन रहा था। मनु
धर इन जाला धपरिता का निवान
मन कराता चाहता था। उपर मनु
व्यान लयाकर मनन करन रह इवर
काम व मददा उनर बाल भर रह थे।
पगु गति धीर धनपाय गृह मकारत
हा रह थे। पनुमा वा मरत शाभन
मधुर गुण विनाय दयकर उनर हृय
की वन्नामया डाट्ट टिपकाभरी घाट्ट
सने तया। इन डाट्ट स मनु व मन म
यह भाव गुजा त्रि विरय म जा ना
गरत, गुदर, मटान् विभूतयां ट्ट, व
मरी ट्ट धीर व सय मुभे मगत प्रातला
करती रह।

एम ही समय शृपाशील, उचार प्रातिधि चपल
शयन था, भून वा मनाहर भार लकर
मनु व पाव धाकर बटन लगी भाज
क्या ह्यमा है? यह क्या रग है?
यह उहें सहचान लगा। उसकी रूप-
मुपमा दलतर मनु बुद्ध शात ह्यु।
मनु इम प्रतिधि स पूछन हैं, तुम कीन
हा? तुम वही रह? श्रनात रूप स
विपर थे? तुम मर इवी भून हदन
की चिर साज हा। तुमम कामना वा
विरण का भोज मिला है।

प्रतिधि न वासनाद्रुत भाज स उत्तर दिया,
मै, मै है धीर परिचय व्यथ है। उस
प्रतिधि न प्रट्टि वा स्वप्नशामन
कीपुत्रा म दिताने का बात वही। मवत्र
मुधा म स्नात सभी उन्मव मना रहे थे।

उग रात्रि जागरण मे पत्र म माधवी
की भारी गंध छा रही थी। गंध मधु
म संधे ही रहे थे।

मनु सामना व हा रहा। उनकी धमनियां म
यन्त्रा व रण का सवार घोर हृदय
म घटरन का वण ह्रां लया गंधा
रमान इनना माने गया।

धीर धार मितन का गगात जाने लगा। मनु
के हृदय का भय जाते लगा। उनका
यत्न निवृत्त एव घमोत था गया। मनु
के मन में मधुर जवाला घघचने लगा।

प्रणयविधु नभ म तारक इर तिम मद्दा हा
गया घोर व त्र मगगिना कामजात्रा
का जिगजा नाम भद्रा था जा विरर
रानी तथा जगत् का महान मुग्धा था
वामना का चतना म मनु हृदय का
ममपण कर बठ। कामवाला श्रद्धा
हृदय पा मुकुमारता व भार छ भुव
गई। हृदय का धानद कूजन करर
राम करन लगा। श्रद्धा का नागिका
का नात्र भुकी इई था पलके गिर रहा
थीं। तन्ना कपानों पर दौड़ गई घोर
वह कदव गी पुत्रक कर गग्गद कठ स
बोलने लगी—

विस्तु बानी क्या ममपण भाज का हृदय।
बनमा चिर बध नारी हृदय हेतु सख।
आह मैं दुबन कहे क्या ल मकूगी जान।
वह, जिम उपभोग करन में विकल हों प्रान।”

[कामायनी पृष्ठ ६४]

मनु चतना का ममपण जान देते हैं और श्रद्धा
प्रतिदान मे आ ममपण ही कर
दता है।

यही काम सग समाप्त होता है।

लज्जा—नारी व आत्मममपण मन की पूणाहृति
उस समय हाता है जब वह अपना
सबस्व—तन और मन भी—विकारहीन
होकर समर्पित कर देती है। श्रद्धा भा
उसा स्थिति मे था। प्रणयममपण

उस कपाना पर तन्ना की नारी
बाकर शोध गया। तन्ना बात्र जीवत
मे उम तन्ना का गात्रोकार हुआ। मनु
उमक तिम पत्रा व गई। दग
गिनित ने उमक हृदय का मर मृत्ता
छाती थी। वी की त्रिगगा मन व संघन
में संकट तरो मर धार मृति का
धनुभर करन मगा वही दृगरी धार
मन की मराता छानावाला तन्ना
का दगकर ममपण भा त उठा घोर
पूछ बरा

कामत विमलय व संघन म
नारा कतिजा उवा छिपती मा
गापूत्रि व भूमित पट म
नीच व मर म त्रिपता गा।

• • •

बिन दृग्जात व पूना स
मर मुग्धा कण राम भर
मिर नात्रा कर हा गूथ रहा
मात्रा जिगम मधुधार डर।

[कामायनी पृष्ठ ६७]

• • •

पुनक्ति वाम्ब की मात्रा सी
पहता देती हा अतर म,
भुव जाती है मन का डाला
अपनी पनभरता के डर में।

[कामायनी पृष्ठ ६८]

• • •

चिरना का र लु ममेट लिया
जिमका भवलम्बन ले चड़ता,
रस व निकर मे धम कर मैं
आनद शिखर के प्रति बरता।

• • •

तुम बीन हृदय का परवशता
सारी स्वतन्त्रता छान रहा,

स्वच्छन्द मुमुन जा विन रर

जावन बन ग हा बान रहा ।

[कामायनी, पृष्ठ ६६]

नारा जीवन म हृदय का यह बंधन एक बार मरने पाग घाता है । मगर में जो बंधा दूगरा द्वारा उलटा जाता है, उम यदो का मगा ग जाता है और जिमर्ध ध्यक्ति स्वय बंध जाता है व प्रनुराग का हृदयविनाश होता है । कभी कभी अपने द्वारा मह्य संग्रहालय किया हुआ बंधन भी परवर्तना का श्रुतना बन जाता है पर उमरा घातभावना उम बंधन क भवार म मनमाहक मगत का भीति पुनर उमय ह्या करता है । धनएउ मगा बंधन जब पीटा का विधान करता है तब एक प्रकार का समतामरा भुक्त नाष्ट का उभय मन मे हाता है । व ममस्त घातमाय बंधन जीवन के शृंगार के विभिन्न उपादान होते हैं ।

भारतीय जीवनमाधना में नारी जिम बंधन म अपने का बोध लेता है उमके पाछ निरंतर समपणमया उन्मर्ग भावना का आस्थामय आधार हाता है । जिनका प्रमापार प्रनुरागमम नहीं हाता उनका मूल भा जन् ही नष्ट होनेवाला हाता है । मुमनों का नही उमन मूल का नीचा जाता है । विश्व मे जहाँ का प्रयेन मानव कायध्यापार अपने भातर स्वार्थ की प्रतिच्छाया ममाहित किए है वहीं भारताय नारा का विकारहीन हा पुण को मबस्व ममपण करना पडता है, स्व धीर स्वार्थ व ध्यामोर् का भा ।

उम ममय उमका इन साधना का अग्निपरीक्षा होती है जब उमय जावन का सारा मासन सीदर्य एन भाष हा जीवन क द्वार पर बसत का भीति खिल उठता है । सीदर्य का यह भावपण दशक

धीर पात्र गता का म का मदिग म स्वर क जान म रिस्त क गता है । धीर मद का यह भाग दनना प्रम्य रता है कि क् जावन का दून हा दुबा रता गता है । मगा परिस्थिति म जावन का धम, ज्ञान का रूप धारणकर नारा क संयुत घाता है जिगरा म्वा मात्र मद का धारा का उभय का स्वरनारी म बोध दना है । इन बंधन म मद का बाध पूराकर क उठता है और नारी हृदय का कुम्भन गता है । धारा जय भुतुस्वभा म रराता है तब एक प्रकार का उमय उमय मुन पडता है । दगा दडा मक स्थित म अदा धा । धर धार म्वा उचार दूगरी धार यह बंधन । नारा का मत का स्वर धीर नारा का सजन वडा निम्ति मय शृंगार भावना मूल लजा चमरट्टन अदा का घना परिचय स्वय दती है —

इन मपण म कुछ धीर नही
रपन उमग छनका है,
मे द दू धीर न फिर कुछ लूँ
दाना हा मरन भनकता है ।

[कामायनी, पृष्ठ १०५]

अदा का जब नारा जावन का आममत्य दीप्त पडता है, उलग का अन्त प्रतिभापा जब धर्म व रूप म उमक मानग का आभादास करती है ता उमी ममय प्रमादजी अपने नारा मकप चित्र अदा का रूपभास्वा निम्न निहित शब्दा म करत हैं—

नारा । तुम बयल अदा हा
विश्वाम रजत नग पद सल म,
पीपूष सान सा बहा करा
जीवन के मुदर समतल म ।
मामू स भीम अचन पर
मन का सब कुछ रस्ता हागा,

मुमना अपनी मिति रेना म
 यह मधियन विपना हागा।”
 [कामायनी, पृष्ठ १०६]

यही लज्जा मग ममात हा जात है। मुमना
 घोर प्रतीति का मंथि म मृष्टि का
 तिमलि दृषा। तर घोर नारी ना
 विजयवाना की कटाति म विराट
 सृष्टि व मोन्य का प्रतिप्रापमया
 प्रेरणा म युत गतिमान धरणा है।
 दाता व याग म मापना न विजय
 मृगश का बहाना प्रयात्ना न कामा
 यना म कटा है। प्रतीति पूजा पुण्य
 का प्ररणा रहा है घोर नारा भारताप
 परपरम म पुण्य का गति मानी जला
 रही है। जीवन का मधियन विपना
 समय नारा अपनी मयस्य ममविन
 कर ता है। यह मनन मोरव गरिमा
 मन्ति त्पाम नारी का गति है जा
 पुण्य का अननाप्राप्तिन करती रहता
 है घोर इस सग म काव्यात्मव दग स
 प्रसादजी न उयका काव्यात्मन रिया है।
 अदा का सफरता इही गुणा व
 साधार पर कामायना म व्यक्त भी
 गई है। मानवता घोर अष्टि दोना
 को घाताक स जगमम कर दावाला
 प्रेरणासक्ति अदा का साक्षात्कार
 इसी मग म हाना है।

कर्म—काम का कथन मनु की कान म भर गया।
 उनक मन म नव प्रभिलापा जागन
 लगा तथा भाषा उमड पडी। उनर
 जावन का अंधिराम साधना उत्साह
 भरकर खडी था। अदा व उत्साह
 वचन घोर काम का प्ररणा मितकर
 भाग आए। अमुर पुराहित किलात
 घोर द्राकुलि भा जलप्लावन स बच
 कर भटक रहे थ। वृष्ण खात खात
 उनका जा अच ऊब चुटा था। वे लहू
 के प्याम हो रहे थ। मनु का पशुधन
 देखकर उनका रसना धामिपलायुव

हा चुन भी। यद्यपि व ममता घोर
 मुना का सावा अदा का मनु क गाप
 धमकार म घानार गा गेगकर हिनका
 य म भी मनु व कुंज तर पर धाण।
 उपर मनु घातामिषात गाव रर थ
 'जावन व स्व ता का गय कर्म य
 म मिनगा घोर दग जेगन म मानम
 का घाना का कुमुम गिनगा। नतिन
 दग मग म पुरोतिन कीन बनेगा ?
 गर अदा है कट ता मरा पूग प्राय
 है। घव पौरातिन व तिय इस विजन
 वन म विपका छात्र।'

इस अमुरा न भूत गंधार मुगमुग म कटा
 तिनर तिय मुम मग करे जा रहे
 ने उनक द्वारा हम भत्र गए है।
 वरणा हमारे पयप्रकार हा। कता
 उता मनु धात्र म फिर ज्ञाना का
 वना पर यग धारभ ना।”

नूनना का नामो मनु का मन नाच उठा।
 उठने साचा दगम अदा का भा
 एव विना कुतूहन होगा। यग धारभ
 दृषा। समात भी दृषा। वही पर अच
 अमिय रधिर व छीटे घोर धवकता
 दृइ ज्वाला थी। पशु का कातर वाणा
 पर निमित्त वरी की निमम प्रसन्नता,
 वातावरण को कुत्मित बना रहा थी।
 प्रत वही पर अदा न था। मनु क
 धाम साम का भरा दृषा पात था
 तथा पुराडाम था। मनु व मुन भाव
 जग। मनु व मन का दास वातना
 ऐठवर गरजने सगी घोर वह फटने
 लगा, भले ही अदा भाज रुठ गई हो,
 उम मनाना न होगा, वह स्वय मान
 जाएगी घोर यन स प्रसन्न हागा।
 इतने म पुराजास व साय मनु साम
 का पान करन लग। उनक मन का
 खाली काना मादकता स भरने लगा।

इधर दुसो अदा लौटकर विरक्ति का बाध
 लिए शयन गुहा मे कामल चम बिछा

कर पड़ रही। यद्यपि मधुर बिरक्ति-भरी भ्रान्तिता उसके हृदय में समा गई थी तो भी उसके मन में स्नेह का प्रतीति था। उसके स्नेह का पात्र मनु भाज कुटिल बटुना में पना था।

वह साक्षता यह मानवता बनी, जिसमें प्राणी के प्रति प्राणी की निममता बसती है। एक का दुःखद्वार दूसरा प्राणी बसे भूत पाएगा।" वह यह सब सोच रहा रही थी कि मादकता से जगो मनु की तरल बामना मनु का श्रद्धा तब खींच लाई। मनु ने श्रद्धा का स्पर्श किया, पर वह सङ्कुचित होकर भा गई। उसे मनु के नए व्यवहार से दुःख था।

उपालम के स्वर में मनु उससे कहने लग, "भरी श्रद्धा, जिस स्वर्ग का मैंने निमाणा किया है, उसे विफल मत बना। यहा हमारे तुम्हारे प्रतिरिक्त मुख भोग के लिए श्रद्धा कौन है?" इस कथन के साथ ही मनु के प्रसाद के रूप में मोमपान का प्रस्ताव मनु ने श्रद्धा से किया।

श्रद्धा जाग रही थी। मधुर सहेज भाव से वह बोली कि यह कितना बड़ा धोखा है कि किमी की बलि से हम श्रद्धा मुख रचते हैं। क्या इस श्रद्धा जगती के जा प्राणी बचे हुए है, उनके कुछ श्रद्धा वार नहीं हैं? कल यदि फिर परिवर्तन हो तो प्रणय के बाद कौन बचेगा? मनु क्या यहा तुम्हारी वह नवमानवता है जिसे वे वन श्रद्धा से स्वाथ के लिये मक्का सब कुछ ले लिया जायगा?

मनु उत्तर दत्त है, इस दो दिन के जावन का चरम श्रद्धा मुख ही है। श्रद्धा अस्तित्व मुख के लिये है। इस हिम गिरि के श्रद्धा में जिम में खोजता फिर रहा है उम श्रद्धा का पूति ही इस बचल जावन का स्वर्ग है। हमारी कामना पूरी हो। इस पर श्रद्धा बोली-

"श्रद्धा मे सब कुछ भर के व्यक्ति विचाम करेगा ? यह एकांत स्वाथ भाषण है श्रद्धा नाश करेगा। श्रद्धा को हमन दखा मनु हेमा श्रद्धा मुख पाधा, श्रद्धा मुख को विस्तृत कर लो मक्का मुखा बनारो।

[कामायनी पृष्ठ १३२]

श्रद्धा श्रद्धा वार्ते कहते कहते उत्तेजित हा गई। यह देखकर मनु बोले, "श्रद्धा। मोम का पान कर ना। इसमें बुद्धि का बचन छुनेगा। श्रद्धा जो तुम बहती हा वही करेगा।" मनु रक कर कहते हैं "तुम श्रद्धा। मेरे इस जीवन की सीमा बन जाओ। लज्जा के आवरण का दूर हटाओ। वह परदा हमसे तुमको विलग कर देता है।

उम निभूत गुफा मे दा बाठा की मधि बीच अग्निशिखा बुझ गई। यही कम सम ममात होता है।

ईर्ष्या—मनु का श्रद्धा कोद काम नहीं रह गया था। वे केवल मृगया करते थे। उनके मुख में श्रद्धा का रक्त लग गया था। उ ह श्रद्धा श्रद्धा का सरल विनोद भी नहीं रुचना था। मनु श्रद्धा का शालिया खीनत हुए, श्रद्धा एका करत हुए श्रद्धा तकनी चलात हुए देखकर साक्षन थे, मेरा नारा अस्तित्व लेकर वह बठ गइ। श्रद्धा मनु की इच्छा मृगया से लौटने के बाद गुफा मे जाने की न होनी थी। इधर श्रद्धा माचता, श्रद्धा तक वे नहीं आए क्या बात है? वह मातृत्व के बोझ से मुक्त गई थी। उसकी श्रद्धा मे श्रद्धा अलस्य भरा स्नेह था तथा उसका शरीर पाला पड़ गया था।

मर खड़ा था—'मरने भी क्या नहीं आती ।।
मर खड़ा मर खड़ा मरने का तरीक़ा
मरने का तरीक़ा मरने का तरीक़ा ।।
मरने का तरीक़ा मरने का तरीक़ा ।।

मर खड़ा है मरने का तरीक़ा मरने का तरीक़ा
मरने का तरीक़ा मरने का तरीक़ा ।।
मरने का तरीक़ा मरने का तरीक़ा ।।
मरने का तरीक़ा मरने का तरीक़ा ।।
मरने का तरीक़ा मरने का तरीक़ा ।।

मरने का तरीक़ा मरने का तरीक़ा मरने का तरीक़ा
मरने का तरीक़ा मरने का तरीक़ा मरने का तरीक़ा
मरने का तरीक़ा मरने का तरीक़ा मरने का तरीक़ा
मरने का तरीक़ा मरने का तरीक़ा मरने का तरीक़ा
मरने का तरीक़ा मरने का तरीक़ा मरने का तरीक़ा
मरने का तरीक़ा मरने का तरीक़ा मरने का तरीक़ा
मरने का तरीक़ा मरने का तरीक़ा मरने का तरीक़ा
मरने का तरीक़ा मरने का तरीक़ा मरने का तरीक़ा

मुझ धपने मुझ म मुझा रहा
मुझका दुम पाने म स्वयंन,
मन का परवजना महादुस'
मि यंग जगुगा महामंत्र ।
ला बना धाज मि छाड यही
मखिन मरने भार पुज
मुझका वीड ही मिले धय ।
हा मकन तुह्र हा तुमुम कुज"

फिर—

वह ज्वानशील अंतर लेकर
मनु चल गया था शून्य प्रात,
'क जा मुनल ओ निर्माही।
वह कृता रही अधीर श्रात'
[कामायनी पृष्ठ ११५]

यही इयाँ सग का ममाति हाना है ।

इडा—इडा सग म मनु क उता करत हैं कि इस

विषय जो मैं देखी तुमसे विचल रहा
है । मैं भूला गया नींद रहा है । मर
मरने का तरीक़ा मरने का तरीक़ा ।।
मरने का तरीक़ा मरने का तरीक़ा ।।
मरने का तरीक़ा मरने का तरीक़ा ।।
मरने का तरीक़ा मरने का तरीक़ा ।।
मरने का तरीक़ा मरने का तरीक़ा ।।
मरने का तरीक़ा मरने का तरीक़ा ।।
मरने का तरीक़ा मरने का तरीक़ा ।।

पर दूर ही दृष्टि से सावन लगने कि मर
जावन का सारा मुख बला गया । रह
रह उनम थड़ा का भा ममता जगता ।
फिर इस धतड़ड़ का दशन करत करत
धोर मन की प्रतध्वनि मुनन मुनने मनु
इस निश्चय पर पड़च कि मारा जीवन
मुद बन जाय कपाकि धोर काद दूररा
उपाय धव मुखप्राति का भवशिष्ट
नहीं ।

मनु की सरस्वती का मधुर नाम मुन पडा ।
प्राचा म मधुर धनुराग फला । मानस
चित्तन द्वारा इडा स उनका साक्षात्कार
हाता है । इडा का प्रतिमा बाला मैं
इडा हूँ । तुम यहाँ कौन डोन रहे हो ?
मनु ने विश्वपथिक के रूप म अपना
परिचय दिया साथ ही यह भा कहा,
मैं क्लेश सह रहा हूँ ।"

इडा बाला स्वागत । मरा सारस्वत प्रदश
भौतिक हलचल स उजड गया । मर

निर्दिष्ट, इस आशा में मैं यहाँ पढ़ी रही। मनु इटा में भव के भविष्य का द्वार खान्तर जीवन का महज मान बताने का वाचना करन है। इडा और मनु का वहाँ सवाद होता है और बुद्धि की बात मानकर अखिन 'वचन यश प्राप्ति के लिए जन्ता का वचन कर विज्ञान द्वारा महज मिद्धि का उपनधि का निश्चय मनु द्वारा होता है।

जीवन में वचन का पुकार उठनी है। उमक द्वारा मुखसाधन के द्वार खालकर नम सिर म नवरचना धारम हानी है।

यही यह सग समाप्त होना है।

स्थान—कामायनी धरती पर रेखा का भाति पढी है। उममें वह रग नहीं। वह बच गई थी, पर विरटिणी को नोद कहीं ? विजली की स्मृति चमक उठी। वह अतीत की स्मृतियाँ म उमभ गयीं तथा जीवन का पूर्व स्मृतियाँ के आधार पर विरह और स्वरूपमय जावन का चिंतन करने लगी। इनमें हा म उमकी कुटिया में 'शद म गूज उठा। वह पुत्र म मन बहवाने गयी। अदा अपन भविष्य और वसमान के मुख स्वप्न दखन लगा।

विपन नग म अग्निज्वाला मा मनु का पय अब दग' आनोकिन करने लगी। वर मनु का कामनाया की विजयिनी तारा था। मनु का नगर वस गया है। खेना आरभ हा गई है। अम ना वग क अनुमार वर्गोकरण हा गया है। उनके समितित प्रयन स सारस्वत प्रदग का आ निखरती दीरजती है।" अदा मपन म अपन प्रियतम का नगरी म पहुचता है तथा वहा का वभव दख कर य- साचती है मैं कहा आ गई ?

अदा स्वप्न में यह भी देखती है—इडा चपक में आसव भर मनु को पिला रही है। मनु ने इडा स पूछा—'क्या अमा यहाँ कुछ करने का शय है ?'

इडा का उत्तर था 'अभी कहा सब माधन स्ववध टुण ? इतने में ही उस ?'

मनु न पुन निवेदन किया मैंने देश ता बसाया पर मेरा मानम प्रदग सूना ही रह गया।'

इडा पूछती है 'प्रजा तुफ्तारी है। तुम प्रजा पति हो। मैं मरके भल की साननी हूँ। फिर ऐसा मरहभरा प्रश्न आपन क्या किया ?'

मनु कहत हैं 'प्रजा नहीं। तुम मेरी रानी हा। मुझे और अधिक भ्रम म न डालो। अब स्वीकृति दो। मैं प्रशय के माती चुगती हूँ।' तर की पशुता टुकार कर उठी और इडा का मनु ने आलिगन किया।

अब तक अविरुद्ध प्रजा इस दुष्कांड से इडा की पुकार पर मनु के विरुद्ध हा गई। अब स मनु छिपकर बठ गए। उनकी समक में कुछ न आया और व शयनगृह म चले गए।

यह मत्र स्वप्न म दखकर अदा बाप उठी। वह मोचन लगी अब क्या होगा ?'

यहा स्वप्न' सग ममाप्त होता है। आगे 'मघप' धारम हाता है।

मघर्ष—अदा का यह 'स्वप्न' वास्तव म मय था। प्रजा म विद्रोह यास हा गया। मनु शयनगृह म प्रजा को वृत्तनता पर मोष रह थे। मैंने नियम बनाकर प्रजा को एक सूत्र में बाधा। फिर भी क्या मुझे स्वच्छ रहने का जरा भी अधि कार नहीं ? अदा के समपण का मैं प्रनिदान न द सका और इधर इडा मुझे भी नियम म जकटना चाहती है। वह मरा एक भी अधिकार निर्वाहित नहीं मानना चाहता।' अत मे व अपने हठ की बात मन में बाधत है कि मैं फिर बधनहान रहूँगा और शृयु की

उठती थी कि श्रद्धा को अपनी कल्पित
काया कैसे दिखाऊँ ।

भ्रमात में जब सब जाग, तब बड़ा मनु न
थे । भ्रमात होकर कुमार पिता को
खोजने लगा । इडा अपने को
अपराधिना समझत गया । कामायना
अपने में सिमट कर मौन बठी रही ।

यही पर 'निर्वेद' मग का ममांति होता है ।

दशन—मनु को अपने बीच न पाकर सब उड़
दूढन निकल पड़त हैं ।

कुमार अपनी मा श्रद्धा से पूछता है कि 'इस
निजन में तू क्यों चला आई ? अब
घर चला, इतना उदास क्या हा ?
श्रद्धा उत्तर देती है प्रकृति का यह
निवाम भ्रात मधु है, मेरे निय मुचद
शांत नोड है ।'

फिर श्रद्धा पीठ मुड़कर देखती है । इडा उस
दिवाई पढता है । श्रद्धा उनम पूछता
है कि 'तुम्हें मैं क्या द सकती हूँ ।'

इडा इहती है मया माहम अब दूट गया
है । मधुद अब नई आहुत चार्ती
है । मुझे क्षमा करा ।

श्रद्धा कहता है तू बचल फिर चडी रहो,
हृदय ता मुझे मिला नो । तू न मुख
दु ग रूपा धूपछाट बा मरल मधुमय
राह छाड दा । तू न समार म वग का
सजन लया ।'

इडा बाला, 'क्षमा नही, अपितु और कुछ
भी मुझे चाहिए ताकि मया यह प्रत
मुवा हा मक ।

श्रद्धा कुमार का, इडा के हाथा सावता है ।
श्रद्धा पुत्र का समभाता है । पुत्र
। आशावाद मागता है कि तुम्हारा
मधुर वचन मेरे विश्वास का मूल बन
जाय । इडा और कुमार पूरन का श्रात
को लोट पड ।

श्रद्धा मनु को दूहती भागे बडा । उनम चलन ।
चलत सरस्वता पर उससे ला, दशन

म देया, विमी को दा आखें चमक
रही हैं । मनु न श्रद्धा व इम मातृरूप
का दर्पवर उसका विभूति को विश्व-
मित्र के रूप में अपनाया । फिर
कामायना की प्रणसा मनु करत है ।
श्रद्धा उनम बहती है, विपमता का
विष मुक्ति की ममता तथा मयम म
नष्ट हा जायगा । पवराने की आवश्य-
कता नही ।' पुन मनु ने नटग का
'लोला का चितन किया और श्रद्धा म
कहन गग—'अपने सबल से नदेश के
चरणा तक मुझे ले चल ताकि मर सारे
पाप जलकर पावन गव निमल बन
जाय । ममरम अजड आनन का
आलाकानुभन सदा सदा व लिय
कर सऊ ।'

यही 'दशन मग का ममांति हाती है ।

रहस्य—हिम प्रदश म मनु और श्रद्धा बढत जाते
ह । प्रदान का नलगा अमृत सार्थ
उड दिवाड पढता है । वचन मनु
का रावना चाहता है । पर उड श्रद्धा
बनाए लिय चला जा रहा है । श्रद्धा
मनु का इच्छा, ज्ञान और वन क
लारो का दशन कराता है । इच्छा
स जीवन का लालसा ता सबध दशन
कराता है जा श द स्पश और रूप रन
गव का पुतालय का नतन मान है ।
इच्छा हा पापपुत्र्य का द्वार लालसा
है तथा जावनवसत का बा ।

वम नियति को प्ररणा से सचालत है, जा
विश्रामदान है । सभा वम के पाड
दोवाने है ।

जान के क्षेत्र म बुद्धे श्पर उघर मगजल म
अमता और मटरता है तथा टुल
मुख से उदामानता का वाव कराता
है । इच्छा, जान और लया का
भिनता लालसा की पूगा म वावक
होती है और श्रद्धा इन ताना विष्टना
का मिलाकर मनु का ममरम भाव-

भूमि पर स्थापित करती है ।
यही वह मग ममास होता है ।

छानद—कामायनी का अन्तिम मग धान है ।

यात्रियों का एक लक्ष पहाड़ा रामन सन्ना
का तलहट्टा में बना जा रहा था ।
अपने धर्म का प्रतिनिधि वृषभ माय
में था । इन्हीं में उम सन में थी । य
उम दल का पर्यप्रसंग था । उमने
नामों का बताया कि हम जगती क
पावन माधना प्रस में चल रहे हैं
जनी अग्नि शान्त शान तथावन है ।
मनुपुत्र द्वारा विस्तारपूर्वक तपावन
की बात बतायी थी । कामना पर इन्हीं
बताना है ।

जगती की ज्वाला में अग्नि व्याकुल हो ए
न्ति विश्वपथिक नहीं आया । उमका
अध्यात्मिकता भी नाम था जिमका बरणा
का सर्वत्र जगमगल क रूप में व्याप्त
हो गया । वहीं व सीना बहुर मसु त
का मवा करत ह और सखी मानिक
मुख प्राप्ति दत्त है ।

पुन इन्हीं स कहा जाता है कि हम वृषभ
पर क्या नहीं बठ जाती, क्या अपने
परो का धका रहा हा ?

उत्तर मिलता है यह वृषभ धर्म का प्रति
निधि है । हम लोग रिक्त जीवनधट
को अमत्त स भरत जा रहे हैं और
इस धर्म के प्रतिनिधि को सना मदा
के लिये मुख देकर निर्भय और चिर
मुक्त करने जा रहे हैं ।

सामने विराट धवल पवत दिखाई पडा ।
तलहट्टी का दृश्य प्रकृति-सुन्दर के समान
यात्रियों को लगा । चलत चलते रात्रि
हो गई ।

मनु ध्यानमग्न बहा मानसतट पर बठे थे
और अद्वा अजलि में मुग्ध भरे वही
खडा थी । सबने उह पहचान लिया
और सब उनक समुख प्रणत हुए ।
इन्हीं का मस्तक अद्वा के चरणों पर

था । मनु अपने हा गय म धान
मम थ ।

इन्हीं का उ उ मी कुप्य न का मवनी मुता
रहा था । अब एन कुप्य प्रवाहर उम
परी पापत्राता क निभ भाण है ।

मनु पांडा मुक्तराण और बन्नाम का और
इन्हीं करत उ बाल दया । यनी
काई भी पराया नहीं है । हम मत्र एक
दूगर क प्रवयव है । उ उने अपने मुख
उम म पुत्रजन मन्नाचर मूत विद्य
को गन्त गत्य जिन और चिर मुत्र
बताया । मानव का मयम ममरसना
का हठ म मयन पर मारा ममार एक
परिवार बन जाता है ।

मयम ध्यानमुखा का रग धनक उठा ।

प्रति म मनु लागी का अद्वा सृष्टि का मरमता
का अज्ञ करान ह, जनी अग्नि धानद
था । प्रति पुत्र का समिनन उ हान
धान क मूल म दिखाया तथा मार
मदार का ध्यानमय समरुने का
चनना उनम जगाई । मन्ना का जउ
चनन सब ममरम दाखने ग । चेतना
का विलास मवकी चारों तरफ दान्य
पडने लगा । मयम धना अग्नि धानद
छा गया ।

मही कामायनी का अन्तिम मग ममास
होता है ।

कामायनी-कथा का आधार

कामायनी आधुनिक हिंदा साहित्य में अपने
मौलिक महत्व रखता है । उसकी कथा
और उसका कथ्य दोनों ही महत्वपूर्ण
ह । प्रसादों का भारतीय संस्कृति
तथा इतिहासपुराण और वेद स प्रम
मयम मवपात है । कामायनी की कथा
में ता वह और भी पूजीभूत हा मूर्तित
हुया है । ववस्वत मनु का ऐतिहासिक
पुरम मानने का उनका स्वय आग्रह
है क्योंकि यों का अनुभूति म मनु का
कथा इद्वता स मानी गई है । तब

साहित्यी बुद्धि द्वारा प्रमादजी ने इसकी कथा रचा है और कथा को रूपकत्व से भा मंडित किया है। कामायनी का कथा का आधार हम प्रकार केवन वद पुराण और इतिहासगत ही नहीं है उसमें सामाजिक ज्ञान विज्ञान के विकास व इतिहास का भा योग है।

ऐतिहासिक तथा पौराणिक—कामायनी का कथा मनु के ज्ञान पर आधारित है। प्रमादजी ने उक्त वर्तमान मानवीय मस्तिष्क एवं मभ्यता के आदिप्रतिष्ठापक के रूप में उपस्थित किया है। जलप्लावन की घटना से द्रवस्तुत त्रिष्टुत शांति है और उमर श्रवण मनु के द्वारा नवीन मानव समुत्पत्त का प्रतिष्ठा होता है। मनु इस मस्तिष्क के आदिप्रवतक तथा प्रातिष्ठापक है।

जलप्लावन—अनक सम्म दशों में इस घटना की कथा प्रचलित है। मानव इतिहास पुराण एवं गाथाओं में उपनय नामश्री के अन्वयन सम्भावनाओं मनन एवं चिंतन द्वारा प्रमादजी इस निष्कर्ष पर पहुँच है कि मनु आधुनिक मानवीय मभ्यता के आदिपुरुष है। जलप्लावन का घटना, इस मायता के सूत्राधार के रूप में है।

जलप्रलय का बरान विश्व के अनेक प्राचीन दशों में मिलता है। ग्रीस में ड्युकेनियन, थल्लिडिया में हागिसद्र, बाइबिल में नूह, बबालोन में जिनुग्राम और गिलामिग में उपनपीश्लम आदि की जलप्लावन की कथाएँ प्रसिद्ध हैं। इस प्रकार इस महत्वपूर्ण प्रभावशाली घटना का कथा का विस्तार और प्रसार चान से यूरोप तक स्वतः सिद्ध हो जाता है।

भारतीय साहित्य में शतपथ ब्राह्मण, पुराणा, महाभारत आदि में जलप्लावन का बखान मिलता है। प्रायः सबत्र वर्तमान

मन्तर के अतगत इस कथा का बखान है। भारत में जलप्लावन का इस घटना का आधार पर मन्थावतार का भा यता है।

जलप्लावन की घटना अपने लक्ष में अपनी अप्रतिम महत्त्व रखता है। यद्यपे नाना उपनिषदा, ब्राह्मणा पुराणा आदि में मनु का स्थिति का उल्लेख मिलता है तथा भी प्रमादजी ने व्यवस्थित मनु का ऐतिहासिक पुरुष मानना ही अधिक समीचीन समझा है। इस विविध दशों में बिरतर हुए तथा अपने दशों में विविध ग्रथा में बिरतर हुए जलप्लावन की कथा में इस तथ्य का स्पष्टपता चलता है कि जलप्लावन समार में हुआ था। शतपथ ब्राह्मण व आठवें अध्याय में इस घटना का बखान है। इसलिये यह निर्विवाद रूप में कहा जा सकता है कि इस मन्तर के आदिप्रवतक मनु मान जा सकता है। यदि कालक्रम के विचार से भी देखा जाय तो यह घटना क्रमवद के वाक् का ठहरती है क्योंकि ऋग्वेद में इसकी चर्चा नहीं है। अथवा वद में इसकी आभास मात्र है। शतपथ ब्राह्मण में इसका उल्लेख मात्र है। यह घटना कहा घटित हुई इस मस्य में प्रमादजी ने अपनी याच्यता दा है। उनकी दृष्टि में यह घटना बड़ी घटित हुई जहाँ पहले सब राग रहते थे। द्र और वरुण के मस्य के कारण उस भारतभूमि के निवासा दो टोलिया में बट गए। अमुरा की टोलिया पश्चिम का और इस दश को छाडकर बढने गयो और यह कथा उ ही के द्वारा उस और मवन फली। इस ब्याप्ति का कारण भी मनोवैज्ञानिक है। इतना बडा प्रकाश निश्चय ही सागा के लिये मुनने मुनने का मसाला लवी श्रवधि के लिये उपस्थित करता है। क्याकि इससे सबका जीवन प्रभावित हुआ।

इस मंत्र में प्रमाणात्ता ने धामुय म निम्नलिखित तथ्य लिखा है—

जलप्लावन भारताय इतिहास म एष एषी हा प्राचीन घटना है जिनमें मनु का दशो म विनक्ष्ण मानस की एक भिन्न मसृष्ट प्रतिष्ठित करने का अयमर दिया। वह इतिहास हा है। दशगण व उच्छस्त्रन स्वभाव निबाध धान्य तुष्टि म अतिम अत्याय लगा और मानवाय भाय अयात् अदा और मनन का सम वष हाकर प्राणा का एक नए युग का सूचना दा। इस म अतर व प्रवतक मनु हा। मनु भारताय इतिहास व आनुपुस्य ह। राम वृष्ण और बुद्ध इती व यशज ह।

मनु—मनु व मंत्र में बलि गार्हपत्य म अयनक बानें स्थान स्थान पर भवती है किंतु उनका कोई आरवायिक प्रम नहीं। जलप्लावन का वगण शतपथ व आठों अध्याय म प्रारंभ होता है जिसमें जल प्लावन स मुक्त मनु व उत्तरगिरि क हिमवान प्रदश में पहचन का प्रसंग है। वहा आष व जल का अयतरण होने पर मनु जिम स्थान पर उतरें उस मनारवसपण कहत ह। जलप्रलय व स्थान क सबब म भा प्रसादजा न १६ अक्षर १६२८ म प्रकाशित डा० ई० टिकर क लेख के आधार अपनी बात सिद्ध की ह और वह यह—उनका (टिकर) विचार है कि बाबू मे दवे हुए प्राचीन नगरों क चिह्न इस बात का प्रमाणित करत ह कि हिमालय और उसर प्रात म जलप्रलय और आष का हाना निश्चित सा है। दुल्लू का घाटा म मलाना म मनु का मंदर है। सम्व है मनारवसपण यहाँ इसा व अ सपास रदा हागा।

शतपथ ब्राह्मण म इस प्रलय का चचा है और उसमें मनु व अयन कायात भा है। अय मत्स्य व पौराणिक या ब्राह्मण

स्व का अयन कर लिया जाय और योडि क तन म दया जाय तो मनु एम एतिहासिक पुस्य व स्व म अयतरित हा। ई जा प्रत्य क पूज और प्रत्य व पश्चात् स्थित रहत है। प्रलय व पूव व दर स्व म तथा मनुष्य व नना स्व म विराजा है, और प्रत्य व पश्चात् जलप्लावन म अय हुए आनि माय व स्व म अयात् मानव का आनि मय्या और मसृष्टि व आनि मस्यायक के स्व म।

- १ मनु पुत्रपुत्रा का भात थ। २ मनु प्रजा व पितृसून ३। ३ मनु का गमन माग का उवाय बहुत पहल बताया गया था। ४ मनु शूर थ। ५ मनु दायगु महात् बदनीय महर्षि थ। ६ मनु साम व पान करनेवाले थ। ७ मावाण मनु ननी व समान दाना थ। ८ मनु मनुष्या व नेता थ।

इस आधार पर यदि मनु व गुणधर्म का विश्लेषण किया जाय तो उनके चरित्र निमाण म ऋषय म अगित मनुषा व लक्षण का उपयोग 'प्रमाद' न कामा यना म कथा है यह मानने म अयाप्त न हागा। इतना एतहासिक आधार मनु की मानवाय ससृष्टि का आदि प्रतिष्ठपक के रूप म काय का नायक बनाने के लिय पयात है।

श्रीमद्भागवत म मनु सबका तथा का और ध्यान दिया जाय तो निम्नलिखित तथ्य मनु के सबध म हमारे समान आत है—

- १ दय सृष्टि व सत्यव्रत वतमान म अतर म वयम्वन मनु हुए। २ जलप्लावन में नोका द्वारा उनका रक्षा हुई। ३ मनु आददेव थे अयात् अदा व पात। ४ सत्यव्रत पान, वनान स समुक्त हाकर इस वल्प क प्रवतक वयस्वत मनु हुए। ५ मनु जलप्लावन व पश्चात् इस म अतर क आदि मानव है।

श्रीर मनु के चरित्र का निर्माण इन तत्वों पर आधारित है।

श्रद्धा—मनु श्राद्धदेव थे और बराबर श्राद्धदेव के रूप से उनका स्मरण शतपथ और ब्राह्मण में पुराणों में भी किया गया है। शतपथ ब्राह्मण में 'श्रद्धादेवो व मनु' के रूप में मिलते हैं। श्री मद्भागवत में निम्नलिखित तथ्य श्रद्धा के संबंध में मिलते हैं।

परम मनस्वा राजा श्राद्धदेव ने अपनी पत्नी के गर्भ से दस पुत्र उत्पन्न किए।

यज्ञ के प्रारंभ में वेचन दूषण पीकर रहनवाली विशेषण से श्रद्धा श्रीमद्भागवत में नवम स्कंध में बताया गई है। मायण में श्रद्धा का 'कामगोत्रजा श्रद्धाना मयिका' घोषित किया है। ऋग्वेद में श्रद्धा का श्रुतिव्य प्रमाणित होता है। इन आचारों पर श्रद्धा और मनु के संयोग से वर्तमान मानवता की सृष्टि का प्रारंभ मानना भी एतिहासिक हो कहा जा सकता है। श्रद्धा व चरित में जिन तत्वों का संनिवेश किया गया है, वह भा महत्वपूर्ण तथा एतिहासिक है। श्रद्धा के संबंध में ऋग्वेद के १५१वें सूक्त में जो तत्व दिए गए हैं उनका आधार पर श्रद्धा का कामायनी का सना दी जा सकता है। वह मानव वदनामा है। श्रद्धा का शरण मन के संकल्प को सत्पथ पर ले जाती है। श्रद्धा जावन के हर क्षण के लिये वदनीय है।

इस सूक्त में कामगोत्रजा उल्लिखित होने के कारण श्रद्धा को कामायनी सना से संबन्धित किया जा सकता है।

इडा—श्रद्धा के अतिरिक्त कामायनी में महत्वपूर्ण पात्र इडा के संबंध में ऋग्वेद में निम्न लिखित बातें दी हुई हैं। यदि उन तथ्यों का संकलन किया जाय तो ऋग्वेदिक इडा का महत्ता के संबंध में निम्नलिखित तथ्य सामने आते हैं।

इडा मनु की धर्मोपदेशिका थी। इडा मरस्वती और भारती के समान देवी है। इडा का प्रतिष्ठा भी भारती और मरस्वती व समान ही है। इडा सोमयज्ञ में भी स्मरण की जाती थी। मनु व यज्ञ में इडा न हवि का भेजन किया था। इन तथ्यों के आधार पर इडा का रूप ऋग्वेद में उमके गुणधर्म तब ही सामित रह गया है। मनु में देव प्रवृत्ति के जागरण की बात प्रमादजी ने का है और ऋग्वेद में यह सिद्ध है कि मनु प्रमुख देव थे। इडा की उत्पत्ति के संबंध में शतपथ ब्राह्मण व आधार पर निम्नलिखित तथ्य प्रमादजी के ही शब्दों में देखे जा सकते हैं—'इडा व संबंध में शतपथ में कहा गया है कि उसकी उत्पत्ति तथा पुष्टि पाक यज्ञ से हुई और उम पूर्ण योगिता का देखकर मनु ने पूछा कि 'तुम कौन हो?' इडा ने कहा 'तुम्हारा दुहिता हूँ।' मनु ने पूछा कि 'मरी दुहिता फस?' उमने कहा 'तुम्हारा ददा, घा इ यदि के हवियों में ही मेरा पापण हुआ है।' ता ह मनुश्वाच—का अग्नि' इति। तव दुहिता' इति। क्या भगवति? मम दुहिता' इति। (शतपथ ६.२०.३. ब्रा०।

प्रमादजी ने कामायनी का भूमिका में लिखा है—'इ कामायनी की क्या श्रृंखला मिलाने के लिये थोड़ी बहुत कल्पना को खनना भी अधिकार में यही छोड़ सना है।' इस दृष्टि से यदि देखा जाय तो इडा से मनु के संबंध स्थापन में उठाने कल्पना के अधिकार का अधिकार उपयोग किया है। इडा की उत्पत्ति के संबंध में पौराणिक कथाओं में यह तथ्य मिलता है कि मनु और श्रद्धा के तप के परिणामस्वरूप इडा का उत्पत्ति हुई। मनु पुत्र चाहत थे य_डा पुत्री। हाता के

विरमन्त मे पुत्रा उरप्रन्न हृद् । पर मनु
ने तप त गार्ग्य यह वर्ष म इह माग
त्वा और इह माग नर व रूप म रहती
था । इडा का भागी मुध म हृद् । इन
सवध म आमद्भागवत म इडावृत्त नाम
का एक अध्याय हा है । किन्तु इडा का
यह पौराणिक रूप न सत्र प्रमाणों
न उपनिषद् और ब्राह्मण व प्रायश्चित्त
पर कल्पनायोग से इडा की रचना
की है ।

आहुति किलात—किलात और आहुति का भी
अस्तित्व मिलता है जिन्होंने श्रद्धा
और मनु की सृष्टिनिर्माण व आरंभ
के समय पशुवलि के लिये मनु का
उत्प्रेरित किया और मनु ने उनकी
मनशा व अनुसार वाय भा किया ।
इन अनुर पुराहिता द्वारा प्रशंसित
व्यामाहृषण माग व परिणामस्वरूप
मनु का श्रद्धा का साथ छाड़ना
पडा । इनका भी उल्लेख प्रसादजा
ने इस रूप म किया है— किन्तु असुर
पुराहित के मिल जान से इहाने पशु
वलि का । किनाताकुला इति हामुर
ब्रह्मायामनु तो हाचत्—श्रद्धादवा
व मनु—आव नु वदावेति । ती
हागत्सोचतु—मना । वाजस्यवत्वेति ।'

कल्पना—कथानक का यागे बनाने के लिये यह
आवश्यक था कि मनु का पुन नया
जीवन श्रद्धात्याग के पश्चात् आरंभ
हा । ऐसे ही स्थलों पर कल्पना का
विशेष आवश्यकता पडती है । यहाँ
पर श्रद्धा व स्वप्ननिर्माण म प्रसादजी
ने कल्पना का याग इस स्थान पर
किया है । शतपथ ब्राह्मण का कथा
के प्रायश्चित्त पर जिनका उल्लेख पहले
किया जा चुका है एकाका मनु का
तपस्या से पाक घन द्वारा (घृत दधि
आदि का घन) एक मुट्ठी का ज प
दुधा । उसने तपन का मनु की दुहिते
कताया । वश्य न उमम यह प्रस्ताव

किया कि तुम कहा कि मुंहारा है ।
किन्तु यह मनु व माग बली गई । मनु
का भा उसने कल्पना परिचय दुहिते
व रूप म किया और यह वतलाया
कि मैं यरानन्तर म आदि है और म
द्वारा प्रायश्चित्त गतान और मर्षति वृद्धि
होगी । मैं प्रायश्चित्त दुःखों का पूति
का साधन है । इनकी सी कथा व
प्रायश्चित्त पर इडा और मनु के मन्त्र
स्थापन की बात प्रसादजा ने कल्पना
शक्ति से का है । शतपथ ब्राह्मण म
यह भा मिलता है कि मनु ने कल्पना
दुहिते व साथ कलाचार किया ।
एतत्प ब्राह्मण म भी इसका उल्लेख
मिलता है । इतने म यह महज कल्पना
का जा सक्ती है कि इडा एसा शक्ति
था जिसके द्वारा लोक-तप म मुख्य-
संपत्ति की वृद्धि हा सक्ती है । बुद्धि
का दबी होने व हा कारण श्रद्धा मे
इडा का भी बुद्धि का साधन करनेवाली
घातत कता गया है । इडा पर मनु
का आसक्ति का बात पहले हा कही
जा चुका है और शतपथ म भा इन
बात का उल्लेख मिलता है कि दबना
मनु का इन बात से दुखा हुए क्योंकि
प्रजापति मनु ने इडा के सहार हा
श्रद्धाविहोने हाने पर प्रजा का विकाम
किया ।

इडा का प्रतिष्ठा घन म भा होता है । वह
मनुष्यों की चेतना प्रदान करनेवाली
शक्ति मानी गई है । शतपथ इस बुद्धि
का नियामिका और अविश्वानी देवा के
रूप म प्रदण किया जा सक्ती है ।
कथानक मे यह स्मरणाय है कि एक
बार मनु के जीवन पर श्रद्धा का रग
छा गया था । श्रद्धा का अर्थ हृदयवाली
भी होता है । इडा के प्रभाव म आने
पर मनु सवधा बुद्धिवादी जीव हा
जात है और पूण परितोष न पाकर

अपनी मानम दुहिता पर बलात्कार करत हैं। फिर व बुद्धि के रग म रग जान ह। मनु का यदि मन मान लिखा जाय ता मनु का यह दोलित रूप अपना अलग अस्तित्व रखता है, इमनिय प्रमादजा ने इस प्राचीन आस्थान म रूपक का अद्भुत मिश्रण भा कर दिया है। उहोने कामायनी क आधार म लिखा भी है—'मनु श्रद्धा और इडा इत्यादि अपना एति हासिक अस्तित्व रखत हुए, साकेतिय ग्रथ की भा अभिव्यक्ति करें ता मुक्त वार्द आपत्ति नहीं। मनु अर्थात् मन क दोनो पक्ष हृदय और अस्तित्व का सबध क्रमश श्रद्धा और इडा स भी सरलता स लग जाता है। श्रद्धा हृदय यात्र्या श्रद्धया विदत वसु"—श्रुग्वद (१०-१५१-७)।

इन कथानक को अपना कंपनी क महार ही प्रमाण न नहीं छोडा है अपितु रूपक व निवाह क साथ ही साथ दम मन्वतर क मस्यापक विश्वपुष्प मनु द्वारा बुद्धि और हृदय तत्व का योग कराने के लिय एतिहासिक आवरण मे प्रस्तुटित चेतना के समग्र रूपा का सांकेतिक दग स कामायना म सचयन भा किया है। इस दृष्टि से यदि दया जाय ता इमम दा रूप दिखाई पडेंगे। एन रूप तो कथानक का मयुष्म करता है, आज तक के बुद्धि द्वारा उद्भूत नान और विज्ञान क परिमाण का एतिहासिक आधार पर मयाजन कर और दूसरा आज तक की हृदय द्वारा अनुभूत जीवन दर्शन के मन्वद का सचयन कर। इन दोनो तत्वा का दलन क निय मानव क सामाजिक एव आर्थिक विकास के आधारमूनों का सकेत कामायना म देरना हागा।

दशन क क्षेत्र म उहोने (शिव आनंद) प्रत्यभिप्रादशन का प्रतिष्ठापन किया और उसक निय कथा म स्थान बनाया। यह आनंद ही जीवन का परम ध्य है। उनकी उपनिष उहोने ममरमता के आधार पर का, किंतु लौकिक जीवन के उन्नयन क लिये भी कामायनी म सक्तात्मक सूत्र उहाने दिए हैं जिम कामायना म रूपकत्व मे देरें।

आर्थिक तथा सामाजिक आधार—प्रसादजों का कामायनी द्वारा मानवता के विजयिनी हान का सदेश भी दना था। यद्यपि उ हान आदि मानव का अपन कथानक का आधार बनाया, ता भा विज्ञान का विकासमया सम्पता क मून अथमोत को उहोने कथानक म आत्ममात् करन का प्रयत्न किया है। अथविज्ञान के उन मूल तर्कों का निदशन जिनक आधार पर मानव मगनयात्रा की प्रेरणा से आज प्रबुद्ध है, कामायनी म है।

सहज प्राकृतिक अवस्था, आशेटयुग, वृषियुग मञ्चोनयुग के सार तत्वों का दर्शन कामायना मे सक्तात्मक दग स है। सघपसग मे श्रमविभाजन, यत्रनिमाण-प्रवृत्तिसघप, समाजनियमन की बातें मनु ने खुनकर कही है।

पर वास्तविक से ताप, अधिकारनिप्सा का भावना क कारण नियम के घेर म नियामक मनु को भी जकडे बठी है। यह तथ्य इन बात का परिचायक है कि मुषलिप्सा वाली यह यात्रिक प्रगति मनु की बैज्ञानिक विकास का चरम स्थिति पर भा तुष्टि नहीं द पाती। यही बात भौतिक सम्पता क सबध म भा स्पष्ट द्रष्टव्य है। इस समस्या का समाधान भा कामायनी म है। इमनिय सहज हा देला जा सकता है कि कवि ने सांकेतिक दग स भौतिक सम्पता के

विशामबोध द्वारा कामायनी का क्या के आधार को मण्डल किया है।

कामायनी की कथा में रूपवत्य—प्रमाज्जी ने रजय घामुस' म विता है नि यह आख्यान इतना प्रारंभ है कि इतिहास में रूपक का भी अदभुत मिश्रण हो गया है। इमालिय मनु अद्धा और इडा इत्यादि घपना ऐतिहासिक अस्तित्व रखते हुए सांकेतिक अथवा भी अभिभक्ति करें ता मुझे कोई आपत्ति नहीं।' स्वाभाविक पात्रा और घटनाओं के मध्य से प्रतीकात्मक गूढाध्ययजक का यकथा को रूपकथा कहते हैं और इसी वाटि म कामायनी की स्थिति है। ये गूढार्थ अभिव्यजक तत्व उपनिषद् और पौराणिक कथामा म बहुलता से मिलते हैं। प्रसादजा ने भारतीय साहित्य की उसी मूल रूपक कथा काय की धारा का आधुनिक रूप में प्रस्तुत किया है। रूपक के अनेक प्रकार हैं जिनमें कामायनी मूलत इतिहासादृत कथास्वरूप है वह बर्दिक चरित्रों पर आधारित काय हलने हुए भा अघनी क्या में विनोय सांकेतिक अथ-यक्त करता है।

कामायनी का पात्र ऐतिहासिक हैं। उनका जानन यथाथ सृज तथा मनोवर्णनात्मक है तो भा कामायनी की कथा स साकेतिक अथ तान प्रकार के लगाए जाते हैं। बुद्ध लोग इस मानना वृत्तियों क निरास का सांकेतिक क्या घोषित करते हैं बुद्ध लाग जीन का अनमय कोश से आनदमय काश तक पहुचन का क्या का सर्वत इसमें पान है। डा० सपूगानर इसका योगिक अथ लगत है।

मानववृत्ति के विकास की क्या के रूप में कामायनी का जो सांकेतिक अथ लगाया या सक्ता है उसकी क्या क्या क आधारवाल अध्याय में कर दा गई है।

दूगरे धर्म के गबध म निम्नलिखित अर्थमयन 'कामायनी' में मान लिए जाय तो अर्थ स्पष्ट हो जाता है।

- १—पदा = हृदय। २—इडा = बुद्धि। ३—मनु = मानसिक चेतना। ४—बिलात आधुनिक = भाग विलासमय स्वाभाव आधुनिक वृत्तियों के प्रताक। ५—हिगा यग = आधुनिक पार्य व्यापार। ६—वृषभ = धम का प्रतिनिधि। ७—जल प्लावन = माया। ८—मानस = मान सरोवर। ९—कलास = आनदमय काश। १०—सोमलता = भाग विलास। ११—सोमलता स आवृत वृषभ = भोगयुक्त धम।

इन प्रताकों के आधार पर अनमय कोश से आनदमय कोश का जीवयात्रा की क्या सांकेतिक रूप से कामायनी में है। इन सकेता का ऊपर दा गई व्याख्या साधार है। वह इस प्रकार है।

अद्धा—अद्धा में हृदय तत्व का प्रधानता है। पातजल भाष्य में उस चेतना का प्रसाद भा कहा गया है। हृदय क रूप में उस मान लना अप्रासंगिक न होगा। सप्रत्यय और स्पृहा भा उसके अथ होने हैं। वह काम गानजा है। काम की पुत्री है। काम सकल्प का प्रताक है। इगलिय अद्धा सत् सकल्पवृत्ति का पौषिका भा माना जा सकती है।

इडा—मदिनी के रूप में इडा शक्त का प्रयोग महा भारत म हुआ है और वाणी के रूप में हरिवंश में। भूमि वाक्य, जल के पर्यायवाची के रूप में इडा का प्रयोग प्राचीन भारतीय शास्त्रा म है। वह गित्ताविशारदा भा है। इडा बुद्धि स सबद्ध नाडा भा है। इसलिये उसे बुद्धि का प्रतीक भी माना जा सकता है। बुद्धि सकल्प विकल्पमयी तथा स्वार्पणु प्रेरित है। मनु का मानमदुहिता भा

है इगनिय उगक माप्यम म रगतन भी धमभाष्य नहा ।

मनु—मनु मनन क प्रताप है । गीतमाय तप म र्थन के धम मे इमका प्रयोग किया गया है । वाङ्मनेत्रगहिता म मानप्रधान विद्वान् का मनु माना गया है और उमका भाष्य महापर न 'मान मान प्रघाना विद्वान्' किया है । मानक धत करण क निय भी श्रीपर ने इमका प्रयोग किया है । इगनिय मनु का मा गित धेतना मानन म धारण न शाना चाहिये ।

यज्ञ—मन्त्रपुराण मे ७ यज्ञ का बचा है । १. अग्नि यज्ञ का श्राद्धयज्ञ, तपण का रिचियण हाय दीरयण, बलि भूयण और धर्मिधृत्नन निययण है । त्रिषायण का भा बषा हमार प्राधान माहिय म है । मस्यपुराण म त्रिषायण का धयम का जनक माना गया है और उममे पशुमहार धर्मि का निज भा की गर्द है और उम सत्मानक नी धारण किया गया है । यद् धायधार कम है । धायधारकता धनायाम मुध व निय धर्मबद्ध तस्या का नाश करन मे भा न्ता धूतना । इम प्रकार ज् हिमायत स्वाध ध तलय बया गया धागुरा वावम्भाशर ट व्ता धाकुल किनात द्य और मारस्वत दाना प्रदना क त्रिषायण क पुराधत्त हान क वारण भाग बलायमय र्वाधध धागुरा वृत्तयो व प्रताप ह । धा प्रवारा का शास्त्राय मा यता प्राप्त है ।

धूपध—धूपध का एक धर्म मनुस्मृत मे धम भा दिया गया है ।
(कामानुवर्षतानि धूपध व । धम्म । यया, मनु । ८ । १६ ।)—

धुपा हि भगवान् धम्मस्तस्य व वृत्त ह्यतम ।
धूपन त विदुर्वास्तम्माद्धम्मो न लापयेत् ॥
भगवान् शरर का धूपवाहन व नाम म भा

गभाविय विना जाता है । भगवान् शरर धममय गमाधि म धूप धर धाम्प हाउ है । मनी धुप म धममय गमाधि बुद्धिग्य गिर म प्रयागम गुण बुद्धि करके उतागता की जाता है । गमाधि बुद्धि का माद्वान्तर करागी है और उगक उतरती माधय निराध नमाधि द्वारा धनयमानाधिगम् का स्थिति प्राप्त करन क बाव व बुद्धि जब धूपध्वन विषयक प्रता धनागी है तब उम विषय का स्थानि क नाम म गभाविय करन है । विषय स्थानि म मरनता गिद्धि उमप्र हागी है । विषय स्थानि का धूपता उम स्थिति म पहुँचता है जब माधय नवधता गिद्धि व प्रति भी धार्मिकिशन हा जाता है । इम प्रकार का गमाधि का धर्ममेध क न है । इम धर्मव्या म माधक विना प्रयत्न व धर्मबद्ध धान का धारण हा जाता है । एमा गमाधि म भा शरर का धाहन धूप हा ट ।

प्रताप धय नास्वागमारहित शडकर ।
गमाधि धममधायन तनाय धूपवाहन ॥
इगनिय धूपम मारताय माहिय म सधर म धम का प्रताप धाता गया है ।

जलप्लावन—जलप्लावन क सधम म क्या क धाधारकात प्रमम म बचा की जा चुगी ह । प्लावन धूनन क धम म प्रयुक्त किया जाता है और माया म धायद्ध हा जो पर हा प्लावन का विधान है । इमलिय जलप्लावन का माया क प्रताप व रूप म स्वाधार किया जा गवता है ।

मानस—मानस का प्रयोग सागर विषय व लिय किया गया है । यद् व नाम पर स्थित है और यद्वा ने इमका निमाण किया था । महाभारत क २२वें अध्याय म इतन सधम म निम्नांकित निवेदन है—

कलामशकापि दुष्कम्पा दानवद्रोहा काम्यत ।
यक्षरक्षग यवान य साधतवधर ॥
धामा मनाहरस्वच नित्य पुल्पितपादप ।

हमपुत्रमख्यं न तन वै मानम सर ॥
 कल्पित मानमञ्चव राजहमनिपवितम् ।

मानमरावर और कलाम का भारतीय जावन दर्शन म बड़ा घनिष्ठ मवय ह । कलाम की व्याख्या "वेदान्त मसूह" क रूप म का जाता है अथवा व जन लामो लमन नितिरम्य ।' इस प्रकार कलाम धानद का लानामूमि ह और शिव का निवासस्थान भी । इमलिय मान मरावर को मनामय और कलाम की धानमय काश व प्रतीक क रूप म स्वाकार करन म धापति नही हाना चाटि ।

मलना—मानवता का अन्तःकरण भारतीय म अर्थयित है । मान एक राग भा है जिमम किगा प्रकार का भा धाटार विटार करन म नृति लाभ नही हाना । मान म पान म भाग का बंध हाना है क्यकि प्राचिन साहित्य म मान का प्रयाग बराबर विनाम क निय विना जाता रहा है । विनामा दवा का वट अयन प्रिय पनाय रहा है और भाग विनाम का प्रयाग भी । इमक निय बराबर मुक्त भा हमा है । इमलिय मानवता की भाग विनाम का प्रयाग मानवता का अन्तःकरण न हाना ।

नही, प्राणमय कोश भा अन्वस्थित है जिमम अन्तमय कोश मचालित है । प्राणमय काश व भातर मनोमय काश, उसके भातर विज्ञानमय कोश और उमके भीतर धानमय काश का अन्वस्थिति माना ग है । अन्तमय कोश म हा अण्ड आत्मा का अन्त निवास है ।

अन्तमय काश के अन्तगत अन्तनिमित्त स्वचा म लेकर वाय तन का अन्वस्थिति है । प्राणमय काश म प्राण अन्त, उन्त, ममान ध्यान इन पंच प्राणुत्वा की अन्वस्थिति मारी गई है । अन्तमय कोश म अन्तगत है, बुद्धि और अन्तमय विज्ञानमय काश म अन्वस्थित है । धानमय काश अण्ड आत्मा का निवासस्थान है ।

कामायनी म पंचभाग का स्थिति मवया अण्ड है । मनु प्रत्यक्षरों दनमृति व अण्ड व रूप म उपस्थित हाना है और पाक यण द्वारा अण्ड म मन्तन व मूत्र अण्डस्थित हाना है । यह अण्डमया उन्त अन्तमय काश का स्थिति का मवना हाना है । अण्ड और मन व

निर्देशिका इडा के निर्देशन म मनु
मारस्वत नगर का निर्माण शारभ करते
हैं और प्रजोन्नति के उपरांत इडा पर
अधिकार करने के प्रयत्नस्वरूप मधर्म
के पराजित और मूछिन उपस्थित हान
हैं। यह स्थिति विमानमय कोश की
है। अंतिम स्थिति इमक उपरांत
आनंदमय काश की है। जहाँ अर्द्धा
पान, क्रिया और दृष्ट्या का त्रिपुर भेदन
करती है और शिव व दर्शन होने है।
आनंद की यह समरम स्थिति आनंदमय
कोश का प्रतीक है। इन प्रकार इन
प्रतीकों के माध्यम से अन्नमय काश स
आनंदमय कोश की अवस्थिति भा
कौमायनी म दिखाई गई है, जिसम
ऊपर दिए गए प्रतीका का प्रयोग
स्थान स्थान पर यथावश्यक किया
गया है। इन प्रतीका के माध्यम म
मनु अर्थात् मानसिक चेतना अर्द्धा
अर्थात् हृदय, इडा (बुद्धि), त्रिनात
आनुलि (स्वर्णाय आमुर् वृत्तियाँ),
हिमा यन (आमुरी कायव्यापार)
वृषभ (धर्म का प्रतिनिधि) गोमन्ना
आवृत वृषभ (भाग्युक्त धर्म) व
माध्यम से कलाम (आनंदमय काश)
तक पहुँचता है।

दा० सपूरानंद ने इमका योगिक व्याख्या का
सवेत भी किया है—

‘मनु प्रथम मनुष्य नहीं थे। प्रत्येक मन्वतर
के शारभ म एक मनु हान हैं। इन
प्रकार एक कल्प म १४ मन्वतर और
१४ मनु हान है। आजकल श्वेत
वाराह का कल्प चल रहा है। मनुआ
का क्या भाव डेय पुराण म विस्तार
से मिलता है। इनम सार्वणि मनु की
कथा ता दुर्गापाठ व रूप म त्वरात्र
व दिना म धर धर पढा जाता है।
पता नहीं कितन व्यक्ति इमका समझन
का यत्न करत हैं। जलप्लावन दुष्प्रा।

जगत् का वृत्त मां अश नष्ट हा गया।
प्राणा नष्ट हा गए। मत्स्यरूपा
भगवान् की वृषा म मनु एम स्थान
पर पहुँच जो मुरझिन था। वहाँ पर
उनका अर्द्धा म मात्स्यारकार दुष्प्रा
और फिर मनु और अर्द्धा न मन्तर
की मुख्यस्थान की नीव डाली।
वेद मन्त्रा की मीमांसा की अन्नम शक्ति
हैं। एतिस शनो व अनुमार यह एति
हानिक घटना हा मन्त्रा है। जन
प्लावन का हाना ता एक प्रावृत्ति
घटना है। इनक वृत्त प्रमाण मिलन
है। यह भी हा सकता है, जैसा कि
नक्त शली मन्त्र करती है कि यह
विही प्रावृत्तिक दृष्टिपथा का वणन
हा। वादन, पानी मूय, अशकार का
हा रूप बोधा गया हा, परतु तीमर
प्रकार म व्याख्या हो सकता है। मनु
का अश मन्त्र भी हाता है। मनु और
मन्त्र दाता शब्द जिस जानु म निकले
हैं उनका अर्थ हाता है, मनन करना।
मि शृंखलावद्ध और पुष्ट व्याख्या करन
का यत्न करना नही चाहता। इसन लिये
पूरा पूरा अवकाश भा नही मिल सका।
परतु कुछ मन्त्र मान जखर सामन
रखता हैं। जन व लिय बन्धुव
हूत वैदिक शब्द है अश, और अश शब्द
वद म वृत्त से स्थला पर कम व लिये
भी आता है। सधायक अणप उन्नयन
चाहता है। मन्त्रा, करणा, मुद्रिता
और उपदा की भावनाओं व द्वारा
लाकहित करव चित् का प्रसाद अजित
करन का दृष्ट्युक्त है। परतु उनका
एक ही भाग का जान है, कर्म माय
का। कम करता है। कम उमको स्वयं
तक ल जा सकता है, परतु ‘दाणो
पुण्य मत्स्यलाक विशति’। किन्तु कम,
कम का जन, कम व द्वारा एक लाक से
दूसर लाक तक घूमन रहना यह एक
विचित्र पदा है। इसस छुटकारा

पान का नार्ई मार्ग नहीं देग पदता ।
 बर्म धर्मात् सन् धर्मात् जग का शायन
 हा गया । मनुष्य का भोगि बर्म के
 पारा घोर घोर गया है । जीव इगम
 दूषणा का जा रहा है । इच्छा
 विनाश घोर विरागा का विचार हा
 रहा है । एमा धवस्था म उगकी
 मध्य की गहापना मिरता है जा
 उगका तप का उग मनुष्य व बाहर
 मुरखित म्मान तह पट्टेवागा है । याग
 व धमा म याग का प्रिया का मध्य
 का गति स उपमा दा गई है ।

‘उ टा पया चद्र जग माना, है मरुदुद का
 मारण : नाता’ । यह उपमा दग लये
 हा जाता है । ए एमा माना जाता है
 कि मरुदुद जग व प्रवाह व विन्दु
 चत्वार ऊच गतव्य स्थान तह पट्टेवता
 है । इस प्रकार याग का त्रिया मनुष्य
 का जगत् व प्रवाह व विन्दु ऊपर
 को ले जाता है । निश्चय हा । याग म
 लगना शुद्ध घोर ईश्वर का श्रुपा का
 ही वन है । ईश्वर व निय कहा भा
 है, ‘म एव पूर्वेषामपि गुण — यह
 गुणना का भा गुण है । श्रुति न भा
 कहा है कि माह माग पर कहा चल
 तवता है ‘यमवया वृणुत — जिनका
 यह परमात्मा स्वय वरण करता
 हा, जिनका वह भाप भपनाता हा ।
 साधक का यहा परमात्मशक्ति बर्म
 समुद्र व ऊपर उठावर ले गई । याग
 दशन म पतजलि न कहा है कि याग
 म सिद्धि हाती है ता सबक पहल श्रद्धा
 उत्पन्न हाता है, तव वाय जागता है ।
 इमनिये यह स्वाभाविक है कि साधक
 का श्रद्धा स भैट हा और तव श्रद्धा
 व प्रसाद से उसना जो वाम करना
 है उसके करने का शक्ति प्राप्त हो,
 यह जगत् के सनियमन म समथ हा ।
 एक और बात है याग का क्रिया क

द्वारा माधव ऊपर ता पट्टेव गया
 परगु स्मिति होने का भी बहुत बड़ा
 दर रहता है । शामायनी न कहा है
 कि याग म मन्त्राणा न समिमान का
 उन्व हा मकता है । पतजलि ने
 उन्वग गया है कि याग का मय
 न कहा पाणि, दग बाग पर
 मुष्कुराना नगी पाणि रि एमा म
 कर्ता तह ऊपर उग गया । इगनिय
 याग व धमा म प्राणायाम व पात्र
 प्रस्थाहार का पचा है । प्राणायाम व
 द्वारा जब कुल गिद्ध हाता है ता
 विपत्ता व भाग का बहुत बड़ा शक्ति
 धा जाता है घोर दग्ना मान म बहुत
 म भाग उदन्व हा जाता है । उम
 मयव यि भित्त उपर का मार भुजा
 ता मारा साधना नष्ट हा जायगा ।
 इगनिय प्रस्थाहार का प्रावश्यकता
 हाता है । प्रवाहार म सपन्ता प्राप्त
 करने व निय भा श्रद्धा का प्रावश्यकता
 हाता है । श्रद्धा मन्त्र का उपति
 श्रुत् स हुई है, श्रुत् दति सय नाम
 मुर्पाठ्यम् । श्रुत् का मय है मत्य ।
 गुं घोर शास्त्र का वाक्य पूणत
 मत्य हा, एमा निष्ठा का नाम है श्रद्धा ।
 इतक वन पर प्रस्थाहार बरता जा
 मकता है । इतलिय जा मनवसान
 माधव वमजाल स याग का साधना
 द्वारा ऊपर पट्टेवता है वह एफ घोर
 ता श्रद्धा का महापता स प्रवाहार
 करव धपने का योग का ऊचा भूमि
 वाभा की घोर ले जाता है, दूसरा मार
 श्रद्धा का महापता स उसकी वाय
 सपादन के लिये बीच प्राप्त होता है,
 बिना मनु घोर श्रद्धा वमल व लीला
 वही की वही समाप्त हो जाती है,
 साधक जलप्लावन से निकलकर माह
 प्लावन मे डूब जाता है ।

ऋग्वेद दशम मंडल क १५१ वें सूक्त का नाम

श्रद्धा सूक्त है। इनकी ऋषिवा शर्पात् मन्त्रद्रष्टी का नाम श्रद्धा है। वह काम गोप में उत्पन्न होने से कामायनी भी कहलाता थी। काम शब्द का वदिक वाङ्मय में विशेष अर्थ है। नासदीय सूक्त में कहा है, 'कामस्तदग्रे श्रभवत्' इससे सबसे पहले काम उत्पन्न हुआ। उसी प्रकार जगत् व सग का बरण करत हुए श्रुति में कहा गया है 'मोनामयत्।' कामना वह थी गवा हम् बहुस्याम्' में एव है, अनक हा जाऊ। महाप्रलय व समय जगत् क्षिप्त कर परमात्मा में विलीन हा गया था। काल पाकर जावा का कम फलांमुख हुआ इमने परमात्मा में जा स्फुरण हुआ उमका नाम काम है। इस सर्वन्पयुक्त परमात्मा का हिरण्यगभ कहते है। इमने समूचा भावी जगत् विचार रूप में विद्यमान रहता है। पीछे यह विचार विस्तार को प्राप्त होता है। परमात्मा के इस काम, इन सर्वप स जहा जगत् का विवास हुआ, वही श्रद्धा उत्पन्न हुई। ममाधि वा गन्स्या मे मनु का परमात्मा का तादात्म्य प्राप्त हुआ। उनके भ्रत करण में श्रद्धा के द्वारा जगत् का वृचित्र, वृह योजना उत्तरी जा पादि में विचार रूप में परमात्मा में उदय हुई था। उसी चित्र के अनुसार उ होने अपने भावतर का कार्य मचानित किया।

इसी दृष्टि से मैं मूल वदिक शाख्यान को देखता हूँ। आप लोगों के मामले में कामायनी क श्रवतरण उपस्थित नहीं करता। मुझको एमा प्रतात होना है कि प्रसादजी के सामने कुछ ऐसा ही व्याख्या था और उस व्याख्या का समुदय भी किताब के पडने स नहीं प्रत्युत उनकी निजी अनुभूति न हुआ

था। इस अनुभूति को इस व्याख्या को उठाने कामायनी के द्वारा व्यक्त करने का प्रयत्न विदा है। और मेरी ऐसा धारणा है कि जहाँ तक कि जिगा कवि का एत प्रयत्न में सफलता हा। मकनी है उनकी मफनता मिनी ह। मुझका एमा लगता है कि श्राघु निव हिंदो के वृहत् से प्रथ चाह विनीन हा जाय परतु कामायना हमार वाङ्मय में सदव ऊँचे स्थान पर रहगी।'

कामायनी के चरित्र—गुण चरित्र मनु, श्राकुति, जिलात और मनुपुत्र मानव हैं तथा नारी चरित्र श्रद्धा और इडा मात्र। मनु, श्रद्धा एव इडा का चरित्रचित्रण ता कुछ विस्तार पा गया है पर श्रय चरित्र मकेतात्मक अस्तित्व रखत ह।

मनु—कामायनी के नायक मनु हैं। मनु पूरा बीरो-दात नायक नहीं है। कामायनी की कथा मनु व ही चारा श्रार चक्कर काटती ह। कामायना म रिपाद, पीडा, कण्ठा तथा मुखविलास व ध्वस पर बडे मनु जहा दक्छष्टि व श्रवशेप के रूप में प्रकट हुए, वही मानवता व आदि प्रवतक व रूप में भा कामायनी द्वारा हमारे समक्ष उपस्थित किए गए हैं। वे एम व्यक्ति के रूप में आत ह, जिनका परिचय अतीत स अत्यंत गभीर है और जिस भावी सृष्टि का निमाण भी करना है। ध्वस व वाद जीवन की सहज अभिलाषा मानवाय जीवनचेतना का परिणाम है और मनु भी उसस विलग नहीं। एनी स्थिति में मनु को नया रास्ता बनाना था, नए साधन अपनाने थे। और उन साधनों का उपयोग और प्रयोग उह अपना अस्तित्व बनाए रखने के लिये करना था, क्योंकि नामा यत मनुष्य आप

घोर धागे बरकर बट्टा है—

मैं मांगर मैं निर स्वतन्त्र तुम पर भी मेरा—
 हो अधिभार भगीम, मरत हो जाना मरा।'
 मागना ते मनु का त मानते निम्ना। अधिभार
 का सिंगा ते उ उ मरना न निर उत
 जित बिगा। मनु ते उ मुत गुणभाग
 ने निचे सारम्भ प्ररुण की प्रता न
 मण बिदा। पुत्र हूया, मनु पराभूत
 हूए। सुदि की धर्ममया स्वर्गना
 की उच्च गनता, प्ररुति धर्माति तथा
 परामन का जननी है। उनका संत
 प्रतिपाद म होता है जिगा परिणाम
 पराजय होता है। मनु भी पराजित
 हू। मनु जब चतय हूए ता उहू
 अद्धा दाखी। मनु का पुत्र की अद्धा
 ने माय था। अह की भावना का
 परिणाम मनु दम खुब थे। स्वाध
 निष्ठा का चनना म धनुप्राणित हो
 घोरों ने ऊपर अधिभार की भावना
 ता हुमह दुख मनु उठा खुब थ। प्ररुति
 घोर विगान का सम्पना क बौद्धिक
 नियमन का धर्मन परिणाम उनक
 रोम राम पर अधित हो चुका था।
 उनका हिम्मा का वृति तथा प्ररुति पर
 विजय का रक्तमनी कामना धर्मन प्रसात
 से रहा थी। एया स्थिति मे जीवन की
 चेतनाशक्ति अद्धा की, जिसकी उपच्छा
 जीवन के धार्मि म मनु ने की थी दलर
 मनु मे ध्यामनानि जाग उठी। धनुभूत
 सय स पुन उनका साक्षात्कार हूया।
 जीवन की सध्या बेला मे मनु को
 मगनमया अद्धा का वास्तविक मूल्य
 नात हूया। मनु के जीवन में पुन तथा
 नाड प्राता है और व पडे पडे सोचते
 है कि जावन मे सुख नाम की कोई
 वस्तु नहीं अधिभु यह एए पहेरी है।
 अस्तु इम जीवन से भाग चलना चाहिए।
 अद्धा के उपकार से भी वे इतने दब
 हूए है कि अपना काला मुख उते अघ

नहीं निनाला बाटा। घब तप
 का मनु का जीवन मरणा मे मुक्त
 है। गह धपा स्वाध के निग मुग भाग
 की बागना म सांनिता शा रागना
 है। धपा अधिभार घोर अधिभार न
 निग वत घोर का बनि बहाना मे
 उभाग का धनुमन बरता है। स्वार्थ
 माधन न बह इगना अधिभ निर हूया
 बागना है नि विवक, मनु धगनु, हिगा,
 अधिगा, धामन महर तथा बतम्ब,
 अधिभार निगी का ध्यान उन नही रह
 गाता। बिना निगी प्रतिगन न धाम्य
 समपण बरनवाता अद्धा सपा निगान
 मयी सुदि न द्वारा मय का प्रहण
 बरनवाती विवरनिर्निबिा इका न
 इतिथ्य स भी उन मतो नही। वह
 उनपर पूग भागाधिपत्य जमाना
 चाहता है। प्ररुति कीप स जिग
 सम्पता का धम उन दगा था उन
 प्ररुति पर भी वह पूर्ण अधिभार
 स्थापित करना चाहता है। अधिभार
 निष्ठा वामना अधिभार दंभ, हिसा,
 अधिवाद एव धमगतिमो उनक जावन
 ने कण कण में समा गई थी घोर व
 हा उनका सचालन करती थी। घब
 पलायन का वृति के साथ साथ जीवन
 की सद्वृत्त का उन्म भा इम स्थत पर
 उनके संतजगद म हाता है। जिस पुत्र
 प्रम का गमावस्था म देखकर अद्धा स
 उसने ईश्यावस पूण विग्रह कर लिया
 था उसी पुत्र का भाज वह धमन जीवन
 का उच्च धरा मान बल्पाण बना के
 रूप मे धगीभार करता है। साथ ही
 उसे धमने जावन का सबसे बडा प्रलो
 भन भा मानता है।

यह सत्य इत बात का साक्षी है कि भावी नोए
 जीवन को मनु समाज से दूर मूय
 पिरक एकात बराय का सदेश नहीं
 देता अधिभु धमनी भावी पीठी को जप

मे रख कर अपने द्वारा संचालित मानव सृष्टि को आगे बढ़ाने के कार्य में विश्वास प्रकट करता है।

यद्यपि इस धर्म से यहाँ वह च्युत नहीं होना तो भी एकांत रागविराग का भ्रान्ति स सुहाग की भ्रज्य वर्षा करनेवाली श्रद्धा को लाजवश छोड़ पुन भ्रान्त दिशा की ओर प्रस्थान करना है। मनु के इस पलायन और पहले के पलायन में एक अंतर है। पहले का पलायन स्वार्थ, गृहकार और उपभोग की लालसा से किया गया इन्द्रियविलास की प्रनारणा का परिणाम था और दूसरा जीवनव्रतना में प्रबुद्ध वास्तविक जीवन के परम अभाव भ्रान्त की उपलब्धि के लिये, तपस्यामूलक साधना के लिये, अखंड चेतना से संबलित।

श्रद्धा तथा इडा मनु को उसके भाग्य पर नही छोड़त अपितु वह उह मनु क पुत्र क साथ खोजने निकल जाते ह। मिलने परात श्रद्धा अपने पुत्र को मानवता क विकास क लिए इडा का सीप देती है और स्वयं शक्ति रूप म मनु के साथ रह नए जीवन म भी उनकी महधमिणी बनती है। उह नटश के प्रदेश में भ्रान्तलीला दिखाती है और नटेश क चरणों में ही उह अग्रज भ्रान्त की प्राप्ति होनी है। श्रद्धा उनके साथ है और उनके जीवन का चरम सत्य उह भ्रम उपनय है।

मनु का स्वरूपगठन कवि ने अत्यंत सुंदर ढंग से किया है। शब्द के द्वारा रूपगठन की विशेषता यह होती है कि वर्णित पात्र का स्पष्ट रूप अंकित हो जाय। मनु देव सम्मता के अवशेष और आदि मनुज हैं। कामायनी म हिमालय प्रदेश में उनकी आदि उपस्थित दिखाई गया है। वहाँ के लोग अत्यंत सुंदर लंबे और स्वस्थ होने हैं। प्रसादजी ने उनका

रूप निम्नांकित पक्तियों में उपस्थित किया है—

तरुण तपस्वी सा वह वैठा,
साधन करता सुर भ्रमशान,
× × ×
उमी तपस्वी से लंबे, थे
देवदार दो चार खड़े,
× × ×
भवयव की दृढ़ मांस पशिया
ऊर्जस्वित था वीर्य अपार,
स्फीत गिराए, स्वस्थ रक्त का
होता था जिनमें सचार।
× × ×
चिंता कातर वदन हो रहा
पीरप जिसमें श्रोतप्रोत।
× × ×
उठे स्वस्थ मनु ज्यो उठना है,
चिंतित वीच अरुणादय कात।

मनु के इस रूप का प्रसादजी ने शब्द के द्वारा जो मूर्त रूप दिया है उसमें वह लंबा, दृढ़ मांसपेशिया वाला, पीरपमपन, कातिवान यन्त्रिक के रूप में सफलता पूर्वक चित्रित किया गया है।

और कामायनी में भी ता मानव सम्मता के आदि प्रवर्तक मनु को विज्ञान के इस युग में उनकी समग्र शक्तिया का साक्षात्कार कराने हुए उनका हीनता का वाध प्रसादजी ने कामायनी द्वारा उपस्थित किया है। उनका अतिम ध्येय मनु के रूप में मानव को भ्रान्त के अग्रज धरातल पर ले जाना है। समष्टि के कल्याण का माग भी कामायनी में है केवल व्यक्तिपरक मनु का मंगलविधान मान ही नहीं। इसके लिये बुद्धिवादी, विवेकमयी वैज्ञानिक सम्मता को सुखलिप्ता के परिणाम का सभी दृष्टियों से साक्षात्कार कराना आवश्यक था। अतएव मनु का चरित्र कथानक के अनुरूप निर्मित किया गया

ये, उक्त पारसी स्त्रेज ने उग ताप्य की भीति घमंटा रूप में उठी उपस्थित किया गया है जहाँ राउ गमय भी हाथ पर पट्टा जाता है और बरगु व निय भी रोना था ही अभिनय दिया जाता है।

मनु का चरित्र धनता भोक्ति महत्व रगतता है भन ही वे धारोगल नापय न हा भने ही व जोरा व प्रत्यय पग पर विजया न हो भन ही उनका प्रत्यय चरण धारा घोर विभाग की प्रमिता सृष्टि न करता हां, भन ही उनकी प्रत्येक गति म चाना व धानात की निरला। का उदयम न हाता हां ता भी जीवन गपय के प्रत म मशन उहीं के हाथ रहता है। हार वर भी व जीवन का दाव जातत है। घोर वनमान भोक्ति मानव सृष्टि व धादि प्रवतन हान व माय हां माय धातर सृष्टि क धादि धमिष्ठता होउ है जहाँ पर मनुजन के द्वारा दाना चना मे अभ्युदय, नि श्रेयम् और सिद्धि का उपनम्बि का माग खुलता है तथा जिमका मूलाधार धानद और लोक मगल है। धानदवादी जीवनपरपरा के व धादि पुरय हैं और उनका चरित्र प्रसादनी न कामायनी मे प्रच्छेद रूप से रचा है इसमे दो मत नहीं हो सकते।

मनु का यह चरित्रचित्रण रूपकत्व के निवाह तथा प्रत्यभिधा दशन के तत्वा से भी परिपूर्ण है, जिसकी चर्चा कामायनी के दशन मे है।

श्रद्धा—कामायनी की कथा के आधारबलि अश्र मे श्रद्धा का परिचय दिया जा चुका है। श्रद्धा का उल्लेख वैवस्वत मनु की पत्नी व रूप मे हुआ है और भागवत म श्रद्धा और वैवस्वत मनु स मानवीय सृष्टि का आरभ भा माना गया है।

कामायनी व श्रद्धा मंदन व श्रद्धा मनु म यह मनु है कि श्रद्धा का नाम कामायनी भी था। मारण ने श्रद्धा का कामायनी माना है। श्रद्धा कामायनी की गणित है। प्रगा की श्रद्धा लगी धारण भारतीय जीवन संगिता है। जो श्रद्धा मनु व जान व मुंशर ममान में संशुभ मान भी वरना का नाराजता व मानन धारण उपस्थित करती है।

यह पणुव मुंशर है। उमर गोय व धन प्रगाश्रद्धा न धयव वाराव श्रुतिता ने दिया है। उमर गोय व श्रद्धा मनु व यचना का धरिराम श्रद्धात का बाप हुता है। यह मनु की रचा वगु वानमया कामन रग पुपरान वाना तथा पुना व रगा हमनराता निय योरन धमि ग दात, मन्त्र मन्मरी मा रगा और उमका शरीर परसाणु परागों स रचिन पात हुआ। उमक दम शरीरत्व गोय म मधु का आधार भा था। श्रद्धा का यह रूप ववन बाह्य सौंदर्य की धमि स ही दात नहीं, धमिपु वृ स्नेह, माया, ममता और धामममर्ण की दवी और पुरय का शक्ति रूप मे प्रथम दशन मे ही प्रकट हुई। उमका यह रूप उमने हृदय का अनुभूतिक प्रतीक के रूप मे वद्वि न उपस्थित किया है। नारी का ऐसा मधुमकुन रूप खड़ी बाला मे प्रसादना न जिम कौशल के साथ चित्रित किया है वह धपनी नाट्यायता, शान्ता द्वारा चित्राकन एव कथना द्वारा भौतिक एव जीवत रूपानन क लिय स्मरणाय है।

नारी का सौम्य वैवल उमने रूप मे नहीं है। उमका अतर सौंदर्य धपनी कथ्याली शातल छाया व वारणा धमिन मुदर इस दश मे माना गया है। श्रद्धा का

यह रूप अलग अलग स्थितियों और परिस्थितियों में दिनांतर निरपरा है। मनु में उमका मिलन जिम स्थिति में होता है उस अभिगत स्थिति में श्रद्धा उनकी उद्बोधिका शक्ति के रूप में प्रकट होती है। यह उन्हें केवल उद्बोधन ही नहीं देती है वह सकल सृष्टि की पतवार भा उन्हें सन्हालने की प्रेरणा देते हुए उनके लिए विकारहीन होकर जीवन उत्सव करने की उद्बोधना भी करती है। यद्यपि श्रद्धा मनु की उपवृत्ता है क्योंकि सदानुभूतिवश वे शालि आदि दूर रस आत थ ताकि उन सा ही कोई अथ जलप्लावन म श्वशिश्ट जीव जीवित रह नक ता भी पवित्र हृदय स दया, माया, ममता, भ्रगाय विश्वास और माधुय का जो दान श्रद्धा न उह किया और जिसके कारण वे ससृष्टि के मूल रहस्य बन तथा जिमस मानयना का बेलि फूली फली फली और शक्तिशाली हो मनु विजयी भी बन। यह भारत की एसी ही नारी कर सकती थी। इस भांति समपण-मयी श्रद्धा का यह रूप जरा एक धार निर्देशिका या गुरु के रूप में मनु के जीवन के लिए मन्त्र दे रहा है वही उपवृत्ता नारी के रूप में वह अपनी समस्त शक्ति का दान भी उहें कर रही है। इस प्रकार उहें जीवन म गति देनेवाली मूल शक्ति के रूप में श्रद्धा की प्रतिष्ठा होती है।

श्रद्धा काम गानोत्पन्न होने के कारण कामायनी नाम स भी सर्वोचित की गई है। उमकी गुणमा म स्पर्श, रूप, रस और गंध का व्याकुल कर देनेवाला भावपण था। जीवन में यह भावपण नारी का प्रकृत गुणधर्म है जिमसे बाण में सृष्टि का विश्वास टाना है। इस सौंदर्य रहस्य के ज्ञान के लिये उत्सव

भरे मनु व्याकुल हो उठने हैं और देवतामा का परम उपाम्य काम स्वप्न म मनु को सूचित करता है कि यद्यपि दव नहीं रह ता भी मरी स्त्री अनादि वानना रति और में अनग के रूप म श्रव भी है। पूव जीवन व विनाममय वृत्त्या के ऋणशाय के लिय हमन अपनी मतान कामायनी को दिया है। उसे पाने के लिय यदि लालामित हा तो उमके अनुरूप बना।

यद्यपि मनु और श्रद्धा एक साथ ही रह रहे थ ता भा उनमें वासना का सबध एकाएक स्थापित नहीं हुआ। सहज श्रद्धा की पशु स खेलन दस उमका प्रम पान व लिय मनु क मन में ईश्या हुई और श्रद्धा जब मनु का हाथ पकट उम मधुमनात चौंदनी दे ले गई ता मनु अपने को रोक नहीं पाए और अघोर-प्राण हो विश्वरानी, मुदरी नारी, आदि मवाधान से अभिभूत करते हुए उहोंने निवदन किया कि मेरी समस्त चेतना तुम्हें समर्पित है और श्रव भरी घमनियों में रक्त का गचार बदना की भांति हो रहा है। श्रद्धा तजानत रोमांचित हो बोल उठी कि वह दान जिसे लन व लिये मेर प्राण पहले से ही व्याकुल थे, क्या मैं उन ल सङ्गी, बयोकि मैं निबल हूँ।

मनु की प्रणयिनी के रूप में श्रद्धा की यह रचना भी सहज जीवन तत्वा में रचित है। लज्जा नारी का धर्म है। यह लज्जा सौंदर्य की धाना, शालीनता की उप दशिका, मुदरिया के मन की मरोड़ को जगानवाना रति की प्रतिवृत्ति है और भारतीय नारी का आभूषण भी। इससे श्रद्धा महित है। किंतु नर के मधुग्न आत्मसमपण म दबी के रूप में प्रतिष्ठित है। प्रणयिनी के रूप में भा श्रद्धा उच्छ खल नहीं, वह समतल ध

गमान बरवावाता समुदा का मर्ग क रूप
म उपस्थित है।

मनु का महार दरार का था जिनका नाम
विनाग भाग के कारण हुआ। मातृनि
विनाग के पत्नर म पत्नर पशुवर्त
नामगात घोर मग धनुषात की घोर व
उत्पन्न हुए। बागना का वग उनम
बड़ा घोर व धन ही भोजिग मुग
वागात के निव मय बुद्ध करने का
पुन उतावत हा उते। गगा स्थिति म
भा श्रद्धा धपना गयम नहा मारी घोर
मनु का घट्टिया, सबक गुन, स्वार्थ
रमाग घोर मवाकम का माग बतला है।

धनधनशाल श्रद्धा मातृन व भार म
जहाँ घोर भी क मागमया हाती जा
रहा था यहा मनु स्वार्थरत टिगक
घोर धमुर पुराहिता व प्रभाव म धय
ईध्यातु भा। यहाँ तर वि मनु को
भायो पुन के प्रति भी धपनी पला
का प्रेम धसहा लगा। महार घोर
ईध्या स भर मनु न श्रद्धा की बात
धनमुनी कर दा घोर श्रद्धा का छोड
चल गए।

समर्पण के बाद कतव्य के प्रति द्रव का स्थिति
उपस्थित होने पर भी श्रद्धा यहाँ धपने
वत्तव्या के प्रति धठिग रटती है भर
हा उसे मातना मोल लेनी पडती है।
मातृव घोवन की धनशुति है। इस
फल स मा मगत की दवी घोर कव्याण
का मूर्ति के रूप म मडित होना है।
इस महिमा की धनय अधिकांरिणी के
रूप मे कामायनी का चित्र प्रसादजा
ने इस स्थल पर मूर्तित किया है।
काम स शापित मनु का इडा से मिलन
होता है और श्रद्धा स्वप्न मे धपने
सुख सुख के साथी मनु की वर्तमान
स्थिति को देखती है। नारी का वह
रूप बड़ा ही प्रतिहिसामय होता है
जब वह धपने एसे पति का जिसके

पगला मे धनात मर्षव नमति कर
पुत्री रानी है जिनी धय नारी के
वाग म देगी है। ययति तब तक
मनुजकुमार म श्रद्धा मनु का बाप कर
रहा नी ता भी भोजिग मुगवत्र म
मान घोर विज्ञान व माध्यम मे
गारव्यव प्रग की उपति क विने
मधमीन चाडव का धागव घोर इडा
म धपती रिगला धनृति घोर बागना
का ध्याव बुझने के विने स्वप्न म
इडा का धपनी मुदाधर्म म जकडत
दगा। धना श्रद्धा न दगा वि रड
क नयन गुन गए हैं, धरती कीन रहा
है। प्रलय का धिपति उगधिन है
घोर मनु भवागत है। स्वप्न म भी
पति पर यर धागति दग मनु क
धपराध का भून श्रद्धा धपने पुन क
लाप वहाँ उपस्थित मिना है जहाँ
मनु धायत मूर्च्छा है। श्रद्धा को दग
धपने कुशल पर मनु मे इना ग्लानि
हुई कि मनु धपने पुन घोर श्रद्धा का
गाना छोडकर बही धन गए क्यति
मंगलमूर्ति श्रद्धा क माप उहोने जो
धपराध किया था उस कारण वह
उस कीन सा मुँड िलताने। जिम
स्त्री का धायत पति उन घोर धपने
पुन का छोडकर सोन म चला जाय
उमकी सहज कल्पना नहीं की जा
सकती। एसे समय हृदय पर इतना
बडा धाघात पडता है कि भावुवता
की देवी नारी सब बुद्ध भूल पागत
हो उठती है। किंतु श्रद्धा ने यहाँ भी
धपना शक्तिशाला धोजस्वी घोर धार
कतव्यपाराधण, उगत स्वरूप
उपस्थित किया है। जहाँ वह एक
धार मनुजकुमार की सांखना देती
है, वही इडा स नारीत्व की भाया
घोर ममता का स्मरण कराते हुए
धपने पति के धपराधो के प्रति क्षमा
माचना करती है। जनपदकव्याशी

बही जानेवाली तर्कमया इडा को जिसने, उसके पति को पराभूत किया था, उसे भी वह धमपत पुत्र मनुज कुमार को विश्व के सत्ताप दूर करने के लिये दान कर देती है। तन्मयी इडा का श्रद्धामय मनुजकुमार का योग सत्कार क मतापहरण का निमित्त बने। श्रद्धा की यह मंगलकामना निश्चय ही उसके मंगलमयी होने का अनन्य प्रमाण है। सत्कार की इस मंगल कामना के द्वारा ही वह धमपत कृत्य का इतिश्री नहीं समझ लेती है, अपितु मनु का भा वह सरस्वती व किनार चलकर एक उपत्यका में लाने निवाली है। मनु का ही नहीं, जो भी श्रद्धा का यह चरित्र देखता है उसे यह भान होता है कि सवमंगला श्रद्धा धनत महता तथा उदार है। मनु म मिलने व बाद वह सदा उनके सप रहने का व्रत लेती है। इस मिलन से मनु के लिये आनन्द का द्वार खुल गया और उनका जीवन उज्वल हो उठा। सच्चा जीवनमगिनी के रूप में तथा सहधर्मिणी के रूप में श्रद्धा की यह स्थिति इतनी आकषक है कि हृदय श्रद्धा के प्रति नत हो उठता है। यही पर श्रद्धा का कर्तव्य समाप्त नहीं हो जाता, अपितु वह समस्त अखण्ड आनन्द शिथ तब जाने का मनु की इच्छा का पूर्ति में भी योगदान करती है। मनु का माहम उत्तर दे गया और वे थक गए। श्रद्धा ने उन्हें समतल भूमि पर लाकर इच्छा, वध और तान के तीन मालानत्रिदुष्प्रा का दशन कराया और गुरुरूप में जीवन के सत्य का साक्षात्कार कराया। इही तीन विदुष्प्रा तान, क्रिया और इच्छा ने योग से समस्त अखण्ड आनन्द की उपलब्धि हासिल है, इसका भी तान श्रद्धा ने उन्हें कराया। इस प्रकार श्रद्धा ने मनु को वह अखण्ड आनन्द भी उपलब्ध कराया

जिसके लिये मनु लालायित थे। इतना ही नहीं, श्रद्धा के कारण इडा को भी आलोक मिला, क्योंकि सत्कार की पीडा हरने के लिये धमपत पर चलने के लिये श्रद्धा ने उसे उत्प्रेरित किया।

इस प्रकार श्रद्धा पुरुष की शक्ति, स्नह, माया, ममता और आनन्द की अद्वैतात्म्यी, तात्काल्याणविधायिनी, मानवता के विनास के लिये शुभाकाङ्क्षिणी, उत्कट उत्सवमया, अनुपम सवमंगला सती नारी के रूप में कामायनी में मूर्तित है। वह मुहाण एव मंगल की अजल वर्षा करने वाली साकविधायिनी ऐसी कल्याणदा है जो सह प्रतिस्वमय विकास का आस्थामय द्वार खानकर जहाँ लोक के लिये श्रथ, धम एव काम का मार्ग उपस्थित करती है वही व्यक्ति के लिये परम अखण्ड आनन्द के लिये सामरस्य का अनीकित विधान भी करती है। वह युगमंगल की ऐसी विधायिका है जो चिरतन अपनी सत्ता के लिये सही एव सही माग प्रस्तुत करती है।

प्रसाद की कामायनी के चरित्रा में सर्वाधिक प्रणालिद चरित्र श्रद्धा का है जो रचना कौशल की दृष्टि से इतना अधिक पूर्य जीवन एव मुदर है जितना पूर्य प्रसाद का क्या हिंदो का कोई नारी चरित्र नहीं। शिवत्व के माय में शक्ति में सादय का मनुष्य योग प्रसाद के काव्य का चरम सत्य है।

इडा—श्रद्धाविहीन मनु सरस्वत प्रदेश के पाम सरस्वता का मधुर नाद सुन रहे है और यह मान चुके है कि उनका अदृष्ट फिर उसी रूप में आ चुका है जिसकी वाली छाया उनके देव जीवन पर थी और अब उनका भविष्य पुन अबकारमय है। अब नियति की अतृप्त यातना चलगी जिससे बचने का कोई उपाय

देष नहीं है। इस विधाना, विनाश
मयी स्थिति में इका म मनु का
साक्षात्कार होता है। पर अका का
प्रथम स्तर जिन साक्षात्कारों में
पुनरिगम या पर्याय नहीं है। इस
में मितन व समय मनु व अंतर में भाग
का अत्यंत विनाशकामना पूर्ण महान
व कारण अज्ञान घृणा धीरे धीरे
हियाज में विपात था। इस विपात का
पाटा स व इतने ध्याकुल हो चुके थे
कि उनका कोई उपाय ही नहीं पाया
रहा था।

इका का जो रूप मनु व सामने उपस्थित
हुआ यह इका व अंतर पर प्रकाश
झलता है तथा उनका जीवित चित्र
उपस्थित करता है। उसकी धनके तक
जाल भी विरारी हुई थी। उनका भाव
कमिटाई सट्टण उच्चतम विश्व
मुट्ट सा था। उनमें नर धनुराम
धीरे निरामपूण थे। मद्धति व सर
पान धीरे विज्ञान उसका वदम्यल पर
धर हुए थे। उनमें एक हाथ में कम
कलश था दूसरा हाथ विचारों व
आकाश का मधुर रूप में अभय सहाय
लिए हुए था। उनमें चरणा में गति
की तात्त था तथा यह त्रिगुणात्मक था।

इका का यह शिखरनर रूपचित्रण जहाँ प्रसाद
व मौनिक रसात्मक काव्यकौशल
का आर्यायन करता है वहीं उनकी
अंतरस्पर्शनी भावचित्रण की शक्ति का
बोध भा करता है। जिन तत्वा से इका
व चरित्र का निर्माण प्रसादजा ने
किया है, वे सबके सब इसमें मूलवत् हैं।

प्रथम परिचय में ही इका मनु सवाद इका के
चरित्र पर तात्त्विक प्रकाश झलता
है। यह सुन कर कि विश्वपथिक कलश
सह रहा है वह दयादर नहीं होता अपितु
धोषचारिक स्वागत मात्र करता हुई
अपने ताम का प्रस्ताव तत्काल रख

दी है। इसमें प्रकट है कि इका
मुष्यन एकी प्रगिभा है जो आनन
प्रान पर विश्वास रमता है। पर तब
ता मनु नयन से आणक वचन
भाग कर आणक वचन उनका एग म
पाता पढ़ता है जो दन व कथन सना
भी पाहती है। बुद्धि का गमा गन्व
म आनन प्रान व आणक घन स्वाथ
का अधिपतम पूर्ण करके व निय
उत्प्ररित रहती है। गाय हा इस
आनन प्रान में यह कम से कम स्वाथ
कर अधिप म अधिप सना पाहता है।
यहाँ स्थिति इका का भा है।

यह इका नहीं, परत सना हा पाहता है। स्वाथ
विनाशाना बुद्धिमाना इका का जावन
कामायनी में एस ही रूप से आरभ
हाना है। इसका परवात मनु भा अपना
प्रस्ताव रमन है। वह प्रस्ताव यह है
कि ह दकि। जावन का सट्टण मान
क्या है? भव व भविष्य का द्वार
रान कर मुझे बता दो। साथ ही मनु
नियतिज्ञान से मुक्ति व उपाय व लिय
भी जिनामु है। एकी स्थिति में इका
का उत्तर जाना है—

‘कोई भी हा वह क्या बाल, पागल वन नर निर्भर न कर
अपनी दुबलता बल सम्हाल मतभ्य माग पर पर धर,
मत कर प्रसार निज परो चल, चलने का जिक्का रह भोज
उनको कच कोई सके रोव।’

यह उत्तर बौद्धिक दृष्टि से इतना प्रभावशाली
है कि मनु निरवाय होने पर भी आशा
का नया सत्कार बसाते हैं। इस उत्तर
में कुछ तत्व की बातें भी हैं। पहली
बात तो है मतभ्य मार्ग की। दूसरा
बात है निज परा का बल। तीसरा
बात सिद्धि की है। बुद्धिवादी तत्व
सदब लक्ष्यप्राप्ति के लिये निज साधनों
का इस प्रकार आवलन करते हैं कि
यदि उसपर निरंतर व्यक्त बढता रहे
ता सिद्धि का उपलब्धि होने से कोई
रोक नहीं सकता।

सामान्य जीवन में यह भौतिक मिद्धि आकषण
 । ता उत्पन्न करती ही है माघ ही
 निराशावादी वृत्ति का आशाभंगी चेतना
 भी देती है। इस चेतना का प्रसार
 इडा मनु का इस रूप में दिखाती है कि
 तुम बुद्धिनिर्देश पर कर्म में लान हो
 जाओ इस प्रवृत्ति में ममस्त ऐश्वर्य
 भरा हुआ है। तुम इसका श्राव करो।
 सबका नियमन करो। सबपर शासन
 करते हुए अपनी समता बनाओ। तुम
 इस बात का निर्यामक हो कि समता
 और विषमता कहा है? तुम जहाभूत
 चाओ का विनाश का संहार चतय कर
 अपने उपभोग में लानो। ममस्त लोक
 में तुम्हारा यश छाकर रहेगा।

यश की कामना बुद्धि की महज लिप्ता है।
 इतने ही क्यापयन में इडा अपने चरित्र
 के मूल तत्वों का उद्घाटित कर देती
 है और मनु का इस प्रकार उन्मूलित
 करती है कि वह जीवनपथ पर बुद्धि
 का महार वपन के लिये तत्पर हो जात
 है। वह बुद्धिवाद का अनुमात है और
 एमा अनुभव करते हैं कि इडा का रूप
 में उन्होंने स्वयं बुद्धि का हा पा लिया
 है। इडा जीवनकर्मों की पुकार लगा
 विकल्प को मकल्प बनाकर सुखसाधन
 का द्वार मनु के लिये खोलती है।
 विनाशवादी तथा भौतिक सुमर्षनता
 सुखभाग के लिये सदैव से प्रवृत्ति के
 अज्ञान भंडार पर आधिपत्य जमा उसका
 दाहन करता आई है।

बुद्धिवादी सत्ता का इडा के उपदेश द्वारा
 मनु के ऊपर एमा प्रभाव पड़ता है कि
 वह उसे अग्रोदार तो करने हो है उनका
 चरित्र में बुद्धिवादी भौतिक जीवन
 दशन भी स्पष्ट भाव उठता है। इडा
 के ऐसे चरित्र का भादि परिचय में ही
 इस प्रकार समझित करना अत्यंत

कीयत का काय है, जिस प्रसादजी
 ने सफलतापूर्वक किया है।

इडा बुद्धिवादी सत्ता पर विश्वास करनेवाली
 बुद्धि की अधिष्ठात्री देवी के रूप में
 कामायनी में मस्थित है। बुद्धि चंचल
 होता है तथा स्वाय के कारण सतत
 परिवर्तनशील भी। विवेक इस चान्त्य
 में स्थायित्व लाने का यत्न करता है।
 बुद्धि का देवी इडा का रूप भी
 कामायनी में विवेक का कारण तथा
 परिस्थितिया के परिणामस्वरूप परि-
 वर्तित हुआ है। किंतु उस परिवर्तन
 का मूल में अनुभव का आधार पर
 सुदरतर परिणामप्राप्ति की अभिलाषा
 सर्वत्र दाखती है।

इडा का दूसरा रूप कामायनी में सारस्वत
 नगर की रानी के रूप में प्रकट हुआ
 है। वहाँ वह मनु का निमित्त बनाकर
 समाज का अम्युदय के लिये यत्नशील
 है। यह अम्युदय विवेक भौतिक तथा
 नियमापृत है। समाज का ङग में बाट
 कर प्रवृत्ति से मघप कराती हुई मनु
 का प्रजापति के रूप में वह प्रतिष्ठित
 करती है तथा लोकमवृद्धि के लिये
 सामाजिक नियमन एवं निर्माण
 कराती है।

दूसरे रूप में वह समाज की सचालिका शक्ति
 का रूप में प्रकट होती है। विवेक-
 निमित्त नियमों की अधिष्ठात्री देवी के
 रूप में उस परीक्षा देनी पड़ती है।
 उस अग्निपरीक्षा में उसका सघप ऐसे
 व्यक्ति से होता है जिस उसने दुलार
 दिया है तथा प्रजापति के रूप में
 प्रतिष्ठित किया है। इस परीक्षा में
 विवेकमयी किंतु हृदयहीन इडा खरी
 उतरती है।

शासक और नियामक द्वारा निमित्त नियमों

का हयन पात्र उग तब अश्विन प्रतीत होी गगना है जब उगरी गुण भाग तब रिनाग का पमिनापाया पर उगके द्वारा रिमिा रिमम संतुग बन जाा है। पत्र गति के अर् घोर अश्विनारी रिप्या ग यर र्गमिा निममां का भी तादी या रिभूयन करने का य र करता है। तमा ग्धिति में निवकमया बुद्धि धनना शुभावाज्ञा रूप प्रकट करती है। इदा न भा लेगा अयमर अाने पर अयना शक्तिशाला रूप प्रकट बिा है घोर उगका यह रूप संभीर एवं निवक पूर्ण है।

घोर कह रही किंतु नियामक नियम न मानें, ता सब कुछ गा नष्ट हुआ यह निश्चय जानें।'

जब मनु इडा को भागाघिृत करने का प्रयत्न करने हैं तो अवाटय गुन्ने तर्कों में वह उह दग गलित पथ में विचलित करने का प्रयत्न करती है। यही इडा का रूप एसी शक्तिशाला नारी के रूप में प्रकट हुआ है जो मत्व का रक्षा के लिये आत्मबल द्वारा पतन व पथ पर जानेवान जन का सुमाग पर लाने का विवेकपूरा गभार आस्थान है। व्यक्ति क पागलपन और अभिलाषा का पूति की माहमया विभ्रमता के कारण यह प्रयत्न नष्ट हाने पर भा इडा हार नहीं मानती अपितु बार बार गभार तर्कों द्वारा मनु को सत्पथ पर लाने का सद्बल करता है। प्रयत्न व निष्फल होने पर भा वह श्रेय से पागल नहीं होनी अपितु समझाने बुझाने का बौद्धिक आयाग करता रहती है।

यही इडा का रूप परम शुभावाज्ञिणी के रूप में प्रकट हुआ जो अयना सामाजिक सृष्टि को सत्तामय के दावानल में

मग होी म यवाने का अयन प्रयत्न करती हुई गिगी है। यही पर यह बाभा प्रकट हाी है कि इदा में जनना का अमीम आम्मा है। मनु व अयनकार करने पर जनना उनपर टूट जाती है। फिर भी इदा संपर्ण बचाना चाही है। इदा का यह रूप बडा गीयवशता एवं गरिमाय है। दग प्रकार इदा का रूप बुद्धिवागी ह। हू भी शामायनी में गह्वारक का न हारक विवकमयी पात्रिता का है।

भौतिक गुणगुद्धि क विराधत तय मुद्ध का भयकर स्थिति का इदा व ऊार संभीर प्रभाव पडता है। एगीया इडा म अद्धा घोर अद्धापुन मानव व प्रति गहापुभूनि दीरा पडती है। अद्धा घोर मनु व संमुग वह अयन एगीया स्वरूप के कारण जिग रूप में अयना हार स्वाकार करती है वह रूप उग वरित्र का घोर अश्विन निहार दना है।

गुण रूप न यदि इडा का चरित्र दखा जाय ता वह बुद्धिवादिना होत हू भी लारशुभावाज्ञिणी नवनिर्माणमयी एक समय समय पर अनुभव क परिणामों का अयन चरित्र म सयोजनकर जीवन का विकासमय बनाने व लिय विवक पूवक प्रमलशील दासती है। यहीं तक कि उसके चरित्र पर अद्धा व गुण धम का भी प्रभाव अद्धा का सफलता दक्षकर आ जाता है। अद्धा भी उसकी सफलता के परिणामस्वरूप मानवता के विकास व लिये मनुजकुमार को उसकी छाया में सीप दता है।

इडा व सभी चारित्रिय रूप अयन में शक्ति शाला तथा सुसगठित है।

मानवकुमार—शामायनी का एक चरित्र मनु एक अद्धा का पुत्र मानवकुमार भी है। भावा मानवता के अग्युदय और विकास

का वह प्रतीक है पर उसका चरित्र का खुलकर कामायनी में मूत करने का भवकाश नहीं था। वह केवल इस बात का प्रतीक है कि प्रसादजी के मनु और श्रद्धा का चरित्र अखंड ध्यान के लिये लोक से पलायन करने वाला नहीं है, अपितु वह मानवता का इडा श्रद्धा समन्वित विवास के प्रवर्द्धन की कामना का प्रतीक है। जहाँ भी जिन रूप में भी उसके चरित्र की छाया कामायनी में दीख पड़ती है वह उसके सहज बाल रूप का तथा मनु के उत्तराधिकारी के रूप का संकेत कर देती है। वास्तव में 'मानव' को लोक में प्रतिष्ठित कर कवि ने कानिदास और तुलसीदास की भारतीय वाक्यरूपरा का ही पालन नहीं किया है वरन् साथ ही उस भारतीय जीवन उपामना का परंपरा का भी आदेश स्थापित किया है जिनके द्वारा मानवता के विकास का प्रवर्द्धमान संदेश देना कवि का गुण्यमाना गया है।

मनु, श्रद्धा एवं इडा के प्रथम में मनुजकुमार के चरित्र पर प्रकाश डाला जा चुका है। कामायनी में मनु, श्रद्धा एवं इडा के सर्पक में मानवकुमार की उपस्थिति जापक का भाति सबसे है इसलिये उसके निजी कृतत्व एवं चरित्र के विकास के लिये वहाँ भवकाश नहीं।

आकुलि, विलास—ये दो चरित्र एस स्वाभाविक बल व्यक्तियों के हैं जो स्वभाव के लिये माननीय गुणों का हननकर सत्रनों में भी अधमानवीय गुणों की वृद्धिकर धपना स्वार्थ सीधा करते हैं। हिंसा, विलास एवं स्वार्थ इनके चरित्र के मूल में हैं। इनका ससर्ग मनु जैसे व्यक्ति को भी भ्रष्ट कर देता है। इनके चरित्र का आकलन भी सामैतिक है किंतु संकेत

धपने में पूर्ण ह जो इनकी चारित्रिक रेखाओं को उभार कर रख देने हैं।

किराताकुलि की चर्चा जैमिनीय ब्राह्मण (३, १६७), पंचविंग ब्राह्मण (१३ १२, ५) ऋग्वेद (१०, ५७, १, ६०, ७) वृहद्वेदा, राजेन्द्राल मित्र (७, ६१, ६६) आदि प्रथम में है। इसकी कथा यह है कि रथ प्राष्ठ कुल के इश्वानु राजा का गौपायन नामक दा पुराहिता से सर्पक हुआ। किरात तथा आकुलि नामक दो श्रमुरा ने इश्वानु राजा का गौपायन पुरोहिता की छोड़ देने के लिये समझाया और गौपायन मुवधु का वचन कराया। परंतु उनके शय श्रमुरा ने एक मूक के जाप से उन्हें पुन जावित कर लिया। इनके सबब में आमुवक में प्रनादजा न स्वय उदत किया है कि धिनाताकुली—इति हामुर ब्रह्मा वामतु। तौ हाचतु श्रद्धा दवा वै मनु धाव नु वेदावति। तौ हागत्याचतु मना। वाजयावत्वेति।'

श्रद्धापालिन पशुधा का दत्तकर अपनी तृप्ति के लिये मनु के पुरोहित बन इहोने पशुबलि कराई। हिंसा का रक्त इनके प्रभाववश मनु के मुल में एमा लगा कि उनका नाश के बगार पर ले जाकर ही रका। इन्होंने अपने स्वायभाग के लिये मनु में ऐसी कुप्रवृत्तिया जगाइ कि वे हिंसा की विनासलीला में डूब गए। एस स्वायसाधक धपनी स्वाय लिप्ता की तृप्ति में ही धपन जावन का सबस्व समभते ह। ऐसे जन केवल स्वार्थ के हते हैं और विनी के नहीं। जब सारस्वत प्रदेश में मनु के विरुद्ध विद्रोह हुआ तो वे स्वार्थी उसका नेतृत्व करते दीखते हैं। ऐसे लोग का मत भी एमा ही होना है और

इसी मयम म मनु ने उनका बंध कर दिया ।

एस स्वाध्यायक तत्व प्राय समाज मे होत है जो समाज के मुदर तत्वो को विचार ग्रस्त कर अपना स्वार्थमाधन करते है । व स्वाध्यायता के प्रतीक है । काम और इर्ष्या सग मे इनका रूप प्रसादजा न चित्रित किया है ।

इन चरित्रो के अतिरिक्त कामायनी में नटराज, नटेश भूतनाथ, रुद्र, वृत्रघ्नी काम तथा आशा, रति लज्जा वासना की भा चर्चा है । य पात्र या तो आनन्द-माधना म मवद है या इनके द्वारा भावो का मानवीकरण किया गया है । कामायना नटराज, नटेश, भूतनाथ रुद्र एव शिव उनक दशन स मवद है आशा, रति लज्जा, वासना का सबध नाथलाक स है । वृत्रघ्नी की चर्चा ऐतरेय ब्राह्मण म है पर यहाँ कामायना के चरित्र म कोई विरोध मट्त्व नही ।

कामायना म अत्यंत अल्प चरित्र है और उन चरित्रो के उन अशो का हा उद्घाटन किया गया है जा अधिक प्रभावशाली है । इन चरित्रो का प्रत्यक्षीकरण कवि पात्रो क कार्यों द्वारा करता है तथा वही वही सक्त के द्वारा भी वह पात्रो क चरित्र पर मर्मत प्रकाश डालन कर मवत् प्रकृत करता है । शत्रु का चरित्रचित्रण अत्यंत मनोवार्त्तिक है । इतिहास के और पुराण क चातावरण म आधुनिकतम चारित्रिक गठन का मवत्तमून उनकी इस चरित्रा-कनवाली प्रणाला म स्पष्ट दिखार्ई पडना है । यह कवि का बहुत बडी विष्णुता है । १० कामायनी का क्या का आधार और कामायना दशन ।

कामायनी भाषाशिल्प—छायावादी न इतिवृत्तात्मक लखा बाला का काव्यात्मक भाषा दा ।

कामायनी इसका ज्वला प्रमाण है । वीमवी शताब्दी क प्रारंभ में रही कोनी पद्य का भाषा तो वन गर् धा पर वट मवधा इतिवृत्तात्मक था । गभीर एव कामय भावो का रमा मव अभिव्यक्ति दी म वट अयमय था । छायावाद क कविया न उस ध्वनि, लाक्ष्मिपटना चित्रमयता व्यञ्जता, एव प्रतीक शक्तिया स महित किया । प्रमाद की कामायना म छायावादी हिंसात्मक का भाषा का निखार अपनी समग्र श्रोजन्विता क साथ प्रकट हुआ ।

कामायनी म प्रसाद का भाषाशक्ति का दशन मजक रूप स हुआ है । शब्दशक्ति के गाता प्रमादजी न शब्दचयन म सतकता करता है । उहाने शब्दचयन मूलत ससृज की शब्दावला स किया है । भाषा की व्यञ्जता और समास शक्ति का ध्यान प्रत्येक मर्मीर एव श्रेष्ठ कवि रखता है और काव्यप्रसार तथा भाव की सहजाभिव्यक्ति म भाषा की अक्षिचनता को बाधक होन देना सिद्ध कवि कभी स्वाकार नही करता । यद्यपि उहाने मसृज म शब्द ग्रहण किए ता भी अप्रचलित शब्दो का प्रयोग मधामाध्य नही किया । साथ ही साथ मुहावरो और बोतचाल क सहज दशन शब्दो का भा उहोन उपेक्षा नही का है । भाषा भाषा को मूलित करने का माध्यम मात्र है । वह सिद्धि नही बवल साधन है । इसका ध्यान कामायना म प्रमादजा न रखा है ।

कामायनी की भाषा लक्षणाप्रधान है । लाक्ष्मिपटना जहाँ भाषा म रमात्मकता उभर करता है वही न्यूनतम शब्दो द्वारा अधिकतम अर्थ भा व्यक्त करता है । भाषा की इस समास शक्ति स

काव्य का प्रभा बढ जाती है और उसमें रसात्मकता की भी वृद्धि होती है ।

कामायनी में बड़े व्यापक पमान पर मुंदर, मार्मिक तथा आकर्षण लाक्षणिक प्रयोग हैं । कामायनी में लाक्षणिक प्रयोग प्रतीकात्मक तथा निर्जोव तत्वों के मानवीकरण द्वारा किए गए हैं । इनके द्वारा प्रस्तुत को मूर्तित किया गया है । जहाँतक मानवीकरण का प्रश्न है प्रमादजी ने वस्तुषा तथा भावा का वगन सजीव प्राणी के रूप में किया है । इनके द्वारा कवि ने भावों को सहजता के साथ ही माथ कलात्मक एवं जीवत रूप में चित्रित किया है । उहोंने स्थान स्थान पर लक्षणा की राजि सजा दी है । उदाहरण के रूप में कामायनी की निम्नांकित पक्तियाँ दी जा रही है—

‘सध्या भरुण जलज केसर ले, अब तक मन धी बहूनाती,
मुरझा कर कब गिरा तामरम, उसको खोज कहीं पाती,
क्षितिज माल का कुटुम गिरता, मलिन कालिमा के कर स,
कोकिल की काकनी बुधा ही अब कलियाँ पर मडराती’ ।

× × ×

‘छूने में हिचक, देखन में
पलकें भाँखों पर झुकती हैं ।
कलरव परिहास भरी मूर्खें,
भधरा तक सहसा रुकती हैं ।
सकत कर रहा रामानी,
झुपचाप बरजती खड़ी रही,
भाया बन सौँहो की वाली,
रेखा-मों भ्रम में पडी रही ।
ह्रम कौन ? हृदय की परलक्षता,
मारी स्वतन्त्रता छीन रही,
स्वच्छद मुमन जो खिने रह,
जीवन वन से हो बीन रही ।’

प्रथम उदाहरण में सध्या का मानवीकरण किया गया है और दूसरे में लक्षणा को प्राणी रूप में मूर्तित किया गया है ।

इससे काव्य में रसमयता आ गई है और आर्जव भी ।

कामायनी में प्रताक के रूप में भी लाक्षणिक प्रयोग किए गए हैं । रूपव स अत्यंत मूर्च्छित होने हुए भी उसका गुण प्रतीव में सरस्वित रहता है और इसमें प्रस्तुत के स्थान पर अप्रस्तुत का मकेत कर दिया जाता है । उदाहरणार्थ कामायनी से यह अंश प्रस्तुत है—

जीवन निगाव के अवकार ।

तू धूम रहा अभिराधा के नत्र ज्वनन धूम मा दुनिवार ।
जिममें अप्रूग लायमा, कमक चिनगारी सी उठती पुकार ।
यौवन मधुवन की कालिंदी बर रहा जूमकर मव दिगत,
मन शिशु की ब्रीडा-नीकाए वम दौड लगाता है आत ।
कुठकिनि अपलक हग कं अजन । हसती तुभम मुंदर छनना,
धूमिल रखाधो से सजीव चचल चिन। का नव कनना ।
इम धिर प्रवाम श्यामल पय म उरई पिक प्रांगा का पुकार,

वन नील प्रतिवनि नभ अपार ।

प्रमाद न अमृत भाववाचक मञ्जात्रा द्वारा लाक्षणिक प्रतीकविधान कामायनी में भूत क लिये किया है । उदाहरणार्थ—

ओ जीवन की मठ मराचिका
वायरता क अलम विपाद ।
अरे पुरातन अमत । अगतिमय
माह मुग्ध जर्जर अवसाद ।

प्रमाद के लाक्षणिक प्रयोगों में विशेषण विषयय भी पर्याप्त मात्रा में मिलता है । अग्रजी माहित्य में इसका प्रयोग व्यापक रूप से होता है । इसमें ऐसा विशेषण प्रयुक्त किया जाता है जो सामान्य प्रयोग में सबद विशेषण के साथ प्रयोग में नहीं लाया जाता है । मया,

प्रिय की तिठुर विजय हुई,
पर यह ता मेरी हार नहीं ।

× × ×

येदी की निर्मम प्रगल्भता,
पशु का कातर वाण।।

मणिनीपा न संघकारमय
घर निराशागुण भविष्य ?

इस प्रकार ताक्षणिक प्रयोग प्रमाद्वी ने चार रूपा में कामायनी में किए हैं। निर्जीव तंत्रों का मानवाचक बनना, ताक्षणिक प्रयोगों में प्रत्याकारमय प्रयोग द्वारा, समूह भाववाचक गणना का मूल न त्रिभुज द्वारा और विनायक विषयमय द्वारा। इन ताक्षणिक प्रयोगों द्वारा प्रमाद्वी ने भावों की सघनता का सबसे सुकरता प्राप्त नहीं की है, मानसगुण नयनयित भी किया है। इन प्रयोगों के कारण नाटकीय प्रभाव की निष्पत्ति भी हुई है और भाव का सघनता प्रभावगता रूप में ही मकी है तथा वाच्य का शिखीय कमनीयता भी मिली है।

इन ताक्षणिक प्रयोगों के साथ ही साथ परस्पर विनायाचक शब्दों का प्रयोग भी कामायनी में स्थान स्थान पर मिलता है। इन विनायाचक शब्दों में भाषा के यजनापूर्ण होने में सहायता मिलती है। यथा—

‘सिर नीचाकर किमकी सत्ता
मग करते स्वीकार यहाँ,
सदा मोन हो प्रवचन करते
जिसका, वह अस्तित्व कहीं ?

विनाया शब्दों का प्रयोग की तुला पर भाव का सूचकन सपना सती रूप प्रकट करता है। इससे शब्द का दशा तथा भाषा का भाष लय जाता है। इस प्रकार भावना की तात्रता का गति और उनकी सभारता के तज का भास होता है। इस रूप में भावनाचित्रण से उसका तत्व का सच्चा भाष महदय के मानस की होता है। यथा,

मणिनीपा न रहा हूँ भाषा न घघकारमय
भविष्य का सार करी है। नीर तन
संघकार का कृपायन प्रसिद्ध है पर यहाँ
बात कुछ दूसरी है। मही मणिनीपा
समयवित्तों का समक न विषय और
संघकार सगत् ज्ञान न विषय है।
विनायिता सघा बना था है और
दृष्टिवाता भा उमकी समक म गम्य का
दगन नहीं कर पाता। इस प्रकार
परस्पर विनाया शब्दों का प्रयोग म
और उनका सघनता स भाव न महज
म साथ का गान कवि महदय का करान
म गमय जाता है।

प्रमाद्वी का भाषा में प्रमाद्वी गुण है। भाव एवं प्रयोग का भाषा अनुपादितना है। अनंत और वितन की अभिव्यक्ति के लिए जहाँ कुछ कठिन भाषा का प्रयोग कामायनीकार ने किया है वहीं उनका व्यवहार के समावश्यक सहज शब्दों का प्रयोग भी यथास्थान किया है। कामायनी का भाषा में मधुवाह प्रवाह है। यह प्रवाह सहज है इसलिये चित्त कावक भी है। कामायनी का भाषा में ध्वन्यात्मकता का गुण भी है। ध्वन्यात्मकता भाषाचित्रों का स्वरलिपि है और राग का रस भी उसमें समाहित रहता है। भाव इसके कारण सस्वर ही सपना सत्ता यक करते हैं। इतना ही नहीं, प्रमाद्वी का भाषा चित्रमया भी है। वह भावों का चित्र स्रष्टा करती है। इनका उदाहरण यहाँ दिया जा रहा है।

प्रमाद्वी भाषा का उदाहरण

मह नाड मनाहृद श्रुतियों का
यह विश्व कर्म रंगरसल है

हैं परपरा लग रही यहाँ,
ठहरा जिममे जितना बल है।
वे कितने ऐसे होते हैं,
जा कबल सावन बनते हैं,
आरभ और परिणामों के,
सबब मूत्र में बुनते हैं।

भाषा का साधु प्रवाह यहाँ और प्राय
अपत्र भा कामायना मे मिलगा।

अब शानदानुराग का उदाहरण यहाँ प्रस्तुत
किया जा रहा है—

हाहाकार हुआ प्रदमय
कठिन कुलिश हात पे चूर।
हूए दिग्ध बधिर भाषण ख
बार बार होना था क्रूर।
दिग्धाहो से धूम उठे, या
जलधर उठे क्षितिज तट के।
सघन गगन मे भीम प्रकषप
भभा के चलत भटक।

शब्दचित्र का उदाहरण

नील परिधान बीच सुकुमार,
खुल रहा मुहुन अघखुला अग।
खिला हा ज्यो बिजली का फूल
मेष बन बीच गुलाबी रग।
आह! वह मुख! पश्चिम के व्योम—
बीच जब घिरत हा घनश्याम,
अरुण रवि मडल उनको भेद
दिखाई दता हो छविधाम।
या कि, नव इंद्र नील लघु भृगु,
फाट कर घषक ग्ही हा कात,
एक लघु ज्वालामुखी अचत,
माधवी रजनी मे अश्रात।
घिर थे घुघराते बाल,
अंस अचलबित मुख के पास,
नील घन शकक स सुकुमार,
सुधा भरन का विधु के पास।

ऐसे शब्दचित्र स्थान स्थान पर कामायना
में मूर्तित हैं।

प्रतीको के सबध मे कामायनी मे प्रवृत्ति शीर्षक
अध्याय म चचा का जा चुकी है।
छायावाद काव्यशिल्प की वाणी इन
प्रतीको के माध्यम म निनादित हुई
है। उनका अर्थना मम है। कामायनी
में बहुत व्यापक परिधि मे उनका सफल
प्रयोग है। प्रतीक अल्प शब्दप्रयोग से
व्यापक अर्थनिष्पत्ति मे गृह्यत्व हात
है। कम म कम प्रयोग द्वारा अधिकतम
अर्थनिष्पत्ति कला और विज्ञान दोना
तत्वा का दक्षता का जीवनशक्ति है।
कामायनी म यह कौशल है।

अलंकार—उपयुक्त अलंकरण शरीर की प्रभा का
और अधिक कमनीय बनाने म महायक
सिद्ध होत है। अलंकार का अर्थना
शिल्प हाता है जा पात्र और वण के
अनुसार अपनी उपादयता सिद्ध करता
है। अलंकरण सौंदर्य का साधन है,
यदि वह वाञ्छित न हा। वाच्य के
अर्थ का अलंकार चारता प्रदान करत
है किंतु उनका अनावश्यक अर्थगुठक
प्रयोग कुश्चि का प्रदर्शन मात्र है।
सहज सौंदर्य स तुल्य अलंकरण का
योग जिस प्रकार सौंदर्य की वाति
म आवृद्धि करता है उसा प्रकार काय
शिल्प म भाषा की प्रभावृद्धि के लिय
उचित अलंकरण का अर्थना है किंतु
उसका उपयोग भाषा की सौंदर्यवृद्धि
और अर्थत्व के उद्घाटन के लिय
होना चाहिए न कि चमत्कारप्रदर्शन
के लिय। प्रसादशा का कामायनी म
अलंकारो का विधान है, व महज है
भाव क अर्थ को उद्घाटित करने मे
सहायक होत है और भाषा का भंगिमा
का उसी प्रकार आकषण और तज
प्रदान करत है जस वाजल नयन और
अलवतक अर्थना का। उनके द्वारा प्रयुक्त
कुछ अलंकारो क उदाहरण यहाँ दिए
जा रहे हैं जा इम तथ्य के प्रमाण है।

अभेद रूपक—

भुज सना पटा गरिवाधो का
 भना न गले गनाथ हुए,
 जलनिधि का धवल ध्यजन बना
 धरगा का, दा दा गाय हुए ।
 —नाम, पृ० ७३ ।

यहाँ भुज सना' और धनन ध्यजन' में अभेद रूपक स्पष्ट है ।

उपमा—नाच का दा पत्निपति

१ हित्वा भरा हा श्चतुपति का
 गोपूती का मा ममता हा,
 जागरण प्रात मा ह्यता हा
 जिसम मध्याह्न निरतरता हा ।
 —तजा पृ० १०१ ।

२ नीच जलधर दौट रहे थ
 मुत्र मुग्धनु माला पटने,
 कुजर कलभ सदृश दृठनात
 चपकात सपना न गटने ।
 —रहस्य पृ० २१८ ।

रूपक से पुष्ट उपमा—

३ धूम रही है यहाँ चतुदिव
 चलचित्रो सा ससृति छाया ।
 —रहस्य पृ० २६४ ।

४ चेतन समुद्र में जीवन
 लहरो सा बिलर पडा है ।
 —आनन्द २८८ ।

यहाँ रूपक से (चेतन समुद्र) पुष्ट पूर्णोपमा है ।
 जीवन प्रस्तुत लहर अप्रस्तुत बिलर
 पहना साधारण धर्म और सा'
 वाक्य है ।

पर्यायोक्त प्रथम—

१ खुल मसृण भुज मूलो से
 वह आमत्रण था मिलता ।

खुल भुजमूल अथत आकषक थ इस बात
 का प्रकारांतर से कटा गया है ।

२ पवन वी रहा था शशा का ।
 —निना, १६ ।

पवन गवार न अनिरिक्त चतुर्विध शानि था,
 दगा मामाप बात का पवन शशी
 का पा रहा था—दग प्रकार कटा
 गया है ।

विभाषना—

१ हृदय का राजस्य अपहत कर अधम अपगाथ,
 दम्पु मुक्तग चाहत है मुग मग निर्वाध ।
 —यागना पृ० ८५ ।

पनाम विभाषना—यहाँ त्रिगुणो हानि की जा रही
 है, उमी म मुल पाना रूप विपरान
 कार्य लिया जाता है ।

२ मणिगाया के चंद्रचारमय धर निराशापूर्ण भविय
 दव दभ व महामय म गव कुछ ही बन गया हृदिय ।
 —चिता, ७ ।

यहाँ मणिगाय (जा प्रकाश विवाण करत हैं)
 अपरार उत्पन्न करनेवाले कट गए
 हैं । अत यहाँ भी पचम विभाषना
 हुई । यह देव दभ के महामय—
 गत रूपक स पुष्ट है ।

निदर्शना से पुष्ट रूपक—

१ इन चरणो मे कर्म-कुसुम की प्रजलि
 वे दे सकत ।

—कम, पृ० १२३ ।

२ इमी विपिन में मानस का
 प्राशा का कुसुम खिलेगा ।
 —कम, ११३ ।

३ वह प्रभात का हानकला शशि,
 किरा कहीं चाँदना रहा,
 वह सध्या थी, रवि शशि तारा
 ये सब कोई नहीं जहाँ ।

इसमें निदर्शना से पुष्ट रूपक है ।

उपमा से पुष्ट रूपक—

१ मैं रति की प्रतिवृत्ति लज्जा है
 मैं शालीनता सिलाती हूँ,

मनवानो मुदरता पग मे
नूपुर मी लिपट मनाती है ।
—लज्जा, पृ० १०३ ।

नयनो की नीलम का घाटो
जिस रस घन से छा जाती हा ।
—लज्जा, १०३ ।

यहाँ नयगोलक को नीलम की घाटो और
मुदरता का मय कहा गया है ।
वह विराग विभूति व्यापकन स हा व्यस्त,
बिखरती थी और खुन्ने ज्वलन कण जो अस्त ।

यहा विराग का विभूति, ईर्ष्या का पवन
और उदाम मुस च्चाम को अग्निबण
कहा गया है । इस प्रकार परपरित
रूपक की स्थिति है ।

उत्प्रेक्षा, गम्योत्प्रेक्षा—

१ पुलकित पदव की माला-सी
पटना देता हा अतर म,
भुरु जाती है मन का शाली
अपनी फनभरता के डर में ।
—लज्जा, ६६ ।

लज्जा शरारियों न हान क कारण माना
नहीं पहना सकती, इसलिए यहा 'सी'
को उपमा का वाचक नहीं समझना
चाहिए । यह उत्प्रेक्षा का वाचक
सशुद्ध क 'दव' पद की भांति है ।

२ अचिन्त हिम खडा पर पडकर
हिमकर कितने नए बनाता ।
—रहस्य, पृ० २५७ ।

वस्तुत्प्रेक्षा—

शातल भरनो की धाराएँ,
बिखराती जीवन अनुभूति ।
उम अमाम नील अचल मे
दल किमा की मुड मुमवयान,
माना हमा हिमालय का है
फूट चला करती कन गान ।
—माशा, २६ ।

भरनो की कल कन करती शातल धाराएँ
देखकर ऐसा प्रतीत होता है मानो
किमी की मुस्मान देखकर हिमालय
की हमी ही कलमान करती फूट पडी
हो । एक वस्तु को देखकर दूसरी की
मभावना की गई है ।

मध्या घनमाला की मुदर ओठे रग विरगी छीट,
गगन चुबिनी शल-श्रणिया पहले हुए तुपार किरोट ।
विश्व मौन, गौरव, महत्व की प्रतिनिधियो सी भरो विभा,
इम अनत प्रागण मे मानो जोड रही है मौन सभा ।
—आशा, पृ० ३० ।

सध्या और शल श्रणिया मज धज कर इस
प्रकार शोभा दे रही है माना मौन,
गौरव और महत्व की प्रतिनिधि हो
और वे अनत क प्रागण मे मौन सभा
का आवाजन कर रही हा ।

दृष्टात—

शब्द, स्पर्श, रस, रूप, गंध का
पारदर्शनी सुषड पुतलियाँ,
चारा और नृत्य करती ज्यो,
रूपवती रमीन तितलिया ।

उपमा—

नीचे जलधर दौड रह धे,
मुदर सुर धनु माला पहन,
कुजर कलभ सदृश इठलात
चमकत चपला के गहने ।

उत्प्रेक्षा—

तपन धूम मडल मे कमी
नाच रही यह ज्वाला ।
तिमिर फणो पहने हैं मानो
अपने मण्डि की माला ।

पूर्णोपमा—

जाग्रत वा सादय यदपि वह
सीनी यो मुकुमारी,
रूप चद्रिका में उज्ज्वल थी
आज निशा सी नारी ।

दृष्टात—

१ सुख, केवल मुख का वह सग्रह
कद्रीभूत हुआ इतना,

छायापय म नव गुणर का
गहन मिलन होय जितया ।
—विता ६ ।

यही उपमेय और उगमान वाक्या म विव
प्रतिबिम्ब मात्र है ।

२ नील परिधान बाय मुकुमार
गुन रहा मृदुन अपगुना भय,
तिना हो ज्यो विनी का पून
मेघ वन बाय गुनाया रग ।
—अडा पृ० ४६ ।

यहाँ भी दृष्टांत है, क्यावि उपमेय और उगमान
वाक्या म विव प्रतिबिम्ब भाव स्पष्ट है ।

ललित—

दुख की पिछनी रजनी बीच
विचमता मुल का नवल प्रभात
एक परदा यह भीना नील
छिपाए हैं जिसम मुल गात ।
—अडा पृ० ५३ ।

यही वरय या प्रस्तुत में वरय वृत्तान के प्रति
विव का ही बगन है । अथ यह है कि
प्राज निराशा और दुख की स्थिति है
उमका अत शीघ्र हा होगा ।

उल्लास—

हे दवि । तुम्हारा स्नेह प्रवल
वन दिग् श्रेय उद्गम अचिरल
आवयण घन गा वितरे जल
निवीसित हा मताप सकन'
कह इडा प्रणत से चरण धूल
पकडा कुमार कर मृदुल पून ।

यहाँ कामायनी का पवित्रता, हादिक स्निग्धना
और सचरित्र आदि आदश गुणा का
पूरा पूरा प्रभाव इडा पर पडता
लिखाया गया है ?

विशेष—

१ निराधार है किंतु ठहरना
उन दोनों को आज यही है ।
—रहस्य पृ० २६० ।
२ लिशा विवपित फलप्रमाम है
यह अतत सा कुछ ऊपर है,

अनुभव बना हा, बाता क्या
पगनत म गचमुच भूषर है ।

यही अंगन आशय का बगन बिना आषार क
है का विगण भर्त्सकार का गुणार्थवि
गरी है ।

विशेषोक्ति—

प्याग है मैं अब भी प्याग
गगुण भोय स मैं न हूया ।

गमुद म प्रत्ये का बाट भाई उम गमुग बाह
म भी काम की प्याग नहीं बुझी ।
गुणन कारण के हात हुए भा कार्य
नहीं हूया । अत विगणार्थि का मुंर
निश्चय यही हूया है ।

छायावादा काव्य म मुहावरों का प्रयोग अत्यंत
सीमित रूप म हूया है । अत और
दुस्त भाषा के लिए मुहावरे अनिवार्य
माने जात हैं पर छायावादी काव्य के
प्रतीकविधान ने उमके इस गौरव का
महिमा कम कर दी । प्रतात् मुहावरा
स कम मशक प्रपना समासवा क और
नवान्तास के कारण नहीं । वही वही
तो व बहुत शक्तिशाला प्रमाणित हुए
हैं भले हा मुहावरे अधिक बाधगम्य
हा । प्रतात् म मुहावरा की अपेक्षा
ताजगी अधिक हाता है पर मुहावरे
अमरदार हाते हैं भले ही रुढ हो ।
प्रसादजा का कामायनी मे भा कुछ
मुहावरों का प्रयोग हूया है । ये मुहावरे
ऐसे हैं जो भाषा मे हिलमिल गए है ।
इसलिए प्राय उनका चाहे अनचाहे
प्रयोग होता रहना है । प्रसादजी ने
मुहावरों के प्रयोग मे कोई विनिय
कीशल नहीं दिखाया है । व सहज हा
उपस्थित हो गए है यथा भर कर
जीतना, अपनी अपनी पडना, कात
पोल कर, कुट्टी करना, छुट्टी होना, सब
बात बनना, सीस उखटना, अघेर
मचना, ग्राँस से डाना पडना आदि ।

कामायनी का संपूर्ण भाषा एकरस नहीं है,

कही कही उमम माट तोड़ भी है।
कहीं कहीं उमम व्याकरण का दोष भी है।
कवि का निरकुशता की मामा का उल्लघन भी कवि ने जान बूझ कर नहीं, अनजाने ही इस क्षेप में कर दिया है।
कामायनी में व्याकरणबन्धी दोष कई प्रकार में हैं। कही लिंगदोष हैं तो कही विभक्तिविकार। शब्दों, मुहावरों की प्रवृत्ति भी कामायनी में मिलेगी।
तुफ का वचन सबत्र इमक मूल में नहीं है।

१ झाल बंद कर लिया क्षाम स

[ली] —लिंगदाप।

२ धाये इम ऊजठ नगर प्रात

[मे] —विभक्तिविकार।

३ वितरने का भरद (विभक्तिविकार)।

४ एक सर्जोव तपस्या जम

पतभड म कर वास रहा (निगन्ताप)।

[रही]

स्थानीय एवं देशज प्रयोग भा कामायनी में मिलने हैं। कुछ शब्दों का मोह भी प्रसादजी को है, जैसे मधुप, मकरद, व्यस्त आदि। कहीं कहीं अस्पष्ट प्रयोगों के दशन भी कामायनी में होते हैं। कहीं कहीं छद्मविकार के कारण भाषा में शब्दत्व भी मारा गया है।

इन समस्त स्फुट दोषों के रहत हुए भी उनकी भाषा साक्षरिणता, व्यञ्जकता, सुंदर प्रतीतिविधान तथा उपचारवक्रता के कारण अत्यंत गरिमाशाला है।

खड़ी बोली में जहाँतक भाषा और शली का प्रश्न है छायावादी युग खड़ा बोला की ककशता दूर करने के लिये तथा उसको काव्य का सिद्ध भाषा बनाने के लिये ऐतिहासिक महत्व प्राप्त कर चुका है। कामायनी छायावादी युग

की ही नहीं, खड़ी बोली की चूड़त रचना है। श्रीमैथिलेश्वररा गुप्त और प० अयोध्यामिह उपध्याय 'हरिऔध' आदि महाकवियों के काव्य की भाषा अत्यंत दापपूर्ण है। गुप्तजी की भाषा तो प्रमादगुणरान भी कही जा सकती है। छायावाद के जिन कवियों की रचनाओं से काव्यभाषा विषयक विशेष शक्ति हिंदी को प्राप्त हुई उनमें निरालाजी की भाषा अपना पीरूपेयता, पतजी का भाषा कामल माधुय और महादवी की भाषा एकरस मिठास के कारण गुणसंपन्न मानी गई। किंतु प्रमाद की भाषा में इन सभी गुणों का समुचित समन्वय होने के कारण भाषा तथा शलागत एवं विशेष सौंदर्य एवं भोज उपस्थित होता है। इसका यह अर्थ नहीं कि कामायनी के सभी स्थल ऐसे ही हैं जिनमें प्रसाद गुण ही है, जिनमें सरमता ही सरमता है, जिनमें सबत्र माधुय और भोज ही है। किंतु अधिकांश स्थल आवश्यकतानुसार भाषा और शली के गुणों के समुचित याग के कारण विशेष शक्तिमय बन गए हैं। यह शक्तिमयता अपना निजी महत्व रखती है।

छद्मरचना—छद्म कविता के शरार का आंगिक गठन है। काव्य में छद्मों के उचित चुनाव एवं गठन से भावों को द्युत मिलता है। भावानुकूल छद्म काव्य वा रामायणकता को सारस्थ प्रदान करने में अत्यंत सहायक हात हैं और भावा का प्रतिबत करने में सफल भी।

प्रसादजी ने कामायनी में यथावश्यक चारह प्रकार के छद्मों का प्रयोग किया है। छद्मचयन और उनका प्रयोग साधारण काव्य नहीं है। यह काव्य समय और अभ्यास पर ध्यायित है। प्रसादजी ने

काष्माणदी में प्रथम जिला है जिसे 'काष्माणदी' कहा गया है। इसका अर्थ है 'काष्माणदी' का प्रथम जिला है। इसका अर्थ है 'काष्माणदी' का प्रथम जिला है। इसका अर्थ है 'काष्माणदी' का प्रथम जिला है।

काष्माणदी में प्रथम जिला है जिसे 'काष्माणदी' कहा गया है। इसका अर्थ है 'काष्माणदी' का प्रथम जिला है। इसका अर्थ है 'काष्माणदी' का प्रथम जिला है। इसका अर्थ है 'काष्माणदी' का प्रथम जिला है।

वीर हनु— यह ३१ माघ की रात में हुआ है। इसमें प्रथम जिला का प्रथम जिला है। इसका अर्थ है 'काष्माणदी' का प्रथम जिला है। इसका अर्थ है 'काष्माणदी' का प्रथम जिला है। इसका अर्थ है 'काष्माणदी' का प्रथम जिला है।

काष्माणदी में प्रथम जिला है जिसे 'काष्माणदी' कहा गया है। इसका अर्थ है 'काष्माणदी' का प्रथम जिला है। इसका अर्थ है 'काष्माणदी' का प्रथम जिला है। इसका अर्थ है 'काष्माणदी' का प्रथम जिला है।

गणेश जी भक्त मिश्रण १६ माघ की रात में हुआ है। इसका अर्थ है 'काष्माणदी' का प्रथम जिला है। इसका अर्थ है 'काष्माणदी' का प्रथम जिला है। इसका अर्थ है 'काष्माणदी' का प्रथम जिला है।

साठव गणेशजी— साठव गणेशजी की रात में हुआ है। इसका अर्थ है 'काष्माणदी' का प्रथम जिला है। इसका अर्थ है 'काष्माणदी' का प्रथम जिला है। इसका अर्थ है 'काष्माणदी' का प्रथम जिला है।

यह वीर हनु विजय मर्म म है। उसी व मध्य साठव छत्र भी वहीं वहीं विराज रहे हैं। ये वार छत्र व साधु दिनमिन गण हैं और रचना करत समय कवि साक्षा गिनकर छत्र का विधान ता करती नही गुनगुनाता चलता है। गुजन मे उच्चारण लघु का दीर्घ हो जाना साधारण बात है। काष्माणदी में साठव का भी प्रयोग व्यापक पमाने पर हुआ है। पर जहाँ सर्ग म प्राय अधिकांश पद वीर म हो, वहीं बीच बीच म साठव छत्र का उपस्थिति काव्य के प्रवाह को रोकती है।

यह वीर हनु विजय मर्म म है। इसका अर्थ है 'काष्माणदी' का प्रथम जिला है। इसका अर्थ है 'काष्माणदी' का प्रथम जिला है। इसका अर्थ है 'काष्माणदी' का प्रथम जिला है।

में भी, बहने लगा, मैं रही' १६ "
 5 5 5

शाश्वत नम के गाना म । १४ "

यह ताटक का उदाहरण है विलु लावनी का प्रयोग इस छंद व अन्तर्गत बड़ व्यापक पैमाने पर प्रगादजी ने किया है। माय ही स्वप्न सग मे चार चरणों का ही छन्दविधान भी कवि ने किया है। यथा—

१६ मात्राए

१४ मात्राए

।। 5

इडा डालती थी वह आगव जिमकी कुम्भी व्यास नहीं,
 ।। 5
 तृपित कठ की, पी-पी कर भी, जिमम है विश्राम नहीं,
 वह बशवानर का ज्वाला मी, मचवेदिरा पर बठा,
 ।। 5
 सीमनस्य विम्बराता शीतल, जदता का कुछ भान नहीं।

इमम अद्द विश्राम १६ और पूरा १६+१४ मात्रा पर है। चरण का अत मगग से नहीं है इसलिये यह लावनी का दृष्टात भी है।

निर्वेद सर्ग मे ताटक छंद के अतगत चार पत्तियों को आठ पत्तिया म तीडकर लावनी ताटक की रचना का गई है। यहाँ निर्वेद सग से इसका उदाहरण प्रस्तुत किया जा रहा है—

उम दिन तो हम जान मवे थ—१६ मात्राए	} लावनी का
सुदर किमकी हैं कहते ।—१४ मात्राए	
तब पहचान सके, किमके हित—१६	} प्रथम चरण
प्राणी यह कुछ मुग्न सहन ।—१४	
जीवन कहता यौवन स 'कुछ—१६	} दूसरा चरण
देखा तून मतवाल ।—१४	
यौवन कहता 'सांस लिये चल—१६	} तीसरा चरण
कुछ अपना सबन पा ले ।—१४	

धागा, स्वप्न और निर्वेद मग म क्रमश ७१, ४४, १०३; उद ताटक एव लावनी के है।

शृगार—अद्दा सग म शृगार छंद का प्रयोग किया गया है। यह मात्रह मात्राया म छंद है। इसके आदि म प्राय ३+२ और अत म गुर लघु = ३ मात्राए रहती हैं। प्रमात्जी का प्रिय छंद है। इस छन्द म १६ मात्राए उपयुक्त मात्राक्रम स होती है। पूर छंद म चार पद हान है यथा—

।।। 5

प्रवृत्ति क यौवन वा शृगार

—१६ मात्राए

5 ।

करेंगे रभी न बामी फून,

। 5 5

मिर्गे व जावर अनि शाघ

5 ।

घाह उलुक है उनकी धून । — "

प्रमादजी ने इन छंद का अत्यन्त सिद्धहस्त उत्तम प्रयोग किया है और उत्तम अनरी सफलता भी खडा वाली व कवियों म अत य है। शृगार के छंद विधान म प्रसादजी ने आदि ३+२ के स्थान पर पाच मात्रा का शीघ्र प्रयोग किया है। अद्दा सर्ग म कुल ६३ छंद ह।

पदपादाकुलक—यह भी मात्रह मात्राया का छंद हुना है जिमम प्र यक पद म ४ चौबल होने है। ये चौबल पांच ढग व होने है—

55 ।।5, 5।।, ।।।। और ।5।

इह मानिक गण भी कहन ह। दशन मग मे पादाकुलक तथा पदरि का मन है। लजा तथा काम सर्ग म भी पादाकुलक है। लजा तथा काम सग के छंदा की संख्या ४७ ७ ६७ है।

सार छंद—यह २८ मात्राओं का यौगिक छंद है जिसमें प्रत्येक चरण १६ और १२ के क्रम से बनता है। अतः म कण्ड ५ रहता है। दो चरण का प्रयोग श्रुति-माधुर्य के लिये किया जाता है। किंतु एक में यदि गुण हो या दो लघु हो तब भी सार ही छंद बनता है। इस छंद का प्रयोग 'कर्म' मग (१२८ छंद) में प्रसादजा न किया है। यथा—

भरा बाल म बचन काम का १६ मात्राए
मन म नव अभिलाषा १२ ”
सग साधने मनु अतिरजित १६ ”
उमड रही थी भाषा १२ ”
ललव रही थी ललित लालसा १६ ”
मोम पान की प्यासी, १२ ”
जीवन के उस दीन विभव में १६ ”
जस बनी उदासा। १२ ”

मत्त सत्रैया—पदपादाकुलक की चर्चा पहले की जा चुका है। 'रहस्य' में ३२ मात्राए है। पदपादाकुलक के दो चरणों को एक चरण मानकर मत्त सबदा की रचना होता है। किंतु छ चरण न रख इसमें भी चरणों को चार पंक्ति में रखा गया है।

निराधार है किंतु ठडरना १६ मात्राए

5 5

हम दोनों का आज यही है १६ ”

नियति सब देखू न सुनू अब १६ ”

5 5

इसका अर्थ उपाय नहीं है। १६ ”

इसमें अतः म दानों गुण हैं। लघु गुण का उदाहरण इस प्रकार है—

भालिगन सी मधुर प्रेरणा १६ ”

1 5

छू लेती फिर सिहरन बनती १६ ”

नव झलझुपा की शीटा सा १६ ”

1 5

खुल जाती है फिर जा मुदती। १६ ”

अत्यंत अल्प मात्रा में ऐसे भी छंद मिलते हैं जिनके अंत में दोनो लघु हैं। यथा—

बह दलों रागाण्य है जो

।।

ऊया ने बडुव मा मुदर

छायामय कमनीय बनेवर

।।

भावमयी प्रतिमा का मंदिर।

इस कुछ लोग प्रसादजा का नया छंद भी मानते हैं और ऐसी कल्पना करते हैं कि ताटक के अंत में एक गुण जोड़कर कवि ने एक नया निजी छंद बनाया है। जो कुछ भी हो, यह छंद अत्यंत प्रभावशाली रूप में कवि ने 'रहस्य' मर्ग में प्रयुक्त किया है। 'रहस्य' में कुल ७७ छंद हैं।

आनंद छंद—आनंद सग म २८ मात्राओं का आनुवाला छंद प्रयोग में लाया गया है। यह आनंद छंद म ही लिखा गया है। इसमें १४ १४ मात्राओं पर विश्राम टूटा है और एक पद २८ मात्राओं का हुआ है। इसमें गतमयता रहती है। इसमें अतः म प्रायः दो लघु रहते हैं। कहीं कहीं दो मुखवाले या लघु मुखवाले पद भी आते हैं, यथा—

बलता था घोर धीर १४ मात्राए

।।

बह एक यात्रिया का दल ”

सरिता के रम्य पुलिन में ”

।।

गिरि पथ से ले निज सबल । ”

दा गुण का उदाहण इस प्रकार है—

कसा क्या शात तपोवन ”

5 5

विस्तृत बयो नहीं बताती ”

बालक ने कहा इडा से ”

५ ५

बहू बानी मुख गकुचाती । १४ मात्राए
इग छं न भत म लघु गुं न भी प्रयाग इग
सग म है । जय—

बहू अणनक लोचन अणने १४ मात्राए

। ५

पादाग्र विनारन करती

पथ प्रदर्शना गी चलना ,,

। ५

धीरे धीरे डग भरती ।

जहाँ भी दा गुं का विधान है वहाँ छं न
भ्राज और प्रवाह है अयथा शयि य
आ गया है । प्रसादजा का यह छं
भी अत्यंत मंजा हुआ है । 'आनन'
सग म ८० छं हैं ।

सवाई छं—प्रसादजी ने कामायनी के इडा
सग म गीता का प्रयोग किया है । ये
गीत टेकवाली पदति के हैं । इनमें
अनेक गीत अयत नाए एव भावपूर्ण
तथा मधुर बन गडे हैं । इन गाता
की अपना एक शली है । आदि और
अत के टेका को मिला दन से का य
का एक पक्ति बन जाता है । ये प
६ पक्तिमें के हैं किंतु दोनों टका का
एक चरण मान लिया जाय तो आठ
पक्तियाँ बनता हैं जिसमें टेक का प्रथम
अर्द्धाली और प्रथम दो पक्तिया और
टेक का अंतिम अर्द्धाली और अंतिम
पक्ति में एक तुक रहता है । यहा तुक
पद की तासरी पक्ति में भी रहता है
और चौथी पक्ति का तुक पांचवी में
और पाचवी का छंटा में रहता है ।
इन प्रकार प्रथम, द्वितीय, तृतीय और
अष्टम तथा नवम पक्ति में एक तुक
और चौथा पाचवी में पृथक् तथा
छंटा सातवी में एक पृथक् तुक रहता
है । अर्द्धाना सालट मात्राए का तथा

अय पद ३० मात्राए का हान है ।
इम छं न, त्रिमम यह गान त्रिना
गया है समान गवया या गवाई
छं भा बहू है । इग गान में प्रथम,
त्रितीय, मृतीय, चतुथ, पंचम, अष्टम
और नवम चरणों के अत में गुं लघु
का विधान है और छं और सातवें में
लघु गुं का । वहाँ कहीं छंटा मानवें में
गुं-गुं का भी विधान है । ममान
सवया में पं पातातुनक का दा चरणा
का माग में तथा टेकविधान से इडा
की इस गीतपदति का निर्माण कवि
न किया है । यथा—

५ ।

बहू प्रम न रह जाए पुनीत ।

१६ मात्राए

५।

अपने स्वार्थों से आवृत्त हा मगल रहस्य सकुचे सर्भीत ३२ ,,

५।

नारी सखति हो विरह भरा, गाते ही बीत करण गीत ,, ,,

५।

आकानाजलनिधि की सीमा हो क्षितिज निराशा सत्ता रक्त ,,

५।

तुम राग विरग करा सबसे अपने को कर शतश विभक्त ,,

५।

मस्तिक हृत्प के हो विरह दोनो में हो सद्भाव नहीं ,,

५।

वह चलने का जब कह कही तब हृदय निकल चल जाय कहीं ,,

५।

रोकर बीते सब वर्तमान क्षण सुंदर सपना हा अतात ,,

५।

पेंगो में झूठ हार जात । १६ मात्राए

इडा में कुल गीत ३१ है । कामायनी में इस
प्रकार विविध छंटा की संख्या १०६१ है ।

इस प्रकार प्रसादजी ने कामायनी में बारह
प्रकार के छंटा का प्रयोग किया है ।
इन छंटा का प्रयोग उन्होंने अपना

कविताप्रा मे पहन भी किया था ।
इन छदा पर बराबर अम्याम कर
इनका उहोंने मम समझा था और
फस भावों व लिये कीन से छद अयिक
उपयुक्त और सरस हगि इमवे अनु
सधान म उनका पूरा वाग्यजीवन ही
लोन था ।

इम तपस्या का सिद्धि से कामायनी के छद
विभूतिमय है । इन छदों पर सामायत
उनका अयिकार मा दीखता है त्रितु
भावाभियक्ति की सत सहज सानमा
के कारण कही वही छदभग का दोष
भी कामायनी मे है । एष स्थन शिविल
स लगत है । कितु इम शविय का
वारण कवि की सामध्यहानता नही,
काव्य का आत्मा—भाव क रक्षण की
वृत्ति है । निषचय ही प्रसादजी ने
कामायनी म छद्म पर उनके समल
द्वारा सकन शिष प्रयास किया है और
भावाभियक्ति व लिये उपयुक्त छदा
था चयन भा । इममे उह मफनता
मिनो है । उनका सफलता इम बात
स ही परली जा सकता है कि अतर
क सूम से सूम और कोमन स
कोमलतम तथा भयकर से भयकर
भावतत्वा की अभियक्ति देने म वे
छद्म सकन सिद्ध हुए है ।

कामायनी मे प्रकृति—आपावाद के प्रतिष्ठापक
महाकवि प्रमा न प्रकृति म विश्वात्मा
का मीदर्य देखा था । प्रकृति सीला
की विश्वसनशाल जीवनकला से उनका
परिचय था । प्रकृति और अतर की
अद्वैतता की उह सहजानुभूति था ।
कामायनी मे प्रकृति का याग निम्नांकित
रूपा म लिया गया है—

१—प्रकृति शक्ति और उसका महिमावदना ।

२—उद्दीपन के रूप म ।

३—सवदनशील सहचरा के रूप म ।

४—वातावरण की प्रकाशित करनेवाली
पृष्ठभूमि के रूप म ।

५—प्रतीक रूप म ।

प्रकृति का धम जीवन की गति देनेवाला है ।

प्रकृति व प्रतिकूल आचरण से विध्वम
का सृष्टि होनी है क्योंकि प्रकृति
परममनुष्यमूला है । प्रकृति के नियम
जीवन का प्रभावित करनेवाले हैं ।
इन मायनाप्रा के आधार पर प्रसादजी
न कामायनी मे प्रकृति की अवधारणा
का है । कामायनी के चिन्ता मय म
प्रकृति की महिमा का आस्थान है ।
यह आस्थान प्रकृति की शक्ति के
सबध म मनु की अनुभूति की अभि
व्यक्ति दता है । देवसृष्टि के विध्वम के
पश्चात् प्रकृति से सबध म उनके अवशेष
मनु के निम्नलिखित प्रकृति सबधी
अनुभूत भाव महत्व रखन है—

प्रकृति रही दुर्जय, पराजित,
हम सब थे भूले मद म ।
भाने ये हूँ तिरते बवल,
सब विनासिता क नद म ॥

×

×

×

शक्ति रहा, ही शक्ति, प्रकृति थी
पदतल मे विनम्र विभ्रात,
कपती धरणा उन चरणा से
हाकर प्रतिदिन ही आत्रात ।

प्रकृति के सबध म चिन्ता मय म प्रकट किया

गया यह चिन्तन अपना गूँ महत्व
रखता है । प्रकृति के साथ देवसृष्टि
के आयाय तथा उमे पदात्रात करने
का क्या परिणाम हो सकता है,
भुक्तभागी मनु का स्वयं स्वीकार करना
पडता है । प्रकृति की दुर्जय जीवनी
शक्ति का उल्लेख भी प्रसादजी ने
कामायनी मे किया है तथा प्रकृति की
जीवित शक्ति क रूप मे भी प्रकट
किया है । मनु ने भी यह स्वीकार

कर लिया है वि प्रवृत्ति जिसे देवो का शक्ति ने पटदलित कर रखा था, अजेय शक्ति है और जब भी इस दुर्जेय शक्ति को घबस्त करने का जहाँ जहाँ भी बुद्धिमूलक शोषण स्वायत्त के कारण हुआ है वहाँ वहाँ कवि ने प्रवृत्ति शक्ति के प्रति होनेवाले अस्वयम्बु को उद्घाटित किया है। यथा—

प्रवृत्ति शक्ति तुमन यत्रो से छीनी ।
शोषण कर जीवनी बना दी जर्जर भीनी ।

इस प्रकार देला जाय तो प्रवृत्ति शक्ति ने परम पुत्रारी के रूप में कामायनी का कवि प्रकट होता है। साथ ही उसने कामायनी में जिस शक्ति का परिचय दिया है वह शक्ति भी प्रवृत्ति के नियमों से संचालित है। कामायनी में प्रवृत्ति का यह रूप अपने में सहज किन्तु शक्ति शाली ढंग से प्रकट हुआ है।

प्रवृत्ति शक्ति या आत्मा की अभिव्यक्ति है। ऋग्वेदिक ऋषियोंने जब प्रवृत्ति में शक्ति की लाला का दशन किया। उसका चित्रण एवं परीक्षण करने पर वे इस धारणा पर पहुँचे कि प्रवृत्ति की शक्ति एवं ही परमपुरुष की प्रभा का धारि रूप है। प्रवृत्तिमोक्ष पर विमुक्त हो आह्लादविरामित नाच उठनेवाली शोषणितनी प्रतिभा में समस्त प्रवृत्ति सजीव और शक्तिरूपी है। उसके द्वारा मोक्षप्रियता और मोक्षानुराग का सयानुभूति उमग हुआ था। परमपुरुष का प्रवृत्ति में व्याप्त इस आश्चर्य विद्या का ज्ञान कामायनी का प्रवृत्तिरक्षण का आधार है।

कामायनी में प्रवृत्ति का दूसरा रूप उद्घाटन का है। जहाँ प्रमात्रा में प्रवृत्ति का भावार्थ का रूप में चित्रित किया है यहाँ पात्रों का मनोभाव में प्रवृत्ति का सादृश्य स्थापित कराया गया है।

मनोशा से सादृश्य उपस्थित करवाने वाले चित्रों की कामायनी में बहुलता है। कामायनी के पूर्व भा प्रमादजी ने यह कार्य बड़ी कुशलता के साथ किया था। कामायनी से उसके एक अग्ररूप को रूप भी यहाँ उपस्थित करना अप्रामाणिक न होगा—

सृष्टि हमने लगी धाँखों में खिला अनुराग,
राग रजित चन्द्रिका थी, उडा सुमन पराग ।
और हमता था अतिथि मनु का पकड़ कर हाथ,
चले दोनों, स्वप्न पथ में स्नेह सबल साथ ।
दखदाख निजुज गह्वर सख सुषु में स्नात,
सब मनात एक उत्सव जागरण की रात ।

ये उदाहरण वासना सर्ग के अग्र हैं, यहाँ प्रवृत्ति द्वारा उद्दीपन का काम कवि ने अत्यन्त सफलतापूर्वक किया है। स्थान स्थान पर कामायनी में ऐसे मंदिर और सुंदर स्थल हैं।

कामायनी में प्रवृत्ति का प्रयोग सवेदनशील महचरी के रूप में भी किया गया है। कवि ने प्रवृत्ति के द्वारा मनोभावों का सौन्दर्य तथा परिस्थितियों का सवेत प्रवृत्ति द्वारा स्थान स्थान पर दिया है। साथ ही प्रवृत्ति के प्रताको द्वारा, उनके उद्गारा द्वारा उद्दीपन भावा को तथा वातावरण को सरस और सजीव बनाया है। कवि ने प्रवृत्ति के सहयोग में मोक्ष का तथा मनोभावों का ऐसा रूप खडा किया है जो अस्वयम्बु दुर्लभ सा है। इस प्रवृत्ति चित्र में प्रवृत्ति की भावना उसका रूप और वातावरण निर्माण में अमीम शक्ति के रूप में सट्कर्मिणी सा प्रकट हुई है। लज्जा का यह अंग इस तथ्य का प्रमाण है—

नयना का नीनम की धाटा
जिम रस बन स छा जाती हा ।
वह गौर वि जिमम अंतर की,
गीतन्ता ठडक पाता हा ।

हिल्लोल भरा हो ऋतुपति का,
गोधूली की सी ममता हो ।
जागरण प्रातसा हसता हो,
जिसमे मध्याह्न निखरता हो ।
हो चकित निवन झाई सहसा,
जो अपने प्राची के घर से ।
उम नवल चद्रिका के पिछने,
जो मानस की लहरा पर स ।
फूटा की कामल पल्लवियाँ,
बिखरें जिनके अभिनदन म ।

भादि घादि

यहाँ पर प्रकृति के उपादानो से लज्जा जैसे सलज्ज भाव का जीवत स्वहृष एटा करने म कवि ने प्रकृति का उपयोग प्रत्यधिक मावधानी स किया है और लज्जा का रूपाकन तथा अतमृचित्र बड़ी बाराक तुलिका स सजाव और सवाक किया है । यदि प्रकृति तत्त्वा ने साहचर्य को हटाकर यह रूप विधान किया जाता ता सरसता की निष्पत्ति इतनी मूर्तिमत्ता व साथ मभव न हो सकती । इन तरह का प्रयोग कामायनी म स्थान-स्थान पर मिलया ।

भाव अंतरवासी हात है । अतर अदृश्य होना है, उसका साक्षात्कार अनुभूतिसापेक्ष है । ऐम अतस तत्त्वो को मूर्तित करने के लिय भावो ने द्वारा पडनेवाले बाह्य प्रभावो का दशन प्रकृति के गर्भार एवाप्र निरीक्षण द्वारा ही मभव है । ऐमा अनुभूति की अभिव्यक्ति का सहज आभार भी प्रकृति हाँ हाँ सकता है क्योंकि महृदय हमका दशन सरलता से कर सकत हैं । प्रसादजी ने इस सत्य का अनुभव, चतय प्रकृति में जिनकी भगिमा प्रत्यक भाव के मूर्त रूप का प्रतीक है, किया । इनलिये भाव तत्त्वो को जीवित एव भाजस्वी रूप में उप स्थित करने मे वे सफल रहे ।

कामायनी मे वातावरण का आभास देने वाली तथा कथा क भावी सकत को प्रदर्शित करनेवाला काव्य शक्ति के रूप मे भी प्रकृति का चतय रूप में प्रयोग हुआ है । यथा कामायनी का यह अंश—

उपा सुनहल तार बरसातो,
जय लाम्पी सी उदित हुई
उधर पराजित काल राशि भी,
जल म अतनिहित हुई ।

× × ×

निष्ठु सेज पर घरा बधू अर,
तनिक सकुचित बठा नी
प्रलय निशा की हलचल स्मृति म
मान किए सी ऐंडी सा ।

प्रसादजी ने प्रकृति क याग स रूपक और उपमा भादि अलंकारा का मुदर विधान किया है तथा कोमल वातावरण से लेकर ध्वम लीला तक के चित्र प्रकृति योग द्वारा अत्यंत सफ़रतापूर्वक मूर्तित किए हैं । वन, पवत नदी निभर, प्रपात, सव्या, उपा, प्रभात, वसत, शिशिर, प्राप्न, वपा, आकाश, धरा, जावजतु पुष्प पादप, प्राय प्रकृति के सभी उपादान कामायनी म प्रस्तुत हैं । य वएण अत्यंत जीवत है तथा उनका मानवाकरण भी स्थान स्थान पर मिलेगा । हिमानय का वएण अत्यंत उदात्त रूप म हुआ है और उससे सबद्ध अय प्राकृतिक सपदाओं का भा । 'कामायनी' मे प्रसादजी ने प्रकृति क निम्नांकित तत्त्वा, स्थितिया एव उपादानो का वएण किया है ।

ऋतुएँ—प्रीप्ननिदाध (रहस्य) पतभुड (इडा, आशा, स्वप्न, निवेद, रहस्य), पावस (चिंता, इडा, स्वप्न, निवेद, दशन), बरसात (निवेद); मधुच्छु (स्वप्न) वपा (आशा, वासना,

स्वप्न, निर्वेद, रहस्य, आनन्द), वसत (श्रद्धा, काम), ऋतुपति (काम लज्जा), शरद (आशा, रहस्य, निर्वेद) शिशिर (स्वप्न)।

पत्नार्थ—अगर (निर्वेद) अमरबलि (रहस्य), इदीवर (काम, स्वप्न) कज (इडा) कदव (वासना, लज्जा, आनन्द निर्वेद), कमल (श्रद्धा, वासना इडा, आनन्द) केनकी (ईर्ष्या) चदन (लज्जा), छुई मुई (कर्म), जलज (स्वप्न), ताड (कर्म), तामरस (वासना, स्वप्न), देवदा (चिता वासना, स्वप्न, आनन्द) नलिन (चिता, इडा) नाग केसर (स्वप्न), पारिजात (निर्वेद) नोद्र (स्वप्न), (चिता), वेणु (स्वप्न निर्वेद) वेतसा (ईर्ष्या) शतदल (निर्वेद, स्वप्न) शिरीष (स्वप्न) शेकाला (निर्वेद), सरोज (आशा) साल (श्रद्धा) सामलता (कर्म और आनन्द), सरोरह (स्वप्न)।

जीवजतु—कच्छप (चिता और श्रद्धा) कस्तूरी मृग (ईर्ष्या), कुजर कलभ (रहस्य) केहरी (आनन्द), काक (वासना, इडा) काकिल (श्रद्धा, स्वप्न) कायल (काम), गज (रहस्य), चक्रवाल (कर्म इडा रहस्य) चातका (निर्वेद), जुगनू (स्वप्न दर्शन) भिल्ली (स्वप्न), तिमिगल (चिता) तुरग (आशा) पपाहा (स्वप्न) पिक (लज्जा इडा), फणा (कर्म) मस्य (चिता) मधुकर (काम) मधुकरी (आशा श्रद्धा, वासना) मधुप (चिता, स्वप्न निर्वेद ध्यान), मराल (दान), मराना (स्वप्न) मान (चिता इडा), मृग (कर्म ईर्ष्या स्वप्न) वृष (ध्यान) वृषभ (ध्यान) व्यान, व्याना (चिता)

शलभ (स्वप्न), मीपी (निर्वेद) हम (आनन्द)।

विप्रिध—बितरी (आनन्द) गधव (श्रद्धा), यायावर (सर्धप)। अरणाचल (स्वप्न निर्वेद), उत्तरगिरि (चिता, आनन्द), कालिदी (इर्ष्या, इडा), भूमा (श्रद्धा), मरत (आनन्द) मिन (आशा, कर्म), राहु (दर्शन)।

अनक पत्नार्थ एव तत्त्वो के पर्यायी शब्दा का उपयोग उपयुक्त सूची से स्पष्ट है पर वे शब्द प्रायः अलग अलग अर्थच्छाया रखते हैं जो प्रसाद के गंभीर प्रवृत्ति दशन के प्रतीक हैं।

प्रवृत्ति के तत्त्वो से प्रताकविधान प्रसादजी ने किया है। प्रतीकविधान का कल्पना के मूल में रूपक कथा है। छायावाद का यथार्थ पन प्रतीक के लिए प्रवृत्ति का बरण किया। प्रवृत्ति के तत्व अधिक जाने गह्वराने हैं और उनका दशन सबमुम्भ है। साथ ही काय मे प्रवृत्ति का उपयोग इस धरता पर सटना वर्षों से होता चला आया है इनलिये प्रताक सचयन के लिये प्रवृत्ति की निधि सुपरिचित एव हृदयग्राही है। प्रमाणान्न अपने पूर्ववर्ता काय की भाँति कामायना में भा प्रवृत्ति तत्त्वो से प्रतानयाजना की है।

आकाश उपा, कर्मन किरण क्षितिज निदाप जूगनू भम्भा, तम तार तुष्टिकण नक्षत्र, नलिना, पतभर प्रभात, विजला, मधुकर मकरद मधु, मलयानिन, वषा, शलभ शिशिर मीरभ द्विमात्र्य आदि कामायना में व्यवहृत प्रवृत्तिप्रताक हैं।

कामायना में प्रमाणान्न ने प्रवृत्ति में जितना महामयना कथा का प्रभावित करने में आ है उतनी जायमी के अनिर्दिष्ट और

हिंदी के किसी कवि ने प्रबंध काव्य में नहीं ली है। किंतु दोनों क प्रवृत्ति प्रयोग में अंतर है। जायसा की प्रवृत्ति, वातावरण के अनुसार काटछाट दी जाती है या उसका महज रूप उपस्थित न करके उसका आवश्यकतानुसार अतिरिक्त वर्णन किया जाता है। किंतु कामायनी का प्रवृत्ति अपने में सहज मिश्र है। उससे इस प्रकार तत्व चयन किया गया है कि प्रबंध के भीतर सहजता के साथ वह अपनी अग्रतिम मौखिक शक्ति प्राणवायु ही प्रकट करती है। इस संबंध में निरालाजी की निम्नलिखित मान्यता संबंधी उचित है—

‘कामायनी में प्रवृत्ति का यह रूप अपना मूल रखता है तथा अपने में अत्यंत गौरवशाला भी है। कामायनी का प्रवृत्ति वातावरण के अनुसार अपना शक्ति का सजाजन, प्रस्फुटन और अभिव्यक्ति करने में अपना शक्ति की स्थापना करता है।’

इस प्रकार प्रसादजी की कामायनी प्रवृत्तिमयी है और प्रवृत्ति ने कामायनी के मम उद्घाटन में ओजस्वी और सराहनीय योग किया है।

कामायनी में रस—कामायनी भावनाप्रधान काव्य है। उसमें शिव मक-पवाद की स्थापना है। वह हिंदी भाषा में उद्देश्यप्रधान छंदबद्ध भावानुभूतवाली विशिष्ट रचना है। यद्यपि उसमें प्राय सभी रस मिल जाते हैं तो भी मूलतः शृंगार और शान्त रस का उमम परिपाक है।

जहाँ तक रस का प्रश्न है प्रसादजी के इस प्रयत्न में रसनिरूपण का दृष्टि से परिपाक का विषय व्यवस्था नहीं है। लेकिन प्राय सभी प्रमुख रस इतस्तत मिल

जायेंगे। उनमें कुछ रसों का परिपाक भी इसमें दीखेगा।

शृंगार रस—कामायनी में शृंगार रस का पूरा परिपाक हुआ है और कामायनी के द्वारा शृंगार की मनमोहक प्रतिष्ठा हुई है। शृंगार के स्थायी भाव रति से कामायनी का नायिका का गौरव संबंध है तथा वह काम की पुत्री भी है। इस दृष्टि से कामायनी का नायिका यह कामवाला स्वयं रस के स्थायी निभर के रूप में यहाँ प्रकटी है। श्रद्धा स्वकीया है। यद्यपि वह रूप मयी है तो भी वह विनय और आज्ञा से युक्त एसी सद्गृहिणी भी है जस शिव की शक्ति। रूप सौंदर्य के साथ अंतर के सौंदर्य का योग नायिका की और भी रसोद्भव बना देता है और एसी नायिका की छवि हृदयमोहिनी भी होती है जिस दरकर सहृदय रसमग्न हो उठे। मुग्धा के रूप में वह कामायनी में अवतरित हुई है। नवयौवन की प्रथम उदात्त छटा, काम के विलास की प्रथमोद्गात कामना रति में सकाचवसी, मृदु मानवती और समधिक लजावती के रूप में उसका शृंगार किया रूप प्रस्फुटित हुआ है। उसका मुग्धा का रूप अत्यंत आज्ञाविलसित है। उसके सौंदर्य में शोभा, कांति, दासि, माधुर्य, प्रगल्भता तथा मुग्धा है। य उसके सहज प्रवृत्त अत्रकरण हैं जो उस और सुंदर बनाने में महायुक्त सिद्ध होत हैं। श्रद्धा का सौंदर्य केवल सौंदर्य का चित्र मात्र नहीं, वह जीवत भी है। उसकी जीवनी शक्ति का स्वभावसिद्ध वृत्ति साध्य तत्व—यथा लीला, विलास वगरचना, मद, लालित्य, मुग्धाता, कुतूहल, आदि—अधिक तजस्वी बना देते हैं। श्रद्धा के रूप में यौवन है, यौवन में लालित्य है और इस

पातित्य में उगव गीर्ण का नाम है। इगव मन् का शिपति हानि है। मन् धंग का धगङ्ग धाभूतणु है त्रिगर्भ नाम का शक्ति हानि है। स्मरविनाग की गोभा गाव ही अद्वा म नही उगवर्भ शक्ति की प्रशक्ति मधुर दीपतिगा भी है। अद्वा क रूप क ह्य मापण्य म रमणीय माधुय है। उगवे रूप माधुय से जहाँ पिय है वहीं निर्भयता है, इनतिय उगवा गीर्ण उगार भी है। रूपशतापा म युग हाने पर भी यह धषधन मनावृत्ति का रमणी है। अद्वा का यह धांतर बाह्यरूप गीर्ण धग वश तथा धधन की लाना स धीर भी काम्य हा उछा है। उगवा ह्य धगनावा म इद्रियध्यापारा का विनङ्गण विलास है। उगवी वग रचना गहज हात हूप भा धमधुन धग क प्रश्रन द्वारा उगवा शक्ति का विलासलगित बना देता है। उगवा धद धगदशन मात्र हा नही उगवी धदप्रस्युटित मुस्कराट्ट ह्य की बाँबी वाणी भी कम धाकपव नही। उगवा मद उसकी मुग्धता उगवा धद लज्जाशीलता सभा उगवे लालिय क प्रसाधन है धीर विहार के लिये सदशाधार सौंदर्य का प्रवृत्ति एव दश बाल उद्दीप्त करते है। कामायना की प्रवृत्ति उमक धालवन रूप की सदा सहचरी एव शक्ति रहा है। शृगार क अनुभवों एव सचारी भावा का वणन भा कामायनी मे प्रत्यत मुन्त्र दग स हूमा है जा अद्वा की मर्यादा क अनुरूप है। उमम स्मृति, मति धावग, धलमता, मोह, लज्जा, धृत चपलता धादि अत्यत मार्मिक रूप स चित्रित है।

शृगार के सयोग एव विप्रलभ दोनों रूप कामायना मे विलसित है। उल्लट धनुराग के रहत हुए भी अद्वा का

उद्वा कर मनु एक मान प्रम ईर्ष्या म पतारियत हा जाता है धीर अद्वा को त्याग टा है। मन् मिय न रिम रिम शृगार की है। मनु ता प्रथम अगन म हा मुरराग म पादिन हो उछा है धीर शिागर्भ कामीनगाश्रुति क तिय अद्वा क गी र्ण मुग्धभाव का धमिताया म विनिग ही नही हा। उगवा स्मृति उम उद्ग धीर उपा" का स्मृति बर्ती है। मनु का यह विधि मभाग मुग पाकर हा धमयावा श्रुति का बाध करता है किनु उनका भाग कामना मव गव बना रहता है अब तर मारमन मगर में धावन हा मूर्धन नही हा जा। काम का धनृति का यह धाग हा धनतागत्या अद्वागति क धधनवन म उनका धाद धान" बाध करता है किनु उनका काम क प्रति धारा धाधरण उनक विप्रलभ भी धमया का मुन्त्र परिषय दता है।

अद्वा का मर्यामित उगार रूप जहाँ नाराव का दृष्टि स उगवा जातमता का धीतर है वही वद् प्रारभ म मनु क विधोग का कारण भा बनता है, भल ही मनु की ईर्ष्याजिय भाति इमक मूव म हा। स्वीया का शृगार अधिध मर्यान्त होता है। उसका प्रत्येक कार्य गरिमामद्धित रहता है कयाकि लोकाज का भव धीर अधिधार का निश्चितता उसम रहता है। अद्वा क विधोग शृगार मे धाभलाया, विता, स्मृति, स्वप्न, उद्ग धादि सभा बुध है जा विरह क गहज उपागन है।

कामायनी की महनायिका इडा है। जनपद कल्याणा की भाति मामा या हाने हुए भा रति का उमस सर्वथा सबध नही। रति के धाकपण स हान नारा सौन्द्य का धागार नही वन सक्ती विवेक का विलास भल बने। बुद्धि का प्रतिवादिता

भावुकता की सतत विरोधिनी है। भावुकता के अभाव में सौंदर्य कथ का प्रसाधन होना है। उमम लीन करने या होने का क्षमता नहीं रहती। इस नियम मनु का भल ही उसके प्रति पुरुष मुनम एकापा भानवण हो किंतु इडा का विवक मनु व मार्ग म बायक होता है। इननिये इडा शृ गार नहीं अय रसो व उद्वग का कारण बनता है।

कामायनी व नायक मनु हैं। वे धीरोन्मत्त और उद्वत रूप मे कामायनी म उपस्थित है। उनका वृत्तिल धारलनित नहीं। वे रूपशाना रति विलाम-त्रीडा व अत्यत अभेद उपासक व रूप में प्रारभ म कामायनी में उपस्थित हैं। श्रद्धाहीन होने पर कामातुर अधिकार प्रवृत्त मनु इडा का भी अधिकृत करने के यत्न मे अमफल होने पर सधप करते हैं और वह भी एक अजेय याथा की भांति नहीं, कामध्यामसत आनुर पुरुष की भांति। यद्यपि श्रद्धा के माग स उद्व अखड आनद की प्राप्ति हाता है ता भी उनका पीछ पन्नात नहीं श्रद्धाश्रिन है।

शृगार के दानो पक्षा का पूग परिपाक कामायनी म हुआ है।

सभोग शृ गार—जहाँ परस्पर अनुरक्त विलामी नायक और नायिका दशन, स्पश आदि का मुक्तभोग करत हैं वहीं सभोग शृगार होता है। कामायनी के पूवभाग मे प्रचुरता व साथ इसका आख्यान हुआ है। काव्य के नायक और नायिका ने इस प्रेमालाप में सभोग शृगार का परिपाक दखा जा सकता है—

छष्टि हमने लगा आँखा मे खिला अनुराग,
राग रजित अद्रिका थी उडा मुमन पराग।
और हसता था अतिथि मनु का पकड कर हाथ,
चले दोनों स्वप्न पथ मे स्नेह सबल साथ।

देवदा निवृज गह्वर सब मुषा मे स्नात।
सब मनात एक उलव जागरण का रा।
भा रही थी मंदिर भीनी माधवी की गध,
पवन के धन धिरे पडते थ बने मधु भय।

× × ×

वहा मनु ने 'तुम्ह देखा अतिथि। कितनी बार,
किंतु इतने तो न थे तुम दर छवि के भार।
पूव जम बहूँ वि या स्पृहणीय मधुर अतीत ;
गूजत जब मंदिर धन म वासता के गात।'

इसके चुबन आलिंगनादि बहुत स भेद हात हैं, और उनम से अनेक का हृदयग्राही निदर्शन प्रस्तुत काव्य मे हुआ है। इनम उदीपन विभाव के रूप म ऋतुभा, चटोन्म, प्रभात, यामिनी आदि का मनोमोहक चित्रण हुआ है।

विप्रलाभ शृ गार—यह वहाँ होता है जहाँ अनुराग प्रगाढ हो किंतु प्रिय समागम वारण विरोध से न हो सके। प्रकाशवार ने इसने—अभिनापरेतुक, विरहहेतुक, ईर्ष्याहेतुक, प्रवासहेतुक, और आप-हेतुक—पाच प्रकार माने हैं। वपणवार ने इनके पूर्वराग, मान, प्रवास और वरण—चार भेद किये हैं। इन चारों म चतुर्थ की स्मिति इस यथार्थवादी युग के काव्य मे सम्भव नहीं। शेष तीना का प्रतिष्ठा कामायनी म मुचास रूप स हुई है। उह हम सक्षप म क्रमश देरेंगे।

पूर्वराग—गुणश्रवण अथवा साक्षात्कार द्वारा परस्पर आसक्त नायक और नायिका के समिलन स पहल की स्थिति का नाम 'पूर्वराग' है। यथा—

या सपणम म ग्रहण का
एर मुनिहित भाव,
यो प्रगति, पर अडा रहता था
सतत अटकाव।
चल रहा था विजन पथ पर
मधुर जीवन खेल,

ना अपरिचित न निपति
भय चाहती थी मन ।

मनु और श्रद्धा एक दूसरे के प्रति प्रणयवा
घाट्ट हा चुत है फिर भा घभा उन
कीर दूरा बना हुई है । अभिनाय
तिना, स्मृति, गुणरया उदग घानि
वामनाम्रा म स मुद्र या मुद्र निमान
वाय म हुमा है ।

मान—श्रीय जो प्रणयमभय या ईष्यामभय
हाना है मान कहताता है । यं तायव
और तायिवा दाना म परिस्थितियग
उपन्न हाना है । यह कामायना
म भा है ।

मनु का ईष्यासभय मान—श्रद्धा ने एक पशु पाल
रखा था । यह उमस भ्रतयत स्नेह
रखती था उस टुलराती था उमपर
प्रसन्न हा हाथ फेरती था । अपने का
श्रद्धा के प्रेम का एवाधिकारी समझी
वाले मनु स यह दया नहीं जा सकता
था । वह इध्या स दग्ध हो गया था ।
वाद म श्रद्धा ने उस मनाया था ।
दलिए—

आह यह पशु और
इतना सरल मुद्र स्नेह ।
पल रहे मेरे दिय
जा श्रद्ध से इस गेह ।
मैं ? कहा मैं ? ले लिया करते
सभी निज भाग
और देते फेंक मरा प्राण्य
तुच्छ विराग ।

श्रद्धा उनको सुच मन स्थिति का आभास
पाकर उह प्रवृत्तिस्य करती है—

कहा, 'क्या तुम अभी
बठे ही रहे घर ध्यान,
देखना हैं आख मुद्र
सुनते रहे कुछ कान
मन कही यह क्या हुआ है ?
आज कसा रग ?'

तन हृया वण हत ईष्यां का
रिमान उमग ।

और सहजाने तया कर कमान
कामन कान,
एव कर यह एव गुणमा
मनु हृए मुद्र गान ।

श्रद्धा का भा मान का एवा म दया जाता है—
कामायनी जया या मुद्र कुछ
गारर गव जनाता,
मनोभाय घारर म्वय हा
रहा विगन्ना बनना ।
जिमव हृय मना ममाप है
यो दूर जाता है,
और श्रीय हाना उम पर हा
जिमम कुछ नाता है

× × ×

मनुनय बागी म श्रांता म
उपालभ की छामा,
वहने तग श्रेरे मह कमी
मानवता का माया ।'

प्रयास—नायविनेप स शापवण अथवा मभ्रम स
नायन के अय देश म चल जान की
प्रवाम नामक विप्रनभ कहन हैं । मनु
जब श्रद्धा का भावा पुत्र ने प्रति प्रमा
विषय देखने हैं तव एष्ट हारर
सारस्वत प्रदेश म चले जाते है । उनका
यह परदशगमन सभ्रम (भय) वश
हुआ है कि श्रद्धा का प्रेम अब मुष्पर
नहीं रहा । यह प्रवास विप्रलभ की
स्थिति है । इस विरह दशा मे श्रद्धा के
शरीर और वस्त्र मे मलिनता एक बेला
वाला मिर नि श्वास उच्छ्वास रोदन
भूमिपतन आदि प्रस्तुत काय मे यथा
स्थान मुदरता के साथ चित्रित हुए हैं—
'अरे बता दो मुझे दया कर
कहाँ प्रवासी है मेरा ?
उसी बावत से मिलने का
बाल रही हैं मैं केरा ।

रूठ गया था अर्पणनेपन मे
अपना सक्ती न उमका में,
वह ता मरा अर्पणा ही था
भना मनाती किसका में ।
वहा भूत अब शूल सदृश हो
साल रही उर में मेर,
कम पाऊगी उमका में
बोर्ड आकर वह दे र ।

सताप— किंतु विरहिणी के जीवन म
एक घटी विश्राम नही,

नि रयाम—तृण गुमा से रामाचित नग
मुनत उस दुख की गाथा,
श्रद्धा की सूखी सगों म मिलकर
जा स्वर भरत ये ।

आँसू—किन चरणों को धायेंगे
जा अश्रु प्रलय के पार बह ।

इन प्रकार स्पष्ट है कि प्रस्तुत काय मे शृंगार
क दोनों पक्षों का सुदर और पुष्ट
संयोजन हुआ है ।

कहने का आवश्यकता नहीं कि इस काव्य का
अनाधिक भाग शृंगार रस से संपूर्ण है
और वह उत्तराव मे अवकाशाभास के
कारण अग्री रम हान होते रह गया
है । इसका संचारियों की याचना महज
दग म काव्य म पा जाता है । जसा
कि पहले कहा जा चुका है, कानानुसार
कण्य विप्रनभ के लिय काव्य म सवधा
अनवकाश है । वह प्रवास तक ही
संमित है और सस्त्रुत के भा अविनाश
काव्या म (काश्वरा को छोड़कर)
उसको स्थान नहीं मिला है ।

अब हम प्रसंगप्राप्त अर्थ रसा का इस काव्य
म परिवेश म अव्ययन करेंगे ।

इम शृंगार से कामायनी म अर्थ रसो का
निष्पत्ति होती है—नादसत्य वीर,
कल्प और शत रस इया शृंगार से
कामायनी म उद्भूत है ।

भावों के परस्पर घात प्रतिघात की सफल
सहज अभिव्यक्ति से रस की रचना
होता है । मनु क प्रति श्रद्धा का संयोग
जहाँ उमकी कामतृप्ति का माधन बनता
है वहीं उसका उमके मभोग की घाती
मनुज व प्रति श्रद्धा का प्रेम उसम ईर्ष्या
की सृष्टि करता है और संयोग
का वियोग मे परिणत कर देता है ।
वियोग का यह मून कारण अर्पणी
वृत्ति के प्रति स्वार्थांध अमहत्प्रियुता
की यह स्थिति भी रसमयी है क्योंकि
नारी की फनदा प्रवृत्त शक्ति मातृत्व
की ममता का जो जीव सृष्टि का
साधारण धर्म है, अभि यक्त करती है ।
इसका वात्म्य की निष्पत्ति होती है ।
कामायनी मे वात्म्य का दशन भी
कराया गया है ।

यह साहित्य म ग्रहण किया गया दसवाँ रस
है । इसका स्थायी भाव वात्म्य स्नेह
होता है । श्रद्धा मे मातृत्व और पुत्र के
प्रति स्वभावमिद स्नेह का महज दशन
कराया गया है और मनुजकुमार
इम मातृ स्नेह का आनवन है । उमकी
क्रीडा, चेष्टा परग और आतिगन
आदि का स्नेहमय रूप उपस्थित किया
गया है ।

प्रेम जब अर्पणा सवध रति म विच्छिन्न कर
असौक्यिक लीला रति म सबब जाडता
है ता एसी महामाया स्थिति का
निदशन भा निरतर भारतीय माहिल्य
म हाता आया है । इस जीवन का
परम साध्य मुक्ति की स्थिति मानी
जाती है । जीव का ब्रह्म से महामिलन
असौक्यिक हान हुए भी लोक मे घटता
है इसलिय लोक की भावसंपदा का
वह अन्वय रत है । निर्वेद अर्थात्
परम त व का ज्ञान इसके मूल मे होता
है और इसका आलवन परम ब्रह्म
होता है । जीवन की निस्सारता अथवा

वासना एक कामना के बंधन का नाश
इस निश्चिन्त प्रेम की धीरे जीन का
उत्प्रेरक करता है। अज्ञान-निर्मावत
मनु बुद्धि से जन भावना है। परम
मानस का उपायना न त्रिप शिखर तत्व
मे अग्रेष्ठ सामरम्य मानंद म जा
धनादि और अनंत है ममाहित हाव
है तो शांत रस का सृष्टि होता है।
उस समय का रामाच धीरे हृद्य स्मर
लीय है। रमणीय एकांत प्रभापुत्र
कलास का वृत् रूप भी चित्तार्जन रूप
म उपस्थित है जिमम शांत रम का
परिपाक होता है।

शांत और शृंगार तो कामायनी के मूल रस हैं
ही क्योंकि शांत का आलवन गदेश का
सृष्टि के विकास का मूल है जिसकी
कला प्रत्येक जीवन लीला मे व्याप्त है।

जीवन का इतनी लंबी यात्रा म धीरे भी रस
मयास्थान यथा भावश्यकता कामायनी
म प्राप्त गए हैं सन्नेप म उनका उपा
हरण भाग प्रस्तुत किया जाय हा है—

करुण रस—करुण रस का स्थायी भाव शोक है।
यह इष्टनाश और अनिष्ट की प्राप्ति पर
अभिव्यक्त होता है। उसका अभिव्यक्ति
सशक्त ढंग से अनक स्थानो पर
दृष्ट है। कुछ आचाय करुण रस का
ही प्रधान रस मानते हैं। इस दृष्टि
से यदि दत्ता जाय तो इन रस का
उचित अवस्थिति मयास्थान शक्तिवाच
रूप मे मिलेगी। यथा—

आह धिरेगा हृदय लहलहे
सतो पर करका धन सी,

छिपी रहेगी अंतरतम मे
सब क तू निगूढ धन सा,

× × ×

विस्मृति आ भवसाद घेर ल
नारवत! वस चुप कर दे,

भेतनना वस जा जहता म,
प्राज मूय मरा भर र।

धीररस—यह उत्तम प्रकृति धीरे पुत्रप क
प्राप्ति हाता है। इसका स्थायी भाव
उत्साह है। यह चार प्रकार का हाता
है (१) शानधार, (२) धर्मवार,
(३) श्यावार धीरे (४) मुद्रार।
कामायनाकार न अपन इन काव्य म
मुद्रार का म्यान दिया है।

धीररस सपय सग म है। वाररस का एक
उपाहरण यही किया जा रहा है जा
इस बात का साक्षा हे कि वीर न इन
रस की भी मुद्रा निरूपित का है—

रत्नामद मनु का न हाथ धन भी स्वता चा,
प्रजा पद का भी न वितु साह्य कभुता था।

× × ×

धूमकेतु-सा बला रद नाराच भयकर
लिय पूछ म अपनी ज्वाला भाति प्रलयकर,
भतरिद्ध मे महाशक्ति हुकार कर उठी
सब शस्त्रा की धारें भीपण वग भर उठी।

वात्सल्य रस—सख्यता व परवर्ती आचायो न
वदमन या वात्सल्य का भा दसवाँ रस
स्वाकार किया है। हिंदी साहित्य मे
इसका प्राचुर्य है। इसका स्थायी भाव
वात्सल्य स्नेह और पुत्र भादि इसक
आलवन होत है। बालक का चट्टाए
भादि उदापन विभाव ह। इसकी भी
अल्प किंतु अत्यंत मुदर भाँकी कामायना
मे मिलेगा। यथा—

'मा' फिर एक विलक दूरगत
गूज उठी कुटिया स्त्री,
माँ उठ दौडी भर हृष्य मे
लेकर उत्कठा हूनी।
सुटरी खुली धलक रज घूसर
बाहे आकर लिपट गई,
निशा-तापसी का जलने का
भयक उठी बुझी धूनी।

जो लोग जीवन का चरम ध्येय मुक्ति को स्वीकार करते हैं वे शांत रस को साहित्य की चरम परिणति मानते हैं। कामायनी का भ्रत भी इसी से होता है, किन्तु शांति के ब्रह्मद्वयानन्द की लोक व्यापक सनातन व्यवस्था भी है। इसलिए कहा जा सकता है कि कामायनी में शांत और भृंगार का ऐसा समयोग हुआ है कि दोनों दृष्टि के लोग उनसे परमवृत्ति का समचित मान्य प्राप्त करते हैं।

कामायनी रस का शास्त्रीय दृष्टि को आधार मानकर लिखा गया काव्य नहीं है अपितु उसका आदर्श सक्न्पारमक होने के कारण स्वतः सहज रसात्मक है। इसलिए उच्च कलावृत्ति होत हुए भी साधारणीकरण की श्रेष्ठता उभय वस्तु मान है और सहज ही भावानुकूल परिपुष्ट रसनिष्पत्ति उनमें मिलेगी।

कामायनी का साध्य, चिंतन एवं दर्शन—जय शंकर 'प्रसाद' कामायनी में एक महान् चिंतक तथा दार्शनिक के रूप में प्रकट हुए हैं। उनका दर्शन और चिंतन व्यक्ति में समष्टि तक का अपना परिधि में आबद्ध करता है। इस भावधन के मूल में व्यक्तिव्यक्तिपरिताप, सामाजिक उत्पन्न, मानवता व दृढ विवाह एवं प्रवृद्धन की मंगल कामना ता है ही, साथ ही भय, धर्म काम का परिचय का विधान तथा भारतीय दृष्टि में जीवन के चरम ध्येय धनत आनन्द की साधना और सिद्धि का दिव्य आयोजन भी है। यदि 'प्रसाद' के इस चिंतन का अध्ययन किया जाय तो व्यक्ति का अध्ययन दो रूपा में करना होगा।

उनका पहला रूप होगा, समाज का एकान्त्रि मनुष्य और दूसरा रूप होगा व्यक्ति की व्यक्तिगत साधना का रूप। पहले हम व्यक्ति के सामाजिक स्वरूप की कामायनी में ग्रहण करेंगे।

सामाजिक चिंतन—उपभाग जीवन का अनादि गुण धर्म है तथा इसकी वाछा ही मानव की चेतना एवं गति का अग्रतम कारण भी है। प्रवृत्ति का कार्य व्यापार एवं धर्म हीं पुरुष और प्रवृत्ति के महयोग स प्रगातमान होता है। प्रवृत्ति के विकास के मूल में यही नियम जड़ जगम में सवत्र दृष्टिगत होता है। इन्द्रियनिष्ठा की परवृत्ति महज जनदायिनी हुआ करता है। काम नर-नारी को एक सूत्र में आबद्ध करता है, दूसरा और वस्तुगत इन्द्रिय वृत्ति की भीतक आवश्यकताओं का विनाम भी होता चलता है।

व्यक्ति के मूल में म्यार्य होता है इनलिये एक ही स्थिति में उस सदैव सताप नहीं होता। तद नइ स्थिति और परिस्थिति उस अनुभव क द्वारा नत नया पाठ पणता जाती है। इन्द्रिय स्वभावतः विलासी होता है इसलिये अनुभववृद्धि के साथ व मन व विकसित मामध्य का उपयोग और प्रयोग और भी अधिक मुख या परितोप व लिये करती जाती है। इस प्रकार नर-नारी व मिलन से आवश्यकता की प्यास और अधिक अनुभव हा वृत्ति की खोज में गतेमान हा उठती है। नर-नारी का यह मिलन फलप्रद होने पर नर-नारी व परिवार की सभ्या में वृद्धि कर और अधिक आवश्यकताएं बढ़ाता जाता है। इस प्रकार आवश्यकताओं का सत्र में मनुष्य व जीवन का क्षण क्षण बढ़ता जाता है। उसकी चिंता उसे और भी अग्र बढ़ा ल जाती है। परिवार, पास पडास, जाति, पेशा, राष्ट्र ऐन लागी स एक एक कर बनता है क्योंकि अपनी समस्त आवश्यकताएँ व्यक्ति एकांत दूर नहीं कर पाता और न कर सकता है। एकांत उत्पन्न मनुष्य समाज का निमाण

इमलिये करता है कि व्यक्तिगत दुख, चिंता एव आवश्यकता की कतरता का अधिक मुगमतापूर्वक वह मुगकान दे मवेगा—अप्यो को अपना अधिक देकर और दूसरो स उनका अधिक लेकर ।

लेन देन की यह प्रथा भी स्वाथ पर ही आधुत है । आथश्यकताए अतत है । व्यक्ति अपने ही पीरुप से अपनी आवश्यकता की मभी वस्तुए उत्पाद नहीं कर सकता । इमलिये सब वे हा वस्तुए उत्पादित करते हैं जिनम दत्त होत है । अपनी इम प्रकार उत्पादित अधिक वस्तु को मीध मुद्रा स बदल कर या दूसरो द्वारा उत्पादित वस्तुओ स बदल कर अपनी आवश्यकता का वस्तुए प्राप्त करत है । इम परिवर्तन क द्वारा नर उपभाग धर्म का पालन करता है । इसलिये उम ममस्त क्षेत्र स उसका सबध एो जाता है जहाँ तक उसके आदान प्रदान की परिधि होती है । आन मारा समार इम परिधि मे आ गया है । एव एव यति परोक्ष और अपरोक्ष रूप स एव दूसर म छुट गए हैं । एव के लाभ का प्रभाव दूसर पर और दूसरे वे लाभ का प्रभाव पहल पर पडे बिना नहीं रह सकता । इध लिये ममप्र मानव क अम्युत्प का थयप्कर चितन ही प्रबुद्ध मानमशिल्पी पान विज्ञान, कला और सञ्चति वे क्षेत्र म मजय हाकर करने म दत्तचित्त है । प्रमाद कामायनी द्वारा इम क्षेत्र मे ममप्र मानवता के अम्युत्प क चितव क रूप म उपस्थित हात है । व समवय वाणी दृष्टि दशन क पापक हैं । मान वता को विजय व लिय शक्ति क ममस्त बिखर काया क ममवय का व माधन मानत है—

शक्ति व विद्युत्भग जा व्यन्त
बिजल बिखर है हा निरुपाय,

समवय उनका व ममस्त
विजयिना मानवता हो जाय ।

कवन इमस ही मानवता का विकास मभव नही अपितु उ हान सामाजिक नियमन की उन स्थितिया और परिस्थितियो का भा सकत दिया है बिना यह विजय अमभव है । वह स्थिति है ममाज म परस्पर व्यक्तिया के मवध की । जहा इतनो का स्वाथ हागा वहा नियमन अवस्था ता हागी हा । उम नियमन व्यवस्था मे नियामक शासक तथा शासित हाग । नियामक का भा स्वरचित नियम क बचन मे आमुलत आबद्ध होना होगा अथवा समस्त ससार बुद्ध स्थल बन जायगा । जिनका परिणाम होगा नाश स्वम और धार अधकार । विश्व परस्पर वर्गा म बटकर सधय करने लग जायगा । ऐमा हाता भा है । लकिन व्यक्ति एव वग व परस्पर मवध का जिन परि मूत्रो म जाडने का उ हान प्रयत्न किया है यदि उहे लक्ष लिया जाय तो यह मानना पडेगा कि कवि द्वारा किया गया अनुभूत निदान इन समस्याओ का अचूक समाधान प्रस्तुत करता है—

अपने मे सब कुछ भर कस
व्यक्ति विकास करगा ?
यह एकात स्वाथ भापण है
अपना नाश करेगा ।

× × ×

धोरा का हमन लखा मनु
हमो और मुख पाओ,
अपने मुख का विस्तृत कर लो
सबका मुखा बनाया ।

× × ×

व श्राहन करने क स्थल है,
जा पाल जा मवन सहेनु
पशु म यनि हम कुछ ऊँचे हैं
ता भव जननिधि म बनें सतु ।

प्रत्येक परिस्थिति में सतत समपण करनवाली नारी के प्रति सफल जीवन व्यक्ति का तभी हो सकता है जब वह इस मुक्ति को चरिताथ करे—

'नारी तुम केवल श्रद्धा हो,
विश्वास रखत नग पद तल में
पायुप स्रोत से बहा करी
जावन के मुहर समतल में।'

गुरुप को इसलिये नारी का एसा मानना चाहिए क्योंकि वह व्यक्ति को विश्व का खेल हसकर खेलना मिलाती है और अपनी सब कुछ अर्पित करने के उपरांत भा कुछ लेना नहीं चाहती। प्राप्त करनेवाले का चिर भ्रान्तदमभ्न मात्र देपना चाहता है। उसके ही कारण यवित निम्नलिखित सन्धिपति में पढ़वता है—

'तुमने हस हस मुझे खिलाया,
विश्व खेल है खेल चलो,
तुमने मिलकर मुझे बताया
वरते सबसे मेल बना।'

खेल की तरह सरलतापूर्वक समस्त समार स मेल करानेवाला भ्रानादि चेतना शक्ति व रूप में पारिवारिक जीवन का गठन प्रसादजी ने श्रद्धा और मनु के समीप स कराने का प्रयत्न कर कामायनी में विषयमगल का विधान किया है। इन मगलविधान में उन्होंने न केवल अपने मनुओं का सहारा लिया है अपितु भारतीय वाङ्मय के अगाध मानसमगर स समुत्पन्न भा क्रिया है। यह मयन प्रसादजी का सामाजिक चेतना का एक समन्वयवादी घरातल पर उपम्पित करता है जिनम मानवता व विजया हल का चिरतन पय प्रगस्त है।

प्रसादजी ने जिन युग में प्रौढ़ काव्य माह्व्य-
का रचना भारत में का उम युग में समार
एक भाषण महायुद्ध के पारखामा स

समस्त होने पर भी दूसरे के कगार पर खड़ा था और जीत था अभिलाषा निरूपे लडकटा रहा था। इन समस्तता के मूल में भौतिक उत्पल का प्रति हिमार्थक नियमनमयी कामना था। जनजीवन इनके परिणाम स प्रत्यत बुरी तरह कराह रहा था।

जिस समय कामायनी का रचना भारत में हुई उम समय मनार न केवल पिछन युद्ध का मार स मयस्त था अपितु वस्तुश्रा का मदा का, आर्थिक उत्तरर्प के लिये हाड खनवाना व छन प्रयव का शिवार भी था। दूसरी ओर समार के मयस्त लाग भ्रानद का अभिलाषा लिए कतर हाट से बबम दर रहे थे। दश के भारत में वधनमया सन्धिपति में मुक्ति की अगत कामना एव समुद्धि के लक्ष्ये जन सामा य की अभिलाषा बिलख रहा थी। एसी स्थित म युग व महाकाव्य का वत य हा जाता है नि वह कयति एव सामाजिक नभा प्रकार की युष्ठाभा मिटान व लय मवलय ल। यह मकल्प परम वत्याण कारा होने के साथ हा साथ एत ध्याक व द्वारा नया जाना चाहिए था जो स्वय सावर, मिड और मुजान यागा हों, भ्रानगत हों किन्तु नामगल व लिये उमका धामति चरम भीमा पर ही।

प्रमाणका ऐम हा यक्ति थ। व एम हा बित्तक एव एम हा माधर थ। नियमवद्ध भौतिङ्ग मय्यता व विनाम व मूल म प्रवृति पर विजय द्वारा यन्धिया का अधिन म अधिक भावशक्यतापूर्त का भावना चेतनागत है। उपभोगधर्म पर आयुन यह भौतिक विनाम वगयाद का जनक तथा मनुष्यमूलक है कयति भावशक्यताओं का मुणयर्म यह है कि व अगत है, एव पूरा ना नहीं हा पाठा

वि द्वारा धावर बड़ी हो जाती है। जा धावश्यकताएँ पूरी भी जा सकती हैं, वे एक निश्चित प्रवृत्ति के लिये, मर्यादा के लिये नहीं। धावश्यकताओं के रक्तबीज को जीवन रण में अधिकधिक प्रतिस्पर्द्धित उत्पादन द्वारा समाप्त करने का प्रयत्न भौतिकवादी का आधारभूत है। य धावश्यकताएँ ज्यों ज्यों उत्पादन बढ़ता जाता है त्यों त्यों बढ़ती जाती हैं। इस दृष्टि से यदि दखा जाय तो भौतिक पदार्थों द्वारा मूल समृद्धि का कल्पना विवेकमया तो है पर पूरा तुष्टिमूलक नहीं।

भाज का समाज, भाज के लाग दान धाग बढ गए हैं कि इस गम्यता द्वारा प्रस्त ममद्वि व धपन मे निमुक्त हानर पीछे भा नहीं लोउ सक्ते। मृगतृणा म नालायिन कुठित मृग की भीति लोकजीवन का म म जल दन की मापना का दायित्व एनी स्थिति म माहि यकार का उठाना पडता है।

प्रमाज्जा न यह मार सृष्ट हा उठाया, उसे निवाहा तथा बतमान समस्या का समाधान किया। यह समाधान वगवाद नहीं, गृहस्तित्ववादी और समावयवादी है। भाज ससार की जनता का तीन-चौथाई भाग सृष्टस्तित्व के मिद्धात का स्वाकार कर चुका है। मल ही वट प्रायोगिक न हानर वचारिक हा क्या न हो। यह प्रसार जो व मविष्यदृष्टा होने का प्रमाण है। प्रमाज्जा के कामायना म विवक और हृदय पक्ष का सृष्टस्तित्व कायम करने का प्रयत्न किया है। प्राकृतिक विनास और भौतिक विकास का सम वय कर प्रातरिक और भौतिक समुदय तथा सिद्धि के लिये युग का द्वार खाना है। प्रकृतिवादी और बुद्धिवादी सम्पत्ता व ममलन का धायोजन कर उहाँन भावात्मक प्रगति का सोपान प्रस्तुत

किया है तथा धापक और धापित दोना की मृति का भा उहाने विधान किया है। इस दृष्टि म देना त्राप नो प्रमाज्जा महान विवक के रूप म ट्टी जगत् व ममुम उपस्थित हात है। व गेम चितक के रूप म उपस्थित हात है जा वयक्ति और नीविव मापना का महात्माजो की तरह एवावार कर माहियिक दग स मून करने का प्रयत्न करता है।

श्रान्द या प्रत्याभिज्ञा श्रान्द या काश्मीरी श्रान्द—जहाँ तक वयक्तिम चिन्तन का प्रश्न है प्रमादजी श्रान्द श्रान्द का जीवन का परम ध्यय धापित करत है। वहाँ व धाधुनिक गम्यता के वे मस्यापक मनु की प्रतिष्ठ शान, श्रिया और इच्छा के भेदों का मिटाकर करते हैं। इस लाग प्रत्यभिज्ञा श्रान्त या कश्मीरी श्रान्तर्गन का सामरस्य सिद्धात धापित करत है।

गव दशन म कश्मीरी श्रान्त सर्वाधिक नर्षान हान हुए भी मत्यधिक हृदयप्राही है। यद्यपि कश्मीर म इस दशन का उन्मन धाठवीं शताब्दी मे ट्टुभा ती भी इस दशन व भक्त इस धलौकिक और साक्षात् शिववृत्त यतात है। इस धनादि दशन के कालप्रभाव म उच्छ्रद हो जने पर श्रीकृष्ण म शिव न दयान कर इस दशन का उपदश कला म पर दुवासा श्रुति की दिया। य मून शिवमून के नाम स म्यात हैं जिनकी संख्या १६० है। बाद म दुवासा की शिष्यपरंपरा द्वारा यह बरानर प्रचारित प्रसारित होला रहा। श्रीकृष्ण, वसुधुत, सोमानद, उत्पलाचार्य, नदमण तथा श्रभिनय गुप्त इस दशन के प्रमुग धाचाय है।

काश्मीरी श्रान्त दशन धदत दशन है। इसका प्रचार व्यापक रूप से कश्मीर म धा इसलिये इस कश्मीरीय श्रान्त दशन के

नाम से स्याति मिनी । ईश्वराद्वयवाद, त्रिक दशन माहेश्वर दशन एव प्रत्य मिना दशन के नाम से इसे सबोधित किया जाता है ।

इस शब्द दशन का माहिर्य अत्यंत विस्तृत तथा व्यापक है । इस दशन का स्पष्ट करनेवाले आचार्यों का निम्नांकित ट्टियां इनका सूत्राधार है —

धसुगुप्त—स्पदासृत, भगवद्गाता-वासवी टीका ।

नल्लट्ट—स्पदकारिका स्पदवृत्ति, तत्वाथ चितामणि मधुवाहिना (भ्रम्राप्त) ।

सोमानन्द—शिवदृष्टि शिवदृष्टि वृत्ति ।

उत्पल्लाचार्य—प्रत्यभिज्ञा कारिका, ईश्वर मिद्धि स्तात्रावनी ।

राम—स्पद वृत्ति, भगवद्गीता टीका मतग तत्र गाता शब्द दशनानुसार ।

रत्पल वैश्यान्—स्पद प्रदीपिका ।

अभिनव गुप्त—मालिना विजय शिवदृष्ट्या साचन, परागिणिका विवरण प्रथ मिनाविमर्शना, प्रत्यभिज्ञा वृत्ति विमर्शिता तत्रात्क तत्रमार, परमाथमार ।

भारम्बर—शिवसूत्र वातिक ।

क्षेमरान—शिवसूत्र वृत्ति शिवसूत्र विमर्शनी प्रथ मिनाहृद्य स्पदस्य स्पद निगुण ।

योगरान—परमाथमार टीका ।

जयरथ—तत्रालाक ।

शिवोपाध्याय—विज्ञान भरव टीका ।

माकर वान का माया के गूढ़ रहस्य का गान मन्त्र नहीं । उनका चतय और धान स्वरूप ब्रह्म 'कृतत्वहान' है । गवशक्तिमान का कृतत्वहान हान और जहना म कृतत्व शक्ति का धाराव गाम्य व चतय पुरा और वान का माया व प्रति जिनामा उपन्न करता है और इन जिनामा का मन्त्र ममा धान गपिन का उपन्न नहीं हाना ।

प्रत्यभिज्ञा दशन इस अथ म अधिच महज है क्योकि वहाँ भेदभाव के लिये स्थान नहीं । यद्यपि माया इस दर्शन में भी है ता भी इस अनात शक्ति को यहाँ स्वतंत्र सत्ता नहीं । इसका सूत्र परमतत्व शिव के हाथ म है । उसका लीला म ही इसका उभय और लय है । परमशिव 'चित्' है, सभी चि-मय पदार्थ उससे ही उ मीलित होत हैं और उसी में लय हो जाते हैं ।

शब्द दशन के अनुसार प्रत्यय जाव म ध्र-स्थित आरमतत्व ही शिव तत्व है । यह आरमतत्व अनदि, अनत और चतय है । इस अप्रतिहत शक्ति का परमेश्वर, शिव, परमशिव और परासचित् सजा भी प्रान की जाती है ।

मारा ससार परमशक्ति सपन्न इस आत्मा का स्वरूप है । विश्व के सारे प्रपच उमा से भिन भिन रूप मे प्रकाशित हान है । वह समार और असमार दोनो है । ममार और परमशिव मे मवया भेद नहीं है । मव उमस हा स्फुरित है । वह एमा अनत शक्ति है जा पलक मारत ही सृष्टिरचना एव सृष्टार कर सकता है । यह अनत शक्तिमया आत्मा जा सार सृष्टि क मूल म है परम चतय या विनास्वहप है । शिव का अट्टिमि अहभाव उनका विमर्शशक्ति है जा उनके कृतत्व का कारण है ।

इस शिव का पांच मुख्य शक्तियां हैं । इन शक्तियों क माध्यम स हा यह परम अट्टारक-अनना लीला करता है । यद्यपि ये शक्तियां अनत हैं ता भा मुख्य पांच शक्तियां चित्, धान इच्छा चान और क्रिया है । इन शक्तिसमूह का रूप हा विश्व है । कृता भा गण है, 'स्वशक्ति प्रथमा अस्य विश्वम्' । चित्शक्ति—यह शिव क प्रकाश शक्ति

का बाधिका है। इसके द्वारा उन्हें अपना अनंत शक्ति को अनुभूति हानी है। इमनिय ग्रहणार या अभिमान शक्ति को भा गच्छा होने का जाता है। स्वप्रकाश का बोध भा इस शक्ति द्वारा शिव का हाता है। आनंद शक्ति—शिव आनंदमय है और इस शक्ति के द्वारा आनंद का मात्ता त्कार शिव अपने म करत है। परम मद्धारक शिव मत्ता इमी शक्ति के कारण आनंदमय रहने है। आनंद पूण स्वतंत्र हाता है तथा उमम आत्मा का विश्रांति और महज प्रमजना रहती है। इच्छामुमार सब कुछ बन जान का शक्ति का नाम स्वतंत्रता है। इच्छाशक्ति—आत्मा का इस आनंद मयी स्वतंत्रता स इस शक्ति का उदक हाता है। रचना क निय इच्छा या कामना अनिवाय है। इसके द्वारा ही शिव सृजन, महार और जा कुछ चाहता है करता है। नानशक्ति - इस शक्ति क कारण हा शिव का नान स्वरूप माना गया है और इसके द्वारा हा शिव ब्रह्मांड क वण वण का दखत है। क्रियाशक्ति—इस क्रिया शक्ति क हा कारण शिव मभी स्वरूप धारण करने म मक्षम है।

समस्त सृष्टि की अभिव्यक्ति करनेवाले शिव शक्तिमय है। शक्तिहान शिव जड है और शिपहीन शक्ति शक्तिस्त्वहीन है इन दोनों का अभेद ही सदाशिव या परम शिव है। सत्शिव या शक्तिमय शिव का 'उ मय' सृष्टि और निमय' लय है। दोनों अनादि और अनंत है। इस दशन म कुल ३६ तत्व माने गए हैं। व इस प्रकार हैं—

१-५ पचभूत—१ पृथिवी (धारण करने वाली), २ जल (पिपयान या धोवन या

भिगोनेवाला), ३ तज या अग्नि (दाहक तथा पाचक), ४ वायु (मजावन) और ५ आकाश (अवकाश प्रणता)।

- ६-१० पचकर्मेंद्रियाँ—६ उपस्थ, ७ पायु ८ पाद, ९ हृन्म और १० वाक् ।
- ११-१५ पचचानेंद्रियाँ—११ जिह्वा, १२ नासिका १३ नय १४ त्वक और १५ श्राव ।
- १६-२० पचन मानाए—१६ रूप, १७ रस, १८ स्पृश, १९ गंध और २० शब्द । इनमे अपने म प्रतिरिक्त अय कुछ नहीं रहता । इह चानेंद्रिया प्रहण करता है ।
- २१ मन—मकल्प एव विकल्प का कारण ।
- २२ अहंकार—अभिमान का माधन ।
- २३ बुद्धि—चतय प्रतिबिंब प्रहण करने तथा स्वरूप निश्चय करनेवाली । इन तानो को अत करण रूप तब माना जाता है ।
- २४ प्रकृति—महत् तत्व स लकर पृथ्वी तब तब का मूल कारण एव महत्, तमस् एव रजस की साम्यावस्था ।
- २५ पुण्य—वचुव आवृत्त चतय ।
- २६-३० पच कचुव—२६ काल २७ नियति, २८ राग २९ विद्या और ३० कला । ये पुण्य का आवृत्त कर लत है जिसस पुण्य का अपने मूल रूप का गान नहीं हाता और वह अपने का अनित्य, अप्रण एव सकुचित समझत लगता है ।
- ३१ माया—अहम् और इदम् का पुण्य एव प्रकृति रूप म भेदक तत्व ।
- ३२ सद् विद्या—अहम् और इदम् का पुण्य एव प्रकृति म एकरव की प्रतीति करान वांना तत्व ।
- ३३ ईश्वर—इदम् का प्रधानता और अहम् की गीयता रहती है। इसम नान शक्ति का प्राधान्य रहता है जिससे

सृष्टि की प्रथमिक अभिव्यक्ति का बोध होता है।

३६ सदाशिव—इसमें इच्छाशक्ति का प्राणाय रहता है। यहाँ जगत् का अव्यक्त रूप में बोध होता है। यह अतवर्ती निमेष है। उ मय सदाशिव शक्ति की अभिव्यक्ति का कारण है।

३७ शक्तिनत्व—इसकी चर्चा पहले की जा चुकी है।

३८ शिवतत्व—इसके सबध में भी पूर्व निबदन किया जा चुका है।

प्रत्यभिज्ञा दर्शन में स्थूल से सूक्ष्म की ओर जीवयात्रा का निदर्शन इन तत्त्वों के परिचय क उपरांत करना अप्राप्तमिक्त न होगा। प्रत्यभिज्ञा का अर्थ मनन भा हाता है। नात वस्तु को पुन नात करना प्रत्यभिज्ञा हा है।

प्रत्यभिज्ञा दर्शन में शिव मूल तत्व है। प्रकाश उसका आंतर रूप है और विमश उनका बाह्य। विमश रूप में हा वह समार म सवत्र अभि यक्त है। वचुर के आवरण के कारण जीव शिव क मूल रूप की उनी प्रकार नहीं जान पाता जैसे रास म छिपी अग्नि का द्रष्टा। यह स्थिति जाव म पशुभाव की है। इसके उम वास्तविक स्वरूप का पट्टान जा चित्स्वरूप है अनुभूतिगम्य है। प्रत्यभिज्ञा कारिका वृत्ति म बटा गया है—

चिन्त्येव हि देवात् स्थितमिन्द्रावशादिति ।
मायाय निष्पापानमथजात प्रमाण ॥

मह चिन्ति परावाक भट्टारक गिय वा ह्यय है। इस परम सत्ता की पट्टान स हा जाव म पशुभाव ममात हाता है। इस परम पत्त का प्राप्ति म जीव परमात्मा बन जाता है और ३६ त वा म बना मायव कमा त मय हाता है इसका अभिनव गुण ने इस रूप म वगन किया है—

व्यापिनमभित्तमित्य

सर्वात्मान विधूतनानात्वम् ।

निरपम परमानन्द

यो वेत्ति स तमयो भवति ॥

इम अवस्था में साधन अपने भीतर हा ब्रह्माण्ड का दर्शन प्राप्त करता है। यह सर्वोत्तम समाधि की स्थिति है। मातिनी विजयोत्तर तत्र म कटा भी गया है—

अकिञ्चिदकस्म्यव गुरणा प्रतिबोधित ।

उत्पद्यत य आवेश शाम्भवोऽसावुदारित ॥

प्रत्यभिज्ञा की साधनाप्रणाली शंकराचार्य के अद्वैतवाद से भिन्न है। उनके अद्वैतवाद में केवल ज्ञान का अस्मिता साधना का चरम परिणति पर सन्निहित होती है। भक्ति के लिये उनकी साधना प्रणाली में कोई स्थान नहीं, क्योंकि भक्ति म द्वयता हाती है तथा भक्ति में अज्ञान का स्थान उनके मतानुसार होता है। भक्ति को भी व एव प्रकार का आवरण ही मानन हैं इसलिये विद्वान्द क लिये वे इस आवरण की परिममाप्ति स ही मोक्षप्राप्ति सम्भव समझे है।

प्रत्यभिज्ञा वा दृष्टि शंकर के इस अद्वैत से भिन्न है।

कग जा चुका है कि प्रत्यभिज्ञा का अर्थ है नात वस्तु का फिर स नात करना। यह नामान्तराधि गुणात्मा स हाती है। दीक्षा अज्ञाननाशकरा एव सत्य ज्ञानदायिका शक्ति है। अज्ञान को इस दर्शन म पशुवधन भा बहते हैं। एमा गुण जा तव का द्रष्टा होता है उमक द्वारा निष्प गण ज्ञान से उसा प्रकार साधन अज्ञान का लाभ करता है जिस प्रकार जिना दूती क माध्यम स वणिण प्रेमिका क वरण स प्रमी क अज्ञाननाश हाता है। शिव का ठान ठान पट्टिचानन व लिये गुरु की

महत्ता इसमें अनिवार्य बताई गई है।
यह प्रत्यभिज्ञा दर्शन है।

प्रसाद का आनन्दवाद प्रत्यभिज्ञा से निश्चय ही प्रभावित है। किंतु उद्दान इस प्रभाव में मौलिक चिंतन द्वारा भौतिक विकास क्रम और मानसिक विकासक्रम का ऐसा समन्वय किया है कि वह स्वयं में मौलिक हो उठा है। उसमें जावन है, एकांत दर्शन का तरह पनायन नहीं।

यह प्रत्यभिज्ञा दर्शन अत्यंत व्यावहारिक तथा हृदयग्राही है। सृष्टि समाप्ति का यह रागात्मक पद्धति है। शिव स्वरूप है। इसलिये काव्य जो स्तम्भ वाक्य है उनसे इसका परम मामोप्य या एकाक्य है। भक्ति एवं गानमाग का इस दर्शनप्रणाली में अद्भुत सामरस्य है। निगुणता, मगुणता एवं सुधियाना पन जो हिंदी साहित्य का त्रिवाराण है उनका भी इसमें मल खाता है। यथाथ और सादृश का भा इस मत में एकाक्य है। इसलिये कामायनी में इस दर्शन की व्याप्ति हिंदी साहित्य की मूल चिंतन धाराओं का सामरस्य का मुदर और सफन प्रयन है।

भौतिक उत्पत्तय क लिय, सामाजिक उत्कर्ष के लिये उद्दान भौतिक और प्राकृतिक सम्पत्ता का समन करा यद्धा और इडा के योग से मानवता के प्रवद्धन के लिये सदश दिया है। इस प्रकार लौकिक अलौकिक, वचारिक, सामाजिक, साकृतिक सभा दृष्टिया का सह अन्वित्त्व स्वाकार करत हुए उद्दाने उन सबका एसा सम वय कराया है जना समन्वय तुलनादास क पश्चात् हिंसा साहित्य में काद द्वारा कवि युगमगल के लिय नहीं कर पाया।

कामायनी सन्नस्त मानव को सन्नस्त समाज को, विभिन्न प्रकार के आस्थावादिधा का चिरतन मंगल और सामाजिक

अन्वय के लिये एक मंच पर उपस्थित करती है। वह मंच सबका होन हुए भी, कवल प्रसादजी द्वारा विनिर्मित है, पर वह लाख के लिये है और है स्फूर्तिमय, चेतनामय, अरुण्ड तृप्तिमय और जीवन।

इस प्रकार प्रसादजी आधुनिक हिंदीसाहित्य का महानतम कवि, विचारक एवं अनुपम साहित्यस्रष्टा के रूप में हमारे समुख उपस्थित हैं जिन्की कृतियाँ अपने गुणधर्म का कारण सत्कल्पात्मक रस सिद्धि का धारा स लाख के शुष्क कूलों का हरा भरा बन का प्रयत्न करती हुई दीवती हैं। ऐसे युगप्रवतक कलाकार मन्डा वर्ष में एकाक्य दुग्गा करते हैं जिनकी कृतियाँ के अक्षर मगलदीप बनकर युग युग तक जन जन के मानस का निर्भर में प्रभा की विरसा का स्पश स ज्यतिदान करत हैं। प्रसादजी ऐसे हा महान् रजाकार, कलाशिल्पा एवं साहित्यचित्तक, साधक तथा स्रष्टा हैं।

कामिनि = का० १२। वि० १८।

[म० स्त्री०] (स०) कामवती स्त्री, सुदर स्त्री, मदिरा।

कामिनो = वि०, ४६, ५१।

[म० स्त्री०] (हि०) (द० 'कामिनि')।

काम्य = का० कु०, १८, ११५।

[वि०] (स०) जिस वस्तु को इच्छा की जाय, इच्छित यत् अथवा वम।

कायकर्म = का०, २७०।

[म० पु०] शरीर से होनेवाला काय, वह काय जो शरीर के लिए किया जाय, जैसे स्नान। कम रूपी शरीर।

कायर = का० २०१। म०, १७।

[वि०] (हि०) डरपोक, भाद, कातर, असाहमी।

कायरता = का० १८।

[म० स्त्री०] (हि०) भारता, डरपायन, कादरता।

काया = का०, ४६, ६७, १२३, १८७, १८३, [स० स्त्री०] २२६।

- (सं०) शरीर, तन, बदन, दह ।
 कारक = का० कु० ६४ ।
 [वि०] करनेवाला, किमा के स्थान पर या प्रतिनिधि के रूप में काम करने वाला । साधन ।
 कारण = का०, ५४, २३६ । ऋ० ५३ । प्रे० ८ । म०, १६ ।
 (स०) जिसके प्रभाव से या फलस्वरूप कोई काम हो । सबब, हेतु । निमित्त । प्रयो जन । वह जिसमें कुछ उपान या प्रकट हो । मूल । माधन । तात्रिक उपचार या काम ।
 कारा = श्रा० ५६ । का०, ६५ ।
 [म० श्रौ०] (स०) अधन क, कारागार जेल । पीडा क्लेश ।
 कारी तरवार = चि० ६५ ।
 [म० श्रौ०] (श्र० भा०) काला तलवारो । भयकर युद्ध विनाशकारा समर ।
 कारण्य नीर प्रवाह = का० कु० ११५ ।
 [स० पु०] कर्णा से निकली हुई ग्रामुष्मा की धारा । अत्यंत कारणिक रूप से नयन व नीर का प्रवाह ।
 कालिन् = प्र० सं० ३२ ।
 [महा पु०] (स०) कालि का मटाना ।
 [कालिन् कृष्णा कुहू क्रोध से काली करपा भरे हुए—विशाख मे चद्रलेला का पुवार । प्रसाद मगत पृष्ठ ३२ पर मकलित । जीवन की पीर भपासुर मकटापत्र ग्रमहाय ग्रधकारमय विपत्ति का स्थिति म हाय पवड कर खाजने पर भा काद मायी नही मिला । पर ऐसा स्थिति म भी तुम्हारी धवि मान हा हमार लिय गपमानिका हुई और यही हमारा प्राण है, उत्त कजिता का यहा भावाय ३ । ०—प्रयाग मगत ।]
 काल = श्रा० ४५ ७० । का० कु० ३० [महा पु०] (म०) ११५ । का० १८ ३४ ६५ १६५ २६१ । रे० ३० । ल० ४८ ।

- मवध की वृत्त सत्ता जिसक द्वारा भूत वतमान, भविष्य का बाध हाता है समय । मृच्यु यमराज । उपयुक्त समय अवसर । अवाल, दुभिद्ध । शिव का एक नाम ।
 कालजलधि = का० १८ ।
 [स० पु०] (म०) काल रूपा सागर, मृच्यु मागर ।
 कालपरिधि = क० १६३ ।
 [म० स्त्री०] (म०) ममय चक्र समय का घेरा ।
 कालरात्रि = रा० २३ । म० ८ ।
 [स० स्त्री०] (स०) अधेरा शरीर भयावना रात । ब्रह्मा का रात् जिसमें सारी सृष्टि ना लय हो जाता है । प्रलय की रात मृत्यु की रात । निवाला की रात । कतल की रात ।
 काला = का० १७ ।
 [वि] (हि०) काजन् या कोयल क रग का स्याह कृष्ण । कलुषित बुरा । भारा प्रचड ।
 कालापानो = श्रा० २२ ।
 [स० पु०] (हि०) आजीवन कटार द कारावास । अड मन निकाबार द्राप म भारतयो का निया जानवाला आजीवन कारा दड ।
 कालिंदी = श्रा० ३१ । का०, १४२ १५६ ।
 [स० श्रौ०] (म०) चि०, २१ । का० कु० ११२ ।
 यमुना नदा जो कलिद पवत स निकलता है ।
 कालिमा = का०, १४ ८२ ८७ १७५, १८६ ।
 [स० स्त्री०] ऋ० ३५ ८० । ल०, २६ ५६ ७२ ८० ।
 कानापन कालिग कलोछ अधेरा, कक लाछन ।
 काली = श्रा० १६ २१ ३७, ५७ । का० [म स्त्री०] (स०) ६६ १४२ १७७ १६७ । ल०, ३७ ।
 चडा कालिका पावती गिरजा ।
 [म० पु०] (हि०) एक नाग का नाम जिस श्रीकृष्ण न मारा था ।
 [वि] (हि०) श्याम रग वाला । कृष्ण रग वाला ।
 [काली आर्त्ता का अवधार— लहर' म पृष्ठ ३७ पर

सकलित गीत । इस गीत का भावार्थ है काली आस्ता का अकार जब हृदय के आर पार हो जाता है तो मद में अचेतन (सवकासम) कलाकार रग का बहार लेकर क्षितिज के पार एसा चित्र प्रकाशित करता है जिसमें कवल प्यार ही प्यार रहता है और केवल मुगकरानी चादनी रान एव तारो की विरणा म पुलकित गात पर मधुषी एर कनिया के घात चलते हैं और मलयज वात चुपके म आता है जिससे बादल की भांति स्वप्नो का दुलार मित्रता है और जिसम चार बूद आसू मिलने हैं । तब कलाकार लहरों का भांति अघोर होकर उठता है और उसका शूय मधुर व्यथा स चार उठता है और उममे सुषे किमलय सी पार भर जाता है तब छाता पर आसू का तरल उगाम का ममोर या पतझड सा गिर जाता है और फिर भा कलाकार की पागल रट प्यार प्यार हा रहती है । २०—लहर ।]

काली काली = २०, ४८ ।

[वि०] (हि०) एकदम स्याह । घनघोर काल । भयकर वृष्णाभ ।

काले = आ०, ४५ । का० वु० ३८ । का०, [वि०] (हि०) १४२ । ल०, ३० । (३० 'काला' ।)

काले-काले = ल०, ७६ ।

[वि०] (हि०) अत्यंत काला । बहुत कालिमपूणा ।

काल्पनिक = का०, १३५ ।

[वि०] कल्पित आरोपित, कल्पना करने का भाव । (वह गाय) जो गभ धारण करने के योग्य हा ।

काशी = का० वु० ।

[सं० न्नी०] (सं०) वाराणसा नाम स प्रसिद्ध नगरी ।

[काशी—गान—] नाननकुमुध म 'जननी जिमकी ज ममूमि हो, वमुधगा ही काशी हा ।' वाशा का इस रूप म उल्लख । व ही

महापुरुष अविनाशी होने है जो सारी वमुधरा को वाशी समझते हैं । यह राजा काश के नाम पर बसी ससार की प्राचीनतम नगरी है जा वर्तमान म वाराणसी नाम स विख्यात है और गंगा के बाए तट पर धनुषाकार बनी हुई है । प्राचीन समय मे काशी प्रदेश के लिए प्रयुक्त हाता था । नटराज विश्वनाथ क त्रिशूल पर बसी यह नगरी प्रकाश का मायनाभूमि और कवि प्रसाद का ज'मभूमि रही है । तुलनादासजी का कथन है—

'मुक्ति ज म महि जानि नान खानि अथ हानि कर ।
जह वम समु भवानि सो कासी सईअ कम न ।]

काश्मीर = म० १० २१ २४ ।

[सं० पु०] भारत म हिमालय की तराद म स्थित मनारम प्राइतिक प्रदेश ।

[काश्मीर—महाराणा का मूह्व' म स्वास्थ्यकर जलवायु क लिये काश्मार का उल्लख हुआ है ।]

काष्ठ = का०, ११८ ।

[सं० पु०] (म०) (२० 'काठ' ।)

का-सा = का० ४५ ।

[वि०] (हि०) के सदृश समान या तरह ।

कासी = चि० ६१ ।

[सव०] (ब० भा०) किमस ।

काहि = चि०, ६४ १५६ १६७ ।

[सव०] (ब० भा०) किम की ।

काहूसो = चि०, ७२ ।

[सव०] (ब० भा०) किसा से ।

किकिनि = चि० ६१ ।

[मं० की०] (हि०) चुद्र घटिका, करधनी ।

किजल्क = आ०, २२ । भ०, २८ ।

[सं० पु०] (स०) कमल का केसर, पराग, कमल ।

किजल्क पुज = का० वु०, ४८ ।

[सं० पु०] (सं०) कमल का समूह ।

किंसुक = चि० १७२ ।

[सं० पु०] (हि०) पलाश, टाक, टैसु ।

चिंतु = का०, ७, ५४, ५६ ८४ ८६ ६२,
 [प्रत्यय०] (हि०) ६४ १११ ११३, ११८, १२३ १३१,
 १४२, १७१ १७६, १७८, १८०,
 १८४, १९५, १८६ १८६ १६०
 १६१ १६२, १६४ १९१ १६७
 १६८, २०० २०१ २१० २२६
 २१८ २०६ २६१ २६१ २७०
 २७१।

पर, लकिन परतु वरच वरन् प्रिन।

कितना = का० ७६। का० कु० १। का० /
 [क्रि० वि०] ३७, ३८ ५१ १२ १४ ६३
 (हि०) ६५ ६६ ६८ १११, १२०
 [प्रश्नवाचक वि०] १२६ १५८ १९६ १७६ १७८
 १८६ १६२ १६४ २०८ २०६
 २२६ २२८ २३४ २३५ २४७
 २४८ २६१। प्र० ७० ७३। ल०
 ३०।

किस परिमाण मात्रा या मध्या का।
 अधिक बहुत। किस परिमाण या
 मात्रा मे १ अधिक बहुत, ज्यादा।

कितनी = का० ५ २७ ६४ ६६ ६७ ६६
 [क्रि० वि०] ७७, ११५ १२२ १५०, १६०, १६४
 (हि०) १७२ १७६, १८० १८४ १८६
 [प्रश्नवाचक वि०] १६० १८२ १६३, २०६ २११,
 २२३, २२८ २२८, २४६। ल० ११।
 (८० कितना)।

कितने = का०, १७ २५ ५६, ७५ ८४ ८८
 [क्रि० वि०] १६४ १७१, १७६ १७८ १८३,
 (हि०) २५७ २७२। ल० २६।
 [प्रश्नवाचक] (३० कितना)।

[कितन दिन जीवन जलनिधि मे— लहर म पृष्ठ
 २६ पर सफलित गात। इस गात का
 भाव इस प्रकार है। प्रतर की आग
 स उद्वलित टाकर बूल धूमन के लिये
 लहरा उठ उठकर मिरता स्वती
 चलती गतिवियि में नव छवि का सृजन
 कितने दिन तक जावन मिधु मे करगी।
 जावन के इस निरवधि पय म मधु
 सगीत से पूर्ण भतीत की रागात्मक

मिरगति मागती यह पावन मा
 कर्मण स्वय म कय तक गावगा।
 प्रागा न दम मधुन प्राधि म दमक
 निवन ह्मवमुदु म मूय, नां प्रीर
 ताग का लत प्रागा तरन निव
 वनागत। १०—नगर।]

किधर = का० १२२ २८९ ११३।
 [क्रि० वि०] (हि०) किम धार ? किम तरत ?
 किधौ = ७० ७६ १७९ १६१।
 [प्र०] (प्र० भा०) धयया या।
 निन = का० ८७ १७७। ल० ६०।
 [गव०] (हि०) किम का बन्धनन।
 किनारा = का० ४१। म० ५१।
 [म० पु०] किमा वस्तु का वह भाग जहाँ उमता
 (पा०) ताराई या रोखा नमात हाना १।
 प्राथम निरा। तथा या जवानय का
 तट तार।

किनारी = चि० ११०।
 [म० स्त्री०] मुनहल या स्पहल धानि रम का पतला
 (पा०) गाता। (वाडर)

किन्नरियो = का० २८१।
 [म० स्त्री०] (हि०) किन्नर जाति का स्त्रियो। गावगा।

किमपि = चि० १३२।
 [प्र य०] (म०) निश्चित कुछ भी।

किया = का० १०, ७, १६, २२ २६। का०,
 [क्रि०] ३३ २४ ४७ ५५, ६७ ७२ १४०,
 (हि०) १६१, १६५ १८१, १६६ १६७,
 १८६ २०० ११६ २२६, २३५,
 २८६। प्र० २ १८ १६ २१। म०,
 १ ३ ६ १०, १२ २३।
 करना' का सूत्रकारित्व रूप।

किरण = का० १८ ४१ ६०। का० कु०,
 [म जी०] १। का० ६ ३७, ४७ ५०, ८१,
 (स०) ८२ ८८ १८० १५६ १६७ २२७
 २४६ १५२ २६०। म० २८ ७६।
 प्र० १, ७। चि० २१।
 ज्वाति का व घात सूक्ष्म रेखाएँ जा
 प्रवाह क रूप म प्रचलित पदार्थों से

निकल कर फलनी हुई दिखाई देती हैं।
मूय, चद्र, दीपक आदि के रोगियों की लकीर।

[किरण—भरणा' में पृष्ठ २८—२९ पर मकलित गट्त्वपूण कविता। मुदर उपमाना से भूतित इस कविता में प्रमाजी न भावा का जीवत रूप में उपस्थित किया है। किरण का बिलग हुई दख कर कवि जिनामावण यह पूछता है कि आज तुम क्यों बिखरी हो? तुम किमकं अनुराग म रगा हो? स्वरा कमन व समान परमायु का पराग उडाती हा और पृथवा पर प्राधना व समान भुवा हुई हो। यद्यपि मधुर मुग्दा सी तुम हा तो भा मौन हा। किमी अनात विश्व की वेदना दूना ना तुम कौन हा? तुम प्रकृति को मुदर मरस हिनार उठाकर परमानद दती हो। स्वग व मुत्र के समान तुम उमन भूरोक का मिनाती हो। तुम कमा मउध जाटती हा। क्या तुम विरज को विशाक बना दागी। तुम उपा मुदरी व कर वा मकेत द किम प्रेमनिवित दिखाती हा। ओ चचल। तुम अनत शूय पय पर बहूत चल चुकी हो, ठहर। कुछ विश्राम करा और मन मंदिर व द्वार खोला ताकि वहाँ साया बसत जाग जाए।
२०—भरना।]

किरणावलि = का० कु० ४३। चि०, १४६।

[स० ली०] (म०) किरणा का समूह या पक्ति।

किरन = का०, ८८, १७० १७५, १८१। चि०,

[स० पु०] ३८। ल० ३८।

(हि०) (२० 'किरण')।

किरन लंगलियाँ = ल०, १०।

[स० ली०] (हि०) किरणरूपा उगलिया। प्रकाश किरणा का पुत्र।

किरन कली = का०, १७८।

[स० ली०] (म०) किरणरूपी कनी या न किरण।

किरने = चि० १, १४१।

[स० ली०] (ब्र० भा०) (२० 'किरन')।

किरनों = का०, ३८। का०, ६७, ६८, ६८, ६९,

[स० ली०] १५१, १७०, २३५। ल०, २१।

(हि०) 'किरण' का (बहुवचन)

किरनों की सी = का०, १७२।

[वि०] (हि०) किरण सा' (बहुवचन)।

किरातहि = चि० ६१।

[स० पु०] ((ब्र० भा०) एक प्राचीन जगली जाति, किरात को।

किरीट = का० २६।

[स० पु०] (म०) सिर वीधन का एक आभूषण, मुकुट।

किलक = का०, १७६।

[स० ली०] (म०) किलकने या हृषध्वनि करने की क्रिया, हृषध्वनि। किलकारी।

किलकार = का० २८५।

[स० पु०] (हि०) स्पष्ट हृषध्वनि।

किलकारना = भ०, २६।

[कि० अ०] (हि०) आनंद वा उमाह व समय जार से अस्पष्ट और गभीर ध्वनि करना। हृषध्वनि करना।

किलकारी = ल०, २३।

[स० ली०] (हि०) हृषध्वनि।

किलात = का०, १११, २०१।

[स० पु०] (म०) एक विशिष्ट जगली जाति किरात, भील।

[किलात—२०—कामायना के चरित्र।]

किनाइ = का० कु०, ६०, ११६।

[स० पु०] (हि०) लकड़ी का पत्ता जो दरवाजा बंद करने के लिए चौपट म जडा रहता है, पट, कपाट।

किशोर = का० १०३, ११३।

[स० पु०] (स०) ग्यारह से सोनह वर्ष तक का अवस्था का बालक। पुत्र, बेटा।

[किशोर—प्रमथिक व नायक का नाम। २० प्रेमपथिक।]

किशोरवय = का०, १०।

[सं० पु०] (सं०) ग्यारह से गौनह मप तव का अथस्या ।
विशारारस्या ।

किशोरी = चि०, ७५ ।

[सं० स्त्री०] (सं०) ग्यारह स सालह मप तव का शानिवा ।

किस = व०, १०, २६, ३१ । वा०, २४

[सव०] २५ २६, २८, ३०, ३०, ५२ ८६

(हि०) ११३ ११४, ११७, १०६ १४८

१५०, १५६ १५७, १५८ १६०

१७१ १८४ १६२ २१३, २१३

२२२ २६१ । प्र०, १२ २३ । म०

१० १५, १६ । ल० २० ४४ ।

कोन वा विभक्तिमय रूप ।

किसलय = श्री १६ २३ २६ ७६ । क० १३

[सं० पु०] (सं०) १७ । का०, ४७ ६८, ६७ १०२ ।

चि० ५७ ७१ । ऋ० २७ ७२ ।

प्र० १७ । ल० ३७ ५७ ७१ ।

नया निकला हुआ पण । बामल पता

फला ।

किसलयमय = ऋ०, २३ ।

[वि०] (हि०) किसलय रूपा या किसलय स युक्त,

कोमल पत्ते से ढका हुआ ।

किमी = व० २६ ३१ । का० २६ ३८

[सव०] १२८ १६० २८० २८४ । प्र०,

२ १४ १७, २०, २४ । म० २३ ।

वाई' का वह रूप जो उसे विभक्ति

लगने पर प्राप्त होता है ।

किसे = का० ३७, ३६ । प्र० १३ ।

[सव०] (हि०) किसका ।

[किसे नहीं चुभ जाँय, नेनों के तीर सुकीले—

कामना का पारसी रगमच पदाति वा

३ पक्ति का गीत । प्रसाद संगीत मे

पृष्ठ ७८ पर सन्कलित । पलका के व्याल

रसाल है झलकी के फदे असनेवाले

हैं । दसती हैं ननें के नुकील तीर से

कीन बच जाता है ।]

कीट = प्रा०, ४५ । वा०, ६० ।

[सं० पु०] (म०) काडे मकाडा । जमा हुई मल ।

कीनिए = क० २१ २२, २६ । चि० १४७ ।

[क्रि० सं०] (हि०) व० ११, २१ ।

'करना' का विधि क्रिया । (२०
'करना' ।)

कीर = चि० २३, ६६, १५६ ।

[म० पु०] (म०) तोता गुग्गा, गुग्गा । व्याप ।

कीरन = चि०, २३ ।

[सं० पु०] (श्र० भा०) तान । वार वा उद्वृत्तन ।

कीरति = चि०, ५०, १२ १०६ ।

[सं० स्त्री०] (श्र० भा०) (२० वाँ ।)

कीरति = चि० ७० ।

[सं० पु०] (श्र० भा०) ताने को ।

कीर्ति = व० ६ । वा० ६ ५८ । चि० ४८

[सं० स्त्री०] १५४ । म०, ८ ।

(म०) पुण्य म्याति बडाई यग व० घात्रा

मा बडा वाम जिमका करन व० बाद

नाम या यग हा ।

कीर्तिकलाप गद्य = चि० ४८ ।

[म० पु०] (सं०) मश वा समूह वा पुज । मश रूपी

पराग वा सुगंधि ।

की सी = वा० १८ ।

[वि०] (हि०) व ममान । (२० वा मा' ।)

कीन्हें = चि० ४२, ६४ १७२ ।

[क्रि० म०] (श्र० भा०) किया ।

कीर्त्ता = चि० ५२, ६४ ७४ ।

[क्रि० सं०] (२० की ह' ।)

कीन्हो = चि० ६० ६६ १७१ ।

[क्रि० सं०] (श्र० भा०) किमी काम वा पूर्ण कर लिया ।

कीलाल = चि०, १३६ ।

[म० पु०] (सं०) पानी । रक्त लहू । अमृत । शहद ।

[वि०] पशु । बधन का दूर करनेवाला ।

कुकुम = वा० १००, १०२, १७५ । ल०,

[सं० पु०] (सं०) १० । का० कु० ११ ।

काश्मीर देशज गद्य द्रव्य ।

कुकुमचूर्ण = वा० १५६ ।

[सं० पु०] (सं०) काश्मीर म उत्पन्न एक प्रकार के गद्य

द्रव्य का चूर्ण ।

कुकुमारण = वा० कु० १० ।

[सं० पु०] (सं०) कुकुम का ललाई । कुकुम क समान

लाल वण ।

कुचित = का०, कु०, ४५। का०, १०३।
 [वि०] (स०) टेना मडा, पुपुराता।
 कुज = आ० २७, ४८। व० २८। का०,
 [म० पु०] (म०) १० ७८, ६०, १११, १४६ १५८,
 १७५ १८० २४३, २६६। चि० ५,
 २३, ३८, ४५। प्र० १० म०, ६।
 ल०, १२ ३२, ४३।
 लता श्रीर पीया म घिरा मडप का
 तरह का म्यान।
 कुज मँह = का० कु०, ३४।
 [वि०] (प्र० भा०) कुज के मध्य म

[कुज में यशी प्रजती है—विशाल नाटक का
 नरत्व की समाप्त नतकी द्वारा
 गाय जातवाला उक्त टक का तीग
 पक्तियो गीत, प्रसाद-मगात मे पृष्ठ
 १५ पर मन्वित। कुज मे ८शा का
 स्वर मन का आकर्षित कर रहा है पर
 बुद्धि जान मे बरज रही है। सन्या
 रागमयी ताना के भूषण स सजजर
 ग्रामनिन कर रही है। लज्जा तजकर
 चतू टोटर उम दखू।]

कुजर = चि० १६१।
 [म० पु०] (म०) हाया। वग। एक पवन। अजना क
 पिता। एक नाग। उपय छत्र या
 एक भद्र। पापल। हस्त नक्षत्र। आठ
 को मख्या।

कुजर फलभ = का० २५८।
 [म० पु०] (म०) हाया के पचवर्षीय वृक्ष।
 कुठित = चि० ६७।
 [वि०] (स०) मन् सूय जा तेज न ही, निक्कमा।
 कुतल = का० ८३। चि० २२, २५। म०
 [स० पु०] (स०) २०।

जो एक मध द्रव्य। शिर क बाल,
 केश। बट्टुपिया।

कुद = का० ८७। चि० ५५।
 [स० पु०] (स०) एक फूल। कमल। बनर। एक पहाड।
 [वि०] कुवर का नो निधिया मे स एक। नो
 की मख्या। विरगु। ग्यराद। मन्
 बुंठिन।

कुदवली = चि०, १८, ५५।
 [सं० का०] (म०) कुद पून की बली।

कुदन = चि०, ४६।
 [म० पु०] (म०) उत्तम साना।

कुम्भ = आ०, २७। चि०, २८।
 [म० पु०] (म०) घडा। हाथी के मस्तक का उमडा हुआ
 भाग। एक राशि का नाम। प्राणायाम
 का एक विभाग। बुद्धदेव व ज म
 का नाम। एक द्रव्य। एक वानर। एक
 पड। प्रति बारहवें वष पडनेवाला
 एक पव।

कुम्भकर्ण सा = का० कु० २५।
 [वि०] (दि०) घडे व ममान वान वाले का तरह।
 कुम्भकण्य नामक राज्ञ का तरह
 विशार।

कुम्भ = चि०, ६७।
 [म० पु०] (स०) बुरा काम।

कुचक्र = का० कु०, ६३। का०, १८६।
 [म० पु०] (स०) पढ्यत्र। किंसा का मार डालन या
 उसको हानि पहुचाने क लिए जाल
 रचना।

कुचल = का०, १३६।
 [प्र० क्रि०] (हि०) कुचलकर।

कुचलते = व० २००। का, १३३।
 [क्रि० म०] (हि०) बार बार गया चोट या धाव पहुचाना
 कि धायल विवृत हो जाय।

कुचलना = आ०, ३०, ४१। का० कु०, ८३।
 का०, १५ ५८। म०, २।

[क्रि० म०] (हि०) किमी वस्तु ने ऊपर तार बार गया
 धाव या चोट पहुचाना कि उसका रूप
 विवृत हो जाय। रोन्ना।

कुछ = आ० ६, २४, ४१, ४५ ५१, ६६,
 [वि०] [हि०] ६७। व०, १३ १८, २३, ३०।
 का० कु०, ११२। का०, ५, ६,
 ७, १६ २६ ३२, ४०, ५२,
 ६४, ६६ ६७ ६८ ६९ ८१, ८५, ८६,
 ८६ ९० ९२, १००, १०५, १०६,
 १११, ११५, ११६, १२०, १२७,

१२६, १३०, १३२, १३६, १४०
 १४२, १४३, १४५ १४६ १५१,
 १६२ १६३ १६४ १६७ १७७
 १७८ १६५, १७६ १८२ १८४
 १८५ १८६ १९ १९२ १९४
 १९५ १८६ १९६ २ ५ १०६
 २०८ २१० ११३ २१४ ११५
 २१६ २१८ २१९ २२ २२२
 २२५ २२६ २२६ २३० २३३
 २३४ २३६ २३७ २४० २४२,
 २४५ २४७ २४८ २५६ २६०
 २७० २७१ २७२ २७६ २७९
 २८० २८४ १८७ २८८ २९ ,
 २८२। ऋ० ७। प्र० ८ १६ २०।
 म० ४ १६। ल० १८ २१।
 घोड़ी सट्या या नाम माय का जरा
 गा घाटा सा। (मव०) बाईं।

कुछ करके = का० २६६।
 [पुव० क्रि०] (हि०) घोडा बहुत करके निरिखत करके।
 कुट कुट्ट = का० १४२ १४३ १५७ १८०
 [पि०] (हि०) १८२ २६१ २६६ २८३।
 घोडा घोडा।

[कुछ नहीं—मायुरा वष २ खड २ म० ५ मन्
 १६२४ म मवप्रयम प्रकाशित और
 'भ्रमना' य वृत्त ७५-७६ पर मकनित
 कविता। जय नि यह बाईं की कहता
 है कि उनक पाय कमुा यन नग है
 और व सवमुल वगान है ता मुने
 तना हगा घा जाती है। एम व्यक्ति
 व पाय मकन निधिया का भाधार
 प्रकित रिश का मला प्रमता न।
 वग गृता है बवाति उगरा घावग
 का हा नही है और व्यम मफा
 वम्नु वरन साम गद वरन है। जय
 मगा रिश की प्रमता जय कभा घपना
 वम्नु म मला तर मुम्गा कुम्भ भा
 नो रट जामगा और मुम तर मल
 हा जाघात और तव भा ररर कमान
 व पाय का मितना। जय न नाकर

क नाविब और गुप्त निधियो के यद्ध
 वा देवों वह मुट्टु हसी हम रहा है
 तुम्हारी एसा समझ पर, और तुम कहते
 हो कि बगाल के पास कुछ नहीं।

कुटिया = भा० १६ ७६। वा० ७७६। १७६।
 [प० पी०] प्र० ३ ४। ल० ४०।
 (हि०) कापटा कुटा साधुभा का वह निवास
 स्थाप जटा रटकर व सावना रखत हैं।
 कुटल = का० १४ २८। का० कु० ८ ६३,
 [पि०] ८८ १०५ ११३। का० ११ ऋ०,
 (स०) २२। प्र० ३।
 वक्र टेग घूमा या बल लाया हुआ,
 धलेदार धुधराला। कपटा छना।

कुटिलता = भा० २२। का० कु० ८८।
 [स० खी०] (हि०) टेनापत छन कपट।

कुटिला = का० कु० ४४। वि० ४६ ७।
 [पि० स्त्री०] (स०) (> कुटिल')

कुटिलाई = वि० १८३।
 [प० स्त्री०] (प्र० भा०) (> कुटिलता')

कुटी = का० कु० ६०। प्र० ६। ल०
 [म० लो०] १२ ३२।

(स०) (> कुटिया')
 कुटार = का० १४६। प्र०, ३।
 [म० पु०] (स०) (> कुटिया')

कुनीरि = वि० ५८।
 [म० पु०] (प्र० भा०) कुटीर मे।

कुट्टुन = का० १८७।
 [म० पु०] (स०) परिवार खानदान।

कुट्टुधी = का० १८७।
 [म० पु०] (स०) परिवार व नाम मानान व लाग।

कुठार = वि० १७३।
 [म० पु०] (स०) कु हाई परशु परसा।

कुट्टेनल = भा० ७५। ल० २५।
 [म० पु०] (स०) कना वारन।

कुवूदल = का० ४४ ४५ ५१, ८३ ८८, ९७,
 [म० पु०] ११५ २०४ २०८। ल० १०, ७२।
 (स०) बाद मन्नु या वात दमन या मुनन वा

प्रबल इच्छा । विनाशपूर्ण उरगटा, क्रांटा । कौतुक, घेनवाह, आश्रय, अचमा ।

कुत्सित = का० कु०, ८८, ९४ १२० । का०, [वि०] (स०) ११६ । म० २ १४ ।

कुष्ठ रोग । निम्न ।

कुबोल = चि०, ५१ ।

[म० पु०] (हि०) दुरी, अनुचित या अशुभ वात ।

कुमति = चि० १७३ ।

[सं० श्लो०] (म०) मूलता, बुरे रान्न पर चलनवाला बुद्धि । बुद्धिहीनता ।

कुमार = का० २१४ २ ५, २०८ २२६, [स० पु०] २३०, २५४ । वि० ३० ४१, ४७, ७६ । म०, ७ ।

बेटा पुत्र । पाच वर वा अवन्या का बालक । युवावस्था या उमड़े कुछ पहले की अवस्था का पुरुष । युवराज । सनक, सनदन आदि ऋषि । मंगल ग्रह । अग्नि के एक पुत्र का नाम । भारत का एक नाम । एक वृक्ष विंगन ।

[वि०] जिम्मा निवाहन हुआ हो कुमारा अविवाहित ।

कुमार समीप = का० २२६ ।

[वि०] (हि०) कुमार व पास ।

कुमार हेतु = चि० ७३ ।

[म० पु०] (म०) कुमार क लिये या कुमार व कारण ।

कुमारिकायें = ल० ६५ ७६ ।

[सं० श्लो०] (सं) कुमारिया, अविवाहित लड़किया । कुमारा का बहुवचन ।

कुमुद = श्रा०, ७७ । का कु०, १६ । चि०, ५१, [सं० श्लो०] १४६, १४७ । ऋ० ७० ।

(म०) दूध, काफ़ा, लाल कमल । चादा । विष्णु । एक वस्त्र । एक द्वीप । आठ दिग्गजों में से एक । एक केतु । तारा । कनूर । सगात का एक ताल ।

[वि०] वृषण, कज्जम, लाभ ।

[कुमुद—] अयायादार । एक नाग राज का नाम । कुमुदना के पिता अद्भुत रामा यण में भाई हैं और कुश क श्वसुर ह ।

कुमुदययु = का० कु०, ४६ ।

[सं० पु०] (स०) चद्रमा ।

कुमुत्तिनी = का० कु० ५४ । चि०, १५, १०७, [सं० श्लो०] (म०) ऋ०, ८६ ।

दुरी का पून ।

कुमुदिनीनाथ = का० कु०, ६५ ।

[सं० पु०] (स०) कुमुदिनी के स्वामी चद्रमा ।

कुमद्वती = चि०, ५० ।

[सं० श्लो०] (म०) नागराज कुमुत्त की बहिन । पडज स्वर म स चार । ऋतुद्रा म स एक ।

[कुमुद्वती—] कुश की द्वितीय पत्नी । इसकी सौत चपका पुनहीन थी । अन्तिय इसी व पुन अयिचित स मूयवश चला । जनक्राडा वरत समय कुश का आभूषण हार सरयू में गिरते पर कुमुद नाग की बहन कुमद्वती उम नागलाक ले गई । ब्राह में कुश ने सरयू को सोखने व लिय अनुप वारा उठाया । तब भयवश कुमुत्त नाग ने कुमुदता सहित आभूषण कुश को अर्पित कर दिया । यह कथा अद्भुत रामायण में है ।

कुम्हलाना = का कु० १३ ।

[क्रि० अ०] (हि०) पीने का हरापन समाप्त होना, मुर-भाता । भाति का मलिन पडना, प्रमाहीन, पीला होना ।

कुम्हलात = चि० ५६ । प्रे०, २ ।

[क्रि० अ०] (प्र० भा) मूखन के समाप होना, या मुरभाता ।

कुम्हलाय = चि० ४, १६४ ।

[क्रि० अ०] (प्र० भा०) मुरभाकर । मुरभाय ।

कुरग = चि० १७६ ।

[म० वि०] (म०) वादामी या तामड रग का हिरन, मृग । घुरा ढग या लक्ष्मण ।

[वि०] (हि०) घुर रग का, वदरग ।

कुरचक्र = का० कु०, ८३ ।

[सं० पु०] (म०) एक फूल, वटगरया ।

कुरुक्षेत्र = का० कु० १११ ।

[सं० पु०] (सं०) एक ऐतिहासिक शीघ महाभारत युद्ध का स्थान ।

[कुरुक्षेत्र—] बाननकुमुम पृष्ठ १११ से ११७ तक सचलित लयी बविता । इस भूमि में

काँ लगा न था जा माहन की दगर
मोहित न हो। वे यमुना दून म थनु
चरान कुज म बंधावान करत थ।
अपनी माता पिता रे लिये द हाने
कम का बध दिया। शृणु का मउट
विजय कर्णार् एक राजसूय यग का
चर्चा करन के उपरान महाभारत क
निय लिनन क रूप म दूहेँ उपस्थित
किया गया है और शिशुपाल बध का
वखान किया गया है। फिर कौरव
पाण्डवो का नया मत्स्य म कहा
गई है और कुन्तिन म अशुन का
मोह दूर करन के लिय नर्म का उपदेश
कवि न गाता का आधार बनाकर
किया है यथा—

उठ लडे हा अश्रमर हा
कम पथ स मत टरा।
क्षत्रियाचित धम जो है
मुद निभय हा करो।'
फिर अशुप्रति हा पाथ रगभूमि म विजयी
होन हैं। यह पधात्मक साधारण
रचना है।]

कुहचि = का०, १६०।
[म० श्री०] (म) बुरा इच्छा। धृणा।
कुल = का०, २२। चि० ११ २८ ४७ ६२
[म० पु०] (सं०) ६७, १०२।
एक ही पूर्ववृत्त स उत्पन्न व्यक्तियों
का वग या समूह, वंश घराना।
खानदान जाति। समूह मनुदाय
भुड। घर मकान। बामभाग,
कोन धम।

कुलामिनी = चि० १४७।
[म० श्री०] (म०) प्रसिद्धि महिला कुंवतो वधु।
कुलगुर = का०, २७।
[म० पु०] (हि०) पुत्र परिवार खानदान आदि का
गुरु। खानदानी गुरु।
कुलपालक = चि० ५८।
[मि० पु०] (हि०) वंश विनाशक खानदान का नाश
करनेवाला। नालायक।

कुलप्रथा = मि० ६४ ८६ ९१, १०१, १६१।
[म० श्री०] (हि०) परंपरागत रिवाज, वंशगत रिगिट
रीति रिवाज।

कुलपाला = का० कु०, ३१।
[म० श्री०] (हि०) कुंवरा स्त्री। मवाति स्त्री।

कुलमा = का० कु०, १११।
[म० पु०] (हि०) वंश का प्रतिष्ठा खानदान का इज्जत।

कुलमानी = म० १८।
[म० पु०] (हि०) वंश म स्वामिमाना या अपन खानदान
की प्रतिष्ठा पर गर मित्रखाना व्यक्ति।
वंश म गौरव का रखा रखनवाता।

कुलपुत्र = म० ६३।
[म० श्री०] (हि०) (द० कुन्वामिना) (पुत्रवचन)।

कुलवारन = चि० १०२।
[मि० पु०] वंशगत मय दा खानदान। वंश की
(२० भा०) परंपरा का विनष्ट करनेवाला।

कुलकुल = ल० १८।
[म०] (हि०) एक विशेष प्रकार की धनि का समूह
जा प्रात काल पक्षियों के द्वारा
होता है।

कुलाकुल = चि० १६६।
[म० पु०] समस्त वंशवालो का आकुलता, व्यथा।
(हि०) घर परिवार की व्य कुंवता।

कुलिश = का०, १३।
[म० पु०] बज्र इद्र का एक विशेष अस्त्र जो
(म०) दवापुर सग्राम क पहल मटपि दधोचि
की हड्डियों स बना था। हारा।
विजली। कुठार।

कुलेज = म०, २३।
[म० श्री०] (हि०) प्रम तलापूवक खानदान आमो
प्रमोद। प्रौडा।

कुल्या = का० कु०, २६।
[म० श्री०] (म०) नहर नाली। कुलीन वधु।

कुँवर = का०, २२,
[म० पु०] (हि०) वह पति जो वंश परंपरागत अधि
कारा हो कुमार। अधिवाहित।

कुविचार = का० कु०, ८।

[सं० पु०] (सं०) दुर विचार, कलत्रित करनेवाणी भाव
नाएँ दुष्टो व दुरे विचार ।

कुशा = चि०, ४७ ।

[सं० पु०] (सं०) एक विशेष वृक्ष जाति जो पवित्र कर्मों
में काम में आती है । राम के पुत्र ।
एक द्वीप का नाम ।

[कुशा—श्रीरामचंद्र के छोटे पुत्र का नाम जो लव व
छाट भाई थे । १०—अथाध्याहार ।]

कुशाकुमुन्नी = चि० ५४ ।

[सं० पु०] (सं०) कुश और कुमुदिनिया ।

कुशाप्रभात = चि० ५३ ।

[सं० पु०] (सं०) कुश के ममान प्रभातवाता ।

कुशाशानुत्तम = चि० ४६ ।

[सं० पु०] (सं०) राजा कुश का पुत्र या उत्तराधिकारी ।

कुशल = का० १४० १८० । चि० ६० ।

[चि० पु०] (सं०) ताव बुद्धिमान चतुर पटु कौशल
वाग्ययक्ति ।

कुशावती = चि० ४५, ४८ ।

[सं० पु०] (सं०) कुश का नगरी ।

[कुशावती—कुश की राजधानी । तहौर के निकट
बनार नगरी जा अब पाकिस्तान में
है । १०—अथाध्याहार ।]

कुशासन = का० कु०, १०१ ।

[सं० पु०] (सं०) दुःख देनेवाली यवस्था, निम्नीय प्रथम ।
कुशा का चटारा ।

कुसुम = आ०, १६ ६६ । का० कु० १०, ३८,
[सं० पु०] ४१, ५१ । का० १३ ३५, ४८, ६४,
(सं०) ६५ ११३ १४३, १६३, १७५, १८१,
२१६ । चि० ५, ११ २४ ३८ ४८
६६, १४८, १८४ । ऋ०, १६, २०,
३७ ६६ । प्र०, ८ २४ । ल०, २५,
४५ ।

फूल पुष्प । नय का एक विशेष राग ।
पीले फूल ना पोया । बर । वह गद्य
जिसमें छोट छोट वाक्य हो ।

कुसुम अवचय = प्र०, ११ ।

[सं० पु०] (सं०) फूलों का एकद्वय, फूलों को चुनना ।

कुसुममस्तु = का०, २१७ ।

[सं० पु०] (सं०) वमत ऋतु ।

कुसुम कलियाँ = प्र०, २ ।

[सं० श्री०] (हि०) पूजा का कनिया ।

कुसुम कली = का० कु०, १८ । म० १६ ।

[सं० श्री०] (हि०) फूलों की कली ।

कुसुमकलिका = चि०, ५६ ६२ ।

[सं० श्री०] सं०) फूलों की कली । प्रति कामना का
सूचक ।

कुसुममानन = का० १७ ।

[सं० पु०] म०, फूलों का जगन वह जगन जिसमें
विशिष्ट विशिष्ट जाति व फूलों व पद
रग हो । फूलों की राशि ।

कुसुमकुंज = प्र० ८ ।

[सं० पु०] (सं०) परिपत कुंज । लताका का भुग्मुट
जिसमें पुष्प रिलत हो ।

कुसुमकुंतला = ल०, ६० ।

[चि० श्री०] (सं०) फूलों में मंत्राण हुए केशवाता ।

कुसुमदल = प्र०, २५ ।

[सं० पु०] (सं०) दूर और पत्ते फूलों की पल्लवियों ।

कुसुमधूलि = का० १४० ।

[सं० श्री०] (सं०) पराग मकरद । पुष्पा का विपण रम ।
पुष्पपराग कण ।

कुसुमपात्र = चि०, ५८ ।

[सं० पु०] (सं०) फूलरूपी पात्र । फूलों के बलन ।

कुसुम मकरद = का० कु०, १६ । का०, ६१ ।

[सं० पु०] (सं०) (दे० कुसुमधूलि ।)

कुसुममणि = का० कु० १०४ ।

[सं० पु०] (सं०) मणिवा महान पुष्प । मणि
रूपी कुसुम ।

कुसुम मज = ऋ०, २३ । का० २६१ ।

[सं० पु०] (सं०) पराग, मकरद ।

कुसुमरस = ऋ०, ८४ । ल० २२ ।

[सं० पु०] (सं०) फूल का निचाडकर निकाला गया
पदार्थ ।

कुसुमवाहना = का० कु०, १३ ।

[वि० शी०] (स०) पुष्पा पर चन्नी हुई, पुष्पा के वारण मनोरम ।

कुसुमविकसित = का०, २१७ ।

[स० पु०] (म०) फूले हुए फूल, पूरा विकसित पुष्प ।

कुसुमविलास = ल०, २२ ।

[स० पु०] (म०) फूला का आनन्द, पुष्पो के द्वारा मित्त वाला आनन्द ।

कुसुमवेभव = का० ४६ ।

[स० पु०] (म०) पुष्पा का पशव्य । पुष्प हा ऐश्वय है जिमके । प्रवृत्ति वनत ।

कुसुम समान = का० १५ ।

[वि०] (हि०) फूल के महेश कामन अत्यन्त कामन ।

कुसुमहाम = का०, १५८ ।

[स० पु०] (म०) फूला मी हमा पुष्पा की हसा । मृदु सुसवान स्मित, हास्य ।

कुसुमाकर = आ० ३१ । ग० कु० १३ । का०

[स० पु०] (स०) २६२ । चि० १७३ १७५ ।

वसत ऋतु । बाग उपवन ।

कुसुमित = क० १६ । का० कु० १४ ३४ । ७२

[वि० पु०] (म०) ८२ । चि०, ३६ ८८, १५ प्र० १४ ।

म० २० । भ० ४१ ।

पुष्पित फूल हुए ।

कुसुमित कानन = का० १० । भ० १७ ।

[वि० पु०] (स) फूलो स भरा हुआ वन ।

कुसुमो = का० १८० २२० २४६ २६५ ।

[स पु] (स०) फूलो, पुष्पा सुमनो ।

कुसुमात्सव = का०, ७३ ।

[स० पु०] (म) वसत ऋतु मे भ्रमरा के द्वारा होने वाली परागक्रोडा ।

कुसुमोद्गम = का० १४० ।

[वि० पु] (स०) कुसुम का उद्गम । फूलो का खिलना ।

कुहक = का० कु० ३० । का० १०८ । म

[स० पु०] (हि०) ७८ ।

पक्षिया ता भति मधुर स्वर ।

कुहक = का० ६० ।

[स० शी०] (हि०) मामिन विरहाकुल ध्वनि ।

कुहक कामिनी = प्र० ५ ।

[स० शी०] (हि०) कामात माता का कामात विदग्ध

याणा जा प्राय एतान म हृषा करता है । कामाकुन युगता के विरहाकुल अययुन शब्द ।

कुहकनि = आ०, ३३ । का , १/८ ।

[स० शी०] (हि०) कुह कुह करनेवाला वायन ।

कुहर = का० १७० २२५ ।

[स० पु०] (म०) छत्र मुगल । गल का छत्र ।

कुहासो = ग० २० ।

[स० पु०] (हि०) कुहरा आल के मून्म रग जो वाना बरणा म भाप के रूप म जम जात है ।

कुह = का० कु० ८ का० १७६ १७८ ।

[स० शी०] (म०) चि०, १६१ ।

अभावस्या की राति ।

कुहेलिका = प्र० १६ ।

[स० शी०] (म) कुहागा कुहगा ।

कुह = आ० ७६ । का० कु०, ४२ । भ०

[स० शी०] (हि०) २७ । स० ४२ ४४ ।

मयूर अथवा कोकिल की बोयी । माठी आवाज । कसक स भरी ध्वनि ।

कुकि = चि० १८० ।

[पुव० क्रि०] (ब्र० भा०) कुक कर (० 'कुक' ।)

कूनत = चि० १ २३ ।

[क्रि०] (हि०) पक्षिया का आनन्दविभोर होकर बतबर करना ।

कूनन = का० ६४ १७८ ।

[स० पु०] (हि०) पक्षिया का मधुर ध्वनि ।

कूजित = का० कु०, १७ ।

[वि०] (हि०) बाले जा चुके शब्द । गुजित ।

कूदना = म० १२ ।

[क्रि० अ०] (हि०) एक म्यान से दूसरे म्यान पर उछल कर जाना जाने का क्रिया ।

कूर = चि० १७८ ।

[स पु०] (ब्र० भा०) दुष्ट निदय, दुराचारी क्रूर ।

कूल = आ० ४१ ७१ ७६ । का० कु०, १७,

[स० पु०] (म०) ५७, ११२ । का० २४६ । चि०,

११ । भ० ६६ । प्र०, १३, १४,

२४ । ल०, २६, २७, ७२ ।

किनारा, तट, तीर । नहर, तानात्र ।
 कुलतर श्रेणी = चि० १५० ।
 [स० पु०] (ब्र भा०) किनार पर लगी हुई वृत्तों की पत्तिया ।
 कूलन = चि०, ४८ ६३ १५०, १६६ ।
 [म० पु०] (य० भा०) कूलन का बहुवचन । (० कूल) ।
 कूलहि = चि०, १८० ।
 [म० पु०] (हि०) खानदान को, वंश श्रेणी । किनार की ।
 कूलों = का०, १२८, १६७ २६८ ।
 [म० पु०] (हि०) कूल का बहु० (० कूल) ।
 कुनदन = का० कु०, ६३ । का० २३० । म०,
 [वि० पु०] (म०) ६, १६ ।
 उपकार न माननेवाला । अग्रता ।
 कुतघ्नते = का०, ८४ ।
 [म० स्त्री०] (स०) उपकार की उपेक्षा करनेवाली वृत्ति ।
 वृत्तन का संबोधन ।
 कुतज्ञता = का०, २१८ ।
 [स० स्त्री०] (म०) उपकार माननेवाली वृत्ति ।
 कुति = का० कु०, ६१ । का० ७६ । ल०, ४२
 [म० स्त्री०] (स०) नाय क्रिया मपादित कम ।
 कृतियों = का०, ७५ ११५ ।
 [म० स्त्री०] (हि०) 'कृति' का बहुवचन ।
 कृतियों = का०, ७५, १३१ ।
 [स० स्त्री०] (स०) कृति का बहुवचन (२० कृति) ।
 कृतिमय = का०, ६५, ७१ ।
 [वि० पु०] (म०) कृत्यय स युक्त, कृत य स पूज ।
 कृत्य = का० २७३ ।
 [म० पु०] (म०) कर्म, कवच्य । अतिम सत्कार सवधो
 कम ।
 कृत्रिम = का० कु०, ५४ ८२ । का०, १६६,
 [वि० पु०] (स०) १६८, २३६ । म०, १६, २० ।
 नकलो, बनावटा ।
 कृत्रिमता = ल० ६६ ।
 [म० स्त्री०] (म०) बनावट ।
 कृत्रिमते = ऋ०, ७६ ।
 [स० स्त्री०] (म०) संबोधन (० 'कृत्रिमता' ।)
 कृपया = चि०, ७८ ।

[स० स्त्री०] (स०) कृपा से, कृपापूर्वक, दया से ।
 कृपा = का०, २५ । का० कु०, ३ । चि०, १४५,
 [म० स्त्री०] (म०) १४७ । ऋ०, ८१ । प्र० २२ ।
 दया । किसी का दया देखकर एन जाने
 वाला वृत्ति ।
 कृपा कोर = चि०, १७८, ल०, ७६ ।
 [स० स्त्री०] (हि०) कृपा की तीव्रता या छोर, अत्यधिक दया ।
 कृपाण = चि० २२ ४० ।
 [म० स्त्री०] (स०) तलवार, एक शस्त्र, अक्षि, कटार ।
 कृपाणी = ल०, ६६ ।
 [म० स्त्री०] (म०) कटारी ।
 कृपाने = चि०, ७४ ।
 [म० स्त्री०] (२० भा०) तलवार का साधन ।
 कृपानाब = प्र०, २० ।
 [स० स्त्री०] (हि०) कृपाकृपा नाब । कृपा द्वारा उद्धार
 होने का साधन ।
 कृश = का० कु०, ६४ । म०, २० ।
 [वि० पु०] (म०) दुबल, जोशकाय, कमजोर ।
 कृषक = का०, १८१ ।
 [म० पु०] (म०) किसान, हलवाहा ।
 कृषक करो = का० कु०, ६१ ।
 [स० पु०] (म०) किसान के हाथों ।
 कृषकगत = चि०, १५७ ।
 [म० पु०] (ब्र० भा०) किसान लोग । कृषक वग ।
 कृषक समूह = प्र० ७ ।
 [म० पु०] (हि०) किसानों का समूह, कृषक वग सेती
 करनेवालों का झुंड ।
 कृषि = ऋ०, ६३ ।
 [स० स्त्री०] (स०) खेती ।
 कृष्ण = चि०, ६८ । का० कु० ११३ ।
 [वि० पु०] (स०) कालावण । काला । श्याम । श्री कृष्ण,
 मगवान कृष्ण ।
 [कृष्ण—आनन्दवादी एक विवेकवादी पौष्टशक्तना-
 सपत्त आठवें अवतार । यमुत्त्व एक
 देवका के पुत्र । द्वारका म राज्य गाकुन
 बुदावन का गभूमि । मयुरा मे कथ वध ।
 महाभारत व मुद्गस्थान कृष्ण दश म

अञ्जुन के मारयी। जरासन्ध, शि पाल केसा जस भयकर दानवो स लावा डारव। गोपियो के परम प्रेमी रमिया तथा हिन्दी साहित्य के राति शृंगार व ध्रालवन एक अनेक बप्पव सप्रदायो क मुख्य धाराध्य भगवान् ।]

कृष्णप्रभात्र = का० कु० १ ३ ।

[म० पु०] (म०) श्रीगृष्ण के प्रभु व स ।

कृष्णमाम्त = का० कु०, ११३ ।

[म० पु०] (सं०) कुटिल वायु ।

कृष्णवर्ण = का० कु० १२३ १२४ ।

[सं० पु०] (सं०) श्याम वर्ण, पक्का रंग । काना रंग ।

कृष्णसिंह = म० १० ।

[सं० पु०] (हि०) राणाप्रताप की सेना का एक प्रमुख मन्त्रिक ।

[कृष्ण सिंह—राणा प्रताप का सेना के विश्वस्त सरदार म से एक । ये सालुजाबि पति थ । इहाने अमर सिंह द्वारा रहीम का पत्ता के वदा बनाये जान का खबर महाराणा प्रताप तक पहुँचाई था ।]

कृष्णा = चि , ३१ ६३ । ल , ६८ ।

[म० स्त्री०] (सं०) काना श्यामा । यमुना नदा कृष्णा नाम की एक विशिष्ट नदी । द्रोपदा । काला दवी ।

[कृष्णा—प्रमराज्य' (विद्यापार) मे उत्तरिखत दक्षिण भारत का प्रमद नदा जा महाबलशबर के पास स निबन्धर वगल सागर म गरता है ।

[कृष्णा—^{२०}—द्रोपदा ।]

कृष्णा की नजतरलवीच = चि० ६८ ।

[सं० स्त्री०] (ब्र० भा०) कृष्णा की नई नद प्रवृत्तमान चमकता लहरें ।

कृष्णामुखसिंका = ल० ७५ ।

[सं० स्त्री०] (सं०) एक विशिष्ट मुगलिन द्रव्य का वना ।

केंद्र = का० ५८ १८७ २७२ ।

[म० पु०] (म०) निमा वृत्त या परिधि व ठान बाधा बीच का बिटु । नाभि । वह मून स्थान

जहाँ मे चारो ओर पसे हुए कायों का प्रचव होता है । बीच या मध्य ।

केंद्रियुत = का० कु० ६२, ११२ ।

[वि० पु०] (म०) स्वानभट्ट । अपना जगह स ट्टा हुआ । घुरीहीन ।

केंद्रीभूत = का० ८ ।

[वि० पु०] (म०) जा एत्र हुआ हा । एत्र स्वान पर गकनित या घनाभू ।

केंद्रों = का० २३६ ।

[म० पु०] (हि०) केंद्र का बहुवचन । (^{२०} केंद्र ।)

केतरी = का० १४२ । चि० ५५ ।

[म० स्त्री०] (हि०) केवटा । एक रा गनी का नाम ।

केतन = का० कु० ६४ । ल , ७७ ।

[म० पु०] (म०) निमरण । धजा । चिह्न । घर, भवन । स्थान जगह ।

केतिक = चि० ६ ।

[वि०] (ब्र० भा०) कितना । कितन । कितना ।

केतु आकार = म०, ७ ।

[वि० पु०] (म०) वलु क रूप का ।

कतो = च० १८७ ।

[वि० पु०] (ब्र० भा०) कतना । प्रश्नवाचक श ^२ ।

केरो = चि० १४४ ।

[सं० पु०] (ब्र० भा०) कर्तो ।

केलि = चि० १४७ १५४ ।

[म० स्त्री०] (म०) रति । मधुन काडा ।

केलिहि = चि० १४६ ।

[म० स्त्री०] (ब्र० भा०) काडा का ।

केली = चि०, ४६ ५६ १४७ ।

[वि० स्त्री०] (ब्र० भा०) ^{२०} कलि ।

केरल = श्री०, ६ २५ । क०, १६ २८ । का०

[श०] (हि०) कु० १३ ८३ । का० ७, ८ ५५

[वि०] ७५ १०५ १०६ १२७ १२८ १३२

१४८, १६३, १६७, १७० १७७

१६६ २०८, २३८ २४२ २४५

२५२ २६४ २७०, २८७ । चि०, ६,

१७३ । म० ४० ८१ । प्र०, १७

२ २३, २४ । म० १८ २४ ।

निप एक मात्र धकता ।

केश = चि० ४०, ६७।
[स० पु०] (म०) बाल। विष्णु। किरण। वर्णा।
विश्व। ब्रह्मशक्ति का एक भेद। एक
दय का नाम।

केश अथली = चि ५५।
[म० पु०] (म०) मवारा हुई किन्तु बिना बधी लट्टे।

केशभार = का०, १५६।
[म० पु०] (म०) अन्ना का भार। वज्र का वाक्।

केशर = का० कु० ३७। चि०, १६१।
[म० पु०] (म०) एक मुगधित द्रव्य। एक प्रकार का
पुप। घाडे या सित के गदन पर लट
वत हुए बान (अयाल)। नागकशर।
बबूल। मौलसिरा। पुनाग। हींग का
वृक्ष। कमीम। स्वग। एक विप।

केशरी = चि० १६१। म०, १३।
[स० पु०] (म०) मिह। घाडा। पुनाग। एक प्रकार का
नावू। हनुमानजा क पिना। एक
प्रकार का कपटा।

केशज = का० कु० ११७।
[म० पु०] (म०) विष्णु। वृष्ण।

[केशज—'वृष्ण'। विष्णु क केश म उ पत्र होने
के कारण केशज नामकरण।]

केशव सग = का० कु०, ११३।
[म० पु०] (हि०) भगवान् वृष्ण क साथ।

केशर = ग्रा०, ६२। का, १७४, २०१।
[म० पु०] (हि०) चि०, ११३।
(२० 'कशर')।

केशररज = का०, २०२।
[म० पु०] (म) पाताभ एक मुगधित एक द्रव्य। केशर
का मकरद।

केशरकिशोर = का०, २७७।
[म० पु०] (हि०) सिंह का तरख पुत्र।

केशरिशाजक = चि०, ४०।
[म० पु०] (हि०) मिह का बच्चा।

केशि = चि० ३० १/१, १५५।
[सब० पु०] (ब० भा०) कितका किमका।

केशि = चि०, ६ ४०।

[वि०] (ब० भा०) कितना। अथवा। कने।

केशि = चि०, ६, १८१।

[ब्र०] (ब० भा०) या किया, मानो।

केलास = चि०, २८७।

[म० पु०] हिमाजय पर्वत की एक चोटी जिगपर
(ब० भा०) भगवान् श्वर का निवास है।

[केलास—मानसरोवर क उत्तर म म्थिन हिमाजय
की चोटी जा गिव का स्थान है।
२०—नामायना का कथा और चिन्तन।]

कैसा = ग्रा०, ३७। व० १० १३ २६।
[म०] (हि०) का०, १० ८५ १४६, २८४ १६६
२०४, २४८, २६६। प्र०, १८, १६
२५। म०, १, ६, १०। ल०, ४७,
६२, ६८।

किसी प्रकार का। किमी ढग का।
किना प्रकार का नहीं।

कैमी = ग्राँ १४। क०, ८। का०, १३, २५,
५१, ८० ६१ १००, १२४ १२७,
१८६, २११, २३७ २४३, २८०।
प्र०, ३, ४, १८। म० ७, १६।
२० कमा'। (खी लिंग)।

कैसे = क०, १२ २७। का० २६ ४०, ७७,
[कि० वि०] (हि०) ६०, ११७ १२० १२४, १३२,
१७७ १७८, १८६, १६२ १६४
२०१, २१२ २२६, २३८, २८५।
चि०, १८७। प्र०, २, ११, २०। ल०,
१०, ११।

किम प्रकार से, किम ढग से। कयो
विस लिय।

कोर्टी = ग्रा० ३५, ३६, ४०। व०, १६।
[सब० पु०] (हि०) का०, १७, २८, ३२ ५२, ६७, ८१,
१०५ ११५ १२६, १३३, १४५,
१८५, १६० १७५, १७७, १७८,
२०६ २११, २१२, २४७, २६१,
२६६, २८७, २८८। प्र० ३, ६, १३,
२०, २५। म०, १२, १६। ल०, ३१,
४४ ७७।

तेमा जो अशत हो । अविशेष परतु
अथवा शक्ति ।

[कोई खोजो—हम, वर्ष १ के अत २ अत्रल
३० म प्रकाशित वामायनी त राम राम
का अंश । ०—वामायनी ।]

कोड = वि०, २६ १७ ।

[सं० पु०] (श० भा०) ३० 'कोई' ।

कोक = वा०, ८२ ।

[सं० पु०] (सं०) चक्रवान । चक्रवा पक्षा । रतिशाम्य व
एत आचार्य । विष्णु । भटिया ।
जंगली खजूर । मेक ।

कोकनद = ऋ०, २६ ।

[सं० पु०] (सं०) अरण्य कमत, लाल कुपुत्री ।

कोकिल = वा० कु० १७, ४८ ६६ । वा० २०

[सं० पु०] (सं०) १७५, १७७ । वि० ११ । ऋ०, २६
५६, ६६ । प्र०, ११ । ल०, ४४ ।
कोयल । नीलम की छाया । ए प्रवार
का चूहा । छप्पय का एक भेद ।

[कोकिल—दु कला ३ विरहण ४ माच १६१२ म
संवप्रथम प्रकाशित और काननकुमुम'
म पृष्ठ ४८ ४९ पर सञ्चित । नया
हृदय है नया समय है, नया कुज है
नव कमलाल खिल है तुम्हारा नया
राग मनोहर और मधुर है तुम्हारा
नया कठ कमनीय है । यद्यपि कोकिल
तुम्हारी ध्वनि अनात है पर मादमय है
और हम मुनकर मन शीतल ज्ञात और
विशोन्मय होता है । नए रसाल
विकसित है और मधुर मदमत्त हैं । तय
गकरद से भरे है डाल डाल मे मलय
मञ्जु हिलान पदा वर रहा है । काकिल
तुम रसाले राग से क्या मधुमय गान
गा रहे हो । चंद्रमा नभ म आचर इस
आशा म रता हुआ है कि तुम्हारा नव
भाषा से कुछ अथ निकाल ल । तुम नए
उत्साह से अविरल गाओ । गाओ
मलयज पवन मे स्वर भरन के
लिय गाओ ।]

कोकिला = वा० कु०, १६ ४२, ४३ । वि०, २३

[म० स्त्री०] (म०) १७१, १७२ । ऋ०, ६६ ।
माता वायन । गिरा ।

कोकिला कलत्र समान = वा० कु०, १६ ।

[वि०] (हि०) वायन को ध्वनि व समान । माठी
पावाज ।

कोटरमुत्त = वा० कु० २५ ।

[सं० पु०] (म०) वृत्तगृह का द्वार । पठ के खोखल
भाग का रास्ता । घामल का मुष ।

कोटि = वि० ४२ १७७ ।

[सं० स्त्री०] (सं०) धनुष का तिरा । सी लार की सस्या ।
तलवार का धार । श्रंगा । पद । दर्जा ।

कोटि-कोटि = वा०, १६० ।

[वि०] (हि०) कराडो । अनेक । बहुत ।

कोटिहुँ = वि०, २२ ।

[सं० स्त्री०] (श० भा०) करोडो ।

कोण = का०, १७६ ।

[सं० पु०] (सं०) काना । दो दिशाओ के बीच की
दिशा । विदिशा । दा साधा रेखाओ
के परस्पर मिलने का स्थान ।

कोदड = वि० ६६ ।

[म० पु०] (म०) धनुष । कमान । भीड़ ।

कोना = वा० १२, ३६ ६३ ७०, ७६, ८६,

[सं० पु०] (हि०) २०८ । प्र० १, १ ।
जुवाला । छोर या तिनारा । एक
बिंदु पर मिलता हुई ऐसी दो रेखाओ
का अंतर जा फिर एक नहीं होती ।
एकत स्थान ।

कोने कोने = ल० ६३ ।

[क्रि० वि] (हि०) प्रत्येक स्थान । प्रत्येक कोण मे ।

कोर्ना = व० १५० २१५ ।

[सं० पु] (२० भा०) काने का बहुवचन ।

कोप = वा० कु० २० । वि० ७४ ।

[सं० पु०] (सं०) क्रोध गुस्सा रिस ।

कोपल = वि०, १४६ । ऋ०, २६ ७६ ।

[म० स्त्री०] (हि०) म०, ८६ ।

वृत्त की नवीन कामल पत्ती ।

कोपि = वि० ४१ ।

[पूव० स्त्री०] (ब्र० भा०) क्रोध या गुस्सा करवे ।

कोपित = चि० ध२ ।

[वि०] (हि०) क्रापित ।

कोपे = चि० १०३ ।

[त्रि०] (श्र० भा०) क्रोध करे ।

कोमल = भा० २२ ३०, ३६ ६६ । व०

[वि०] (सं०) १७ । का० कु०, १, ३३, ५३ । का०, २३ ४६ ५०, ६३, ६८ ८८ ८३ ८५, ९७ १०० १०४ ११८, १४२ १४४ १४८ १५१, १८०, १८२ १८४, २१३, २८८ २६३, २८५ । चि० २ ५७, ७१ । प्र०, १ ० ७ । ल०, ६ १०, १४, २१ ।

मृदुन । मुनायम । उ०—वामन विमलय व अचन म नष्टा रतिना ज्या छिपती मा ।—का० ६७ । परिपक्व । मुदर, मनाहर । स्तर वा एन भेद ।

कोमलकूट = प्र०, १६ ।

[मं० पु०] (सं०) मृदुन गला । जिम गल स मधुर महान स्वर निबन् ।

कोमल काय = चि०, १७० ।

[सं० पु०] (सं०) मृदुन तन ।

कोमल किसलय = चि०, ५६ ।

[सं० पु०] (सं०) कोमल नया पत्ता । कन्ना ।

[कोमल नसुमों की मधुर रात—'लहर' पृष्ठ २५

पर सबलिन गात । शशि और शतदल वा मुखविकाम हो रहा है जिमम निमल हाम हो रहा है । यह मलय वात कोमल विमलयवासी मधुर रात का नाम है । लाजमरा अनत कलिया (तारा क) परिमल क घूघट म ढक्कर चुप चुप, कप कप कर ज्यस बाल कर रहा है । नक्षत्रकुमुमा का अलम माला स शिथिल हास्य व सत्रल जाल मे विरनी व पत्ते खुलत है और वे अधीर हा गिंशिर मुगध नार म गिरत है । एमी कामल कुमुमा का मधुर रात म विश्व पुलकित हो रहा है ।]

कोमलगात = चि०, १४१ ।

[सं० पु०] (हि०) मडुल तन, मनोहर गरीर ।

कोमलनाद = चि०, ५१ ।

[मं० पु०] (सं०) मृदुन और मधुर स्वर ।

कोमलता = भा०, ६६ ।

[मं० श्लो०] (सं०) मृदुनता, मुनायमपन, नरमता ।

कोय = चि०, ४ ।

[मव०] (ब्र० भा०) २० कोई ।

कायल = का०, कु०, ३८ । का० ६३ ।

[मं० श्लो०] (हि०) एन काल रग का पक्षी जिमका स्वर उडा माडा हाता है । कोकिल । पिक ।

कोलाहल = का० कु० १०१ । का०, ८ २५, ६४,

[मं० पु०] (सं०) १००, १४४, १८६ २३६, २५०, २६६ २६७ । चि० ४२ । क०, ३० । प्र० १३ । ल० १४, ६८ ७७ ।

विहाग क मिश्रण म बना एकराम । हल्ना । शार ।

कोलाहल कलह = का०, १६४, २१६ ।

[मं० पु०] (हि०) मधव वा स्तर । दगा कयाद के ममय वा शार पुन ।

कोय = का० कु० ७७ । क०, ४४ । ल०, [मं० पु०] (सं०) ७६ ।

वाना । विनारा । धार । अल की धार वा नोन । ताव, गव । द्वेप ।

कोरन = का० कु०, १०१ । का० ६३ ७३ ।

[सं० पु०] (सं०) कली । मुकुल । पून या कनी के बाहर वा हरा भाग । कमल की नाल । बागव नामक गव द्रव्य ।

कोरदार = क०, ८१ ।

[वि०] (हि०) नुरीला, चाख, चुभननाला । शानदार ।

कोरी = भा०, ३० । का० कु०, १६ ।

[मं० पु०] (हि०) मोटे कपड बुननेवाला एक जाति । हिंदू जुलाहा । कोडी । कोरदार ।

[वि०] अछूता । नवान ।

कोरा = का० कु० ३६ ।

[मं० पु०] (सं०) अड । अडा । अडकाश । दिव्या । फून की कनी । आवरण । गिलाफ । काल के अनुमार पाच सपुट जा शरीर म हान है ।

कोय = का० १०१ ।

[सं० श्लो०] (हि०) विजला की चमक । उ०—बहु कौय कि जिमम अतर का शीतलता उडक पाती हो ।

कौड़ी के मोल = ल०, ७४।

[सं० पु०] (हिं०) बहुत ही निरुष्ट, गस्ता। कम दाम वा। गयागुजरा। (मुहावरा)।

कौड़ी के तीन = चि० १५६।

[सं० पु०] (हिं०) बहुत सस्ता। तुच्छ होना। गया गुजरा (मुहावरा)।

कौतुक = आ०, ३३। का० कु० १८ ६१।

[सं० पु०] [वि०] का०, ७०, १६१। चि० १४२।
(सं०) कुतूहल आश्रय। अचभा। विनोद, टिल्लगी प्रमत्तता। क्राडा।

कौतुकवश = प्रे० १५।

[क्रि० वि०] (सं०) कौतुक व कारण। तमाग व वारण।

कौतूहल = आ० १६। ऋ० ७४।

[सं० पु०] (हिं०) कौतुक तमाशा। (० 'कुतूहल')।

कौन = क० १२ १५, १६ ३१ ७५। का०

[सव०] (हिं०) १३ १६ १७ २४ २६ ३७ ४५, ५०, ६७ ७७ ८४ ८६ ८७, ९० ९१, ९७ ९९ ११० ११३ १२० १२३, १२४, १२५ १२७ १२९ १६९, १७७ १८३ १८९ २०१ २१० २१९, २३८ २४५ २६१ २६५। चि० ५। प्रे० १ ६ ८, १२ १३, १८, २२ २३। म० ८ ८ १५। ल० १० ११, ३४, ४७ ५७। प्रश्नवाचक सवनाम जिनके द्वारा अभिप्रेत वस्तु या व्यक्ति पूछा जाता है। विभक्ति लगन पर कौन का रूप किम हा जाता है। कितनी प्रकार का।

[कौन—माधुरा, वष ८ खड १ म० १ मद् १६२९ ३० म सवप्रथम 'कौन' शीवक स प्रशानित कामाक्षी के वामना सग का यह अश कौन हा तुम खीचने यो मुझे अपनी आर' से 'क्यों न वस हा खुना यह हृदय रड कपाट' तक वा अश। कामायनी पृष्ठ ८६-८७। ०—वामायना।]

[कौन प्रकृति के कारण काल्य सा—०—विपाद और भरना। कौन प्रकृति व कस्य

वाय मा' जाप म मवप्रथम, मागुरी, वष ३ खड २, म० १, सन् १६०। म प्रशानित और 'विपाद' शीव स भरना म पृष्ठ ३०-३१ पर मवन्त।]

कौरसो = चि० १८१।

[वि०] (ब्र० भा०) निम प्रवार वा। कमा।

कौमुदी = का० ८८। चि० २३। भ० ८५।

[सं० स्त्री०] (सं०) ज्यात्मा। चीत्ना। कानिना पूर्णिमा। कुमुदिनी। कूई।

कौरवनाथ = का० कु० ११०।

[सं० पु०] (सं०) कौरवराज। दुर्योधन।

[कौरवनाथ (कौरवाधिप)—दुर्योधन। धुतराष्ट तथा गांधारा व एव शत पुत्रा म ज्यष्ठ। महाभारत का युद्धचानक तथा स्वय नायक। भाम द्वारा गन्धुद म वष। शूर अनाचारा तथा द्रौपदी का चार हरण करनवाला। भाष्म अश्वत्थामा वण आदि महारथा महाभारत म इसका आर थ।]

कौरवाधिप = चि० ९६।

[सं० पु०] (सं०) कौरवा का राजा दुर्योधन। (० कौरवनाथ)।

कौशल = का० ६९ १२२। चि० ४२।

[सं० पु०] (सं०) कुशलता। निपुणता। वतुर्दार। गुण। किमा काय का अच्छी तरह करने का क्षमता। काशन देश का निवासी।

कौशिक = क० ३०।

[सं० पु०] (सं०) विश्वामित्र।

[कौशिक—० गालव।]

कौशेय = का० २६३। प्रम ४।

[सं० पु०] (सं०) देशी वस्त्र।

कौस्तुभ = चि० १६२।

[म पु०] (म) सागरमयन स निकला एव रत्न जिस विशु अपन हृदयस्थल पर धारण करत थ।

क्या = आ० ४०। क० १४ २२, २६ २७

[सर्व०] (हिं०) २८। का० ५८ ४०, ५१ ५२ ५६,

[सं० विम्] ५७, ६३, ६६, ६७, ६९, ७५, ८४,

८५, ६२, ६४, १०४ १०५, १०६
 १२८, १३० १३१ १३४ १४०
 १४४ १४६ १५८ १६२ १७०
 १८३, १८० १८२ १८४, १८५
 १८६ २०५, २१६ २१८ २२०,
 २३० २३४ २३७, २४० २४७
 २४८ २५० २५४, २६०। प्र० २
 ४ ५ १० २०, २०। म०, २ ६,
 ११, २३। न० १०।

अभिप्रेत वस्तु का जिनामा का सूचक
 शब्द। कौन सी वस्तु या बात ?

[क्या कहें] क्या नहीं मैं भ्रमपुत्र रामायणी का
 यह अर्थ मन्वप्रथम प्रमा' म जनवरा
 १६२१ म प्रकाशित हुआ था। १० -
 कामायनी।]

क्यारी = घा० १८। रा० कु० १६। वा०
 [म० मी०] (हि०) १८०। चि० ३८। म०, २६ ५२।
 म० २०।

नन रा एक विभाग, कियारा।

[क्या सुना नहीं कुछ अभी पडे सोते हो—'जन
 मेजय का नागधन' म मनमा और
 उसकी मन्विदा द्वारा उद्वाधन गान।
 प्रमाद मगत म पृष्ठ ७० पर मन्विलि।
 यह गान नाग मन्विदा व लिय गाय
 गया है। अर्थात् साण हा शत्रु चढा बना
 आता है तब भी तुमम आवन नही
 जाताय मान व शव पर रो रह हा।
 धिक्कार और अवहता का बलिहारा है।
 सुप पुत्र्य हा दि नारा। कहे दासता
 जलन ल और तुम्हारे देवत दवत कुन
 लननाए नाछिन न हा जाय। अयण
 का बीज बा रह हा। और—

अन स्वत्वा स स्वय हाव धान हा।

क्या निज स्वत्वता का लजा खोले हा।]

क्यों = घा० ८। व० २६। का ६ ३८
 [क्रि० वि०] (हि०) ३६ ४० ५२, ६५ ६७ ८। ८६
 १०४, १४६, १५० १६१, १८६
 १८६ २०१, २०५ २१० २१४
 २१५ २१६ २३४, २३६ २४६
 २५७, २७२, २८०, २८२, २८५।

प्र०, ६। म०, १, २१। न० १०।
 निमा निय, निम हनु निम बात की
 जिनामा के कारण का सूचक।

न्योनि = व०, ३१। वा० १६८, २०७। प्रि०
 [क्रि० वि०] (हि०) ६। म० १०१।

इम कारण यह कि इमत्तिय नि

मन्वतन = घा०, १४। वा०, कु० २५। वा०
 [न० कु०] (सं०) १५, १२१ १७१, १८५, १६१
 १८८। ल० ६। ७०।

रोना, विनाप करना।

क्रदन्ध्वनि = ल०, ४६।
 [म० मी०] (म०) विलाप का स्वर।

क्रदन्मय = वा०, १२।
 [वि०] (म०) विलाप व साथ।

क्रतुमय पुत्र्य = वा०, १८०।
 [म०] (म०) यन पुत्र्य। विलाप।

क्रम = वा० कु०, १८ ८८।
 [म० कु०] (म०) ढग भरन का क्रिया। तरतीत। मिल
 मिला। उच्चिन् रूप म कार्य वगन की
 प्रणानी।

क्रमश = वा०, १४।
 [क्रि० वि०] (म०) क्रम म। धारे धार। मिनमिलेवार।

क्रय विक्रय = प्रि० ७।
 [म० कु०] (म०) व्यापार राजगार। गरीदन उचन का
 क्रिया।

क्राति = गति। चाल। उलटकेर परिवतन।
 [म० मी०] (सं०) वह कल्पित वृत्त जिमपर मूर्ध पृथ्व
 क चारो ओर घूमता नजर आता है।

क्रिया = व०, ३१। वा०, २६२ २७२।
 [म० म्वा०] (म०) कम। प्रयत्न। काशिय। किसी कार्य
 का किया जाना।

क्रियातत्र = वा० २६६।
 [म० कु०] (म०) काम मे लगा हुआ व्यक्ति। क्रियाशान।
 क्रौडत = चि०, ६३ ६६, ७३।
 [पूर्व० क्रि०] (ब्र० भा०) खेलत हुए।

क्रौडा = घा०, १२, ५१, ७३। का०, कु०,
 [म० मी०] (सं०) २२ ४६। का०, २३, १११, १२२
 १७८, १८५। चि०, १५७। म०,

४४, ४६, ६० । प्री०, ८, १०, १६ ।
ल० २०, २२, ३०, ५४, ६० ।
खेलकृत । आभो-प्रभो । ताल वा
एव भेद ।

श्रीकाव्य = प्र० २५ ।

[सं० पु०] (मं०) प्रीडा विनोद करने वा कृत् ।

श्रीकाव्य = ५०, ६ ।

[सं० पु०] (मं०) सल वा पतावाजी । दिनगा ।

श्रीकाव्य = वा ७० ।

[सं० पु०] (मं०) आभो-प्रभो-प्रभो करने वा म्यान ।

श्रीका नौकाय = वा० १५६ ।

[सं० स्त्री०] (हि०) तज चतनवाजा नौकाए ।

श्रीकापूर्णा = वा० कु०, ८६ ।

[वि०] (सं०) आभो-प्रभो स भरा हुआ । चवन ।

श्रीकामय = वा० २६ ।

[वि०] (मं०) चल को भावना से भरा हुआ । आभो-
व साथ ।

श्रीकावरा = प्र० ५ ।

[क्रि० वि०] (सं०) खेलकृत के कारण ।

श्रीकाशील = का० कु० ५४ ।

[वि०] (५०) खेलाडी । आभो-शील ।

श्रीकासर धीच = वा कु० २४ ।

[सं० पु०] (हि०) उस मरोवर के बाव जिसमें आभो-
प्रभो होता है ।

श्रीकित = वा० ४६ ।

[वि०] (मं०) खेलते हुए ।

श्रीकाता = वा० १४२ ।

[सं० स्त्री०] (सं०) पातापत्र क्षीणता ।

श्रीकृ = का० कु० १०६ । का०, १५ १७ ।

[वि०] (सं०) क्रोध से पूर्ण । क्रोध म लाल ।

श्रीकृ = ५०, १३, ३१ । का०, कु०, ८ ६३

[वि०] (मं०) ६८ । का०, १३ २०० । मं० २ १५ ।
दूसरे को कष्ट पहुँचानेवाला परपीडक
निर्णय निष्ठुर नाच बुरा खराब ।

श्रीकृता = वा० कु०, २०६ ल० ६८, ७१ ७६ ।

[सं० स्त्री०] (सं०) दुष्टता निन्द्यता, निष्ठुरता, बढारता ।

श्रीकृ = वा०, २४३ ।

[सं० पु०] (मं०) गा, भक्त, गागा । आनन्दन वान म
नोना भुजाया व बाव का मन्थ । वृत्
वा काट ।

श्रीकृ = वा० कु०, १७ १०५ । वा०, १२६

[सं० पु०] (मं०) १८ । १८६ १८८ । वि०, १३ ५३,
१७६ । मं० ४३ । मं०, २ ६ । ल०,
६५ ७७ ।

श्रीकृ रात्र गुम्मा ।

श्रीकृ मोह = वा० २२७ ।

[सं० पु०] (मं०) गुम्मा श्रोत्र प्रम ।

श्रीकृानल = वि० १०० ।

[सं० पु०] (मं०) क्रोध का अग्नि ।

श्रीकृधत = वा० ११ । वि०, ४२ ।

[वि०] (मं०) कुपित क्रुद्ध नाराज ।

श्रीकृलत = वा० कु० १२ । वा० ५२ १६१

[वि०] (सं०) १६६ । मं० २५ ५२ ६२ ।

श्रीकृलत घना हुआ, मुग्धकाया हुआ ।

श्रीकृलति = मं०, ६२ ।

[सं० स्त्री०] (मं०) परिश्रम । धवावट ।

श्रीकृश = वा० कु०, ७ ।

[सं० पु०] (सं०) दुष्ट कष्ट, विपत्ति । लडाईं मारपीट ।
व्यथा वेदना ।

श्री

श्रीकृ = आ० ५८ । वा० कु० ६८, ६६, १०३ ।

[सं० पु०] (सं०) वा० १८ १२८ १६२ १६२, १६५,
१६१ १६६ १६७ २०१, २२०
२६६ । मं०, २६, ७८ । ल० २१,
४३ ४६, ७४, ७७ ।

कात या समय का सबसे छोटा मान
पल वा चौथाई भाग । काल अक्षर
नौका ।

श्रीकृ श्रीकृ = वा० १५ १२३ २१२ । ल०, ६७

[सं० पु०] (सं०) ६८ ७० ।

हर एक मगय प्रत्येक समय ।

श्रीकृभगुर = प्र०, २३ । ल० ४८ ।

[वि०] (सं०) थोड़े समय में नष्ट होनेवाला, नष्टवर ।

अनित्य । श्रीकृ भर म विनष्टि को प्राप्त
करनेवाला ।

क्षणाभर = का० कु० ७६, २१६। का० १८६,
[स० पु०] (हि०) २५३। अ० ४४। म० ३।
थोड़े समय का सूचक शब्द, पलभर।

क्षणिक = का०, ५५, १२४, २६८। प्रे० २५।
[वि०] (म०) = क्षणाभर, अनित्य, क्षण भर ठहरने
वाला।

क्षति = म० ४।
[म० स्त्री०] (म०) हानि नुकसान, अपकार, अनिष्ट क्षय।

क्षत्र = का० १६२।
[स० पु०] (स०) बल। राष्ट्र। घन। शरीर। जन।
क्षत्रिय। छत्ररा।

क्षत्रिय = म० ७, १०, १२।
[म० पु०] (स०) '० क्षत्रो'।

क्षत्रिय जाति = का० कु० ११२।
[स० स्त्री०] (स०) क्षत्रिय वग या विरादरी। क्षत्रिय
समूह।

क्षत्रियोचित = का० कु० ११६।
[वि०] (स०) क्षत्रिया क लिये उचित। वारोचित।

क्षत्री = चि० ६५ ६७।
[म० पु०] (म०) भारत क चार वंशा म एक। एक
भारताय जाति जिमपर दश का रक्षा
श्रीर शासन का भार मापा गया था।

क्षत्रीन = चि० ६५।
[स० पु०] (श्र० भा०) क्षत्रा शब्द का बहुवचन।

क्षमता = आ०, ४०। का० कु०, ११३। का०
[स० स्त्री०] (म०) १५७ १७१, २६१।
सामर्थ्य। योग्यता। किसी काम का
करने की शक्ति।

क्षमद् = चि० ७४, ६१।
[क्रि०] (श्र० भा०) क्षमा करो। मुवाफ करा।

क्षमा = क०, २१। का० कु०, ६६। का०
[म० स्त्री०] (म०) २०७ २३८, २४०, २४२। चि०,
६८, ७६, ६६। म० २१।

क्षित का वह वृत्ति जिससे मनुष्य दूसरो
के द्वारा पहुँचाया हुआ कष्ट सह लेता
है और उसके प्रतिवार या दंड की
इच्छा नही करता। सहिष्णुता। पृथ्वी।
दुगा।

क्षमा करना = का० कु०, ११३।
[क्रि०] (हि०) प्रतिवार की भावना न रखना। किसी
के अपराध का मुवाफ करना। भाफ
करना।

क्षमानिलय = का० २४६।
[म० पु०] (म०) क्षमा का घर। क्षमा का निवास-
स्थल। क्षमा मंदिर।

क्षय = का० १८३।
[स० पु०] (म०) धीरे धीरे घटना। नष्ट होना। ह्रास।
प्रत, समाप्ति।

क्षत्र = चि० ४१।
[वि०] (स०) क्षत्रिय का। क्षत्रिय मयवी।

क्षत्रधर्म = चि० ४१।
[स० पु०] (म०) क्षत्रिय जाति का धर्म जस—अध्ययन,
दान, प्रजापालन और शासन।

क्षिति = का०, १५७।
[स० स्त्री०] (म०) पृथ्वी। घर वामस्यान। क्षय।

क्षितिज = आ०, ८। क०, १३, १५ ३१ ६७,
[स० पु०] (म०) ७०, ८१ ८० ६६५, १७१, १७१,
२४५। अ०, ३३, ८४। ल० १०, २७।
वृत् स्थान जहा पृथ्वी और आकाश
मिला हुआ दिखाई देता है। पृथ्वी से
उत्पन्न, पेड़, वृक्षादि। मग्न ग्रह।

क्षितिजपटी = आ० २२। का०, १६३।
[स० स्त्री०] (म०) क्षितिज रूपा पटिया। नितिज रूपी
परदा या वस्त्र।

क्षितिजभाल = का० १७५।
[म० पु०] (म०) क्षितिज का ललाट या क्षितिजरूपी
ललाट।

क्षितिजवेला = ल०, १४।
[स० स्त्री०] (म०) क्षितिज का तट या किनारा, वह स्थान
जहा आकाश और पृथ्वी मिले हुए
दिखाई देते हैं।

क्षीण = का० कु०, १२५। का०, १५, १५६,
[वि०] (स०) १७५।
दुबला पतला, दृश। क्षतिग्रस्त। क्षय-
शील घटा हुआ।

क्षीणगध = ल०, ७५।
[स० स्त्री०] (स०) हनुवी मूक। मद मुरभि।

श्रीगणेशोत्सव = १।० व०, ५७।
 [म० पु०] (म०) पारना पारना वह प्रगाह जा पत्तन
 न बहना हा।

श्रीर = भ० ५।
 [म० पु०] (म०) दूध। द्रव या तरल पदार्थ, जन। गण
 का रस।

सुद = १०, २७। १। १६ १६३ १६५
 [वि०] (म०) १६४। भ० १। म०, १२।
 रूपग। अथम नाच। छाया या पाडा।
 दरिद्र।

सुदस्ता = १० ६६।
 [म० मी०] (म०) रूपगता, अथमना नाचपन, छायापन
 दरिद्रता।

सुधित = म०, १२।
 [वि०] (स०) भूषा सुधा स युक्त।

सुध = १।० ५२, १८१, १८६ १८६ १६५।
 [वि०] (म०) चि०, ६७। भ०, ३७। म० ११।
 जिम क्षाम हुआ हो। चचन। व्याकुल।

सुत्र = १।० २६६।
 [म० पु०] (म०) श्वेत। भूमि का बडा या लडा चींग
 टुकडा भूल। प्रदश स्थान। रत्नाश्री
 या सामा आदि से घिरा स्थान। वह
 भूभाग जो अपने भौगोलिक प्राकृतिक
 या राजनातिक कारणों से कोई विश
 पता रखना हो धार्मिक या पुराना
 स्थान नाथ। वह स्थान जहाँ नद्याधिया
 का मुपन भाजन मिलता हा।

सुत्रम = भ० ६१।
 [म० पु०] (म०) मन्त्र हानि या नाश आदि स किसी
 वस्तु का बचाना रक्षा, सुरक्षा। कुशल
 मंगल मुख, आनंद। मुक्ति।

सुत्रो = १।० वु० ६२। का०, १८६ २१८।
 [म० लो०] (स०) भ०, ३८। म० २०। ल० ७१ ७२।
 सुत्र होने की अवस्था या भाव।
 व्याकुलता। भय रज शक्त क्रोध।

स

सज्जन = १।० वु०, ६७।
 [स० पु०] (म०) सडरिन ममाल शरत् श्रीर शातकाल
 मे दिखाई देनेवाला एक पक्षी।

[मन्त्र—दृष्ट बना १ मन् १, किम्प २, पत्रयदा
 १६१४ म गाप्रथम प्रवागित तथा
 कामनकुमुन' म गृध ६६-६७ पर
 मन्वित। शरत् का वगन चार चार
 पक्षियों त चार पक्षी म रगात्मक तम
 म विद्या गया ३ श्रीर घत म रजन
 तमन का रानि पाचये प म है।
 यथा—

श्रीर नावाञ्चल युगन य दा यही पर मन्व
 ३ भना मन्व का धरति म ये भेनन
 यथा समय या यस्मिन्दाई पट गण कुछ ता कडा
 म य क्या जीवन गरु व प्रथम रजन ग्रहा।]

सट = १।० १६, ८७ १०४ १६६ २१७।
 [स० पु०] (म०) चि०, १६०। भ० २२। ल०, ५६।
 अश टुकडा विभाग।

सडहर = १।० १६०। प्रे०, २०।
 [म० पु०] (हि०) दूट या गिर दृष्ट मकान भवन या
 प्रमाण का अवशिष्ट भाग।

सग्ग = १।० वु० ६६। १।० २०६ २८४।
 [म० पु०] (म०) चि० १। भ० ३५। ल० ३३।
 पक्षा चिडिया। ग्रह, तार। वाग,
 तीर।

सग्गकुल = १।० वु० १५। १।०, २८५। भ०
 [म० पु०] (म०) १६। ल० १६।
 पत्निका का दन। पक्षियों का कुड।

सग्गमृगा = १।० २८५। प्रे० २२ २४।
 [म० पु०] (म०) पक्षी श्रीर हरिन। पशु पक्षा। जगल
 के जानवर श्रीर पक्षी।

सग्गवृद्ध = १।० वु० ६६।
 [म० पु०] (म०) पक्षियों का समूह।

सग्गरथ = १।० २०६।
 [स० पु०] (म०) पक्षियों की यात्रा।

सटकना = १।० वु० ११३।
 [त्रि०] (हि०) चलना। भगडा हाना। पुरा मातृम
 हाना। सट सट' शब्द हाना।

सटका = १।०, २५।
 [स० पु०] (हि०) आपत्ति अनिष्ट। भय, डर। आशंका,
 चिन्ता, निम्न।

- सटाई = फ० ४० ।
[म० श्री०] (हि०) खट्टापन ।
- सड्ग = का०, २०० चि०, ६४ ।
[स० पु०] (स०) एक प्रकार की तनवार ।
- सड्गलीला = ल०, ६६ ।
[सं० श्री०] (सं०) तनवार की लडाई ।
- सड सड = वा० कु० २५ । म० १ ।
[म० पु०] (हि०) गडगडाहट की आवाज ।
- सडा = मा०, ७२ । वा०, १६ । का०, ४८
[वि० पु०] (हि०) १११ १८२, १६२ १६७, ७७६
२०७ २८८ । प्र० १३ म० ६ ।
ऊपर की ओर सीधा उठा टूटा । टाँगें
सीधे करके उनका सहार शरीर साथ
बिग हूँ ।
- सडी = श्री०, ६८ । का०, १६, ५८, ५६, ६६
[वि० श्री०] (हि०) १०६, ६१, १६५, २०१, २००,
२३३ २८५ । चि०, ५७ । प्र०, १८ ।
१० ५१ ६० ६६ ७४ ।
खडा का स्त्रीनिग ।
- सडी होना = वा० ७२ ।
[क्रि० घ०] (हि०) सडा होना । उठना । उल्टित होना ।
- सडे = श्री० १८ । का० १४ । वा० कु०,
[क्रि०] (हि०) ६१ । का, १८२ २१५, २०५ । चि०,
५३ ७१ । म०, ८, २० । १० ५६ ।
खडा का बहुवचन ।
- सड्ड = का०, २५७ ।
[म० पु०] (स०) गड्डा । गत ।
- सरसान = चि० ३ ।
[सं० श्री०] (हि०) हथियार नज करने की एक प्रकार की
सान । तज मान ।
- सराद = म०, ७३ ।
[सं० श्री०] (वा०) लकड़ी या धातु की सतह का सम एव
चित्रनी करने का औजार । खरादने
का काम । खरादन का भाव ।
- सरी = वा० कु० ११ । चि० १३६, १५१ ।
[वि०] (हि०) फ० ८१ ।

- अच्छी, बढिया, विशुद्ध । हि० खरा का
स्त्रीनिग ।
- [सडा पु०] तन निकाने के बाद बचा हुई तलहन
की सिट्टी ।
- सरीदना = प्र० १६ ।
[क्रि०] (का०) ब्रय करना । माल लेना ।
- सरे = चि०, १७३ ।
[वि०] (म०) खरा का बहुवचन । अच्छे, बढिया ।
शानो । स्पष्टवादी ।
- सल = वा०, कु०, १२६ । चि०, ६६ ।
[वि०] (स०) प्र०, ५ ।
ब्रूर, नीच, अथम, दुष्ट ।
- ससि = चि०, २३ ।
[सडा पु०] (हि०) बकरा । अज ।
- स्या = क०, १८ । चि०, १४ ।
[क्रि०] (हि०) भोजन करते । भोग कर ।
- स्यई = वा० १८६ २५७ । प्र०, ४ ।
[सं० श्री०] (स०) गदक, चिने आदि के चारा आर
रक्षाध बनाई गई नहर ।
- स्यकर = वा , ३६ ।
[पूव० क्रि०] (हि०) भाजन करक । भाग कर ।
- स्यट = वा० कु० ४५ ।
[सं० श्री०] (सं०) चारपाई ।
- स्वाते स्वाते = वा०, १११ ।
[क्रि० वि०] (हि०) भाजन करते कर्न ।
- स्यान = चि०, २२ ६६, १८७ ।
[सं० श्री०] (हि०) आकर । घर । वह स्थान जहाँ म धातु
या मूल्यवान पत्थर खाद कर निकाल
जात हैं । उपजित का मूल स्थान । उद्
भवस्थान ।
- स्यानखाना = म०, १८, २१, २३ २४ ।
[वि०] (वा०) प्रतिष्ठित । एक समानित उपाधि ।
[खानखाना अन्दुरहोम—जम—मनु १५५६ ई०—
अक्बर के तबखला म म एक तथा उमका
प्रधान मनापति । बरम खाँ का पुत्र,
महाराणा प्रताप के शीघ्र और चरित्र
का प्रशंसक (दे० अक्बर) । विद्वान्

रिप्लेगी = ल०, ४०।
 [क्रि०] (हि०) खिला' का भविष्यत्कालिक क्रिया।
 रिप्ले रहे = चि०, १८०।
 [क्रि०] (हि०) खिले थे।
 रिप्लेगी = चि०, १७५।
 (प्र० भा०) (२० 'खिलगा'।)
 रिपसक कर = म०, १७।
 [पुर्व० क्रि०] (हि०) मरक कर।
 रिपसक गई = म०, १३।
 [क्रि०] (अनु०) सरक गई।
 रिपसरुना = ग्रा०, ४७। का० कु०, ६५।
 [क्रि०] (अनु०) मरवना।
 रींच = म०, ६।
 [सं० गी०] (हि०) ग्राहपण, खिचाव।
 रींचली = का० २२८।
 [क्रि०] (२० 'खिचना'।)
 रींचते = का० ८६।
 [क्रि०] (हि०) (२० 'खिचना'।)
 रींचना = का०, ६६ १२०। ल०, २७।
 [क्रि०] (हि०) (२० 'खिचना'।)
 रींच रहा = का०, २२७।
 [क्रि०] (हि०) धारण कर रहा।
 रींच रही = का० २०५।
 [क्रि०] (हि०) (२० 'खींच रहा'।)
 रींचा = का०, १०६।
 [क्रि०] (हि०) खिचना' का भूतकाल।
 रींचि = चि०, ६४, १५७।
 [पुर्व० क्रि०] (प्र० भा०) खाच कर।
 रींफना = चि०, १५५।
 [क्रि० प्र०] (हि०) साजना, फुफनाना।
 रींफ रहा = का०, २२७।
 [क्रि०] (हि०) फुफना रहा।
 रींफलाना = का०, ८३।
 [क्रि० प्र०] (हि०) (२० 'विजलाना'।)
 रील = का० ६१। ल०, १५।
 [सं० गी०] (हि०) बाल। बोट।
 रुटी = का०, १६६।

[सं० गी०] (हि०) कुटी। वूटी।
 रुदधाना = का० पु०, १०८। प्र०, २०।
 [क्रि०] (हि०) खोनाई बनाना।
 रुल = का०, १३३, १८१, १८४।
 [क्रि०] (हि०) (२० 'खुनना'।)
 रुलता था = का०, २३३।
 [क्रि०] (हि०) 'खुनना' का भूतकालिक रूप।
 रुलते = का० ८४, ११६।
 [क्रि०] (हि०) 'खुनना' का वर्तमान काल का क्रिया।
 रुलना = ग्रा०, ३७, ६८। का०, ४६, ५७,
 [प्र० प्र०] (हि०) १८४, २६३। ल०, २५, ३२।
 गुप्त बात का प्रकट होना, आवरण
 हटना।
 रुलनेवाली = का०, १८०।
 [क्रि०] (हि०) जो खुन सके।
 रुला = का०, ८७, १७२ १७८ २२१।
 [क्रि०] (हि०) खुलना' की भूतकालिक क्रिया।
 रुली = का० ३५ ८७, १८६। चि०, १८१।
 [क्रि०] (हि०) फ०, १८, ५२, १ प्र०, १०। म०,
 १०। ल० ४५, ६१।
 खुलन की भूतकालिक क्रिया (खुना
 का लोनिग)।
 रुले = का०, १२५, २१८, २४७। का० कु०,
 [क्रि०] (हि०) ६२। प्र० ६।
 'खुना' का वृत्तवचन।
 रुले किवाड सहश = का० कु०, ८०।
 [वि०] (हि०) = खुले हुए दरवाज के समान। बिना
 अवरोध के। बिना आवरण के।
 रुसरू = ल० ७८।
 [म० पु०] (का०) दिन्ना का एत शानक।
 [सुसरू—गोह मुननान नामिरहीन सुसरू (स्वाजा
 गुलाम वादू), जो गुजरात विजय के
 समय मानिक के साथ ही अलाउद्दीन
 के दरबार में दिल्ली भजा गया था
 मारवाड या परमार जाति का था।
 मुगलमान बनने पर उसका नाम हुसन
 रखा गया। सुसरू खान का नाम स

- सेवा = ल०, ५७।
 [म० पु०] (हि०) उतराई। बोक लदी नाव की खप।
- खेनैया = चि० १८२।
 [म० पु०] (हि०) नौका को पार लगानेवाला।
- खौंट = ऋ० ७४।
 [स० ली०] (हि०) दोप, बुराई।
- खोदली = वा० १५८।
 [वि० ली०] (हि०) पाना। जिसके भानर कुछ भी न हो।
- खोरलपन = वा०, २४१।
 [त्रि०] (हि०) पालापन। निम्मारता।
- खो गया = वा०, २४१।
 [क्रि०] (हि०) नष्ट किया। गवाया। भूल गया।
- खोज = वा० कु०, १०। का०, १४ ८७।
 [म० ली०] (हि०) १११, ११४, १३६, १७५, २४३,
 चि० ३१, ४६, ६०। ऋ०, ३१,
 ३३। प्र० १४।
 अनुभवान, तलाश।
- खोजती = वा० २८१।
 [क्रि०] (हि०) हूँती।
- खोजता = वा०, १३१ १५३ १८३, २२७
 [क्रि०] (हि०) २३०।
 हूँता।
- खोजते = का०, १६१।
 [क्रि०] (हि०) हूँत।
- खोजने ते = चि०, ६४।
 [क्रि० वि०] (म० भा०) खोजने त।
- खोजना = का०, १८, २६। वा०, ४०, ५१,
 [क्रि०] (हि०) ५६। चि० १६७, १६८, १८३,
 १८६ ऋ०, २५ ३८।
 तलाश करना, हूँदना।
- खोज रहा = का०, ५८ २३०।
 [क्रि०] (हि०) हूँ रहा।
- खोन रहे थे = वा० २१३।
 [क्रि०] (हि०) हूँ रहे थे।
- खोजूँ = वा०, ६१।
 [क्रि०] (हि०) हूँ हूँ।
- खोदना = वा०, कु०, १०८।

[क्रि०] (हि०) उत्तेजित करना। उकमाना, उभाड़ना।
 खनन करना।

खो हूँ = का०, २१८।

[क्रि०] (हि०) गवाँ हूँ।

खोती हूँ = का० २३७।

[क्रि०] (हि०) गवाँ देता हूँ।

खोना = वा० कु० ६, ६१। वा, ८६।

[क्रि०] (हि०) गवाना नष्ट करना। भूनना। छाड़ देना।

खोया = वा०, १४।

[क्रि०] (हि०) गवाया।

खोए = का०, २१४।

[क्रि०] (हि०) गवाए।

खोल = का०, कु०, ६२ १०५। का०, ६६,

[यव क्रि०] (हि०) ११७, १६६ २५२ २५३।

उधार कर। अच्युत मुक्त करवे।

खोलकर = का० कु०, ५१, ८४। का०, २६१,

[पूर्व क्रि०] ऋ०, २७। प्र० ६, १०। ल०

११, ६८।

उधारकर। अच्युत हटाकर।

[खोल तू अपनी आँखें खोल।—'एक घूट' का
 नेपथ्य गीत जो 'प्रमाद संगीत' में पृष्ठ
 १०२ पर अंकित है। जीवनमागर
 में चल लहरें उठ रहा है। छवि को
 किरणों से तू खिन्न जा और मुख का
 अमृत ऋद्धि में स्नान कर ल। महा-
 सौंदर्य व इय अनल स्वर से मिलकर
 तू अपनी वाणी में मद धोल। जिससे
 सब प्रकाशवान हैं उस जानने का प्रयत्न
 कर। इस महासौंदर्य को जानकर
 अपने को भूल से जकड़ मत। वषन
 खोली और जीवनमौंदर्य का
 दर्शन करो।]

खोलना = भा० ६५। वा० ३७१, ६३, ७०,

[क्रि०] (हि०) १७१, ४०। चि०, ५७, ७०, १५३,

१६७ १८१। ऋ०, २१। ल० १७।

उलाहना धरराज हटाना, अनावरण
 करना। धारभ करना।

खोली = वा०, १३२।

[क्रि०] (हि०) उधारी।

गधमय = चि०, ४६। ऋ०, ६४।

[वि०] (हि०) गध म भरी हुई।

गधर्वा = का०, ५१, ५६।

[स० पु०] (हि०) देवताओं में एक विशेष काटि के लाग जो गाने में निपुण होते हैं। गानेवाला का जाति क लोग।

गधवाह = का०, २६१। चि०, १३२।

[स० पु०] (स०) वायु। हवा।

गध वितरण = का० कु०, ६७।

[सं० पु०] (स०) गध का बटवारा।

गभीर = का० कु०, २१, ७५। का०, २६, ३५,

[वि०] (म०) ५६, ८६, ११४, २४५, २७७, २६०।

चि०, ११, २३, १५७, १६, १६६।

प्रे० १२, २५। म० २, १८।

गहुरा। घना। गूढ। जटिल। जिसका अर्थ लगाना कठिन है। शात। घोर।

गभीरता = म०, ६।

[स० स्त्री०] (हि०) शाति। धय। जटिलता। गहनता। अर्थ लगाने की कठिनाई।

गभीराशय = चि०, १४८।

[स० पु०] (स०) गहन अभिप्राय। कठिन तात्पर्य। गूढ विवेचन।

गई = का०, ६। का०, ६, ५, ११७, १३२,

[क्रि०] (हि०) १४३, १७०, १७८, १७९, २३३।

प्रे०, ४, २१। म०, २०।

'जाना' क्रिया का सूतकालिक स्त्रीलिंग रूप।

गगन = अ० ३७ ४४, ६०, ६८। का० कु०,

[म० पु०] (स०) ३६, ७५, ९५। का०, १३, ३६, ६३,

१७१ १७५, १८०, १८५, २३५,

२४५, २८४, २६०। चि० ७१,

१०७ १५०, १६०। ऋ०, ३८ ७१।

प्रे० १५। ल०, २१ ४८, ६३।

आकाश। नभ।

गगनधुयिनी = का०, ३०।

[वि०] (हि०) बहूत ऊँची। आकाश का भूमनेवाला।

गगन बीच = का० कु०, ४६। प्रे०, ६।

[वि०] (हि०) आकाश के बीच।

गगन शोक = का०, १७०।

[म० पु०] (स०) वह भाव जो पूरे सृष्टि में व्याप्त है।

गगन सा = का० कु० १५।

[वि०] (हि०) आकाश के समान। विस्तृत।

गगन हृदय = चि०, १६२।

[स० पु०] (म०) नभ के बीच, आकाश सा विशाल हृदय।

गज = का० कु०, ५२, ६४।

[म० पु०] (स०) हाथी। आठ को सख्या मूचक शब्द।

(हि०) ३६ इंच का एक नाप जिसे 'गज' कहते हैं।

गजराज = का०, २५८।

[स० पु०] (स०) अष्ट हाथी। बड़ा हाथी।

गजरे सी = म०, २०।

[वि०] (हि०) पूर्वों का बड़ा मालाओं के समान।

गञ्जन = चि०, २५।

[सं० स्त्री०] (स० भा०) गजन। धार शब्द।

गठन = चि० ७०।

[म० स्त्री०] (हि०) बनावट।

गठना = का०, १७। का०, २६८। ऋ०, ५४।

[क्रि०] (हि०) चुभना। दब करना। दुबना। दफन करना। खुरखुरा लगना।

गठन = चि०, ५६।

[सं० स्त्री०] (हि०) बनावट। गठन, गठने की क्रिया या भाव।

गण = का०, २७८। ऋ० ५६। म० ७।

[स० पु०] (म०) समूह। शिव के पारिपद। दूत। मन्त्र। अनुचर। लघु और गुह्य क विचार में तान तान वणी का समूह।

गणना = का०, ३८।

[सं० स्त्री०] (म०) गिनना। आकडा। लेखा। हिसाब लगाना।

गणहि = चि०, २६।

[सं० पु०] (स० भा०) गण का।

गणेश = चि० ७२।

[सं० पु०] (म०) गणों के ईश। हिंदुओं के प्रधान देवता जिनका शिर हाथी का और गेय शरीर मनुष्य का है।

गत = का०, कु०, ६६। का०, १५७, १६।

[वि०] (म०) रहित । हीन । बीना हुआ । संबंधी जैसे जातिगत, भावगत ।

[म० पु०] गान्धे का एक मुद्रा । संगीत का एक बला ।

गनप्रत्यागत = ल० ६६ ।

[वि] (म०) गया और वापस हुआ । घाना और जाना । तलवार की एक लड़ाई जिसमें भागे पीछे बड़ा हटा जाता है । उ०— गत प्रत्यागत में जाए फिर चले गए ।

गति = का०, कु० ७, ५५ । का०, ११, १७

[सं० स्त्री०] (म०) ८१, ११५, १५७, १६० १६८, १६३, २०६, २२४, २६७ । चि०, १७६ । ऋ०, २७, ५५, म० १६ । ल० ७१ । चाल । गमन । कपन । हरकत । भ्रवस्था । दशा । प्रवेश । लीला । माया । मोक्ष ।

गतिमय = का०, १५७ १६१ ।

[वि०] (म०) चलती हुई । हिलती हुई । गतिशील ।

गतिविधि = का०, २७७ । ल० २६ ।

[म० स्त्री०] (सं०) हाल चाल । दशा । हालत ।

गतिविधि निर्धारक = का०, कु०, ६४ ।

[वि०] (हि०) दशा या हालत को ठीक करनेवाला । स्थिति निर्धारक ।

गतिशाली = का० १४४ ।

[वि०] (हि०) (> गतिशाल' ।)

गतिशील = का० २५३ ।

[वि०] (स०) जिसमें गति हो । उ नतिशील । चलन फिरनेवाला ।

गतिहीन = का १४४ ।

[वि०] (स०) स्थिर, अटल, जिसमें गति न हो ।

गद्गद् = का०, कु० ६३ । का० ६४ २१८, २८६ । चि० ५० ५६ । ऋ० ४१ ।

[वि०] प्र०, ४ ७ । हृत्पूण । प्रममन । घानद भरा ।

गन्गन् हृदय = का, कु० ३ ।

[म० पु०] (म०) हृत्पूण मन । प्रसन्न चित्त ।

गन्गद् हृदय नि म्रत = का० कु० ३ ।

[वि] (म०) प्रेममन या हृत्पूणप्रतम से निकला हुआ ।

गदा = का०, कु० १०६ ।

[म० स्त्री०] (पु०) एक प्राचीन मूल जिमम घातु के एक ढंटे म बडा लट्टू लगा रहता है ।

गन = चि ५१ ।

[म० पु०] (प्र० भा०) ममूढ झुंड ।

गमन = चि०, ४० १८ ।

[क्रि०] (स०) जाना । खाना हाना । प्रस्थान करना ।

गया = श्रौ०, ३२ । वा० ८ ६ ११ १३६,

[क्रि०] (हि०) १४४ १५०, १६२ १७८ १७६,

२१२, २५२ २८, २८३ । प्र० ४,

६ १८, ११ । म० ५, ८ १०

२१ २४ ।

जाना' क्रिया का भूतकालिक एक वचन, पुलिग रूप ।

गर = चि०, १५१ । १०१ ।

[सं० पु०] (हि०) रोग, बीमारी । गला, गरदन । (का०)

कारीगर, बनानेवाले ।

[प्रत्य०] (फा०) निर्माता । बनानेवाला । जम, कारीगर,

बाजीगर ।

गरज = चि० १५७ २५८ ।

[म पु०] (सं०) बादल या सिंह की आवाज । (फा०)

मतलब, प्रयोजन, इच्छा स्वाध ।

गरजन = चि० १५८ ।

[म० पु०] (प्र० भा०) बादल सिंह या वार पुष्पो का

आवाज ।

गरजना = श्रौ० ७ । का० कु० १०५ । का०

[क्रि०] (हि) १४ ११६ । चि० १५८ । प्रे , २५ ।

सिंह या बादल का तरह आवाज

करना ।

गरल = श्रौ०, ४२ । का० ५ १६ १२२

[सं० पु०] (म०) १२४ १६३ । चि०, ७२ । ऋ० ८४ ।

ल० ४३ ।

विप । जहर ।

गरलपात्र = का०, १६३ ।

[म० पु०] (स०) जहर का बतन । विप भरा प्याना ।

गरिमा = ऋ० ४२ । ल० ३३ ६६, ७६ ।

[सं० स्त्री०] (ध०) गुण्व, महत्व, गौरव । आठ निद्रियो

म स एक । पमड ।

गण्ड = चि०, ८५।
 [सं० पु०] (म०) विष्णु का वाहन। एक प्रकार का पक्षी।

गरे = चि०, १।
 [म० पु०] (ब्र० भा०) गदन म गन म, नटई म।

गर्जन = ब्रा० १५। वा० कु०, ५७ १०७।
 [सं० पु०] (स०) चि०, १५३।
 दहाड (२० 'गरजन'।)

गर्त = ब० २। ग० कु० ६४ १२०।
 [सं० पु०] (म) गडगा दरार, नरव।

गर्दन = वा० कु०, ७३।
 [म० स्त्री०] (फा०) गला।

गर्भ = वा० ४८ १४७ १४३।
 [म० पु०] (स०) पट। गभाणय। पट क अरर वा बधा।

गर्म = वा० कु०, ८५। भ०, ८४।
 [वि०] (हि०) तापयुक्त। गरम।

गर्भ = क० १०। वा० कु०, ४४, ८५,
 [सं० पु०] (स०) १०४। वा०, १४। भ० ७५। म० १६। न० ७३।
 अहकार। घमड। अपन गौरव का अनुभव करना।

गर्भरथ = का० २५।
 [सं० पु०] (म०) गव रथा रथ। अभिमान रूपा यान।

गर्भस्तीत = वा० कु० ८१।
 [म० पु०] (स०) ब्र० दृष्टा गव। प्रथिक घमड।

गविता = चि०, ७१।
 [वि०] (स०) गव करनेवाली। वह नायिका जिस अपन रूप, गुण आदि पर अहकार है।

गर्वाल = वा०, २०१।
 [वि०] (हि०) गव करनेवाला।

गर्वात्रत = वा० २६६।
 [वि०] (स०) अहकार म बुर। गन म घपन का रूपा ममभनवाला।

गर्जनी = प्र० २५।
 [वि०] (स०) अभिमानी। अहकारी।

गर्जनी मानन = प्र० २५।
 [सं० पु०] (म) अहकारा मनुष्य।

गल = वा०, ४८ १८० १६०, २४७,
 [म० पु०] (म०) २५४। चि० ५६, ७०।
 गला कठ।

(हि०) गला त्रिया वा धातु रूप।

गलते = वा० १८१।
 [क्रि०] (हि०) पिघलत।

गल बाँधी = ब्रा० २६। भ० ३२।
 [म० स्त्री०] (हि०) एक दूसर क गल म बाह चालना। परस्पर याराना का परिचय चिह्न।

गल नीच = का० कु०, १०३ चि०, ५५।
 [म० पु०] (हि०) गदन गल र नीच म।

गला = वा० कु०, ३६। भ०, ३४, ५१।
 [म० पु०] (हि०) कठ। गरदन।

गली = वा०, २४३।
 [सं० स्त्री०] (हि०) मकरा माग।

[क्रि०] पिघनी।

गले = ब्रा० १८। का० ११ ७३, १३०।
 (हि०) चि० १ १६२। भ०, ३७, ५१, ७४। प्र० २, २०, २६।
 गला का बहुवचन।

गल्प वथा = का० कु० ४७।
 [म० स्त्री०] (म०) झूठी कहानी। कथा। आख्यान।

गर्जई = चि० १८३।
 [पूर्व० त्रि०] (ब्र० भा०) खानर। नष्ट करके।

गहत = चि०, ६१, १५४ १६०।
 [त्रि०] (ब्र० भा०) प्राप्त करता है। लेना है।

गहन = ब्रा०, ६०। वा० २, ६६, १११,
 [वि०] (हि०) १५७। ल०, ५७।
 कठिन। घना, दुगम। अथाह। गूढ।
 कठिन। आसानी से समझ म न आन-
 वाला।

गहना = चि० १६१।
 [त्रि०] (हि०) ग्रहण करना। लेना। पढना।

गहन = वा०, २५८।
 [सं० पु०] (हि०) अहकार। आभूषण। गहना का बहुवचन

गहरई = वा०, ३२, १५०। ल०, ४३।
 [सं० स्त्री०] (हि०) गहनता। गभीरता।

गहरी = का० कु०, ३६। का०, ५, ७०, १०६
 [वि०] (हि०) २०६। अ०, १५। प्र०, ११, १३।
 ल०, १३, १४।
 गभार। अर्थाह। बहुत नीचे तक।
 गहरा का स्त्री लिंग।

गहरे गहरे = का०, २८६।
 [क्रि० वि०] (हि०) बहुत नीचे। गहराई में।

गहडू = चि०, ८६।
 [क्रि०] (अ० भा०) प्राप्त करो। फकडो।

गहू = चि०, ४१, १०३।
 [क्रि०] (अ० भा०) प्राप्त करें।

गहो = चि० १७२।
 [क्रि०] (अ० भा०) प्राप्त करो।

गहौ = चि०, १५२।
 [क्रि०] (अ० भा०) दे० गहो।

गह्वर = का०, ८८।
 [सं० पु०] (सं०) गत, गुरा, सोह, गृह स्थान। पालड।
 रोन। जल।

गौलि = चि० ७१।
 [पुन० क्रि०] (अ० भा०) जोड़कर पूंघर।

गौठ = का०, ७७।
 [सं० पु०] (हि०) बंधन, गिरह।

गाधार = का० ४६। म० १३, १५।
 [सं० पु०] (सं०) गाधार दस। गध रग नामर मुग
 धित इत्य।

[गाधार—इसकी चर्चा कामामना म 'प्रदा' क प्रमग
 म तथा महाराणा का मह्य' म धाई
 है। धृतराज का पना दूरी की राज
 कथा थी। अत्रगानिमान धोर
 पाकिस्थान का परिवमानर गोमापान
 १२ मना तक गाधार क नाम म
 प्रसिद्ध था।]

गाइ गाइ = चि० ९७।
 [पुन० क्रि०] (अ० भा०) गा-गाधर।

गाता = स० ११।
 [सं० पु०] (हि०) गहरी। गाने भरन का पात्र। पटा।

गागारि = स० १६।
 [सं० पु०] (हि०) दाया पटा। गगरा।

गात = का० कु०, ११२। का०, ५३, १५१।
 [सं० पु०] (हि०) चि० ३ १७६। अ०, ५८। ल०,
 २४ ३७ ४५।
 अग शरीर।

गाता = का० ३४ ४५, ६८, १५० १६५,
 [क्रि०] २२५, २६२। अ०, ७०। म० १७।
 (हि०) 'गाना' क्रिया वा सामान्य वतमान
 काल का रूप।

गाथा = का० कु०, ६३। का० ३७, १७६।
 [सं० स्त्री०] (सं०) प्र०, ५, ६। ल०, ११ १५, २६,
 ३२, ४६।
 कथा। कृतात। प्राटल का एक छत।

गान = का० कु०, १६। का० २६ २६,
 (सं० पु०) (हि०) १२७ १५०, १६७ १६८। वि०,
 १४६। अ०, १७ ३५, ६८।
 गाने का क्रिया। गीत।

गाना = ल० १५ ४६।
 [क्रि०] (हि०) गाने वा क्रिया करना। गत गाना।

[गाने लो—गवप्रथम इडु, कना ८ विरग ३ मार्च
 १९२७ म प्रकाशित 'स्वंगुम' का
 गान प्रसाद मगीने' म वृष्ट ६१ पर
 नबन्ति। कविता वा आशय है कि
 भूप छोटि न नेन के महन गागा जावन
 बीतता चला जा रहा है। भविष्य के
 रण म हम जगाकर नव भतान क
 तुगाकरण म प्रति लण समय बहकता
 हे धोर पता नही कही जाकर दिव्य
 जाता है। जिना म माहम नही है वि
 उम व रात्र मर। इसविष जीवन म
 जा मपुस्तना है उम मुग्नित हान दा।
 धोर जा कृत्र हम धाना है धीन मू
 कर गाने दा।]

गानो = का० २७ १४५ २७८।
 [सं० पु०] (हि०) गाना।

गाय = का० १८ १६, २५। प्र० ७।
 [सं० पु०] गीतवाता गाथा पशु जा दूध दना
 हा। गऊ गवा।

गात्र = का० कु० ४६, ११५।
 [सं० पु०] (हि०) गान।

गालव = चि०, ५८ ।

[म० पु०] (म०) एक ऋषि । एक वमावस्था । एक स्मृतिवार । एक प्रकार का वृद्ध ।

[गालव]—विश्वामित्र य पुत्र तथा शिष्य रूप म पुराणा म वर्णित । इनका आश्रम जयपुर व पाग तथा चित्रकूट म था । विश्वामित्र न इनस आठ सौ श्वामवण घोड़े गुम्फ्लिगा रूप म माँग । इटाने तन्ध विष्णु का धार तपस्या की । विष्णु के आदेश म मण्ड व साथ ययाति व पान गया । ययाति ने अपनी पत्नी माघवा का (उमव पुत्रा पर स्वाधिकार व लिये) उस दिया, जिन म माध्यम स इमने गुफ का माँग पूरा की । गालव का चचा 'धन मिलन' म है ।]

गालियाँ = चि०, १८० ।

[स० श्री०] (हि०) एसा यतों जा दूसरा का बुरा लगे ।

गायत = चि०, २६ १६७ ।

[पुव० क्रि०] (१० भा०) गति हूप ।

गायन = चि०, ६२, १५३ । १२६ ।

[त्रि० वि०] (१० भा०) गान व लिये ।

गिद्धनी = चि०, ४१ ।

[स० श्री०] (१० भा०) गीघ का मादा ।

गिनती = वा०, २६८ । म०, ३ ।

[म० श्री०] (हि०) गणना ।

गिनना = आ०, ३६ । वा०, १७६ २७१ ।

[त्रि०] (हि०) चि०, २९, ६२, प्र०, ११ । म०, २४ । ल०, ३, ६ । गणना करना ।

गिरजा = वा० कु०, ६ । चि०, १८६ ।

[म० पु०] (हि०) इनाइया का प्रायनामदिर । पावता ।

गिरना = वा० कु०, ५२ । प्र०, १२, ७६, ७७ ।

[क्रि०] (हि०) वा०, २६ । वा०, १५, १६ १७, ८२ ६४ १६४ । १७१ १७५ २०२, २५१, २५७, २६६, २८१, २८४, २६२ । चि०, १ ४२, ५०, ६४, १६६ । क्र०, १५, ३५ ३८ । प्र०,

३, १४, १७ । म०, ७ । ल०, ६, ११, २५, ३४, ३७, ८० ।

ऊपर से नाचे की ओर घाना । पतन होना ।

गिरवाती = वा० २६७ ।

[क्रि०] (हि०) पतन का आर ले जाती ।

गिरा = वा० कु०, ५२ ।

[स० श्री०] (म०) वागा । जीम । मरस्वती ।

गिरि = वा०, २, १७, २५७, २८१ २८४ ।

[स० पु०] (म०) चि०, १, ४२, ६४, १६६ । क्र०, १५, ३५ । प्र०, १४, १७ । पर्वत, पहाड । परिव्राजका की उपाधि ।

गिरि अचल = वा०, २८१ ।

[म० पु०] (स०) पहाड व मध्य या तराई मे ।

गिरिकन्दर = म०, १६ ।

[स० श्री०] (स०) पहाड का गुफा ।

गिरिकानन = चि०, १५६, प्र०, ११ ।

[म० पु०] (म०) पवत और जगल या उपवन ।

गिरितटी = प्र० १५ ।

[स० श्री०] (हि०) पहाड का तराई ।

गिरिपथ = वा०, १७६ २७७ ।

[स० पु०] (स०) पहाडी मार्ग । पहाड पर का रास्ता ।

गिरि भार = ल०, ४७ ।

(स० पु०) (हि०) पहाड का बोझ । अत्यधिक भारस्वरूप ।

गिरिशृंग = चि०, १ ।

[स० पु०] (स०) पवत की चोटा, शृंग, शिखर ।

गिरिश्रेणी = वा० कु०, ४२ ।

[म० श्री०] (स०) पवतमाना, पहाड की चाटिया की शाखाए ।

गिरी = वा०, २०२ ।

[त्रि० प्र०] (हि०) किसी वस्तु से दूसरी वस्तु का पात हो जाना या स्वयं अपने स्थान से चेतना शून्य होकर दूसरे स्थान पर आ जाना । लडा न रहकर जमान पर या नाचे डाल देना, बल, महत्व आदि कम करना, प्रवाह को डाल की ओर ले जाना, युद्ध में मार डालना ।

गूँजती = का० पु०, ५०। वि० १६५, १६७।
[वि०] (हि०) ल०, १२, २३ ५८।

(० 'गूँजा') गूँजा का खा निग।

गूँजते = का०, ८६, २६०।
(क्रि० अ०) (वि०) गुजार करत भाभनाम।

गूँजी = का०, १६२।
[क्रि० अ०] (म०) विगो बंध स्थान म पूषा या भावाज
का गूँज उठना या भर जाना।

गूँजे = का०, ६६।
[क्रि० अ०] गुजार वरें।

गूँय = का० ६७।
[क्रि० म०] (हि) ताग आनि म एर हा तरह की बून
सा चीजी का पिराना गूँपना। उ०—
गिर नाचा कर हा गूँय रही भाया
जिसस मछुवार डर।

गूँद = का० २३।
[पूव० क्रि०] (हि०) छूटकर टूटपरर।

गूँधन = वि० ७०।
[क्रि० स०] (हि०) गूँधना, पिराना, मांडना।

गूँड = का०, ८१। १० ४७।
[वि०] (म०) छिपा हुआ, जिसम कुछ विशेष अमि
प्राय छिपा हा गहर या गभार आशय
वाता जिसका आशय समझना
काठन हो।

गूँह = का०, १६ ८२, ११८ १८२ २३४।
[सं० पु०] (सं०) वि०, ६७ ८२। का०, ४१ ५२।
प्र०, ११, १३।

इट आदि से बनाया हुआ मकान गेह
भवन निवृत्तन आगार। कुटुंब वश।

गूँहपत = का०, ८१।
[सं० पु०] (सं) घर का स्वामा। अग्नि। कुत्ता।

गूँहपति मटश = का० कु०, ६३।
[वि०] (म०) गूँहपति या घर के मालिा व समान।

गूँहलक्ष्मी = का०, १५०।
[सं० स्त्री०] (म०) घर की लक्ष्मी, सच्चरित्रा स्त्री।

गूँहविधान = का०, १५०।
[म० पु] (सं०) घर का कार्य तथा व्यवहार, मुचाह
रूप से चलानेवाला नियम, ढंग।
तराया।

गूँस्थ = प्र० ७, ८।
[म० पु०] (सं०) घरदार वाता। कुटुंब वाता।

गूँहिया = वि० ६२।
[म० म०] (म०) गूँह स्थानिना। भाया पना खा।

गूँद = १० ४४।
[म० पु] (हि०) रबर पद या पमट का बना हुआ
या गाता जिसस रबर गवन है।
बटु।

गेरे = वि० १५७ १८८।
[पूव० क्रि] (हि०) गिराकर या डालकर।

गेद = का० कु०, ६८। का० ८४।
[सं० पु०] (म०) घर, भवन, गृह।

गेरिय = का०, २७७। ल०, ३२।
[सं० पु०] (म०) गूँ। साता।

[वि०] गूँ म गया हुआ। गरपा।
गेस = का०, २८।

[सं० स्त्री०] (हि०) छाया माय। रास्ता।
गोईये = वि० १७८।

[क्रि० स०] (य० भा०) छियाइय।
गोचर = का० २३५।

[म० पु०] (सं०) चरागाह, चरी।
गोचरभूमि = का० २३५।

[सं० स्त्री०] (सं०) वह भूमि जो केवल गोमो को चरने के
निये छोड़ दी जाती है, पशुचर भूमि।

गोता = का० कु०, ६०।
[सं० पु०] (हि०) पाना म निमग्न हाने हवन की क्रिया
या भाव। डबका। दुःखी।

गोद = का० ३०। का० कु०, ६४ १०५।
[म० स्त्री०] का०, ३०, ४७। वि०, १४१,

(हि०) = १८५। का०, ३४, ६०। प्र०, २१।
ल०, ५४।
श्रीध आचल, अक।

गोधन = का०, कु०, १२५।
[सं० पु०] (सं) गोपें, गारपा सपत्त। एक प्रकार
का तीर।

गोधूली = का०, १६। का०, ६७, १०१। का०
[सं० स्त्री०] (म०) ३०, ३४।

सायनाल का वह बना जब गोपें
चरकर घर लोटकर भातो है ओर

उनके सुर से धूल उड़कर आकाश में छा जाती है।

[म० पु०] (म०) एक पीना सुगन्धित द्रव्य जा गो के पिताशय से निष्कन्ता है।

[गोधूली के रागपटल में स्नेहाचल फहराती है- 'अजातशत्रु' का गात, जिमम भगवान् बुद्ध विवसार से कर्णा का महिमा वा आम्भान करते है। प्रमाद समीत' म पृष्ठ ४२ पर मकलित। कर्णा गोधूना के रागपटल में स्नेह के अचल सो उपा क शुभ्र गगन म हामविलाम बालक के मुख पर चद्रकाति, ताराआ म आम का भाति प्रगट है। पशुआ की आदि सृष्टि इस कर्णा स विजित हुई और मानव का महत्व कर्णा के कारण जगती मे पना।]

गोल = का०, कु, ५, १० का०, २५३।
[वि० म०] (स०) चि०, ३, ६८। ऋ, ७२। ल०, ५४।
वृताकार, वृत्त। समूह, अस्पष्ट।

गौर = का० कु० ३४।
[म० पु०] (अ०) ध्यान, चिंतन।
[वि०] (हि०) साफ तथा स्वच्छ रगवाला।

गौरव = आ०, १७। का०, ३०, १०२, १५५।
[स० पु०] (स०) ल०, ५१, ५८।
समान, पूज्य बुद्धि, अस्मृत्यान, उत्कल्प, गुफता का भाव।

गौरवमण्डित = का० कु०, ११८।
[वि०] (स०) समान या आदर स मुशामिन।
समाहृत। प्रतिष्ठित।

गौरी = का०, २६४।
[म० स्त्री०] (म०) पावता। गारे रग की स्त्री। आठ र्प की कया। तुलसी। गारोचन। सफेद गाय। प्रियगु वृद्ध। पृथिवी। बुद्धि की एक शक्ति। एव प्राचीन नदी।

ग्लानि = का०, ६०, २०७।
[म० स्त्री०] (म०) परिताप, अस्वस्थि, वेद, मानसिक या शारीरिक शिथिलता। साहित्य म वाग्मिन रम का स्वामी भाव।

ग्रथ = का० कु०, १६।
[म० पु०] (म०) पुस्तक, किताब। गाठ लगाने का भाव।
ग्रथि = का०, १४५, २५२।
[म० स्त्री०] (म०) गाठ। मायाजाल, बधन। राग।
आडू। कुटिलता। भद्रमोथा।

ग्रथिहि = वि०, १५२।
[म० स्त्री०] (अ० भा०) गाठ या मायाजाल वा।

ग्रस्त = का० कु०, ६४। का० २३६।
[वि०] (म०) पकड़ा हुआ। छाया हुआ। पाठित।
ग्रह = का०, ५, १७, २५, १७०, २०५,
[म० पु०] (म०) २६१।

गुप्त आदि नव ग्रह। नौ की मख्या।
अगुप्त। निबंध। आयुट, रूठ। अघ्य

गोप = वि०, १६१।

[स० पु०] (म०) गारुडक, भाला, अहार। गोशाला का अध्यक्ष। राजा। गाव का मुखिया। गल म पहनन का हार।

गोपकुल = का० कु० १११।
[स० पु०] (म०) गोरक्षकी या भाला का परिवार।

गोपनालक वेश = का०, कु०, १११।
[म० पु०] (म०) ग्वाननाल की तरह पहनावा।

गोपवाला = का०, कु०, ११।
[स० स्त्री०] (स०) ग्वान जाति की लडका, गापी, ग्वालिन।

गोपाल = का०, कु०, १२५।
[म० पु०] (म) ब्राह्मण्य। राजा। गी का पानन करनेवाला व्यक्ति।

गोय = वि०, १६६।
[स० पु०] (फा) गेंद।
[पूर्व० स्त्री०] (अ० भा०) छिपाकर।

गोरक्षण = वि०, ३१।
[स० पु०] (स०) गोवा की रक्षा का भाव।

गोरे गोरे = का०, कु०, ४६।
[वि०] (हि०) साफ और सफेद रगवाने, गौर रग के। मुदर-मुदर।

गोरोचन = वि०, २८।

गगाग । राग । म्द । गदुनि घाणि
घाणी गरर पवन्नेराया । घयादि, १ ।
र्याति । बण्णायक यत ।

मत्राय है विनु परगगन है ।
गया —

महगण = वा० पु० ६० ।
[ग० पु०] (ग०) मूय घाणि नर घरा वा ममुनाय या
ममू । गणायाया वा जमात ।

मूय भाय मगने म जय राय गगिन म गगिता है ।
ममरग या बाण मम ग मगणि ३ीय उगिता है ।

महगण = वा० पु० २८ ६/ ११६ । वा०
[ग० पु०] (ग) १६० २३६ ४/ वि०, १७७ ।
ल० ५१ ७८ ।

म्रागताप = वा० पु० १७ ।
[ग० पु०] (ग०) घनि तात मग्मा घा म मनु वा ताप
वा जयत ।

महगण = वा० पु० २८ ६/ ११६ । वा०
[ग० पु०] (ग) १६० २३६ ४/ वि०, १७७ ।
ल० ५१ ७८ ।

म्रीमताप तापित = वा० पु० ११ ।
[गि०] (ग०) ग्राम क्रतु वा ताप या जयत म
जनाया म्या ।

महपद्य = घा ४० । वा० ३४ ।
[ग० पु०] (म) घरो क घूमने या भ्रमण करने का
माग ।

म्रीमताप निदान = वि० १४८ ।
[ग० पु०] (ग०) ग्राम क्रतु वा गग्ण--मूय ।
म्रागसिन = वा० पु० १३ ।
[ग० पु०] (ग०) ग्राम क्रतु रूपा घायन । गरमी की
क्रतु ।

महपुज = वा १८ ।
[म० पु०] (म०) घटा वा ममूह या ममुनाय ।
महरिमि रज्जु = वा० १६६ ।

घ =
घटा = वा० २७७ । वि० १६१ ।
[ग० पु०] (म०) एक बाजा । दिन रात क बोबीम विभाग
वा यनानेवाला जानु वा गीन पट्ट
जिम मुगरा म यान है । छडियान ।

[म० स्तो०] (म०) मूय तथा चद्र क किरणा की रम्भा ।
घरा क विग्गा ३ी जेरी ।
ग्राम = वा० ५६ ३० ।

घटाधरति = वा २८८ । ल० ६३ ।
[म० मग] (म०) घटे का स्वर ।

[म० पु] (म०) गाँव । ममूह । मात स्वरा वा समूह
मसर । गिय ।

घटना = वा० १८६ । म० १५ । प्रे०, ३ ।
[स० स्तो०] (हि०) हाता । ठीक । उत्तरना । बम
हाना । अचानक किसी बात का हाता
वाकिया ।

ग्राम्य = प्रे० ७ ।
[गि] (म०) ग्रामीण । मूह । अन्नान । गवाह ।
[म० पु०] (म) ठेठ प्रकृत । मट्ट । एक वा य दाप ।

घटा = वा०, १६ । का० कु २७, ४२
[म० स्तो०] (म०) ११८ ।
मघमाला । धरमाता बाबलो वा समूह ।

ग्रीया = वा कु ३० । म० २२ ।
[म० स्तो] (म) गता गदत ।
ग्रीपम = वि० १५६ ।

घटाटोप = ल० ४७ ।
[स० पु०] (स०) घतघार घटा । दादला का भाति
समूहबद्ध होकर चारा ओर से घेर लन
वाला दल ।

ग्रीपम = वा० १५ । म० ४ ।
[स० पु०] (ग० भा०) गर्मी का क्रतु, गरम ।
[स० स्तो०] (स०) गर्मी की क्रतु उल्लेखता । गरमी जठ
असाठ क दिन ।

घडियाँ = ग्रा० ४५ ७० । का० ११५, १६२,
[स० स्तो०] (हि०) १७७ । ल० ३६ ।
घडी का बहुवचन ।

ग्रीपम क। मध्याह्न—इदु कता ३ किरण ५ अग्रल
१६१० मे मवप्रथम प्रकाशित तथा
कानन कुमुम' मे पृष्ठ २४-२५ पर
सकलित । ग्रीपम क प्रचट दिवाकर का
कचा कवि न इमम का है । वगुन बहूत

घडी = वा०, १७५ २२४ । म० ४७ ।

[सं श्लो०] (हि०) २४ मिनट का समय । अर्ध समय समयनिर्देशक यंत्रिका ।

घडी घडी = का०, १६५ ।

[अ०] (हि०) बार बार ।

घन = आ०, ५० । का० कु०, ७५, १२३ ।

[म० पु०] (स०) का०, ६, ३३, ८८, ८८, १०१, १७५, १८१, १८४, २००, २०४, २३७, २४४, २७८ । चि० ११, २१, ६१, १६०, १६० । भ०, ६२ । न०, २१, ४२ ।

मघ, वादन । भुङ्ग मसूह । कपूर ।

[वि०] घना, गफित । मजबूत, दृढ़ ।

घनकुञ्ज = का० कु० १०० ।

[म० पु०] (स०) गफित कुञ्ज ।

घनतिमिर = का०, ५० । न० ३२ ।

[म० पु०] (म०) गहन अंधकार ।

घननाद = का०, १८३, २६८ ।

[म० पु०] (स०) बादल का गजन ।

घनपटल = का० ८२ ।

[म० पु०] (म०) वादलों की तह ।

घनमाला = का०, १६ ३० ।

[म० पु०] (म०) वादलों का समूह ।

घन मीत = चि०, १५६ ।

[म० पु०] (हि०) बादल का मित्र ।

घनश्याम = का० ४६, ८१ १०४ । चि०, १८६ ।

[सं पु०] (म०) भ० ६ ।

काला बादल । वृष्टि । प्रियतम ।

घनहिं = चि०, १६३ ।

[सं पु०] (अ० भा०) वायु का ।

घना = आ० २४ । का०, १७६, १८७, १८६, १८६, १८६ ।

[वि०] (हि०) २६४ ।

सघन । बहुत पाम पाम । अविरल ।

घनी = का० कु०, ३२, १२७ । का०, १४, १२१ १८०, १८८ । चि०, १६४ ।

[वि०] (हि०) भ० ५५ । म०, ७, १६ । ल०, ११, १४, ५६ ।

घना का स्त्रीनिग ।

घनीभूत = आं०, १४ । का०, १७ ।

२५

[वि०] (हि०)

घनत घनी । पूजीभूत । उ०—जा घनीभूत पीडा थी, मस्तक मे स्मृति मी छाई ।—आसू ।

घन = का०, कु०, ३१ । का०, १७, १७६

[वि०] (हि०)

१८१, १८२ ।

घना का बहुवचन ।

[घने घन बीच कुछ आकाश मे यह चद्रलेगा सी—'विशाल' नाटक मे चद्रनखा की प्रगसा म लिखी हुई दा पत्ति की कविता । चद्रलखा उना प्रकार की है जसे निकप पर स्वरा की रत्ना और घन घन क वाच म चद्रलखा । प्रसाद मगात' म पृष्ठ ११ पर सफलित ।]

[घने प्रेम तर तले—'श्वेतपुत' का गात जिसम देवनेना विजया का शिद्धा देनी है । 'प्रसाद सगात' म पृष्ठ ८८ पर सफलित । कविता का भाव यह है कि छाया विश्राम ह । अद्धा नगा का बिनारा है और परागमय धूल मुदुल आमुष्ठा स मीची गई है । घने प्रेम तर के तले भव धातप के ताप स मुक्त होने के निय बठकर छाहा लो और जल पा ला । यहा का छननवाला नहीं । यहा हवा क भाका से फून भूपटन ह जिमम हृदय का धाव मर जाता है । मन की यवा भरी कथा यहा बठकर पुनत जाया । ठहरा, कहा चल जा रहे हा ? घन प्रेम के तर क नीचे बठकर छवि का रसमाधुरी पा ला और जावननना का सीधा । आयु भर सुख स जी ता क्यार्क यह जीवन माया का खन है । स्नह से मल मिला ।]

घनेरे = चि०, ७४, १०८, १५५ ।

[वि०] (न० भा०) अर्थधिक । अगणित । बहुत ।

घनी = चि०, १०६ ।

[सं पु०] (अ० भा०) वादना ।

घघराना = का०, १४, १७ । का० कु०, ६३ । का०,

[वि० अ०] (हि०) १, ८, ६, २६१ । प्र० ५ । म० ५ ।

अभार होना, याकुल हाना ।

[घबराना मत इस विचित्र ससार से—प्रेमानंद द्वारा विशाल को दिया गया उपदेश। 'विशास' का यह गान 'प्रमाद संगीत' में पृष्ठ २१ पर संकलित है। कविता का आशय है कि इस विचित्र ससार में पबराना मत। अपने अश्विचार से श्रीरा का आतंकित मत करो और तुम्हारे जीवनकोप में आनंद की कमी न हो। तुम पूर्ण बनो और छल से दूसरा को झूठा न करो। सीधे रास्ते पर चलो और सीधे चलो। न तो खुद छलते जाओ और न श्रीरा को छलते। चाहे भले ही सत्य का पक्ष निवृत्त हो उसे मत छोड़ना और पवित्रता से जीवन के अथकार को दर करो।]

घमड = म०, १४।

[सं० पु०] (हि०) गरुड, अनिमान, गव।

घमडी = का० कु० ८३।

[वि०] (हि०) अनिमानी अह्वारी।

घर = श्री०, ५१। का०, ७३ १०१, १४४

[सं० पु०] (हि०) १७८, २१६ २३३। म० ८८ ८३

प्रे० ६, १० १३।

गृह, आवास, निवास, मकान।

घपिता = का० २०१।

[वि०] (म०) रगड खाई हुई रगडी हुई।

घाटी = श्री०, १६। का० १०१ १५२ १६७,

[सं० श्री०] (हि०) २८३। म० ४।

दो पत्तों के बीच का सकार भूमि दर।

घात = वि० १८ ३८। ल० ३७।

[सं० पु०] (सं०) प्रहार चोट। महित, बुराई।

घात प्रतिघात = म० ११।

[सं० पु०] (सं०) चाट और चाट व कारण चाट खाए हुए द्वारा प्रहार।

घातें = श्री० ८। का०, १७८।

[सं० पु०] (सं०) घात का बहुवचन।

घायल = श्री०, २२। का०, २०६ २०७ २१०,

[वि०] (हि०) २१४, २६८।

जिमें धाव लगा हो, जखमी, क्षत शरीर।

घान = का० कु०, ६३।

[सं० पु०] (हि०) जखम। चाट।

घास = म०, २२।

[म० श्री०] (सं०) चौपायों के चलने का उद्भिज।

घिग = का०, १६६, १८६, २०६।

[पूर्व० त्रि०] (हि०) आवृत्त होकर।

घिरती = का०, १२।

[क्रि०अ०] (हि०) आवृत्त होता। छा जाता।

घिरना = श्री०, १२, १६। का० कु०, ४३।

[त्रि०अ०] (हि०) का०, ६, ३३, ४६, १७५। म० २४, ३६ ४७।

आवृत्त होना। छाना।

घिरि = वि०, ६५, ७१।

[क्रि०] [घ०भा०] घिर कर।

घिरो = का० कु० ४३। म०, ४६। प्रे०,

[क्रि०] (हि०) ३, ४।

छाई।

[घिरे सघन घन नींद न आए—'कामना' का

यह गीत 'प्रमाद संगीत' में पृष्ठ ७५ पर

संकलित है। सघन घन घेरे हुए हैं।

नींद नहीं आइ है, क्योंकि निर्य प्रामग

अभी नहीं आया है। इस अथकार में

चपला ने भा प्रनाश नही लिखाया है

यद्यपि रम का बूँ मरत हा वरम चुकी

है फिर भा यत् मन घुरभाया हुमा है।

घाना में घ्राँयु व भरन वह रहे है फिर

भी हून्य भौतल नहीं हो पाया है।]

घी = का० कु०, ११४।

[सं० पु०] (हि०) घृत।

घुघगली = का० १०३, २२१। म०, २८।

[वि०] (हि०) टा। कुचित, लक्ष्यार।

घुँघराले = का० ७४। प्रे० १८।

[वि०] (हि०) घुपराता का बहुवचन पुलिग।

घुटनी = म०, ६६।

[सं० पु०] (हि०) टाँग और जाँघ व मध्य की गाँठ।

धुलना = आ०, ५८। वा० ७५, २७६, २८८।
 [क्रि० प्र०] (हि०) भ०, ११, परिचय।
 भला भाँति मिन जाना। धोरे धोरे
 चिन्ता या रोगग्रस्त हा क्षीण होना।

धुलनें = का०, ८७।
 [क्रि० प्र०] (हि०) धुलना वा बहुवचन।

धुला = वा०, २१४।
 [क्रि०] (हि०) धुलना की भूतकालिक क्रिया।

धुली = वा०, २१६। ल० ६०।
 [क्रि०] (हि०) धुला का स्त्रीलिंग।

धुसना = म०, २।
 [क्रि० प्र०] (हि०) तह तक पहुँचना, प्रवेश करना भीतर
 चला जाना।

धूँ घट = आ०, १६। वा०, ३६, ६४, ६७।
 [म० पु०] (हि०) चि० १८२। भ० २५, ६४। वा०
 कु०, ५३।
 मुह छिन्नान क लिये क्रिया गया परदा।

धूँ ट = वा०, ८४, १११, २३८, २८८।
 [म० पु०] (हि०) गले स द्रव पदार्थ उतरने की एक बार
 की सामा।

धूम = आ०, २६। वा० कु०, ८३। वा०,
 [स० स्त्री०] (हि०) २५ ८६ १४२, १४४, १५०, १५२,
 १५६, २३३, २६४, २६६। म०, २,
 ६। ल०, २०।
 घुमाव, माड, चक्कर।

धूमता = चि०, ३५, १०१, १६१। प्र०, ११८।
 [क्रि०] (प्र० भा०) ल०, ५८।
 चलता, चक्कर घाटता।

धूमती = व०, ३०। वा० कु०, ८। वा०,
 [क्रि०] (हि०) २६४।
 चलता, टटलता, चक्कर लगाती।

धूसा = व०, १३। वा० कु०, १३। वा०
 [प्र० क्रि०] (हि०) ५१, ५२। ल०, ६५।
 चक्कर घाटकर। चलकर।

धूसी = प्र०, १६।
 [क्रि०] (हि०) धूमना का भूतकालिक क्रिया।

धूषा = वा० कु०, ८३। का०, २०७, २१८।

[म० स्त्री०] (स०) भ०, २१।
 नफरत। वीभत्स रस का स्थायी भाव।

घेर = प्र०, ७, १०। म०, ७।
 [पूर्व० क्रि०] (हि०) घेरकर, चारा शर से घावृत कर।

घेरा = वा० कु० ५४। वा०, २५८। भ०,
 [म० पु०] (हि०) ८१। प्र०, १२।
 परिधि, कँनाव। अहाता। सेना द्वारा
 चारा शर स घिर जानवाला स्थान
 या किला दुग आदि।

घेरि = चि०, ४०, ६५।
 [पूर्व० क्रि०] (हि०) धरकर।

घेरे (हि०) = वा० कु० २६। वा०, ७७, ७१,
 २२५, २६४। म० ३।
 छेँरे हुए। घेरा का बहुवचन।

घोंट = का०, ३६।
 [म० पु०] (हि०) घाटने का काम। टीपने का काम।
 मसलने का काम।
 [प्र० क्रि०] रगटकर, घाटकर।

घोर = व०, २५। वा०, ८, ४३ १०७,
 [वि०] (स०) १२३। चि०, १८२। प्र० ५, २१।
 म० ६, १२।
 भयकर, भयावना, विचरान।

घोराधकार = चि०, १०१।
 [म० पु०] (स०) घार अघार। गहन तिमिर।

घोरि = चि० १७०।
 [पूर्व० क्रि०] (प्र० भा०) घालकर।

घोरो = चि०, १८२।
 [प्र० क्रि०] (प्र० भा०) घालकर।

घोल = वा० ३८, ६७, १५२, २३७।
 [म० पु०] (हि०) मिश्रण।

घोलता = वा०, २४।
 [क्रि०] (हि०) मिलाता।

घोषणा = वा० कु० ११६। का०, २६७।
 [स० स्त्री०] (स०) उच्च स्वर से मावजनिक रूप म दी
 गई सूचना। विनापन।

घोषित = म०, ५, ७।
 [वि०] (स०) घोषणा की हुई।

घ्राण

= का०, ८६।

भ०, ४६।

स्थिर न रहनेवाली—लम्भा। बिजली।
विप्लवी।

[स० स्त्री०] (स०) नाक। सुघने की शक्ति। गंध, सुगंध।

च

चचले = भ०, ७६।

चक्रमण = ल०, २३।

[स० स्त्री०] (स०) चचला' वा मवावन, हे लक्ष्मी! ह
चचन स्वभाववाला।

[स० पु०] (स०) टहलना। घूमना।

चगेर = प्रे०, २।

चट = वा कु०, ४० ४२। भ० ४१।

[स० स्त्री०] (हि०) बॉम की बनी छोटी टोकरा। झूला,
पालना।

[वि०] (हि०) चतुर। धूर्त।

चड = का० कु० ५४ १०८। चि० ६४।

[वि०] (स०) उग्र। ताग्र। प्रखर। बलवान। विर
क्राधा। उदत्त।चचल = श्रा०, ३४ ६०, ६६। का० कु०, ३६,
४२ ५३ ६१। का०, २५, ४० ४५
६६ ६७ ७० १०३, १११, १३१,
१४०, १५८, १६६ १७१ १७६,
१८२ २१३ २१६ का०, २२६।[स० पु०] (स०) ताप। इमता का वृद्ध। एक भरव।
दुगा द्वारा मारा गया दत्त।

[वि०]

चटकर = चि० ३६।

(म०)

[म० पु०] (स०) श्राद्धिय मूय।

[वि०] तेज किरणानाला तिग्म रश्मिमाला।

वि०, ४, २४ ६२ ६६ १७६, १८३
भ०, १७ २२, ३८। ल० १० २०,
२६, ३०, ४३ ४८।
अस्थिर। चलायमान। अदीर।
उद्विग्न। अस्थिर।

चडशासन = प्रे० २।

[स० पु०] (स०) तेज या कठोर शानन। अत्यचारा का
शासन।

[चचल चंद्र सूर्य हैं चचल—अज्ञातशत्रु' का गान,
प्रमाद सगत' म पृष्ठ ४८ पर मकलित।
भगवान् गौतम बुद्ध का गान। इस सृष्टि
म सभी चचल है। चंद्रमा सूर्य, ग्रह
नक्षत्र, अग्नि, वायु जन भूमि—मन
उसी प्रकार चचन है जैसे पारा। जगत्
अपनी प्रगति स और मन अपना लाला
स चचल है। प्रवृत्ति प्रतिक्षण परिवर्तन
शीघ्रता म चचन है। अरु परमाणु
दुख मुल और मन्मा मुलमापन चचन
और क्षणिक हैं। मन्मा दृश्य नश्वर है।
दुख और मूष भा नश्वर हैं। क्षणिक
मुन्मा का स्थाया कहना दुख का मून
है और महा भूत है। ह चचन मनुष्य।
तू इस अमार ममार में क्या भूला
हुआ है।]

चचलता = का० ८४ १३६। चि० १८८।

[वि० स्त्री०] (स०) चपलता। शरारत। नटमन्त्रन।

चचला = श्रा० २४। वा कु० ५२ १०४।

[स० स्त्री०] (स०) का०, १९८, २३७। चि०, १००।

चद = वा० कु० ४० ४२। चि० २ ३१
[म० पु०] (हि०) १०६ १४६ १५६। भ० ४१।
चंद्रमा। हिवा का एक कवि, चम्बरदाई।

[अव्य०] (का०) कुञ्ज, घोडा।

चदवदन = चि० १६२।

[वि०] (स० भा०) चंद्रयुवी। चंद्रमा व समान मुलनाली।

चदन = वा० कु० ६। का० १०२। ल०

[स० पु०] (म०) २८।

एक मुग्धिन लकडा। एक मुग्धित लप।

चद्र = श्रा० ४१, ४३। का० ६। का० कु०,

[स० पु०] (स०) ३८। का० ६२, १२०। चि०, २८

७२ ७३, १०७ १८६। भ० २५।

प्र० १० १७। म० ६। न०, १३।

चन्द्रमा। मार का पूछ का चन्द्रिया।
जन। कपूर। माना।

चद्रकर = भ० १७।

[स० स्त्री०] (स०) चंद्रमा का चिरण।

चद्रमला = वा० कु० ३६। चि०, ६ १४।

[स० स्त्री०] (स०) चंद्रमल का मानहवीं श्रग। मन्त्रप

पर धारण करने का आभूषण। चंद्रमा
का चिरण या चन्द्रिया।

चंद्रकांत = का० कु०, १०५। ल०, ६२।

[सं० पुं०] (सं०) चंद्र। कुमुद। एक कविपत्न्य रत्न जो चंद्रमा के समान रखन पर विघ्नता है और उमम प्रमृत्त निकलता है।

चंद्रनिरख = ऋ०, ५३।

[सं० स्त्री०] (सं०) चंद्रमा की निरख।

चंद्रनिरोद = का० २६४।

[सं० पुं०] (सं०) चंद्ररूपी मुकुट।

चंद्रमूल चण = चि०, ३२।

[सं० पुं०] (ब्र० भा०) चंद्रवर्णिमा म चंद्रमा महण।

चंद्रनेतु = चि०, ७०, ७६।

[सं० पुं०] (सं०) चण्डण के पुत्र का नाम।

[चंद्रनेतु—दक्षिण प्रेमराज्य'। प्रेमराज्य' में चंद्रनेतु का वयुज नवयौवनशाली रम्यज्वल दयावार, मनोहर विशारद रूप में किया गया है। जिम्हा मोदय दक्षर काम भी माहित हा जाना है।]

चंद्रप्रभा = का० कु०, १५। म० ८।

[सं० स्त्री०] (सं०) चांदनी। कपूर।

चंद्रमंडल = का० कु० ४२।

[सं० पुं०] (सं०) चंद्रमा का घेरा।

चंद्रमणि = चि० ८२।

[सं० स्त्री०] (सं०) चंद्रकान मणि।

चंद्रमा = का० कु० २६, ४३। चि०, ४६।
ऋ०, ७१।

[सं० पुं०] (सं०) दे० 'चंद्र'।

चंद्रमा सा = का० कु० २६।

[वि०] (हिं०) चंद्रमा के समान शीतल वा आनंद दायक।

चंद्रमुख = का० कु०, ६७। म० १८।

[वि०] (सं०) चंद्रमा के समान मुखवाला। चंद्रमुख।

चंद्रमुखी = प्र०, ६।

[वि०] (हिं०) चंद्रमा के समान मुखवाली।

चंद्रविद्य = का० ३४। प्र०, १६।

[सं० पुं०] (सं०) चंद्रमण्डल। चंद्रमा का घेरा।

चंद्रनिरोद = ऋ० ६६।

[सं० पुं०] (सं०) चंद्रमा के निरोद।

चंद्रशालिनी = का० १३६। प्र० ६।

[सं० स्त्री०] (सं०) चांदनी। चंद्रिका।

चंद्रहीन = का०, २३३।

[वि०] (सं०) बिना चंद्रमा के।

चंद्रातप = का० कु०, ६६।

[सं० पुं०] (सं०) चंद्रमा का प्रकाश। चान्दी। चन्दा।

चंद्राभमय = का० कु० १००।

[वि०, (सं०) चंद्रमा की आभा में युक्त।

चंद्रालोक = ऋ० ५४।

[सं० पुं०] (सं०) चंद्रमा का आलोक। चान्दी।

चंद्रायली = चि० १६४।

[सं० स्त्री०] (सं०) एक गोपी का नाम।

चंद्रका = प्रा० २४ ४८। का० कु०, २ ६,

[सं० स्त्री०] (सं०) ४१। का०, ४६, ८८ १०१। चि०, ७१, १६४ १७०। ऋ० ४८, ५५, ५६, ६६, ७१।

चान्दी कीपुत्री। मार की पुत्र पत्नी का गाल चिह्न। माये पर पहनन का एक गहना। बेंदी।

चंद्रिकानिधि = का० ३५।

[सं० स्त्री०] (सं०) चंद्रमा।

चंद्रोज्ज्वल = चि० ६३।

[वि०] (सं०) चंद्रमा की तरह उज्वल।

[चंद्रोज्ज्वल—दुधु बला २, त्रिरंग ५ फाल्गुन स ज्येष्ठ के मयुक्ताव म० १८६७-६८ व 'होली वाक' में प्रकाशित तथा 'चित्रावार' व पराग में पृष्ठ १६३ पर सन्निहित ब्रजभाषा की रचना। एक परपरागत कविता।]

चपक = चि०, ५६।

[सं० स्त्री०] (सं०) एक मुण्डित कूत। चपा।

चपककलिका हार = चि०, ५५।

[सं० स्त्री०] (सं०) चपा का कलियों का हार।

चपकलता = चि० ५६।

[सं० स्त्री०] (सं०) चपा की लता।

चपकलतिका = चि०, ५६।

[सं० स्त्री०] (सं०) चपा की लता।

चरई = चि०, २४। प्र० ८।

[सं० स्त्री०] (हिं०) चक्रवाक नाम के पक्षी की मादा। घिरना की तरह का एक गाथा।

चकई चक्रमा = प्रे०, ८।
 [म०] (हि०) चक्रवान का जोड़ा।
 चकचूर = चि०, १६८।
 [वि०] (हि०) चकनाचूर।
 चनाचोष = म०, १३।
 [सं० स्त्री०] (हि०) तीव्र प्रवाश से होनेवाली आखा का तिलमिलाहट।
 चक्रित = आ०, १३। का कु०, २५ १०२।
 [वि०] (स०) का०, ८६ १०१ १२०, २१५, २६४।
 चि०, ४२, ६६। ल० १८।
 भोचभमा। चौकना। हक्काचक्का।
 विस्मृत।
 चकित ह्वे = चि०, ६१।
 [पूव० क्रि०] (१० भा०) चकित हाकर।
 चकोर = आ०, ४३। का० कु० ५०। चि० १५।
 [सं० पु०] (हि०) १६४, १८६।
 चद्रमा का प्रमा एक प्रकार का पहाड़ी तीतर, जिसके स्वयं में कविमा यता है कि वह अगार खाता है।
 चकोरी = चि० १७१।
 [मं० स्त्री०] (हि०) चकोर का मादा।
 चक्कर = वा० कु०, ८। का०, २५७। भ०, ३३। म०, ४।
 [हि०] केरा। परिक्रमण। पहिए क समान गोल वस्तु।
 चक्र = का० कु० १०। का०, १७ २०, ६२, १२२। १८६, २६४। ल० ३३, ६५।
 चक्का। पहिया। ववडर। समूह। मना। घेरा। दिशा।
 चक्रयति चि० ६८।
 [वि०] (श्र० भा०) वह राजा जिमका शासन दूर दूर तक पला हा। नरशा का नरशा। साव भीम राजा।
 चक्रवाल = का० १२१, १७० २६४।
 [सं० पु०] (स०) मदन। घेरा। एक घोरालिख पवत।
 चक्राकार = का० ८६।
 [वि०] (सं०) पहिए क समान आकारवाला। गान।
 चक्र = चि०, २२ १८६।
 [सं० स्त्री०] (श्र० भा०) घोल। चक्रु।

चसि के = चि०, १८३।
 [पू० क्रि०] (श्र० भा०) दसकर। स्वाद लेकर।
 चचेत = चि०, २४।
 [क्रि० वि०] (श्र० भा०) चनपूवक, आराम स।
 चट = वा० कु०, ११३।
 [क्रि० वि०] (हि०) भट। पीरन। घोघ।
 चटकौला = ल०, ४६।
 [वि०] (हि०) मडकीला। चटपटा। चमकगार।
 चटचटा = भ० ४८।
 [क्रि० वि०] (हि०) क्ली के खिचने का चट चट ध्वनि क साथ।
 चट्टानों = वा० ५६।
 [मं० स्त्री०] (हि०) चट्टान का बहुवचन।
 चटना = आ० ५१। वा०, ७। का०, ६४, [क्रि० सं०] (हि०) ६६, १०६, १२१। २०६। २५७। २५८। २८४। चि०, १८४। प्र०, १२। म०, ५।
 नाचे से ऊपर जाना। उठना। उठना। आक्रमण करना। देवता का भेंट खाना। पकान के लिये चू-हे पर रखना। बडाना।
 चटाइयाँ = का० कु०, ११२।
 [सं० स्त्री०] (हि०) आक्रमण। धावा। (बहुवचन)।
 चटाना = आ०, १७। वा० कु०, ६।
 [क्रि० सं०] (हि०) उठाना। आक्रमण करना।
 चटि = चि० ६४।
 [पूव० क्रि०] (श्र० भा०) चटकर।
 चट्टी = वा०, १८५, २४१। चि०, ३। प्र० [क्रि०] (हि०) ३। म०, ५।
 चटना का भूवत्तलिक खालिग रूप।
 चट = म०, २।
 [क्रि०] (हि०) ऊपर उठ।
 चट्टे = चि०, १०८।
 [श्र० भा०] भाग बढ़। उनात कर।
 चतुरंग = वा० कु० ६६।
 [सं० पु०] (सं०) शतरंज का शत। हाया, पाग, रथ मोर वगैर वार प्रयागला मना।

चतुरगिनी = वि० ६७।

[मं० वि०] [मं० चतुरगिनी] चार भगावाली। हाथी, घोडा, रथ और पदल चार भगावाली (सेना)।

चतुर = श्री० २२। वा० कु०, ६६। वा० [वि०] (हि०) ३८। वि० ६६। म० २०।

निपुण। टेढी सान चलनेवाला। वक्र गामा। दक्ष।

चतुर्दिक् = वा०, २०६, २५७, २६४।

[मं० पु०] (मं०) चारों दिशाएँ।

[त्रि० वि०] (मं०) चारों धार से।

चपल = श्री० १६। वा०, ५, ८३, ८५, १०२,

[वि०] (सं०) १४२। वि० १५०। ऋ०, २२, २४, २६, ८६। ल०, ७६, ७६। तज चचल। जन्मवाञ्छ। निपुणा। चालाक। अस्थिर।

चपलता = वा०, १७५।

[सं० स्त्री०] (मं०) चचलता। तेज।

चपला = श्री०, ३४। वा० कु०, ५२, ६८।

[वि०] (मं०) वा०, १६, ५०, १७७, २५८। वि० १२६, १६४, १६०। ऋ०, २२, ३१। चचला। तेज।

[मं० स्त्री०] प्रे० १६। ल०, २१, २७।

आकाश म चमकनवाली बिजला। जाभ। लम्बी। धन। भाँद। दुःखरिशाखा। पावन। एक छत्र का भेज। मदिरा। जहाज म लकड़ी या लाठ का लगा पट्टा। विजया।

चपलाएँ = वा० १६।

[मं० स्त्री०] (हि०) चपला शत्रु का बह्वचन।

चपलासीम = ऋ २२।

[वि०] (हि०) चपला से समान।

चपेटा = वा०, १७।

[सं० स्त्री०] (हि०) धक्का। भोका। भटका।

चवाता = म० १५।

[त्रि०] (हि०) दातो का अक्की तरह दबा दबाकर चवाना।

चमक = वा०, १७५, २४६। वि० १६४

[मं० स्त्री०] (हि०) १७०। ऋ०, ७३, ६२। म०, १०।

ल० ६१।

प्रकाश। ज्याति। राशना। आभा। दमक। बमर या पीठ म धचानर उठा हुआ दर।

चमक कर = प्रे० १६।

[पु० वि०] (हि०) एक भक्तव दिसाकर।

चमकती = श्री०, ३३। वा०, २००, २५८।

[त्रि०] (हि०) भिन्नमिलाता, प्रकाश लेती।

चमकने = श्री०, ५०। प्रे०, १०।

[त्रि० मं०] (हि०) भिन्नमिलान। प्रकाश देने। दीप हाने। प्रतिष्ठित हाने।

चमकावत = वि० ६१।

[त्रि० वि०] (प्र० मं०) चमकाते हुए।

चमकि = वि०, ६५, ७५, १६०।

(प्र० मं०) चमक कर।

चमकीला = वा० कु०, ३६। वा० ७, २७०।

[वि०] (हि०) ऋ० २२। प्र०, २४।

भटकीला। चमकदार।

चमकूँगा = श्री० ४२।

[त्रि०] (हि०) प्रकाशित हाऊगा।

चमडे = वा०, १४७।

[मं० पु०] (हि०) चम। त्वचा। खाल। चमडा का बह्वचन।

चमदमार = ल०, ६६।

[मं० पु०] (सं०) आश्चर्य। विस्मय। विचित्रता।

चमदकृत = वा० १६, ८३, १००। ऋ०, १८।

[वि०] (सं०) चकित, आश्चर्ययुक्त।

चमरौ = वा० २७८।

[सं० स्त्री०] (हि०) सं० चमरा का हि० बह्वचन, चुरा गायी।

चमु = वि०, ६५।

[मं० स्त्री०] (सं०) सेना फौज।

चमुपति = म०, ३।

[मं० पु०] (सं०) सेनापति। राजा।

चमेके = वि० १००।

[त्रि०] (हि०) (द० 'चमकना')।

चमेली = प्र०, १, २ ४ ६, १३, १६, १८,
[सं० स्त्री०] (हि०) १६, २४ २६, २७।

एक सुगन्धित फूल की लता। एक
सुगन्धित फूल।

[चमेली—सबप्रथम इट्टु कला ५ खंड २, विरहा ६
दिमबर १६१४ म प्रकाशित 'प्रेमपथिक'
का दूसरा खंड। ७० प्रेमपथिक। प्रेम
पथिक की प्रिया का नाम भा चमेली था।]

चरण = श्री, ११ ४५। का०, १० १७ ३०।
[सं० पुं०] (सं०) का० ३६, २७, २६ १२०, १२३,
१६८, ६, ६१, ६६ २४४। न०,
३१। न० १०; ४२ ६। का०
कु० ६३ ६० १०० १०३। वि०
६०, १७४।

पर, पग। किसी वस्तु का चौथाई
भाग या चौथा हिस्सा।

चरण अरविंद का० कु०, ६३।
[सं० पुं०] (सं०) चरण रूपी कमल।

चरण अलङ्कार = ल०, ६०।
[सं० पुं०] (सं०) पर का आना।

चरण कमल = का० ६ ६८। वि० १७४।
[सं० पुं०] (सं०) कमल के समान चरण।

चरण चिह्न सी = ल०, १०।
[वि०] (हि०) पग के चिह्न के समान।

चरण चूमि = वि०, ६०।
[पुं० क्रि०] (श्र० भा०) चरण चूमकर।

चरणमूल = का० ६१ २४४।
[सं० स्त्री०] (सं०) चरणों की धूत।

चरण रेगु = का० कु०, ६०।
[सं० स्त्री०] (सं०) चरण का धूमि।

चरण सरसिन = का० कु०, १००।
[सं० पुं०] (हि०) चरण रूपी कमल।

चरण परी = का० कु० १३।
[सं० पुं०] पर छूना। अर्थात् पूवक मुक्कर अभि
(सं०) चरण करना।

चरणन = वि०, ६४ १५७ १६०।
[सं० पुं०] (श्र० भा०) हि० चरण (चरण) का वन्दन।

चरम = का०, १३०।
[वि०] (सं०) परा काष्ठा। प्रतिम।

चराचर = का० कु०, ८६।
[सं० पुं०] (सं०) चर और अचर। जगत्। सृष्टि जग,
ससार। विषय।

चरित = का० कु०, १०, वि० १४६।
[सं० पुं०] (सं०) स्वभाव, प्रवृत्ति। आचरण। जीवन
कथा, जीवनी। २० चरित्र।

चर्म = का०, ४६ ११८, १४५, १८३।
[सं० पुं०] (सं०) चि० ६५।
त्वचा। ताल। चमड़ा।

चल = श्री १ ७६। का० कु०
[वि०, सं० पुं०] ५३। का०, ५ ६, ३४ ३५ ३६,
(सं०) ८६, ६३, ११८, १४६, १५० १६२
१६७, १७० १६२, २०६, २२२
२२३, २२१, २५३ २५४। वि०,
१८३। प्र० १४, १८। म०, १ २।
ल०, १४, २३, ४६।

चलन। पार। विद्युत्। गिब। दाप।
कपा। छन। अस्थिर। चलायमान।

चलचक्र = का०, ६१।
[सं० पुं०] (सं०) चलन चक्र। चलनवाता चक्र। घातन।
भ्रमर।

चलचित्र = का०, २६४।
[सं० पुं०] (हि०) प्राग्वान् चित्र। वह चित्र जो गत
पर चलता नजर आता है।

चलत = वि० १ २६ ६५, ११०।
[प्रि० वि०] (श्र० भा०) चलत हुए।

चलता निरता = का० १६६।
[पुं०] (हि०) गिता उद्देश्य या लक्ष्य का काम करना
[क्रि० वि०] काम करता। दूसरे उभर धूमना। काम
चलाना। आनाम या निवान म्यान
न हान।

चलने-चलने = प्रि०, ६६।
[प्रि० प्र०] (हि०) चलने का वाप करत-चलने।

चलदल = का० १४८।
[वि०] (सं०) पापन के पल के समान। चञ्चल,
अस्थिर। निरुद्ध्य।

चलना = श्रां०, ८, ३३। ग०, ८६, १० १४,
 [क्रि० घ०] (हि०) १८, १७। वा०, ८, ११ १३, १४,
 १७ २६, ३४, ३६, ३६, ४३, ४६,
 ५१ ५६ ७० ७१, ७३, ७६ ८१,
 ८३, ८६, ८७, ८८, ९४, १०३,
 १४१, १४२, १४८, १४८, १४९,
 १५४ १६०, १६३ १६४, १६५,
 १६६, १६७, १७१, १७७ १७८,
 १७८ १८५ १८६ १८६, १८८
 २००, २०१ २०८ २०७, २१०,
 २११, २२३ २१४ २०६, २४१,
 २४३ २५०, २५६ २६४ २६६
 २७१, २७२। २७७ २७८, २८१,
 २८२ २८६, २८२। चि० १५, ५८
 ६५। प्रि० ४, ६ ७, १७ २४।
 ग०, १० २१ २३ ३६, ११ ६७।
 पर उठान हूँ एक जगह स दूसरा
 जगह जाना। गमन करना। हिनाना-
 रूतना।

[चल बसत वाला अचल से अजातशत्रु का
 गीत। प्रनाम समान' म वृ४ ६० पर
 मकतित। यह नपथ्य गान त्रिमार
 का स्थिति पर प्रकाश डालता है।
 वमत का मन्त्रा का दृश्य चिपित
 कगत हए यट् मुन्त्र कविना प्रम्नुत
 का गत्। जय मुय अन्त होता है
 ता चचल उमत वाला क अचल म
 मीरभ म मस्त मलयानिल की घातक
 लट्टें आती हैं। क्या नदा न तट के
 उम पार मधुकर म मथिक्कर पत्ता पत्ता
 स फूल बनने का प्रलाभन द रम चूवती
 है। य फूत नी बनराला क शृंगार
 थे। उह आशा बधाकर मल लगाया
 और इधर उधर बहकाया। व फिर
 कुम्हनाकर मूल गए। मर्महत, निराह
 वृत्ता से कुसुमाकर के केश की भाति
 के पुष्प भर गए। और अत मे कवि
 बहता है—

नग्न न रा सृजन! मुग्ध है,
 रिया बात स बच जय दूर।
 गीत फूत मा हृमता दन ?
 व अनात म भा जय दूर।
 लिखा हूँ उतरा नस नस म
 इम निशयना का इतिहास,
 नृ अय घाट' बना धूमगी
 उनके अचोपा व पाम।]

चल प्रकाश = ग० ३१।

[ग० पु०] (स०) प्रथिपर ज्वानि।

चलाना = वा०, १८१।

[क्रि० म०] (हि०) चलन म प्रवृत्ति कराना, एसा काम
 करना कि चलना रहे।

चलायत = चि०, १६३, १८२।

[क्रि० स०] (प्र० भा०) (१० 'चलाना')।

[चला है मथर गति से पवन—अजातशत्रु का
 गीत जो 'प्रमाद मगीत' म वृ४ ५२ पर
 सक्तित है। श्यामा इम गीत को
 रिझाने क लिये गानी है और माइ-
 कना का अभिनय करता है। नन्म
 कानन का रसीना पवन मथर गति से
 चल रहा है। फूता पर मधुकर आनद
 का भँरवा गा रह है। विन्मी के यौवन
 की निरगों विपुक्कर आनन अरविद
 की खिला रही है, एमी स्थिति म विम
 मुषड का ध्यान कर रहा हा? क्या
 स्वर्णिम मन्त्रिा पिता रहा है, और
 प्रदति फून करना रही है। मन्पल
 हा जाया और अपन मन का आज कर
 ला। क्योंकि मान्कता म विधि और
 नियेव नही रहता।]

चलि जात = चि०, १७१।

[क्रि० घ०] (प्र० भा०) चला जाता है।

चलि जाहु = चि०, ५३, ५८, ६४।

[क्रि० म०] (प्र० भा०) चने जाने का आशा देना।
 चल जाया।

चली चली = म०, ४।

[क्रि० म०] (हि०) चलने के लिय प्रवृत्त करना।

चलें = का०, १४८, १६१, १६५, २२०।
 [क्रि० प्र०] (हिं०) चलने क लिय आजा मागना।
 चल्यो = चि०, ५४।
 [क्रि० प्र०] (प्र० भा०) चल दिया।
 चपक = का० २४ १६३ १६८। ऋ० २५।
 [स० पु०] (ग०) शराव पीने का प्याला। मधु एक विशेष प्रकार की मदिरा।
 चसना = का० कु० ७८।
 [स० स्त्री०] (हिं०) शीत, आदत लत।
 चहत = चि०, २७।
 [क्रि० स०] (प्र० भा०) चाहता है, इच्छा रखता है।
 चहति = चि०, १७०।
 [क्रि० म०] (ग० भा०) चाहती है, इच्छा रखती है।
 चहल फन्मी = ऋ०, ५१।
 [स० स्त्री०] (हिं० पा०) धीरे धीरे टहलना या घूमना।
 चहल पहल = का०, १७७।
 [स० स्त्री०] (हिं०) आनंद, भीट। घूम घाम, रीतक।
 चहुँ = १५४ १७७।
 [वि०] (प्र० भा०) चारा।
 चहुँओर = चि० २५४, १७७।
 [प्र०] (प्र० भा०) चारो ओर सब तरफ।
 चहुँ = चि० ४६ १७०।
 [वि०] (प्र० भा०) चारा।
 चहूँ = चि० १५ २६, १५८, १६६।
 [क्रि० स०] (प्र० भा०) चाहता है, इच्छा रखता है।
 चहूँ = चि०, १६६, १७२।
 [क्रि० स०] (प्र० भा०) चाहता है, इच्छा रखता है।
 चहूँ = चि०, १०७।
 [क्रि० स०] (प्र० भा०) चाह या इच्छा रखना का सम्बन्धित क्रिया चाह चाहता है।
 चाटाल = का० २८।
 [स० पु०] (स०) एक छाटा जाति म, श्वपच, पतित मनुष्य। एक गाती।
 चाँ = का० १४। का० कु० १ ६५।
 [स० पु०] (हिं०) का० २५ ३१ ६६, ७८६ चि० १६८ १७१।
 चन्मा, निनाकर गुपाकर।
 चाँनि है = चि०, २४।
 [स० पु०] (प्र० भा०) चाँनी का। चाँनी भा।

चाँनी = का०, २७। का०, ७८। का०, १७४,
 [स० स्त्री०] (हिं०) १८०। प्र०, ८, २५। म०, म०,
 १६। ल०, ११, ३७ ६१।
 चद्रमा का प्रकाश, चाँ का उजाला
 चद्रिमा।
 चाँनी सन्श = का० ६८।
 [वि०] (हिं०) चाँनी के समाप्त उज्ज्वल तथा स्वच्छ।
 निमल मनोहारी, गुहावना।
 चाँदी = प्रे, १२।
 [स० स्त्री०] (हिं०) एक गफेन चमकाली धातु जिससे सिक्के,
 गहने बतन आदि बनेते हैं रजत।
 चाँप चाँप = स० १०।
 [पूव० क्रि०] दाव दाव कर, बस बस कर, दूम
 (हिं०) दूम कर।
 चाचा = प्रे० १२।
 [स० पु०] (हिं०) पिता का छोटा भाई, काका पितृय।
 चाटती = का० २७०।
 [क्रि० स०] (हिं०) जीभ से रगड़ कर या उठाकर खाने
 की क्रिया करता। पाखरर टा लगी।
 प्यार न विमा पर जीभ करता।
 चातन = का०, १३। का० कु० ५० १२४।
 [स० पु०] (म०) चि० १५८ १७२ १६०। ऋ०
 ४६। प्रे० १४।
 पगाहा नामर पत्नी।
 चातकी = का० २१७।
 [स० स्त्री०] (म०) माता चातन।
 चादर = का० ३७।
 [स० स्त्री०] (म०) सिद्धिने या आसन का लगा चौड़ा
 कपडा, हल्का आड़ना टुपटा। विगा
 पहाड या चट्टान का गिरानेवाला
 चौड़ा धार। पवित्र स्थान पर चढ़ाए
 जानेवाले पूज।
 चाप = का० १४। चि० २२ १६५।
 [स० पु०] (स०) धनुष वमान। वृत्त की परिधि का बाँ
 भाग। मन्त्राण।
 [स० पु०] (हिं०) चापन का क्रिया या भाव स्थाव,
 तब। घाट्ट।

चार = व० ३ ८६, २१५। ल०, २७।

[वि०] (हि०) दा का दूता।

चारण = वा०, २६। म०, २०।

[सं० पु०] (सं०) राजाभा और छड छडे भाद्रदिपा का यथागान करनेवाला भाट। यथाजन राजपुत्राने की एक जाति।

चारणभूमि = प्रे०, १४।

[सं० स्त्री०] (सं०) चारखा व निवास करने की जगह। चरागाह, गोबर भूमि।

चार वण = वा०, १८६।

[सं० पु०] (सं०) भारतीय जाति का चार प्रमुख विभाजन ब्राह्मण, क्षत्रिय, वश्य और शूद्र।

चार = वि० ३, २३ ४७, ७० ७५ १०८,

[वि०] (सं०) १४३, १५४।

मुन्दर, मनाहर।

चारुताराचलित = वा० कु० ४२।

[वि०] (सं०) मुदर एव मनोहर तारा म चिरा टुआ।

चारो = व०, ६। प्र०, २२। ल०, ७०, ७८।

[वि०] (हि०) मम मभी, चार सत्यव सभा।

चारो और = वा०, १६०, २१८ २६२।

[प्र०] (हि०) ('० चहुँ चार')।

चारु = व०, ८ ६। वा० कु०, ६६। म०

[सं० स्त्री०] (हि०) ५३, ८६।

चरने की क्रिया, गति। चलने का ढंग, आचरण। बरताव, व्यवहार। रीति रिवाज, प्रथा, परिपाटी। युक्ति, तरकीब। छल धूतता। प्रकार, तरह। शतरज, तास, चौकर आदि के खेल में माहिरा पत्ता या दाव पर रखने या धाग बंधान का काम। चरने का शस्त्र, आहट।

चारु = प्रे० ७।

[वि०] (सं०) चलानेवाला जैसे वायुयान या भाटर चालन।

चालन = वि०, ६४।

[सं० पु०] (म०) कोई चाल चलाने का क्रिया या भाव।

[सं० पु०] (हि०) भूमि चौकर या बुद्ध छानने से या चलने से निकलता है।

चाब = वा०, ८४, ८४, १४०।

[सं० पु०] (हि०) अभिनाया। वाचना। प्रेम, अनुराग। भीव चाह। उमम, उल्हाह।

चात्र भरी = वा०, १४०।

[वि०] (हि०) प्रेम, अनुराग, चाह या वाचना म भरी हुई या पूर्ण।

चात्र ते = वि०, १०६।

[सं० पु०] (प्र० भा०) चाव स।

चाहना = व०, १८। वा० कु०, १०, २५।

[क्रि० म०] (हि०) का०, २५ ८१ ८४ ८८ १०५ १३४, १५७, १६३, १७७ १६२ १६० १८६, २०६ २३६, २४२ २६६। वि० ५० ६६, ६७ १०५, १४३ १५६, १७०, १७१। म०, ४८। प्र०, २२। म० १७। ल०, १०, ३८, ४४, ६४ ६८ ७६।

इच्छा या अभिनाय करना। प्रेम करना। माँगना। दायना, दूटना।

चाहिये = व०, १७, २७। वा०, १६८।

[प्र०] (हि०) उचित है आवश्यक है।

चाहूँ = वा०, १२०, १६४।

[क्रि० म०] (हि०) जिनका इच्छा रखू या जिम वस्तु का अभिनाया करू।

चाहो = वा० कु०, ६१।

[प्र०] (हि०) जहाँ इच्छा हो, जहाँ उचित है।

चाहो = वि०, १ ८, ६।

[प्र०] (प्र० भा०) (दे० चाहो')।

चिन्ता = आ०, ५५। वा० कु०, २६, ६४।

[म० स्त्री०] (सं०) का०, १४८। वि० ४७ १४३।

ध्यान, भावना, सोच। किसी वाय-मिद्धि या परिस्थिति के बार में बार बार उठनेवाला अस्तिवर सोचमय विचार।

चितानातर = वा० ४।

[सं० पु०] (सं०) चिन्ता के कारण उत्पन्न वह भाव जिसमें भय एव सहानुभूति का याचना होता है।

चिन्तामणि = वा०, कु०, ८६।

[म० पु०] (म०) चिन्तामग्न रत्न। भगवच्चिन्तन रूप मणि या रत्न।

चित्ति = वा० ७८। वा० १८६। वा० कु०
[वि०] (सं०) २६। १६।

चित्तायुगल जिन चित्ता ॥ चित्ता वरु
वाता वा जिनवा चित्ता ही चित्ता ॥

चित्ताद् = वि० १८४।
[सं० ०] (सं० भा०) चित्ता ॥ वा भाव, चित्ता ॥
स्तिग्नात् सरसता।

चित्ता = वा० १४।
[वि०] (हि०) जागृत्वा ॥ वा गाव घोरे वरावर।

चित्तो सुपद्म = प्र० ६।
[मुद्रा०] (वि०) चित्ता ॥ मनस्य ॥ सुतामना।
(हि०) चित्तजित्।

चित्तुर = वि० १६०।
[सं० पु०] (सं०) चित्ता ॥

चित्ता = वा० कु० १००।
[त्रि० प्र०] (हि०) चित्ता वा चित्तना चित्तिना हना।

चित्ता = प्र० ११।
[त्रि० प्र०] (हि०) चित्तमत्तना क्ताना चित्तना।

चित्त = वा० २४२ ४५८। चि० ३ १४८
[वि०] (सं०) १४४ १७० १७१ १६४ १८६।

चित्त = वा० कु० १००।
[सं० पु०] (हि०) चित्तान्ति।

पाठ व वल पठा ह्या। चित्त मन।
उ०—चित्त तरंग वा चित्तम यग
ह्याया।

चित्तचोर = वा० कु०, १०।
[सं० पु०] (सं०) चित्त वा चुरानवाता मनोहर मन
भावन।

चित्तमराल = वि० १४३।
[सं० पु०] (सं०) चित्त या मन रूपी ह्यग।

चित्त लाई = वि०, १६१।
[पुव० क्रि०] (प्र० भा०) मन या ध्यान लगावर।

चित्त लावे = वि० १८८।
[क्रि० सं०] (प्र० भा०) मन लगाए, ध्यान लगाए।

चित्तवत् = वि०, ३।
[क्रि० म०] (प्र० भा०) किमी वस्तु को ध्यानपूर्वक देखना।

चित्तवन = का० कु० २२। वा० ३४। भ० २२
[सं० स्त्री०] (हि०) ३१। ल० २०।

ध्यानपूर्वक तावन या दखने का क्रिया
या भाव। बटाह।

चित्ता = वा० १ ३३ २३३।
[सं० म] (सं०) चित्ता ही चित्तियों वा इत चित्ता
पर चित्ता ॥

चित्तामग्न = वि० २०।
[सं० पु०] (सं०) चित्ता वा चित्त।

चित्ति = वा० ७७। च० १४।
[सं० स्त्री०] (सं०) चित्ता। मग्न इत। चित्ताई। चित्ता।
चाप। इत वा चित्ताई।

चित्ता चर्चा = वा० १६०।
[सं० पु०] (सं०) चित्त मग्न चित्ता चर्चा म चित्ता चर्चा
॥ चित्त चर्चा।

चित्तमय = वा० २१०।
[वि०] (सं०) चित्तमय परिपूर्ण।

चित्तरी = वा० २०। च० ६४।
[सं० स्त्री०] (वि०) चित्त बनानेवाला स्त्री चित्तरा
(चित्तकार) वा चित्ता लिंग।

चित्तर = वा० ६६।
[सं० पु०] (हि०) चित्त बनानेवाला, चित्तकार।

चित्तरी = वि० १६३।
[सं० पु०] (प्र० भा०) चित्तकार चित्तरा।

चित्त = वि० १ १७४।
[पुव० प्र०] (प्र० भा०) ध्यानपूर्वक दखकर।

चित्तीन = वि० १६।
[सं० स्त्री०] (प्र० भा०) (० 'चित्तवत्')।

चित्तिला = वा० कु० ६४।
[सं० स्त्री०] [सं०] हृदय का चित्त। चित्तरी की बला।

चित्ता = वा० कु० ५१ ५३। का० १४८।
[सं० पु०] (सं०) चि० ४८ ५१६ १४८, १६८ १७०
१७१। प्र० ६।

चित्त चरण की एक वृत्ति, मन, चित्त।

चित्तकल्पने = वि० १५।
[सं० पु०] (सं०) चित्त कल्पने। मन की कल्पना वा
संशयन।

चित्त मंदिर = वा० कु० ८२।
[सं० स्त्री०] (सं०) मन रूपा मंदिर या देवालय।

चित्तजन = वि० १५४।
[सं० पु०] (सं०) मन वा प्रसन्नता, हृदय का प्रानद।

चित्र = का० कु०, ५१, ८५ ११४। का०,
[सं० पु०] (सं०) ६४, १२० १४७ १५० १६८ १७५,
१७६, १७८ १८० १८३ २४५
२४७ २५८। चि०, ४६ १४१।
म० ८। न० १४ २६, २८ ३७
६४ ७२। व० ८। भ० ३४।

निलय तस्वीर। घनकार। एक प्रकार
का वगवृत्त। आकाश। एक प्रकार का
बोर्ड। एक यम का नाम। चित्रगुप्त।
रेंड का पद। अज्ञान का पद। चान
का पद। धृतराष्ट्र के मी पुत्र। म स
एक। काव्य में एक श्लोकार।

[वि०] (सं०) चित्रित्र विस्मयकारी। चित्रकरा व
रगा वा।

[चित्र—द्वु] कला २ विररा २ भाद्रप १९६८ म
प्रकाशित। प्रशाज्जा की मंडा बोनी
का पहना कविता। यह एक मामा व
कविता है जिसमें आशावा प्रवृ
हता है। यथा—

मा की अथाह गभीर समुद्र वनामा।
चंचल तरंग न चित्त स वग ह्यामो।]

चित्रमार - का०, ६४।

[सं० पु०] (सं०) चित्र वनानवाला, चित्रा।

चित्रकूट = का० कु० ६५।

[सं० पु०] (सं०) एक स्थान का नाम जहाँ वनगमन व
समय भगवान् रामचंद्र ने निवास
किया था।

[चित्रकूट—सद्यप्रथम द्वु] कला ४, किरण १,
जनवरी १९१३ में 'सद्यप्रथम' शीर्षक स
प्रकाशित तथा कालन कुमुम' म चित्र
कूट' शीर्षक स पृष्ठ ६५ स १०३ तक
मकागत। यह एक प्रबंध है। इसके ४
भाग हैं। दूसरे भाग में अशुक्ल कविता
है। शेष तुकात ह। प्रथम चित्रकूट' म
रामभरत के मिलन का है। चित्रकूट
में स्फटिक ज्ञाना पर साता और राम
बठे है। राम ने माता से पूछा कि तुम्हें
इस भयावन जगत् म डर नहीं लगता।
सीता का उत्तर था—'जिमके पास इना

बटा धनुषर हो, उम विम वात का डर ?
पनि के माथ ही पानी व सब मुख
रहते ह। सीता राम की गोत्र मे मी
गइ। इतन म ही लक्ष्मण आए और
उन्होंने राम को मूचना की कि निपाद
राज व हूत न अभी मूचना दी है कि
भरत वसुदेवगो सचित कर इधर चल
धा रहे है। इसा समय प्रमात हो
गया। सीता ने स्नानादिकर राम का
जगाया। राम नियकम स मुक्त हो
भाजन क निय बठे। जानका न ल मग
का भा आमत्रिन किया पर फल लेने
व निय व वृद्ध पर चढ गए और
आशाज देता तग कि भरत साथ म
सना लखर बुसित कर्म करन क निय
आ रहा ह। राम ने कहा कि भ्रम स
भर हुए उम वपत्रच्छ स लक्ष्मण तुम्ह
हट जाया। और लक्ष्मण ने कहा कि
आप अथन ही कारण वनवासा हुए।
उमा समय भरत आ गए और जैसे
ही भरत ने राम व चरण स्पर्श के
लिये हाव बनाया कि राम ने उह
गल लगा निया और मुख न पूरित हो
गए। उम समय भ्रातृ व का स्वर्गीय
भाव छा गया। चित्रकूट उत्तर प्रदेश
के बाना जिल म है, जहा वनवास के
समय कुछ दिना तक राम लक्ष्मण और
सीता क साथ रह। वही पर भरत-
सभा हुई थी।]

चित्रपट = ल०, १४। व०, ८।

[सं० पु०] (सं०) चित्राचार, छोट। सिनेमा का परदा।

चित्रपटी = का० २५८। म०, ३४। ल० ७२।

[सं० खी०] (सं०) (सं० 'चित्रपट')।

चित्रलिखा सा = का० कु०, ६५। चि० ५६।

[वि०] (हि०) लिख हुए चित्र व समान मूक, अक्ष-
चन स्थिर।

चित्र सा = का०, १८३।

[वि०] (हि०) चित्र व समान, मूक, स्थान, अक्षचल,
स्थिर।

विद्यमयी = का० १६८।

[वि०] (वि०) (० विद्यमयी।)

विद्यमयी = का०, १६८।

[म० मी०] (म०) रममहन, यह घर जहाँ विन टिंग या पापर पर बाहा।

[विद्यमयी—विद्यमयी का गीतविद्याप्रकाश गुप्त धनु का गीत तथा रमम ग लटा वाता वाता। इस गीतवाज' भी कहते हैं।]

[विद्यमयी—वभुवाहन का माता धनु का पत्नी मणिगुप्त क राजा विनवाहन की पुत्री। जय पांडव घर ग म्हाप्रत्यान क निय चन तो यह वभुवाहा का लहर धने पिता क पाग चना गई था।]

[विद्यमयी—प्रमाणा का मारभित रचना प्रज भाषा मे है। उनका गहन विद्यापार म है। यह रचना उनका बीम कर्ष की श्रापु तब का मरन गमट हुए है। इस रचना का प्रकाशनाय अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। यह कालक्रम मरुधा तथा उपस्थित करता है।

बाग वप का अर्थसा क रहन म हा आपन इस ढग का कवितासा का प्रारभ। क्या या और व यथासमय इदु पी प्रारभक कलासा (म० १६६६ ६७) म निरल भा चुता है। इस सग्रह मे आपका जा कविताए दा गई ह उह दलन स यह स्पष्ट हा जाता है कि ब्रजभाषा म नवान भावनाश्रो की आपन प्रथम प्रथम किस प्रकार व्यक्त किया और व हा भावनाए सखी बाता मे उसके प्रचार पाने पर किस रूप म आई। सच ता यह है कि नवल कविता शली क आप सजाव इतहास है। आप का कवितासा मे मनाभाव जिम सहृदयता स 'यक्त हुए है उसा प्रकार व आपका कहानिया नाटकी, चतु आदि म भा विरलामाल का तरह विवांसत हुए हैं। प्रस्तुत प्रथ

मना म सादरा उनका मभा प्रकाश का प्रयोग का रमाख्यात विन जायगा। इस गद' का अने पाग रममर चाप विद्या मारिण के अमितर युग का प्रारभित इतिहास गहन हा प्राप्त कर गये।

इस गद' म उनका बीम कर्ष की अर्थसा ता का प्राय मभी कृतिगा मंशुता कर ना गई है। इस सग्र' क प्रथम मरुतरण म जा रि ग० १६७) म प्रकाशा हुमा या जा और रचनाए उम अर्थसा व बा' का पी और ज' म उनका तथा वाता रा रचनासा का प्रारभ हाता था निराल ना गई है। यह लाला गा मरुह भागा हे पाठा का कम मनाजन न करगा।'

जहाँ तब इस पुस्तक के परिचय का प्रश्न है, द्वितीय संस्करण हा उमक निय अर्थसा उपयुक्त है क्योंकि इसा रूप म टिप्पणी जगत् इमम परिवर्तित रहगा। विद्यापार शिष्य विषय से सजिन रचना है। इसम गू, प्रथम नाटक कथा, निरुधायक कविता पराग और मकरद विदु है। इन पुस्तक म हमारा प्रयो जन बवल चतु व बा'पाण, प्रथम और निवध बाव्य तथा मकरदविदु तब ही सीमित है।

उर्वशी, जो प्रमाणा की पहला प्रकाशित रचना है चतु है। इसका प्रकाशनकाल सन् १६०६ है। वतमान पुस्तक मे दी गई रचनाए मशोभित हैं। वभुवाहन 'दु' मे जुलाई ११ मे प्रकाशित हुमा था। अयोध्या का उद्धार' मई १० म 'वन मिलन' जनवरी १० मे 'प्रमराज्य' दीपावली सन् १६०६ म (पुस्तककार प्रकाशित रचना) तथा 'पराग' म २२ रचनाए है—मकरदविदु मे २३ कवित तीन सवया और १४ पद है। इनम स अधिनाए इदु म प्रकाशित है। पराग व अतगत निम्नलिखित

विषयों पर रचनाएँ हैं—धर्मप्रति,
कल्याण, मानव, भारतीय भाषा,
रमात्मन्तरा रमान कर्मा म न्ना बून,
उद्यान तथा, प्रभात-कुमुद, विनय,
गार्हाप्य मन्त्रबुद्धन रिमा, रिन्धि
गार्हा शतद प्रणिममा मध्या-नारा
धर्मग द्रष्टव्युद, भार्गव-प्रकाश
नारद प्रम विष्मन् प्रम, विमजन् ।

प्रमाणों का न जब वाच्यरचना धारण का तो
उग ममम भार्गव-प्रकाश वाच्यधारा
पत्र रहा था। तत्कालीन गद्य बानी
म की जानवानी रचनाएँ कथन कथन
पट्टे; तथा जावाविहान होया थी।
जिम वातावरण म ध्यनि प्रमाण रहते
थे उम वातावरण म प्रजभाषा का
कविता का स्वर गुजरित रहता था।
धनपथ 'सादका का सहज ही प्रज
भाषा का धार भुवन पदा होगा।
चित्राधार म गृह्यनि उनका रचनाएँ
प्रजभाषा म ही हैं। धन उन रचनाओं
पर मद्य म उनक मह व ध प्रनुसार
विचार करना प्रमाणिक न होगा।
प्रसाद ने प्रारंभ म भार्गव व रास्त
का धपनाया। किन्तु प्रसाद की भाष
भंगिमा स्वतंत्र गत्ता का साक्षित
सन्ध रचती है।

इस पुस्तक म 'प्रया या का उद्धार, 'वन
मिलन' और 'नेमरा-य' म प्रजभाषा
की प्रमाणिक रचनाएँ हैं।

'अयोध्या का उद्धार' म कुश द्वारा अयोध्या
के उद्धार की कथा उल्लिखित है। कुश
दुःशावता नगर म और लज श्रावस्ती
म शासन करने थे। महाराजा राम व
पश्चात् अयोध्या म बार्द शासक न
था। कुशावता म कुश एक दिन निद्रा
मग्न साए व। किसी का क्लक
वाणा वजात हुए मून पडा। उनक वधा
की प्रशस्तिगाथा गात हुए क्लकठ ने
उद्वापित करत हुए जागरण का

मन्त्र दिया और कहा कि तुम्हारा
जागरण ही प्रजा की मुक्तिदा है।
उमने पूछा प्रजा का क्या ऋण है और
तुम क्यों हा ? मुद्रा जिनम धपन
का अयोध्या का राज्ययो वतलाया
थानी—गाया विद्वान अयोध्या का
नागवना कुमु १ धपन अविचार म ल
दिया है। अयोध्या उद्धार की उमने
याचना भी की। यह कथा रघुपथ पर
धार्युत है। यह रचना अयोध्याद्धार
नामक इन्तु म प्रकाशित हुई थी। इसमें
विषय अथा का प्रयोग किया गया है।
यद्यपि इस नाग बद्ध अयोध्या रचना नही
मानन और यह अयोध्या रचना है भी
नही, किन्तु प्रसाद का प्रथम प्रबंधात्मक
रचना हाते पर भी इसमें जिनामा
और अयोध्या का आभास दीस पडता
है तथा रचना का अभावान अथ नगर
म मुनगाज तथा महागुन व छा जाने
म हाता है। कुमु कुश म भयभीत
हार छिप जाता है और बाद म
धपती वहिन कुमुवती तथा धपना
गम कुश का धपण करता है। कुश
मुन्नी के हगवाण म धपना राप गवा
दन है और उग स्वाकार करत है।
यहा इसकी कथा है।

प्रसादजी माहित्य और मरुति व अचपण
म तत्त्वान रहनवाल अथ्यता थे।
यह बात इस रचना म भी दाख पडती
है। यह बात उम टिप्पणा म जानी
जा सक्ता है जो उद्धार इस रचना
व पूष लिखी है—'महाराज रामचद्र
के बाद कुश की कुशावता और लज
का श्रावस्ती इत्यादि राज्य मिल तथा
अयोध्या उजड गई। वागीकि
रामायण मे किमा ऋषभ नामक राजा
द्वारा उमक फिर से बनाए जान का
पता मिलता है। परन्तु महाकव
कालिदास ने अयोध्या का उद्धार कुश
द्वारा हाता लिखा है। उत्तरकांड

क विषय में माया का अनुमान है कि वह बस पार यथा। हा मरणा है कि वह माया व समय में समय द्वारा प्रयाणा का उपाय होता है प्रसिद्ध रहा है। धनुसु समय का विचार का है। अनुमान का विचार है।

दूसरा प्रथम नव रचना का विचार है। यह रचना भी 'रु' में प्रकाशिता है। पुत्रा है। उगा रूप में विवाधार में परिचित है। उगा रूप में विवाधार में परिचित है। इसकी कथा प्रयाण का प्रतिभा की जा विराग व लिय पण पत्रा रहा थी, मूलक है। कानिमा यही भी प्रयाणा का विषय गहापक रूप है। गौरीमा जब हस्तितः पुर स नीला ता शकुंतला व दुःखन द्वारा परिवक्त विप जान का बात उमने वरना व बचकर त भय म सिद्धा सा था। वरणात्म वी शकुंतला का प्रिय मन्त्रिणी प्रियन्ता और अनुसुया शकुंतला त दुःखन और क्षम का विषय यादुन थी। पर समाचार न मितन म व माचना थी कि राजराना व पण न शकुंतला स हम भुजना दिया। बुद्ध जिना त वाण कश्यपगिणिया मानव कस्व के आश्रम में आए और सूचना दा कि शकुंतला, दुःखन भरत और मराचि आश्रम में यहाँ पधार रह है। वन में राजपरिवार के आगमन न आनंद का धारा उहा दा। भेनका भा वहाँ अपना पुत्रा शकुंतला का दर्शन आ पढ़ची। बहुत दिन स बिछडे हुए सबके सब जावन स परिपूण प्रेम के सारे लाभ प्राप्त कर आनंदित हुए और मगलमान का लहरें तरंगित होने लगी। मनुष्य कहानी राना छत्रा म लिखा गई है। काय का दृष्टि से इसका विनोव महत्व नहीं।

तीसरी रचना प्रेमराज्य है। इसके पूर्व प्रसादजा ने जा प्रबंध लिखे थे दोनों मूलत पीराणिक थे। ये दा रचना—

पूराय यो उपाय म विराग म प्रकाशिता है। इसका विषय का वरन इतराण म विचार गया। मन्त्रिणी का काय व राना न रगा जाय ता इस पत्रा म प्रयाणा का रचना माना गया। दूसरा कथासु विषय उगा क मायकाय व द्वा म म ता ग है। विषय नगर व दिग् मयाण रूपानु व समय व तालाण का समय वगन है तथा मना व विराग पात क कारण उगा वदमनिवा व मानव मूलकनु का पराजय और मृत्यु का आस्थान है। मूलकनु का एक मात्र गतान चंद्रवतु का साजनपालन हिमाजय का सराई म एा भील गररार करता है। व इस सरराण का हा मृत्यु क पूर्व मुदन्मन पर जात हुए चंद्रवतु का सोप जान है। मरा का ववनी स गर्दी भी लाभ न हुआ। व प्रपना एक मात्र कथा मन्त्रिणी को मरर तापन नानन ध्यानन बरने व विषय निरान जान है। इनका कथा का प्रथम म है उत्तराध में चंद्रवतु ता मिलन और प्रेम हाता है तथा प्रमराज्य मे जो परिणाय स पुल बन है दानी निचरणा करत है। इस रचना में भारत व गौरव का आस्थान भा विचार गया है। प्रयाणा ने दुःखानु दुःखत, आम यमन्नि आदि का प्रशस्ति तथा सनापति को पूर्वधि में अद्भुत से मानुषीम का दाही भी प्रकट किया है। उत्तराध में शिव की वदना भी है। कथा के अंत में चंद्रवतु को रत्नजडित मुकुट स शोभित किया गया है तथा ललिता को मोक्तिक हार से। अंत में इस प्रकार प्रमराज्य का दर्शन कराया गया है।

‘यह विशार नयचंद्र कतु ललिताहू विशारी। त मय लखत परस्पर इकट्ठ अद्भुत जोरी।

बसकि उग्या नव नाग चद्र तारागन वन्ति ।।

हा रचनामा का मूल बडा माहिरियक मह्यक नहीं, किन्तु प्रमाण व माहिरियक प्रम विकास क चरण इन रचनामा म मिलन है। अतएव उनके माहिरिय व विशासिय व लिय इन रचनामा का मह्यक है। उवना तथा बहुवाहन म अण पद्य भा अथिय माहिरियक मह्यक न नही बवल पद्य व विवाह मात्र है। मञ्जन का नादा तथा उममे अण पद्य गामाय कोटि न है। युधिष्ठिर व धर्मराज की कल्पना भावना का दृष्टि न परंपरा का निवाह मात्र है। दम पुस्तक म विचारणाय म्यन ह पराग व मुक्त्य तथा मरुगविन्दु। पराग व अतमत जितनी रचनाए है, उनम बारह प्रवृत्ति म सम्बन्धित रचनाए है। एम ता य रचनाए दपन मात्र म ही काव्य का दृष्टि म मिशु का बाणी म्गना है किन्तु परिणाम का विशान्ता, प्रवृत्ति प्रम का आभा, जियम मह्यक ह्यय का जिनामा है विकास की क्षणा का मरन करता है। यद्यपि प्रवृत्ति म प्रमादना अमन का खा नही मके तात्पर्य उमम स्थापित नहा कर पाग है ता भी बीतूत्तलपूग प्रवृत्ति व प्रति आनपग तथा उमव मधुर पन का स्वर्ग निश्चय ही मह व रचना है। अन्कार का सम्भिनपन अधिकतर रचनामा म नही मिलता, मह्यक म्निग्यता भाषा का दृष्टि स इतस्तत निम्बाड पडनी है।

इममे तीन रचनाग वदना और प्राधना का भा है। कल्पनामुख म कल्पना का मह्यक दिखया गया है जो का यकित्त का प्यान म रम्यन हुए अपना मह्यक रखता है। प्रमाद न उस मनुज जीवन न प्राग माना है। उम हृदय का आनद

गन करनेवाता यतनाया है। भाग्य के मबध म भी उहीने रचना की है। नादन प्रेम के मबध म भी उटान निखा है। भाग्येदु के प्रकाश का भी चरचा करना व नही भूले है। उह टिप्पणी की चक्रिया छिपानेवाता तथा आनद का विभाषक बतनाया है। विदार्थ भी उ राने का है तथा विस्मृत प्रम भी नही भूल है। भूयन उमे, वह उनका नम जो है।

विषय की विविधता इन प्रारम्भिक रचनामा म है। इन कवितामा के शीर्षक तत्कालीन कविया का कवितामा के शीर्षक म नवीनता लिए हुए हैं तथा बीच बीच मे छायानादी ढग व प्रताक विधान भी मिलत है।

चित्रित = भा०, ३०। का०, ६४। चि०, ६८।
[वि०] (स०) ल०, ५६।

चित्र द्वारा दिखया दृषा, जियपर चित्र बन हा।

चित्रा = का०, १५६।
[म० पु०] (हि०) 'चित्र' का बहुवचन।

चिनगारी = का० ५८।
[म० श्लो०] (हि०) भाग का छाटा कण या टुकण।

चिनगारियाँ = का०, ६२।
[म० श्लो०] (हि०) चिनगारा का बहुवचन, भाग के छोटे कण या टुकड।

चिनगारी सी = अगिन कण व ममान। चिनगारी के समान जलान की क्षमता रखनेवाता।
[वि०] (हि०) क्षणभर में बुझ जानेवाला।

चिरजीव = चि० ७४।
[वि०] (स०) चिरजीवी तब।

चिरजीवी = का० कु० ६१। चि०, ४।
[वि०] (हि०) बहुत दिना तक जीनेवाता, मरनायु।

चिरतन = का०, १६, ८६, ११०।
[वि०] (स०) पुरातन, पुराना।

चिर = भा०, ३० ११, ३८। का०, १०,

[वि०] (स०) ३५, ८७, १४७, १४८, १५१, १६५,
[क्रि० वि०] (स०) १६६ १७७, १६८ २१७, २२६,
२३६, २३७ । चि०, ६० । प्रे० ५०
२३ । ल०, ६ १०, ३४ ४०, ४३ ।
बहुत दिनों का दीर्घ कालवर्ती । बहुत
दिन । अधिक समय तक ।

चिरकिशोरवय = का० १० ।

[वि०] (स०) सदा ग्यारह से पंद्रह वष की अवस्था
वाला सदा किशोर रहनेवाला ।

चिर चंचल = का०, १४० ।

[वि०] (स०) सदा चंचल रहनेवाला, अव्यस्थित,
अधीर ।

चिर चिंतन = का०, १६६ ।

[सं० पुं०] (स०) बार बार स्मरण या ध्यान ।

चिर जीवनसगिनी = प्रा०, ७५ ।

[वि०] (स०) सर्वदा जीवन के साथ रहनेवाली पत्नी ।

चिर सापित = चि०, ५६ ।

[वि०] (स०) बहुत दिनों से तपाया हुआ या पीछित
किया हुआ या सताया हुआ ।

[चिर वृषित वृष से वृषि विधुर—लहर पृष्ठ ३४
३५ पर मन्वलिता रहस्यवाणी गात ।
चिर वृषित वृष स वृष विधुर अर्थात्
तिरस्वृत अविचन आतुर सा धार स
पुनारता है कि मुझको न मिला र
कभी प्यार' । मागर स लहरा वा
धालिगन निष्पन्न प्रतिनिधि हाना रहता
है क्योंकि अतन प्रेम मागर म जीवन
एक जलवण मान वा दखने वं बारण
पुकार जाना है कि मुझका कभी प्यार
नहीं मिला । निमम घरता म मुम्कान
वा एक अवन वा नलक व निय जाव
फिरता है जब कि अज्ञ व प्रवाश म
मवल कम कामन उज्जयन और
उगर बनत है । जाव वा यद वागता
धवचना पाटा घृणा मा व माध्यम
म अगार वा प्रगार करता है और
अवन हा विगा व विप म जाव
उगी प्रचार मृषिन हा जाता है जग

मुकुल भरी डालें अतन तीरभ रस लिए
झुकती है और बार बार उह काटे
वेध देते हैं । जीवनरूपा निशा म न
तो आनंद का चद्रमा मिल पाता है न
तो प्रेम की स्वाती का ऐना बूद हा
मिल पाता है जो हृदयरूपी सापा को
मोता बना सके और जीवन वा परम
लक्ष प्राप्त हो सक । क्योंकि प्रेम
मिलता नहीं है दिया जाता है ।
और प्रेम के आसू अवन मोती स सारे
मसार को श्रगी बना लेत है ।

चिर दुःखी = प्रे०, २२, २३ ।

[वि०] (हि०) बहुत दिनों स दुःख भोगनेवाला ।

चिर निद्रे = का० १८ ।

[सं० स्त्री०] (स०) सवोधन हे मृत्यु ।

चिर निराशा = का०, २१७ ।

[म० स्त्री०] (स०) कभी पूछ न होनेवाला आशा या
अभिलाषा ।

चिर निवास = का०, १५६ ।

[सं० पुं०] (स०) जहाँ हमेशा निवास होता हो जस
अमान जहाँ माट वा हमशा निवास
रहता है ।

चिर प्रवास = का० १५६, १७८ ।

[सं० पुं०] (स०) बहुत दिन तक या हमशा अवन प्रिय
जन स दूर रहन का भावगूचव शब्द ।
चिरकाल स प्रिय स विलग निवास ।

चिर उग्रहीन = का०, १६१ ।

[वि०] (स०) मग बवन म न रहनेवाला या हमशा
अवन म रहित । माया म पर या
मुक्त ।

चिर उषु = का० कु०, ६८ । का० ६४ ।

[वि०] (स०) मग अणुय की भावना रचनेवाला या
अणु की तरह आचरण करनेवाला ।

चिर वसत = का०, २६५ ।

[सं० पुं०] (स०) अतनकालिक वमत, जहाँ मग मणुभाग
रचना हा या गरमता एव गरलता
रचना हा ।

चिरमगल = का०, २३६ ।

[म० पु०] (म०) गग क-नाम ।

विर मिश्र = १००, ११ ।

[म० पु०] (म०) कना-विश्व विन ना गार्गी । कपू
गया । दुग्ता मय ।

विर मिलिगु = १००, २०६ ।

[वि०] (म०) १००० विना १०० । गग या १०१
मय ।

विरमूक = १००, १७४, २०३ ।

[वि०] (म०) कमा कया म न कयाया ।

विर मौन = १००, ३३ ।

[वि०] (म०) गग मुक क-नेकाया कमी त बांरो
याया ।

विर विपानविलीत = १००, ३१ ।

[वि०] (म०) गगन विपना म म त कयाया
विनका विपना म हा मय १०० हा या
विन त गग म विपान म कयाया
कमिगय या विना हा गगन विपान
मय ।

विर सगिता = १००, १६ ।

[वि०] (म०) १००० माय कयाया । कमी विन
त हासतना । गहूविगु ।

विरसगित = १००, २६ ।

[वि०] (म०) कगन विना म कयया विना १०० ।
विन कय म सगिता या गगन ।

विर सुदर = १००, ११, १००, २०६ ।

[वि०] (म०) गग मुं-रला म मुं जो विपार म
रहित हा ।

विलियानवाला = १००, ४१ ।

[म०] (हि०) पत्रम में एक स्थान विना क नाम ।
जाविषीथाना भाग ।

[विलियानवाला—गग मि का गगन ममग
कविता म मेरुम गग क विनारे क द्य
स्थान का कर्षा है जहाँ गरिगु घोर
कयला म गग १०७६ ई० म मुद
हया या । उग मुद म गरिगु क
पाग ३० हजार मनिव ये ।]

विष्ट = १००, २४, ३१ । वि०, ३० । क०,
३३, ३४ ।

[म० पु०] (म०) विना गग कयाया । पगाया
कयाया । यला । विना प्रवार का
भाग या कयाया ।

[विष्ट—ममग विनका कर्ष १० क ३ पागु
१६०१ म मयकयम प्रकाशि घोर
कयाया में गग ३३ ३४ पर मरविन ।
द्वय कयन पग म विनत हा विपान
स्थान कादक म कृ त कृ म प्रम विन
गगन कयाया । गुरुनी पर गगन
कयम कया घोर —

गगुहा का पूवर सवि म
विनका या मयन ममट,
विनम विन का गग कयाया
पाद कया क कयाया भेट ।

प्रविन कया क मय कयाया की मगु
कयाया घोर विन क नाम विना, या
गग क हाग, या मी का गग ११,
मय कया म कयाया ही है ।]

घोरहार = १००, १६०, १६८ ।

[म० पु०] (म०) विना क, क । घाट या कृ म म
कयाया विनका कया म, पागना ।

घोगागुह = वि०, ६० । क ३० ।

[म० पु०] (म०) कयन म क कया कयाया, कय
प्रवार का कयाया, वि-क ।

घोका = वि०, ६६ ।

[वि० म०] (म० भा०) कयाया । पाग ।

घोर = १००, १३६, १३७, २४०, १०, ३७ ।

[म० पु०] (म०) पद की कया । विपदा । गो का कय ।
पार मयिषीयासी मोरिया की मया ।
कय प्रवार का कया कया । बीड
मिळुका क कयने का कया, बीड
मिळुका का कयाया । कय प्रवार का
पद । कय, कया । मीया नाम की
कयाया । घोरनी की क्रिया का भाव ।
कयाया । दूर कयाया । कयाया ।

घुँगत = वि०, १७३ ।
[वि० म०]
[म० भा०] काय द्वारा कया या कीड़े मयाया क
कयाया की क्रिया का मुक कया । कया-
कया है ।

चुंगना = झाँ०, २३, ४३।
[क्रि० सं०](हिं०) चिडिया का गाना आदि चुनना, उठा लेना।

चुनक = चि० १५।
[म० पु०](म०) लोहे को अपनी ओर खींचनेवाला धातु या पत्थर। चुनक करनेवाला। प्रथी को इधर उधर उलटनेवाला।

चुवन = झाँ० २६, ३२ ४६। का०, १२, २८
[म० पु०](म०) ६१ १३६ १८० चि०, ६७। क्र० ४६। ल०, ३०, ४०, ४३। का० कु० ५४।
चुम्मा बोमा। >० चुनक'।

चुवन उल्लास भरी = का०, कु० ५४।
[म० पु०](म०) चुवन के उल्लास से युक्त। चुवन की आकांक्षा से युक्त।

चुमित = का० १६४। ल० १०।
[वि०](स०) जिसका चुवन लिया जाय। चुवन ली गई। प्यार किया हुआ। चुमा हुआ।

चुषी = का० १००।
[वि०](स०) चुसनवाला।
[म० स्त्री०](म०) चुम्मा, बोमा।

चुम्मा = का० कु० ६७।
[क्रि० प्र०](हिं०) चुना' क्रिया का भूतकालिक रूप।

चुम्ना = का० ११, २०। प्र०, ११। ल०,
[क्रि० प्र०](हिं०) ४४ ५०।
वेचान होना निबटना। चुकना होना।

चुकाना = झाँ० ६२। का० २६। का० १०६
[क्रि० म०](हिं०) ११६, १७८। म० १८।
बसाक करना निबटाना।

चुटकी = का० कु० १६। का० १८४।
[म० स्त्री०](हिं०) संभ्रूटा और बीच का उगला बौ बट स्थिति जा दाता को मिलान या एक का अर्थ पर रगन से हार्ती है। उँग लिया मे पटनन का चींग का एक गहना वैचकन दरी क ताने का मून बरसा धावन का रीति।

चुत = का० १८१।
[क्रि० म०](हिं०) २० चुनना'।

चुनना = का० ३२ १२१।
[क्रि० सं०](हिं०) जानना, समझ म म एक एक चाज अलग बरके निकालना, तर म स यथाचित एक एक का ज्ञाटना। मजाना। जोडाई करना। शिकन डालना।

चुन चुन = झाँ०, ५८।
[क्रि० वि०](हिं०) चीन चीनकर, एक एक करके चुन कर।

चुनि = चि० ६१। चि० ७०।
[प्रव० क्रि०](प्र० भा०) चुनकर।

चुनि राखे = चि० ७०।
[क्रि० म०](प्र० भा०) चुनकर रखना या चुन लेना।

चुप = झाँ०, २१ ५७। का० १६। का० कु०, २१। का० ६ ३६ ७७ १०४ १४० १७७ १६६ २२३ २२६ २३४ २७७। चि० १६४।
[वि०](हिं०) मोन गामास। पकर लाह का यह तलवार जिममन टूटने के लिये बधा लाहा गगा हावा है। गभार।

चुपके = झाँ० १७। का० ६३ ६७ १२४
[क्रि० वि०](हिं०) ११० २४६।
घार म चुपचाप जिना किमी प्रकार क शर क।

चुपचाप = झाँ० ४५। का० ४५ ७७ १४३
[वि०](हिं०) २०६ २३०, २२२ २४०। चि०, १६५। प्र० ६। न० १७।
ज्ञान मोन नि शर।

चुपधीर = चि० १६५।
[वि०](हिं०) जान और धारतायुक्त गभार और धयवान।

चू = झाँ० ४१। का० २०१।
[क्रि० प्र०](हिं०) गिरना, टपटना। गभारत हावा।

चूक = का० २७०। चि० २१ १८३।
[म० स्त्री०](हिं०) न० ४२।

भूनन या भूनन का क्रिया या भाव। भूनन म युग र्द बाव या युग हुआ काम।

[चुट हमारी— कु काग ४ जिगम ६ जून १६१३ म मवप्रथम विनाशविदु पापक क

अन्यत प्ररानित मवया और चित्राधार
म पृष्ठ १८३ पर मकर विदु व
अन्यत मकविन । तब बहावने
विमार कर जा तुम म नह विया ता
उमरा यश परिणाम हृषा कि गवाह
मिना और

'नाम गवो' व पावन है
य मोवा बहावन भाग उतारी,
आपनी लीव बपाद घटा,
अर माफ करा यर चूक प्रमारा ।

चूडामणि = चि० २१ ।

[सं० पु०] (सं०) मिर वा एकर गहना मम का फूल ।
समम श्रेष्ठ व्यक्ति या वस्तु ।

चूनिवो = चि० ५३ ।

[चि० सं०] (प्र० भा०) >० चुनना ।

चूमना = आ०, ६ । क०, १७ । वा० कु०,
[चि० सं०] (हि०) १३ । वा०, १६, ३६, १७० १६६,
१५०, १५२, १५७ १५८, २३२ ।
चि० ३८, ६३ ६८ । अ, २८ ७३,
१० २७ ६० ।

होना स । तमी का बार्द अम स्पश
करना । चुम्मा लेना । विवाह व समय
या पूव मन्वा वम ही जान पर मुग
गिना का वर या दुस्तिन व तिए
अक्षत लहर मर्वांग स्वर्ण करन हूण
मगलशामना करन की क्रिया ।

चूमि = चि०, ६० ६२ ।

[पूव चि०] (प्र० भा०) चूम कर ।

चूर = का० १३ । चि० १५ । अ० ३२ ।
[सं० पु०] (हि०) ल० ६६, ५७ ।

किना वस्तु क दूट या पिम हूण बारीक
दुफडे चूग चूरा, बुजना । पाचन की
रवा चूग ।

चूर्ण = वा० ५८ ७३, १७६, १८१ ल०
[सं० पु०] (म०) १७ ।

२० 'चूर' ।

चेत = चि० ३४ ।

[सं० पु०] (सं०) चाना, हात, जान, राध गावयानी,
औरमी, स्मरण, गुण, स्थाप ।

चेतन = चि०, १६८ ।

[चि० सं०] (प्र० भा०) चत करना, स्मरण करना ।

चेतन = वा० कु०, ६४ । वा० २ २५, १६,
[चि० सं०] १६३, २४७ - १० २५३, २६४
२८६ २८८ २८६, २६४ । ल०
५६ ५८ । घा, ८० ।

तना युक्त ।

[सं० पु०] आ मा । प्राणा । स्वर ।

चेतनता = वा० ६ १०६ १२८ १०३ १०८

[सं० स्त्री०] (सं०) १८१, २४० २४० २८८ २८५ ।
ल० ३० ।

चता का धम्म चतय माता, राज ।

चेतनत = वा० १८४ ।

[सं० पु०] (सं०) चेतनता का मयावन ।

चेतन ससार = घा० ६२ ।

[सं० पु०] (सं०) वह ममार तिमम चेतनता हा प्राण
हा या आत्मा हा ।

चेतना = घा० ८ १६, ५६ । वा० १७,
[सं० स्त्री०] (सं०) २५ ५१ १८, ६६ ६०, ८१

८८ ८० ८३, १००, १०२ ११६,
१८२, २१६ २८० । ल०, २६ । १०
७४ । कु० ११७ ।

बुद्धि या वाय का वृत्ति या शक्ति,
चेतनता ।

चेतना-सूत्र = कु०, ११६ ।

[सं० पु०] (सं०) चेतनता का सूत्र, चेतनता स परिपूण
हान का मूखक सत्व ।

चेतनातरगिनी घा० ८ ।

[सं० स्त्री०] (सं०) चेतना या पा नरुपा नग या घारा,
चत यना ।

चेति = चि० १३० १३१ ।

[चि० सं०] (प्र० भा०) चतकर ।

चेतिहै = चि० १७० ।

[चि० सं०] (प्र० भा०) चत करेण चतग ।

चेतिहीं = चि० १७० ।

[चि० सं०] (प्र० भा०) चतू गा या चत कह गा ।

- [स० स्त्री०] लकड़ी जिसे हाथ में लेकर लोग चलते हैं।
- छत्री = चि०, ६४।
- [वि०] (हि०) छत्र धारण करनेवाला।
- [स० पुं०] ज्ञप्ति। नाई।
- छद्म = ग्रा०, ४०।
- [स० पुं०] (हि०) घोषा। छिपाव। गायन।
- छन्नना = का०, ६४, १७६। ल० ३१।
- [क्रि० घ०] (हि०) किसी चूर्ण प्रथम तरल पदार्थ का कपड़ आदि में से इस प्रकार गिरना कि मूल या सींठी ऊपर रह जाय। पात्र जिसमें छाना जाय।
- छपछप = का०, २४६।
- [घनु०] (हि०) पानी में तरल या किसी वस्तु में गिरने का शब्द।
- छपिचे = चि, ६६।
छिपकर। छिप गया।
- छवि = चि० ७२।
- [स० स्त्री०] (हि०) शाभा। वाति। वृत्ति।
- छमकि = चि० १८८।
- [पु० क्रि०] (त्र० भा०) धाधा उछन्न कर।
- छमहु = चि०, ४०।
- [क्रि०] ज्ञमा करा।
- छयो = चि०, १८४।
- [क्रि०] (त्र० भा०) छाया है
- छरि लीने = चि०, १७१।
- [क्रि०] (त्र० भा०) छल लिया।
- छरी = चि० ७३।
- [स० स्त्री०] (त्र० भा०) छड़ी।
- छल = ग्रा०, ४०, ४८। का० कु० १२, ५९, [स० पुं०] (स०) ६३, ११३। का०, १२, ८२, १३५, १७८, १६८ २०८, २४८। चि० १०३ १०७ १६६। ऋ० ३८, ८०। ल० २०, ४८, ५३, ७७।
- कपट, धोषा। घृतता।
- छलक = का०, १६१।
- [स पु] (हि०) छानने की क्रिया। छन्नने का भाव।
- [सं पु०] (स०) छन्न करनेवाला।
- छलकना = ग्रा०, ४७। का० १०२। चि० ६६।
- [क्रि० घ०] (हि०) किसी तरल पदार्थ का उछन्नकर बाहर निकलना।
- छलनाना = ऋ०, ५३।
- [क्रि० घ] (हि०) किसी तरल पदार्थ को उछानना।
- छलकी = ग्रा० ६८। म०, १३।
- [क्रि०] (हि०) छन्नना नामक क्रिया का भूतकालिक स्त्रीलिंग रूप।
- छलने = का०, २६१।
- [क्रि०] (हि०) छन्नना नामक क्रिया का भूतकालिक रूप।
- छलछद्द = का० पु०, ५६। का०, ८२।
- [स० पुं०] (हि०) कपट। घृतता।
- छलछद्द सौ = चि०, १६६।
- [क्रि० वि०] (त्र० भा०) कपट से। घृतता का कारण।
- छलछल = ल०, २०, ४८।
- [स० पुं०] (घनु०) पाना के छन्नने, वहने, गिरने या हिलने का शब्द।
- छलछात = का० कु० ६३।
- [स० पुं०] (हि०) घोषा। कपट। छल छय।
- छलछाली = का० कु० १०।
- [स० पुं०] (हि०) छलरूपी छाली, छलरूपी कफाली।
- छलछाया = का०, २०८।
- [सं स्त्री०] (हि०) छन्न रूपी छाया।
- छलती = का०, ११८, १८२।
- [क्रि० हि०] घोषा धनी।
- छलना = ग्रा०, २४ ५७। का० ८, १५६।
- [क्रि०] (हि०) चि०, १८१। ऋ० ६४, १००, ५२, ६८, ७८, ७९।
- धाम या भूलाव में डालना।
- [स० स्त्री०] (हि०) धाला। छन्न।
- छल बलिबेदो = ल० ५४।
- [सं स्त्री०] (हि०) छन्नरूपी बलि की बेदी।
- छल सो = चि० १०७।
- [सं पुं०] (त्र० भा०) छल से।
- छला = ऋ० ६४।
- [क्रि०] (हि०) छाना हुआ।

छली = का० कु० ४३ । का०, १३१ १६६,
 [क्रि०] (हि०) १८६, २४३ । चि०, १५६ ।
 धाम म पनी हूँ धाला मायी ।
 [वि०] (हि०) कपनी । धामेवाज ।
 छल = का० १४७ ।
 [क्रि०] (हि०) कपटें । धाला रायें ।
 छत्रि = घा० १८ ३० । का० कु०, ३८ ।
 [म० ग्वा०] (म०) का० ६० ४७ ६८ ६९ ६२, १८४
 २०० २०६ । चि० ८ ४७ ६८
 ७० १६१ १६६ १८१ म० ३४
 ३६ ४१ । म० १० । ल० २६ ।
 गोभा । कानि । प्रभा ।

छवि किरणें = म० ११ ।
 [म० ग्वा०] (म०) शाभा का रश्मियाँ ।
 छवि किरनो = चि० १८२ ।
 [म० म०] शाभा रश्मिया ।
 छवि की रेखा = का० २३० ।
 [म० ग्वा०] (हि०) शाभा का चकार ।

छविधाम = का० ४६ ८३ । चि० ४ १४६ ।
 [वि] (हि०) शाभा का घर । बल्ल मूर ।
 छविधारी = चि० १६८ ।
 [वि] (हि०) शाभावात । मूर ।
 छविमान = का० ३ ८६ ।
 [वि] (हि०) शाभावात । मुशाभित ।

छविघन = का० कु १ ।
 [वि] (हि०) शाभावात । मूर ।
 छवि मूर = घा०, २४ ।
 [म० व०] (म०) शाभा मूर मूर ।
 लक्ष्मी = म० १४ ।

[क्रि०] (हि०) विमगा । दिवडा ।
 छी = का० ३ । म० १६ ।
 [म० व०] (वि) लाना ।
 छीना = चि० ६८ ।
 [म० व०] (हि०) लाना म ।
 छा = घा० ३४ ।

[म० व०] (हि०) विर कर । उर कर । इर कर ।
 छात्र = चि० २३ २८१ ।
 [म० व०] (म० म०) ल कर १६ कर ।

छाई = घा०, १४ ३३ । का० कु० २६ ।
 [क्रि०] (हि०) का० १२६ १४६, २८१ २८३,
 २६३ । चि० ४६, ६१ । ल० ३२ ।
 छा गई । छाद गई है ।

छानत = चि० ५५, १५६ ।
 [क्रि०] (म० भा०) छाता है ।
 छा जाती = घा० १६ ११० ।
 [क्रि०] (हि०) छा जाता है । फन जाना है ।
 छानन = का०, ६८ १४८ ।
 [म० ग्वा०] (हि०) छपर । जिमस छाया जाय ।
 छाजन सा = का० ६८ ।
 [वि०] (हि०) छपर क ममान ।
 छानी = चि० ६६ ।

[क्रि०] (म० भा०) छाती छा जाता, फन जाती ।
 छाज = चि० ४० ।
 [वि] (म० भा०) छाया हूँ । मुशाभित ।
 छाडि के = चि० ११, १६ २०, ५३ १६० ।
 [म० व०] (म० भा०) छापर ।
 छाडियो = चि० ४२, ४६ ।

[क्रि०] (म० भा०) छाड दिया ।
 छाता = घा० ६० । का० कु० २७ । का०
 [म० ग्वा०] (म०) ११ ४० १५० १७३ १६८ २४० ।
 म० ८६ ६१ । ल० ३७ ५० १४
 १७ ६३ ७० ।
 वल्ल म्यन । गाना ।

[वि] (हि०) छाई हुई ।
 छात्र = का० कु० ७ ।
 गिय । विद्यापीठ ।
 छाता = म० म० १० १ ।
 [क्रि० म०] (हि०) पाना । पेशना ।

[द्वारा लगा चरम म सुपमा - विज्ञान में रात्रा
 नर व का लाना लाना वा उतर प्रमा
 नर का प्रतीक है । चार पति का
 यह पद प्रमा म लाना म सुप
 २६ पर मरिचिवा है । मंगार म निगारा
 सुपमा लान मरि काचित धोर घरि
 मयूर मंगल लान करने मर पगल
 मयूरमन्त्रि पना मर है धोर कमल
 मयूर व सुपि = २७ है ।]

छात्र = का०, ७३ । का० ८८ ।

[म० पु०] चिह्न। मुग्धा।
 छाया = आ०, १८, २४, ४२, ६२, ७५। क०,
 [स० पु०] (म०) १५, १७। का० कु०, २२, ८२।
 का०, १०, ३१, ३३, ३७, ३८, ६६,
 ६७, ७०, ७३, ७६, ८७, ८८, ९०,
 ९१, ९७, १००, १०४, ११२, ११४,
 ११७, ११९, १२३, १२७, १५७, १५९,
 १६५, १६७, १६९, १७०, १८१, १८२,
 १८४, १८६, १९३, २०२, २१२,
 ३१६, २१९, २२०, २२१, २२७,
 २२९, २३३, २३८, २४०, २४५,
 २४६, २६२, २६४। प्र० ४, १४,
 १५, १८, ४९। म०, ३। स०, ११,
 १४, २७, ३६, ५३, ७९, ८०।
 वि०, ७१।
 छाँह। बमा ही। अनुहार।

छायानट = आ०, ३३।

[म० पु०] (हि०) छायारूपी नट। एक राग का नाम।

[छायानट—सगात का यह राग छाया और नट क
 योग से बन है। इसमें सा वादा और
 ग मवाणी ह और अवरारहण म तीय
 मव्यम लगता है। सगातसार के मत से
 यह सपूर्ण जाति का राग है और साय
 काल १ स २ दड तय गय है।]

छायापथ = आ०, ४८। का० ८। ऋ०, २३।

[म० पु०] (स) प्र०, १०। ल०, ३६।

आकाश गया।

छायापथ समीप = का० कु०, ११४।

[ध०] (स०) आकाश गया के निकट।

छायापथ सा = का० २२१।

[वि०] (हि०) आकाश गया के समान।

छायामय = का०, २६२, २६३।

[वि०] (स०) काला। अदृश्य। छाया स युक्त।

[छायावाद—द्विवेदी युग म स्थूल रूप म सामाजिक
 वैज्ञानिक पौराणिक, धार्मिक एव
 मान्दृष्टिक विषयो सर हा रचनाए का
 जाती थी। मद्यपि प्रमादजी न भी
 उन विषयो पर रचनाए की, तो भी
 उ होने अनेक नए विषयो को, जिनका

मवध प्रकृति एव अतर जगत् मे है,
 काव्य का विषय बनाया। यथा रूप
 किरण, विपाद, बालू की बला, धून
 का मेल, दर्शन स्वभाव, स्वप्नलोक,
 आदेश, प्यास, दीप, चित्त, अम्यबन्धिन
 भरना, वसत, प्रत्याशा, पाइबाग,
 शिथिल, प्रियमम, कल्या, हृदय वेदना,
 निशोष नदी, रमणाहृदय, बिरह,
 रजनीगंधा, शिल्पमादय, कल्पना, हाँपी
 का रात आदि।

दूसरी एक बहुत बड़ी बात प्रमादजी न काय
 के क्षेत्र मे की। हिंणी कविता का नई
 भाव शैली मे उहाने उपस्थित किया।
 'छायावाद' जिन काय का नाम है,
 उसका आदि प्रवर्तन उहोने किया।
 इसके पूर्व तब हिंदी म विशेषकर पद्य
 क क्षेत्र मे परंपरागत रूढि का प्राधा य
 था। हिंदी कविता एक घोर रीति-
 प्रणाली क पथ पर थी, दूसरी ओर
 वही या ता तुकबंदी मे गद्य सी रचना
 काय के नाम पर होती थी या कुछ
 बय बयाय आदना और मा यताम्रा
 के भीतर, जिनम स्वदशप्रेम, गी
 यता, शिखा आदि थे, कवि को
 मचरग करना पडता था। हिंदा
 साहित्य म कवि क रूप म जितने
 लोग वतमान थे उनमे कुछ एक
 ही ऐसे लोग थे, जिनकी अधिकार
 रचनाए सरम बन पड़ी अयथा सभी
 द्विवेदीजी ने आदेशवादी आचरण के
 भीतर उनकी मा यताम्रा स सामजस्य
 स्थापित कर कविता का निर्माण करते
 थे। यह हृदिवादिता तथा मशीन के
 उत्पादन की नारमता तत्कालीन
 काव्य मे है। एस समय कुछ ऐसे कवि
 हिंदी मे आए जो वतमान कविता से
 अपना सामजस्य स्थापित न कर सक।
 उहें अपनी आँखें मिला थी, उनस दे
 देखना जानत थ। उनका दृष्टि इतनी

परी थी कि वह धारण ही नहीं, धतरतन तक पहुँचा जानी था। धपो म धौर धींता स धपोषान, धपनी धतरभाषाभा म गानाधरण का गार्मजग्य स्थापित कराना मे कवि छायावादी कवि व नाम म तथा इनकी कविता 'छायावाद' व नाम मे संबोधित की जाने गयी।

प्रसाद के पूर्व जो कविताएँ लिखी जा रही थी उनमें आत्मीयता व विश्रुता का अभाव था क्योंकि उनका मर्म मूलन दृष्टि स था। इसे या भी कह सकते हैं कि काव्यरचना पद्यरूप में बुद्धि के सहारे धींती व धाधार मानकर की जाता थी। धींता का परिचय स्थाया एव रसात्मक तभी हाता है, जब हृदय का सवध दृश्यवस्तु स स्थापित हो। उसके लिये सवेदनधारण की आवश्यकता पडती है।

द्विवेदीवालीन कविता जितासा धौर धारमी यता के अभाव मे व्यापक सवेदना का प्रसार नहीं कर पा रही थी। यह उपयोगितावादी दृष्टिदशन असतोप का सृजन करता है। असंतोप का सतोप मे परिणत करने का प्रयत्न धक्कर रून्प्रस्त हो जाता है धौर जीवन मे विश्वास की परिसमाप्ति हो जाता है। उस परिसमाप्ति की सीमा पर कुछ लोग ध्रादश बनाकर ठहर जाते हैं धौर जो नये ध्रात है वे पुन उसा चक्रजाल मे पम जाते है। किन्तु हृदय की दृष्टि सवेदन धौर सतोप का जिस सीमा का निर्माण करती है, वह सदा स्थायी रहती है। इस स्थायित्व के मूल मे आतरयोग का सयोग हाता है। इस ध्राँ नही हृदय बनाता है।

आत्मीयता का सवध हृदय से होता है। हृदय सवध के धारा रस का प्रणयन धौर नियमन हाता है। छायावाद रस की

ग्राह ही नहीं उमक गप का प्रगारित करी का प्रयत्न था। उमक धनुभूति का मय था।

गुण म हिता काव्य म ध्यति का धनुभूति दवा री। नाच बीच म कुन्ध गमध कवि दृग जिंति धपन मट्ट उद्गार प्रकट विण। पर मट्टि न एमा पर विजय पार्। भारतेंदु युग म कट्टा कटी कवि उभटा पर उभार की लट्टर ततात हा युग की काव्यधारा म विनाल गे गई। कवि के पाम धपना दुग् गुल ध्राज्ञा धौर निराशा भी दृग्ता है। वह उमक जेवन का ध्राग्ता लित करता है। उमका प्रभाव उमक जावन धौर मन पर पडता है। पर सामन समाज म रूढ ध्रादश रास्ता रात दता है। उस समय एसा हा स्थिति म प्रमाण का कवि था। उनका म ध्राधिक वलशाली प्रमाणात दृग्ता। वह दवाए न दवा धौर का य की नव भावधारा फूट पडी। द्विवेदीवालीन ध्रादशवाद व मधुत यह 'यक्ति का नव भावीच्छवास तत्कालान परिस्थिति के धनुरूप दृग्ता। द्विवाजा व प्रभाव क्षण का कविता मे नेवल बनी बनाई वात थी, रूप रम था ही नही। मनुष्य केवल वातो से नहीं ध्राधाता, उसे रूप, रस, गध धौर नाद सभी बुद्ध चाहिए। छायावाद का रूपविध आकषण की जिस शक्ति पर लडा हुआ उसम योवनोचित भावना का चार सस्कार मिलता है। उस सस्कार के कारण उनकी रस सृष्टि विराट चित्र की रेखाभा के रूप म सवरकर सामने आने का उपक्रम करता है धौर काव्य स्वत प्रस्फुट होता है।

जिस प्रकार लोग इधारे स या साकेतिक शब्दो स आत्मीया के भीतर रससृष्टि कर लेते है, उसी प्रकार नवीन प्रतीकविधानो का नियमन छायावाद में दृग्ता। उनके

प्रतीक जन और मन परिचित थे। प्रकृति से बढकर परिचित आत्मीय मकेत और कहाँ स मिल सकता है। इमनिय उ हाने प्रकृतिस प्रतीकविधान किया। प्रकृत का हृदयपक्ष काव्य मसार स दूर हट गया था। उन समय प्रकृत अपन मे स्वय इनना सकतमया थी। क सवनाम का काम कर सकता था तथा इन काय द्वारा सवन्नशालता रा सुष्टरचना भा। इनलय दिनांत प्रताकविधान म प्रकृत नमुन हाता गइ और अततागुत्तरा जा काव्य छायावाद व अतगत ममुक्त हाता हे, वह प्रकृतमय बन गया।

प्रमादजा अनन पर पर आडा रह आर काव्य व जून म नव पय लमला न लिय सतत प्रय नशाल भा। इन प्रयता पर व्यय इस सामा तक पहुँचा। क लाग प्रमाद व व्यक्त पर हा नटा, उनव हातत्व भर भा आश्रय का पून उतारने लग। 'छाया' (प्रमाद का कहानी सग्रहा) का विवाद इतना यडा कि उन्नि प्रमाद द्वारा प्रवर्तित काय को 'अभय म 'छायावाद' कहानी प्रारभ किया। (१० प्रसाद की काव्यताए)।

अभी तक हिन्दी जगत् मे प्रामाणिक रूप स यह प्रकट नटा कि 'छायावाद' नामकरण का कारण का काव्य सवमाय यह है। नव काव्य क विरोधवादी न व्यय म र्थ नइ कायता व। छायावाद व नाम रा सनाधत करना प्रारभ किया और छायावादीया न इन व्यय का स्वनाम कर लिया।

मसार म विवा भा भावा व साहित्य म यह बात नही है। 'छाया का लहर नाट्यसभा' तक का नावत साद।

ऐसी स्थिति म 'छायावाद' शब्द को 'छाया' के कता के कृतित्व पर प्रारणित व्यय मानना ही समाधान लगता है। यह शब्द १९१३ स २० तक क बीच ही उत्पन्न हो गया था क्योंकि श्रीमुकुटधर पाडय ने आ शारदा म 'छायावाद' व ऊर १९२० म लेख लिखे। इनके पूव हा छायावाद' शब्द का साष्ट हा चुका रही होगी।

छायावाद का आरम्भ—आचार्य शुक्ल जा क प्रारम्भिक और किना भी हिन्दी व तत्कालीन आलाचक न छायावादी काव्यता क क्रमावकास पर विंगेय गभारतापूवक विचार नटा किया। अभी तक जो लखा जाला हिन्दी म उपलव है उसक अनुसार आचार्य साग कवल इसा मायता के हे कि छायावाद क प्रवर्तक प्रसाद जा नटा ह। इस दाष्ट से ही शुक्लजा ने सवप्रथम अपना मान्यता स्पष्ट की ह। अतएव इस अम का निराकरण शुक्लजी का हा कभाटा पर करना आवश्यक हागा।

छायावाद का नावता व आरम्भनाम म आचार्य लालशरण गुप्त, श्रीमुकुटधर पाडय, बदरनाथ भट्ट, पदुमलाल पुनिलाल वरुणा का नई काव्यता क आरम्भनाम क रूप म उ हान स्मरण किया। साथ हा १९१६ स लकर १९१७ तक का रचनाम्रा का उदाहरण देकर अपना बात कास्व प्रमाणीत किया ह। आचार्य शुक्ल व शब्दा म वह इस प्रकार ह—
'आचार्यनाथ निह व लखे हुए बगला काव्यता व हिन्दी अनुवाद तस्वता साद पत्रनाम्रा मे सवत् १९६७ (सन् १९१०) स हा मिलन लग थ। प्र, यद्भवथ साद अत्रेजा काव्यता का रचनाम्रा क कुछ अनुवाद भा (मह द्वारा अनुवाद वद्भवथ का 'कोकल)

निकल। धन खडा बाला की कविता
जिन रूप म चन रना थी, उसम मनुष्य
न रहकर दिनाय उद्यान क समाप्त
होने क कुछ पहले ही कई कवि खंडो
बाली काव्य का नयना का नया रूप
रग धन और उस भयिक धनभाव
व्यजक बनान मे प्रवृत्त हुए जिनमे
प्रधान ये मयथा भयिलीशरणा गुप्त,
मुकुटपर पाठय और बदरोनाथ भट्ट।
कुछ अग्रजी ढर्रा लिए हुए जिन प्रकार
की फुटकर कविताए और प्रगात
मुक्तक (लिरिकम) बगला म निकल
रह प उनके प्रभाव स कुछ विश्रुतन
वस्तुवियाम और अनूठ शापका क
साथ चिनमयी कामल और व्यजक
भाषा म इनकी नए टग का रचनाए
मवत् १९७०-७१ ही म निकलन नगी
थी जिनम कुछ के भातर रहस्यभावना
ना रहनी थी।

गुप्तजी का नद्वयनिपात' (मन् १९१४)
अनुरोध' (मन् १९१५) पुष्पाजलि'
(१९१७) स्वय भागत (१९१८)
इत्यादि कविताए ध्यान दन माय्य है।
पुष्पाजलि' और स्वय भागत' को कुछ
पत्त्रिया नाचे दक्षिण—

(क) मेर भोगन का एक फूल।
भीमाय्य भाव मे मिला हुआ
रामोच्छ्रयाम स हिला हुआ।
मसार विटप म खिता हुआ
ऊड पडा धचानक भून भून।

(ख) तर घर म द्वार वूत है,
निगम हावर झाऊ मैं
मब द्वारा पर भीड बडा है
वन भीतर जाऊ मैं।

इसा प्रकार गुप्तजी का और ना बहुत मा
गातामक रचनाए है जैने—

(ग) निकन रही है उर म भाट
ताक रह सब तरा राह।

चातक मडा चाच मान है,
मणुट खाल साप सडा,
मैं धपना घट लिए खडा हूँ
अपनी अपना हृम पडो।

(घ) प्यार। तर कहने म जा
यही अचानक मैं धामा
दीति बडी दीपा का महमा,
मैंन मो ला मौम कहीं।
मा जान के निय जगत् का
यट प्रकाश है जाग रहा।
किनु उमो बुझत प्रकाश म
हूव उठा मैं और बहा।
निर्दृश्य नख रखाया म
दला तरी मूर्ति धरा।

गुप्तजी तो जमा पहल कटा जा चुका है, किमी
विशेष पद्धति या वाद मन बचकर
कइ पद्धतिया पर धव तक चल भा
रह है पर मुकुटवरजी बराबर नूनन
पद्धति ही पर चल। उनकी इस ढग
का प्रारभिक रचनाया म धांनु,
उद्गार' इत्यादि ध्यान दन माय्य है।
कुछ नमून दक्षिण—

(ङ) ह्मा प्रकाश तमामय भग म
मिना मुझे तू तच्छण जग म
दपति क मधुमय विलास म
बय कुसुम के शुचि सुवास म
था तव ब्रौडा स्थान।
(१९१७)

(च) मर जावन का लघु तरखी
भांगना क पाना म तर जा।
मर उर का छिया सजाना
अहवार का भाव पुराना
बना भाज तू मुझे दिवाना
तस श्वन वदा म ढर जा।
(१९१७)

(ग) जब मध्या को हट जावगी भाड महान्
तव जावर मैं मुहट मुनाजगा निज गान।
शून्य कल क इथवा कान म हा एक
बठ तुम्हारा वन वही नीरव अभिपेक।
(१९२०)

प० बदरीनाथ भट्ट भा सन् १९१३ व पट्टल
म ही भावव्यञ्जक और अनूठ गीत
रचते आ रहे थे। दो पत्तियाँ दबिए—

द रहा दीपक जल पर फूल

रोपी उज्ज्वल प्रभा पताका अधकार हिय हूँ।

श्रीपदुमलाल पुनालाल बक्षी के भी इन
ढंग क कुछ गीत सन् १९१५ १६ के
आसपास मिलेंगे।

(देखिए हिंदीसाहित्य का इतिहास, पृष्ठ-
संख्या ७२२, ७२३, ७२४।)

यह तो साहित्य का सर्वमाय मिड्रात है कि
लक्षणप्रयो की रचना जाद म होगी
है। इन मिद्वान के बाद यह दला
जाय ना अभी तक उपलब्ध सामग्री म
छायावाद का विवचन सन् १९१८ स
माना जायगा। इसलिये शुक्नजा न
सन् १८१४ म १९१७ तक की रचनाए
लवर अपनी बाता का मजबूती का जड
जमाने का वनातिक प्रयत्न किया।
शुक्नजी का 'भरना' म ही कुछ
रचनाए छायावादा नजर आइ।
'भरना' का प्रथम प्रकाशन सन्
१९१८ ई० म हुआ। जिन रचनाया
की शुक्नजा ने छायावादा स्वाकार
किया है, यदि उन रचनायो का हम
१९१४ के पट्टले का सिद्ध कर दें, ता
शुक्नजी का मा यता अपन आप विनाए
हा जाती है। इन सब म 'भरना' व
प्रकाशक का राय स हम अवगत है,
वह छायावाद का आरम्भ प्रस्तुत सप्र
द्वारा मानता है। प्रकाशक क इन
वकनव्य का प्रमाणजी न दला हागा।
पहले मस्करण मे न सहा दूसर
मस्करण में ही। यदि उ ह यह मा यता
स्वाकार न हाता तो मभवत हमने
सस्करण का प्रकाशकाय कुछ और
हा हाता।

चित्रापाय के प्रथम मस्करण (१९१८) स
वागट रचनाए 'भरना' व द्वितीय
मस्करण (१९२७) म ली गई हैं।
पश्चिम कविताए पट्टल सस्करण मे
थी लेकिन उनम म ववल वाइम
रचनाए ही 'भरना' के दूसरे सस्करण
मे ली गई है। ये ३४ रचनाए अपन
आप सन् १९१८ म पट्टले की
ठहरता है -

१ ममपग, २ परिचय ३ भरना, ४
अचना, ५ पी वहाँ, ६ दगन, ७
परदशा का प्राति, ८ स्वप्नलोक, ९
मुधा म गरल, १० आशालता,
११ रत्न, १२ स्वभाव १३ प्याम,
१४ प्रत्याशा, १५ धूल का खेल,
१६ अतियि १७ कमीना १८ वदन
ठट्टो १९ उपजा करना २० भील
म २१ मिलन और २२ मुधा
सिचन। (इनमे से पत्र, वसत, राका
और एक तारा 'भरना' के द्वितीय
मस्करण मे सर्कलिन नही है)। २२
प्रथम प्रभात, २३ खाली द्वार २४
अनुनय २६ प्रियतम २७ वहाँ,
२८ निवेदन, २९ पाइवाग, ३०
आज इन घन की अधियारी मे, ३१
हृदय म छिपे रह इस डर स, ३२
मुमन, तुम बना बन रह जाआ,
३३ अमा की करिये मुदर राका और
३४ आया देखो विमल वसत।

यद्यपि 'भरना' मे सशुद्ध 'वमत' और
'तुम' का श्रीकियारीवान गुप्त १९१८
के पहले की रचना मानत है, ता भा
वमत' और 'तुम' १९२४ की रचना
है। दीप, काव्य अध्यस्थित सन्
१९२२ से १९२४ तक भातर प्रकाशित
हुई है। बाबू की बला, कुछ नहीं,
दो बूँदें १९२५ की रचनाए है।
'विपाद' भी १९२५ की रचना है।
इनका प्रकाशन 'माधुरी' म हुआ था।

इस प्रकार उपर्युक्त रचनाएँ जिनपर हिंदी जगत् और शुक्लजी भी मुग्ध हैं, निश्चय ही १९१८ के बाद की ही हैं। परंतु अब देखना यह है कि जिन कविताओं का शुक्लजी १९१८ के पहले की नहीं ठहराते हैं और जो उनके अनुसार ध्यायावादी काय माना जा चुका है, उनमें क्या कुछ रचनाएँ गयी हैं जिनका प्रकाशन सन् १८१४ के पूर्व हुआ।

भाचार्य रामचंद्र शुक्ल का यह मानना है कि मकब्रों मयिलीकरण गुप्त बदरीनाथ भट्ट और मुकुटधर पांडेय स्वच्छंद नूतन पद्धति के प्रवर्तक हैं और उन्होंने यह स्पष्ट लिखा है कि प्रसादजी ने पीछे उस नूतन पद्धति पर क्या रचनाएँ लिखा है और वे बहुत भी हैं कि रहस्यवादी अभिव्यंजना का पूरा अनुष्ठापन एक व्यंजक चित्रविधान प्रसाद की जिन रचनाओं में मिनता है उनसे पट्टे हाँ आमुमिमानदन पत का पल्लव' यही धूमधाम में निरल हुआ था। अर्थात् आमुमिमानदन पत उनसे पहले हाँ से इस नूतन पद्धति पर चल रहे थे।

शुक्लजी ने निर्विवाद रूप से जा कुछ नद धारा के संबंध में लिखा है, उनमें पत्र-पत्रिकाओं में प्रतिशय अधिक उ होने सरस्वती का सहायता लिया है, जब कि 'सरस्वती' एकद्वय था। एकद्वय ही इमलिय कि सन् १९२७ तक एक भाँ लय प्रसाद काव्य के नवमीय के समर्थन का आशयान यही नहीं कर सका। ललित आशय तो लमा यामिमा पर होता है जो ध्यायावादी के आशय के समर्थन पर लिया गई है। उनमें भाँ शुक्लजी से भाग धन का प्रयत्न नहीं किया गया है। उदाहरण के रूप में हिंदी साहित्य

का विकास (१९००—१९२५ ई०) [प्रयाग विश्वविद्यालय के डा० फिल० के लिये स्वीटन थोसिम का हिंदी रूपांतर] को लिया जा सकता है। यथा, 'स्वच्छंदता का दूगरा चरण केवल साहित्यिक भादोलन मात्र न था, बरन् वह कलात्मक और दार्शनिक आन्दोलन भी था। उसमें विश्व का बदना, सृष्टि का रहस्य, उन्नत भावना तथा प्रेम और वारता को धरनाते का तार भाँकाँझा, अलभ्य धर्म से उद्भूत गीत वन्ना और अनंत निराशा आदि विचित्र दार्शनिक व्युत्पत्तियों का प्रदर्शन था। यह द्वितीय आन्दोलन १९१४ के आस पास मैथिली शरण गुप्त, मुकुटधर पांडेय, राय गृष्णगुप्त, बदरीनाथ भट्ट और वसुदेव ताल पुत्रालाल बरुआ का स्फुट भाँक ताँमा से आरंभ हुआ है। तिनु इत्यादि वास्तविक आरंभ १९१८ से मानना चाहिए जब से 'प्रसाद' मुमिमानदन पत और 'नारायण' का नवान शता का कविताभाँका प्रकाशन हुआ है।

भाचार्य रामचंद्र शुक्ल के अनुसार 'व्यापार' यादू का बना, लाला द्वार, जिनका हृमा प्रेम, विरग, बर्ग का प्रताप हीयादि पाठ जाँहा हुई रचनाओं में स्फुट रूप में व्यपारण की जानवाला रचनाओं का विगणना मिलता है। का विगणना मिलता है। पर लाला द्वार' गणन जगल स्वाहृत रचना इट्ट बना पाँच, गड एक, जनवरा सन् १९१४ ई० में प्रकाशन हुआ हुआ है। 'नद' हाँ नहीं १९१४ ई० में हाँ गणन और नियम जगल रचनाएँ भी आशय और मिनबर के इतुम प्रकाशन हुआ था। शुक्लजी ने इन संबंध में जिन उदाहरण लिए हैं वे सब सन् १९१४ से १९१७ ई० तक के हैं।

इस प्रकार शुक्लजी की बात संपूर्ण भाष बट जाती है।

यह नहीं, जिस बिंदु का धारोप शुक्लजी श्राकुटधर शान्ति पर करते हैं, वह बीजबिंदु प्रसादजी की रचनाभाषा सन् १९१० ई० से ही मिनना प्रारंभ हो जाता है। उदाहरण के रूप में कालक्रम के अनुसार उद्धृत प्रस्तुत करना चाहते हैं। इसमें पहले ही उन ३१ रचनाभाषा के वार में, जिनमें शुक्लजी का यह सब मिन जाता है, निवेदन कर देना चाहता हूँ। उनमें से पहले रचनाएँ १९१४ ई० के पहले की हैं। सन् १९११ ई० के शुरु में प्रकाशित छायावादी रचनाएँ जो 'मानव कुमुद' में संप्रदीत हैं, उनका एक सामान्य उदाहरण के रूप में हम प्रस्तुत करते हैं—

विशाल मंदिर का यामिनी में
जिग देखना ही दापमाना,
ता तारका मग की ज्याति उसका
पता भनूठा बता रही है।
य तथ्य इस बात के समर्थक हैं कि प्रसाद ने इस नई कविता का शुभारंभ हिंदी में किया।

छायावाद की परिभाषा—छायावाद' का परिभाषा बराबर परिवर्तित रूप में आती रही है। ऐसा स्थिति में छायावाद की विभिन्न विशिष्ट परिभाषाओं का हम यहाँ द रहे हैं—

अज्ञेय या किसी पाश्चात्य साहित्य श्रेयवा, नग साहित्य की वर्तमान स्थिति की कुछ भाषा जानकारी रखनेवाला तो सुनते ही समझ जायगा कि यह शब्द 'मिस्टिसिज्म' के लिये आया है।

× × ×

छायावाद एक ऐसी मायामय मूल वस्तु है कि शब्दा द्वारा उसका ठीक ठीक वर्णन करना असंभव है, क्योंकि ऐसा रचनाओं में शब्द अपने स्वाभाविक मूल्य को त्याकर सावितव्य चिह्नमान दृष्टा करते हैं।

छायावाद के कवि वस्तुमा को अभाधारण दृष्टि में देखते हैं। उनकी रचना का मूल्य विनयताएँ उनका इस दृष्टि पर ही अवलंबित रहता है। × × × यह क्षण भर में बिजनी की तरह वस्तु का स्पर्श करने से ही मित्र जाता है। × × × स्थिरता और क्षणिकता के साथ उसमें एक तरह की विचित्र उमादकता और अंतरगता होती है जिससे कारण वस्तु उसके प्रकृत रूप में दीप्त पड़ती है। उसमें इस अर्थ रूप का मयव्यक्ति के अंतर्गत स् रहना है। × × × यह अंतरग दृष्टि ही छायावाद की विचित्र प्रकाशन-रीति का मूल है। × × × उनकी कविता शक्ति की आँसू सदैव ऊपर की ही भाँति उठी रहती हैं, मूल्यलोक से उनका बहुत कम संबंध रहता है। वह बुद्धि और पान की सामर्थ्यसीमा का अतिप्रमण करके मन प्राण के अंतर्गत मोक्ष में ही विचरण करती रहती है।

यही छायावादिता से आध्यात्मिकता तथा धर्म, भावुकता का मेल होता है। यथायत्न उसमें जीवन के दो मुख्य अवलंब हैं।

—सुकुटधर पाण्डेय
(सन् १९२० ई.)

छायावाद से उमी कविता का अतिप्रमण समझना चाहिये जिसे अर्थ में अज्ञेय शब्द 'वैकल्पिक पाण्डेय' बोधक हल है और उसकी अभिप्रेरणा विशेष रूप में

साध्यात्मिक क्षेत्र है, परन्तु उगका मुख्य प्रेरणा धार्मिक न होकर मानवीय और सांस्कृतिक है। उस हम मीतवी भता-नी का यगात्मिक प्रगति की प्रति श्रिया भी वह सना हैं। भारतीय परंपरागत साध्यात्मिक दशन की नवप्रतिष्ठा का मतमात अनिश्चित परिस्थितियां में यह एक सश्रिय प्रयत्न है। इसकी एक नवीन और स्वतंत्र काव्य शली बन चुकी है। साधुनिव परिवर्तनशील समाजव्यवस्था और विचारजगत् में छायावाद भारतीय साध्यात्मिकता की नवीन परिस्थितियों के अनुरूप स्थापना करता है। जिस प्रकार मध्ययुग का जीवन भक्तिकाल में व्यक्त हुआ, उसी प्रकार साधुनिव जीवन की अभिव्यक्ति इस काव्य में ही रहा है। अतएव ही इतना ही कि जहाँ पूर्ववर्ती भक्तिकाव्य में जीवन के अतीविक्र और व्यावहारिक पहलुओं को गौण स्थान देकर उनका उपेक्षा की गई थी, वहाँ छायावादी काव्य प्राकृतिक सौंदर्य और सामयिक जीवन की परिस्थिति से ही मुख्यतः अनुप्राणित है। इस दृष्टि से यह पूर्ववर्ती भक्तिकाव्य की प्रकृतिनिस्पेक्षता और मनोरमिण्या को सैद्धांतिक श्रियाओं का विरोध भी है। छायावाद मानव जावन, सौंदर्य और प्रकृति को आत्मा का अभिन्न स्वरूप मानता है। उसे अशक्त की वेदी पर बलिदान नहीं कर देता। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि मध्य कासीन काव्य की सीमा में मानवचरित्र और दृश्य जगत् अपने प्रकृति रूप में उपेक्षित ही रहे, जब कि नवीन काव्य में समस्त मानव अनुभूतियों की स्थापना पुरा स्थान पा सकी।

छायावाद काव्य मध्ययुग काव्यधारा से प्रमुखतः इस अर्थ में विभिन्न है कि वह किसी क्रमागत सांप्रदायिकता या

साधना परिपाटा का अनुगमन नहीं करता। अथवा मवादी काव्य का प्रतिष्ठान देशकालातीत परम पवित्र सत्ता हुआ करता है। व्ययशाल सांसारिक आत्माओं और स्थितियां आदि से उनका मुख्य संबंध नहीं होता। वह विवास्त जो समय का अभिन्न है, वह विगान जो व्यक्त द्रव्य तथा उनका परिष्ठापना पर अभिष्ठित है, मध्य कासन साध्यात्मिक काव्य का विषय नहीं है। प्रत्यक्ष वस्तु का मानव जीवन के सुख दुख, विवास्त, हास आदि की अवस्थाओं से जो संबंध है वह काव्य उसका उपेक्षा कर गया है। किंतु साधुनिक छायावाद काव्य उसकी उपेक्षा नहीं करता। अथवात्मवाद परंपरा दृश्य मात्र को विलासो कहकर छुप ही रहती है अथवा उस व्यावहारिक बतारकर मुह मोड लेती है। छायावाद काव्य में यह परंपरा स्वागत नहीं है। दय से पीडित और प्रताडित तथा भागश्वय से दासक और परिवेक्षित व्यक्ति समुदाय देश, राष्ट्र या सृष्टिवक्र के विभेदा में अथवात्मवाद नहीं जा सका। समय और समाज को सादोलित करनेवाला शक्तिया का आकलन उसमें कम ही है। वह तो उस शाश्वत सत्ता से ही सबका समूक्त है जिसमें परिवर्तन का ही नाम नहीं। उस सत्ता का स्वरूप समुदाय या निर्गुण विश्वमय है या विश्वाताय प्रश्न भी उस अथवात्म में आते हैं। छायावाद की वायसारणी इन अथवात्मवादी सीमानिर्देशा से आवृद्ध नहीं है। वह भावना के क्षेत्र में किसी प्रकार का प्रतिबंध स्थापित नहीं करती।

साधुनिक छायावाद काव्य किसी क्रमागत अथवात्मपद्धति को लेकर नहीं चलता। नवीन जीवन शक्ति में ही उसने आरंभ

मोक्ष की भलक देखी है, परपरित
अध्यात्म प्रायः पुरुष से प्रकृति की
ओर प्रवृत्ति जाना है। एक चेतन
केंद्र से नाना चेतना केंद्रों का घट्टि
करता है। किंतु छायावाद का य
प्रकृति की चेतना सत्ता में अनुप्राणित
होकर पुरुष दृश्य से भाव की ओर
होती है या आत्मा के अविद्यमान में
परिणत जाती है। उसकी गति प्रकृति
से पुरुष की ओर होती है और इस
वाचनिक अनुभूति के अनुरूप का य
वस्तु का चयन करने में छायावादी
कविता ने प्रकृति के अपार क्षेत्र से
यथेच्छ सामग्री ग्रहण की है।

—नददुलार वाजपयी
कविता के क्षेत्र में पौराणिक युग का विसा
घटना अथवा दश विदश की सुदरी
के बाह्य वखन से भिन्न जब वेदना के
आधार पर स्वानुभूतियाँ की अभि
व्यक्ति होने लगी तब हिंदी में उसे
छायावाद के नाम से अभिहित किया
गया। रीतिबालीन प्रचलित परंपरा
में जिसमें बाह्य धर्म की प्रधानता थी,
इस ढंग की कविताओं में भिन्न प्रकार
के भावों की अथ ढंग से अभिव्यक्ति
हुई। यन्धान भाव आंतरिक स्पर्श
से पुलकित थे।

× × ×
बाह्य उपाधि से हटकर आंतर हेतु की ओर
कवि-कर्म प्रवृत्त हुआ। इस नए प्रकार
की अभिव्यक्ति के लिये जिन शब्दों
का योजना हुई दिना में पदार्थ व
कर्म समझे जाते थे, किंतु शब्दों
में भिन्न प्रयोग से एक स्वतंत्र अर्थ
उत्पन्न करने का शक्ति है। समाप
के शब्दों में उस शब्दविशेष का
नवान अर्थ व्यक्त करने में सहायक
होते हैं। भाषा के निभाएण में शब्दों
के इस व्यवहार का बहुत बड़ा हाय
होता है।

अभिव्यक्ति का यह निराला ढंग अपना स्वतंत्र
अस्तित्व रखता है। इसके लिये
प्राचीनों ने कहा—

मुक्ताङ्गुल्लेषु छायायास्तरलत्वमिवातरा ।
प्रतिभाति यदगुण तन्लावययमिहोच्यते ।
भीती वै भीतर छाया जसी तरलता हाती है,
वसी हा वात तरलता अग म लावय्य
कही जाता है। इस लावय्य का सस्तर
साहस्य म छाया और विच्युक्ति
के द्वारा कुछ लोगों ने निरूपित किया
था। कुतक ने वक्राक्तिजावत में
कहा है—

प्रातःप्रथमभूतसमय स्तत्र वक्रता
शब्दाभिव्ययारत स्फुरताव विभाटयत ।
श द ओर अर्थ का यह स्वाभाविक वक्रता
विच्युक्त, छाया और कांत का सृजन
करता है। इस वाच्य का सृजन
करना विदग्ध काव्य का ही काम है।
'वदग्ध भंगी भाषात' में शब्द का
वक्रता और अर्थ का वक्रता लाभा
ताण रूप से अवास्वत हाता है।
॥ श दस्याह वक्रता आभिव्यय
च वक्रता लाभाताणैः स्पेला
वस्वानम् ।—वाचन २०८ ॥ कुतक
के मत में एता भाषात शास्त्रावप्रसद
शब्दाभापानवद व्यातरकी हाता है।
यह रम्यछायातरस्पर्शी वक्रता वण
स लकर प्रवच तव में होता है। कुतक
के श दों में यह उज्वलाछायाताथय
रमणायता (१३३) वक्रता का
उद्गामिनी है—

परस्परस्य शोभाय बहव पतिता वनचत् ।
प्रवारा जायत्येता चित्रच्छायामनोहराम् ।

—वक्राक्ति जावित
(२ उभेन, २४)

कभी कभी स्वानुभवसवदनीय वस्तु का
अभिव्यक्ति के लिये सवनामादिका का
सुंदर प्रयोग इस छायावादी वक्रता
का कारण होता है।

× × ×

साध्यात्मिक होने है परन्तु उमका मुख्य प्रेरणा भासिक है और मातापिता और सांस्कृतिक है। उम हम बीमया गया है। यथासि प्रमति की प्रति जिया भी कह गया है। भारतीय परंपरागत साध्यात्मिक मता का नयप्रतिभा का यामाता सांस्कृतिक परिस्थितियां म यह एक सक्रिय प्रयोग है। इसकी एक नवीन और स्वगत काव्य मती का खुली है। साधुति परिवर्तनशील समाजव्यवस्था और विचारजगत् म छायावाद भारतीय साध्यात्मिकता की नवीन परिस्थितियां के अनुकूल स्थापना करता है। जिन प्रकार मध्ययुग का जीवन भक्तिवाचन म व्यक्त हुआ, उगी प्रकार साधुति जीवन का अभिप्रेति इन काव्य म हो रही है। अंतर है ता इतना है कि जहाँ पूर्ववर्ती भक्तिवाच्य म जीवन क अलौकिक और व्यावहारिक पट्टुपमा को गौण स्थान देकर उनका उपेक्षा की गई थी, वहाँ छायावादी काव्य प्राकृतिक सौंदर्य और सामयिक जीवन की परिस्थियां स ही मुख्यतः अनुप्राणित है। इस दृष्टि स वह पूर्ववर्ती भक्ति-काव्य की प्रकृतिनिरपेक्षता और सत्ता मिथ्या की सद्धातिव क्रियाओं का विरोध भी है। छायावाद मानव जीवन, सौंदर्य और प्रकृति की आत्मा का अभिन स्वरूप मानता है। उम अव्यक्त की वेदी पर बलिदान नहीं कर देता। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि मध्य कालीन काव्य की सीमा मे मानवचरित्र और दृश्य जगत् अपने प्रकृति रूप मे उपक्षित ही रहे, जब कि नवीन काय मे समस्त मानव अनुभूतियों की व्याप यता पूरा स्थान पा सकी।

छायावाद काव्य मध्ययुग काव्यपारा स प्रमुक्त इस अर्थ मे विभिन्न है कि वह किसी क्रमागत सांप्रदायिकता या

माया परिपाटी का अनुगमन नहीं करता। साध्यात्मता काव्य का प्रतिष्ठान दार्शनिकता परम पवित्र गया हुआ करता है। व्ययशासन मांसा रिण सांस्कृतिक और स्थितियां सादि स उनका मुख्य गर्ब नही होता। वह यिनाम जा मय का सांस्कृतिक है, वह यिनाम जा व्यक्त द्रव्य तथा उमका परिष्कार पर अक्षिप्त है, मध्य काशन साध्यात्मिक काव्य का विषय नहीं है। प्रत्यक्ष वस्तु का मानव जावन क मुक्त ट म, यिनाम, हाम सांस्कृतिक की अवस्थासा स जा गर्ब है वह काव्य उमकी उपेक्षा कर गया है। त्रिनु साधुतिव छायावादी काव्य उमका उपेक्षा नहीं करता। साध्यात्मवादी परंपरा दृश्य मात्र का किलासा कहकर पुप हा रहता है अथवा उन व्यावहारिक बताकर मुट माड लता है। छायावादी काव्य म यह परंपरा स्वागत नहीं है। दय स पीडित और प्रताडित तथा भागश्वय स सासक्त और परिवर्द्धित व्यक्ति समुदाय देश राष्ट्र या सृष्टिचक्र के विभेदा म साध्यात्मवाद नहीं जा सका। समय और समाज की सादासित करनेवाला शक्तियां का साकलन उसम कम ही है। वह ता उस शाश्वत सत्ता स हा सवयां संपूक्त है जिसम परिवर्तन का ही नाम नहीं। उस सत्ता का स्वरूप समुत्थ है या निर्गुण विश्वमय है या विश्वातात ये प्रश्न भी उस साध्यात्म मे साते हैं। छायावाद की कायसारणी इन साध्यात्मवाद सासानिर्देशा स सावद्ध नहीं है। वह भावना के क्षत्र मे किसी प्रकार का प्रतिबन्ध साकार नहीं करता।

साधुतिक छायावाद काव्य किसी क्रमागत साध्यात्मपद्धति को लंकर नहीं चलता। नवीन जावन द्रगति मे ही उसने सात्म

सौंदर्य का भन्व देवी है, परपरित
अध्यात्म प्राय पुरुष स प्रवृत्ति की
शोर प्रवर्तित हाता है। एक चेतन
केंद्र से नाना वतना केंद्रों की सृष्टि
करता है। किंतु छायावादी का य
प्रवृत्ति की चेतना सत्ता ने अनुप्राणित
होकर पुष्प दृश्य से भाव की शोर
होती है या आत्मा के अविष्टान म
परिणत हाती है। उसकी गति प्रवृत्ति
स पुरष की शार होती है और इस
दाशनिक अनुभूति व अनुसूच काव्य
वस्तु का चयन करने में छायावादी
कविता ने प्रवृत्ति के अपार चून से
यचञ्च मामग्री ग्रहण की है।

—नददुलारे वाजपेयी
कविता के क्षेत्र में पौराणिक युग की क्विती
घटना अथवा देश विदेश की सुदरी
के बाह्य वसन से भिन्न जब वेदना के
आवार पर स्वानुभूतिया की अभि
व्यक्ति होन लगी तब हिंदी में उस
छायावाद व नाम स अभिहित किया
गया। रीतिवासान प्रचलित परपरा
स जिसम बाह्य वण की प्रधानता थी,
इन न्य का कविताम्रा म भिन्न प्रकार
के भावा का अय ढग से अभिव्यक्ति
हुई। य नवान भाव आतरिक स्पश
से मुलकित थ।

× × ×

बाह्य उपाधि से हटकर आतर हनु का आर
कवि क्रम प्ररित हुआ। इन नए प्रकार
की अभिव्यक्ति के लिय जिन शब्दा
की योजना हुई, हिंदा म पहल व
कम समझ जाते थे किंतु शब्दों
म भिन्न प्रयोग म एक स्वतंत्र अर्थ
उत्पन्न करने की शक्ति है। समीप
क शब्द भा उस शब्दविशेष का
नवान अर्थ दातन करने म सहायक
हान हैं। भाषा क निमास म शब्दा
व इस व्यवहार का बहुत बदा हाय
हाता है।

अभिव्यक्ति का यह निराला ढग अपना स्वतंत्र
अस्तित्व रखता है। इसके लिये
प्राचीना ने कहा—

मुक्ताफलैषु छायायास्तरलत्वमिवातरा ।
प्रतिभाति यदगपु तल्लावण्यमिहोच्यते ।
मोती मे भीतर छाया जमी तरलता होनी है,
वसी ही कात तरलता अग म लावण्य
की जाता है। इस लावण्य का सस्त्रत
साहस्य म छाया शोर विचर्चित
क द्वारा कुछ लोगों ने निरूपित किया
था। कुतक ने वक्रगांकजावत म
कहा है—

प्रातभाप्रथमाद्भूतममय स्तत्र वक्रता
शब्दाभिव्ययात्त स्फुरतात्त्वभाटयत ।
शब्द शोर अर्थ का यह स्वभाविक वक्रता
विचर्चित, छाया शोर कात का सृजन
करता है। इन वाच्य का सृजन
करना विदम्ब काव का ही काम है।
वदम्य भगी भाणत' म शब्द का
वक्रता शोर अर्थ का वक्रता लाका
ताणु रूप स अवास्वत हाता है।
॥ शब्दाह वक्रता अभिव्यस्य
च वक्रता लारुतिर्णन रूपेणा
वस्वानम् ।—गोचन २०८ ॥ कुतक क
मत म एनी भाणत शास्त्रादप्रासद
शब्दाभावनवद व्यातरकी हाता है।
यह रम्यछायातरस्पर्शी वक्रता वणु स
लकर प्रवय तव म हाता है। कुतक
व शब्दा म यह उज्ज्वलछायातरशय
रमणीयता (१३३) वक्रता का
उद्भानिनी है—

परस्परस्य शोभाय बहव पीतता क्वचित् ।
प्रकारा जायत्येता चित्रच्छायामनिरादा ।

—वक्राक्ति जावित

(२ उमप, २४)

कभी कभी स्वानुभवसंबन्धी वस्तु का
अभिव्यक्ति के लिय सवनामादका का
मुन्द प्रयोग इन छायामयी वक्रता
का कारण होता है।

× × ×

कवि की वाणी में यह प्रतीयमान छाया युवता के लज्जाभूषण का तरह होती है। ध्यान रहे कि यह साधारण भ्रूलवार जो पहन लिया जाता है वह नहीं, किंतु यौवन के भीतर रमणा मुलभ श्री का बहिन ही है घूषण वाली लज्जा नहीं। सस्वृत साहित्य में यह प्रतीयमान छाया अपने लिये अभिव्यक्ति के अनेक साधन उत्पन्न कर चुकी है, अभिनवगुप्त ने सावन में एक स्थान पर लिखा है—

परा दुलभा छाया आत्मरूपता याति ।

इस दुलभा छाया की सस्वृति का का योक्तव्य काल में अधिक महत्व था। आवश्यकता इसमें शाब्दिक प्रयोग का भावी किंतु आंतर अर्थव्यक्तियों को प्रकट करना भी इनका प्रधान लक्ष्य था। इस तरह की अभिव्यक्ति का उदाहरण सस्वृत में प्रचुर है। उहान उपनामा में भी आंतर सारूप्य खोजन का प्रयत्न किया था।

प्राचीनो ने भी प्रवृत्ति की चिरनि शश्रुता का अनुभव किया था—

शुचिशोभितावाद्रिकाप्लुताशिवरनि शश्रु मनोहरा दिश ।

प्रशमस्य मनोभवस्य वा हृदि तस्याप्यथ ह्युता ययु ॥

इन अभिव्यक्तियों में जा छाया की स्निग्धता है, सरलता है, वह विविध है। भ्रूलकारक भातर आने पर भा य उनम कुट्ट अर्थिक है। कदाचित् ऐस प्रयोग क आधार पर जि भ्रूलकारा का निमाण होता है उही क लिये आनवधन न कहा है—

तेजनारा परा छाया यान्ति ध्वयगता गता ।

(२-२६)

प्राचीन साहित्य में यह छायावाद अपना स्थान बना चुका है। हिंसा में जब इय तरह क प्रयोग आरंभ हुए तो कुछ

लाग चाक सहा, परंतु निरोध करने पर भी अभिव्यक्ति के इस रंग को ग्रहण करना पडा। कटना न हागा कि य अनुभूतिमय आत्मस्पर्शा काव्य जगत् क निय अत्यंत आवश्यक था। काकु या शत्रु का तरह यह सोधा यशोक्ति भी न थी। आक्षेप न हटकर काव्य का पट्टि अंतर की आरंभ ली।

× × ×

छायावादी भारतीय दृष्टि अनुभूति और अभिव्यक्ति की भंगिमा पर अधिक निभर करती है। ध्वन्यात्मकता लाक्ष गितता, सौन्दर्यमय प्रतीकविधान तथा उपचारवक्रता क भाव स्वानुभूति का विवृति छायावादी की विशेषता है। अपने भीतर के पाता न तरह आंतर स्पश करक भाव समरण करनेवाला अभिव्यक्ति छाया कातिमय होती है।

—जयशंकर प्रसाद

× × ×

‘बहुत कुछ अर्थरचना कर चुकने पर उ होने एक विशेष प्रकार का कविता का सृष्टि का है। अर्थेजा में एक शब्द है मिस्टिक या मिस्टिकल। पंडित मधुराप्रसाद मिश्र ने अपने त्रमासिक कोष में उनका अर्थ लिखा है गूढार्थ, गुह्य, गोप्य और रहस्य। रवींद्रनाथ का इन नए ढंग का कविता भा उमा मिस्टिक शब्द क अर्थ का आंतर है।’ फिर आप लिखत है छायावाद स लागो का क्या मतलब है, कुछ मयंक में नहीं आता। शायद उनका मतलब है कि किमा कविता क भावों की छाया यदि कही अर्थ जाकर पड, तो उम छायावादी कविता कटना चाहिए।’

मुरवि बिबर जा कहन है ‘वर रवि गानू की यापनगान कविता न हिंसा के कुछ

युवक कविया ने दिमाग म कुछ ऐसी हूरकत पंदा कर दी है कि वे भसभव को मभव कर दिखाने का चेष्टा म अपने भ्रम, नमय और शक्ति का 'यथ ही' प्रपव्य कर रहे हैं। जो काम रवींद्र नाथ म चालाम पंचम वषों क सतत अभ्यास और अध्ययन की वृषा स कर लिखाया है उमम व स्कूल या बालजा म रहते हा रहते छायावादी कवि बनन लग गए हैं।'

छायावाद' और ममस्थापुनि म हिंदा कविता का वडीं हानि पढूव रही रे। छायावाद की भार नवमुवका का भुवाव है, और ये जहा कुछ मुनमुनान लग कि चट दो चार पद जोड़कर कवि जनन का साहस कर वठन है। इनका कविता का ग्रथ समझना कुछ सरल नहीं है। पूज्य रवींद्रनाथ का अनुमरण करके हा यह अत्याचार हिंदी मे हा रहा है।

—मुक्वि किंकर

(भाचाय महावीरप्रसाद द्विवेदी)
मनुष्य का जीवन चक्र की तरह घूमता रहता है। स्वच्छद घूमत घूमत थकतर वह अपने लिए महस्र अधना का भाविकार कर बालता है और फिर बधनो म उबकर उनका ताडन म अपनी मारी शक्ति लया देता है। छायावादा क ज म का मूल कारण भा मनुष्य व दुनी स्वभाव मे छिपा हुआ है। उनक ज म स प्रथम कविता के बधन सामा तक पढूव चुके थे और सृष्टि क बाह्यकार पर इनना अधक लिखा जा चुका था कि मनुष्य का हृदय अपना अमि यक्ति क लिये रो उठा। स्वच्छद काव्य म चिहित उन मानव अनुभूतिवा की छाया उपयुक्त ही थी और मुझे तो आज भी उपयुक्त लगती है।

उन छायाचिना को बनाने क लिये और भी मुशन जितेरा की भावप्रकता हाता है, कारण, उन चिना का आधार छून

या चर्मचर्दु मे दखन की वस्तु नहीं। यदि व मानवहृदय म द्विपी हुई एकता के आधार पर उनको मवेदना का रग चढाकर न बनाए जाय ता वे प्रेतछाया के समान लगन लगे इसम कुछ भा मदह नहीं है।

प्रवाण रखाभा के माग म बिपरी हुई बदलिया के वारण जम एर ही वस्तु मे प्राकाण के नीचे हिलोरे लनवाली जलराणि म वही छाया और वही आलाव का आभास मिलन लगता है, उमा प्रनार हमारी एव ही काव्यवारा अमि यक्ति का भिन्न शलिया क अनुसार अभन वर्गी हा उठी है।

आज ता कवि जम के अक्षयवट और ररवारा क क पवृत्त की छाया बहुत पादे छाड आया है। परिवतना क कोलाहल म काय जय म मुकुट और तिलक स उतरकर मयवग क हृदय का भातयि हृषा तव म अजलक वडीं है और सत्य रहे तो कना होगा कि उस हृदय का माभारणता न कां व नना म वभव का चनाचौंम दूर कर दा है और विपान न कवि का धमगत सकाणताभा क प्रति सहिष्णु बना दिया।

छायावाद का कवि धर्म व अध्यात्म म अथिक् दशन स बाह्य का ऋणा है जा मूल और अमूल विश्व की। मलाकर पूणता पाता है। बुद्धि व मूम धरातल पर कवि ने जावन का अरडता का भावन किया। हृदय की भावभूमि पर लगन प्रवृति म बिखरा सौंय सत्ता का रहम्यमय अनुभूति की और दोनो क साथ स्वानुभूत दुावा का। मलाकर एक एसी काव्य सृष्टि उपस्थित क दी जा प्रवृतिवाद, हृदयवाद, अध्यात्मवादा, रहस्यवाद, छायावाद आदि अनेक नामा का भार मभाज सका।

छायावाद ने मनुष्य क हृदय और प्रवृति क

उस मवध मे प्राण डाल दिए जो प्राचीन काल के विव प्रतिरिख के रूप म चला आ रहा था और जिसके कारण मनुष्य को अपने दुःख मे प्रवृत्ति उदास और मुल मे पुलकित जान पडती थी। छायावाद की प्रवृत्ति घट रूप आदि म भरे जल की एकरूपता के समान अनक रूपो म प्रकट एव महा प्राण बन गई अत अक मनुष्य क अश्रु, मध के जलकण और पृथ्वी के असे विदुमा का एव ही कारण एक ही मूल्य है।

—महादेवा वर्मा

(महादेवा का विवेचनात्मक गद्य)

मनुष्य म जब जब स्थूल का प्रभुता असह्य हाती गई है, तभी सूक्ष्म न उसके विरुद्ध क्रांति की है। इस क्रांति और इस विद्राह के अभिव्यक्ति रूप से जो गान मसार का आत्मा न उमत्त होकर गाए, वे हा छायावाद का नविता के प्राण हैं। साराश यह है कि स्थूल व प्रति सूक्ष्म का विद्राह ही छायावाद का आधार है। स्थूल शब्द का अर्थ बडा व्यापक है, इसकी परिधि म सभा प्रकार व बाह्य रूप रंग, रुडि आदि सम्मिहित ह। और इसके प्रति विद्राह का अर्थ है उपयोगतावाद क प्रति भावुकता का विद्राह, नतिक रुडिया व प्रति मानसक स्वातन्त्र्य का विद्राह और वाच्य व बधनो व प्रति स्वच्छन्द कल्पना और टेनना का विद्राह।

—डा० नगेंद्र

मवमा प परिभाषा वभा भी हिनी म स्वाकार नहीं की गई। उम वर्ग की बात ता मवधा विचारणाय है हा नहीं जिनन छायावाद का विरोध किया। छायावाद के ममधका का दतीने भा विराध व आधार पर एव मामा तव सय का भास्वान करता है। छायावाद व सख

म दो हिंदी आलाचको की बाती पर विशेष रूप स ध्या आकट होता है। एक है प० नददुलार वाजपेयी दूसरे डा० नगेंद्र।

प० नददुलारे वाजपेयी छायावाद को नवीन और स्वतंत्र काव्यशैली मानते हैं। साथ ही उस भारतीय आध्यात्मिकता का नवीन परिस्थिति के अनुरूप प्रतिष्ठित भी मानते हैं। जीवन का सामयिक परिस्थितियो से तथा प्राकृतिक सौन्दर्य से उसे अनुप्राणित ठहराते हैं एव भावना के क्षेत्र मे उसे स्वच्छन्द भा मानते हैं। छायावाद का गति प्रवृत्ति से पुष्प की आर दृश्य भाव से होता है, यह भा उनका मायता है।

डा० नगेंद्र स्थूल के प्रति सूक्ष्म के विद्राह का छायावाद का आधार मानते हैं साथ ही उम उपयोगितावाद के प्रति भावुकता का नतिक रुडिया के प्रति मानसिक स्वतन्त्रता का और वाच्य स्वच्छन्ता तथा कल्पना टेननिक का विद्रोह भा मानते है। इत परिभाषा का यदि हम ध्यान स देंगे तो हम यह क्हा पडता है कि वाजपेयी न अज्ञान मायता काव्यविवचन म रचना या अभिव्यक्ति का ही, सब कुछ मानवर स्थापित की है और डा० नगेंद्र न पश्चिमा आलाचना व टुड साइकिल वाले सिद्धान्त व आधार पर बडा व्यापक रनाभा व वाच छायावाद का किर वर किया है। इन तथ्या का प्रस्तावनी का कगीटा पर कनना ही अधिक उपयुक्त मुझे लगता है क्योंकि छायावाद का मय स्वरूप उमम प्रकट है।

प्रस्तावना न व्यापारता, लाड गुणना, नौत्यमय प्रताप, कवान तथा उपचार वक्रता व माध भवानुमति का विवृता छाया का छायावाद का विन्पता व

रूप में स्थावर विद्या है तथा इयं पूर्ण रूप में भारतीय ठट्टाया है और वहाँ तक कहा है कि प्राचीन साहित्य में छायावाद अपना स्थान बना चुका था।

‘रोमांटिक रिवाइवल’ की स्थिति में छायावाद की मानने तथा तदनुसार उसकी व्याख्या से उनका नाता नहीं है। वे उम्र अपने देश की वस्तु मानते हैं।

छायावाद के प्रवक्तृ इस प्रगतिवादिता में मानकर इस वाक्य को मध्य और शाश्वत धारा के रूप में उपस्थित करते हैं, किन्तु प्रगाढ़ी भारत का मध्यकालीन कविता को विपथगामा धारित करते हैं। यह उस परंपरा का विराध नहीं, सरलपथ का जाणोद्धार के रूप में अभिनव प्रयत्न मानते हैं। और यदि गभीरतापूर्वक देखा जाय तो स्पष्ट करना पड़ता है कि वाक्य का यह मांड नया नहीं, बल्कि पुराना है। अंतर केवल इतना है कि अद्यतन के स्थान पर या उत्तराय के स्थान पर अपने युग के अनुरूप उ होने काय को वक्ष्य पढ़ना दिया है। इसलिये छायावाद को काव्य का शची मानने में हिचक नहीं होना चाहिए। शुक्लजी ने इस शला माना है किन्तु इस रूप में नहीं। केवल वस्तु तक ही शला का सीमा नहीं है उसकी सीमा हृदय तक समझनी चाहिए।

छायावाद में तो नवल का प्राचीन के प्रति विद्रोह है न वह भारत की नई कविता प्रणाली है। वह नवीन और मुरातन का समग है, व्यक्ति और आदर्श का समन्वय है, तथा है युग के अनुरूप भारतीय काव्यप्रणाली का विकसित रूप। न ता उन अन्धों की सचा दी जा सकता न जो उबा देनेवाला अत्यंत मूल गति से बहनेवाला वायु की। वह तो सृजन, निमित्त और स्वाभाविक

रूप में प्रवाहित होनेवाला जेतना को स्वरछाया है।

छायावादी कवियों का अपने सामने समाज में महान् आदर्श दाख पडा। कवि अपने और समाज के आदर्शों के बीच ही गया। उमका ‘मैं’ अधिर बल शक्ति प्रमाणित हुआ। वह देवाए न देवा और काव्य की यह भावधारा फूट पडी।

कवि का सारा गुण दुःख, उमकी आशा-निराशा इस कममम में प्रकृति का आधार बनाकर प्रकट हुई। कवि ने हृदय के भावोच्छ्वास के मन की आशा से देवा और प्रकृति का प्रतीक बनाकर उस व्यक्त करने लगा। कवि और प्रकृति एकारम हो गए। दुःख से प्लावित कवि फूल पर पडी आस की बूद का अपना अमि समझने लगा। प्रेमी मन कलिका की मुस्मान का अपनी मुस्मान मान बठा। अंतर से प्रकृति का तादात्म्य उमने स्थापित किया और भारतीय प्रकृति का आसवन लेकर भाव व्यक्त करना आरंभ किया। ‘मैं’ प्रधान होने हुए भी ‘मैं’ की छाया काव्य में प्रधान हुई। इस छायावचना में प्रकृति का चित्र की भांति सामने आई पर कलाकार का मन मूक रहा, किन्तु शत शत भावसकना में प्रच्छन्न रूप से अभिव्यक्त भा हा उठा और एसी हा रचना छायावाद के नाम से सवा धित की जाने लगा।

छायावाद की जितनी परिभाषाए दी गई हैं, यदि उनका दर्शन किया जाय ता ये तथ्य छायावादी रचनाया की विशेषता के रूप में दीख पडेगे—साक्ष्यिकता, ध्वंसात्मकता, इतीकविधान, मौकिक का अलौकिक बनाने का प्रयास, काव्य-निवृत्ता, प्रकृति प्रतीकों का चमत्, यौवन शृंगार के दानो रूपा का वणन, प्रकृति पर आरोपित मनभावों का

उस मन्वथ मे प्राण डाल दिए जो प्राचीन काल के विव प्रतिजिब के रूप मे चला आ रहा था और जिसके कारण मनुष्य नो अपने दुःख मे प्रकृति उदास और मुक्त मे पुलकित जान पडती थी। छायावाद की प्रकृति घट कूप घादि म भरे जल की एकरूपता क समान धनक रूपो म प्रकट एक महा प्राण बन गई, अतः अन्न मनुष्य क अश्रु, मध क जलकण और पृथ्वा के आस विदुषा वा एक ही कारण एक ही मूल्य है।

—मादेवा यमा
(महादेवी का विवेकनात्मक गद्य)

मज्ञप म जब जब स्थूल का प्रभुता असह्य हाती गई है तभी मूम न उसके विरुद्ध क्रांति की है। इस क्रांति और इस विद्रोह के अभिव्यक्ति रूप से जो गान ससार की आत्मा न उमत्त होकर गाए, व ही छायावाद की कविता क प्राण है। सारास अहं कि स्थूल क प्रति मूम का विद्रोह ही छायावाद का आधार है। स्थूल शब्द का अर्थ बड़ा व्यापक है, इसकी परिधि म सभी प्रकार क बाह्य रूप रंग रुडि आदि सम्मिलित है। और इसक प्रति विद्रोह का अर्थ है उपयोगतावाद क प्रति भावुकता का विद्रोह, नतिक रुडियों क प्रति मानसक स्वातन्त्र्य का विद्रोह और काव्य क बंधना क प्रति स्वच्छन्द रचना और टक्नीत का विद्रोह।

—डॉ० नगेंद्र

गवमा य परिभाषा कभा भी टिंडा म स्वाकार नहीं की गई। उम वग का बात ता गवया विचारणाय है हा नही जिनम छायावादा का विचार किया। छायावादा क समयका का टनीने भा विराय क आधार पर एर माना तह मय का आस्थान करता है। छायावादा क सर्वत्र

मे दो हिंदी आलाचका की बातो पर विशेष रूप से ध्या आकष्ट होता है। एक है प० नददुलारे वाजपेयी दूसरे डा० नगेंद्र।

प० नददुलारे वाजपेयी छायावाद को नवीन और स्वतंत्र काव्यशली मानते हैं। साथ ही उसे भारतीय आध्यात्मिकता की नवीन परिस्थिति के अनुसूप प्रतिष्ठित भी मानते हैं। जीवन की सामयिक परिस्थितिया से तथा प्राकृतिक सौंर्य से उम अनुप्राणित ठहराते हैं एव भावना क चक्र म उसे स्वच्छद भी मानते हैं। छायावाद की गति प्रकृति से पुरुष की और दृश्य भाव से होती है, यह भा उनका मा यता है।

डा० नगेंद्र स्थूल क प्रति मूम क विद्रोह को छायावाद का आधार मानते हैं साथ ही उम उपयोगतावादा क प्रति भावुकता का नतिक रुडिया क प्रति मानसिक स्वतंत्रता का और काव्य स्वच्छंदता तथा कल्पना टक्नीत का विद्रोह भी मानते हैं। इन परिभाषाया का यदि हम ध्यान से देखें ता हम मट कटा पडता है कि वाजपेयाना न अना मायता, काव्यविवचन म रचना या अभिव्यक्ति का हा, सब कुछ मानकर स्थापित की है और डा० नगेंद्र न पश्चिमी आचार्यता क दृष्ट सादृशिक काल सिद्धोत क आधार पर बड़ा व्यापक रमाया क वाच छायावादा का फिट कर दिया है। इन तथ्या का प्रमाणता की कयोटी पर कनना ही अधिक उपयुक्त मुझे लगता है कयाकि छायावादा का गव्य स्वल्प उमम प्रकट है।

प्रमाणता न व्यापकता, साठ गुणता, मौनमय प्रतीकबयान तथा उरवार-वक्रता क गाय म्बानुमति का रिक्त छाया का छायावाद की विपत्ता क

रूप में स्वीकार लिया है तथा इसे पूर्ण रूप से भारतीय ठहराया है और यहाँ ता बड़ा है कि प्राचीन साहित्य में छायावाद अपना स्थान बना चुका था।

'रोमांटिक रिवाइवल' की स्थिति में छायावाद को मानते तथा तदनुसृत उसकी भाषा से उनका नाता नहीं है। वे उन अपने देश का वस्तु मानते हैं।

छायावाद के प्रवर्तक इस प्रगतिमानता में मानकर इस काव्य का मूल्य और शास्त्र के रूप में उपस्थिति करते हैं, किन्तु प्रगादजी भारत का मध्यकालीन कविता का विपथगामी पापित करते हैं। यह उस परंपरा का विरोध नहीं, सत्यपथ का जगोद्वार के रूप में अभिनव प्रयत्न मानते हैं। और यदि गभीरतापूर्वक देखा जाय तो स्पष्ट कहना पड़ता है कि काव्य का यह मांड नया नहीं, बल्कि पुराना है। अंतर केवल इतना ही है कि भगवत्स्य व स्थान पर या उत्तरायण के स्थान पर अपने युग के अनुसृत उ होने काव्य का वस्त्र पहना दिया है। इसलिये छायावाद को काव्य का शला मानने में हिचक नहीं होनी चाहिए। शुक्लजी ने इस शला माना है किन्तु इस रूप में नहीं। केवल वस्तु तब ही शली का सामा नहीं है उसकी सीमा हृद्य तक समझनी चाहिए।

छायावाद में ता नवीन का प्राचीन के प्रति विद्रोह है न वह भारत की नई कविता प्रणाली है। वह नवीन और पुरातन का संगम है, व्यक्ति और भाषा का समन्वय है, तथा है युग के अनुसृत भारतीय काव्यप्रणाली का विकसित रूप। न तो उस भ्रम की मजा दी जा सकती, न ही उबा देनेवाला शयत मद गति से बहनेवाला वायु की। वह तो सहज, निमल और स्वाभाविक

रूप में प्रवाहित होनेवाला चेतना की स्वरछाया है।

छायावाद कविता का अपने सामने समाज में महान् आदर्श दीख पड़ा। कवि अपने और समाज के आदर्शों के बीच हो गया। उसका मैं अभिन्न बन जाती प्रमाणित हुआ। वह दबाए न दबा और काव्य की यह भावधारा फूट पड़ी।

कवि का धारा मुख दुख, उसकी आशा निराशा इस कमलमय में प्रकृति की आभाष बनाकर प्रकट हुई। कवि ने हृदय के आवाच्छ्वास को मन का धौना से देना और प्रकृति का प्रतीक बनाकर उस व्यक्त करने लगा। कवि और प्रकृति एकात्म हो गए। दुख से प्लावित कवि फूल पर पड़ी भोग की बूद का अपना धौयु समझने लगा। प्रेमी मन बलिबा का मुस्वान का अपनी मुस्वान मान बठा। अंतर से प्रकृति का तादात्म्य उनमें स्थापित किया और भारतीय प्रकृति का शालजन लकर भाव व्यक्त करना आरंभ किया। मैं प्रधान होते हुए भी 'मैं' का छाया काव्य में प्रधान हुई। इस छायावचना में प्रकृति ता चित्र का भाँति सामने आई पर कलाकार का मन मूक रहा, किन्तु शन शत भावमंत्रों में प्रच्छन्न रूप से अभिव्यक्त भी हो उठा और एना हा रचना छायावाद का नाम संश्लेषित का जाने लगी।

छायावाद की जितनी परिभाषाएँ हो गई हैं यदि उनका इतना किया जाता है तब छायावादी रचनाओं के विशेष के रूप में इन विशेषताओं का उल्लेख करने के लिये कहा जा सकता है कि छायावाद का अर्थ है वह कविता जिसमें कवि ने अपने भावों का प्रतिबिम्बित रूप में प्रकृति के माध्यम से व्यक्त किया है।

मानवीकरण, मधुर, कोमल, कात पना वाली सस्मृत तथा अजभावा के मधुर सत्सम शब्दों का बाहुल्य, भात्म भावना का विश्व भावना के रूप में प्रवृत्त करना तथा दखना ।

ये सत्र के सत्र तत्व प्रीति रूप में न सही अक्षुर रूप में ये विद्यमान अवश्य य । बहुत बड़ा दोषाराप प्रसाजी के विरुद्ध यह हुआ और है कि उनका काव्य की भीमा बड़ी संकुचित है । यह धारणा भ्रात है । उनका समस्त का य छायावाद के अतगत सीमित नहीं है। तबता उसा प्रकार उ हाने कवल आत्मपरक भावनाओं की प्रवृत्त करने के लिय यह शली नहीं अपनाई थी क्योंकि उ होन पुराण इतिहास एव मानववृत्ति का चितना को तिलाजलि नहीं दी थी और न जावन म कभी दा ।

प्रत्येक व्यक्ति और साहित्यकार का जीवन का दो पक्ष हुआ करता है—व्यक्त और सामाजिक । व्यक्ति के रूप में जहाँ व्यक्तिगत सुख दुःख राग द्वेष आशा अभिलाषा के लिये अमृत सृष्टि रचना का वह प्रयत्न करता है, वहीं सामाजिक प्रणाली के रूप में उस व्यक्ति का मस्तिष्क विशाल होता है और उसका कल्पना सन्निय रूप से सामाजिक सृष्टि के लिये हाती है । सामाजिक दृष्टि से व्यक्ति की प्रणाली सीमा से भाग प्रसादजा का व्यक्ति नहीं बढा है और जिनका अपना व्यक्तित्व नहीं होता, वे समाज का सवा भा कहीं कर पाते हैं ?

इस दृष्टि से यदि दखा जाय ता अपने दश का सभा बड़ी प्रतिभाए व्यक्तिवादा भा रहा है और समष्टि का चिन्तन भा । प्रसादजा अपने भा बुद्ध य और पराया क भी व य । जहाँन

साक चिन्तन का बात है, 'विश्व शृष्टय' 'सादश युवक' आदि का चिन्ता अपने अपने सृष्टि में प्रसादजा न का ।

भल ही कोई यह मान कि प्रसादजा म नवांगण समय कम है फिर भा छाया वाद का पूरा प्रतिनिधित्व प्रसादजा ही, ऐसा की दृष्टि म भा करते है ।

छायावादा' कोई वाद नहीं था क्योंकि उसमें बुद्धिबोधन या विलास नहीं अनुभूति का साथ था जावन का साथ था । जावन का साथ और हृदय का साथ बुद्धि म अविश्व आश्रयजनक हाता है ।

जहाँ तक छायावाद काव्य का प्रश्न है वहाँ छायावाद का केवल इस बात तक सीमित रखना चाहिए कि कविताओं में अनुभूति की प्रवृत्ति प्रताकमयी व्यक्तिपरकभाव छाया थी और जिनका कारण रुद्धिस्त कविता से अतमान हिदीकाव्य मुक्त हुआ, व हा व्यक्तिपरक रचनाए छायावाद का नाम से पुकारा गइ और प्रसादजा हा उसका प्रवर्तन है । छायावाद क सभा सविनष्ट गुण प्रसाद की व्यक्तिपरक एव भाव प्रवृत्त रचनाओं म जावनपयत सस्वित मिलते है ।]

छाया सा = क०, १५ । का० कु०, ८२ । का० १०
[वि०] (हि०) १६५ । १७० । प्र०, ४८ ।
छाया के समान ।

छाया सो = वि० ७१ ।
[वि०] (ब० भा०) छाया व समान ।

छाये = का० २१५ ।
[वि०] (हि०) छाया हुआ आच्छादित ।

छाले = भा०, ११ । का०, ६० । १८० । २६८ ।
[स० ३०] (हि०) फकील ।

छालो = का० कु० १२ ।
[स० ३०] (हि०) कन्कल । छाल । वृत्त त्वक ।

छावत = वि०, ४२ । ६१, ७२ ।
[क्रि०] (ब० भा०) छा जाता है ।

छिछला = ऋ० ४२।
 [वि०] (हि०) पतना, कम गहरा।
 छिटक रहे = प्रे०, १२। ल०, ६।
 [क्रि०] (हि०) बिगड़ रहे, छा रह।
 छिटकाय = ग्रा०, ६०।
 [क्रि०] (हि०) बिछराए।
 छिटका कर = ग्रा० ८।
 [पूर्व० क्रि०] (हि०) बिगड़ कर, छिनरा कर।
 छिटकी = चि०, १६४।
 [क्रि०] (हि०) बिखरा। छिनराई।
 छिडक = वा० कु० १२४। भ० ७०।
 [क्रि०] (हि०) पानी की चूँ चिखर कर।
 छिडकना = वा० कु०, ६३। ल०, २३ ४१।
 [क्रि०] (हि०) इधर उधर फँटना। बिखरना।
 छिटनेगा = का०, १५२।
 [क्रि०] (हि०) छिटकना क्रिया का भविष्यत् रूप।
 छिडना = ग्रा० २६।
 [क्रि०] (हि०) आरंभ होना, शुरू होना।
 छित्तिच = चि० १६३।
 [म० पु०] [ब्र० भा०] * छित्तिज'।
 छिद्र = वा० २२६।
 [म० पु०] (म०) छ' बिल। दाप।
 छियो = चि०, १८८।
 [क्रि०] (ब्र० भा०) डेना हुआ।
 छिन = म० २२। ल०, ६६।
 [म० पु०] (हि०) झग।
 छिना हुआ = ऋ०, ३१।
 [क्रि०] (हि०) बलात् लिया हुआ। छाना हुआ।
 छिन = वा०, १८५, ११२। भ० ३०।
 [वि०] (म०) चि०, ६०।
 कटा हुआ। सडित।
 छिनन पत्र = वा० कु० ५५।
 [म० पु०] (म०) पत्ता से हान। फटा हुआ।
 छिनन पात्र = ल० १७।
 [वि० पु०] (म०) टूटा बतन।

छिननभिन = वा०, १६८।
 [वि० पु०] (म०) कटा हुआ। टूटा फूटा। तिनर बितर।
 छिप के = ग्रा० २६, ४२। वा० कु०, १०।
 [पूर्व० क्रि०] (हि०) सा०, २६, १४६ १५६ १६६ १७८,
 १८६, २८४, २६३। म०, १४। ल०,
 ३८, ४६।
 ग्रांला का आट म हाकर। न दिग्याई
 दवर। नुक कर।
 छिपनर = ल० ७६।
 [पूर्व० क्रि०] (हि०) * छिप के'।
 छिपत ही = चि० ७०।
 [क्रि०] (ब्र० भा०) छिपते ही।
 छिपती = वा०, ६७।
 [वि० आ०] (हि०) छपते ना आट म करती हुई।
 छिपना = वा० कु०, २४। चि०, २८, १६६।
 [क्रि०] (हि०) ऋ० ६४। प्रे०, १ १६ ल०, १८,
 ७४।
 छोट म घाना। ग्रांला की आठ म
 होना।
 छिया = वा०, ८१, ८६ १७७ १८६।
 [क्रि०] (हि०) छिप गया।
 छिपाना = ग्रा० १६, ६०। वा०, ५३। चि०
 [क्रि० म०] (हि०) १५८, १६३ १७७, १८६। ऋ०
 ६। ल० ७०।
 आल स आभन करना। प्रबट न
 करना। गुप्त रखना।
 छिपावत = चि०, ७०।
 [क्रि०] (ब्र० भा०) छिपाता है।
 छिपि = चि० १८६।
 [पूर्व० क्रि०] (ब्र० भा०) छिपकर।
 छिपे = ल० ६१।
 [क्रि०] (हि०) अदृश्य हुए।
 छिपी = वा० कु०, ६ १२४। का०, ६, १६,
 [क्रि०] (हि०) १८०। चि० २६।
 छिप गई। लुक गई।

[छिपोगी कैसे—कामना म शिवाचिया का समबत
 मान। प्रसाद सगत' म पृष्ठ ७६ पर

सकलित । मिथुरी चलनें पकड लेनी हैं, प्रेम वा आँख रँध छियायोगी ? आँखें रहस्य प्रकट कर देंगा । कपान राग स रक्त के समान माल है । यह विनास लीला आँखें प्रकट कर देंगा ।]

छिप्यो = चि० ५३ ।

[चि०] (प्र० भा०) छिप गए ।

छिपरकि = चि०, २३ ।

[पुव० चि०] (प्र० भा०) छिडककर ।

छिल्ल छिल्लनर = भा०, ११ ।

[पुव० चि०] (हि०) रगड खा खा कर ।

छिल्ले = का० कु०, १२ ।

[चि०] (हि०) छिन गए ।

छोट = का०, ३० ।

[स० खी०] (हि०) महीन दूद । जल कण । रगीन बल दूदेदार कपडा ।

छीनकर = स०, ५३ ।

[पुव० चि०] (हि०) भवदस्तो ले कर । काटकर । धर हरण कर ।

छीन = का०, ६६ २२० । चि०, १५ ।

[चि० पु०] (हि०) दुजला पतला, सूक्ष्म । क्षयशील, घटा हुआ । जिसमे छोणता का भाव हो ।

छीनना = भा०, ७६ । चि० १५६ ।

[चि०] (हि०) हरण कर लेना ।

छीना = का० १६२, १७० ।

[चि०] (हि०) हरण कर लिया ।

छीनी = का०, १६६ । प्र० ६६ ।

[चि०] (हि०) अपहरण कर ली गई ।

छीर = चि०, १७६ ।

[स० पु०] (हि०) दूध । द्रव या तरल पदार्थ । जल, पानी । पडा का रस या दूध । खीर ।

छुआ = का० २२७ ।

[चि०] (हि०) स्पश किया ।

छुई मुई = का० १११ ।

[स० खी०] (हि०) एक छोटा पीषा । लजापुर । अननुषा । लाजवती ।

छुट = भा०, १५ । का०, २७८ । २८७ ।
[पुव०] (हि०) अतिरिक्त सिगम ।

छुटभारा = म० २३ ।

[स० पु०] (हि०) मुक्ति रिहाई, निस्तार । किसी काय स मुक्ति ।

छुटि जात = चि०, १३ ।

[चि०] (प्र० भा०) छूट जाता है ।

छुटि है = चि०, ६० ।

[चि०] (प्र० भा०) छूट जाएगा ।

छुटी = म० ८ ।

[चि०] (हि०) छूट गई ।

छुटे = का०, ३२ । का०, १६३ । ल०, ७८ ।

[चि०] (हि०) छूट गए ।

छुटो = का० १६६ । म० १७ ।

[स० खी०] (हि०) छुटने या छाडे जाने की क्रिया । छुटकारा कार्योंपरांत मिलनेवाला अवकाश । पुनर्गत, नियमित रूप स काय बंद रहने का काम ।

छुट्यो = चि० ६ ५८ ।

[चि०] (प्र० भा०) छुट गए ।

छुडायन = चि०, ६५, १५८ ।

[चि०] (प्र० भा०) छुडाने क लिये ।

छुडाये = भा०, ३७ ।

[चि० स०] (हि०) छुडा दिए ।

छू = भा० ७२ । म०, २१ । प्र० ३ ११ ।

[पुव० चि०] (हि०) फूक कर । स्पश करक ।

छुओ मत = का० २७१ ।

[चि०] (हि०) स्पश मत करो ।

छुकर = भा० २६ ७१ । ल०, ५६ ।

[पु० चि०] (हि०) दूना क्रिया वा पुवकालिक रूप । स्पश करके ।

छुछा = भा०, ३२ ।

[चि० पु०] (हि०) रिक्त खाली ।

छूट = का० ७० १७७ २०० २२६, २५६,

[स० खी०] (हि०) छुटने की क्रिया या भाव । असात्वधानी के कारण कार्य के किसी धम पर ध्यान न जाने की अवस्था । वह अनुमति जो किसी को निज या कोई

काय करने अथवा न करने के लिये मिल ।

छूटस = चि०, ३ ।

[क्रि०] (प्र० भा०) छूट जाता है ।

छूटता = आ०, ३७ ।

[क्रि०] (हि०) मुक्त हो जाता ।

छूटती = वा०, ६२ ।

[क्रि०] (हि०) मुक्त होती या छूटती है ।

छूते = वा०, १२६ ।

[क्रि०] (हि०) स्पश करते ।

छूती है = प्रे० १ ।

[क्रि०] (हि०) आनिगन करती है । स्पश करती है ।

छूने में = का० ६८ २५७ ।

[म० पु०] (हि०) स्पश करने में ।

छेड़ना = म० २१ ।

[क्रि० स०] (हि०) तग करना, विरावा का चिनाना, मजाक करना, चुन्क लेना । काइ काम या बात आरभ करना ।

छेड़ो = वा०, १६३ ।

[क्रि०] (हि०) परागान करो । तग करा ।

छू लेती = वा०, २६३ ।

[क्रि०] (हि०) स्पश कर लती ।

छूरा = ल०, ७३ ।

[स० पु०] (हि०) बडी छुरा, उस्तरा ।

छेड़छाड़ = का०, कु०, १०० ।

[म० पु०] (हि०) अनायाम छेड़ना ।

छेस = चि०, १७३ ।

[स० पु०] (हि०) कुशल ।

छोटा = म०, ५ ।

[म० पु०] (हि०) जिनम छाटापन हा । नाटे कदवाला ।

छोटा सा = वा०, २१६, २८४ । म०, ३ ४ ।

[वि० पु०] (हि०) छाटन या ननुता क भाव का मूचक ।

छोटी छोटी = वा०, २६० । ल०, १६ ।

[वि०] (हि०) नहा न हीं ।

छोटी सी = आ०, ७२ । का०, १४८, १७५ । चि०

[वि० मी०] (हि०) ७१ । म०, ५५ । ल०, ४० । म० ४ ।

माधारगना या लघुता का मूचक ।

छोटे छोटे = प्रे० ११, २४ ।

[वि०] (हि०) नहें नह, तुच्छ, हीन ।

छोटे बड़े = का० कु०, ६ ।

[वि० पु०] (हि०) साधारण और बड़े ।

छोड़ = आ० ३१ । का० १४ २८ । वा०

[वि० पु०] (हि०) कु०, ६३, ८३ । प्रे० ६ १२, १५ ।

ल० १० १० ४५ ६६ ७३ ।

छाडन का भाव । विलग होना ।

छोड़ = का० १५४, १५८ २४८ ।

[प्र०] (हि०) अतिरिक्त । सिवाय ।

छोड़ि = चि०, १३ १५६, १७८ ।

[क्रि०] (प्र० भा०) = छाडकर । त्याग कर ।

छोड़ी = वा० २४१ । म० १३ ।

[क्रि०] (हि०) त्याग दिया ।

छोड़ें = वा०, २३८ ।

[क्रि०] (हि०) छाड डू ।

छोड़े = का०, २१० ।

[क्रि०] (हि०) छाड दिए ।

छोड़ो = वा०, १३३ २२८ । प्र० २१ ।

[क्रि०] (हि०) मुक्त करा । छाड दा ।

छोर = आ०, ८ । वा० कु०, ८, १२ । चि०,

[स० पु०] (हि०) १६३ म० ८४ ।

किनारा कार ।

छोह = चि०, १७१ ।

[स० मी०] (हि०) माह, अनुराग । ममता । प्रम ।

ज

जग = वा १।७। चि० ५४ ।

[म० मी०] (फा०) मुढ । मुना जा लाहे के पात्रा म लग जाता है ।

जगल = म० ३२ ।

[स० पु०] (हि०) वह स्थान जहाँ बहुत दूर तक अरुन थाप उगनवाल पड हा, वन बानन ।

जजीरों = आ २१ ।

[स० मी०] (फा०) कटिया का लडा । थडा । सिक्की । क्वाट की कुडा ।

जंतु = वा, ६ । वा०, १४२, १८५ । चि०,

[स० पु०] (स०) जम लेनवाला जाव, प्राणा । पशु, जानवर ।

जय द्वीप = चि०, ६६।

[सं० पु०] (मं०) पुराणापुराण रात द्वीप म म एक द्वीप जिनम भारतवर्ष है।

जऊ = चि०, १८४।

[प्र०] (प्र० भा०) जा भी, यदि, धरम।

जकडना = का०, १३ १४५। ल०, १०, ७३।

[त्रि० म०] (हि०) २१३।

आलिगन मे यावद्ध करना। प्रायना भुजपाय म कमना।

जग = श्री० १६ २४। का०, १५७ २३५

[सं० पु०] (म०) २४२ २८९ २९० चि० ३२ ४८ १०६। प्र० २५। ल० २६, ३५ ४५।

ससार, विश्व चर, चलनेनाल।

[जग की सजल कालिमा रजनी मे—'जागरण २२ अगस्त, १६३२ म सवप्रथम प्रकाशित और लहर म पृष्ठ २६ पर सजलित यह पत्तिया का गत। समार की सजल वाली रात म तुम अपना मुखचंद्र दिखा दो और हृदय की अधरा भोला मे प्रकाश का भील दने तुम आशा। प्राणी की बाकुल पुकार पर तुम एक मीड ठहराओ और प्रेमवशु का स्वरलहर मे जावन का सगात सुना जाभा। आलिगन की स्नहलताआ स एक भुरमुट बन जाने दो ताकि यह जला जगत् वृदावन की भाति सरस बन जाए। यह गात प्रसाद के मगीतज्ञान का भा आख्याता है।]

जगजनक = प्रे० २३।

[सं० पु०] (सं०) ससार का पिता। प्रक सचालक।

जगत = श्री०, ६१। व०, ३२। का० कु०

[सं० पु०] (म०) ६५। का०, ३४, ३७, ४० ४५ ५३ ६२, ६३ ११८। १२२ २४६, २४२ २८४ २६०। चि० १०२। ऋ ६३। प्रे० १४ १४ १७ २३ ल० १२, १३, २६। २० जग'।

जगतगति = म०, २।

[सं० स्त्री०] (सं०) गमार का गणा, गमार का गति, चाल।

जगतनीरवता = का० कु०, ७४।

[सं० स्त्री०] (सं०) गमार की शांति। मान वातावरण।

जगतमोहि = चि०, ७७।

[सं० पु०] (हि०) गमार म।

जग भगल = का० २२५ २८१।

[सं० पु०] (सं०) ससार का शुभ। ससार म शुभ वाय।

जगत रगशाला = का० कु०, १२५।

[सं० पु०] (म०) जगतरूपा नाटयष्ट समारक्षणी नाटक चलन का स्थान।

जगत सुप्त = का० कु०, ३१।

[सं० पु०] (म०) सामारिक मुग्ग सामारिक विलास।

जगता = का०, २३५।

[क्रि० प्र०] (हि०) जाग उठना, प्रबुद्ध होना सचत होना क्रियाशाल होना।

जगती = श्री० ४३ ६३ ७४। का० कु०,

[सं० स्त्री०] (सं०) ६६। का० ३० ३६ ६५ १७३ १०४, ११४ १२०, १२६ १२८ १२६ १५७ १७५ १७६ १७६, २६२ २८० २८१। ल० ३० ३२ ३८।

पृथ्वा, वसुधा तल धरातल। जगना क्रिया का वतमानकालिक रूप।

[जगती की मंगलमयी उपा बन—मूलगध कुटा विहार, सारनाथ के समाराह मे गाया गया मंगलावरण गमा' मे वप २, तरग २ सं ५, १४ फरवरी १६३२ म सवप्रथम प्रकाशित और लहर' मे पृष्ठ ३२-३३ मे सजलित। ऋषि पत्तन, सारनाथ स बुद्ध ने अपना धर्म प्रचार आरभ किया और उनकी वाणी म समार का भयसकुल रजनी बीत गई और विश्व का व्याकुलता समाप्त हो गई। सवत्र शांति छा गई, निष्ठुरता समाप्त हो गई। उ होन दया और कृणा का सृष्टि बसाई था। गीतम तप का तरण प्रतिमा य और

प्रना वा सोमा भा उनम मोमिन था । व
इम ध्ययित विश्व का मजीव चेतना
थे । जब उट्टान इम भूमि पर धमचक्र
प्रवतन किया तो उन लान का पुरय
स्मृति सजोए बरा धय धारण किा
हूए है । मघ री यह मगन ज मभूमि
युग युग का नव मानवता घोर वमुग
का विभुना वा मदग दता झाइ है और
उस भामप्रण भा । झाज वह मदश
हम भूल गए ह जिमस धर्म प्रवर्तित
हूया था । द० 'लहर' ।

[स० पु०] (स०) द० 'जगद्बधु' ।

जगभर = प्र०, १७ ।

[सं० पु०] (स०) समार का भरण करनेवाला विश्व का
पापक । विष्णु ।

जगमगात = चि० ६१ ।

[क्रि०] (हि०) प्रजाजित हाता है, दमकना है ।

जगह = का० पु०, ७१, म० ४ ।

[स० स्त्री०] (श्र०) स्थान, स्थल । मौका, अवसर । पद,
आह्ला ।

जगाना = ल०, २०, ३६ ।

[क्रि०] (हि०) मचन करना । वाय करन के वाय
शक्ति प्रदान करना ।

जगि = चि० ४७ ।

[सू० क्रि०] (हि०) जगवर, मान व वाद उठकर, मचेत
हाकर ।

जगो = का०, २ । ३५, १२२ ।

[क्रि०] (हि०) जग गई, मचन हा गद ।

जगे = का०, २३० । चि० ४६ ।

[क्रि०] (हि०) मचेत हूए, साकर उठ चतय हूए ।

जटा = का० पु०, २७, १०५ ।

[म० स्त्री०] (स०) लट व रूप में गुं गुं मिर के बडे बडे
वाल । वृक्षा का जड के पतले पतले
मुंन । जूट, पटमन ।

जटा सी = आ०, १४ ।

[वि०] (हि०) जटा के समान । उनझी हुई, अस्पष्ट,
दुटह ।

जटित = चि०, २४ ७५ ।

[वि०] (स०) जडा हुआ ।

जटिल = आ० १४ ।

[वि०] (स०) ब ठन दुट्ट । असाधारण, उलभनपूग ।

जटिलताआर्मा = का०, ५० ।

[म० स्त्री०] (हि०) कठिनाइया, उलभनें, दुट्टताग ।

जड = का० पु०, ५३ । का०, ३, ५६, १४५,

[म० स्त्री०] (स०) १५७, १६३, १६७, २६४ । ल०,
४६ ।

अचतन, चट्टाहीन । मूर्त । वृक्ष की
जमान व नीचवाला भाग, सार । नीच,
बुनियाद ।

जगतीतल = का० पु०, २८ ।

[स० पु०] (स०) पृथ्वा का घरातन ।

जगते = का०, १७ १००, १७८ ०७० ।

[वि० पु०] (हि०) मवायन, जगना क्रिया का एक रूप
व्यक्ति को पुकारने व लिय उद्वायन ।

जगत्पिता = व०, २६ ।

[म० पु०] (हि०) समार व पिता विश्व व रक्षयिता या
उत्पन्न करनेवाले । भगवान् ईश्वर ।

जगद्वद = आ०, ६२ ।

[स० पु०] (स०) सामारिक दुविधा, अनिश्चिन, अत
सिद्धात ।

जगदूषधु = व० २६ ।

[म० पु०] (स०) विश्व का भाद । समार का मरुक्त
या सहायक ईश्वर ।

जगनेश = क० ३० ।

[म० पु०] (स०) समार का स्वामी—विष्णु शकर
भगवान् ।

जगना = आ०, ११ । का०, ३७ । क०, २६ ।

[क्रि०] (हि०) वाय करन वाय्य चेतना प्राप्त करना ।
तयार होना, कटिबद्ध होना ।

जगन्नाथ = का० पु० ६१ ।

[म० पु] (स०) समार का स्वामी भगवान् ।

जगन्निचयता = का २० ।

[सं० पु०] (स०) समार का नियंत्रण करनेवाला, विश्व
का संचालक ।

जगवधु = चि , १५४ ।

जड़ चेतनता = वा०, ७७ ।

[सं स्त्री०] (सं०) निष्क्रिय चेतनता, शांति, अगति वा सूचक ।

जड़ता = धा०, २५ । वा०, ४६, १५१, १६४, १७१, १८३, २४१ ।

[सं स्त्री०] (सं०) जड़ का भाव, मूर्खता । अचेतनता । साहित्य मे एक सवारी भाव । स्वयंता की छाप । अगति ।

जड़ाप = चि० ४६ ।

[महा पु०] (हि०) जड़ने की क्रिया का भाव । जडाऊ का काम ।

जतन ते = चि०, १ ।

[सं पु०] (ब्र० भा०) उपाय करने से । प्रयत्नपूर्वक । यत्न से ।

जतन सों = चि० ७० ।

[सं पु०] (ब्र० भा०) जतन म' ।

जन = चि०, २२ ६६ १०६ ।

[सं पु०] (सं०) लोक । लोग । प्रजा । अनुयायी । अनुचर । समूह । सात ऊपरीको मे पाचवीं लोक ।

जनक = प्रे०, ८ ।

[सं पु०] (सं०) ज मदाता । पिता । सीता जा क पिता ।

[जनक—विदेह राजा । मिथिला के सस्थापक । पटरानी सुमति द्वारा सतान न उत्पन्न होने पर पुत्रकामेष्टियज्ञ द्वारा दो पुत्र तथा सीता की प्राप्ति । इ होने सीता को पुत्री रूप में पाला था और स्वयंवर कर राम से उह -याहा । राजपि के रूप में प्रतिष्ठित ।]

जनकलली = वा० पु०, ६६ ।

[सं स्त्री०] (हि०) सीता । जानकी ।

जनरमुखा = वा० पु०, ६६ ६७ ।

[सं स्त्री०] (सं०) जानरा ।

जनता = वा० १८१ १८५, १९८ ।

[सं स्त्री०] (म) जन का भाव । जनसमूह । किमा दश या स्थान के वृत्त में निवासी ।

जननी = वा० पु०, ६० । वा०, २८ १४३,

[सं स्त्री०] (सं०) २४३, २६४ । चि०, १५४ । प्रे०, १४ । म०, ६ ।

माँ, माता । पदा करनेवाला ।

जननी भूमि = म० १५ ।

[सं स्त्री०] (सं०) जन्मभूमि । पदा होने का स्थान । मातृ भूमि ।

जनपद = व० ६ । प्रे० १४ ।

[सं पु०] (सं०) बसा हुआ स्थान, वस्ती आवादी । नगर ।

जनपदकल्याणी = का० २३६ ।

[सं स्त्री०] (सं०) भवना भगल करनेवाली ।

जनपद परस तिरस्कृत = धा० ७८ ।

[सं पु०] (हि०) जनपद के निवासियों द्वारा घृणित उनके द्वारा उपक्षणीय । जनपद से निर्वासित ।

जनप्राण = वा० २०० ।

[सं पु०] (सं०) मनुष्यों के प्राण, जनताविशेष के मानसिक भाव ।

जनमन = चि०, १६१ ।

[सं पु०] (सं०) जनता का मन । लोक की आन्तरिक भावना ।

जनरजनकरी = धा०, ५८ ।

[सि० स्त्री०] (हि०) जना का प्रसन्न करनेवाला ।

जनरथ = प्रे० ७ ।

[सं पु०] (सं०) जनता की याताजा । कोलाहल ।

जनसंहार = का० २०१ ।

[सं पु०] (सं०) नरहत्या जनसमूह का हत्या करना ।

जनस्रोत = प्रे०, ४ ७ ।

[सं पु०] (सं०) उमड़ी भाड़ जन का उद्गम स्थल ।

जनस्रोत सा = प्रे०, ७ ।

[सि०] (हि०) जन के प्राणि उद्गम स्थल के समान ।

जनहीन = चि०, ५१ ।

[सि०] (हि०) पुरात जहा नई न रहता हो ।

जनाकीर्ण = वा० १६० ।

[सि० पु०] (सं०) मनुष्य से भरा हुआ । अधिमान आवादी वाला स्थल ।

जनात है = चि० २६ ।

[सि०] (ब्र० भा०) नात हाता है, मातृम पड़ता है ।

जनि = चि०, १७५, १८४।
[स० पु०] (म) उत्पत्ति, जन्म। नारी। माता। पत्नी।
(घ०) नही, न, मत।

जनित = का० २६७।
[वि०] (स०) जनमा हुआ, उत्पन्न। किसी के कारण
उद्भूत।

जन्तु = चि०, ४०, ४७।
[क्रि० वि०] (हिं०) मानो, उत्प्रेक्षावाचक।

जन्म = का०, कु०, ६४ का० ७३, ८६।
[स० पु०] (सं०) चि० ६६। म० ६८।
गम से निःकलकर जीवन धारण
करना, उत्पत्ति, पदावधि, अस्तित्व म
आना। आविभाव। जीवन भर।
जिदगी, आयु।

जन्म जन्म = आ०, ७४।
[अ०] (म०) अनेक ज मा म, प्रत्येक ज म मे। बार
बार जन्म लन या उत्पन्न होने का भाव।

जन्मदाता = का०, ११।
[स० पु०] (सं०) जनक, पिता। कारण। स्वल्प।

जन्मभू = प्रे, ७।
[स० स्त्री०] (सं०) जन्मभूमि। मातृभूमि। पदा होने
का स्थान।

जन्मभूमि = का०, ६। का० कु०, ६०। प्रे०, ७
[सं० स्त्री०] (सं०) १४। ल०, ३३।
दे० 'जन्मभू'।

जन्म सगिति = का०, ६२।
[सं० स्त्री०] (सं०) जावनसहचरी। आज्ञावन साथ दन
वाली। सहधर्मिणी पत्नी।

जन्मातर = का० ६८। का० कु०, ७३।
[सं० पु०] (सं०) अनेक ज मा मे। दूसरे ज मा मे।

जन्मातरस्मृति = का० कु०, ७३।
[सं० स्त्री०] (सं०) पूर्व ज मा की घटनाया का याद
या स्मृति।

जपत = चि०, १७६।
[क्रि०] किसी व्यक्ति या किसी नाम धरवा
(घ० भा०) किसी वाक्य का निरंतर स्मरण
करना हुआ।

जपना = का० १५४। का०, ६४।

[क्रि० स०] (हिं०) जप करना, कुछ देर तक किसी का
निरंतर स्मरण करना। अनुचित रीति
से किसी का कुछ ल लेना।

जय = आ०, ३०, ३१, ३७। का०, ८, १०,
[क्रि० वि०] (हिं०) ११, १३, १८, २८, २८। का०, ३८,
४५, ४६, ५१, ६३, ७, ८६, ६८,
१४१, १४३, १४४ १५०, १५१,
१५२, १५७, १५८, १६१, १६२
१६५, १७८, १८६, २१६, २२०,
२२३, २३०, २४५, २७६। प्रे०, ६,
१५, १७ २४। म०, ३, ११, २०,
२४। ल०, ५७, २७, ३७।

जिस समय। अपेक्षणीय काल का
सूचक।

[जय नील निशा अचल मे—६० 'ज्वाला'
श्रीर 'श्राय'।]

[जय प्रीति नहीं मन मे कुछ भी—'प्रसाद मगीन
म पृष्ठ चार पर सकलित मुरमा का
'राज्यथी' म विकटघाप के समुल्ल
उपालम गान। जब तुम्हारे मन म रच
को भी प्रेम नहीं ता बात क्या बना
रहे हो। जब विश्राम की पुरानी रीति
ही जाती रही तो फिर नाटक क्या
हस मुसका रह हा। तुम्हारा मुख
देखकर जा मुख हुआ था उगने लिय
समा दुख मात ले लिया था। हमने
तो तुम्हें सबस दान कर लिया था
श्रीर अथ तुम दशन दन का भी तरना
रह हा।]

जयहिं = चि०, ६५ ७२ १५६।

[क्रि० वि०] (ब्र० भा०) जिस समय।

जये = चि०, ५४, १२६।

[क्रि० वि०] (ब्र० भा०) जब। जिस समय।

जभी = का० कु०, ३१ ६८, १०५।

[क्रि० वि०] (हिं०) जब हा। जिस समय ही।

जयनाद = का०, ७।

[म० पु०] (सं०) दे० 'जयघाप'।

जयमाला = आ० ६२। ल०, ४७।

[म० स्त्री०] (मं०) विजय के उपलक्ष्य म दी गई माता या

जम जाए = का०, १७५।
[क्रि०] (हि०) जड जमा ल। उग। प्रीत हो जाय।

जमती = का०, १५।
[क्रि०] (हि०) निश्चल होती है। सपन्न हाती है।
पूण होती है।

जम रहे = का० २६०।
[क्रि०] (हि०) प्रीत हो रहे। समान प्राप्त कर रहे।
स्थिर हा रहे।

जमायो = वि० १७७।
[क्रि०] (ब्र०भा०) सपन्न किया। स्थिर किया। जड
जमाया।

जमींदारी = प्र०, २१।
[स० पु०] (फा०) जमींदार की जमीन। जमींदार का पद।

जय = क० ३१। वि० ७४ ६१। म० ७।
[सं० पु०] (स०) जात शत्रुओं की हार या पराभव।
विष्णु के एक पारिपद का नाम।

जयगान = का० ५७।
[स० पु०] (मं०) जय के हृष म गाए गए गान या गाए
जानेवाले विजय गीत।

जयघोष = का० १०२। ल० १३।
[पु० पु०] (स०) जय जयकार का रव। विजय होन क
पश्चात् विजय की सूचना देनेवाली
ध्वनि।

[जय जयति कर्णसिंधु—जयथा' का प्राथना
गात। वह चिंता म कूनने क पटल
जगत्पति स प्राथना करता है और
करणासिंधु दानवधु ताकललाम
भुवन अमिराम पतित पावन प्रणत
जन सुखधाम, धमस्वरूप के रूप म
उन्हें स्मरण कर जय जय करती है।
प्रसाद सनात पृष्ठ ५ प० मकलित।]

जयति = का० पु० १। वि०, ६१।
[क्रि०] (स०) जय हो। जयघोष का बोधन शब्द।
जयति जय = वि० ६१ १५४।
[क्रि०] (सं०) जय जयकार करने का प्राचान ग्य।
जय हो जय।

जयतु = वि० ६५।
[क्रि०] (सं०) विजयी होने क लिय आशीर्वाचनमक
शब्द।

स्वयन् के समय घर को पहनाई जाने
वाली माता।

जयलक्ष्मी स्त्री = का०, २३।
[वि० स्त्री०] (हि०) विजयश्री का तरह प्रकृत जयस्था
लक्ष्मी क सदृश हर्षा पुत्र। उ०—उपा
मुनहले तार बरमता जय लक्ष्मी सो
उत्पिन हृष्ट।

[जयशर प्रसाद'—'प्रमा'।]

[जय हो उसकी—'नमजय का नागयन का
गात। प्रमा' सगीत म पृष्ठ ७३ पर
मकलित। प्रमान' के आधार की जय
हो जिसका भारत क कवि न निम्ना
कित या पाठ्या मे 'यत् किया है—
पूणामुभव कराता है जो
'अहमिति' स निज सत्ता का,
तू में ही हूँ' इस चतन का
प्रथम मय गुजार किया।]

जरठ = ल० ७०।
[वि० पु०] (मं०) कठार। बुढ़ा। जर्ण। पुराना।

जरतारी ओढनी = म० १३।
[म० स्त्री०] (हि०) मान धांग के तारो के बल बनबूटो
द्वारा बनी चापर या कामदार बुढ़ा।
उ०—सितक गई मिर स जरतारी
ओढना।

जरा = क० ६। का० ५। प्र० ६। म०,
[म० स्त्री०] (मं०) ४ १३।
बुढ़ापा। बुढ़ावस्था।

जरादूनी = वि०, १६।
[क्रि०] (ब्र०भा०) जलाना सतत करना। जलन उत्पन्न
करना।

जराभरण = का १६६।
[म० पु०] (सं०) बुढ़ापा और मृयु।

जराव = वि० १८२।
[क्रि०] (ब्र०भा०) जलाघो सतत करा।
[वि०] जटाळ।

जरापत = वि० १६।
[क्रि०] (ब्र०भा०) जला रहा है।

जरि = वि० १६ १५६, १८२।
[प्रव०नि] (ब्र०भा०) जलकर बुझा हासर।

जरियो = चि० १५।

[क्रि०] (ब्र०भा०) जलना, विरह जलन या सतप्त हाना।

जरजर = का०, १७ १६६।

[वि० पुं०] (म) पुराना निबल, तुड्डा क्षीण, विह्वलिता।

जरजरता = ल०, ३३।

[म० स्त्री०] (स०) पुरानापत्र, जीमना, विह्वलितापत्र।

जल = श्रा०, १०, २७, ३। का०, ८, १४।

[स० पुं०] (म०) का०, ३, ११, १५, २२, ५८ ११८, १६० १६२, १७६, १८०, २०७, २१६ २१६, २४४ २६८ २६०, २६२। चि० २ अ० ५५, ५८। प्रे०, ४, १५ २४। म, ४। ल० १३, ३० ६३।

पाना। जीवन।

[क्रि०] (हि०) जलना दिया या वातु।

जलकण = का० कु० ६६। चि० ११४।

[स० पुं०] (म०) भग्ना मे भर हुए जल क मूलमतम कण।

जलकणभूयित = चि०, १४४।

[वि०] (स०) जलकणा स मुक्ताभिन।

जलकन = का० २४२। ल०, २७।

[म पुं०] (हि०) 'जलकण'।

जलकर = का० कु०, ७८। का० १६ २०७।

[पुं० क्रि०] (हि०) कष्ट पाकर, मरण तु य कष्ट पाकर।

जलनल = का०, २५४।

[पुं० क्रि०] (हि०) कष्ट पाकर, मरण हाकर।

जलज = का०, १७५ १७६।

[म० पुं०] (स०) जो जल म उपत्र हो। कमल। शम्भ। मछला। जलजनु। माता।

जलजात = चि०, १४२ १८१। का० २१७।

[स० पुं०] (म०) कमल। जल म उत्पन्न होनेवाले पदार्थ।

जलजात पात = चि०, १८१।

[म० पुं०] (हि०) कमल के पत्ते।

जलथल = श्रा० ४९।

[स० पुं०] (हि०) पृथ्वी एक जल।

जलान = श्रा० ५१, ५५। का० कु०, २६।

[वि०] (स०) गा०, १६ ८७, १५३, २२१, २६१।

चि०, ३३, १६६। अ०, ४०। ल०, ५६।

जल देनवाता।

[म० पुं०] (म०) बादल मेघ। वज्रज, जो पितरों वा जल देते हैं।

[जलन आह्वान—'सम्बन्धी' वष १३ अक्ष ६, जून १६१२ म मवप्रथम प्रकाशित। काननकुमुम व पृष्ठ २६-२७ पर मकलिन। इस कविता का ऐतिहासिक महत्व इसलिय है कि प्रमादजा की केवल यही एक कविता आचार्य प० महावीरप्रसाद द्विवेदीके मपादनकाव्य म सरस्वत' म प्रकाशित हुई। इतिवृत्त-त्मक लय से सारे दुख दूर करने के लिये कवि ने बादल को आमंत्रित किया है।]

जलदगभीर कठ = प्रे०, २३।

[वि०] (म०) बादला की माति गभीर घाप करने वाला कठ।

जलन जाल = का० कु०, १०१।

[म० पुं०] (म०) मध माता। वाण्यो का समूह।

(हि०) एक म धुने या गुन हुए जल स डारा का समूह। किसी को फसास क लिए हानिवाता पदार्थ समूह। एक प्रकार की साप।

जलद जाल सा = का० कु०, १२६। म०, ६।

[वि०] (म०) घनघोर बादल के ममान भयावह। अस्पष्ट।

जलद पटल = चि० ४२।

[वि० पुं०] (स०) बादल रूपी पर्दा।

जलद रवर मद्र = ल०, १३।

[स० पुं०] (स०) बादला का गभीर घाप। गभार गजन, बादल के समान गभार ध्वनि।

जलदागम = का० १२७।

[स० पुं०] (स०) क्या ऋतु वा आगमन या आरम्भ, आकाश म वायुता का घिरना।

जलधर = का० कु०, ६६। का०, १३, १६४,

[स० पुं०] (म०) १७५, २२५, २५८।

बादल। मयुद्र।

[जलधर की माला—वक् 'रसाल' का गीत जिसे 'एक घूंट' में प्रमलता ने गाया था। प्रसाद संगीत' में पृष्ठ १०४ पर सन्निहित। जीवन घाटी पर मेघ माला घुमड़ रही है। आशा लता धर धर बोंप रही है और हृहर कर कामना कुज गिर रहे है और यह करणा माला अचल में उपल भर रही है। जीवन विरणा का आलोक के मन का अभि लापा द्वेष रही है। निन्दुर मृष्टु सामने खड़ी है। धारतम अक्षर है, अदन मचा हुआ है असकनता ही असफलता है और क्षणिक मुखा ने झुलसाने के लिये शाक मन्ज ज्वाला प्रज्वलित है।

जलधर सम = का०, २३६।

[वि०] (सं०) वादल के समान।

जलधारा = का० कु० ६८। चि०, १५०।

[सं० स्त्री०] (सं०) जल की धारा। जलप्रवाह।

जलधि = श्री०, २२। का० कु०, ७५। का० ८, [सं० पुं०] (सं०) १६, २३, ५४ ५६ ८२ १६०।

चि०, ६५। अ०, १ १५, ४१ ५६।

समुद्र। सागर।

जलधि वेष्टा = ल०, ५६।

[सं० पुं०] (सं०) समुद्र का किनारा। समुद्र तट।

जलन = श्री० ६ ६०। का० कु०, २६। का०

[सं० स्त्री०] (हिं०) १५३, १६३। अ०, ७०, ८६। ल०, ५१।

आतरिष वेत्ना। बट। जलने या सपने का भाव।

जलना = श्री०, १०, ३०, ४२, ४४ ६० ६१

[क्रि०] (हिं०) ७६। का० १३ ३१ १७६, १७७ १७६, १८१, १८२, १८० २१२,

२४७, २६८। अ० ७० ८७। प्र० ३। ल० ४६, ५०।

बट सहना। वियोगजय ताप से पीड़ित होना। बलना, दम्प होना। आयुलना।

जल निधि = श्री०, १८, ७३, ७७। का०, १३,

[सं० पुं०] (सं०) १६, ४५, ४८, ७३, १५६, १६३,

१६०, १६५, २५०, २८८।

समुद्र। सागर। जनधि।

जल परिवर्तन = म०, १७।

[सं० पुं०] (सं०) आबहवा का तबदाली।

जल भूमि = का० कु०, ५१।

[सं० पुं०] (म०) जल और स्थल।

जल मटल = ल०, ५८।

[सं० पुं०] (सं०) जल का घेरा।

जलमह = चि०, ५८।

[सं० पुं०] (श्र० भा०) जल में।

जलमयी = अ० ५०।

[वि०] (सं०) जलरूप। जन में निमग्न।

जलमाया = का० ५।

[सं० स्त्री०] (सं०) जलरूपी माया। जल जाल।

जल राशि = म०, ११।

[सं० स्त्री०] (सं०) जल समूह। अत्यधिक जल।

जल लहरी = चि०, १४५। अ०, ५५।

[सं० स्त्री०] (हिं०) जल में उठनेवाला छोटी छोटी लहरें।

जलवायु = म०, २, २१।

[सं० स्त्री०] (म०) आबहवा किंसा स्थान की वर्षा, गर्मी एवं वायु का माध्यमिक मात।

जलवास = का० कु०, ४२।

[सं० पुं०] (म०) जल स्था गृह। जल निवास।

जलविदु = का० कु० १००। अ० ४०।

[सं० पुं०] (सं०) जल की बूदें।

जलविदु पूरित = का० कु०, २६।

[वि०] (सं०) जल बरसा स भरा हुआ।

जल विहार = का० कु० ४२।

[सं० पुं०] (सं०) जल प्रोडा के द्वारा प्राप्त धानद। जल पर निवास।

[जलविहारिणी—सब प्रथम इट्टु, कला २, विरणा ५ अमटन १६६७ में प्रकाशित और वातन कुमुम' में पृष्ठ ४१-४३ तक सन्निहित। चंद्रिना चर्चित है कल्पिना सं मुरनि का पटा अंदरा रही है। जहाँ तक दृष्टि जाती है सवत्र मुखा का अजोड सरोवर दासता है। चद्रमा

रम्य बानन की छटा को उज्ज्वल शान
मुलपुत्र सवत्र से भ्रमकार हटा कर
बना रहा है। प्रकृति का मनमुग्धकारी
गान सवत्र गूज रहा है। शल भी
हरिण के समान शिर उठाकर खड़े
हैं। खचल तरंगों में एक मनमाहिनी
छोटी सी नौका चली आ रही है।
विद्यापार बालाएँ जलविहार के लिये
उसपर धाई हुई हैं। काव्यत्वमय
वर्णन उस दृश्य का कवि करता है
श्रीरश्मि बालायाँ श्रीरश्मि चंद्रमा के सौंदर्य
का वर्णन तुलनात्मक रूप में उपस्थित
करते हुए उनका रसात्मक रूप सूचित
करता है। श्रीरश्मि चंद्रमा का घटा
घिर रहा है। काव्य में मुदर विषय
विधान है।]

जलसंधात = का०, २०।

[सं० पु०] (सं०) जल-समुह। जलराशि। जन का
आघात

जलस्रोत सी = म०, ८।

[वि०] (हि०) जल प्रवाह के समान, चलनवाला
चचल।

जलाकर = का०, १७६।

[क्रि०] (हि०) सतत करक।

जलाना = आ० १७, ५१, ६१। वा०, १७६,

[क्रि०] (हि०) १७६, २६२। प्र० १५। ल०, ३८,
६४।

भाग में भस्म करना। सतत करना,
कष्ट देना। झुनमाना।

जले = आ०, ६१।

[क्रि०] (हि०) जला करे। 'जनना' का भूतशक्ति
बहुवचन रूप। जलत रह।

जल्दी = क०, ६, १०, ११। म० १४।

[क्रि० वि०] (हि०) शीघ्र युक्त।

जल्पना = वि० ७२।

[वि०] (सं०) -पत्र चक्र-वक्र करना। डींग मारना।

जवा = ल० ४०।

[सं० स्त्री०] (हि०) शब्दहीन। जवा। जी।

जगहिर = वि०, ६१।

[सं० पुं०] (म०) रत्न। मणि।

जहाँ = क०, १४, १७। का०, ११, १२, ८८,

[क्रि० वि०] (हि०) १३०, १३१, १५५, २०७, २१४,
२१७, २२८, २३० २८०, २८८।

म०, ६०। प्र० ४ ५, १५, २२,

४६। ल०, १४।

जिम स्थान पर, जिस जगह।

जहाँ जहाँ = प्र०, ६।

[क्रि० वि०] (हि०) हर जगह। जिम जिम स्थान पर।

जहान = वि० ६६, १३६।

[म० पुं०] (फा०) सगर, जगह।

जाँच = वा० ६६।

[म० स्त्री०] (हि०) जांचने का क्रिया या भाव।

जायें = वा०, २४४।

[क्रि०] (हि०) जाएँ, यदि जायें।

जायें बात = वा०, १६४।

[क्रि०] (हि०) व्यतीत हो जाय।

[जाओ सखी—वामना और उक्का सखिया का
सवाद गीत। प्रसाद सगात में पृष्ठ ८०
पर सफलित। वामना कहती है कि
सखी जाओ, हमारा जी मत जलाओ,
हम मत सताओ।

एक सखी—तुम व्यर्थ बकती रहों।

वामना—मन को क्या कहने की नहीं तुम
नहीं जान सकती।

दूमरी सखी—बात मत बनाओ।

एक सखी—तुम नहीं समझाओ सजनी।

दूमरी सखी—मनार की प्रेम राशि न नेत्र में
सुधा छवि भर कर सब कुछ बता दिया
है। अब क्या मगझाओ।]

जाइ = वि०, १५६, १७२।

[पू० क्रि०] (म० भा०) जाकर।

जाऊँगा = आ०, ४०, ४३। वा०, ३६, ५३,

[क्रि०] (हि०) २३०। प्र०, ५, २१। म० १७,
२। ल०, ३९।

जाना क्रिया का प्रथम पुरुष में भविष्यत्
कालिक रूप।

जागर = घा०, ३४। ग०, ११। बा०, १५,
[पू० क्रि०] (हि०) १८०, २८३। प्रे०, १२, २१। म०,
१३। न० ३६।
पहुँचकर।

जागरी = चि०, २५।

[सव०] (प्र० भा०) जगती।

जागे = चि०, १५६, १५३।

[मर्व०] (प्र० भा०) जगव।

[पूव० क्रि०] (हि०) जागर।

जागो = चि० ५२ १०१ १४३।

[मर्व० पु०] (प्र० भा०) जगती।

जाग = का० कु०, ८७। का० १७ ४० ७४,

[क्रि०] (हि०) १२५ १२६ १२६ १४८, १६८

१७२ २०६ २३६ २४१, २४२

२७३। ल०, १९, ६३।

मचन हो निद्रा छाडा।

[३व० क्रि०] मचन हाकर।

जागरण = घा०, ७२। का० ३१ ७० ८८

[म० पु०] (म०) १०१ १०५, १०६, १७८ २०५,

२७३। भ०, ५४।

जागना, सचेत रहना। उस व या पव

पर रात भर जागना।

[जागरण—प्रसाद मंदिर, मानमंदिर वाराणसी स
श्रीशिवपूजन महाय क सपादन म
प्रकाशित पाक्षिक। बाद म प्रमचदजा
के सपादन म जनक द्वारा ही प्रकाशित
साप्ताहिक जिसमे प्रसात्री का रचनाए
और टिप्पणियाँ प्रकाशित हाती थी।

जागरण सी = का०, २७।

[वि०] (हि०) जागने के सप्रश।

जागहु = चि० ४६।

[क्रि०] (प्र० भा०) जाग जाग्रो। सचेत होवो।

जागिके = चि० १५६।

[पूव० क्रि०] (प्र० भा०) जागकर।

जागे = घा० ४६। का०, १६५। चि०, ४६।

[क्रि०] (हि०) जाग गए। तयार हुए। सचेत हुए।

जागो = चि० १४।

[क्रि०] (प्र० भा०) जाग गए। हाश मे आए।

जागो = घा०, ६४ ६। ७४। ल० २४।

[क्रि०] (हि०) चतना म भाषा। तयार हा जाघा।

जागृत = का० २५।

[वि०] (म०) जागा हुआ सान।

जागृत = का० कु०, ६१।

[म० श्री०] (म०) जागरण तनना।

जाड़ा = प्र० ११।

[म० पु०] (हि०) बह श्चतु जगम वृत्त गर्भो पन्ती

है। प्रातनाल। ठन्क, सर्गो।

जात = चि० ३५ ६६ १४३ १४६।

[क्रि०] (प्र० भा०) जान है बानन है।

जाता = घा० ३३। का० ८ २८। का०, २०

[क्रि०] (हि०) ४८ ६८ १०४ १०६ १५६ १६७

१८०, २२८, २५७ २८२ २८६।

प्र० ६, २१। म० ८ २२।

जाना क्रिया का एक रूप।

जाति = र० १०। का० ८। म०, ८।

[म० श्री०] (म०) ज म पनादन। टिप्पणा का सामाजिक

विभाग, वाटि असा वग।

जातो = घा० २७ ५६। का०, २३ ३४,

[क्रि०] (हि०) ३६, ५१, १२३ १४४ १५० १६०

का० १७६ १७८ १८५ १६८,

२ १ २४६ २७८।

जाना क्रिया का एक रूप। गमन

करता। व्यनात हाता। प्रस्था करता।

१८० २३४ २६७। चि०, ४०।

प्र० ३ ११ १५।

जाते जाते = ल० ३६।

[क्रि०] (हि०) चलते चलते।

जादू = का०, ८७। चि० ४७।

[म० पु०] (पा०) एसा भाश्चयानक काम जिसे लोग

श्रलौकिक समझे, इन्जाल। तिनरुम।

टाना टोटका दूसरे को मोहित करने

का शक्ति। मोहना।

जान = का० १३२ १४३।

[म० श्री०] (पा०) प्राण। पान जानकारी, परिचय।

[पूव० क्रि०] (हि०) जानकर।

जानकी = का० कु०, ६६, ६७, १०१।

[सं० स्त्री०] (सं०) जनक की पुत्री सीता ।

[जानकी—सीता, जनकवती, जनकमुता, बदही आदि नामा से उल्लिखित राम की मनी साध्वी पत्नी । उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र में मीरध्वज जनक को हल चलाते समय मिली । माता' का अर्थ हल में खोची हुई रेखा भी है । यह अत्यंत सती थी । तुलसीदास इनका जगज्जननी और वाल्मीकि ने इह अत्यंत मुदरा एव आदश पतिव्रता चित्रित किया है । रावण ने स्वयं माता के भोंदय के विषय में वाल्मीकि रामायण में कहा है—

नव त्वी न गवर्धी न यक्षा न च किन्नरो ।
नवरूपा मया नारा दृष्टपूर्वा महांतन ।
रावण इह छल मे हर ल गया था । राम ने उसका बध्वर इह मुक्त कराया और अजय लका व विजयी हुए । लव कुश की मा । २० सीता ।]

जानकी अग्र = का० कु० ६८ ।

[सं० पुं०] (सं०) जानकी के शरीर के अग्र ।

जानकी वदन = का० कु० ८८ ।

[सं० पुं०] (सं०) जानका का मुख ।

जानति = चि०, ३२ ५७, ६६ १५१, १५८ ।

[क्रि०] (२० भा०) जानती है ।

जानता = प्र० ३ ।

[क्रि०] (हिं०) जाना क्रिया का एक रूप ।

जानना = क० ११, १३ । का० २२२ । चि०

[क्रि०] (हिं०) १८७ । प्र० १ ।

जान प्राप्त करना । भिन्न या परिचित होना ।

जानहु = चि० ५० ।

[क्रि०] (प्र० भा०) जात कर ला, जानो ।

जाना = का० २०, २६ । का० ११७, १६७

[क्रि०] (हिं०) १६१ । म० २४ । ल१ ३६ ।

एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुँचने के लिय चलना । गगन करना, प्रस्थान करना ।

जानि = चि० १४२, १५१, १७२, २८३ ।

[पूर्व० क्रि०] (प्र० भा०) जानना क्रिया का पूर्वकालिक रूप । जान कर, जात करके ।

जानिही = चि०, ३२, ४६ ।

[क्रि०] (प्र० भा०) जात करोग । जान लोग ।

जानी = चि० ६८ १५५ । प्र० ३ ।

[क्रि०] (प्र० भा०) जात कर लिया ।

जातु = का० १५३ ।

[३० पुं०] (सं०) जान और पिडली के वाच ना भाग ।

[क्रि०] (हिं०) जानिण ।

जाने = आ० ५८ । का० १२८ १६६ १६२

[क्रि०] (हिं०) १८६ २०१ । चि० ५८ । म० २८ ।

जान कर निय । जान लिया ।

जानो = आ० १७ । प्र० ६ ।

[क्रि०] (हिं०) जात कर ना । मानो ।

जानी = चि० १५३ १७६ ।

[क्रि०, (प्र० भा०) जात कर ला ।

जान्यो = चि० १८१, १८५ ।

[क्रि०] (प्र० भा०) जात कर लिये । अवगत हो गया ।

जामहें = चि० १४३ ।

[प्रव०] (प्र० भा०) जियम ।

जामे = चि० ५७ ।

[सव०] (प्र० भा०) जियम ।

जाया = प्र०, २१ ।

[सं० स्त्री०] (सं०) पत्नी जाहू, स्त्री ।

जायेगा = का०, ११७, २५१ । म० ८ ।

[क्रि०] (हिं०) जाना क्रिया का भविष्यकालिक रूप ।

जारत = चि० १६ ।

[क्रि०] (प्र० भा०) जताता है ।

जारन = का० ८३ । चि० १०७ ।

[क्रि०] (प्र० भा०) जवानवाना, दाहक ।

जा रहा = का, ८१, १६१ ।

[क्रि०] (हिं०) जाना क्रिया का एक रूप ।

जार ही = का०, ३६ १०५ २०५ ।

[क्रि०] (हिं०) 'जाना' क्रिया का एक रूप ।

जाल = आ०, ३७ । का०, ८ । का० कु० ८६,

[सं० पुं०] (सं०) का०, ३४, ६८, ८१, ८३, १६८,

२५२ । वि०, २२, १४३ । भ०, ७० ।
ल०, २५ ।

एष म युन ह्य बहूत ग डोरा वा समूह ।
विगी की फसाने या वषा म करने वा
पर्यय । एष प्रकार की ताप ।

जाल डोरी = वि०, १८२ ।

[सं० स्त्री०] (हि०) जाल के अलग अलग मूल । चद्र
तिरगों ।

जालन = वि०, ४ ।

[सं० स्त्री०] (प्र० भा०) जाल वा बहु वचन । *० जाल' ।

जाली = वा० ६३ । ६६ ।

[सं० स्त्री०] (हि०) जगमे बहूत म छि' हो ।

जालों = वा० १४ ।

[सं० पु०] (सं०) जाल वा बहुवचन ।

जावेगा = वा० १२४ । प्रे० २ ३ ४ ।

[क्रि०] (हि०) म० १० ।
जाना क्रिया वा भविष्यत् कालिक रूप ।

जावें = धा०, ५४ ७४ । वि० १८७ ।

[क्रि०] (हि०) जायें । जाय ।

जावें = वि० १६४ ।

[क्रि०] (प्र० भा०) जाय जाओ ।

जासन = वि०, १०६ ।

[सव०] (प्र० भा०) जिससे ।

जासु = वि०, ५६ १३६ १५३ ।

[सव०] (प्र० भा०) जिसवा । जिसका ।

जासु अति ही = वि० १६१ ।

[सव०] (प्र० भा०) जिसका ज्यादा हो ।

जासो = वि०, ५५, ६६ १५६ १७३ ।

[सव०] (प्र० भा०) जिससे ।

जाहि = वि० ३४, ४०, १० ५६, ६३ १५४

[सव०] (प्र० भा०) १८४ ।

जिसकी ।

जाहिर = वि० ३२ ।

[वि०] (प्र०) प्रकट, स्पष्ट, खुला हुआ । विदित, जाना
हुआ ।

जाहिरहि = वि० ६१ ।

[क्रि०] (प्र० भा०) प्रगट है ।

जाहिलखि = वि०, ५६ ।

[सर्व०] (प्र० भा०) जिस दलकर ।

जाहु = वि०, ५३, १/७ ।

[क्रि०] (प्र० भा०) जाभा ।

जाहुगे = वि०, १४६ ।

[प्र०] (प्र० भा०) जाभाय ।

जादुवो सी = भ० ३५ ।

[वि०] (हि०) गया वे समान पवित्र, निर्मल ।

जिऊँ = वा०, २४३ ।

[क्रि०] (प्र० भा०) जाऊँ ।

[विज्ञासा—वागी' वष २ अक २, मितवर
१६३२ म मवप्रथम प्रकाशित और
'सन्' मे पृष्ठ ३८ पर सकीलन 'प्ररे
कही दया है तुमने । द० लहर ।]

जितना = वा०, ८, २५ ६५ ७५ १७८, १६६,

[वि०] (हि०) ल० ७४ ७६ ।

परिमाणसूचक शब्द ।

जितनी = वा०, १३० ।

[सव०] (हि०) परिमाणसूचक शब्द ।

जितने = धा०, ७३ । का०, १७१ । म० १०,

[वि०] (हि०) परिमाणसूचक शब्द ।

जिधर = वा० १८१ ।

[प्र०] (हि०) जिस द्वार ।

जिन = वा० १२, १३, १४ १५, २५, ५६,

[सर्व०] (हि०) ७७ ११४, ११६ १२०, १६२, १८२

१६५, २०१, २३६, २४८ २५८,

२६३ । वि०, ६७ । प्रे०, १४ २५ ।

म०, ० ।

जिहाने । जिनम ।

जिनकी = वा०, ११४, २५८ ।

[सव०] (हि०) सवधवाचक 'जो' का रूप, बहुवचन ।

जिनहि = वि० १०२ ।

[सव०] (प्र० भा०) जिनकी ।

जिन्हें = वा०, २३६ ।

[सव०] (प्र० भा०) जिनकी ।

जिन्हें = वि०, ६ १७ ।

[सव०] (हि०) जिनकी ।

जिम्मि = बि० १००, १०७, १६१, १६५।

[अ०] (अ०भा०) जिस प्रकार।

जिया = वा, १६६।

[क्रि०] (अ०भा०) प्राण रक्षा किया।

जिये = वा०, २२ १४६, १८३। बि०, ३३।

[क्रि०] (अ०भा०) जिया' बहुवचन।

जिस = क०, १३ ३१। वा०, १०, ११, २५,

[मव०] (हि०) २६ २६ ३४, ५२, ५४, ६२ ७३,

७६, ६०, ६४, १००, १०१, १२,

१०६, १०७, ११५ ११६, १२०,

१२१, १२२, १२६, १३०, १३१,

१४०, १४२, १४३ १४४, १४८

१५१, १५७, १६०, १६३ १६६,

१६७, १६८, १७०, १७५, १८३,

१६३, १६७, १६६, २०५, २०६,

२२४ २३३, २३४, २३६, २४०,

२४८, २५०, २५१, २५४ २६३,

२६८, २६९। बि०, ८८। क०, १३

३६। प्र०, १, २, ६ १०, ३४।

म० १३, १६ १८। ल०, ६२ ७६।

'जा' एक का रूप।

जिम्मसे = वा०, १२६, १३६ १४५।

[सव०] (हि०) जिसके द्वारा, जिसकी सहायता से,

जिसके कारण।

जीऊँ = वा०, २८, १११।

[क्रि०] (हि०) जीना' क्रिया का रूप।

जीऊँ = का० २८, १४६।

[प्र० क्रि०] (हि०) जीवित रह कर।

जी को = वा०, २१५।

[स०] (हि०) मन को।

जी जीऊँ = का० १२३।

[प्र० क्रि०] (हि०) जीवित सा अनुभव करके।

जीतना = भा०, ५८। वा० कु०, ६३। वा०,

[क्रि०] (हि०) ५५ १६५, १७०, १६७। क०, ६३।

ल० ५३।

विजय प्राप्त करना, विपक्षी को हराना।

जीते ही बनता = वा०, २६८।

[क्रि०] (हि०) किसी प्रकार जीवित रहना।

जीना = वा०, २०१। क०, ६५। ल०, ५३।

[क्रि०] (हि०) जीवित रहना।

[जीने का अधिकार तुम्हें क्या - जनमजय का नागयज्ञ' का नेपथ्यगीत जो उम सचेत करने के लिये गाया गया है। प्रसाद संगीत में कुछ ६५ पर मबलित। हे मनुष्य तुमने क्या यह मोला है कि आवागमन क्या होना है। यह कम भूमि है। यहाँ तू खेल खेलने आया है। कर्म में ही सुख है। जिसे तुम दुख समझते हो उमम भा सुख है। जो कुछ हा, जा करना है करता चल। न ता कोई कही आता है न जाता है। यह जावन खेल है, लीला है। तू सब कुछ आनंद स करता जा।]

जीने दो = वा०, २०१।

[क्रि०] (हि०) जावित रहने दो।

जीभ = क०, १७५। ल०, ५१।

[म०श्री०] (हि०) जिह्वा वाणी, जवान।

जी भरकर = भा० ३६। का०, कु०, ५१।

[प्र० क्रि०] (हि०) प्र० २०।

पूरा, मनुष्टि मिलन तक यथेच्छ।

जी रहा है = वा०, २१७।

[क्रि०] (हि०) प्राण रक्षा कर रहा है।

जीएँ = वा०, १६०।

[क्रि०] (स०) पुराना, जजर जिममें जीएना घा गई हा।

जीएँ मड = क०, ३३।

[म० पु०] (स०) जजर तना, जजर पार, जजर डाली।

जीय = व०, १३, का०, कु०, ६५। बि०, ३०,

[स० पु०] (स०) १३६। म०, ६५। म०, ८।

चेतन तत्व, प्राण, आत्मा जीवात्मा।

जीवधारी।

जीवन = भा०, १४, ७६। वा०, १८। का०

[म० पु०] (स०) कु० ६५ ७७। वा० ५ २६३।

जीवित रहने का भाव, प्राणधारण,

जन्म से मृत्यु पर्वत का समय।

जिदगी। जीवित रहनेवाली वस्तु।

जीवनकन = ल०, २१ ।

[स० पु०] (हि०) चेतनता अथ, आशिक चतनता का गूढ भाग ।

जीवनगीत = ल० २८, २६ ।

[स० पु०] (म०) जीवन प्रथम करनेवाला गीत ।

जीवन घट = का० २८३ । ऋ०, ७७ ।

[वि] (स०) जीवनरूपी घटा ।

जीवन घाटी = का० २१७ ।

[वि०] (हि०) जीवन रूपा घाटी । जीवन का दुःखमय पथ जीवन का दुःखमय रास्ता ।

जीवन जलनिधि = का० २२१ ।

[म० पु०] (म०) जावनरूपी समुद्र । जीवन की अथा अना का मूचक शब्द ।

जीवनद्रव = आ०, ७१ ।

[वि] (स०) जीवनरूपी द्रव पदार्थ । जीवन की तरलता, जीवन का स्नेह तत्व ।

जीवन धारो = का० १६२ ।

[वि०] (हि०) जीवनरूपी डोरा । जावन का क्षणिकता का मूचक शब्द ।

जीवनधन = का० ५० ७६ । का० ६८ । ऋ०

[वि] (म०) ३७ ४४ ४५ ४८ ५२ ८० ६१ ८६ । १० २६ ।

जावनरूपा धन । सबश्रुत धन । वह धन जिभके द्वारा प्राणा मय बुद्ध करने म ममथ हुता है । प्रियतम ।

जीवनधारा = का० २४१ ।

[म० ग्वा०] (म०) जीवनरूपी धारा । जीवन का प्रवाह ।

जीवननद = का० १६४ ।

[म० पु०] (म०) जावनरूपा नद । जावन का गहराई तथा प्रवाह का मूचक ।

जीवन नाय = ऋ० ५५ ।

[म० स्त्री०] (हि०) जावनरूपा नोता । जीवन म तार य की अनिवापना का वापन क्षणिकता का मूचक ।

जीवननिर्भरिणी = प्रे०, १० ०४ ।

[म० स्त्री०] (स०) जीवनरूपा नया ।

जीवननिशीथ = का० १५६, १७२ ।

[म० पु०] (म०) जीवनरूपी अद्भ रात्रि जावन के तम मय पत्त का वापक । उ०—जावन निसाथ के अथकार ।

[जीवन नैया—इदु, कना ३, किरण ११, अक्कूवर १६१२ म विनोदविदु के अतगत प्रकाशित श्री चित्राधार मे सकलित सवया ।]

जीवन पत्तग = ल० ४६, ५० ।

[स० पु०] (हि०) जावनरूपा शलभ । जानिप्या म प्राण विसजन करने का धार सकेत ।

जीवन पथ = प्र०, २६ ।

[पु० पु०] (म०) जावनरूपी पथ । जावन का रास्ता ।

जीवन भर = प्रे० २१ ।

[वि०] (हि०) आजीवन, ज म म लकर मरने के पहले तक का समय ।

[जीवन भर ध्यानद मनार्जे—विशाख' म बोद्ध महथ का गान जा 'प्रसाद सगात' म पृष्ठ १२ पर सवलित है । साग वृष्णा की वाली सर्पिणी बहूत है लकिन ससार का उममे मुख है इसलिये इमम उमका छुटकारा कहा ? मां वचन का ताडना परता है फिर भा बच्चा रापर उमी का मां बच्कर पुकारता है । इसलिये मानव रापर या गापर मगर म मुख पाकर उता का सबस्व मानता है । इसलिय जा बुद्ध भा हा जावन भर साधा, पाप्रा धीर मस्त रहा ।]

जीवनमधु = का० २७१ ।

[म० पु०] (म०) जावन का मधु । जीवत म माधुय का बोधक ।

जीवनमरण = म० ८ ।

[मश ३०] (स०) जीवन और मृ यु ।

जीवनमरण शाक = का० १७१ ।

[मश ३०] (म०) धावागमन म मवधिन शाक ।

जीवनमरण ममरगा = का० २५० । ऋ० ४० ।

[स० स्त्री०] (म०) ज म लन और मरन स मवधिन ममरगा ।

जीवनमार्ग = का० ५०, ७३ ।

जीवनमुक्त

[म० पु०] (म०) जीवन की राह, जावनरूपी पथ ।

जीवनमुक्त = का० कु०, ३० ।

[वि० पु०] (हि०) जीवन काल में ही मुक्तता का अनुभव करनेवाला ।

जीवनमुक्ति = क० ६८ ।

[म० शी०] (हि०) जावन क वधना में सुखकारा ।

जीवनमूल = का० कु० १४ ।

[स० पु०] (म०) जीवन का आदि स्रोत । जीवन की वास्तविकता ।

जीवनरण = का० २०० ।

[म० पु०] (म०) जीवनरूपी युद्ध । जीवन व सधप तत्व का सूचक ।

जीवनरस = का०, १६८, २७०, २७१ । ल ७२ ।

[म० पु०] (म०) जीवन का रस । जीवन का आनंद तत्व ।

जीवनधनु = का० ६१ ।

[म० पु०] (स०) जीवनरूपा धनु । जावन की वधना का बोधक ।

जीवनत्रिलुब्ध महासमीर = का० १५७ ।

[म० पु०] (स०) जीवनरूपा चुन्च प्रवड पवन । जीवन का दुग्म गतिशालता का बोधक ।

जीवनराशि = का०, ४६ ।

[स० पु०] (हि०) जीवनरूपी राशि । शृंखलाबद्धता का परिचायक । वधमूलक घटनाओं के केंद्र का बोधक ।

जीवनरहस्य = का०, ४८ ।

[स० डू] (म०) जीवन का तत्व । जीवन की वास्तविकता ।

जीवनलोक्षा = का० ३२ ।

[स० शी०] (म०) जीवनरूपा लोका । जावन का अग्नि पता का सूचक ।

[जीवन धन में उतियाली है— एक घूट' में प्रमनता का गीत । प्रमाद मगात में पृथ १०३ पर सकलित । किरणा की काभन धारा ह्मारा अनुराग लकर प्रव्तमान है फिर भी ह्मारा हृदय व्यामा है धीर मतवाला व्यथा व्याप्त है । हरित दना के धनस्पल स यह

ममीर कुमम बाल से प्रममधु री प्याली इम सधन जाल स बचकर माँग रहा है । यह जीवन केवल एक घूट क निय व्यासा है और सजका आख म पानी भर कर देल रहा है कि उसका प्रम किमने चुदा रखा है और हमारी वह हरियाली कहा है ?]

जीवनशाब्द = का० कु०, ६७ ।

[म० पु०] (स०) जावनरूपा शरद । जावन की शीत नता का सूचक ।

जीवनसगी = का०, १६ ।

[म० पु०] (हि०) जीवनमाथी जीवन में महायक प्राणा ।

जीवनसमाधि = का० १६० ।

[स० पु०] (म०) जीवनरूपा समाधि । जीवन की परम शांति का सूचक ।

जीवनसर = का०, ६६ ।

[म० पु०] (स०) जीवनरूपी तालाब । तालाव में पल पन उठन गिरनेवाला लहरिया के समान जीवन की लुदताप्रा या आश्रयन का बोधक ।

जीवनसिधु = का०, ८१ ।

[म० पु०] (म०) जीवनरूपी समुद्र । दुःकृता का बाधक ।

जीवनसुर = का०, ३८ ।

[म० पु०] (म०) जीवन का मुख ।

जीवनस्रोत = म०, ३५ ।

[म० शी०] (हि०) जीवनरूपी माना । कठिन जीवनप्रवाह । मदगति जीवन ।

जीवनमुधा = का० कु०, २७ ।

[म० शी०] (स०) जावनरूपा मुधा । जीवन का अमृत, जावन के अमरत्व का वाचक ।

जीवनसृति = ल० २७ ।

[स० शी०] (स०) जावन की सृति । जीवनमवधी याग्यार ।

जीवनस्रोत = का० कु० ५७ । प्रे०, २० ।

[स० पु०] (स०) जावनरूपी स्रोत । जावन का उद्गम स्थान । जावन माना ।

जीवनस्रोत सा = का० कु०, ५३ ।

[वि०] (हि०) जीवन रचा खान या प्रवाह व सदृश । जीवनरूपी प्रवहमान प्रवाह के समान ।

जीवनी = का०, १९६।
 [मं० १००] जीवनीपरित। विनी व्यक्ति के जीवन (ध०) की गणना पटनाया वा सञ्चिता रूप।
 जीवमण्डली = का० कु०, २४।
 [मं० पु०] (ध०) प्राणी वर्ग, प्राणियों वा मनुष्यम।
 जीवित = का०, १८ ६० १०६ १४७ १६, [वि०] (ध०) २४७ २६६। प्र० १६। त ५१ ५७ ७५ ७६।
 विगत जीवन हा। गतिशाल प्राणी।
 जु = वि० ७०।
 [सय०] (प्र० भा०) जो।
 जुग = वि०, १४२।
 [सं० पु०] (हि०) युग, दो जोडा। चौगर के खेल मे दो गोठिया वा एर हा पर म घावर बठना।
 जुगाली = न०, ३३।
 [सं० खी०] (हि०) पापुद, चीनामा की वह त्रिया जियवे द्वारा के मुह चला चलाकर खाए हुए चारे को निगना करते हैं।
 जुगनू = का, १७६, २३४।
 [सं० पु०] (हि०) सानबिरवा सयोज पटनीजना। पान व घानार वा एर घामुण्ड।
 जुटना = का०, २५, ५८, ८२, १८१, १८१ [क्रि०] (हि०) १८६।
 दो वस्तुया वा जुटना। सन्द या सचिन्त होना।
 जुडने = का०, १८६, १८१।
 [क्रि०] (हि०) जुडना' त्रिया वा एक रूप।
 जुन्दाइहि = वि० १४६।
 [सं० खी०] (प्र० भा०) चाँदनी।
 जुरि = वि० १ १०८।
 [प्र० त्रि०] (प्र० भा०) जुडकर समुक्त होकर।
 जुरी = वि०, ५६।
 [क्रि०] (प्र० भा०) जु गई, जुट गई मिल गई।
 जुरे = वि०, ४१, १८६।
 [क्रि०] (प्र० भा०) जुड गए मिटे।
 जुहा = वि० १०१।
 [क्रि०] (प्र० भा०) इकठ्ठा करो।
 जुहे = वि०, ५३, ६८।

[त्रि०] (प्र० भा०) हट्टे हुए।
 जुषा = वि०, १०७।
 [मं० पु०] (प्र०) एर प्रकार वा घन जो घन की वाज्रा लगाकर गना जाता है। बंवा के कचे पर रखा जानेवाली लकड़ी। चक्का वा बट ताटा जिम लगाकर बट चलाई जाती है।
 जुने = वि०, ७२।
 [त्रि०] (प्र० भा०) जुड जाना। इम प्रकार जुटना वि जुनन वा स्थान तब न तात हो।
 जुठ = वि, ८७।
 [वि०] (हि०) उच्छ्रित भोजन, जुग खाद्य पदार्थ। एव बार काम म लाई गई वस्तु।
 जुही = धा०, ४४। का० कु०, १२६।
 [सं० खी०] (हि०) पुष्प विशेष का नाम।
 जेहि = वि०, ३, २२, ३४, ४८ ४८, ५६, ५७, [सर्व०] (प्र० भा०) ७३ १६३।
 जिसको।
 जैसा, जैसे, जैसी = का०, २, ६, २३ २४, २६, ३२ [मं०] (हि०) ६७ ७७ ८१, ६४, १०५, १२३, १३६, १४५, १५६ १६२, १६७ १६६ २१३ २२७, २२८, २३३ २३४ २५८, २६१, २६६, २७०, २६०, २६१ २६२ २६४, वि० १०, ४८। प्र० २, ४, ६ १३, १५, १८। म० १ २ ४ ८ १०, १६ १६, २१। 'हृष्टात्' अलकार वा बोधक शब्द। समानता का बोधक शब्द।
 जो = का०, ७ २५, ३२। का० २५, ३० [सव०] (हि०) ३३, ३६ ४८ ६६ ६६, ७१ ७२ ७४ ७५ ८१ ८४, ११२ १५७ १७० १७१ १८२, १८२ १८६, १६०, १६१ १६२, ३०७ २०६, २१९, २२५ २२८ २४० २४२, २४३, २५१ २५८। म० १ २ १०।
 सबधवाचक सवनाम जिसका प्रयोग पहले कही हुई किसा सजा विशेष क लिय हो। उ०—जो घनीभूत पीडा की मस्तक मे स्मति सी छाई।—धाम्।

- जोगी = चि०, १७२।
 [स० पु०] (हि०) साधुओं का नग विगण जो सारंगी पर गाना गा गाकर भिक्षा मागा करती है।
- जोड़ना = वा०, ३०, १७७। ऋ०, २६, ६४।
 [क्रि०] (हि०) दो वस्तुओं का किंवा भा प्रकार मिलाना, सबम स्थापित करना। सामग्री या वस्तुओं को क्रम से रखना। सचित करना, एकर करना। जोड़ लगाना।
- जोड़ी = वा० कु०, ३८, ४२। चि०, ३३, ७४।
 [स० स्त्री०] (हि०) एक ही प्रकार का दो वस्तुएँ। दो बला का युग्म। मजीरा।
- जोड़े = का० कु० १०।
 [क्रि०] (हि०) जोड़ना क्रिया का भूतकालिक रूप।
- जोति = चि०, १६४।
 [स० स्त्री०] (ब्र० भा०) प्रकाश, उजाना। लपट, ली। अग्नि। मृग। दृष्टि। परमात्मा।
- जोपम = चि०, १८०।
 [अ०] (ब्र० भा०) यदि, अग्रर।
- जोय = चि०, ५३।
 [क्रि०] (ब्र० भा०) दखकर।
 [स० स्त्री०] (ब्र० भा०) स्त्री।
- जोर = चि०, १७८। म०, ५।
 [स० पु०] (फा०) बल, शक्ति ताकत। वश।
- [जोरावर सिंह—गुरु गान्धिव सिंह के छोटे पुत्र जिन्हें मजीर खा मरहिन के सरदार ने जीत कर दावार में छुनवा दिया। वे अपने धर्म पर शटाद हुए और उनकी अम्ययना उसी रूप में तब से की जाती है। सन् १७०५ ई० में यह दुर्गाद हुआ था।]
- जोरि = चि० ५४।
 [ब्र० क्रि०] (हि०) जुगावर जाड कर इकट्ठा कर।
- जोरी = चि० ७५।
 [स० स्त्री०] (ब्र० भा०) 'जोडा'।
- जोरे = चि०, ७४।
 [क्रि०] (ब्र० भा०) जाड, मिलाए।
- जोइत = चि०, ७०।

- [क्रि०] (ब्र० भा०) जोहता है। वाट देखना, प्रतीक्षा करना, इतजार करना।
- जोन = चि०, १६, ४१, ६६, ६१, १५३,
 [सव०] (ब्र० भा०) १७०, १७३, १८४।
 जा।
- जौलों = चि० १०४।
 [अ०] (ब्र० भा०) जव तक।
- जौहरी = चि०, १०७।
 [वि०] (फा०) रत्ना का व्यापारी। रत्ना का परीक्षा करनेवाला। रत्नपारखा।
- ज्ञात = वा ३१०। ऋ० ५४।
 [वि०] (न०) अचगत, जाना हुआ, वाचस्पय।
- ज्ञान = वा० कु० ८४। वा० ५१, १६२,
 [स० पु०] (सं०) १६५, १६७, १८२, १६४, २५३, २६२, २६८, २७२, २७३।
 वस्तुओं और विषयों का वह जानकारी जो मन या विवेक में होता है। जान बारी वाच। यथाय त्रात या सत्य की पूर्ण जानकारी। तत्त्वज्ञान।
- ज्ञानी = चि० ४६।
 [वि०] (हि०) जिस ज्ञान हो ज्ञानवान्। आत्मजानी।
- ज्येष्ठ = व० २८।
 [पु०] (सं०) गरमी का एक महीना।
 [वि०] बड़ा, जठा।
- ज्यां = वा० कु०, ८०। वा०, १६, २७, ३१,
 [अ०] (ब्र० भा०) ३४, ४५, ४७, ४८, ८७, ६३, ६४, ६७, १०६, १४३, २१२, २३६, २४७, २८४।
 जिम प्रकार।
- ज्यां कि त्यो = प्र० प०, १।
 [अ०] (ब्र० भा०) वसा या एमा। उस तरह या इस तरह।
- ज्या ज्यों = अा० २५।
 [अ०] (सं० भा०) किमी न किमी प्रकार।
- ज्योति = अा० ४३। वा० ३२। वा० कु०
 [सं० स्त्री०] (सं०) २, १२६। वा०, ४८, ६५, १८६, २७३, २९४।
 प्रकाश। ज्ञान। दृष्टि।
- ज्योतिकला = का०, १५६।

[सं० स्त्री०] (सं०) प्रकाश का कला । मगनाजित श्यामा का मंग मगुर प्रकाश ।

ज्योतिमय = का०, २५२ ।

[वि०] (हिं०) प्रकाश में युक्त । पान म पूष्ण ।

ज्योतिमयी = का०, ७७ । ल० ६१ ।

[वि०] (हिं०) 'ज्योतिमय' । (स्त्रीलिंग) ।

ज्योतिमान = का० १६३ ।

[वि०] (हिं०) प्रकाशमान, प्रकाश म परिपूष्ण । ज्योतिमान । ज्ञानवान ।

ज्योतिरिंगणो = का०, १७ ।

[सं० पुं०] (सं०) रेंगन म ज्योति उत्पन्न करनेवाला । जूगनू लघान ।

ज्योतिरेखा = ल०, १७ । का०, २१७ ।

[सं० स्त्री०] (सं०) प्रकाश की रेखा । विरेण ।

ज्योतिरेखाहीन = ल०, ५७ ।

[वि०] (सं०) प्रकाश का रेखा स हान या प्रकाश विहीन ।

ज्योतिमय = का०, २७२ ।

[वि०] (सं०) प्रकाशमय चमकता हुआ ।

ज्योतिर्मान = का०, २६ ।

[वि०] (सं०) प्रकाशमान (सं० 'ज्योतिमान') ।

ज्योतिष्पथ स्वामी = का०, २५ ।

[सं० पुं०] (सं०) प्रकाश क माग वा स्वामी—गुर्य, चद्र ; ब्रह्म, ईश्वर ।

ज्योतिष्मती = का० २६० ।

[सं० स्त्री०] (सं०) चाँदनी रात । एक नदी । एक बधिक छद । एक बाजा । मालवगनी ।

ज्योत्स्ना = का०, १२७ १३० २५२ २७१

[सं० स्त्री०] (सं०) २८८ । चाँदनी । सौक । सफेद फून का तोरई ।

ज्योत्स्ना सी = का०, ६२ ।

[वि०] (सं०) ज्योत्स्ना के समान । प्रकाशवाली । कातिवाला, प्रत्यत मुदरा ।

ज्योत्स्नाशालो = का०, ११६ ।

[वि०] (सं०) ज्योत्स्ना स पूष्ण या भरा हुआ । प्रकाशयुक्त ।

ज्वलन = का० ८४, १५६, २०७ ।

[सं० पुं०] (सं०) शक्ति । ज्वाना, लपट । चाता या वित्रक नामा युक्त । जलन ।

ज्वलन पिष्ट = ल० १६ ।

[सं० पुं०] (सं०) जलना हुआ माग का गाता । मूत्रिमया ज्वाना ।

ज्वलनशाल = का०, १५४, १५७ ।

[वि०] (सं०) जलनवाला या जलन की क्षमता रखनेवाला ।

ज्वलित = का० कु० १०८ । का०, ३३ ८५

[वि०] (सं०) म०, १० । वि० १० । जलना हुआ या जला हुआ ।

ज्वाल = का० १७३ ।

[सं० पुं०] (सं०) शक्तिशिरा लपट, ज्वाना ।

ज्वार = का०, १७५ ।

[सं० स्त्री०] (सं०) एक पोषा जिसका दाना खान क नाम भाता है । एक प्रकार का धान । मधुप व जल का लहराते हुए ऊपर उठना या भाग बढ़ना ।

ज्वाला = का० १०, ६० ६१, ६२, ७७ ।

[सं० स्त्री०] (सं०) का० कु०, १३ ७१ । का०, ११४ । शक्तिशिरा लपट । विप भादि की जलन या गर्मी । ताप ।

ज्वाला—श्रांशू के कुछ नाम छ

जब नील निशा श्रचल म नक्षत्र श्व जान है ।

'जागरण', २२ माच १६३२ मे प्रकाशित हुए । सं० 'श्रांशू' ।

ज्वालाताप = का० कु० २४ ।

[सं० पुं०] (सं०) ज्वाला क समान ताप । जलने का भाति कष्ट होना ।

ज्वालायें = का०, १६ ।

[सं० स्त्री०] (हिं०) शक्तिशिरा, लपट । विप भादि की जलन । बहुत अधिक गर्मी ।

ज्वालाभय = प्र० १०, १५ ।

[वि०] (सं०) ज्वाला स युक्त । जलानेवाला । ताप, दायक ।

ज्वालाभयी = का०, ६ ।

[वि०] (सं०) 'ज्वाला स भरो हुई । तापदायिनी ।

[म० म०] पापी का भरना। गोता। मगूह।
 (म०) लगानार वृष्टि हटा।
 भरना = म०, ६८। म०, ७१, २३५।
 [म०] (हि०) भरना है।
 भरत = म० १७८, २३१, २५३।
 [म०] (हि०) भरा है।
 भरना = म० कु० २१। म० २६। म० ११।
 [म०] (हि०) १६।

ऊँ म्यान म गिरनवाला जलप्रवाह।
 गाया गया।

[मि० म०] "० मन्ना।

ऊँ जगट स पाना या घोर रिना
 बाज का लगानार गिरना।

[भरना— भरना' प्रमाणा द्वारा रचित यह काव्य
 ग्रंथ है जिगम मनच विद्वान् प्राधुनक
 हिन्दी कला में छायावाद का प्रारंभ
 माना है। (द० छायावाद)।

भरना म निम्नलिखित छंद सुस्तक है—

भरना अ यत्नस्य प्रथम प्रभात,
 सोनो द्वार, एष, दा वृत्, पावग प्रभात,
 बसत का प्रतापता उतत विरल
 विपाद वापू का यला विह्व दीप
 अचना बिपरा हृद्या प्रम क ?
 स्वभाव असताप, धनुनय प्रियतम
 कदा, निवदन, प्यास पा कहै, पाद
 वाग प्रत्याशा, स्वभलाक, दशन,
 मिलन आयालता सुधासिचन तुम
 दृश्य का सौंदर्य, प्राथमा, होती की
 रात भाल म, रत्न, बुद्ध नही, आदश
 देनाला बसोटा, अलिधि, सुधा म
 गरन उपेक्षा करना बन्ने ठहरो धूल
 का धूल, और विदु।

समपण' और परिचय' भी कविता म ही है।
 'परिचय म कवि ने स्पष्ट लिखा है—

राग न अरुण धुला मकरद।

मिला परिचय स जा सानद।

वही परिचय था, वह सवध।

प्रम का मेरा तेरा छः।'

अतएव प्रेम क परिचय के परिणाम ये गीत
 हैं। कवि के जीवन क प्रम की अग्नि

शक्ति इन गीतों के राग की अग्रगण्यता
 है जिसमें जीवन का मकरद परिमल
 बनकर सन्धि है और यह परिमल
 राज मिलनवाला है। इस रोज मिलन
 वात परिमल का मधुर मधुमय माहन
 एव मकरद है और इसा मकर' का
 जानन ए गगनमंडप पर अगण विनाम
 है। यह सहज हा इन काव्या का
 मध्यमन द्वारा जाना गया है। इस
 परिचय क आकषण का तात्रता न
 समपण म कवि स हृदय हा गान करवा
 दिया, हृदयविन्दु का यह दान क्षीरनिधि
 म समा गया। कवि का अना अत्र
 गया रहा और कवता विना का मव
 हा रटा याता वात 'समपण' मे है।
 यह वात उन आकषण की स्तन
 मधुच्छिन वासा था जो परमन क
 मकरद बनकर पुनने म प्रस्तुति हाती
 है और वहा 'भरना' की भरत म
 गूजी भा है।

भरना' के सवय म प्रकाशक का निवेदन है—
 जिम शली की कविता का हिन्दी साहित्य म
 आज दिन छायावाद' का नाम मिल
 रहा है, उसका प्रारंभ प्रस्तुत सग्रह
 द्वारा हुआ था। इस दृष्टि स यह सग्रह
 अत्यंत महत्वपूर्ण है। हमारा विश्वास
 है कि प्राधुनिक कविता का प्रारंभिक
 परिचय प्राप्त करने म पाठका को इस
 सग्रह से सहायता मिलेगी।' (भरना,
 छटा सस्वरग)।

यह प्रकाशकीय निवेदन एक अत्यधिक महत्व
 पूर्ण विषय का आर ध्यान आकषण करता
 है और वह यह कि छायावाद का
 प्रारंभ हिन्दी म इस रचना द्वारा हा
 हुआ है। इस सग्रह का सत्ता भा इसी
 दृष्टि स प्रकाशक ने माना है।

भरना' का प्रथम सस्वरण वृष्णाष्टमी, मवत्
 १९७५ विजयमी मे हुआ था जो वतमान
 सक्लन स अनेक अर्थों म भिन्न था।

उक्त सस्वरग में २५ रचनाएँ निश्चित रूप से १९१८ ई० के पहले की हैं। उन २५ कविताओं में से 'भरना' के दूसरे सस्वरग में तीन रचनाएँ निकाल ली गई हैं। 'चित्राधार' के प्रथम सस्वरग के अंतगत 'भरना' में प्रकाशित १२ रचनाएँ हैं। इस प्रकार 'भरना' में ३८ रचनाएँ कम से कम आती हैं जिनका प्रकाशन विक्रमी संवत् १९७५ के (सन् १९१८ ई०) के पूर्व का है। गैर रचनाएँ १९१८ व पश्चात् का मानी जा सकती हैं। इस प्रकार कालक्रम की दृष्टि में १९१७ ई० से १९२८ ई० तक की रचनाएँ भरना के वर्तमान सस्वरग में संकलित हैं।

प्रमाण के जीवनकाल के १७ वर्षों की स्फुट रचनाओं का यह संकलन उनके १७ वर्षों के स्वानुभूत भावों का प्रकाशन है जिनमें उनसे जीवन के आसपसून स्वर मुखरित हुए हैं।

प्रत्येक व्यक्ति का जीवन शृंखलाबद्ध नहीं हुआ करता। शृंखलाबद्ध प्रवृत्त यत्र वा स्वभाव है। अतएव १७ वर्ष की अवधि में लिखा गई इन स्वानुभूतिमयी रचनाओं में एक शृंखला टूटना कवि के साथ आया करना है। विनारो की शृंखला उस समय नाना रूप में भ्रंश के साक्षर बनती-बिगड़ती रहती है जब जीवन के आसपसून के पथ पर जीवन व चरण बढ़ते हैं। इन रचनाओं में उन भावनाओं का आकलन हुआ है, जिन भावनाओं को प्रेम का साग ली जाती है। मामल सौंदर्य से जब भी प्रेम का योग होता है तब नाना प्रकार के मनोभाव क्षण क्षण परिवर्तित हो मानव में जीवन पाते हैं। वि तु हृदय से उनका लगाव इतना अधिक तीव्र होता है कि कवि की वाणी उससे मुखरित हो उठती है।

यद्यपि कभी कभी ये भावनाएँ सर्वथा निराधार हूया करती हैं तो भी उनकी प्रेममयी वाणी मानस को कंपना से इतना अधिक आनोक्ति कर देना है कि व्यक्ति उह हृदय की वात का भाति सत्य मान लेता है।

'भरना' में संकलित रचनाएँ उस समय की हैं जब प्रमाद' मानव सौंदर्य की आर आच्छुष्ट हुए। पृथ्वि के धर्म से जो अपने मानव की दाक्षिण नहीं कर पाते व इस लोभ व रस का स्वाद नहीं ले पाते। यह रस बरखम एवं बार जीवन में मक्का अपने ओर आकर्षित करना है। उन समय जो जितना आत्मिक रस मानसपात्र में भर पाता है, उमकी अभिव्यक्तियाँ उतनी ही अधिक रसमय हो पाती हैं। प्रेम में केवल योग नहीं होता। क्षण-क्षण पर उपेक्षा मिलती है, वेदना गल पडती है, प्यास लगती है, विवेक करना पडता है, अनुभय और विनय करना पडती है, ममकाता बुझाना और गिडगिडाता पडना है, क्षिपाद और करणा से आर पथ पर प्रतीक्षा करनी पडती है और गुलबाना पडता है, यहा तक कि अ यवस्थित हा जाना पडना है और अचना बरन पर मा असतोप ही मिलता है। स्वप्नलाक रमना पडना है फिर भी प्रिय का दर्शन नहीं मिलता। इस सब का परिणाम कभी कभी कुछ नहीं मालूम पडता। आत्म समपण बरन पर भी प्रियतम न ता आदेश देता है और न प्रमा का सकारता है। य सब धूल के खेल, आशा, जिनामा, बदना, कसणा, आनंद सबका प्रतिष्ठापक होता है। और इना समय व्यक्ति का हृदय कमीटा पर कसा जाता है। यदि वह रसा निवृत्ता है ता विमल वरत आता हुआ दीख पडता है और मनुष्य जावन का मम समरु रसे उद्घाटित कर

भ्रान्त फिर उमे कभी मिलेगा कि नहीं
और अपने मन से वह अनुभव विनय
भी करता है उसे समझाना भी है और
या उठना है—

या फिर,

जिस चाहतू उम न कर धाँया मे कुछ भी दूर ।
मिला रहे मन मन से, छाती छाती मे भरपूर ॥

लेकिन

परदेशा का प्राप्ति उपजना भ्रानायाम हा प्राय ।
नाहर नप से हृदय लडाना और कहीं क्या हाय ?

ये पत्तियाँ इस भ्रानायाम उपजनवाला परदेशी
का प्रीति व प्रति जहाँ मन से मन
और छाती मे छाता भरपूर मिल रहने
का छोटे प्रकट करता हू वहीं प्रेमा
व मन का स्नय समझाना भी है कि
एसे परदेशी से निष्पुत्र रहना ही अच्छा
है । उमी मे उपकार है । उसके
पश्चात् धन की बन्दी में तमाल व
भूमन पर सजी हुई प्याली मे जब
बिजनी मा काई चमकना है तो उस
हरियाना मे कवि व दानो टग बरस
पहन है और एमा बिजनी गिरती है
कि उम अपरूप छग मे कवि का
विद्राही हृदय प्रेम व अभिष्टत हा
अपना हार स्वाकार कर लता है ।
उम आशकाण भी बिजला व चमकने
पर होता हू तथा वह परदेशी को
समझाने का भी प्रयत्न करता है और
कहता है कि रस व लामो भवरा का
पास मन पुनाया । वह सूखी पलडिया
को दिखाकर इमे मर्म का अपने अनुभव
का दान बताकर कहना है । इतना ही
नहीं जस लो सामा यत प्रेम चर्चा
मे प्राय कट लिया करत है, वम ही
वह भा कहता है कि तुम्हारे जम
बितना को दखा है, पहले हसते है
और फिर रोत ह । कभी कभी क्षम

माने से वाम नहीं चनना तो वह
स्वयं भुक्त जाता है और कट उठना
है कि दखो, त्रिमन वमत धा गया है ।
इम गुहावन मे तुम मत भुका हम
स्वागत के त्रिये माला लेकर स्वयं
सठे है । किंतु इमसे भा निराश होने
पर कवि कह उठना है कि तुम अत्यंत
मुन्त्र और मरन थे, एमा गुना था,
किंतु वास्तव मे अमृत मे मिल हुए तुम
गरल हा । यह अमृतना कर देन पर
वट पुन कहता है कि विरट अग्नि
मे जलाकर तुमने मरा हृदय स्वयं की
भौति शुद्ध कर दिया है, इमपर शत्रु
मत करो और जावन धन, मेरी बात
मानकर सोना कर नो । भले हा बाद
मे पछताना पड । मेरी इम बात मे
रचमात्र भी सदिह नहीं है कि मेरा
हृदय बिल्कुल खरा है । फिर वह
सरह तरह की व पनाए करता है और
कभा कभी आवेशोगमाद में अपने
पौरुष की बात भी कट बिना नहीं
र पाता—

तुम्हारा मोतन सुख परिरम्भ,
मिलेगा और न मुझे कही ।
विश्व भर का भी हा व्यवधान
आज वह बाल बराबर नहीं ॥

कभा कभा स्वप्न देखकर वह जाग पडता
है, साथ ही माह मे ममस्त मुम उद्वय
मधुरतम होकर जग पडते है । प्रम मे
वह विलकुल एमा बातें कह जाता है
जो एक अवाय मन क स्नेहाद्गार
का भौति है । कभा कभा वट उलाहना
भा द उठना है, यथा—

किनी पर मरना, यही तो दुख है ।
उपद्रा करना, मुझे भी सुख है ।

महा है प्राथना हमारा ।

यह प्राथना नहीं वास्तव मे उपासक है

प्रमाद की ये रचनाएँ जहाँ प्रणय सबकी समस्त मनाभावा, यथा भ्रान्त, वरणा, स्नेह वामना, जिज्ञासा, शका, दया, ममता, उपासना, आग्रह, शत्रुदोष, आशा, निराशा आदि वा अभिव्यक्ति सफननापुनक करता है वही छायावाद और रहस्यवाद के बीच भी इनम दिखने है। किंतु इन रचनाओं का मूल मौख्य उमके विशुद्ध मानवीय होने से है, और वह महज है। इनकी अभिकाश रचनाएँ प्री है। कुछ अग्रौड रचनाएँ भा इसम है।

विपाद, बाबू का उना खोला द्वार, त्रिखरा टुआ प्रेम, किरण, वसत की प्रतीक्षा इयादि इस सकलन का अमूल्य रचनाएँ है।

जहाँ तक रचनाओं में प्रवृत्तिचित्रण का प्रश्न है चित्र बड़े सजाव और मदभरे है। 'हाला की रात' उमका सर्वोत्तम उदाहरण है।

जहाँ तक भाषा का प्रश्न है अनेक रचना पर एस शब्द भी मिलग जो खडो बाला क नहीं है, किंतु पूजापक्षया भाषा में अभिक प्रीयता है, तथा भाषा को अभिव्यक्त करने की क्षमता भा। कुछ रचनाओं की भाषा निश्चय ही लचर है। एसी रचनाएँ अधिकांशत सन् १९१४ एव १५ की लखी हुई हैं। कुछ रचनाओं की भाषा इतनी लखरी हुई है जितना निखार आगू और कामायना का भाषा में है। भले हा इनम बह भाषामा न हा जा उनम है।

यथा—

किरण। तुम क्या निखर हा आज
रगी हा तुम किसके अनुप्राण,
स्वण सरसिज किजक समान,
उबता हो परमाणु पराण।

धरा पर भुकी प्रायना सदश,
मधुर मुरली सा फिर भी मौन,
किना अनात विश्व की विवल,
वेदना दूती सा तुम कौन ?

मुखावरा का भी प्रयोग इतस्तन रचनाओं में भिन्नता है, यथा बाल बराबर न मम भना भरपूर तूर होना दोड लगाना, दूध और पाना सा मिलना, रटाई देकर फाडना बराना का कोर लगना, गला दना चहलवदमी करना, बिछल पटना, अनखाकर कहना, हाथ मलना, तमाशा दखना, आदि।

भरना में अरिखल ताटक आनद तथा दाहा का प्रयोग विशेष दुभा है। प्रसादजी के प्रिय छंम म आमुवाला छद और ताटक छद है। उमका निखरा रूप यहा कुछ रचनाओं में मिलगा।

इस प्रकार भरना प्रमाद का रचनाओं में विकास का नद दशा का सकत दता है, जिसम प्रणय, प्रवृत्त स्नेह और छायावाद रचनाओं का सकलन है। प्रसाद का कांथरचनाओं में इस रचना का एक विशेष ऐतहासिक महत्व है जिसका यहा ब्यारया की गइ है।]

भरने = का० कु०, ६६। का० २०५। प्र० ७।
[स० पु०] (अ०) 'भरना' का बहुवचन। २० 'भरना'।

भरने = चि०, १४५।
[कि०] (प्र०भा०) भडना।

भरने = का०, ६३।
[स० पु०] (अ०) 'भरना' का बहुवचन। २० 'भरना'।

भरने = चि०, ५१।
[कि०] (प्र०भा०) भरता है।

भलके = आ० १६, ६७। का०, १४३, १५६।
[स० ली०] (दि०) प्र० १८। ल० ४८।

चमक, दमक, आभा। आरुति का आभास या प्रतिबिम्ब, क्षणिक दशन। वह प्रबल आभा जो ममस्त चित्र में व्याप्त हो।

मलकना = का० ७३, १०५, २६२। चि०, १५७
[क्रि०] (हि०) १६०। अ० ७२।

चमकना। कुछ कुछ प्रकट होना। आभास होना।

मलकावत = चि०, २२।

[क्रि०] (अ०भा०) मलका रहा है, आभास द रहा है।

मलके = का०, १८०, २४५।

[स० पु०] (अ०) फफोले।

[क्रि०] लिखायी दिए।

मलते = प्र०, ७।

[क्रि०] (हि०) पक्षे स हवा करत हैं।

मलना = का० कु० ६८।

[क्रि०] (हि०) पक्ष से हवा करना। हिलाना।

मलमल = का०, २३३, २३४, २३५।

[स० पु०] (हि०) अंधेर में होनेवाला हलका प्रकाश, चमक दमक।

मला = चि०, १४६।

[स० पु०] (हि०) हलकी वर्ण। मालर। पग्या समूह।

मलर सा = चि० २६।

[वि०] (हि०) मलको का भर भर के समान।

मलई = का०, २६०। अ०, १६, ७१ ७२।

[सं० स्त्री०] (हि०) छाया, परछाई। अधकार अंधेरा। धोला। रक्तविकार के कारण करीर पर पड़े हुए काल अंध।

मलकना = अ०, २५। ल० ६२।

[क्रि०] (हि०) लुक छिपकर देखना।

मलक मलकवर = का कु० १२४।

[क्रि०] (हि०) छिपे रूप से देख दलकर।

माड = अ०, १६।

[सं० पु०] (हि०) छोटे छोटे एस वृक्ष जिनकी पत्तियाँ जमीन के निकट हैं। छत में टाँग जानवाल शीश के फानूस।

माडखड = ल०, ४०।

[सं० पु०] (हि०) ऐसा स्थल जहाँ बहुत बटाल छाटे छोटे वृक्ष लग हो।

मालर = का० कु० ६२। का०, २६३। अ०
[सं० स्त्री०] (हि०) ५६।

विभी वस्तु की आभा बनाने के लिये उमक किनारे किनार नाचे लटका हुआ किनारा।

मिमिक = का० ५२।

[सं० स्त्री०] (हि०) एका प्रकार का अनात भय।

मिटका सा = का०, ४१।

[वि०] (हि०) भटका सा। कपन मा पदा हाना। धक्के मा लगना।

मिटके = ल० ६५।

[सं० पु०] (हि०) भटना धक्का। (बहुवचन)।

मिर मिर = अ०, १८।

[अ०] (हि०) विसा द्रव पदार्थ का फूहियाँ, धीर धीर भटना।

मिलकर = का०, २६२।

[क्रि०] (हि०) अवरदस्ती मित्रकर।

मिलना = ल०, ४६।

[क्रि०] (अ०) विवशतापूर्वक कोई कष्ट या आपत्ति भेचना।

मिलमिल = अ० ७३। का०, १७, ६७ ७८,

[वि०] (हि०) १०४ १३६ १६७, १२६। प्र०, ५। ल० ४३।

हिलता हुआ प्रकाश।

[सं० पु०] एक प्रकार का मुतायम कपड़ा।

मिल्ली = का० कु० १२४। का० १७५।

[सं० स्त्री०] (सं०) अ ३१।

मीगुर।

मिल्लोरव = चि० ५१।

[सं० पु०] (हि०) मीगुर का ध्वनि भनकार।

मोना = का० ५३।

[वि०] (हि०) बहुत महीन, मिनाड बहुत स धरा वाला। भकरा दुबल।

भीनी = का० कु०, ७२। का० १६६, २६३।

[वि०] (हि०) भाना का खालिग। २० 'भाना'।

भीम रहे = वा, ६५।
[क्रि०] (हि०) किमी भाव म मस्ती म भ्रम रहे हैं।
हिन रहे है।

भील = ऋ, ७१ ७२, ८६। ल०, १६।
[म० पु०] हि) खूब लबा चौटा प्रावृत्तिक जगमग
जिमके चारा घोर भीम हा।

[भील मे—'करना' मे पृष्ठ ७१ ७२ पर मकलिन
रचना। भील म श्याम बन क कालि
की छाया पड रहा थी। नभ व खिना
था और वाणा निरतर बज रहा
थी। प्रकृति मुग्य मन्च शान था।
उम एवात मे व्याकुल हा जब उमन
बहा कि एमा एवात बहाँ मिलेगा ता
मैने उमका हाथ अपने हाथ में ल
लिया और वह एकाएक नितात शिविन
हा गए। ऋ न परछाई, नभ शक्ति,
तारा, वृक्ष इम दृश्य का घोर सतत
वर अघ्रात हा गए क्या क दवान स
उमा प्रकार उनकी उगली हिन उठी
जम मनपज क ऋके म कामल
किमलय हिलकर मदमस्त हो जाता
है। ऋल मे तारे अष्टमा क चाँद का
भाँति लहरो म झलकते।]

भुड = म० ३, ५, ७।
[वि०] (हि०) समूह, गिरोह समुदाय।

भुभलाता = वा० २००, २२७।
[क्रि०] (हि०) क्रिभ्रता।

भुक = का०, ६४ ६८, १८५। वि०, ६६।
[पु० क्रि०] (हि०) ऋ०, २३। म०, २०, २१।
ऊपर म नीचे की धार दुनक कर।

भुकना = ऋ० ६६। ल०, १०, ३५ ६०।
[क्रि०] (हि०) = ऊपरी भाग का नाचे का घोर कुद
लटवना। निद्वरना, नवना म्च हाना।
मन का किना घोर प्रवृत्त होना।
हार मानना।

भुकाना = वा० कु०, ७३। वि०, ५८। ल०,
[क्रि० स०] (हि०) ६६।
नवाना, नाच का घोर लटकाना।

भुसान = वा०, १८५।
[म० पु०] (हि०) मन की प्रवृत्ति का किमी दिशा की
घार प्रवृत्त होना।

भुकी सी = वा०, १८६, ६४। वि०, २२। ऋ०,
[वि०] (हि०) २८।
कुद मुडा हुई सा। नमित गो।

भुके = वा० १४२।
[क्रि०] (हि०) प्रवृत्त हुए।

भुठलाना = वा०, २७२।
[क्रि०] (हि०) भूक बनाना, बहकाना।

भूठे = वा०, २८। वि०, १७६।
[म० पु०] (हि०) भूठ बाननेवाल। किमा वास्तविकता
का विररीन चित्रण।

भुरमुट = वा० ८८। प्र०, २। ल० २६।
[म० पु०] (हि०) पाम पाम उग हुए कई ऋक। वृत्त
स लागो का समूह गिराह। कुज।

भुरमुट सा = म० ४।
[वि०] (हि०) भुरमुट क समान। कुज न समान।

भुलाउंगी = का०, १५२।
[क्रि०] (हि०) परधान बरगा। विवश कर दूगी।

भुलसते = वा०, २१७।
[क्रि०] (हि०) अवेक गमा या जलने के कारण
किमा वस्तु क ऊपरा भाग का सुलना
या जलकर वाला पण जाना। ऋमत।

भुलसना = म०, ५।
[क्रि०] (हि०) द० भुनमत।

भुलसाता = का०, १५८।
[क्रि०] (हि०) भुनसा जाता। जलाता दुआ।

भुलसाना = वा०, कु०, १३।
[क्रि०] (हि०) दर्वे भुलमाना।

भुलसानेवाली = ल०, ६६।
[वि०] (हि०) जलानवाली।

भुलसाया = वा० १८१।
[क्रि०] (हि०) झुलम गया।

भुलसी = १२१।
[वि०] (हि०) झुलस गई।

भूम उठा = का०, २२३।

[क्रि० पु०] (हि०) मस्त हा उठा।

भूम भूमकर = क०, ८।

[पु० क्रि०] (हि०) हिन हिल कर।

भूमते = क०, १८ चि०, ३८। म०, ८, १६।

[पि०] (हि०) मस्ती म हिलते।

भूमना = क० ८। चि० ६६। ऋ० ६२।

[क्रि०] (हि०) ल ७४।

वार वार भाग पीछे किसी वस्तु का हिनना। भाके खाना।

भूम पड़ी = का०, २२।

[क्रि०] (हि०) प्रमत्त हा उठा।

भूमे = का० १४५।

[क्रि०] (हि०) प्रमत्त हुए।

भूल = का० ७३ १६२ २४६। म० ७०।

[क्रि०] (हि०) चौपाया का पीठ पर डाला जानेवाला बपडा। साधुमा का विशेष पोशाक।

भूलता = का०, २५३।

[क्रि०] (क्रि०) हिलता। भूत पर भूतने का दशा।

भूलना = ल० ४०।

[क्रि०] (हि०) नाच तटनकर वार वार भाग पीछे दवर उधर भाग स हिलना। भूत पर बठार पेंग लेना। बिना यात या काम की आशा म बराबर बिना एक स्थान पर भाते जात रहना। लटवना।

भूला = का० १४६, २६४।

[म० पु०] (हि०) पेड या धत म लटवार्द हूद रस्सियाँ या रस्स जिसपर बठकर भूना है। हिंडान।

भूले सी = का० १०५ १५१।

[पि०] (हि०) हिंडान न ममान।

भून्ने = का० १२८।

[क्रि०] (हि०) भूना का विधियुक्त रूप।

भेन्न = क०, ७०।

[पु० क्रि०] (हि०) केनकर। सत्कर।

भेलता = का० २१६।

[क्रि० म०] (हि०) महता हुमा।

भेलती = का०, १४३।

[क्रि०] (हि०) सहता हुई।

भेलना = का०, ७७। का० कु०, १०, ६७।

[क्रि०] (हि०) ऋ० ३२।

सहना।

भेलती है = २२६।

[क्रि०] (हि०) सहती है।

भोकर = का०, २७। का० कु० १८ २५।

[म० पु०] (हि०) का०, १७०, २६०। ऋ० ७३। भुनाव, प्रवृत्ति। बाक। भार। प्रबन या तीव्र गति। वेग, तेजी।

भोके = का० १०५ ११८।

[म० पु०] (हि०) भोक का वृत्तचन।

भोपडे = ल० ५६।

[म० पु०] (हि०) घास फूस का बना हुई कुटा।

भोगी = क० ५४।

[म० स्त्री०] (हि०) भाना।

भोली = ल० १७।

[म० स्त्री०] (हि०) भोला का। धना।

ट

टकार = का०, २००।

[म० स्त्री०] (म०) भनकार। विस्मय। काति। ठन ठन शब्द। धनुष खींचन का शब्द।

टक = चि०, १५१ १७१। प्र० ३।

[म० स्त्री०] (म०) स्थिर दृष्टि। तराजू का पलटा।

टकराना = का०, ८ ४३। का० कु० ५७।

[क्रि० म०] (हि०) का०, ० १२, १७, १६, २६, ५२ ६८ १६७, २४६ २६३। जार स भिन्ना टकरें खाना मार भाते फिरना व्यथ घुसना।

[क्रि० म०] एक चाज पर टकरा चाज का जा म मारना टकर दना।

टने मोल = प्र० २।

[पु०] (हि०) मन्त भाव।

टटोलता = का० ५१।

[क्रि० म०] (हि०) मातृम करन व त्रिग उगतिना स छुना या दबाना। नूनन व त्रिग इयर उवर

हाथ पलाना या दीठाना । बातचीत के द्वारा किसी के भाव को जानना ।
घाट लेना ।

ट्टी = प्र०, ४ ।

[सं स्त्री०] (हि०) बनि या गम आदि का बना हुआ हल्का और छोटा टट्टर ।

टपमाना = घा०, ५७ ।

[क्रि० घ०] (हि०) बूद बूद करके गिराना, चुपाना ।
भभके म अथ सीचना या चुपाना ।

टरो = का० कु०, ११६ ।

[क्रि० प्र०] (हि०) भाना दकर किसी को हटाने की सूचना देनेवाली क्रिया ।

टलती विचलती = ल०, ६६ ।

[क्रि० प्र०] (हि०) हट जाती और भ्रान्त संसुद्ध भोज लेती । अर्थ विचारा संस्रग हो जाती और दूर हो जाती ।

टलना = का० कु०, ४१ ।

[क्रि० घ०] (हि०) सामन सं हटना, विमकना, अर्थनी जगह में हटना ।

टहिनियाँ = का० कु०, २६ ।

[सं स्त्री०] (हि०) वृक्ष की पतली या छाटी शाखाएँ, पतली टाकियाँ ।

टहलना = का० कु०, १८, ६८, १०१ । का०,

[क्रि० घ०] (हि०) २०५, २६६ । क० २५ ।
मनहलाक के लिये धार धीरे चलना । घूमना फिरना ।

टालीकोट = वि०, ६३ ।

[सं पु०] (हि०) एक स्थान बिणय का नाम जहाँ प्राचीन काल में मुगला के साथ महाराज सूर्यसेनु का युद्ध हुआ था ।

[टालीकोट—राम्गा नाम क विनार नकिमन का स्थान जहाँ १५६५ में म मुगला व साथ महाराज सूर्यसेनु का युद्ध हुआ था ।]

टिपना = का०, १८०, २०० । प्र०, १६ ।

[क्रि० घ०] (हि०) कुछ समय के लिये रचना या ठहरना कुछ शिवा तथा काम रना या काम म अना म्पिर रटना बना रहना या असा रहना ।

टीको = वि० ६ ।

[म० पु०] (प्र० भा०) टीका या मिलक ।

टुफडा = का० कु० १०२ ।

[म० पु०] (हि०) लड, चिह्न के द्वारा किसी वस्तु का विभक्त अर्थ । राठा का लोडा हुआ अर्थ या लड ।

टुकडी = घा० १३ ।

[सं स्त्री०] (हि०) २० टुकटा । २३, जया । किसी विशेष प्रकार क काम करनेवाला का ट ।

टुकडे टुकडे = क०, ३८ ।

[सं पु०] (हि०) लड लड ।

टूट = का० ३६ । १०, ६५ ।

[पूर्वक्रि०, घ०] (हि०) टूटकर । टूटकर निकला हुआ लड । टूटना । भूना । टाटा पाटा, भूना । कमी ।

टूटना = का० कु०, १०८ । का० १६३ । ल०,

[क्रि० घ०] (हि०) २१ ।
लड खट होना । भग्न होना, अर्थ का जोड जाऊ उमड जाना । लगानार चलनेवाली क्रिया का अर्थ रचना । किसी पर अक्रान्त आक्रमण करना । अक्रान्त वस्तु म लोका का टूटने के लिये या मारने क लिये आ जाना । अर्थ वभन म कमी का अना । युद्ध म किले का अशु के हाथ म आ जाना । शरीर में छेदन या तनाव क साथ फोडा होना ।

ट्टी = घा०, १० । प्र० १८ । ३, ४२ ।

[क्रि० घ०] (हि०) टूट गई लड लड हा गई ।

[वि०] (हि०) ट्टी टूड । लड लड हानवाली ।

[सं स्त्री०] (हि०) धागा भूना । कमी ।

टूट = का०, १८५ । प्र०, १३ । म०, ११ ।

[क्रि० घ०] (हि०) टूट गए ।

(वि०) टूट गए ।

टेक = का० ५५, १५२ । वि०, २० ।

[सं स्त्री०] (हि०) नारा वस्तु का टिकाए रखने क लिये उभर नाक लगाई हुए लकड़ी । चाँड, धूना । दौमना, महारा । आश्रय,

अथवा। ऊँचा टाला। मन म ठानी
हृद यात, हठ।

देढी = चि० १८५, १९०। ऋ० ३२।
[वि० स्त्री०] (हि०) जो गाथा न हो, कुटिल, तिरछा, बठिन
मुश्किल।

देरो = चि १७२।
[क्रि० सं०] (प्र० भा०) टेरना या पुकारना। पुकारा।

टोक = का० २२५।
[म० स्त्री०] (हि०) टोकने का क्रिया या भाव। किसी वस्तु
का आर या छोर।

टोकना = वा० कु ४५।
[क्रि० सं०] (हि) किसी को काम करने के लिये उद्यन या
तयार दलकर बुद्ध कहर या पूछताछ
करके रोचना।

टोने से = का० ३६।
[वि०] (हि०) टडोलते हुए के समान दूडन हुए स।
टान स।

टेरि = चि० ४१।
[पूर्व० क्रि०] (हि०) पुकार कर।

टोलियाँ = ऋ० ७०।
[म० स्त्री०] (हि०) एक साथ एक काम करनेवाले यत्तियों
को छोटी छोटी मडलियों छाट मुद्दल।

ठ

ठडक = का० १०१।
[म० स्त्री०] (हि) शात मरना जाडा। तरी राताग
रूमि।

ठगे से = वि० १५७।
[गुहा०] (प्र० भा०) ठग म बठिन स भवचवके म।

ठहर ठहर = का० २०१ २४१। न० ६ २० ३६।
[पूर्व० क्रि०] (हि०) रह रहकर ग्व रहकर।

ठहरती = का० २५ ८६, १०, २६०।
[क्रि० सं०] (हि०) 'ठराना' मरना।

ठहरना = घा० २३, क १५। का० कु० ८।
[क्रि० सं०] (हि०) ऋ० २४ २६ २१, ८० ८८। ल०
१० ७१।

रचना। घबना। ठरा दानना, गिचना।

एक स्थान पर बना रहना। जगो
सराव या नष्ट न होना। घब रहना,
नि श्वत या पका होना।

ठहरात = चि० ६७।
[क्रि० सं०] (प्र भा०) 'ठहराना'।

ठहगतो = का० ६।
[क्रि० सं०] (हि०) 'ठहराना'।

ठहराना = का० २६।
[क्रि० सं०] (हि०) चलन स राकना। टिकाना। घडाना।
पका करना स करना।

ठहरानो = चि० ३६।
[क्रि० सं०] (प्र० भा०) किसी को ठहराने के लिये दूर
का प्रेरत करना।

ठहरे = का० १६२।
[क्रि० सं०] (हि०) रवे घडे।

ठहरो = का०, कु०, ८४। का०, १०० १०६
[क्रि० सं०] (हि०) २००। म० ४
ठहरने का आना देना।

[ठहरो—पहले पहल इडु कना ३ किरण २,
कारिक १६६८ वि मे प्रतागिन घोर
कानन कुमुम म पृष्ठ ४४४ पर
मकनित। मिन पय पर वग व
माय घाड पर मुम बह्री जा रहे हो
नुम्डारा घोर घानुर टाट स कोड
दल रहा है, उगपर त्या हट्टि म बाई
नो दमना। 'हट जापो की बडा
घावाज म वह डर जाना है यदि उग
मावना त्या ता बह प्रम मुनि
ट गा। वह नुम्डारा घाघिन ३ यह
मन भूना। घोर बह नुम्डारा घाघिन
है इमनिघ घमड मन करो। कुनि
दृष्टि म बह मयकपिन हा जाना है
किर भा डरा रहन पर भा वह काम
म लवनान रहना ३। उगका मुहें
घपमान नगे कना कारिण घरिनु
मधुर मबायन म उम बुनाना घाघि।
निनका मन जरा उग घमहाय की भा
मुन सा जा साट पर बराह रहा है।

उमसे भी बकश न बोना सीठी बोला
गाना । उमका भाँया म धाँयू है । वह
दुख वा महागार है । जिम भभिमान
रूपी नौका पर तुम चते हा वह मति
दुः है । वह प्रगाम करता है भौर तुम
उमका उमर तक नही देत । क्या वह
जाव नही है जो उमका धार दृष्टि नही
करत । यह क्या भभिमान धोर क्या
बठोरता यदि उमने बोई भून की है
ता भून जाओ । यदि उमका कपडा
गंता होत के बारख उम पाम नही
बठा मकन ता उम एर नया कपडा
नही पहना मकन । तुम्हारा भ्रुटुनियाँ
टनी है चेहरा भी लाल है, तुम्हारे
म्यान म नलवार भी नही है, वह तुम्ह
दख कर डर रहा है, मपने हाँषा का
रोना धोर यन्ति उसपर बोई वार कर
ता उम भी राका । ममार स जा डर
हूण है उनक निय तलवार नही है
उनक निय तो तुम्हारी सात्वना
चाहिए उमस हा व नम्र हाण ।]

ठॉव = का० १८ ।

[सं० पुं०] (हिं०) म्यान, जगह, ठिठाना ।

ठाढो = चि० ७०, १८१ ।

[म० पुं०] (श्र० भा०) सदा ।

ठानो = चि०, ६१ ।

[क्रि० सं०] (श्र० भा०) ठानना, त परता के नाय काय
धारभ करना, दृष्ट सक्त्प करना ।

ठान्यो = चि०, ३२ ।

[क्रि० सं०] (श्र० भा०) ठान लिया, दृष्ट कर लिया, पक्ता
कर लिया ।

ठिठक्की सी = का०, ३६ ।

[वि०] (हिं०) खतता हुई के समान या रुक रुक कर
चलता हुई की तरह ।

ठिठकी = चि० १६४ ।

[क्रि० भ०] (हिं०) गक गई, थम गई, ठिठक गई ।

ठिठुरे = का०, ३ ।

[वि०] (हिं०) मरती के बारग एँडे हूण या मिकुडे हूण ।

ठिठोली = चि०, ५८ । ल०, १७ ।

[सं० स्त्री०] (हिं०) दिम्नगी, मजाव हता ।

ठीक = का०, १३, २२, २३, २६ । वा०, ११०

[वि०] (हिं०) २५१ । क्र० ३२ । प्रे० ४ । म०,
५ १०, ११, २१ ।

यथाय प्रामाणिक । उपयुक्त उचित,
मुनामिर । शुद्ध दुःख्त । मीरे रास्त पर
धायी हुआ । निश्चिन किया हुआ, पका ।

ठुरराना = का०, १२६ । क्र०, ३१ । ल०, ४२ ।

[क्रि० ग०] (हिं०) ठावर लगाना, तुच्छ ममक कर दूर
करना ।

ठोर = का० कु०, १४ । वा०, १०२ १६३ ।

[सं० स्त्री०] (हिं०) प्रे० १६ । ल०, ५७ ।

वह आघात जा रास्त मे चलन हुए
कण्ड पत्थर आदि के धक्के स पर म
लगता है ।

ठोस = ल०, ७६ ।

[वि०] (हिं०) जा पोवा या खागला न हो । दृढ,
मजबूत ।

ठौर = चि०, १७५ १८६, १९० ।

[सं० पुं०] (हिं०) जगह, स्थान ।

ठौरहि ठौर = चि० १८३ ।

[म० पुं०] (श्र० भा०) जगह जगह, प्रत्येक स्थान ।

ड

डन = का०, २४६ । ल०, ७८ ।

[म० पुं०] (हिं०) धार, विपल काडो वा वह ध्रग जिलके
माध्यम से डमते है । कलम की जीभ ।

डग = का०, २१४, २८० ।

[सं० पुं०] (हिं०) फाल, कदम । कदम के बीच का वह
दूरी जो एक स्थान से दूसर स्थान
पर चलते हुए पर रखने मे आती है ।

डग भरता = का० २८६ ।

[पुटा०] (हिं०) कदस रखन हुए चलन जाना ।

डगमग = का०, १६५ । ल०, ५० ।

[सं० पुं०] (हिं०) इधर उधर हिलना डुलना । विचलित

होना किसी बात पर जमा न रहना ।

डर = का०, ६८ । का०, १२, १६६ नि०, [सं० पु०] (हिं०) ६७, म०, १२, १३ ।

घ्रनिष्ठ की आशंका से उत्पन्न होनेवाला भाव । भय, भीति । घ्रनिष्ठ की सभा पना से मन में होने वाला कम्पना । आशंका ।

डरती = का० १७६ ।

[त्रि०घ०] (हिं०) डरना' क्रिया का सामान्य वर्तमान रूप । >० डरना' ।

डरना = का० कु० ४४, ८५ । चि० ७२ । [क्रि० घ०] (हिं०) ऋ०, २१ ७८ । ल० ३८ ।

घ्रनिष्ठ अथवा हानि की आशंका से व्याकुल होना । भयभीत होना । आशंका करना ।

डरछु = चि०, ५२ ।

[क्रि०घ०](त्र०भा०) डरो, भय करो ।

डरा = का०, १८२ १८६ ।

[क्रि०स०] (हिं०) डर गया भयभीत हो गया ।

डराहि = चि० २२ ।

[क्रि०घ०](त्र०भा०) डरते हैं भय करते हैं ।

डरे डरे = का० १७६ ।

[वि०] (हिं०) भयभीत आशंकित । घ्रनिष्ठ की सभा पना से किसी के सामने आने में हिचकिचाहट, सकोच तथा भय भाव से भरे हुए ।

डरो मत = का०, ५८ ।

[क्रि०] भयभीत न होओ ।

[डरो मत ओ अमृत सतान—हस में कामायनी के अर्द्धा' मग का यह अंतिम अंश मई १९३० के अंक में प्रकाशित हुआ था जो कामायनी के पृष्ठ ५८ ५९ पर है । इसका शीर्षक था 'मानवता का विकास'—३० कामायनी ।]

डाँडे = का० १६ ।

[सं० पु०] (हिं०) नाव को घेने का ढाँचा ।

डार = चि०, १५, १४७, १७२ ।

[म०स्त्री०] (हिं०) ढाल, शारदा । एउ प्रकार का लूंग जो फागम जलाने के लिये दावार में लगाई जाती है । दलिया ।

डारि = चि० २६ १६३ ।

[पुव०त्रि०] (७० भा०) ढालकर, छोड़कर ।

डारिके = चि०, १७२ ।

[पुव०त्रि०] >० डारि' ।

डारगो = चि० ६७ ।

[त्रि०स०] (हिं०) ढाल लिया छोड़ दिया ।

डाल = का० १६ । का०, ५६, १४१ १५१,

[सं० स्त्री०] (हिं०) २११ । चि०, १४६ । ऋ०, ४६ ।

प्रे० ८, १६ । म०, ७ । ल०, ६७ ।

पेठ का शाखा डार । तलवार का फल ।

डाल डाल = का०, ६८, २६३ । ऋ० २७ ।

[सं० स्त्री०] (हिं०) प्रत्येक बात सब जगह ।

डालना = घ्रां०, ४२ । का०, ५, ३१ का० कु०,

[क्रि०स०] (हिं०) ३६ । ल० ४१ ।

नीचे गिराना छाडना । किसी पात्र में कोई वस्तु गिराना छोडना । घुसाना । फलाना ।

डालने = का० १४४ ।

[क्रि०स०] (हिं०) छोडने, फेंकने रखने ।

डाल पास = का० कु० १०१ ।

[सं० पु०] (हिं०) शाखा और पत्त ।

डाल सहित = का० कु० २५ ।

[वि०] (हिं०) शारदा के साथ या सहित सशाल ।

डाला = का० १६२, १६६ ।

[क्रि०स०] (हिं०) छोड दिया, फेंक दिया रख लिया ।

डालियों = का , ३२, १७७ ।

[सं०स्त्री०] (हिं०) शाखाएँ डालियाँ ।

डाली = घ्रां०, १८, २६ । का०, ७७ ६८,

[म०स्त्री०] (हिं०) १६३ १६७ १७७ २८४ । का० कु०,

३८ । चि० ४६ । प्र० २, ६, १४ ।

म०, २ । ल० ३१, ३५, ४२ ।

>० 'डाल' ।

डाले = घ्रां०, १६ । का०, १४८ ।

- [क्रि० स०] (हि०) छोटे, रवे, पेंने ।
 डालों = का०, १५८ ।
 [स० स्त्री०] (हि०) द० 'डालियाँ' ।
 डालो = का०, १८४ ।
 [क्रि० म०] (हि०) डालना वा आनाथ व क्रिया ।
 डाह = का०, ८४ ।
 [स० स्त्री०] (हि०) जलन, ईर्ष्या ।
 डोह = का० १४५ ।
 [स० पुं०] (हि०) छोटा गाव । उजड़ हुए गाँव का टाला ।
 ग्राम दवता ।
 डुवाना = चि०, १७८ । ल०, १८ ।
 [क्रि० म०] (हि०) पाना या किमी तरल प्पथ म समूचा
 डालना । गोता दना । चोपट या नष्ट
 करना ।
 डुबी = भ०, ५१ ।
 [स० स्त्री०] (हि०) जल म हवने का क्रिया या भाव गाना ।
 डुबती सो = का०, २६ ।
 [वि०] (हि०) हवता हुई के समान, वह जो डुबता
 प्रतान हानी हा ।
 डूनना = आ० १ का० कु०, २८ । का०, ८२,
 [क्रि० म०] (हि०) १८८ । चि०, ८ । प्र० २ ।
 पानी या किमा तरल प्पथ म पुरा
 समाना, गाना खाना । सुव चद्र आद
 ग्रहा वा अस्त होना । चोपट होना नष्ट
 होना । श्दग १८९ हुए घन वा न
 मिलना । व्यापार से लगे हुए घन वा
 घटना ।
 डूबा = का०, ८, १५, ७० । १५६, १६८ ।
 [क्रि० म०] (हि०) हव गया । नष्ट हो गया । सुव, चद्र
 आदि ग्रह नष्ट हा गए ।
 डूबे = का०, ८, ५६, १८४ ।
 [क्रि० म०] (हि०) 'डूबा' ।
 डेरा = का० कु० ६३ ।
 [स० पुं०] (हि०) टिकान, ठहराव । खमा, तबू । ठहरन
 वा स्थान, छावनी ।
 डेरा डालना = आ० १५ ।
 [पुद्दा०] (हि०) ठहरने क लिये आयोजन करना या
 टिकना, ठहरना । उ०—पाकर इस शूय
 हृदय का सवन आ डेरा डाला ।

- डोर = का०, २६५ । ल०, ४६ ।
 [म० स्त्री०] (हि०) पतला तागा, डोरा, धागा । पानी
 पीचनेवाली रस्ती ।
 डोरी = का०, १२५ । का० कु०, ११४ ।
 [स० स्त्री०] (हि०) रस्ती, रज्जु । पाण, बधन ।
 डोरी सी = ल०, ६६ ।
 [वि०] (हि०) डारी व ममान । पतली ।
 डोल = का० ६८, १४८, १६६, २३७, २५२,
 [स० पुं०] (हि०) लाहे का गोल बरतन । हिडाला,
 भूला । पालवी ।
 डोलत = चि०, १, १५८, १६१ ।
 [क्रि० म०] (हि०) डोल रहा, हिलडुल रहा, चल रहा ।
 टोलना = ल०, १६ ।
 [क्रि० म०] (हि०) हिलना चलायमान होना । चलना,
 फरना, टहलना । हटना । चला
 जाना । चित्त विचालत होना ।
 टोल = चि०, १४ ६६ ।
 [क्रि० म०] (ब्र० भा०) १४१, चल, हट । '० डाना ।'
 ढ
 ढँक रहे थे = का० ४६, १५१ । ल०, २१, २५ ।
 [क्रि० म०] (हि०) किमी वस्तु व ऊपर जाता दूसरी वस्तु
 (जस चादर आदि) को आच्छादित करना
 की क्रिया कर रह व ।
 ढँकना = आ०, ७६ । प्र०, १२ । ल०, ७६ ।
 [स० पुं०] (हि०) ढाकने का वस्तु, ढङ्गन ।
 [क्रि० म०] (हि०) छिपाना ।
 [क्रि० स०] (हि०) किसी वस्तु का आच्छादित करना, जिसा
 वस्तु का जिसा स ढाककर छिपाना ।
 ढग = का० कु०, ६६ । म०, १४ ।
 [स० पुं०] (हि०) रात, शला, प्रखाला, पढात । प्रकार,
 भात, तरह । रचना, बनावट । युक्त,
 उपाय । आचरण, व्यवहार, चालढाल ।
 सञ्च, स्थित, दशा ।
 ढक ले = भ०, २२ ।
 [क्रि० म०] (हि०) ढकना क्रिया का प्ररणायक वतमान
 रूप ।
 ढकी = का० कु०, ७१ ।
 [वि०] (हि०) ढकी हुई, छिपी हुई, आच्छादित ।

ढके हुए = ल० ६४।
 [वि०] (हि०) धिगे हुए। मोट म रहनेवाले।
 ढयो = चि०, १८४।
 [क्रि० स०] (ब्र० भा०) नष्ट कर दिया, बरबाद कर दिया।
 ढरना = भ०, १६, ४४। ल० ३८।
 [क्रि० घ०] (हि०) ढरकना, ढल जाना, गिरकर बह जाना। गुजरना, बीतना। उडैला या लुटकाया जाना। सचि मे ढाला जाना।
 ढरी = का० १८१।
 [क्रि० घ०] (हि०) 'ढरना' क्रिया का सामा य भूत रूप।
 ढरे = का०, ६७।
 [क्रि० घ०] (हि०) दे० 'ढरी'।
 ढरो = का० कु०, ७७।
 [क्रि० घ०] (हि०) 'ढरना' क्रिया का ग्रानामुक्त रूप।
 ढल गया = का० १४४, २३५। ल० ३५।
 [क्रि० घ०] (हि०) समाप्त हो गया, भ्रस्त हो गया।
 ढलकना = ल० ६।
 [क्रि० घ०] (हि०) किमी तरल या द्रव पदार्थ का आभार से नीचे की ओर जाना ढलना, लुडकना।
 ढलता सा = का०, १०१।
 [वि०] (हि०) ढलत हुए के समान, भ्रस्त होता हुआ सा या समाप्त हुआ सा।
 ढलती = का० १७६।
 [क्रि० घ०] (हि०) पद मे हो जाती। उतरता, समा जाता या विलीन हो जाता। अनु रूप हो जाता।
 ढलते = का०, २६४ २७२।
 [क्रि० घ०] (हि०) 'ढलता'।
 ढलना = प्र० ४। म०, २०।
 [क्रि० घ०] (हि०) ढरकना, गिरकर बहना। बीतना लुटकना। किमा क पद म होना। किसी पर प्रसन्न होना। सचि म ढाना जाना। लहराना।
 ढलमल = ल०, ३०।
 [वि०] (हि०) लहराता हुई, आभा स युक्त।
 ढला = का०, १६५, २२८।
 [क्रि० घ०] (हि०) 'ढलना' क्रिया का सामा य भूत रूप।

ढली = का०, २४७।
 [क्रि० घ०] (हि०) 'ढला' (स्त्रालिग)।
 ढलें = ल०, ४२।
 [क्रि० घ०] (हि०) ढलना क्रिया का प्रेरणापत्र रूप।
 ढहपर = का०, १४५।
 [पूव० क्रि] (हि०) गिरकर या ध्वस्त हाकर, नष्ट होकर, मिटकर।
 ढार = का० ८३। का० कु०, ७७। भ०, [स० पु०] (हि०) २१, ४४।
 ढाल उतार। ढाँचा, रचना, बनावट।
 [सं० स्त्री०] (हि०) वान का एक गहना।
 [क्रि० स०] (हि०) 'ढारना' क्रिया का सामा य रूप।
 ढारत = चि०, १८२।
 [क्रि० स०] (ब्र० भा०) ढार रहा या ढार देना।
 ढारि = चि० १५०।
 [पूव० क्रि०] (ब्र० भा०) ढारकर।
 ढारि के = चि० ४७।
 [पूव० क्रि०] (ब्र० भा०) 'ढारि'।
 ढाल = का० ७२ १६८ २२८। म० ११।
 [स० स्त्री०] (सं) एक प्रकार का वह मसू जिसस तल वार आदि की चाट रोका जाती है।
 (हि०) वह जगह जा बराबर नाचा होता चली गई हा। ढालन का क्रिया या भाव।
 ढालकर = का०, १६३।
 [पूव० क्रि०] (हि०) उडेलकर, गिराकर।
 ढालती = का०, १८३, २६८।
 [क्रि० स०] (हि०) 'ढालना' क्रिया का सामा य भूत रूप।
 ढालना = का० कु० ६७।
 [क्रि० स०] (हि०) रिसा तरल पदार्थ को गिराना या उडेलना।
 ढालनें = का० २७६।
 [वि०] (हि०) वह जमीन जो बराबर नीचा हली गई हो। ढालू।
 ढिग = चि० ३६ ६६।
 [क्रि० पि] (हि०) ममाग, निवट।
 [सं० स्त्री०] (हि०) ल' विनास। धार, हाथिया।

ढीठ = चि०, १८३, १८५।
 [वि०] (हि०) बडा का आदर या मकाच न करने-
 वाला, अनुचित साहम करनेवाला,
 माहसी।
 ढिठाई = चि०, ६६।
 [म० शी०] (हि०) डाठ हान की क्रिया या भाव अनुचित
 साहस, निलज्जता, धृष्टता।
 ढील = ल०, १५।
 [स० शी०] (हि०) क्षिप्रता मुस्ती, अनुचित विनय।
 बचन का ढीला करने का भाव।
 ढीला = का० १०४। ल०, १४।
 [वि] (हि०) जा कमा या तना न हो। जा बन्त
 गाना न हा। जा अपने कत य अथवा
 संवन् पर स्थिर न हा। मुस्त,
 झालसी।
 ढीली = का०, २७१। चि०, १८१।
 [वि०] (हि०) '० ढीला'।
 ढीली सी = का० २३४।
 [वि०] (हि०) मुस्त रहनेवाली की तरह, झालसी
 मटण। वह जियका बचन जुजुज
 मासूम होता हा।
 ढुलकना = प्र० १८ २२। ल०, ७८।
 [क्रि० अ०] (हि०) निरतर ऊपर से नीचे की धार लुप्त
 कत हुए गिरना, लुप्तना।
 ढुलकन्कर = का०, २६८।
 [श्रव० क्रि०] (हि०) जुडककर।
 ढुलकाना = १४।
 [क्रि० स०] (हि०) लुप्ताना, ढगलाना।
 ढेर = प्र० २०। म० २।
 [सहा पु०] (हि०) मसूह घटाला, राशि।
 [वि०] अधिक बहन।
 ढेरी = घा०, ३५। का० कु० ४६।
 [सहा शी०] (हि०) मसूह राशि।
 ढेरों = का० १६०।
 [वि०] ढेर का बटवचन।
 ढोकर = का०, ८६।
 [क्रि०] (हि०) लानकर लाना, वहन करना।
 ढोती = का०, ११८।
 [क्रि०] (हि०) ढोती है।

ढोना = घा० १२।
 [क्रि०] (हि०) वहन करना लादकर लाना।
 त
 तलु (तन्नु) = का०, १५१, १८५। चि० १४३।
 [स० पु०] (म०) मूत, तागा। मतान। विस्तार,
 फलाव। तात।
 तलु सन्श = का० १४५।
 [म० पु०] (म०) माय का तरह मूत की तरह।
 तत्र = का० कु०, ११४। का० १६३।
 [म० पु०] (म०) मूत। जुनाहा। ताँत। कपडा। मिद्धात।
 प्रमाण। कारण उपाय। अविचार।
 समूह। घन। थणी। उद्देश्य। हिंदुमा
 का उपासना मद्यमी एक शास्त्र जो
 शिव का चनाया हुआ माना जाता है।
 तद्रा = मा० ५४। का० ३४ ६८ १००,
 [सं० शी०] (स०) १६६, २२६। ऋ० ८८।
 यह अवस्था जो नीच आन के पट्टे
 हाता है। उचाइ।
 तद्रालस्य = का० १६७।
 [वि०] (हि०) तद्रा से आलस्य युक्त।
 तद्रा सी = प्र० १६।
 [म० शी०] (हि०) धलमाई हुइ, तद्रा व समान अलमाई
 हुई।
 तउ = चि० ५१, १६५।
 [अव्यय] (हि०) तो भी, तिमपर भी तथापि।
 तऊ = चि०, १७६ १८४।
 [अ०] (अ० भा०) 'तउ' 'तउ'।
 तक = घा०, ४०। का० कु०, ४१। का०,
 [अव्यय] (हि०) २८, ४२, ६४, ६६, १४० १४२,
 १६६, १६६ १७०, १७५ १७६,
 १८५ २१५, २२०, २५४। प्र०,
 १८, १६, २२, २५ २६। म०, ११,
 १५ २२। ल०, १५, १६।
 किमी वस्तु या व्यापार की सीमा या
 अवधि मूचित करनेवाली एक विभक्ति।
 पपत।
 तकली = का०, १४१, १४२ १४५ १५०।
 [सं० शी०] (हि०) वह यत्र जिसस मूत जाता जाता है।

तज = ल०, १४, १५, १७ ।
 [पूर्व० क्रि०] (हिं०) छोड़ना परित्याग करना, त्यागना ।
 तजत = चि०, ३२ ।
 [स० पु०] (प्र० भा०) त्यागने की क्रिया या भाव ।
 तजि = चि०, ७७, १०६, १४८, १८८ ।
 [पूर्व० क्रि०] (प्र० भा०) त्यागकर, छोड़कर, तजकर ।
 तजै = चि०, १०३ १६८ ।
 [क्रि०] (प्र० भा०) तजता है ।
 तजौ = चि० १०३ ।
 [क्रि०] (प्र० भा०) छोड़ा त्यागो ।
 तजयो = चि०, ७७ ।
 [क्रि०] (प्र० भा०) त्याग दिया, छोड़ दिया ।
 तट = ग्रा०, ४, ८ ७२ । क०, ६०, १० ।
 [स० पु०] (स०) का०, १३, १६, ३८ ८१ २४५, २४६ ३५०, २६३ २६६ २७० ।
 चि०, १५ । क० ३५ । प्र० ८ । म० ८०, ल० ५३, ५६ ।
 क्षत्र प्रदेश । किनारा, तीर । महात्त्व ।
 तटन = चि०, १५० ।
 [स० पु०] (प्र० भा०) तटा किनारो ।
 तटिनी = प्र०, ८, ११, २१ ।
 [स० स्त्री०] (स०) नदा, सरिता ।
 तटिनी तरंग = का० कु० ७२ ।
 [स० पु०] (हिं०) नदा का लहर ।
 तडित्त = का० कु०, ४३ । ल० ३२ ६३ ।
 [स० स्त्री०] (स०) विद्युत् विजला ।
 तत्व = क० २८ । का०, ३ १५३ २६८ ।
 [स० पु०] (स०) प्र० २० ।
 यथायथा जगत् का मूल कारण ।
 सांख्य शास्त्र में तत्व २५ माने गए हैं ।
 (पुन्य प्रकृति बुद्धि, अहंकार चक्षु
 कर्ण नासिका जिह्वा त्वक् वाक्
 पाणि पायु पात्र उपस्थ मन श्च
 स्पश, स्पर्श, गन्ध पृथ्वी जल तज
 वायु आकाश) । परमात्मा ब्रह्म । सार
 वस्तु गाराग ।
 तत्पर = क०, ११ ।

[वि०] (स०) उद्यत, सतत । दक्ष, निपुण ।
 तथा = प्र०, ११ ।
 [प्र०] (स०) श्रीर ।
 तथागत = ल०, १२ ।
 [सं० पु०] (म०) गौतम बुद्ध ।
 तथापि = का० कु० ३६ । चि० १५५ ।
 [अव्य०] (स०) तो भी, तब भी, तिसपर भी ।
 तदापि = चि०, ३०, ३६ ४१, १०१, १६६,
 [प्र०] (स०) १६८, १७० ।
 तो भी, तिसपर भी, तथापि ।
 तद्याप = चि०, ७०
 [प्र०] (स०) तो भा ।
 तन = ग्रा० २४, क० १२२ २६३, चि०
 [स० पु०] (स०) ३४, १४८ क०, १६ ।
 तनु शरीर, देह काया, चदन ।
 तनक = का० कु०, ४५ ८४ ।
 [वि०] (हिं०) २० तनिक ।
 [स०] एत रागिनी का नाम ।
 तनता = का० कु० ११७ । का० ३४ ।
 [क्रि० प्र०] (हिं०) तनना क्रिया का रूप ।
 लिखाव के कारण अपने पूरे विस्तार तक पहुँचना ।
 अकड कर साधा खडा होना । अभि
 मानपूर्वक रूढ़ होना ।
 तन मन = का० १२८ । चि०, ६५ । प्र० प०, २ ।
 [सं० पु०] (हिं०) पूछ त्वपरता, पूछ सहयोग सब कुछ ।
 तनरत्ना = का० कु० ३५, का० १६१ प्र० प०,
 [सं० स्त्री०] (स०) १५, २५ ।
 बचाव, रक्षण । राल, भस्म । शरार
 का रक्षा ।
 तना = का० कु० ६ । का० ७१ १२६,
 [सं० पु०] (पा०) (हिं०) २०५ । चि०, १५१ ।
 वृद्ध व नाच का हिस्सा जहाँ डाली
 नही जाता । पेठ का घट ।
 तनिक = का० कु० ४५ का०, २४ ७१
 [वि०] (हिं०) १४१ १६० १६४, १६७ क० ३६ ।
 यात्र, वन, घोटा ।
 (क्रि० वि०) (हिं०) जरा भी, डक ।

तनिको = आ० ४६। क०, १४। चि, १८६।
[क्रि० वि०] (ब्र० भा०) जरा भी।

तनी = चि० १६४।
[क्रि०] (हि०) तनना का भूतकालिक स्त्रीलिंग रूप।

तन्मय = का०, २७३, ८५, २८६।
[वि०] (स०) किसी काम में मग्न, दत्तचित्त तब लीन।

तन्मयता = आ०, ६६।
[स० पु०] (हि०) किसी काम में मग्न दत्तचित्त, लवलान।

तप = क०, २८, २९ का० ३१, ३३, ३६
[स० पु०] (स०) ५५ २४२, २४७। ल० ३३।
तपस्या। नियम। अग्नि। एक कला का नाम। एक लोक का नाम। शरीर और इंद्रियों को वश में रखने का धर्म। ग्रीष्म ऋतु।

तपती = क०, ३२।
[क्रि०] (हि०) जलती, गरम होता।

तपते = का०, ५०।
[क्रि०] (हि०) जलत, गरम होने। पूण ताप पर होते।

तपन = का०, ५०। चि० १५६। प्र० १,
[स० पु०] (स०) ४, १५ २६।

जलन। मूय। एक प्रकार की अग्नि। एक नरक। अरुणों का पेड़। वह त्रिया, या हावभाव जो नायक के वियोग में नायिका कर या दिखावे। ताप गरमी।

तप वन = चि०, ५६, ७६।
[स० पु०] (हि०) तपस्या का स्थान, ऋषियों का आश्रम तपस्या करने का जंगल (वन)। अरण्य की तपस्या भूमि।

तपस = का०, २७०।
[स० पु०] (हि०) चंद्रमा। सूर्य। पत्नी। अतर्था। फागुन मास।

तपसी = चि० १८३।
[स० पु०] (हि०) तपस्या करनेवाला। तपस्वी।

तपस्या = का, ३३। क०, ७८।
[स० फी०] (स०) तप, अतर्था। फागुन मास।

तपस्वी = का०, ५२, ५६।
[स० पु०] (स०) तपस्या करनेवाला, तपसी।

तपस्वी सा = का० ३। प्र० ३।
[वि०] (हि०) तपस्वी की भांति।

तपाता = प्र० प० १५।
[क्रि०] (हि०) तपस्या करता। जलाता।

तपावत = चि०, १४।
[स० पु०] (हि०) तपस्वा।

तपोवन = का०, २७६, २८०, २८७। चि०
[स० पु०] (स०) ५५ ५६। ल०, ३२।
तपस्या करने का स्थान, ऋषियों का आश्रम।

तप हृत्पय = का कु०, ६२।
[स० पु०] (स०) दुःखा हृदय। शांताकुल मन।

तप = आ० २०, से ७० पृष्ठ म ६ बार। व०,
[अ०] (हि०) १६, १८, २२, ३१। का० कु०, १८,
१६। का० १६ से २५० पृष्ठ तक २४
बार। चि०, १५ स १६ पृष्ठ तक २१
बार। म०, ६ ८, ११, १४, २२।
ल० ११ स ७१ तक ६ बार।
उम समय उम वत्त। इस कारण, इन
वजह स।

तप तक = का० कु०, ८१।
[अ०] (हि०) उस समय तक।

तपहिं = चि०, ५३, ५४, ५६, ६४ ६५ ६८,
[अ०] (ब्र०भा०) ७२।

ठीक उसी समय।

तपहुँ = चि०, ६६, १६६।
[अ०] (ब्र०भा०) फिर भी, तिस पर भी।

तपहुँ = चि०, ३० १४३।
[अ०] (ब्र०भा०) तिसपर भा, तब भी, फिर भी।

तपै = चि, ५३, ५४ ६८, ७३, १६७।
[अ०] (ब्र०भा०) तब भी उसी समय।

तपौ = चि०, १८३।
[अ०] (ब्र०भा०) तिम पर भी, तब भी, फिर भी।

तभी = का०, १३, २२। का० कु०, १५ ३१।
[अ०] (हि०) का०, २२१।
तिस पर भी। तब भी।

तम = ग्रा०, ४०, ६७। का० कु०, ५६।
 [सं पु०] (म०) का० कु० ५६। का०, १६ २७६।
 चि० १५६ १६१, १६६ १७०।
 झ०, ३०। प्रे०, १। ल०, ३६, ७६,
 ७०, ७६।
 अधकार, अधेरा। राहु। पाप। क्रौर।
 अज्ञान। कालिय। नरक। मोह।
 साय्य शास्त्रानुसार अधिष्ठा प्रवृत्ति वा
 तीसरा गुण। वैर का अगला भाग।

तमकना = म० ११।
 [त्रि०अ] (हिं) क्रोध या आवेश दिखलाना। तम
 तमाना।

तम चूर्ण = ग्रा०, १६।
 [सं पु०] (म०) अधकार रूपी चूर्ण।

तम नयन = ल, २४।
 [सं स्त्री०] (स०) अधकार रूपी नेत्र।

तममय = ग्रा०, ३१। चि०, ७२। झ० ३०।
 [वि०] (हिं०) प्रे०, ५।
 अधकार से युक्त। अधकारमय।

तमव्योम = झ०, ५२।
 [सं पु०] (म०) अधकार रूपी आकाश।

तमस् = का०, १६७ २५२ २५७।
 [सं पु०] (स०) अधकार, अज्ञानाधिकार। पाप। तमसा
 नदा। प्रवृत्ति के तीन गुणा मे स
 अंतिम गुण।

तमसान्छन्न = का० कु० ११२।
 [वि०] (स०) अन्तर मे ढका हुआ या घिरा हुआ।
 तमाल = ग्रा०, ५४। वा० कु०, ११४ १२४।
 [म० पु०] (स०) चि०, १५५। झ० २०। प्रे०, १०।
 एक बहुत ऊंचा सुंदर सजावटार वृक्ष।
 तजपता। एक प्रकार का तलवार।
 बाल धर का वृक्ष। बस की छाल,
 तिलक का पत्र। पान।

तमालकुच = क०, २८। चि० ६६।
 [सं पु०] (म०) तमाल का फूलगुच्छ।

तमावृत = चि०, ६६।
 [वि०] (म०) तम स ढका हुआ या घिरा हुआ।
 तमासा = झ०, ८७। प्रे०, ८।

[सं पु०] (पा०) वह खेल या काय जिसे देखने से मन
 प्रसन्न हो। अद्भुत व्यापार। अनाली
 बात। पुरानी बाल की एक प्रकार की
 तलवार।

नमिस्रा = क०, १३। का०, ६३।
 [वि०] (स०) तम से भरी हुई। धार काला। अत्यंत
 कृष्ण।

तरग = ग्रा०, ४८, ७। का० कु० ३७, ४२
 [सं स्त्री०] (स०) ४३, ६४ ७५। वा २७३। चि०,
 ४८ १८१। झ०, ५६ ६२। प्रे०,
 २० २३। ल० ४४, ४८ ५०।
 पाना का लहरें। चित्त का उमग।
 मल का मौज धाड़े यादि की उद्वान।
 ध्वनि, शीत, ताप या ध्वनि की लहर।

तरगमयी = का० १६८।
 [सं स्त्री०] (हिं०) तरगसयुक्त। उमग से युक्त।

तरगमालायें = का० कु० १।
 [सं स्त्री०] (हिं०) लहरो का लडा जा एक पर एक उडा
 करती है।

तरगशाली = चि० १५२।
 [वि०] (हिं०) भावो मे हुआ हुआ। मस्त।

तरगसा = का० ६१, १७०।
 [सं स्त्री०] (स०) लहर के सदृश।

तरगाघातों = का, १५।
 [सं स्त्री०] (हिं०) लहरो की चोटें।

तरगायित = क०, ८। वा०, २८६।
 [वि०] (स०) जिमम तरंगें उठनी हूँ, तरंगित।
 तरगा का तरह का लहरदार।

तरंगित = चि०, १६६।
 [वि०] (त्र० भा०) उमगित, ऊर्मिल।
 तरंगिनी = ग्रा० ८, ३१। चि० १६७।
 [सं स्त्री०] (हिं०) तरंगवाला सरिता जा तरगा स युक्त
 हो। नदा।

तरंगिनी कूल = चि० १५०।
 [सं पु०] (म०) नदा या सरिता का किनारा।

तर = का०, २६२।
 [वि०] (फा०) माला, ठडा, धानल। हरा। माल

'भरिता मुद्रता म तपनी षो मे
 ता'—पर वरित उा ६ वरिता म म
 एा है जा वगत वे संवप म उगी
 प्रव म प्रवामित एए। बने उापर
 ह्यवाने मरा मभाा तापर मरिता
 म मुंदर विाारे तापरी म गइ है।
 तज मूम म तपाााे पयिता का व
 छाया दी है। उा षप। मार स मुद्र
 मुद्राा पन से उाा ह्यमे उा
 माना करते है ता भी स्वारथ रत
 मुद्र नर मने तानर का भी मुर्मा म
 वम म पट मर कााा है।

तन्त्ररक्षण = वि० ११।

[सं० पु०] (सं०) शेष वृत्ता वा ममूट।

तन्त्रशाला = वि०, ७५ म० ७।

[सं० स्त्री०] (सं०) उपवा वानन।

तन्त्र समीप = वा०, कु०, १७१।

[म०] (हि०) वृत्त वे समीप।

तर्क = वा० कु० ८६। वा० १११ १६१,

[सं० पु०] (सं०) १६५ २२८।

दत्ताल चमत्कारपूर्ण उक्ति मयन
 वा मुक्ति।

[सं० पु०] (प्रा०) त्याग छोडना।

तर्कमयी = वा० २७१ २७७

[वि०] (सं०) तर्क स भरती हुई।

तर्कयुक्ति = वा० २७०।

[सं० स्त्री०] (सं०) हेतु पूर्ण विवेचन वा उपाय। दलील।

तर्कराश्र = वा०, ११०।

[सं० पु०] (सं०) वायु शाल वा सिद्धात। रडन मडन
 द्वारा निश्चय वा उपाय।

तल - वा०, १०, ७२। ५७। वा०, १६,

[सं० पु०] (सं०) ५२ ११०, १८२, म०, २७६२ ल०
 १६ ७३, ७८।

नाचे वा भाग। जलबारा क नीचे
 की भूमि। पर वा तलवा। बायें हाथ
 स बाया वजाने की क्रिया। आधार।
 सात पाताला मे स पहला। वानन।
 धनुष की डोरा को रगट से बजाने

वाजा बायें हाथ में बनिने वा बमन
 वा मना।

तलवार = म०, १ १०, १६, ल०, ४६, ५५,
 [म० स्त्री०] (हि०) एा प्रसिद्ध रीस धारदार हथियार।
 मना, वृत्ताण।

तलवारी = वा० २८७ प्र० ११।

[म० स्त्री०] (हि०) पता म नी। का भूमि। तराई।

तल्लीत = वा०, २७२ ल०, १०।

(वि०) (म०) विभि विषय वा बायें म सात।
 निमन।

तल = वा० कु०, ३०, ६२, ७६, ८१, ८८।

[म०] (म०) वा०, १७८, १६३ १८०, १८७
 १६७ २२६ २७३, २७७, २४८,
 २५०। वि०, ३०, ४१, ७८, १७१,
 १७२, १७३, १७७ १७६, १८७,
 १८८, १६०। म०, ७ ८, १६।
 मुन्हारा।

तल रत्न = वि०, ६७।

[म० पु०] (म०) मुन्हारा मून।

तल्ल = वि०, ७५, ४६, ४७ ५१ ५३ ५४,

[म०] (प्र० भा०) ५६ ६० ६७, ६५ ७१ ७२, ७३,
 १७२ १५१।

तल्ल वहाँ, उस स्थान पर।

तल्लो = वा० १८३। वि०, ४ ३१, ४६ ५१,

[म०] (हि०) ५३ ५८, ७३।

उस स्थान पर।

तल्लो = वि०, ८।

[म०] (प्र० भा०) वही।

ताडव = वा०, १६६ १५३।

[सं० पु०] (सं०) शिव वा नृत्य। पुरुष नृत्य। उदत
 नृत्य। विनाश वा क्रिया।

[ताडव—वामायनी के 'दशन' सग वर एक मश
 जो सनप्रथम हस', वष ७ नवंबर २,
 सन १६३६ मे ताडव शापक स प्रकाशित
 हुआ था। वन गया उमस था अलक
 जाल'—(वामायनी पृष्ठ २५२ से सग
 वे अत तक) अश इसम था। ६०
 वामायनी।]

ताडव नृत्य = का० कु०, ८६। का०, २०।
 [सं० पु०] (सं०) शिव का नृत्य।
 ताडवमय = का०, १५।
 [वि०] (सं०) = शिव के नृत्य से युक्त या विनाश की
 भाषणा स युक्त।
 ताडव लीला = का० १८६।
 [सं० स्त्री०] (सं०) शिव नृत्यक्रीडा। पुरा नृत्यक्रीडा।
 उद्धत नृत्यक्रीडा।
 ताडी = चि०, १५३, १६१, १८४, १८५।
 [सव०] (प्र० भा०) उमकी।
 ता कुल = चि० ३०।
 [म० पु०] (प्र० भा०) उम कुल का। उम कुल म।
 ता के = चि० १७३।
 [मव०] (प्र० भा०) 'ताका'।
 ताग = चि० १८०।
 [पव० क्रि०] (प्र० भा०) जोडकर।
 ताड = का०, ११०।
 [म० पु०] (सं०) एक ऐसा वृद्ध जिसमे शाखा नही
 होता। हाथ का एक प्रामाण्य।
 ताडित = ऋ०, ७२।
 [वि०] (हि०) मटाया हुआ। ताडना मिया हुआ।
 तात = का०, २४। चि०, ४८।
 [सं० पु०] (सं०) पिता। गुरु। पूज्य पति। पुत्र।
 भाई।
 [वि०] (हि०) तपा हुआ गरम।
 ता तर = चि०, १८४।
 [प्र०] (प्र० भा०) उसके नीचे।
 तातारी = ल०, ७३।
 [वि०] (हि०) तातार देश की, तातार निवासिनी।
 ता तौ = चि०, १६।
 [मव०] (प्र० भा०) तिसका या उधर।
 तान = का०, ५२। चि०, ११३। ऋ०,
 [म० पु०] (हि०) ५७। ल०, २६।
 फत्राय, विस्तार। भ्रालाप।
 तानना = का० कु०, १०६।
 [क्रि०] (हि०) फलाना, विस्तार करना। खीचना।
 तानि = चि०, १६३।
 [पव० क्रि०] (प्र० भा०) तानकर। फलकर।

तान = का०, १०, २८५।
 [सं० पु०, क्रि०] (हि०) 'तान' का बहुवचन।
 तानों = का०, २६४।
 [सं० पु०] (हि०) तान का बहुवचन।
 ताप = श्रा०, ५१, ७६। का० कु०, १३,
 [सं० पु०] (सं०) १०४। का०, १२१ १६२, १६१,
 २८१, २८३। चि०, ३६, १७४।
 ऋ० ७६।
 गर्मी। लपट। ज्वर। कष्ट। दहिक,
 दहिक भौतिक ताप तय।
 ताप भ्राति = का०, २३६।
 [सं० स्त्री०] (सं०) ताप या समाप्ति ताप का भूच जाता।
 तापर = चि० १४५।
 [प्र०] (प्र० भा०) तिसपर भी।
 तापस = चि०, ७३, ७४।
 [म० पु०] (प्र० भा०) माधु तपस्वा, तपस्या करनेवाला।
 तापसवेप = चि०, ७२।
 [म० पु०] (हि०) वह जो कि तस्वा का पहनावा पहने
 हुए हो।
 तापित = का० २५, ३८, २८५। का० कु०,
 [वि०] (सं०) ५५।
 तप्त किया गया। कष्ट पाया हुआ,
 सताया हुआ। दुःख स पाठित।
 तापें = चि०, १७७।
 [सं० स्त्री०] (प्र० भा०) जगनाए।
 तामरस = का०, १७५। चि०, १७३।
 [सं० पु०] (सं०) साना। तावा। घटूरा। कमल।
 तामस = का०, ११८।
 [वि०] (सं०) तमोगुणवाला, तमोगुण से समुक्त।
 [सं० पु०] सर्प, खल। चीरे मनु का नाम।
 क्रोव। अथकार।
 ताये = चि०, ७१ १६०, १६२।
 [क्रि०] (प्र० भा०) डरा हुआ।
 तायों = चि०, १८३।
 [क्रि०] (प्र०) डाका।
 तार = श्रा०, १५।
 [सं० पु०] (सं०) मूत। चादी। बाहु। तनु। श्राद्ध का
 पुतली। गच्छन। अतली माता। ताल।
 मजीरा। तल।

तारक = का० ४७, १०४, २३३। वा० कु०,
[सं० पु०] (सं०) १७। ल०, ४१।

तारा, नक्षत्र। आसि की पुतली। उदार
करनेवाला। कगधार।

तारकागण्य = वा०, कु०, २। वि०, १५५। अ०, ७५।
[सं० पु०] (सं०) तारा का समूह।

तारकागन = वि० १७०।
[सं० पु०] (ब्र० भा०) 'तारकागण्य'।

तारक दल = वा०, २३४।
[सं० पु०] (सं०) तारा का समूह।

तारक हार = वा० ६२।
[सं० स्त्री०] (सं०) तारो का हार।

तारका = वा० कु०, ० ३०, ३५, ७४ ८७।
[सं० स्त्री०] (सं०) का०, ४७, १०४ २३३। अ० ७२।
ल ४१।

नक्षत्र। तारा। आसि का पुतला।
ताडका नाम की राक्षसिन।

तारका अश्वली = वा०, कु०, १०।
[सं० स्त्री०] (सं०) तारो की पत्नियाँ।

तारकायें = ल०, ६२।
[सं० स्त्री०] (हि०) 'तारक' (बहुवचन)।

तारकारतन = का० कु०, ६६।
[सं० पु०] (सं०) तारकरूपा बहूयु य रतन या धातु।

तारकावलि = वि०, २३।
[सं० स्त्री०] (सं०) तारो की पत्ति।

तारकों = वि०, १६२।
[सं० पु०] (सं०) 'तारक' का बहुवचन।

तारन = वि० १६।
[सं० स्त्री०] (ब्र० भा०) 'तारो'।

तारा = आ०, ५४, ६७, ६६। व० १३
[सं० पु०] (सं०) २५। का०, १७ ३७, ६७, ७०,
१४७ १७० १७६, १७८, १८१
२०५, २४१। वि० १६०, १६१।
अ०, ३८। ल० ३७ ४३, ७४।

नक्षत्र सितारा। भाग्य। आसि का
पुतली।

ताराओं = आ०, ७६। का० १२२ २२४।
[सं० स्त्री०] (हि०) तारा' का बहुवचन।

तारागण्य = वा०, ८। का० कु०, ३६, वा० १६७।
[सं० पु०] (सं०) प्र० ६।

तारकागण्य, तारा का समूह या 'न'।

तारागन = वि०, ७१, ७५ १६१।
[सं० पु०] (ब्र० भा०) 'तारकागण्य'।

ताराघट = ल० १६।
[सं० पु०] (सं०) तारारूपा पड़ा। उ०—घनर पतप
म डुबा रहा ताराघट उपा नागरी।

तारादल = वा०, १७१।
[सं० पु०] (सं०) तारा का समूह।

तारा दीप = वा०, ३८।
[सं० पु०] (सं०) तारारूपा दापक।

तारा निरुदर = वि० ३६ १४५।
[सं० पु०] (सं०) तारो का समूह।

तारापुज = का० कु० ५६।
[सं० पु०] (सं०) तारा का समूह।

तारा मण्डित = वा० २४६।
[वि०] (हि०) तारा स मुनोभिन् या सजा हुआ।

ताराएँ = ल० २४, ७६।
[सं० स्त्री०] (हि०) 'तारा' (बहुवचन)

ताराली = वा० कु०, ५।
[सं० स्त्री०] (सं०) तारो का आसि, तारो का समूह।

तारा शर्शा = वा० कु०, ५।
[सं० पु०] (सं०) तारा शीर चद्रमा।

तारा सा = प्र० ३ ५।
[वि०] (सं०) तारा व समान।

तारा हीरक हार = ल०, १८।
[सं० स्त्री०] (सं०) तारारूपा हीरे का आभूषण या
माला।

तारिकाएँ = अ० ५६।
[सं० स्त्री०] (सं०) सितारो का समूह।

[तारिका के प्रति—सप्तम्यम 'मनोरमा', अक्षर
२६ मे प्रनाजित चद्रगुप्त' नाट्य का
गीत जो प्रसाद सगात म शृष्ठ १११ पर
सकलित है। 'बिलर' किरन अलक
'यावुल हाथ—सका ने इन गीत मे
अपनी स्थिति तारिका के रूप मे प्रकट
का है जो सधर्ममा है। प्रियतम क

मान की शेष श्रवणियाँ व्यापी श्राँगों ले गिन रहा है। पथ पर प्रिय के माने का कोई मकते नहीं दाख पड रहा है। इस निराशा की कालिमा म तुम मुदर तरल आशातारिके कुछ बोला, मौन मत बठा नही तो रूपनिशा का ऊया म श्रधात् प्रियतम के आने पर तुम्हारा गान कौन सुनेगा।]

[तारिखी—कवि ने कल्यालय म अजागत का पानी के लिये तारिखी सगा दी है जा कल्पित है।]

तारुण्यमयी = १०, ३३।

[वि०] (स०) यौवन में भरी हृष्ट, तरुणी।

तारे = आ० ३६ ४४। का० कु० ४। का०, [म० पु०] (हि०) ११८, १२३। ऋ०, ५२। प्र० ११ १२, २४।

‘तारा’ का बहुवचन।

तारों = आ०, १६। का० ६१ २८५। प्र० ११।

[सं० पु०] (हि०) तार’ का बहुवचन।

ताल = का० कु० ६३। का०, १६८, २४२। [म० पु०] (मं०) दृष्टेया। कर्तल वनि। एष नरक। महाद्वय। पापरा। नृत्य या सगत म समय और गति का परिमाण। तालाव।

ताल ताल = का०, १६३।

[म० पु०] (हि०) संगीत का प्रत्येक तान।

ताली = चि०, ७०।

[वि० श्लो०] (हि०) कुर्जी। ताल दनवाना।

तालों = का० २७७।

[सं० पु०] (हि०) ताल का बहुवचन।

तासु = चि०, २३, ४६, ५२ ७२ ६५, १०२

[मव०] (श्र० भा०) १६१, १६२ १७१।
उमकी तिमका।

तासुत = चि०, २३।

[सं० पु०] (श्र० भा०) उमका पुत्र।

तासा = चि०, १८, ६६, १८४।

[मव०] (श्र० भा०) उमसे।

ताहि = चि०, ६, १४, २३ ५१ ६३ ६५,

[सव०] (श्र० भा०) ६८, ७३ १६४ १७६ १७८ १८६ १९०।

उमकी।

ताही = चि०, १०६।

[मव०] (श्र० भा०) ३० ताहि’।

ताहु = चि०, १९०।

[मव०] (श्र० भा०) ३० ताहि’।

तितलो = आ० २६२। म० ६६।

[सं० श्लो०] (हि०) एक मदनवाना मुन्डर फनिशा जो फूला पर मडराता है। एक प्रकार का धान।

तितै = चि०, १।

[क्रि० वि०] (श्र० भा०) उतना। उसी मगन पर। उमा का। वही। बटा भी। धटा। उभर।

तिन = चि०, १८ ६०, ७१ ७२ १००,

[मव०] (श्र० भा०) १०१, १४७ १५६ १६३, १७१ १८४, १८६। प्र० ४। ल ४०।
उन।

तिनना = म०, १२। ल०, ४७।

[म० पु०] (हि०) नृग। नृग का दुक्ता।

[मव०] उनका।

तिन्हें = चि०, ४८, ६६, १०१, १६६ १०९

[मव०] (श्र० भा०) १८५।

उनका।

तिमि = चि० १६५, १६६, १६७।

[श्र०] (श्र० भा०) उमो प्रकार।

तिमिगलों = का, १२।

[म० पु०] (मं०) मसुत्री स्तनपाई एक विशप बडा जंतु जो कुछ मयत्री न आहार का हाता है। प्राय इसकी हड्डिया व नियो गिकार किया जाता है। बहुत बडी मछलियाँ जो छाटा मय लया की निगन जाता है।

तिमिर = आ०, ४१। का०, १५ ४८, २१७।

[सं० पु०] (मं०) चि० १०७, १६०। ल०, १३।

अधकार। तम।

तिमिरफणि = का०, १०१।
 [मं० पु०] (मं०) काला साप, अथवाररूपा साप।
 तियाण = चि० ४८।
 [मं० श्र०] (२० भा०) शीरते। तिया का बहुवचन।
 तिरता = का० ल०, २३।
 [क्रि० श्र०] (हिं०) पाना पर तरता हुआ।
 तिरती सी = ल० ६ ६६।
 [क्रि० श्र०] (हिं०) पानी पर उतरती सी।
 तिरते = ल०, ६२।
 [क्रि० श्र०] (हिं०) पाना पर उतरते।
 तिरना = का० ७ ८८, १०५। श्रा० २०
 [क्रि० श्र०] (हिं०) ४१।
 पाना पर तरना या उतराना पर
 करना। उदार हाना।
 तिरस्कार = का० कु० १२१ श्र० ८०।
 [मं० पु०] (मं०) पटकार। घनाकार।
 तिरस्कृत = का० ५२।
 [वि०] (श्र०) जिगसा तिरस्कार हुआ है। घनाकार।
 तिरोहित = श्रा० ४६। ता० १० १६६ २६१।
 [वि०] (श्र०) छिपा हुआ। आच्छादित। घनाहित।
 तुम। अदृष्ट।
 तिल = का० ११०। चि० १६२।
 [मं० पु०] (मं०) एक प्रकार का बीज जिससे तेल
 निकाला जाता है। शरीर पर काल
 दाग। एक प्रकार का माता जो
 शरीर में गान और दुःख पर शौच्य क
 लिये माता है।
 तिलक = चि० ३८।
 [मं० पु०] (मं०) चन्द या बगर का टाका। माप पर
 का एक गहना। यवन श्रुतु म पवन
 वाता एक पोषा।
 [वि०] उत्तम। जातशशा अथवा वाति
 बानबाना।
 तिलोद्ग = का० २२।
 [मं० पु०] (मं०) तिल शीर जन। मनातन घम न
 अमुवार तिया मतर घा ना रा वृत्त
 ५ तिय अत्रि म भावा शीर तिय
 शरर वृत्त पर जा नदा या टालाब

के किनारे गाड़ा गया होता है, छोड़ते
 हैं। पिडा पानी।
 तिस = का० कु०, ६०, १४६, २४०, मं०,
 [सप्त०] (हिं०) ६, २२।
 ता का एक रूप जा विभक्ति लगने से
 तिस हाना है।
 तिहारी = चि०, १४०, १७०, १७१ १७४,
 [मत्त०] (श्र० भा०) तुम्हारी।
 तिहारे = चि०, १७४ १८२ १८५।
 [सप्त०] (२० भा०) तुम्हारे।
 तिहुँ = चि० १७८।
 [वि०] (श्र० भा०) तान।
 तीक्ष्ण = का० १६६। मं० ६।
 [वि०] (श्र० भा०) तज। कटु। उताप युक्त। विपला।
 तीखा = श्रा० ५२। का०, १६२ २५०। चि०
 [वि०] (हिं०) ४२।
 तज। प्रसर। उग्र स्वभाववाला,
 जिम्मा स्वाद चरपरा हा। गुता म
 श्रेय, गटु। अत्रा जन्म।
 तीक्ष्ण = चि०, ३६, ४२ १८३।
 [वि०] (श्र० भा०) ताप्य तज।
 तीक्ष्णता = चि० १०५।
 [मं० श्र०] (२० भा०) ताप्य का भावभाव रागा।
 ती गता। तज एषवर्ष।
 तीन = का० १६। का० १६। चि०, ४३,
 [मं० श्र०] (हिं०) १५६ २४५ २६१।
 दा शीर एक। एक गण्या।
 तीर = का० कु० ८६। का० २३ ३१ ४५
 [मं० पु०] (मं०) १०८ १०१ १५७ २४८ १५०।
 चि०, ६ ४१ ४२ ५३ ५५ ५६
 ७१ १६४।
 ता का किनारा, मूत्र। तिर, तिर,
 ममाप।
 तीर्थ = चि०, ३०।
 [मं० पु०] (श्र० भा०) दसवारा त्रयाश्री का म्वात।
 पवन या पुष्पगत म्वात।
 तीरन = चि० ६०।
 [मं० पु०] (श्र० भा०) तीर का बहुवचन।

तीरे = श्री०, ३१। का०, ३४।
 [म० पु०] (हि०) ३० 'तार'।
 तीर्थ = का०, २७८ २६६।
 [म० पु०] (स०) २० तीर्थ'।
 तीव्र = आ०, ३६, ५०। का० कु ११६,
 [वि०] (म०) १८१, १६६, २६७। ऋ० ५७। ल०
 ७१, ७६।
 अधिक तेज। कटु। प्रचंड।

तीसरी = चि० ७२।
 [वि०] (हि०) तृतीय। पहली दो को छोड़कर अगली।
 तुल्ल (तुगा) = का० ३० १५७। चि० १ १६०।
 [वि०] (म०) ऋ० २, ५६।
 उन्नत, ऊचा। मुख्य।

तुल्य = का०, ५६ ६४, १२६। ल०, ६४।
 [स० पु०] (स०) सारहीन वस्तु। छिन्ना या भूमी।

तुम्ह = आ०, १७। क०, २६ २७। का० कु०
 [मव०] (हि०) ३६। का०, १८ २१८। प्र०, २४।
 तुम का मध्यम पुरुष, कर्मकारक।

तुम = श्री०, १५ ७८ पृष्ठ तक २१ बार।
 [सव०] (हि०) का०, ६ ३१ पृष्ठ तक १७ बार। का०
 कु० १ स ६८ पृष्ठ तक २६ बार।
 का०, १ म २८७ पृष्ठ तक ३ बार।
 चि०, ५ १६४ पृष्ठ तक ३५ बार। ऋ०
 ५ ६४ पृष्ठ तक ६ बार। प्र०, ४ २६
 पृष्ठ तक १४ बार। म०, ४ ३६ पृष्ठ
 तक ४ बार। ल०, १० ६१ पृष्ठ तक
 ८ बार।

तू शब्द का बहुवचन।

[तुम—भाषुगी, वप २, गूढ २, स० ४ सद् १६२४
 म प्रवाहित और भरना' म पृष्ठ ६-
 ६५ पर सन्तित। तुम जीवन जगत
 तथा विश्वनाम के परम प्रकाश पूण
 काम दुख मयरहित अभेद परम सुंदर
 विधि व विराट और निषेध की
 व्यवस्था व कारण और कम तथा धम
 तुम्ही ही। परमानन्द, सौन्दर्यधाम राम
 राम म रमनेवाल तुम परम ब्रह्म
 राम हो। बुधि, विवेक, ज्ञान और

अनुमान मे तुम अतात हो। तुम अनंत
 सादय धाम हा। मुमना के हास मुकुत्ता
 के मररद, ज्या म मलयानिल की
 माषुरी हिमकाल म धूप तुम्ही हा।
 तुम नित्य नवीन हो। तुम बचनहीन
 हो तुम्ह दान दुखिया मे कण्या द्वारा
 अब श्रमिना म स्नेह द्वारा तथा मक्की
 मवा म तुम प्रसान हीन हा।]

[तुम कनक किरण के अतराल में—चंद्रगुप्त
 नाटक' मे मुवासिनी द्वारा गाया हुआ
 गीत। 'प्रसाद मगीत' म पृष्ठ १०६ पर
 मन्सित। ह लाजभरे सौंदर्य तुम
 मादन यौवन के अतरान म तुफ त्रिप
 वर मीन क्या बन रहत हो। यौवन
 के घन रस बरसा रहे है और तुम
 उनके गर्वसे भार को नतमस्तक
 वहन करत हा। अथवा म अतर
 म निनादित ध्वनि यौवन की मधु
 सरिता की तरल हमी की भांति तुम
 पीन रहत हा। अर रजनागवा रूपी
 तुम्हार यौवन की कनी खिन चुगी
 है और अनातयौवना बना बीत
 चना है। अर मुकलिन यौवन र दुकूल
 का मुखर हो, नाहक ही इस तरह छिप
 रह हो।

तुमल = का० ६१, २१६। म०, ११।
 [स० पु०] (स०) युद्ध का बालाहल या घूम।

[तुम्हारा स्मरण—द दु, कला ६ ग १ किरण
 १, जनवरा १६१५ म मधुप्रथम
 प्रकाजिन और वानन कुमुम म पृष्ठ
 ६-६१ पर मन्सित। तुम्हारे स्मरण
 से सारी पीटा भूत जाती और ससार
 का जान हला है। जिमने कारण
 मनुष्य कभी राता नही। ध्यान लगा,
 निरजन म माग या तुटा म समाधि
 गमाकर तुम्ह वीर दगता है किन्तु
 प्रियवर मे ता मड हाजर तुम्ह विश्व
 की जनना व भीतर मक्त्र एमा
 मुनभ पाता हूँ जिसे पाकर काइ खा

दूरी मचना। तुम्हारी प्रगति में हम। प्रगति है और दूरी प्राणों। तबिय प्रगति तबिय निमित्त मान है। तबिय प्रगति तबिय प्रगति जितना हम दूर करना चाहते हो उतना ही उमर हमें बचाने हेतु तुम्हारे निमित्त होना चाहिए।]

[तुम्हारी आँवों का चयन— लहर' में पृष्ठ २३ पर मकान। धीरे जाते हैं जब अन्तर्गत यौन हृदय में वागना तबिय पुलक करके घनता था ता ईम हृदय में हार जाता था। तब माय चयन चयन का छा जाता था निमित्त चयन वाली गूज उठना थी और पुलक छा जाता था। तुम्हारे स्नेह सयता में विद्यत विद्यत कर चलते चलते घन कर हार जाता था और तब तुम्हारे मधुरस चयन काव्य में जाते तिरने लगता था। क्या आज भी तुम्हारे आँवों का चयन की ग्रीहा में भाव विभार 'निय' विभार सरलता का अयनायन है और क्या आज भी वह मरा धन है।]

[तुम्हारी मोहन छवि पर— यद्यपि पुन पर अज्ञात शत्रु' में श्यामा का शल्लेख क प्रति उद्गार। प्रसाद मगीत' में पृष्ठ २३ पर सखित दा पत्तियों का गात। तुम्हारे मनाहारे छवि पर मर प्राण निष्ठावर है। तुम्हारे मधुर सरम हाम पर मारा ससार अलिहारी है।]

[तुम्हारी सबहि निराली बात— इदु कला ५ विरला ५, मई, १९१४ में मकरद विदु के अतर्गत प्रकाशित। ३० चित्राधार एव मकरद विदु।]

सुरग = का० कु०, ३७, ३९, ४३, का०, ३० [सं पु] (म०) ४७।

धोडा। बित्त। मात का सख्या। जल्दी चलनेवाला।

सुरग सा = का०, २५। [वि०] (स०) धोडे की भाति।

सुरत = का०, २४६। [अथ] (हि०) 'सुरा'। सुरत = का० १७, २०। का कु० १८, २०, [अथ] (हि०) ३१ ४७, ५१, ६६ १०१। का०, २२०। वि० २३ ६४ १६७। शात्र तत्त्वज्ञान चयन।

सुरति = वि०, ४८ २९ ६५। [प०] (प्र० भा०) तबिय ही।

सुरते = वि० ३१। [अ०] (हि०) सुरत ही।

सुरत = वि०, १६७। [प०] (हि०) सुरत ही।

[सुरत यति—'महाउद्गार'।]

सुर्क = म०, १५, १६। [सं पु०] (हि०) सुगममान। सुर्क दग का वागा।

[सुर्क देश—'गायार'।]

सुर्की = ल० ६६। [सं पु०] (हि०) सुकिस्तान का वागा।

सुल जाना = का०, १०५। [वि०] (हि०) किमा काम क लिय उताह हो जाना। लीन जाना।

सुलना = ल० ६४। [सं० लो०] (हि०) लीनता। समता। बराबरा।

सुलसीदास = का० कु० ८७। [सं पु०] (हि०) रामचरित मानस क रचयिता हि० क महाक व।

[सुलसीदास—'महाक व सुलसादास'।]

सुला = का० २७१। [सं० लो०] (म०) तील। तराजू।

सुल्य = अ० १४। [वि०] (स०) सत्य समान बराबर।

सुव = वि०, ५७, १८८, १९०। [सं०] (प्र० भा०) 'सव'।

सुपार = का०, ८, ३०, १७९ वि०, १८८। [सं पु०] (म०) अ, ३१।

पाला। एक प्रकार का वपुर्। हिमालय व उत्तर का एक प्रदेश जहाँ के घोड़े प्रसिद्ध हैं।

तुष्ट = का० कु०, १५। म०, १३।
[वि०] (म०) प्रसन्न, मुग्ध, राजी।

तुष्टि = वा०, १८८, १९१।
[म० ली०] (म०) तृप्ति। मत्त। प्रमत्तता।

तुहिन = आ० ४५। वा० ३९, १५६। न०,
[म० पु०] (म०) ३८ ४१।
पाला, हिम। चान्ना। शीतलता।

तुहिनर्षिदु = वा० १७८।
[स० पु०] (स०) हिमवत्, आमवत्।

तुही = चि०, १८२।

[सव०] (ब्र०भा०) तुम ही।

तू = आ०, ५७। व० २१—४७ पृ० तक
[सव०] ७ वार। १९—२५४ पृष्ठ तक १७
वार। वा० कु०, ३। वा० न०,
६—७२ पृ० तक ११ वार।
तुम का एकवचन। एकवचन मवनाम।

[तू आता है फिर जाता है—मवप्रथम 'बमत'
जापक से माधुरा वष २, गृह २, सख्या
३ मन् १७२४ म प्रकाशित। भरना
म पृष्ठ ५७ पर मकलित। ०० वगन।

[तू खोजता बिसे—'विशाल' मे प्रमानद का
गीत। प्रमाद मगीत म पृष्ठ १७ पर
मकलित। प्रम व प्रभाव न मव
ममत्व माह वा आसव पिना कर पागल
बना दिया। अपना पर स्वय भर रहे
है यह अनुपम भूज है। जिस तुम साज
रह ही, वह आनंद स्वरूप है। वह
सत्य यही मवय यही पुण्य स्वर यही
है सत्तम हा कर्मयोग ह जा यही न
मकता है। विश्व का खजाना भी यही
है। सेवा परोपकार प्रम सय
वन्पना व नियम अमाध है। जहा
शांति का सत्ता हा वही शक्ति है
और वृह इनम हा है। अयामक्ति न
अप वा है और न दूसर के लिए है
परम त्रता का ममत्व अपना चेतना म
मवत्र प्रनाशित है। वह परमसत्ता ह

वि नहीं यह विचित्र प्रश्न न करो, इम
मसाग म दयामिधु के वाच मतरण
करा। वह और कुछ नहीं विशाल
विश्व स्वरूप है, उमा म आनंद है,
अ यत्र उस कहां हृद रहा है।]

तूर्य = न०, ५६।

[म० पु०] (म०) ग्न प्रकार का वाजा। तुरही।

तूर्यनाद = वा० कु०, १२४। म०, ३६।

मुह स बजाए जानेवाल एक प्रकार के
वाज का स्वर। सिंहा की ध्वनि या
आवाज।

तूल = वा० १६२।

[म० पु०] (म०) कपास तथा समन का धूम्रा रूई।

[वि०] तुण्य, ममान।

तूलिका = आ०, २२। ल०, ६४।

चित्र अकित करने की कनम या कूची।

तृण = व०, २५। वा० २६, १११ २६४।

[म० पु०] (म०) प्रे० ३। ल० ६६।

तिनका। घाग फूम का छाटा टुनडा।

तृण गुल्मो = का १७६।

[स० पु०] (हिं) तिनन और छाटे पीने।

तृण तुण्य = वा० १११।

[स० पु०] (स०) प्रत्यक तृण।

तृप्त = वा०, ३२, ८६ चि०, १५, १८६,

[पि] (म०) म० ३७।

जिमकी इच्छा या वासना पूण हो चुकी
हो। अघाया हुआ। सतुष्ट।

तृप्तधुर = ल० ३४।

[म० पु०] (स०) वह दुली जा कुछ क्षणा के निये प्रसन्न
हा गया हो। प्रमन्न रडुआ।

तृप्तहृदय = आ० ७६।

[म० पु०] (स०) शांत हृदय। मतुष्ट मन।

तृप्ति = वा०, ७४, १३०, १३६ १६६, २२३,

[म० ली०] (मं) २७०। म०, ६१ ७१।

इच्छा या वासना पूण होने पर मिलन
वाना शांति।

टुपा = पा० १३६, २७१।
[सं० स्त्री०] (सं०) जल आदि पाने की इच्छा, प्यास।
इच्छा अभिलाषा। लाभ, लालच।

टुपित = बा० कु० २४। बा० ३६, १८३।
[वि०] (सं०) प्यासा। अभिलाषी।

टुपणा = घ्रा०, ४२। बा० कु० २४। बा०
[सं० स्त्री०] (सं०) ७१ ७४, २६७। चि० ६६।
किसी वस्तु को पाने के लिये 'याकुल
करनेवाली इच्छा। लाभ, लालच।
टुपा। प्यास।

टुपणाज्वाला = बा०, १६४ ल० ४६।
[सं० स्त्री०] (सं०) टुपणा से उत्पन्न हानेवाली ज्वाला।
टुपणा टुपा ज्वाला।

ते = चि० १३६, १४६।
[श्र०] (श्र० भा०) से, द्वारा।
[सव०] वे, वे सब।

तेज = बा० ३२। बा० २७७। चि०, ४०,
[सं० पुं०] (सं०) ५३, ५६। म० ५। ल० ५।
दीप्ति, कांति। पराक्रम, बल। तत्व।
[वि०] (हिं०) तीक्ष्ण धारवाला। प्रखर या ताम्र।
फुरतीला।

तेजमय = बा० कु०, १२६।
[वि०] (सं०) दीप्तिमय। कांतिमय।

तेजमयी = प्र० ६।
[वि०] (हिं०) प्रकाश से भरा हुई या युक्त।

तेज सा = म० ६।
[वि०] (हिं०) प्रकाश के समान।

तेजयत्न = का० कु०, १४४।
[सं० पुं०] (सं०) तपस्या का बल। पीरप का बल।

तेरा = का० कु०, ११३।
[सव०] (हिं०) मध्यम पुरुष एकवचन सवनाम। 'तू'
का संबन्ध कारक रूप।

[तेरा प्रेम—इदु बला ५, किरण ४ अक्तूबर
१९१४ में प्रकाशित और भरना म
निवेदन शीर्षक से पृष्ठ ४६ पर सक्
नित। > भरना और निवेदन।]

तेरी = घ्रा०, २२ ३५ ६८, ४३ ६२ ७३
[सव०] (हिं०) ७४। क०, २५। बा० कु०, १, १३,

३०, ४२, ४८। बा०, ६, २४४।
चि०, ४१ ६० ६६, १०७, १५५,
१७७, १७८, १८५, १८७। म० १८
४४। ल०, १२, ३०, ४२, ४३, ४५,
५१ ६८, ७६।
तेरा' का स्त्रीलिंग।

तेल = प्र० ३।
[सं० सं०] (हिं०) विषय चिन्ता या तरल पदार्थ जो
विषय वीजो को घेर कर निवाला जाता
है। स्नेह।

तेहि = चि०, ३२, ४८, ५१, ५२, ५५, ६६
[मव०] (हिं०) ७३, ६६, १५६, १७५, १८४।
उमकी। उसे।

तेरना = म०, ४२। ल०, ५१।
[क्रि० श्र०] (हिं०) पानी पर उतराना। हाथ तथा पैर
हिलाकर पानी पर रेंगना।

तैसी = बा० कु०, ८। चि०, १८० १८१।
[वि०] (हिं०) उस प्रकार की, उस तरह की।

तैसों = चि०, ३६ १८७।
[वि०] (श्र० भा०) वसा ही।

तो = घ्रा०, ४३। क०, १८, २२। का०
[श्र०] (हिं०) कु०, १६। बा० १७६। म०, ३६।
प्र०, १३ २२। म० २१ २२,
२३। ल० १०, ४५ ५१ ६४, ६८।
तब का छोटा रूप।

तोको = चि०, १८६।
[सव०] (श्र० भा०) आपकी। तुमकी।

तोस = चि० ५७, ५८, ६८।
[सं० पुं०] (श्र० भा०) सतोप। तोप।

तोड = बा०, १४५ १५८ २४३। प्र० २।
[सं० पुं०] (हिं०) ल० १३।

तोडने की क्रिया या भाव। नदी आदि
के जल का प्रवाह या तरखा।

तोडना = घ्रा० ४४। बा० कु०, ११०। प्र०,
[क्रि० सं०] (हिं०) धापात या भटके से किसी वस्तु के
टुकड़े करना। किसी वस्तु का अंग
भंग करना। सेत म पहले पहल हल
चलाना। सँघ लगाना। बल, प्रताप

आदि का महत्व कम करना या हटाना।

को छाड़ना या चित्तवृत्ति हटा लेना।
दान।

तोप = का० कु०, १०७।

त्यागे = चि०, १४, ५६, ६२।

[स० स्त्री०] (तु०) एक प्रकार का अग्रयज्ञ या दो पहिए पर टिक्रा हुआ है। इसमें एक माटा नला हुना है जिसमें गाला भरकर अन्नप्रा पर छाड़ा जाता है।

[क्रि० स०] (हि०) छोड़ दिया।

त्या = प्रा०, ७२।

[क्रि० वि०] (प्र० भा०) उम प्रकार, उम तरह। उसी समय। उमी वक्त।

तोपें = ल० ५१।

त्योहो = का० कु०, ८०। का०, २००।

[स० स्त्री०] (हि०) तु० 'तोप' का बहुवचन।

[प्र०] (प्र० भा०) तमों। उसी समय।

तोरण = प्र०, ४, १३।

त्योहार = प्रे०, ८।

[स० पु०] (स०) किसी घर या नगर का बाहरा फाटक बदनवार। शोबा, गला। शिव।

[स० पु०] (हि०) वह दिन जब कोई धार्मिक या जातीय उत्सव मनाया जाता है। पव दिन।

तोरण बदनवार = म०, १६।

त्यौं = म०, २२।

[म० पु०] (हि०) किसी नगर या घर के बाहरा फाटक पर उत्सव आदि शुभ अवसर पर लट काई जानवला पत्तियो एव छूना की मालाए।

[क्रि० वि०] (हि०) उम प्रकार। उमी समय।

अस्त = क०, १८। का० कु० ६४। का०, [वि०] (स०) १३ १८५ १८६। म० ७। ल० ५२। का० कु०, १४। डरा हुआ। भयभीत। पांडित। व्याकुल।

तोरि = चि०, २३।

[प्र० क्रि०] (प्र० भा०) ताडकर।

त्राण = का० १४०, १८८, २६१। चि० ६४।

वोल = का० १०५, २५३। म० ७४।

[स० स्त्री०] (हि०) वजन। भार का मान।

[म० पु०] (स०) रक्षा, बचाव। बचव।

तोप = चि०, ५४।

[स० पु०] (स०) वृत्ति, सत्तप। प्रमत्तता।

त्रता = का० कु० २७।

[वि०] अस्त। थाडा।

[वि०] (स०) रक्षक।

त्रास = का०, २००। ल० ५१ ५२।

[स० पु०] (स०) डर, भय। वृष्ट, तकलाफ।

तोहि = चि० १४, ५७, १७०।

[स० व०] (प्र० भा०) पुमका।

त्रासिनी = ल०, ५१।

तो = चि०, १५५।

[क्रि० वि०] (प्र० भा०) तो।

[वि० स्त्री०] (स०) कष्ट देनेवाली। भयमात करनेवाली।

[क्रि० प्र०] या।

त्राहि त्राहि = क०, २६।

[प्र०] (स०) रक्षा करो रक्षा करो।

तीन = चि०, १८८।

[स० व०] (प्र० भा०) वही।

त्रिकोण = का०, २६२, २७३।

[स० पु०] (स०) एसा क्षत्र जिसके तीन कोने हू। इच्छा, नान और क्रिया का त्रिभुज क्षत्र।

त्यहि = चि०, १०७।

[स० व०] (प्र० भा०) उस।

[वि०] निवाना।

त्याग = का० कु०, ३१। का०, ५२, ७२,

[स० पु०] (स०) २३६ २५३।

त्रिगुण = का० १६८।

[स० पु०] (स०) तीना गुण—सत, रज, तम।

विभी पदार्थ का छाड़ देना या उम पर स भ्रमना प्रथिवार हटा लेना। उत्सव। विरक्ति क कारण सासारिक पदार्थों

त्रिदिक् = का०, २६१।

[वि०] (स०) ताना दिनाए।

त्रिपुर = का०, २७२ ।

[स० पु०] (सं०) वाणापुर का एक नाम । तीन लोक—
आकाश, पाताल, मलय । आकाश स्थित
तारकाक्ष कमलान्न और विद्यु माला
द्वारा निर्मित तीन नगर ।

[त्रिपुर—नामायनी मे रहस्य सग मे त्रिपुर का चर्चा
है । इच्छा, ज्ञान क्रिया और स्वप्न,
स्वाप जागरण ये त्रिपुर है । इन तीनों
का एकावयव जो शक्ति करती है उस
त्रिपुरा कहते हैं ।]

त्रिपुरारि = चि०, ६७ ।

[सं० पु०] (स०) शंकर । १० शिव ।

[त्रिपुरारि—(शिव)—लौह, रोम्य एवं स्वहामय तीन
पुरो का निर्माण मयामुर न ब्रह्मा के
प्रमाद से किया जिसका शासन तारकाक्ष
के पुत्र तारकाक्ष या ताराक्ष कमलाक्ष
विद्युमाली करत थे । विद्यु क मल
स उनमे धमदुद्धि का लोप हुआ ।
दवा से युद्ध मे शंकर न त्रिपुर का
दहन किया जिससे इन तीनों असुरो
का अंत हुआ । इसलिये शिव त्रिपुरारि
नाम से नवाधित किए जाते हैं ।]

त्रिवली = का० १६८ ।

[सं० स्त्री०] (स०) पट व ऊपर पडनवाली तीन रखाण—
जा गारी मोदर्य का मूनिजाए हैं ।

त्रिभुवन = का० २६१ ।

[सं० पु०] (सं०) तान लाङ—स्वग, मलय पाताल ।

त्रिशूल = का०, २७७ ।

[सं० पु०] (सं०) एक भस्त्र जिम मिर पर तीन पत
हान हैं । शिवजा का मन्त्र ।

त्वरा सी = का०, ११५ ।

[वि०] (हि०) शाप्रता का तरह । अत्यंत क्षिप्रता मा ।

य

यक = का०, २७ ५८ । का० १५८ २५७

[क्रि० वि] (हि०) २५६ । वि० १६० । प्रे० ८ १८ ।

विद्यानि या परन व भाव स पूछा ।

थकना = का०, ६३, १२३, २१३, २१६ । ल०,
[क्रि० घ०] (हि०) ११, २३, ३१ ।

परिश्रम करत करत पतथ होना जब
और काम करन का इच्छा न बरे,
कलात होना ।

यमा = म० ८ ।

[क्रि०] (हि०) श्रात । घन गया ।

यकी सी = का० ६६, १७५ २१३ २२६ ।

[वि०] (हि०) श्रात के समान ।

यपेडे = का० १६ ।

[सं० पु०] (हि०) धप्पड । आघात । चक्कर ।
टक्कर ।

थर थर = का०, १८५ २४६ ।

[सं० पु०] (हि०) वपकपा । हिलन का भाव ।

थल = चि०, २ । प्रे०, ६ ।

[सं० पु०] (हि०) स्थान जगह । जटा स रहिन भूमि । स्थल
का मार्ग । जगला पशुघा का माद ।

थला = चि० ६६ ।

[सं० स्त्री] (१० भा०) भूमि स्थान ।

थाके = चि० १६३ ।

[क्रि० घ०] (१० भा०) यथान का अनुभव करन लग ।

थाप = चि० ७८ ।

[क्रि० घ०] (१० भा०) स्थापितकर जमाकर ।

थापि के = चि० ४५ ।

[एक० क्रि०] (१० भा०) स्थापित कर, प्रतिष्ठित कर ।

थाल = प्र० १२ ।

[सं०] (हि०) बडा थाली परात ।

थाले = ल० ६२ ।

[सं० पु०] (हि०) पत्त पोथा व चारा मार बनवाया
हुया गढा । घातशाल ।

थिर = का० ५६ । का० १०६ । चि०,

[वि] (१० भा०) ३३, ६६ ।

थिर । घबचल । मान ।

थिरता = चि० १८३ ।

[सं० स्त्री०] (हि०) स्थिरता । प्राप्ति । गाभाय ।

थोथा = म० १८ ।

[वि०] (१०) निमग कुछ तन्व न हूँ । साक्षता ।

द

- दण्ड = का० १। वा० २०६ २११। चि०
 [म० पु०] (म०) धन, ६६। ल०, ७३ ७८।
 दाठी। छुमाना। मजा। शामा।
 माठ पल।
- दत्त = चि०, ७०, १३३। ल० २५ ५१।
 [म० पु०] (म०) दत्त। वत्साय की मर्यादा।
 दत्त अश्वली = का०, कु०, ११५।
 [म० श्रौ०] (हि०) दाती की पत्ति, कनार।
 दम्भ = का० कु०, ६०। का० १७, २७१।
 [म० पु०] (म०) अभिमान। घमड़।
 दम्भ स्तूप = का०, १९६।
 [म० पु०] (स०) झहकार का धीरहर्ष।
 दम्पति = का० १८२। चि० १६५।
 [म० पु०] (म०) पति पत्नि का जोड़ा।
 दंशन = का० १२२।
 [म० पु०] (म०) दान से काटना। टर मारना, नटना।
 दक्षिण = का०, ६० २१७। प्र० १४।
 [म० पु०] (स०) दाहिना चतुर। उत्तर व सामने का
 दिशा।
 दग्ध = का०, ५५ ७१। वा० कु०, ८६।
 [मि०] (म०) जला या जलाया हुआ। दुखित।
 दग्धश्रास = का० १७६।
 [म० पु०] (स०) गरम श्वास।
 दग्धहृदय = ल०, ५६।
 [म० पु०] (स०) जला हुआ हृदय। दुखित हृदय।
 [दधीचि—एक ऋषि जि होने इद्र का अमुरा के
 नाश क लिये बच्य बनाने हेतु अश्वनी
 प्रस्थियाँ अर्पित कर ली। मरस्वता नन्वा
 के तट पर इनका आश्रम था।]
- दयना = का० २६। ता०, ५६ ६७ १६०।
 [मि० घ०] (हि०) चि०, ५७। म० १२ ८६। ल०
 १०, ७३, ७६।
 नीच वा घार झुनाना। नम्र हाना।
 विभी वस्तु के द्वारा दयाया जाना। न
 वस्तुभा व बीच म चप जाना।
 दम = का० ६६।

- [म० पु०] (म०) इन्द्रियो को वश म रखना। शक्ति।
 दवान की या नम्र करने का शक्ति।
 साम।
- दम्कीली = का० कु०, ३६।
 [मि०] (हि०) चमकनेवाली। चमकती हुई।
- दमनीय = ल०, ७०।
 [मि०] (म०) दमन करने योग्य।
- दया = का०, ७१। का० कु०, १, २७।
 [म० श्रौ०] (म०) का०, ४७, २११। चि०, १४ ७०,
 १५४ १७४। म० ३७ ४३, ५६।
 प्र० ७। न० ३३।
 सदानुभूति का भाव, कल्याण, कृपा।
- न्यानिधि = का० कु०, २। चि०, ३०। प्र० १८।
 [म० पु०] (स०) करणा व निधि। दया भागर।
 न्यानिधे = ल० ३०।
 [मवा०] (म०) कल्याणवान।
 दयामय = म०, १४।
 [म०] (म०) दया से पूर्ण। न्यानु। इश्वर।
 दयाला = चि०, ८१।
 [मि०] (ब्र० भा०) > 'दयालु'
 न्यालु = चि० ११३।
 [मि०] (स०) दया करनेवाला। दयावान।
 दरपन = चि०, ६८।
 [म० पु०] (म० भा०) दरपण। घुट दबने का शीगा।
 दरवारु = चि० १८७।
 [म० पु०] (म० भा०) दरवार भा।
 दरशन = चि०, १६४।
 [म० पु०] (ब्र० भा०) साक्षात्कार। देखादखी। भेंट।
 दरस = चि०, १८१।
 [म० पु०] (ब्र० भा०) > 'दशन'।
 दरसात = चि० १८, ८८ १६६।
 [मि० घ०] (ब्र० भा०) दिलाई दता है। दृष्टिमाचर
 होना है।
 दरसाति = चि० १६८।
 [मि० घ०] (ब्र० भा०) निम्नाना है।
 दरसान = चि० ६।
 [मि० घ०] (ब्र० भा०) दिलाई दता।

- दरसाय = वि०, १६१, ५७७।
 [क्रि० सं०] (श० भा०) निरास।
 दरसावो = वि०, ३६।
 [त्रि० म०] (श० भा०) निरासा।
 दरस्यो = वि० ६०।
 [त्रि० घ०] (श० भा०) निमाई निपा।
 दरिद्र = का० ८२ प्र० २० २३।
 [वि०] (म०) वृत्त गराय निपन, वगान।
 दरिद्रता दलित = का०, १६७
 [वि०] (म०) दरिद्रता से कुचला हुआ गरायी गताया हुआ।
 दर्प = घां० ३८। का० कु० २०।
 [सं० पु०] (म०) चि० ७१।
 घमड, उद्धता अभयडपन।
 नर्पोद्धत = म० ५।
 [सं० पु०] (म०) घमड का कारण उजड़।
 नर्शकहि = का० ११४।
 [सं०] (श० भा०) दर्जा से। दलनेवाले का।
 दर्शान = का० १२। चि०, २७, १७०। फ०
 [सं०] (सं०) ५५। ल०, २१।
 दलितये 'दरशन'। एक शास्त्र का नाम।

[दर्शन— २८ कला ६, किरण २ अग्रस्त सन् १९१५ मं सवप्रथम प्रकाशित और भरना' मं पृष्ठ ५५ पर सक्लित अनुकात कविता। जीवन नीका अघवार और अघड म चला पर अदभुत परिवतन हो गया। निर्मल जल पर अमृतभरा चादनी और मेरा छोटी सी नीका बिछल रही है। जल लहरा के सग मे परिमल सना पवन खेल रहा है और और नीरव आकाश म बशा का स्वर लहरी गूज रहा है। प्रकृत व्याम प्याल म अमृत भरा हुआ दिखलाकर बट्वाती है और नदी भी उसी प्रकार बह रही है। दूर उस ऊँचे मटल का खिडका दिखाई दिखाई पड रही है और मरी नीका दूनी गत से उभर

हा पल पडा। मनिन वहाँ निगा क मुग का छविबिरागें रजत रज्जु क गमान नीका म लिपट गइ और बाव नना का नीका निवार लग गई और उम गादी मूर्ति का दगा हान लगा।

- दरानों = ल०, १२। २२।
 [सं० पु०] (हिं०) दगन का वज्रवपन।
 दल = का०, १३। का० कु० ३७। का,
 [सं० पु०] (म०) पृष्ठ २ मे २८४ तर। चि० ७०
 ५३। म०, ७। ल०, २६ ३०, ७४
 ५०, ६६।
 निगा वस्तु क उन का सम गडा म
 से एव जा परस्पर जु हा, पर जरा
 गा दगाव पठन पर भलग हो जाव।
 पता पय। समू. गिरोह। मना।
 फून का पसुडा। स्थान।

- दल सा = का० २००।
 [वि०] (हिं०) दन क गदग।
 दन्न अचल = ३० ७०।
 [सं० पु०] (म०) पत्ररुना अचन।
 दलारविद = चि० ३२
 [सं० पु०] (श० भा०) कमान का दन। दन म युत कमान।
 दलित = का० २६७। चि० ५८। फ० ४५।
 [वि०] (म०) ल० ५२।
 मसला हुआ, रोना या कुचला हुआ।

[दलित कुमुदिनी— ३८ कला ७ सड १ किरण ५, मई १९१३ म मवप्रथम प्रकाशित और कानन कुमुदि' मे पृष्ठ ५७ ५५ पर सक्लित कविता। कृषि म क्राडासर के बाव कुमुदिनी खिला हुई थी। प्रकृति के सभा त व जिसका सबदन करत थे जिस राजहम, मणाल आदि कभा किला न स्पय तक नही किया। स्वयं मछलिया जिसके रक्षण के लिये पहरा दती थी चा, सूय, पवन सभा जिसको दयकर प्रस न व। उस मधुर मरवाली कुमुदना का स्वापवण मतवाल हाया न कुचल दिया और

रामों की जनता धूल में मिल गई।
उसकी सारी शोभा नष्ट हो गई।
कालचक्र की गति सचमुच ही
'यारी' है।

दलित्ता सी = का०, १०३।

[वि०] (हि०) दलित महेश।

द्वय = का०, १३६।

[स०] (म०) वन, जंगल। जंगल में लगनेवाली
आग। दावाग्नि। अग्नि।

दशकहिं = चि०, १६१।

[वि०] (म०) दसवीं।

दशान = ल० ५८।

[म० पु०] (७०) गत। बचव।

दशरथ = चि० ५२।

[सं० पु०] (स०) अयाध्या के प्रसिद्ध राजा। आरामचद्र
जी के पिता।

[दशरथ—ये अयाध्यानरेश राम के पिता और धज
के पुत्र थे। इनकी तीन रानिया थी,
कौशल्या, कंबवी और मुमिना। कौशल्या
से राम हुए जिन्हें भरत की माता
कवैया का दशरथ द्वारा दिए गए वचन
के कारण बन जाना पड़ा और
राम के वियोग में इनकी मृत्यु हुई।]

दशा = आ०, ४४ ७८। का० कु०, ८०'

[सं० श्लो०] (सं०) ६७। का०, २५, २८१।

स्थिति, अवस्था। मानव जावन की
अवस्थाएँ, अधिलापा चिंता, स्मरण
उद्वेग, प्रलाप, उमा, व्याधि आदि।

दशु = का०, ८४ ७०, ५१।

[सं० पु०] (सं०) डाशू, चार असुर, अनाय। दास।

दशुदल = का० १०।

[सं० पु०] (सं०) डाशुआ का गिराह।

दह = का० २३४।

[सं० पु०] (हिं) कुड। नदी में वह स्थान जहाँ गहरा
गड्ढा हो, गत।

दहकसा = म०, १६।

[त्रि०] (हिं०) जलता हुआ, सत, नम।

दात = का० २४०।

[वि०] (सं०) जिमका दमन किया गया हो। जिसन

को वश में कर लिया हो। डत निर्मित
दान का बना हुआ। दांत सबकी।

[सं० पु०] (सं०) मैनफल।

दाँत = का०, ५७। म०, ५६।

[सं० पु०] (हिं०) धार। दफा। उपयुक्त अवसर। दाजी।
मीना। जुग में बदा गया चाल।

दाग = का० ४०।

[म० पु०] (हिं०) मुर्दा जलाने का क्रिया। जलाने का
काम। दाह। जलन। डाह। जलने
का चिह्न। चिह्न।

[नाता सुमति दीजिए—'अज्ञातशत्रु' में वासवी
की प्रायना। 'प्रसा' सगीत' में पृष्ठ
५४ पर संकलित। इस तीन पक्ति की
प्रार्थना का भाव है कि भगवान् सद्-
बुद्धि दो। मानव हृदय को कष्टों से
सौच कर चानमूलक विदक का रोज
अकुरित करो।]

दादा = चि०, ४ ७३।

[सं० पु०] (हिं०) पिता क पिता।

दान = आ०, १८ २३। क, १८। का० कु०,

[सं० पु०] (म०) ६२। का०, ५२ ५४ ६३, ६४, १०६,
१६३, २२६। चि०, ५२, १४२। म०,
५, १७। ल०, ४२।

दाने का काम। उदारतावश दिया जाने-
वाला धन या सामान। दान में दी
जानेवाली वस्तु। महसूल, कर, जुगा।
राजनीति का उपाय। हाथी का मद।
एक प्रकार का मधु। छेदन। शुद्धि।

दानव = का०, १८६। ल०, ४३।

[सं० पु०] (म०) असुर, राज्ञम मति।

दानशीलता = का० १५३।

[म० श्लो०] (सं०) दान करने का प्रवृत्ति। उदारता।

दाबहुँ = चि० ४२।

[त्रि० सं०] (ब्र० भा०) दवाघ्नो।

दाधि = चि० ४१ ६४, १६३।

[पूर्व०त्रि०] (ब्र०भा०) दावहर।

दादयो = चि०, ५२।

[त्रि० सं०] (ब्र०भा०) दवाया।

[सं० स्त्री०] (सं०) प्राचीन काल में राजाश्रा का सभी दिशाश्रा में विजय प्राप्त करना ।

दिन = का० कु०, ३१। का०, ७५, ८२, ८६,
[सं० पुं०] (सं०) ६३ ११२, १२६, १६४, १६६, १७८,
२०६, २१७, २२२, २२६, २६४,
२८१। चि०, ८, ३५, ५६, ६१,
१८५, १८६। ऋ०, ४७। प्रे०, ६,
१०, १६, २०। म०, १७, २२। ल०,
७७, ७८, ७९।

सूय निकलने में उसके अस्त होने तक का समय । न पहर या चौबीस घंटे का समय । दिनम् ।

दिनकर = आ०, ५६। का० कु०, ४। का०,
[सं० पुं०] (सं०) २१३, २८४। चि०, १६०, १६३।
प्रे०, ५। म०, ७। ल०, २६।
सूय । आग । मन्दिर ।

दिनकर कर = वा० कु०, ३३।
[सं० स्त्री०] (म०) सूय की किरणें ।

दिनन्ति = वा०, ३३।
[अ०] (हि०) नित्यप्रति । सदा । हर राज ।

दिननाथ = वा० कु०, २८। चि०, ८८, १०१।
[सं० पुं०] (सं०) सूर्य ।

दिनभर = वा०, १४४। चि०, ३८। म०, ७।
[सं० पुं०] (हि०) पूरा दिन ।

दिनरात = का०, १५। का० कु०, २६ ७५।
[सं० स्त्री०] (हि०) वा०, ४६। चि०, ३८। प्रे०, १७,
१६।
रात और दिन । सदा हमशा ।

दिन रैन = चि०, ६।
[म० पुं०] (हि०) २० दिनरात ।

दिनात निवास = वा०, ८६।
[सं० पुं०] (सं०) सध्या का निवास ।

दिनेश = वा० कु० ११३। चि०, १४०।
[सं० पुं०] (म०) सूय ।

दिप्यो = चि० ५३।
[क्रि०] (ब्र०भा०) प्रकाशित हुआ ।

दिया = आ०, ५३। का०, २२। का० कु०, ६,
[म० पुं०] (हि०) पृष्ठ से २८१ तक अनेक बार । चि०
३१, ५८, ६०, ६२, ७१, १०६, १५८,
१६४, १७३, २८१।
दीप दीपक ।

[क्रि० म०] दे दना ।
दियो = चि०, ६७।

[क्रि०] (ब्र०भा०) दिया' क्रिया का एक रूप ।
[नियो भक्त उत्तर है कै मौन—इतु कला ४
किरण ३, सितंबर १९१३ में सव-
प्रथम प्रकाशित । ६० उत्तर]

दिलाती = वा० १४। का० कु० १४।
[क्रि०] (हि०) दिलाना ।

दिलीप = चि० ४८, ५२।
[म० पुं०] (सं०) इक्ष्वाकुवंशी एक राजा का नाम जो
रघु के पिता थे ।

[दिलीप—कालिदास के रघुवंश में इनकी क्या
सविस्तर वर्णित है । इन्हें के यहाँ से
नौटंटे समय कामधेनु के शाप का वशिष्ठ
द्वारा बोध होने पर इन्होंने पुत्रप्राप्ति के
लिए उनके आश्रम की कामधेनु पुत्री
नदिनी की सेवा आरंभ की । नदिनी
ने मायावी मिहू द्वारा इनकी परीक्षा
की । जगल में इन्होंने उनकी रक्षा के
लिए सिंह को स्वयं को अर्पित कर
दिया । धेनु प्रमत्त हुई और पुत्रप्राप्ति
का वरदान मिला और मुदक्षिणा से रघु
उत्पन्न हुए । पुराणा में इन्हें रघु का
पितामह बताया गया है ।]

दिल्ली = वा० कु० १०८। ल० ६६।
[म०] (हि०) भारतवर्ष की राजधानी ।

[दिल्ली—प्रलय का छाया और महाराणा का महत्व
में चर्चित । सहस्रा वर्षों में भारत की
राजधानी । कौरव पांडवों के समय से
लेकर यह या इनके आसपास भारत
का राजधानी रहो है । दिल्ली के नाम
से दिल्ली नामकरण हुआ । कौरवों का
राजधानी हस्तिनापुर यही थी और

पृथ्वीराज चौहान यहाँ अंतिम हिंदू राजा था। अलाउद्दीन ने यहाँ नगर बसाया, और क्रमशः इसी प्रकार तुगलक शाह, मुहम्मद तुगलक और अफ़ग़ानों ने तुगलकाबाद, आदिलशाह और नयी दिल्ली बसायी और अब स्वतंत्र भारत में भारत की इस राजधानी का 'यापन प्रसार प्राधुनिक ढंग पर हो रहा है।]

दिल्लीपति = म० ११।

[सं० पु०] (हि०) दिल्ली के राजा।

दिवस = वा० कु० २२। १७, २४, १४४,
[सं० पु०] (सं०) १७८। चि० १२ १७। प्रे० ११,
१५ १६ २१। म० २१।

दिन, वासर, रोज।

दिवसन = चि० ६०।

[सं० पु०] (ब्र० भा०) दिवस का बहुवचन।

दिया = वा० २६१।

[सं० पु०] (सं०) 'दिवस'।

दिवाकर = वा० कु०, २४ २८, ५४। का० ६३।

[सं० पु०] (सं०) चि० १, १४३, १४५, १५२।
म० ३।

सूर्य, भास्वर। कीवा। मदार का फूल।

दिव्य = का०, ५०, ५८, ६०। चि०, १०१।

[वि०] (सं०) ल० ६४।

अलौकिक। ब्रह्मा, मुंदर।

दिव्यज्योति = का० कु० ६ १२ ५१, ११२ ११३,

[सं० पु०] (सं०) १२४ १२६। का० २२२, २४०,
२४४ २७३, २८७। ल० १३।

तत्त्ववेत्ता। आकाश में होनेवाला उदपात। स्वर्गीय अलौकिक। चमकीला।

दिव्य रथ = का० कु०, ११४।

[सं० पु०] (सं०) अलौकिक रथ।

दिवाकर किरणालो = वा० कु०, ३४।

[सं० पु०] (सं०) सूर्य की किरणों की पंक्ति।

दिवारात्रि = वा० ७, ३६।

[सं० स्त्री०] (सं०) दे० 'दिन रात'।

दिवाश्राव = वा० १८०।

[वि०] (सं०) दिन का यथा हुआ।

दिशा = का० कु० ५६। वा० १३५, १८४,

[सं० स्त्री०] (सं०) २४५, २६०, २६३। चि० १०१।

शोर, तरफ। दक्षिण के चार कल्पित विभागा में से किसी शोर का विस्तार। दिक्। दस की संख्या।

दिशि = का०, २३४। चि०, ५३, १६३।

[सं० स्त्री०] (ब्र० भा०) 'दिशा'।

दिशि/दिशि = वा०, १२०। चि०, १३२।

[सं०] (सं०) सभी दिशाओं में। प्रत्येक शर।

दीक्षित = का० कु०, ११४।

[वि०] (सं०) जिसने सत्य करके यज्ञ किया हो। जिसने गुरु से मंत्र लिया हो।

दीक्षित ह्ये कै = चि०, ४१।

[पूर्व० क्रि०] (ब्र० भा०) गुरु से मंत्र लेकर।

दीरता = का०, ६३, ५१। का० कु०, १६,

[क्रि० अ०] (हि०) २६, ४१। म०, ४, ५।

दिखाई देता।

दीर = का०, २६८। वा० कु०, ५१।

[क्रि०] (हि०) > देखना। दिखाई पड़ना।

दीर्जिये = श्री०, २१, २८, ४५। का०, १५,

[क्रि० सं०] (हि०) २५ २२ २५, २७, ६, ३०। चि०,
५४, १७५। ल० ७३।

देना क्रिया का आन्तरगुचक वतमान काल का रूप।

दीजे = का० कु० ६। चि०, ७३, १४८।

[क्रि०] (ब्र० भा०) देना क्रिया का रूप।

दीठि = चि० ४६, १७२।

[सं० स्त्री०] (ब्र० भा०) दृष्टि, नजर, निगाह।

दीन = श्री०, ४४। वा०, ११, २५। का०,

[वि०] (सं०) ७४ ८६। वा० ७ १७, ३३, ४६,
४५, ८२, १३६, १४५ १५७ १६१,

६४, १६७, २३६, २४५। चि०, ४६,
५१, १०० १७०, १७२ १७८। म०,

४६ ६५।

गरीब, धनहीन। दुःखित, वातर।

[सं० पु०] (ब्र०) मत मजहब।

दीनता = श्री०, ३८, ७१। चि०, ३०। म०,

[स० स्त्री०] (म०) ५८, ५९ । ल० ६५ ।
गराबी, धनहीनता । उदासी । नम्रता ।

दीनदुःख = चि०, १७६ ।

[सं० पु०] (स०) गराबी का दुःख । गरीबों का वृष्ट ।

दीनदुःखहारी = प्रे०, २१ ।

[वि०] (स०) गरीबों का दुःख दूर करनेवाला ।

[दीन दुःखी न रहे कोई—विशाख म इरावती की प्रायना । नागकन्या की यह प्रायना 'प्रसाद समीत' में पृष्ठ ३९ पर संकलित है । सब लोग मुखा हो, कोई दीन दुःखी न रहे । दश पूर्ण समृद्ध हो, लोग निरोग रहे, सब में सहयोग और कूट नीति का नाश हो । राजा प्रजा सारे ढोंग छोड़कर समर्थो हो ।

दीनवधुता = चि०, १७८ ।

[सं० पु०] (स०) गरीबी का दुःख दूर करने का भावना ।

दीन वाणी = चि०, ५० ।

[म० स्त्री०] (स०) विनम्र वचन । वातरता से भरी हुई बोली ।

दीन सम = का०, ११, १५ । म० २ ।

[वि०] (म०) गरीबी का समान ।

दीने = चि०, ७४ । ७१ ।

[क्रि० स०] (ब० भा०) दिया ।

दीन्ह = चि०, ४२, ८८, ५७, ६०, ६४, ६६,

[क्रि० स०] (ब० भा०) १०१, १५४ ।

दिया ।

दीन्हों = चि०, ५२ ।

[क्रि०] (ब० भा०) दिया ।

दीप = घ्रा०, १७, १९, ७३ । व०, ९ । का०

[सं० पु०] (स०) कु०, ४, ८, ६, १०३ । का०, १७६, १७९, २०६, २६३ । चि०, ४६, १६१, ३०, ३४, ३५ ।

दिया । चिराग । एक मात्रिक छन्द ।

द्वीप ।

[दीप—'माधुरा' षप १, रड १, सं० ३, सप १९२२ में मवप्रथम प्रकाशित और 'भरना' म पृष्ठ ३५ पर संकलित छाया-

वादी शिल्प की चतुदशपदी । घूसर सख्या कालिमा का अधिकार बढ़ाती चली जा रही थी । अथसादरूपी घोर अथकार में पवत के समय का प्रतीक सोना पुत्रचाप मन मारे वह रहा था उस गंगा की भाँति पूज्य मानकर अचन में छिपाकर एक छोटा सा दीप किसी न जलाया था । मन का यह दीप सार ससार पर घोर धीरे प्रकाश बिखेरने लगा । और प्रकाश का 'जला करंगा दीप, चलेगा, यह सोता वह जाने का ।' द०—प्रसाद की चतुदशपदिया ।

दीपक = घ्रा०, ३०, ४४, ७६ । का०, ९, [सं० पु०] (स०) १६० । चि०, १९ ।

दिया । चिराग । एक अथकार । एक राग का नाम । वंशर । मयूर शिखा ।

दीपती स्त्री = का०, ९७ ।

[वि०] (हि०) प्रकाशित हाती सा ।

दीपमाला = का० कु०, २ ।

[म० स्त्री०] (स०) जलते हुए दीपों की पालक । दापशिखा । आरता का जललाई हुई वस्त्रिया का समूह ।

दीपाशखा — का०, १७६ ।

[सं० स्त्री०] (स०) चिराग का ली । दिवे की टेम ।

दापाकुुराली = चि०, ४६ ।

[सं० स्त्री०] (स०) दापरूपी अमुरा की पालक ।

दीपाधार = म०, १९ ।

[सं० पु०] (स०) दीप का आधार, दीपट ।

दीप्त = का०, ४७ ।

[वि०] (स०) प्रकाशित । चमकता हुआ ।

दीप्ति = का०, ९, २४६ ।

[सं० स्त्री०] (स०) प्रकाश । आभा । शोभा ।

दीरघ = चि०, ३ ।

[वि०] (हि०) विस्तृत, बड़ा, विशाल ।

दीर्य = का० कु०, ८९ ।

[वि०] (स०) 'दीरघ' ।

दुःखभीष्टदग तूर्य = ल०, ५६ ।

[सं पुं०] (सं०) नगाढा, मृदग और डाला। सुरही या सिंहा।

दुग्ध = मां०, ३६, ७५। क०, १७, ३१।

[सं पुं०] (सं०) का० कु०, १४, २७, ३०, ६३, ७६, ११३। का०, ६, २६३। वि०, १८। १८८। प्र० २०, २२, २३। म०, १०, १२, १५। ल०, ३१, ४५।
कृष्ट वनग प्रापति।

दुग्ध ज्वाला = का० २८२।

[सं स्त्री०] (सं०) विपत्ति दुग्ध की लपट।

दुग्धजलधि = का०, ८।

[सं पुं०] (सं०) दुग्ध का सागर। घट्टन उठा दुग्ध।

दुग्धरस्यन्त = का० १६०।

[सं पुं०] (सं०) बुरा स्वप्न।

दुग्ध = क० २, १४ २२३। वि०, १८१

[सं पुं०] (सं०) १८४ १७८ १८५।

०० दुग्ध'।

दुग्धद = का०, १६४।

[वि०] (सं०) दुग्ध देनेवाला दुग्धदायक।

दुग्धदायक = क० १३। प्र० २३।

[वि०] (सं०) दुग्ध या कृष्ट पहचानेवाला।

दुग्धदण्ड = का० २६६।

[सं पुं०] (सं०) दुग्ध रूपी कृष्ट। दुग्ध का दण्ड।

दुग्धतटिनी = का०, १७६।

[सं स्त्री०] (हिं०) दुग्धरूपी नदी।

दुग्धदीनता = का० २६१।

[सं स्त्री०] (सं०) गरीबी का दुग्ध।

दुग्धद्वय दल = का० कु०, ७ वि० १४०।

[सं पुं०] (सं०) दुग्धरूपा वृत्त के पत्ते।

दुग्धपिपासा = का० कु० ५७।

[सं स्त्री०] (सं०) दुग्ध की व्यास।

दुग्धभरी = का० २१३।

[वि०] (सं०) = दुग्ध से युक्त।

दुग्धसुग्ध = मा० ४६। का० १०२ १६०

[सं पुं०] (सं०) २२२ २७२।

कृष्ट और घानद।

दुग्धसागर = का० कु०, ६३। प्र०, २१।

[सं पुं०] (सं०) ०० दुग्धजलधि'।

दुग्धशामी = वि०, ६८।

[वि०] (हिं०) दुग्ध में नाल या दुग्ध की वामना करनेवाला।

दुग्धभाग = मां०, ४८।

[सं पुं०] (हिं०) दुग्ध का बोझ।

दुग्धिया = का० कु०, ६१। का० ० १३। वि०,

[सं स्त्री०] (हिं०) ६०। क० ५। प्र०, १८। ल०, १०, ७२।

दुग्धी कृष्ट में पडा दुग्धा।

दुग्धियान = वि०, १७८।

[सं पुं०] (प्र० भा०) ०० 'दुग्धिया'।

दुग्धी = मां० ११। का० कु० ५६ ८६।

[वि०] (हिं०) का० ११८, २१३। वि०, १०३, १४०

१८५। प्र०, ५, ६, १८, २३।

खिन्न। 'दुग्ध में पडा दुग्धा। कृष्ट भजन वाला।

दुग्धधाम = का० १४०।

[सं पुं०] (सं०) दूध व धर अर्थात् दूध देनेवाले पशु।

दुग्धसी = का० ६४।

[वि०] (सं०) दूध के समान स्वच्छ मक्के'।

दुग्ध = वि०, १८४।

[सं०] (हिं०) घृणापूर्वक दूर हटाने के लिये कहा जानेवाला शब्द। भिडकी।

दुग्धहरी = ल० ६६।

[सं स्त्री०] (हिं०) दोपहर। मध्याह्न।

दुग्धरत = का० २४६। ल० ५१ ५२।

[वि०] (सं०) दुग्ध। दुग्धरतः घोर। जिमका अंत बुरा हो।

दुग्धरई = वि० ५८।

[सं स्त्री०] (प्र० भा०) खिगाई।

दुग्धशामयी = ल० ५२।

[वि०] (सं०) बुरा आशा से युक्त।

दुग्धी = का० कु०, ८ १०, ११८। प्र० १,

[सं पुं०] (सं०) ३, ४।

गड, जिला एक अमुर का नाम।

[वि०] (सं०) जहाँ जाना वा गमन करना महज न हो। दुग्ध।

दुर्गाद्वार = म०, १०।

[सं पुं०] (सं०) जिल का दरवाजा।

दुर्गुन = वि०, १८५।

[म० पु०] (ब० भा०) बुरा गुण। दोष।

दुर्जन = प्र० ५।

[वि०] (स०) दुष्ट या खोटा आदमी। खल।

दुर्जनकृत = म०, १४।

[वि०] (स०) बुरे व्यक्ति के द्वारा किया हुआ।

दुर्जेय = का०, ७।

[वि०] (स०) जिसका जातना अत्यंत कठिन है।

दुर्दम्य = का० कु०, ११२।

[वि०] (स०) जिसका दमन करना दबाया या जाता जाता बहुत कठिन है। प्रबल, प्रचंड।

[स० पु०] (स०) गाय का बछड़ा।

दुर्दिन = का०, १, १४। का० कु० १०८।

[स० पु०] (म०) बुरा दिन मयाच्छन्न दिन। दुःख और कष्ट के दिन।

दुर्दिन जलघारा = का० कु०, १०८।

[म० स्त्री०] (स०) वह दिन जिसमें घनघोर वादल छाए हैं, मुसमभार पानी बरसता है, इस प्रकार के दिन व जल का प्रवाह।

दुर्द्वैव = का० २८।

[म० पु०] (स०) दुर्भाग्य अभाग्य।

दुर्द्वैवश = का० कु० १०६।

[क्रि० वि०] (म०) दुर्भाग्य म।

दुर्धर्म = का०, १६४।

[वि०] (म०) कठिन, प्रचंड, दुःखम।

दुर्निवार = का० १७६, १६१।

[वि०] (स०) जो शीघ्र रोका या हटाया न जा सके।

दुर्बल = का० १८। का०, १८४, २५६। प्र०

[वि०] (स०) २१।

कमजोर। दुबना पतला। निबल।

दुर्बलता = का० कु०, ८६। का० ५६, ८४

[स० स्त्री०] (म०) १२२ १७०।

बल का कपा, कमजोरा, दुबना, दुबनापन।

दुर्भर = का० १४३।

[वि०] (स०) जो उठाया न जा सके।

दुर्भाग्य = प्र० १६।

[स० पु०] (म०) बुरा भाग्य बुरी किस्मत, बुरा महष्ट।

दुर्भाज = का० कु०, ११३।

[म० पु०] (म०) बुरा भाव, द्वेष।

दुर्भय = का०, २६ ३८, ६३।

[वि०] (म०) जो सहज भेदा या छेदा न जा सके। जिसे पार करना अत्यंत कठिन हो।

दुर्भद = ल०, ५१।

[वि०] (म०) जो मत्त म चूर है, धमडा, मदमस्त।

[दुर्बोधन—द० मुयावन।]

दुर्लभ = का०, १२२। ल०, १२।

[वि०] (स०) जा कठिनता से मिल सके, अनोखा, बहुत बढ़िया और विलक्षण।

[स० पु०] विष्णु।

दुर्लक्ष्मी = का०, २००।

[म० स्त्री०] (म०) अनिष्टकारक बने। बुरी भार्था, कुत्ता स्त्री।

दुर्लभ = का०, १३८। ल० ६।

[वि०] (स०) बुरा, खराब, जिसका रगड़ग ठीक न हो।

दुर्भाव = का०, ६१।

[वि०] (म०) जो जल्दा समझ में न आ सके। कठिन।

दुर्ब्ययहार = का० १२४।

[म० पु०] (म०) बुरा बलाव या सलूक। बुरा आचरण।

दुर्लार = का०, १६८, १६०, १६६, १८८,

[स० पु०] (हि०) २४३।

बच्चा का प्रसन्न करने की पूजा चेट्टा, लाट प्यार।

दुर्लारकर = का०, १५२।

[पूव० क्रि०] (हि०) बच्चा को प्यार कर।

दुर्निधा = का०, १४३।

[म० स्त्री०] (हि०) दा नाना म म किरी का निश्चित न कर सका का भाव। मन की अस्थिरता सग्य।

दुर्द्विचत सा = का० कु०, १२३।

[वि०] (म०) निश्चित वित्त व्यक्तिकी तरह। कठिनता से समझ में आनेवाले की तरह।

दुष्कर सा = का०, १७।

- [वि०] (स०) भरतय कठिनता के साथ । दुसाध्य सट्टा ।
- [स० पु०] (स०) आकाश की तरह ।
दुष्कर्म = का०, ७ । म० १२ ।
- [स० पु०] (स०) बुरा काम, कुकर्म । पाप ।
दुष्काव्य = म०, १४ ।
- [स० पु०] (स०) बुरा काव्य । जिन काव्य से ममाज म बुराई आता हो ।
- दुष्ट = वि०, २६ । का० कु०, १०२ ११२ ।
[वि०] (स०) क० २८ २८ ।
दोषग्रस्त । बुरे स्वभाववाला । दुर्जन पाजी, खल ।
- दुष्टन = वि०, ४२ ।
[वि०] (प्र० भा०) देखिए 'दुष्ट' । (बह्वचन) ।
- दुष्प्राप्य = का० कु०, ३० ।
[वि०] (म०) जिसका मिलना कठिन हो, दुलभ ।
- दुष्यत = वि० ५८, ६०, ६६ । का० कु०, [स० पु०] (म०) १०६ ।
महाभारत में वर्णित एक पुत्रवशी राजा का नाम जिसने कसब ऋषि की पालिता पुत्री 'शकुन्तला' से गांधव विवाह किया था । प्रेम राज्य भरत, वन मिलन में चर्चित । दे० शकुन्तला ।
- दुष्यत सहित = वि०, ५६ ।
[स० पु०] (स०) दुष्यत के साथ ।
- दुसह = का०, २३४ । का० कु०, २२ ।
[वि०] (स०) जो सहान न जाय । असह्य । कठिन ।
- दुस्तर = क०, ३१ ।
[वि०] (स०) जिनको कठिनता से पार किया जा सके । विकट । कठिन ।
- दुहराना = म०, १ ।
[क्रि०स०] (हिं०) क्रिमी काम का दो बार किया जाना । दो बार धावूत करना ।
- दुहरी = भा०, २४ ।
[वि०] (हिं०) दो परतों का हाता ।
- दुहाई = ल०, ३३ ।
[स० श्लो०] (हिं०) घोषणा । पुकार । अपनी रक्षा के लिये चित्लाकर लोगो को बुलाना । दूध दुहने की मजदूरी । गुहार ।
- दुहें = वि० ४१ ४२, ५३, ६४, ६५ ।
[वि०] (प्र० भा०) दोनों ।
- दुहेंन = वि०, १६ २३ ।
[वि०] (प्र० भा०) देखिए 'दुह' ।
- दुहें = का०, १४७ ।
[क्रि०स०] (हिं०) दुहना ।
- दूजे = वि०, ३१ ।
[वि०] (प्र० भा०) दूजरे ।
- दूत = क०, ५० । वि० १८४ ।
[म० पु०] (स०) किसी समाचार का पहुंचानेवाला मनुष्य, चर, धावन । प्रमी का सट्टा प्रमिवा तक पहुंचानेवाला ।
- दूध और पानी सा = क० ४०१ ।
[वि०] (हिं०) दूध और पानी के समान एक ही जानेवाला ।
- दूनों = वि०, १८१, १८४ ।
[वि०] (प्र० भा०) दोनों ।
- दूना = का०, १६० ।
[वि०] (हिं०) दुगुना ।
- दूनी = का०, १७६ । वि० १०६ ।
[वि०] (हिं०) दूना वा स्त्रालिंग ।
- दूर = प्र० प०, २, १५, २१ । क०, १५, [क्रि०वि०] (हिं०) ३० । का० कु०, २८ । का० ३२, ६८, ७०, ८१, १२६ १३६ १४२ १५०, १६४ १८०, २३३ २६०, २७२ ।
वि०, १५ । क० ३३ ५५ म०, १, ३ ४ । ल० ६७, ६६ ३१ ।
विस्तार तथा काल समय के विचार से अंतर पर ।
- [दूर जब हो गया वही मन से—'विशास' म नरद्व क प्रति महारानी की गिला । प्रसाद संगीत म पृष्ठ ३६ पर सचलित । चार पाँत इन कविता म महारानी कटता है कि यदि कोई मन से दूर हो गया तो मन ही तन तन से नगा रह दुष्क नहीं है, जस सक्ता धानन स्वप्न

मे मन सर का आता है पर तन से
उसका कतई लगाव नहीं रहता ।]

दूर दूर = का०, ३ २८, ३०, ३५, २१८ ।

[क्रि० वि०] (हि०) बहुत दूर तक । निकट नहीं ।

दूर से = चि०, ४ ।

[क्रि० वि०] (हि०) दूर से ।

दूरागत = का०, १७, २११, २२५, ६६ ।

[वि०] (स०) दूर से आया हुआ ।

दूरादल = चि०, ३६ ।

[स० पु०] (स०) दूर नामक पास की पत्ती ।

दूसरा = का०, ८१ ६२ १६१, १६८, १७१

[वि०] (हि०) २१०, २६०, २७२, २७७ । चि०
१८७ । का० कु०, ८, २० ४२ ।
प्र० १३ ।

कोइ और । द्वितीय ।

दृगचल = चि०, २४ । ल०, ४८ ।

[स० पु०] (स०) आँख की पलक ।

दृग = धा०, ६६ । का०, ७७ १५६, २८१

[स० पु०] (स०) २८६ २८६ । चि०, ४७ ५६, ७०,
७४ १५१, १८६ । ऋ०, ४४ । प्र०,
७, २२ । म० १८ । ल०, १०, ४६
७६ ।

आँख । देखने की शक्ति या दृष्टि ।

दो का सख्या ।

दृगकज = का० कु० १०० ।

[स० पु०] (हि०) कमलवृक्ष आर्ये ।

दृगकुभ = चि०, १७७ ।

[स० पु०] (हि०) आत्म रूपी घडे ।

दृगजल = धा० १० ऋ० १६, २६ ।

[स० पु०] (हि०) आध्म ।

दृगभरना = का० कु० ७१ ।

[स० पु०] (हि०) भरना के समान धारणें । आँखों से
आँसू बरसना ।

दृगसारा = का० कु०, ५६ प्र० २६ ।

[स० पु०] (हि०) आँख का पुतली, अत्यंत प्यारा ।

दृगद्वार = का० कु०, ६२ ।

[स० पु०] (हि०) आँख के दरवाजा, पलकें ।

दृगनि लोल = चि०, ७० ।

[स० पु०] (ध० भा०) चंचल आँखा मे ।

दृगवान = चि०, ५४ ।

[स० पु०] (हि०) आँख का तीर, बटाछ ।

दृगमीचि = चि०, ७० ।

[क्रि०] (ध०भा०) आँख मीचकर या मलकर ।

दृग = का , ३, ६३, १८१, १८२, १८३,

[वि०] (स०) चि०, ४१, ४६, ६७, ६६, १०३,
१८७, म० २६ ।

प्रगात् । ठास । हृष्ट पुष्ट । ध्रुव, पक्का ।
निडर, ढीठ ।

[स० पु०] (स०) 'विष्णु' । घृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम ।

संगीत के मात रूपना म से एक ।

गणित म वह थक जा दूसर से
विभाजित न हो ।

दृढ करे = चि०, २४ ।

[क्रि०] (हि०) पक्का करने, मजबूत बनाय ।

दृढता = का० २६ ।

[स० स्त्री०] (स०) पक्कापन । अटलता ।

दृढ प्रतिज्ञा = म० ११ ।

[वि०] (स०) अपने प्रतिज्ञा या बात पर अटल रहने
वाला ।

दृढमूर्ति = का० ५६ ।

[म० स्त्री०] (स०) मजबूत प्रतिमा ।

दृढ हृदय = म० ११ ।

[स० पु०] (स०) पक्का हृदय या विचार ।

दृप्त = का० ८६ ११६ । प्र० २४ । ल० ५२,

[वि०] (स०) ५७ ६३, ६७, ६६, ७१, ७६ ।

उग्र । प्रचंड । प्रज्वलित । तेजयुक्त ।
अभिमानी ।

दृश्य = का० कु०, १३, ५७ ६८ । का० ३५,

[वि०] (स) ४६, ११६, २०६, २८४, २८६, २८६ ।

चि०, ४२, ६३ । ऋ०, १६ ६६ ।

जो दर्शन में आ सके । जिसे देख सकें ।

जा दिखाई देना या साक नमभने म

आता हो । स्पष्ट देखने योग्य । दर्श

नीय । मुद्दर ।

[स० पु०] (स०) दर्शने का वस्तु ।

दृष्टि = का० कु० १२१ । का० १७, २०, ५१,

[सं० स्त्री०] (सं०) ६३, १६४, १८१ । चि०, २१, १४७, १५७ । अ० ६० ।

देखन की शक्ति । आख की ज्योति । निगाह । नजर । परख । भाषा । ध्यान । विचार । उद्देश्य । अभिप्राय ।

दृष्टि ते = चि०, ७४ ।

[सं० स्त्री०] (ब्र० भा०) आख से ।

दृष्टिपथ = का० कु० ४१ का० ८३ । अ०, ५७ ।

[म० पुं०] (सं०) दृष्टि का फलाव । नजर की पहुँच ।

[नेत्रा नयनों ने एक भ्रूलरू—'विशाल' मे चद्रलेखा का वदी भ्रवस्या या चार पक्ति का गीत जो विशाल की उसकी प्रेम स्मृति को मूर्तित करता है । प्रसाद मगीत मे पृष्ठ २२ पर सकलित । उम छबि की निराली छटा की एक भ्रुलव आखी ने देखी । नेत्र रूपी भीर रस पा मदमत्त हा सी गए कमल मे ऐसा लाली थी । पनरें सुरभि का हाला पी लिये । रूप का वह मादकता एसा मतवाली थी । भाल मुख पर खुले बाल और उम कपोल पर गजब की मादक लालिमा था ।

देना = आ० ८ १८ । क० ११, १७, १८ [क्रि०] (हि०) २५ । का० कु० ११, २१ । का०, ४१, ८४, ६३ १८२, २१६, २३७, २५२, २५४ २६३, २८२ । चि० ५७, ६२ १७६, १८० १८५ । अ०, ६१ । प्र०, ११ । ल०, ३५ ३७ । प्रदान करना ।

देवकल्पना = का०, १६३ ।

[सं० पुं०] (सं०) इश्वरीय कल्पना ।

देवदभ = का० ७ ।

[सं० पुं०] (सं०) देवतामा का ग्रहकार ।

देवदार = का० ८८ २०८ । चि० ५५ ।

[सं० पुं०] (सं०) हिमालय पहाड पर पाया जानमाला एक वृक्ष विनोप ।

देव दिनकर = का० कु० २० ।

[सं० पुं०] (सं०) मय न् । दिन करनमान देव ।

देवदूत सा = प्र० १६ ।

[वि०] (हि०) यन्त्रि के समान । देवदूत क गमान ।

देव द्वन्द्व = का०, २८५ ।

[सं०] (सं०) देवताओं पर परस्पर युद्ध ।

देव प्रतिज्ञा = चि०, ६७ ।

[सं० स्त्री०] (सं०) दृष्ट प्रतिज्ञा । कठोर प्रतिज्ञा ।

देव प्रवृत्ति = का०, १५८ ।

[सं० पुं०] (सं०) त्वताप्रा का स्वभाव, सतोगुणी स्वभाव । ग्रहकार स्वभाव ।

[देवदाला—'भरना' म पृष्ठ ७८ पर सकलित कविता । कृत्रिमते यहाँ मत आभी । मारी सरलता यहा देवदाला म एकत्र है । कृत्रिमता चचल और क्षणभंगुर है चाहे वह हिमाना हो, चाहे इन्द्रधनुष ही सबका रंग अस्थायी है सरलता पवन चंद्रमा का सीला के समान है । सुवासित जल सड जाता है इत्र उड जाता है, हिमकणो म चमक ता रहता है पर मूर्ध (ताप) व स्पश मात्र स उड जाता है पर सहज सादय गंगा का धारा का भाँति पवित्र और स्नेह के आकाश के नव तार की भाँति है । यह शीलसागर के मोती का भाँति सुडर है और हनना माधुर और कही नही हाता ।]

देवदालागन = चि० १५४ ।

[सं० पुं०] (ब्र० भा०) देव कयाद्या का समूह ।

देवदत्त = चि० ४१ ।

[सं० पुं०] (सं०) भाग पितामह जो गंगा क पुत्र थे । इनके पिता कुम्भशा राजा शातनु थे । एक सामान ।

देवमन्दिर = का० कु० ६६ । ल० ६३ ।

[सं० स्त्री०] (हि०) हिंदू धर्म व शास्त्रमत्तानुसार देवपूजा का स्थान जहाँ निमा देवता की प्रतिमा या प्रताक रहता है ।

[देवमन्दिर—द्रु कना ३, विरग १ आश्विन शुक्ल मवत् १६६८ वि० म मवप्रथम प्रकाशित और 'कानन कुमुम' म पृष्ठ ५६ पर मकलित और 'मन्दिर' भाषक मे प्रकाशित । जब यह मानन है कि पुण्या, जन, पावक आवाग, वापु इन पवभूता म ईश्वर व्याप्त है ता यह

उनकी हठधर्मों है जा कहीं हैं जि मन्दिर' म नहीं है। जहाँ श्रद्धापूर्वक हजारों सीस नवाते हैं और उसको सहस्रो मुल से बताते हैं फिर भी उसको वहाँ न मानना मूढता है। जा आर्या और परमात्मा का भेद नहीं मानते उह जानना चाहिए जि जिस पचभूत से ये बने ह उमा से मन्दिर भा बना ह। भगवान् का लाला सबत्र व्यास है। इम कविता का उपसहार इम प्रकार है—

मस्जिद, पगाडा, गिरजा किमको बनाया त्ने।
सब भक्त भावना क छाटे बडे नमूने।
मुदर बितान कसा, आकाश भी तना है।
उसका अन्त मन्दिर, यह विश्व भी बना है।]

देवयजन = का०, १३, ३१।

[स० पु०] (स०) दवताप्रा का यज्ञ। यज्ञ की वेदी।
वह स्थान जहा यज्ञ किया जाता है।

देवलोक = लहर १५।

[स० पु०] (म०) स्वर्ग।

देव शक्तियाँ = का०, १८५।

[स० श्लो०] (स०) देवताप्रा की शक्ति या बल।

देवि = का० १६६ २११, २४४, २४६ २८६

[म० श्लो०] (स०) चि०, ४६, १६१।

देवी। दुर्गा। कुल लक्ष्मी। देवता का स्त्रालिंग।

देवी = का० कु० १२१।

[म० श्लो०] (हि०) 'दवि'।

देवेंद्र = का०, १६७।

[स० पु०] (स०) देवराज। इन्द्र।

देवेश = का० कु० २०।

[स० पु०] (स०) परमरत्न। शिव। विष्णु। इन्द्र।

देवों = का० ७१, ७८, १०६, १२८, १६६,

[स० पु०] (हि०) १६७, २५७, २५८, २६५ २६६।

'देव' का बहुवचन।

देश = का०, ३८, १८३। प्र०, १८, म०, ८१०।
[म० पु०] (स०) १८, ४६, ५०, १६६, १८३।

वह भूभाग जो एक प्राकृतिक सीमाओं से त्रया हो और उसमें अनेक प्रात, नगर आदि हा। जनपद। एक शासन के अन्तगत रहनेवाला भूभाग। राष्ट्र। स्थान। जगह।

देशकाल = का० १८२।

[म० श्लो०] (स०) दश की स्थिति।

[देश की तुम्हारा निहारोगे—'स्वयम्भु' मे दवमना का देशप्रम पूरित गीत जो दश की दुदशा देरकर व्याक क रूप मे फूट पडना है। प्रसाद संगीत' म पृष्ठ ६७ पर सकलित। दश की दुदशा देखी, क्या कभी हूवते देश का कचाओगे। सब कुछ हारते हारते हार गए क्या अब अपन को ही दौन पर हार जायाग। क्या कुछ करोगे या दीन बनकर भगवान् भगवान् ही पुकारते रहोगे। तुम भले सोये हुए हो, पर तुम्हारा भाग्य नहीं साया है और अपनी मिगडी को तुम्हो का सवारना है। तुम अब तक दीन का जीवन बिता रहे हो। सोचो तुमको क्या हो गया है। देश की दुदशा देखी, जागा और कुछ करा, भाग्य मरामे न बैठो। यह इस कविता मूल तत्व है।]

देशभक्त = म० ६।

[म० पु०] (स०) जो अपन दश की सच्चा निष्ठा के साथ उन्नति म लगा हो या प्रयत्न शाल हो।

देशनिकाला = का० ३०।

[म० पु०] (हि०) देश म निकात जाने का दड। निवामन।

देश देश = का०, १३।

[म० पु०] (हि०) विभिन्न दश। अनेक दश। प्रत्यक देश।

देह = वा०, १४२, १६१। प्र०, ११।
[सं० स्त्री०] (सं०) शरीर। वस्त्र। तप। जीवन। विप्रद।

देह मोह = पा० १४४।
[सं० पुं०] (सं०) ग़रार तथा पर।

देहमात्र = वा० १६३।
[सं० पुं०] (सं०) केवल शरीर अर्थात् वाँतान।

देहु = वि०, १२६, १८१, १६०।
[क्रि०] (प्र० भा०) > देना।

[देहु चरण मे प्रीति—दूट बना छ, रा० २ तिरग
३ सातबर १६१३ मे मयप्रथम देहु
चरण मे प्रीति' भाषक न प्रभावित
और 'त्रिपापार' मे मारदेविदु के
अनर्गत चार पदा [(१) डीठ हू करत
सबही पाप। (२) पुय औ पाप न
जापो जात। (३) छिपि के भगडा
क्यो फलायो। (४) ऐसो ब्रह्म वेद का
करिहैं।] मे पृष्ठ १८५, १८६ पर
सकलित। पहले पद मे प्रार्थना है कि
हमारे समस्त दुगुण भून कर चरण
मे प्रीति दें। पाप पुय सभी छुट्टी
कराते हो इसलिए इतनी भूखट्टी टेढ़ी
मत करा क्योंकि वह जाना नही जा
सकता इसलिए चरण मे प्रीति दो।
यह दूसरा पद है। तासरा पद है 'यथ
का भगडा क्यो फलाने हो। गिरजा
मस्जिद मंदिर मे हूँ हूँ कर सज
भ्रम मे है। पर लालामय सुम सभी
जगह हो ऐगा मेरा विश्वास है। इस
लिए हमार प्रारणन भीत चरण मे
प्रीति दो। चौथे पद मे निगुण ब्रह्म के
सबब मे कवि रहता है कि वह हमे
नही चाहिए। मेरा विश्वास ऐसे मे है
जो करता मुनता, फलदाता है और
सदा हमारे हृदय मे रहता है—एसे
ईश्वर के चरण मे प्रीति दो।]

देहु = वि०, ६४ १४८, १४६, १७१।
[क्रि०] (प्र० भा०) > देहु।

देहे = वि०, १७०।
[वि०] (प्र० भा०) > दू।

देहे = वि० १५७।
[अध्या०] (प्र० भा०) म।

देहे = वि०, ३८।
[वि० पुं०] (प्र० भा०) दर।

देह्य = व० १२।
[सं० पुं०] (सं०) राजग, नाप, धगुर।

देह्य = वि० ५३, १४२।
[सं० पुं०] (सं०) दीनता।

[वि०] दीन संधी। दायक, देनेवाला।
[सं० स्त्री०] (हिं०) देने का क्रिया।

देह्य = वा० गु०, ११४।
[सं० पुं०] (सं०) दानता। दुख आदि के कारण प्रत्यन
विगत होता।

देवबल = वा० ११०।
[सं० पुं०] (सं०) देवताओं की शक्ति।

देहो = वि०, १५५।
[क्रि०] (प्र० भा०) > 'देहु'।

देहो = श्री० ५५, ५१ ५५, ५५, ६२ ७६।
[वि०] (हिं०) व० १८। वा० ३ ७२ ८१; १२८,
१३०। अ० ११। म० ६, ११। ल०

१०, ३६, ४०, ४१, ७५।
एक और एक का योग।

[क्रि०] 'दा' क्रिया का रूप।
देहु = वि०, ६६।

[वि०] (प्र० भा०) दोना।
देहो देहो = वा० ७३, २३७ २४०, २६५, २७६।

[क्रि०] (हिं०) द दा। दं देता।
देहो देहो = वि० ५७।

[सं० पुं०] (प्र० भा०) दाप की।
देहो = व० १८, २६। वा० गु०, ४४। ल०

[क्रि०] (हिं०) १० ७१।
> 'देना'।
दोना = श्री०, ७१।

[सं० पुं०] (हिं०) पत्ते का बना हुआ कटोरे के आकार
का पात्र।

दोनों = मा०, ८, ४६, ४२, ५०, ६६, ७१ ।
 [वि०] (हिं०) का० कु०, २३, ३८, ७०, ७३, ७६, ७७, ८४, ८८, १२८, १६१, १६५, १७६, २०१, २०६, २१०, २१३, २४३, २५७, २६० । वि० ५८, ७४ ।
 प्र०, ६, १०, ११, १२, १६, २२, २३, २५, २६ । म०, ६, ८, ९ ।
 ल०, ४१, ६६, ७१, ७३ ।
 वे विशिष्ट दो जिसमें स बाँध छाडा न जा सके । उभय ।

दोपहर = प्र० १४ ।
 [स० पु०] (हिं०) मन्थान्न ।

[दो वूदें]—सन्प्रथम माथुरा वष ३, खड १, स० १, सन् १६१४ २४ म प्रकाशित, 'भरना' पृष्ठ २३ पर सक्लित दो भाव चन । शब्द के मुदर नाल आवाण म निशा निखरा थी, गाश का निमल ह्रास मुधा की वही वूद नी भान प्रकृत धार परा का पुलिनन कर रहा थी और सब पर बडा पवी, नह नादान फूल म मुधा की गेमी एव ही वूद स मररद भर गया जिसपर बठकर मतवाला मधुकर गुजार कर रहा है । दे० 'भरना' ।]

दोल = का०, ३४३ ।
 [म० पु०] (स०) झूना । टिडोला ।

दोला = का० १२८ ।
 [स० खी०] (म०) दे० 'दान' ।

दोप = वा०, १६ । का०, २१०, २७१ ।
 [स० पु०] (स०) वि०, ७२ । ऋ० ४२ ।
 दुमुण, बुराई ।

दोड = वा० कु०, ४१, ६४ । का० १४४
 [स० खी०] (हिं०) २५८, २६७, २७३, २७८, २६८, २६२ । ऋ०, ३३ ।
 दोडने की क्रिया का भाव ।

दोड़ दोड़ = का० कु०, ६१ ।
 [स० खी०] (हिं०) ऋ० ४६ ।

बार बार दोडन का क्रिया याव ।

दोड़ धूप = वा०, ५, २६ ।

[स० खी०] (हिं०) वह प्रयत्न जिसम बार बार इधर उधर दोडना पडे ।

दोडना = का०, ४५, ४६, ७२, १७६, २०८, २१० । प्र०, १२ । ल०, ६० ।
 [क्रि०] (हिं०) बहुत जन्दी से चलता । जल्दा पर उठा-कर चनना । साधारण स श्रमिक गति म चलना ।

दौरि = वि०, १, १५, ४१, १०६ ।
 [म० पु०] (श्र०) चक्कर । भ्रमण । फेर । जनति या वभव के दिन । वारी ।

दौवृत्य = का० कु० ११२ ।
 [स० पु०] (म०) बुरा आचरण । बुरा व्यवहार । बुरा-चरण । दुश्चारित्रता ।

शुति = का०, ३१ ४७ ।
 [न खी०] (स०) कात, शाभा । छवि ।
 शुति सी = का० १०४ ।
 [वि०] (हिं०) दाति चमर, शोभा वा तरह ।

शुतमय = वा २८५ ।
 [स० पि०] (म०) काति स युक्त । शोभा से युक्त । लावण्यमय । किरणमय । प्रभामय, दीप्तमय ।

सुतरचना = का० कु०, ११३ ।
 [स० खी०] (स०) जूमा चलने का उपक्रम करना ।

द्रय = ल०, २१, ४३ ।
 [पि०] (स०) तरल, गला हुआ, पिघला ।
 द्रयचन्द्रकात = वा० कु०, १०० ।
 [म० पु०] (स०) पिघलनेवाला चन्द्रकात मण्ड ।

द्रयमय = म०, २२ ।
 [वि०] (म०) पिघलनेवाला काज से युक्त । सरस । सरसता से भरा हुआ ।

द्रवत = वि०, १४ ।
 [क्रि०] (प्र० भा०) पिघलता है ।

द्रवित = वा० कु०, ६६ । वा०, २१३ । वि०, १७३ ।
 [वि०] (स०) पिघना हुआ, तरल, गला हुआ ।

दुत = ल०, ७१ ।
 [वि०] (स०) शास्त्रगामी, ताव ।
 दुतगति = ऋ० ३३ ।

[सं०जी०] (सं०) शीघ्र गति, तीव्र चाल ।
 दुत्तर = ल०, ७२ ।
 [वि०] (सं०) शीघ्रतर । अत्यंत शास्त्रना से ।
 दुत्तपद = ल०, ७२ ।
 [सं० पु०] (सं०) एक छंद का नाम ।
 द्रुम = चि०, १५९ ।
 [सं० पु०] (सं०) वृक्ष । पेड़ ।
 द्रुम दल = श्री०, २६ । का०, ९ । प्रे०, ३ ।
 [सं० पु०] (सं०) म० २ ।

पेड़ के पत्ते ।

द्रुमन = चि०, १७१ ।

[सं० पु०] (सं०) पेड़ा ।

द्रुमपत्र = म० १६ ।

[सं० पु०] (सं०) 'द्रुम दल' ।

द्रुमवृक्ष = ऋ०, ३१ ।

[सं० पु०] (सं०) वृक्षा का समूह ।

द्रोह = का०, १४७ ।

[सं० जी०] (सं०) दूसरे का अहित चाहना । बर । इर्ष्या, द्वेष ।

द्रौपदी = का० कु०, ६४ ।

[सं० जी०] (सं०) राजा द्रुपद की लड़की । पांडवा का पत्नी ।

[द्रौपदी—द्रुपद राजा पांचाल नरेश यजसन की कन्या । स्वयंवर द्वारा अर्जुन का प्राप्त, पांडवा की भी पत्नी । शास्त्रा म पूज्य प्रतिभता नारी । पांडवा द्वारा जुए म हारने पर दुःशामन न इतना नीरहरण करना चाहा और कोरवा न यही यातना दा पर असक्त रहे और इसी का प्ररणा स पांडवा न युद्ध का चेतना ग्रहण की और महाभारत व युद्ध मे उनकी विजय हुई ।]

द्रुह = का० १६१, २५१ । म० ६ ।

[सं० पु०] (सं०) युग । जाड़ा । प्रतिद्रुह । द्रुह युद्ध । भगदा । बन्ध । दा परम्पर विद्रुह । नस्तुभा का जाड़ा । उनम्न । भ्रम । बसडा । बल । उपद्रव । रहस्य । भय । माहाका । दुविधा ।

[सं०जी०] (हि०) नगाडा, दुदुभा ।

द्वयता = का०, १६४, १६२, १६३ ।

[सं०जी०] (सं०) दो हानि का भाव । द्रत । अपनेपन और परापेपन का भाव । भेद भाव ।

द्वार = का० कु० ४ । का०, ११२, १४४,

[सं० पु०] (सं०) १६६, १७२, १८६ १८६, १६३ २३४ । चि०, ६७ । प्रे० १३ । ल० १२ ।

दरवाजा । मुल । उपाय । साधन ।

द्वारका = का० कु०, ११२ ।

[सं०जी०] (सं०) काष्मियावाण का एक प्राचीन नगरी । दृष्य का ज मभूमि ।

द्विगुणित = ऋ० ५५ ।

[वि०] (सं०) दूना । दुगुना ।

द्विज = चि०, २६ १०३ ।

[सं० पु०] (सं०) पत्नी । ब्राह्मण । दो बार ज मा हुमा ।

द्विजकुल = चि०, ४५ ।

[सं० पु०] (सं०) ब्राह्मण परिवार । द्विजाताय वग । पक्षागम ।

द्वितीय = का० ८१ ।

[वि०] (सं०) दूसरा ।

द्वितीया = म०, १६ ।

[वि०] (सं०) दूसरी । 'द्वितीय' ।

द्विधा रहित = का० १२ ।

[वि०] (सं०) पूरा । जिना राज व । मशयरहित ।

द्वीप = का० ५६ ।

[सं० पु०] (सं०) स्थल का वह भाग जो चारो धार जल से घिरा हो । पुराणानुसार पृथ्वा के मात बडे भाग । माधार । टापू ।

द्वेष = प्र० १७ । म० १२ ।

[सं० पु०] (सं०) अनुता बर । ईर्ष्या चिन् ।

द्वेष पर = का० १६३ ।

[सं० पु०] (सं०) अनुता और ईर्ष्या का चर ।

द्वैत = का०, १५३ ।

[सं० पु०] (सं०) दा भाव । अतर । अम । द्रतवाद ।

ध

धंधलापट = प्र०, ३।

[सं० पु०] (हिं०) छत्र छत्र हवी वस्त्र। ताम का भूडा वस्त्र। वपट वस्त्र।

धंसता = का०, १४, ६६ २८६।

[क्रि०] (हिं०) दबाव के कारण किमा वस्तु का नीमल वस्तु म घुमना, गडना।

धक्के = का० २६०।

[सं० पु०] (हिं०) एक वस्तु का दूसरे के साथ वेगपूर्णा स्पर्श। टक्कर। भोका। दुस शोर, हानि आदि का आघात। विपत्ति, मचट।

धज्यो = चि० १५०।

[क्रि०] (ब० भा०) शोभित है।

धडकन = का०, ३३ ८६।

[सं० स्त्री०] (हिं०) हृदय का स्पन्दन। धक धक करना।

धधक = १३६, १७६, २०६ १७३।

[सं० स्त्री०] (हिं०) प्राग की लपट। ली।

धधकना = का०, १४, ३१ ४७ ६२, ११६,

[क्रि० प्र०] (हिं०) २०१ २१४, २१५ २७३।

प्राग का उम प्रकार जलना कि नपट जार को उठे। दटकना। भडकना।

धनजय = का० कु०, ११४ ११७।

[सं० पु०] (सं०) धनुन का एक नाम। अग्नि। विद्युत् का एक नाम। चिक्क वृद्ध।

(वि०) धन को जीतना।

[धनजय—> धनुन ।]

धनजयादि = चि १४०।

[सं० पु०] (सं०) धनुन आदि।

धन = का०, १६ ४७। का०, ६६, २४६।

[सं०] (सं०) चि०, ३४, ५५। सं०, १७, १८, २३।

द्वया पसा, सोना चाँदी आदि द्रव्य।

दीनत। सपत्ति। स्नेह का पात्र। जाड

का चिह्न (+)। मूल। पूजा। जाम

कुल्लाम जम लम म दूसरा स्थान।

वच्ची धातु।

[सं० स्त्री०] (हिं०) युवती वधू।

[वि०] धय।

धनपत्र = चि०, ७४।

[अव्य०] (ब० भा०) धय धय।

धनमद = प्र०, २०।

[सं० पु०] (सं०) धन का धमड।

धनरत्नादि = चि० ५४।

[सं० पु०] (सं०) आर्थिक मपत्ता के उपकरण। धन सपत्ति, रत्न आदि।

धनु = का०, २३। का० १४१, १५७,

[सं० पु०] (सं०) २००। चि० ३ ४१, २३।

धनुष चाप कमान। उद्योतिष म बारह राशियों म म नवी राशि। हठ-योग का एक ग्रामत।

धनु निज = चि० २४।

[सं० पु०] (सं०) अपना धनुष।

धनुधर = का० कु०, ६७।

[सं० पु०] (सं०) धनुष धारण करनेवाला। धनुन।

धनुर्वैदिक = का० कु०, ११४।

[सं० पु०] (सं०) धनुर्वेद शास्त्र का शास्त्र।

धनुष = का० कु०, १०२, ११४ ११७। का०

[सं० पु०] (सं०) २००। चि० ३०, १६३। फ०, ३६।

म० ५।

चाप। कमान।

धनुषाकृति = चि० १६३।

[वि०] (सं०) धनुष क आकार वाला। अक्षयद्राकार।

धनुषाकार।

धन्य = का०, ३०। का० कु० १२१। का०,

[वि०] (सं०) १४७, १५४ २२४, २३८ २८६।

चि०, २६, ६६, ६७। फ०, ५०।

प्रसन्ना या वहाइ के योग्य। ज्ञान।

मुक्ति। पुरुषवादा।

[सं० पु०] वि०। नास्तिक। धनिया।

धन्य धन्य = का० कु० ७१।

[प्र०] (सं०) अहा अहो।

धन्यवाद = प्र०, ५।

[सं० पु०] (सं०) साधुवाद, प्रसन्ना। वृत्तज्ञतामूचक शब्द।

शुक्रिया।

धमनी = का०, ७३। का० कु०, १२०। का०,

[म० श्री०] (स०) ८६। ल०, २१।
शरीर के भीतर रक्त संचार करनेवाला
छाटी नली। नस। नाडी।

धर = क०, ८५। ल० ७२।

[म० ना०] (हि०) धरने या पकड़ने का भाव।

धरणी = आ० १० ३२, ४१ ४८। वा०, ६

[सं० स्त्री०] (म०) १५, ४८ ६३, ७३; १२२, १८२।

प्रे०, ३, १७, २०, २४ २५।

७७।

पृथ्वी। नाडी। शास्मली वृक्ष।

धरत = चि०, १६५ १६६।

[वि०] (ब्र० भा०) दे० 'धरता'।

धरति = चि०, २३।

[क्रि०] (ब्र० भा०) धारण करती है।

धरती = १४ २५४। चि० १५८।

[सं० स्त्री०] (हि०) पृथ्वी। जमीन। नमार।

[क्रि०] ग्रहण करता, पकड़ती।

धरना = वा० कु० ६। वा० ५२, ११६,

[क्रि०] (हि०) १६७।

पकड़ना। ग्रहण करना। स्थापित

करना। रखना। धारण करना।

स्थापित करना। अग्रगण्य करना।

आधिकार या रक्षा में लना। पला

पकड़ना। गिरवा रखना। रेट्ट

रखना।

धरनि = चि० १४ २४।

[सं०] (हि०) 'धरणी'।

धरनी = चि०, १४३।

[मं० श्री०] (ब्र० भा०) 'धरणी'।

धरा = वा० कु०, २, ३ १३ २४, २७।

[सं० स्त्री०] (म०) आ०, १० १५, २४ ५१ ६६ १६५

२०६। चि० २८ ३८ १०१ १५०,

१५४। क० २३, ३१ ५०, ५६।

पृथ्वी। धरती। समार। गभाग्य।

चार मर का एक तीन। एक वस्तु वृत्त

का नाम। नाडी।

धरातल = वा० २३ १४८।

[सं० पुं०] (सं०) गतह। पृथ्वी। रचना। क्षणिक।

धराशायी = का० कु०, ११३। वा०, २०१।

[वि०] (हि०) पृथ्वी पर गिरा, पडा या लटा हुआ।

युद्धस्थल में युद्ध करते हुए प्राण

त्याग करनेवाला।

धरि = चि०, २, ६, २५, ३६ ४१ ४२, ५८,

[क्रि०] (ब्र० भा०) ६१, ६६ ७०, १४७, १५१, १५४,

१५६ १६० १६१, १६४ १६७,

१७।

पकड़ कर ग्रहण कर।

धरित्री = वा०, कु०, २६।

[सं० स्त्री०] (सं०) पृथ्वी। धरता। जमान।

धरे = क०, ६। वा० ६७ १६८, १७०

[क्रि०] (हि०) १८६। चि० ३ ३५, ५२, १०१,

१५१, १५६। प्रे०, २। म०, २०।

पकड़ें। ग्रहण कर। रखे।

धरे = चि० १५ १६६।

[क्रि०] (ब्र० भा०) 'धर'।

धम = क० १२ २२, २६ २७, २८। वा०

[म० पुं०] (सं०) कु० ८८, ६० ९४ ११६, १२०।

वा० २७*, २७७ २८३। चि०, ३२,

४१ ५६, ६५, ७२ १०१ १०६,

१४०। ल० ३६, ५१।

शुभ। कम। पुण्य। श्रेय। मुक्ति।

आचार। उपमा। यज्ञ। ग्रहणा।

उपानयन। स्वभाव। पथ। मत।

वतव्य। यवस्था। वायु बुद्धि।

दिवस। धमराज यमराज। धनुष,

कमल। सामवादा।

धर्मपोषणा = वा० कु० ११८।

[सं० स्त्री०] (सं०) धर्म का पुनार।

[धर्मचक्र प्रवर्तन— जगता का भगवतमया उपा

यन कर्मणा उग्र त्वि द्वाया या।

नरु रा यह कर्तिना गगा म परवरा

१८३२ म मवप्रथम प्रशासन हृदि

या। ०— जगता का भगवतमया

उपा बन'।]

धर्मच्युत = वा० कु० ११५।

[वि०] (सं०) मयन धर्म से गिरा हुआ।

धर्मजन्य = का० कु० १०६ ।
[१०] (स०) धर्म से उत्पन्न । धार्मिक प्रवृत्तिवाला ।

[धर्मनीति— वानर कुमुद' म पृष्ठ ८८-८९ पर सकलित कविता । धर्म की नाति विनय और ब्रह्मा पर आधारित है और वह प्रणम्य है । वह पंचभूतों को आदि देनेवाली, दुबलता दूर करनेवाली, प्रवचना के लिये बाल और ब्रह्मा के ताप का जलानेवाला है । जिस नीति म साधना निपिद्ध हो धर्म शांति का साधन बन कृटिलता बढे, अमनाप त्याप, विधिग्राह्य समय अयर्थास्त हो, वह नाति नहीं मानाविकार है । धर्म भय का नाशक होता है । मानव दुखी है, दबता अधीर है । शांत जीवनसागर भयकर हो गया है । उसके तीर पर सब दुखी बढे हैं और क्या यह सारा का सारा विप पीर के बाद ही 'रुद्र' ताडव करेगा । अर दुबल तबों क लम चेतो ।]

धर्मान्धते = का० कु०, १२१ ।
[स० ली०] (म०) धर्म की आड में होनेवाले दुष्कर्मों का सहायन । अथ विश्वमनायन ।
धर्मराज = का० कु०, ११३, चि० ३१ ।
[स० पु०] (स०) धर्म पालन करनेवाला राजा । युधिष्ठिर । यमराज । पायावीश ।

[धर्मराज—> युधिष्ठिर ।]

धर्मराज्य = का० कु० ११३ ।
[म० पु०] (म०) धार्मिक सिद्धता द्वारा परिचालित राज्य । धर्मप्रधान राज्य ।

धर्मयो = चि०, १४७, १७३ ।
[क्रि०] (स० भा०) पकड़े ग्रहण किए ।

धर्म = चि ५५ ।
[स० पु०] (म०) एक जंगली पड जा औपधि के काम में आता है । पति, पुत्र । धूर्त आदमी ।

धर्मल = का० ३४, ११६, २१४, २७१, २७७, २८३ । चि०, २१, ६८ । क्र०, २२ । स्वच्छ, श्वेत, निमल । मुदर ।

[स० पु०] (स०) धर्म का पेठ । चिनिया कूर । सिद्ध । सफेद मिच । धर्म पक्षी । श्वेत बल । छप्पय छद का एक भेद । अजुन वृद्ध । एक रोग का नाम ।

धाइ = चि०, ७३ ।

[स० पु०] (म० भा०) दोहर ।

धागो = का० १५ । का०, ६६ ।

[स० पु०] (हि०) बढे हुए मूल या तागे ।

धाता = चि० १३४ ।

[स० पु०] (म०) ब्रह्मा ।

[क्रि०] दोहता ।

धातु = का १८, २६८ ।

[म० पु०] (स०) अपार शक्ति समवाता खनिज पदार्थ । शरीर को बनाये रखनेवाले रक्त, मज्जादि पदार्थ । शुक्र, वीर्य ।

धातुहि = चि० १६६ ।

[स० पु०] (स० भा०) दो धातु ।

धान्य = का० ८२ । चि०, १५४ ।

[स० पु०] (म०) एक तीव्र धनिया । एक प्रकार का नागर मोया । धान । अन्न मात्र । प्राचीन काल का एक अन्न ।

धाम = का० कु० १८, का० ८७ चि० ४६, [म० पु०] (स०) म० ६३ ।

एक प्रकार क देवता । विष्णु । घर । दह शरीर । दवस्थान या पुण्य स्थान । शाभा । प्रभाव । ज म । ज्याति । ब्रह्म । चहारदिवारी । विरग । तज । परलाक । स्वग । अवस्था, गति ।

धाय = चि० ३६ ३८, ४२ ।

[म० ली०] (स० भा०) धानी, दाइ ।

[क्रि०] दोहर ।

धाये = का० कु०, ३८ । चि०, ४१, ६७ ।

[क्रि०] (स० भा०) दोह ।

धायो = चि० ७५ ।

[क्रि०] (स० भा०) दोह ।

धार = का०, ४२ । का० कु० १७ २८ ।

[म० पु०] (स०) का०, ६७ । चि० ११४ ११७ १६४, १६६ ।

धीरघ ने नाम क विने इष्टा रिपा
दुषा जल । उधार । ऋण । प्रीन,
प्रदेग ।

[सं स्त्री०] धारा, प्रवाह । पानी बरगा या गिरन
या प्रग । लहर ।

धारण = वा० कु० १११, सं० ६७ ।

[सं पु०] (सं०) धरग करन वा भाव । पकहन वा
भाव ।

धारत = वि० १४ ३६ ६३, ११८ ।

[क्रि०] (प्र० भा०) रचना । स्थापित करना । घटग
करना । धारण करना ।

धारति = वि० १६ १७ ।

[क्रि०] (प्र० भा०) धा ला बरती है ।

धारन = वि० १७४ ।

[सं स्त्री०] (प्र० भा०) धार वा घटववन ।

धारनि = वि० ४८ ।

[सं स्त्री०] (प्र० भा०) धाराए । '० धारन' ।

धारा = प्रा०, १७, ५६, ६६ । वा० २६,

[सं स्त्री०] (हि०) ४५, ६५ ६७ १२८, १६७ २६३ ।

वि०, १२, ७३, १५० १५६ । ऋ०

१६ । प्र०, १२ २४ । सं० ७२ ।

धार (पाना, हथियार आदि का) ।

विधान आदि का वह विशेष या स्वतंत्र

अंग जिसमे किसी एक विषय की सय

बातें या आदेश होते हैं ।

धारा सा = सं०, ८० ।

[वि०] (हि०) गतिशीलता का द्योतक । प्रवाह क
समान ।

धारा सी = का० १८, २२८, २३३ २४१,

[वि०] (हि०) २४७ । ऋ०, २६ ।

धारा के समान ।

धारहि = वि० ३६ ।

[सं स्त्री०] (प्र० भा०) धारा को ।

धाती = वि० ४६ १८०, १७७ १६२, १०३ ।

[वि०] (हि०) धारण करनेवाला । धारवाली ।

धारे = वा० २०२ । वि०, ६५ १०६, १५३,

[क्रि०] (हि०) १५८ ।

जट्टण किए ।

धारो = वि०, '८७ ।

[क्रि०] (प्र० भा०) उपाहा घटग करो स्वीकार करो ।

धारी = वि०, ६४ ।

[क्रि०] (हि०) घटग कर । स्वीकार कर ।

धारते = वि०, १७६ ।

[क्रि०] (हि०) दोहन ।

धाना = वि०, ६५ ।

[वि० पु०] (हि०) धात्रण । चडाई ।

[क्रि०] शोधन न जाना ।

घात = वि० १६० ।

[क्रि०] (प्र० भा०) लीडे भाग ।

धारो = वि० १४७ ।

[क्रि०] (प्र० भा०) दोडो भागो ।

धिसकार = व० २८, वि० ४१ ।

[सं पु०] (सं०) तिरस्कार या घृणाव्यजक शब्द ।

नानत । फटकार ।

धिसकृत = वा० कु० ६४ ।

[वि०] (सं०) जिस 'धिक' कहा जाय । जिसका

तिरस्कार हो ।

धाम = वा० १२५ ।

[वि०] (हि०) धार चलनवाले । मद । जो अधिक

उग्र या प्रचंड न हो । जिसका जोर या

तजी घट गई है ।

धीर = वा० कु०, २० २१, ११४, ११८ ।

[वि०] (सं०) वा० २६ ३१ ३६ ८६, २४८ ।

वि० ४३ १४७, १५० १५४ १५६,

१६५ १६७ १७२ ।

जिसमे धर्म हो । शांत चित्तवाला ।

बलवान । विनात । नम । गभार ।

मनोहर । सुदर । मद ।

[म० पु०] केसर । ऋषभ श्रीपथ । मम । राजा

बलि ।

(हि०) धीरज । सतोप ।

धीरे = वि०, १४७ ।

[प्र०] (हि०) शन । अहिस्ता । मुस्ती से ।

धीरे धीरे = प्रा० ३१, ४७ । क०, ५, ७, ८ ।

[क्रि० वि०] (हि०) वा० व०, ६५ । वा०, २३, ०४, ७०,

११८, १२७, १५० १७६, १७७,
२४६, २७७, २८०, २६२। ऋ०,
६६। प्र०, १६, १७, १८, २५। ल०,
१४ ७४।

आहिस्ता आहिस्ता। शन शनं।

धुआँ = का०, १६६।

[म०] (हि०) दे० 'धुआँ'।

धुँधला = का० २६६।

[वि०] (हि०) अस्पष्ट। धुआँ के रंग का धूमिल।

धुँधला सा = का० ४६, १८४।

[वि०] (हि०) काला या धुएँ के रंग के समान।
अस्पष्ट सा।

धुँधले = का० १६ ११८, ऋ० ५२।

[वि०] (हि०) अस्पष्ट। साफ न दिखाई देनेवाला।

धुँधलो = धा० ३०, ६२। का० १४ १२१,
२१२।

हवा में मिली हुई धूल के कारण होन
वाला अंधेरा। हवा में उठनी हुई धूल।
आस्र वा रोग।

धुन = वा० कु० २ ५७। वि० १५८ १७२

[म० पु०] (म०) १८० प्र० १३।

कायने की क्रिया या भाव।

- [म० स्त्री०] (हि०) जिसा काम का बराबर करते रहने की
प्रवृत्ति या लगन। मन का तरंग या
मौज। चिन्ता। गाने का तर्ज। मपूरा
जगति का एक राग। धावाज।

धुनि = वि० १५ ५१ १७६।

[स० स्त्री०] (म०) नदा।

[म० स्त्री०] (हि०) धावाज।

धुलने = का० ८७।

[क्रि०अ०] (हि०) धुलना' का वन्यवचन।

धुला = ध्रा०, ३७।

[वि०] (हि०) धुना हुआ। स्वच्छ साफ निमल।

[क्रि०] धुना का भूतकालिन रूप।

धुली = का० १२० २२४।

[वि०] (हि०) साफ की हुई।

धू धू = का०, २०।

[म०] (हि०) आग की लपटों का रव।

धूनी = का०, १७६।

[म० स्त्री०] (हि०) गुग्गुन, लावान आदि गन्ध द्रव्यों से
उठा हुआ धुआँ। एक गन्ध द्रव्य। वह
आग जिसे साधु लोग ठडक से बचन के
लिये ग्रथवा तपस्या के लिये जलाते हैं।

धूप = का० १७। का० कु०, २७। वा०,

[म० पु०] (हि०) १८१, १८२। ऋ०, २६।

बपुर, अमर, गुग्गुल आदि गन्ध द्रव्यों
में उठा हुआ धुआँ। एक सुगन्धित
वस्तु। धाम। सूर्य का प्रकाश। आलप।

धूपछाँह = का०, २४१।

[म०] (हि०) मिली हुई धूप और छाँह। एक तरह
का रगीन बपडा।

[धूप छाँह के खेल सहश—'सब जीवन बीता
जाता है।' स्वद गुप्त की यह कविता
'जाने दो' 'शोषक से द्रम रूप में—धूप
छाह क खेल सहश सब जीवन बीता
जाता है—सर्वप्रथम 'दुः', कला ८,
किरण ३, मार्च १९२७ में प्रकाशित।]

धूपधूम सुरभित = का० १८२।

[वि०] (स०) सुगन्धित द्रव्यों के जलन से उठे हुए
धुएँ से सुगन्धित।

धूम = वा०, १३, ६४, २३३, वि०, ४०,

[स० पु०] (म०) १४१।

धुआँ। अथवा के कारण आनवाली
उकार। धूमकेतु। उन्नापात। एक
ऋषि विशेष। उपद्रव। उत्पात।
बोनाहल। हलचल। ठाटवाट।
प्रमिद्धि।

धूममडल = का०, १२१।

[म० पु०] (म०) धुएँ का घेरा या घनघोर धुआँ।

धूमकेतु = का० २००।

[स० पु०] (स०) अग्नि। पुच्छन तारा। केतु ग्रह।
शिव। वह पांडा जिसकी पूछ में
भबरी हा।

धूमकेतु सा = का० कु०, १०८। का०, ५, २०२।

[वि०] (सं०) पुच्छल तारे के समान । अत्यंत भवानाव
कष्ट देनेवाले के समान ।

धूमगध = का०, १८३ ।

[सं०] (हिं०) धुए की महक या गंध । गुणधिन द्रव्य
की सुगंधि ।

धूमधाम = प्रे०, ७ ।

[सं०] (हिं०) बहुत तयारी । ठाटजाट । समाराह ।

धूम धार = का० २६६ ।

[वि०] (हिं०) धुमाधार । तीव्रगति से ।

[सं० पुं०] भयकर घुम्री ।

धूमपट = का०, ३२ ।

[सं० पुं०] (सं०) धूए का परदा ।

धूमरेखा = श्रौ० ३० ल० ७५ ।

[सं० स्त्री०] (सं०) धूए की रेखा । हल्का धूआ ।

धूम सा = का०, १५६ ।

[वि०] (हिं०) धूए के समान ।

धूमिल = का०, ६७, १५६ १७६,

[वि०] (हिं०) २३३ ।

धूए के रंग का । धुवला ।

धूमिल सा = का०, २०६ ।

[वि०] (हिं०) धुवला सा, धूए स अस्पष्ट सा ।

धूर = वि०, ५ १५६ ।

[सं० स्त्री०] (सं०) धूल । गर्द ।

धूल = श्रौ०, १४ ३१ ४३ । व० १४ ।

[सं० पुं०] (हिं०) का० कु०, २५ ६५ । का०, ३६

५५, ऋ० २ ३०, ३३, ६६, ८६ ।

म०, २ । ल० ४६ ।

मिट्टी बालू धारि वा वहुत महीना
चूण । रज ।

धूल उड़ाना = का० कु० १०७ ।

[पुं०] (हिं०) लाधन लगाना । बर्नामी करना । हसी
उड़ाना ।

धूल धूल = श्रौ० ११ ।

[श्र०] (हिं०) बरवाद, छाक विनष्ट ।

धूल सदृश = म०, २ ।

[वि०] (हिं०) धूल के समान ।

धूलि = का०, १५२ । ऋ० ६ । प्र० १५ ।

का० कु०, १०४ ।

[सं० स्त्री०] (सं०) मिट्टी के गुद्दमारु, रजण्य । धूल ।
गद ।

धूलिस्थ = का०, कु०, २४ । का०, २५३ ।

[सं० पुं०] (हिं०) धूल वं बग ।

धूलिपटल = म०, ६, स०, १७ ।

[सं० पुं०] (सं०) धूल पट ।

धूसर = का० ८२ ११७, २६१, वि०, १४१,

[वि०] (सं०) ऋ० ३४ ल० ५६ ५६ ।

धूल या मिट्टी व रंग का । मटमला ।
खाना । धूल से भरा हुआ ।

धूसरित = का० कु० ८६ ।

[वि०] (सं०) धूल से भरा हुआ । मटमला ।

धेनुचारण कार्य = का० कु० ११२ ।

[सं० पुं०] (सं०) गाय चराने का काम ।

धैर्य = का०, ६२ १८६ १६७ ।

[सं० पुं०] (सं०) चित्त की स्थिरता । धीरता । उतावला
न होने का भाव । सब्र । चित्त में
उद्वेग न उत्पन्न होने का भाव ।

धैर्यमयी = ल०, ३३ ।

[वि०] (सं०) धीरता से युक्त । धारज से भरी हुई ।

धैर्य सा = का०, २१३ ।

[वि०] (हिं०) धारता के समान ।

धोरर = प्रे०, २४ ।

[पूर्व क्रि] (हिं०) साफ कर । पसार कर ।

धोरसा = का० कु० ८५ । का १२६ ।

[सं० पुं०] (हिं०) भ्रम में डालनेवाला मिथ्या व्यवहार ।
भुनावा । छल, दगा । मिथ्या प्रतीति ।
माया । भेडिया का डराने का एक
पुनता खटखटा । एक प्रकार का एक
पकवान ।

धोती = का० २३ ।

[त्रि० सं०] (हिं०) धोना का वतमानकालिक क्रिया ।

धोना = का०, ६, ११३ १७७ । म० ८ ।

[त्रि० सं०] (हिं०) पानी से रंग डर साफ करना ।
प्रक्षालित करना ।

ध्रुव = वि०, १६९ ।

[सं० पुं०] (सं०) [वि०] आवाग । कील, शत्रु । पहाड़ ।

ध्रुपद। भगवान् के प्रसिद्ध भक्त का नाम। उत्तर में सदा एक ही स्थान पर रहनेवाला तारा। अटल, सदा एक ही स्थान पर एक ही अवस्था में रहने वाला। स्थिर, अचल। पृथ्वी के उत्तरी दक्षिणा सिरे।

[ध्रुव—राजा उत्तानपाद एव महारानी मुनीति का पुत्र। पाच वष की श्रुत्यायु में अपने दृढ़ व्रत एव अन्न वसाधारण सं 'विद्युत्पुदशन' विद्या तथा उनक ही वर से ध्रुव पद प्राप्त कर नक्षत्र मंडल में सर्तापयो के नाम ध्रुवतारा व रूप में भेर के ऊपर प्रतिष्ठित है।]

ध्रुव सा = का० कु० ६४।

[वि०] (हि०) अटल। दृढ़ निश्चय।

ध्यान = का०, १५, २८, २९, ३१। वा० कु०, १३, १४, २७, २८, ३०, ३१ ५७, ८१, ९८, ११२, ११६। का० ८२, ८५, ११२, १८६, २८५। चि० ६१, ६२, १४१, १४५, १८६। ऋ०, २७, ४३, ५१, ५३। प्र०, ६, १३, १८, २३। म०, ११। ल०, ६८।

शोच विचार। चिन्तन, मनन। भावना। समझ बुद्धि। धारणा। स्मृति, याद। चित्त को एकाग्र करने का बुद्धि।

ध्यानविरत = वा कु०, १८, ३१, ३५।

[वि०] (स०) ध्यान से अलग रहनेवाला। ध्यान न लगानेवाला। चंचल स्वभाववाला।

ध्वजा = चि, ४६।

[स० स्त्री०] (स०) पताका, झंडा।

ध्वस = का० ५८, १०७, ११०, १९६।

[स० पु०] (स०) ल०, १३।

क्षय, विनाश वरबादो, हानि।

ध्वनि = श्रा०, ८। वा० कु०, ३, ११४। वा०,

[स० स्त्री०] (स०) ६८, ७०, ७७, १७६, १८१, १८२, २११, २५२, २६३, २८६, २९२। चि०, ४७। ऋ०, २४, ८५। म० ४। ल०, ३३, ३४, ४६, ५८।

गुब्ब, आवाज। आवाज की गूज। लय। वह काव्य जितमें वाच्यार्थ की अपेक्षा अर्थार्थ अधिक है। गूठ अर्थ। आशय। मतलब।

ध्वनित = का० कु०, ३०। चि०, १६१।

[वि०] (म०) गूजती हुई।

ध्वनि सी = वा० कु०, ४८।

[वि०] (हि०) ध्वनि के समान। अन्नश्वर।

ध्वनिसो = चि १७।

[स० स्त्री०] (म० भा०) ध्वनि में।

ध्वत् = का० १६०, २४१, २४७। ऋ०, ७१,

[वि०] (स०) ८५।

अवकार, अक्षरा। मन, दाप।

ध्वस्त = का०, ८६

[वि०] (स०) विनष्ट, नष्ट। ढट्टा हुआ।

न

नई = श्रा०, ५८। वा० कु०, ३६। वा०,

[वि०] (हि०) ८३, १४२, २६६। चि० ३५।

ऋ०, ७६, ८५। प्र०, १, ४, १०।

नवान, नवल।

नक्षत्रमालिका = श्रा०, १०।

[म० स्त्री] (स०) तारा की माला। तारा को पंक्ति। एक हार जिनमें सत्ताइन मोती हान हैं।

नक्षत्रलोक = श्रा०, ६।

[म० पु०] (स०) नक्षत्रों का लोक चंद्रलोक के ऊपर का एक तारा।

नक्षत्रमंडल = वा० कु०, ११२।

[स० पु०] (स०) नक्षत्रों का समूह। तारामंडल।

नक्षत्रकुमुद = श्रा०, ४८, ५८। वा०, १६०। ल०,

[स० पु०] (स०) २५।

तारा रूपी कुमुदिनी।

गल्ल = ऋ०, ६१।

[स० पु०] (स०) नाखून। एक प्रसिद्ध गंधद्रव्य, सख, दुब्बडा। गुठ्ठी उदाले का डोरा।

नरसत = श्रा०, २७। का० कु०, ४०, ४१।

नति = का०, २३५ ।
 [सं०श्री०] (सं०) उतार, झुकाव । नमस्कार । विनती, नम्रता । ज्यानिप की एक गणना ।
 नतु = चि०, २६, ५३ ।
 [ग्रन्थ०] (हिं०) धन्यथा, नहीं तो ।
 नद = घ्रा० ४१ । का, ७ १२२, २५८ ।
 [म० पु०] (सं०) बडा नदी । एक ऋषि का आश्रम ।
 नत्थियों = वा० कु०, २ । का०, १५६ । प्रे०
 [सं०श्री०] (हिं०) प० २४ ।

नदी का बहुवचन ।

नदी = घ्रा० ७ । व०, ८ । वा० ८१
 [सं०श्री०] (सं०) १७५, २५६, १ चि० ११, १५६ ऋ०, ५५ ५६ ।

जल का वह प्राकृतिक धारा जो किमा झाल या पहाड स निकल कर एक निश्चित माग म हाता हुई समुद्र या किमी नदी म मिल जाता है दरिया ।

[नदी की निररुत बेला शाव—'हृदय का मोदय' शीपक से सबप्रथम 'माधुरी' वर्ष २ खड २ सख्या ६, सन् १९२४ म प्रकाशित और 'भरना' मे सक्लित ।
 > 'हृदय का सोदय' ।]

[नदी नीर से भरी—विशाल' मे राना की महेलिया का समूह गान । 'प्रसाद सगात' मे पृष्ठ ३५ पर सक्लित । दो दोहे तथा टेक और एक पक्ति के छद से नय छद का विधान । इधर मानम मे प्रगाड प्रणय था और प्रम शल का सक्लित जल भी नदा मे आ गया इतलिय योवन नदी म वात् आ गयी उसम नेट का नया उतरा कर वह चली और केवल सकेत के हल्क डाड लगान पडे । यह नीचा न जाने आवाद विनारे पर या ऊनड सड पर नगती है ।]

[१ धरो कह कर इसको अपना—अज्ञातशत्रु' मे भिमुधा का गीत । 'प्रसाद सगात' म पृष्ठ ४३ पर सक्लित । 'न' की अपना कह कर न धरो । यह ससार दा दिन का सपना है, यह वभष के

परमाती नाले मे भरे पहाडी भरन की भाति शीघ्र हा रित्त होनेवाला है । इस बहाओ, अयो को इसस मत बहाओ अथात् इसे जी खालकर पर उपकार पर खच करो नहीं तो पछताना पडेगा । दुखियों का आम्न पोछो ताकि तुम्ह दुप मे स्वय आह न भरना पडे । नोभ छोडकर उदार बना और एक ईश्वर का भजन करो ।]

नन्हा सा = ऋ० २३ ।

[वि०] (हिं०) बहुत छोटा सा मुफामन अयोव ।

नवाव = म० १७ ।

[म० पु०] (अ०) शहगाह एक पद जो अत्यत माय और शिट्ट मुस्लिम पदयो है ।

नभ = घ्रा० ६, ५ ६६ । व० ७ १३ ।

[म० पु०] (सं०) वा०, २७, ३२ ४८, १२० १२७, १५७, १५८ १५९ ८ १७१ १७६, १७८, १७९ १८०, २ १, २१८ २२१ २३४ २६५ २८१ चि०, २३ १४० १५६, १६१ ऋ०, ४१, ४८ । ल०, ३३ ।

आवाश । शूय । आवाग और भाद्र पद महीन । राजा नल क एक लडका का नाम । शिव । जल । अश्रव । ज म कुडली का दसम स्थान । वषा । बादल ।

[वि] (सं०) हिमक ।

नभकुसुमा = ल०, ३८, ३९, ४०, ४४ ।

[सं० पु०] (हिं०) आकाश के वारे । आकाशगुप्ता ।

नभगामो = चि० १६१ ।

[सं० पु०] (सं०) देवता । मूय । चद्र । वायु । पत्नी । तारा ।

नभ लो जाहि = चि० ६६ ।

[क्रि०] (२० भा०) नभ तक जाता है ।

नभसागर = वा०, १६७ ।

[म० पु०] (हिं०) आकाश रूपी समुद्र ।

नभहृदय = ऋ०, ४६ ।

[सं० पु०] (हिं०) शूय हृदय ।

नमस्कार = म० पु० ४, ६२, ६४ ।

[सं० पु०] (सं०) भुक्कर प्रणाम करना । एक प्रकार का विप ।

[नमस्कार—बहु कला ध रंढ २, किरण २, अगस्त १९१३ म सर्व प्रथम प्रकाशित और वानन कुमुभ म पृष्ठ ४ पर सनलित । इस ६ पक्ति का कविता में पूरा विशय गृहस्थ को सदा नमस्कार कर्म की बात कदा है । उसके मंदिर का द्वार सबवे लिए चाहे वह राजा हो या रक सदा खुला रहता है । सारे प्रवृत्ति के वन जिसका वाटिका है और जिस मंदिर के दीप चद्र मूय और तार है । उस मंदिर का नाथ विशय गृहस्थ निरुपम निरामय है ।]

नमामि = चि० १५३ :

[क्रि०] (स०) प्रणाम करता है ।

नमूने = का० कु० ६ ।

[स० पु०] (हि०) वानना, एसा वस्तु जिमन द्वारी वस्तु का पात्र हो जाय डाका खाका आणश ।

नयन = आ०, ३२ । का० ११ पृष्ठ से नव बार [स० पु०] (स०) २४७ । चि० ६९ ७२ ७३ । ल० १४ २४ ३० ।

चक्षु नत्र आंख ।

[स० खौ०] एक प्रकार की मछली ।

नयनों = आ० ७१ । का० ६८, १०१, १५२ [स० पु०] (हि०) प्रे०, १७ १८ । ल०, ४० ४४ ।

दे० नयन' (बहुवचन) ।

नया = का० कु०, १२५ । का०, ३४ १५०, [वि०] (हि०) १८४, २१५ । प्र० १ ।

नूतन, नवीन साजा ।

नयी = का० कु०, २१ । ल० २१ २२ ।

[वि०] (हि०) न० 'नई' ।

नये = आ० ५१, का० ३३ ५६४, १८१ [वि०] (हि०) २७५, क्र० ५१ प्र० १३ ।

दे० 'नया' ।

नये सिर से = का० २३ ।

[मुहा०] (हि०) विमा काय को पुन आरम करना ।

नर = का० ७७, १६४ १७०, १७१, १८२ ।

[स० पु०] (स०) वि० ५०, ६६, ७२, १४०, १४२ । क्र० ४१ । म० १४ ।

विष्णु । शिव । भ्रजुन । एक रूपि का नाम जो ईश्वर का अवतार माने जाते हैं । पुत्र्य । मय राजस का एक पुत्र । मुवृत्ति व पुत्र का नाम ।

नरफ = प्रे० २१ ।

[स० पु०] (स०) धम और पुराणा के अनुमार पापी मनुष्या को दंड देने का स्थान । मदा जगह । नरकामुर नाम का दानव ।

नरगन = चि० ६४ ।

[स० पु०] (हि०) मानव सपुदाय ।

नरन = चि० १४१ ।

[स० पु०] (श० भा०) मनुष्या ।

नरनाह = चि० ६४ ।

[स० पु०] (हि०) राजा मनुष्या का स्वामी गुप ।

नर नारी = प्रे०, १३ । म०, १७ । चि० ६५ ।

[म०] (हि०) पुण्य स्त्रा । मानव मातृ । मनुष्य और स्त्रा ।

नरपति = चि० ६८ ।

[स० पु०] (स०) राजा नृपति, भूपति नरेश ।

नरपतिगण = म० १० ।

[स० पु०] (स०) राजाभा का समूह । सभा नरेश ।

नरपशु = का० १८४ ।

[स० पु०] (हि०) दुष्ट नीच । मानव हाकर भा पशु सदृश वाय करना ।

नरपिशाच = प्रे० २१ ।

[स० पु०] (स०) मनुष्य होकर भी राजस का वाय करने वाला । अत्यंत दुष्ट मनुष्य । नरराक्षस ।

नरमेघ = प्रे० २१ ।

[स० पु०] (स०) मनुष्य होकर भी राजस का वाय करने वाला । अत्यंत दुष्ट मनुष्य । नरराक्षस ।

नरमेघ = व०, १८ ।

[स० पु०] (स०) एक प्रकार का यज्ञ जिमन मनुष्या के माग की आहुति दी जाती थी । यह यज्ञ चद्र मुग्ना दशमी से शुरू होकर चालिस दिन म समाप्त होता था ।

नराव = चि०, ५३, ६७ ।

[स० पु०] (हि०) तार, बाण शर । एव वण वृत्त जिस पंचामर और नगराज भी कहते हैं ।

नराधम = क०, २१।

[वि०] (सं०) नीच, पतित, अधम।

नरी = ल०, ६।

[सं० पुं०] (क्रा०) बकरी या बकरे का रंग हुआ चमड़ा।
मिथ्याया हुआ चमड़ा। गूत लपटी
जानेवाली नली। नली। ताल।

[म० स्त्री०] (हिं०) नदी के किनारे होनेवाला घास। नाली।
(स०) नारी। स्त्री।

नरेंद्र = क० २१। चि०, ५०।

[सं० पुं०] (स०) राजा, नरेश। वय, हकीम। एक छंद
का नाम जिसे सार या ललित पद
कहते हैं।

नरेश = का० कु०, ११३। चि०, ६३।

[सं० पुं०] (सं०) राजा महाराजा। नरो म जा ईश
सदृश हो।

नर्वन = का० १, ११, ७२, १२३, २५४,

[सं० पुं०] (सं०) २६४। ल० २१, २२, ४६।

मृत्य, नाच।

नर्वित = का० २५४। ल०, ६।

[वि०] (सं०) नृत्य या नाच करता हुआ। नाचता
हुआ।

नरलिन = ध्रा०, ३६, ५५ का, १६८। चि०,

[सं० पुं०] (सं०) २६, १५७। ल०, ४०।

कमल। जल। सारम। नीली
कुमुदिनी।

नरलिनी = का० कु०, ३६, ४०, ६५। चि०, २६,

[सं० स्त्री०] (सं०) ३३ ६३, १६१।

कमलिनी, कुमुदिनी। कमलवाले प्रदेश।
गंगा की एक धारा का नाम। नदी।
नारियल का शराब।

नरलिनीगन = चि०, १४६।

[सं० पुं०] (अ०भा०) कमलिनिया का समूह।

नय = क० १३, १६। का० ८, २३,

[वि०] (सं०) २७, ३२, ३५, ३७ ३६, ४७, ५०,

१०६, १३० १४०, १४२, १४८,

१५६, १६८, १७६, १८३, २०६,

२१३, २३०, २६३, २६४, २८४,

२६०। चि०, ३, २, १५, २१, २८,

३६, ४६, ६८, १ ५ १४७, १४६,

१५०, १५६। ऋ०, २४ ३३, ३४।

प्रे०, १०, १२। ल० ६ २८।

नवीन, नया। आधुनिक।

[म० पुं०] (सं०) स्तान। उगीनर राजा के लडके
का नाम।

नय एनात = का० कु०, २३ ३०, ४०, ४६। का०,

[सं० पुं०] (सं०) २४। ल०, २८ ३०, ३३ ४३।

नवान ढंग का व्यवसायन।

नय यल्पना = का० १५६।

[सं० स्त्री०] (सं०) विचार एवं बुद्धि द्वारा नई भावना
मयी कल्पना।

नयचंद्र = चि० ७५।

[सं० पुं०] (सं०) नया चंद्र। शुक्ल पक्ष के द्वितीया का
चांद।

नय जलद = का० ८१।

[सं० पुं०] (सं०) नया बादल। कपा श्रुतु का प्रथम
वरसनेवाला मघ।

नय जलधर = ल० २७।

[म० पुं०] (मं०) नवान समुद्र। नवीन शान्त।

नयजीवन = प्रे० १० ११।

[सं० पुं०] (सं०) नई जिंदगी। नया जल।

नय उद्योति = ध्रा०, ६७।

[सं० स्त्री०] (मं०) नया प्रकाश। प्रातः काल की प्रथम
किरण।

नयत = चि० १६३।

[क्रि० अ०] (अ०भा०) भुक्तन, भुजता है।

नय तमाल = चि०, ४५।

[सं० पुं०] (मं०) तमान का नया वृद्ध।

नय नय = का० १६१।

[वि०] (सं०) नया नया।

नयनिधि = का०, १६६।

[सं० स्त्री०] (सं०) नव प्रकार की कुवर की निधि। गपति।

नय नीर = चि०, १५७।

[मं० पुं०] (सं०) नया जल।

नय नील = का० कु०, ३८। का०, ६५।

[सं० पुं०] (सं०) अनुपम नीलिमा।

[नमस्कार—बहु कला ४, रॉड २, विरण २, अग्रस्त १९१३ में सब प्रथम प्रकाशित और वानन कुमुम म पृष्ठ ४ पर सन्तित। इस ६ पक्ति का कविता में पूर्ण विषय शृङ्खल की मदा नमस्कार कर्म की बात कहा है। उमने मन्त्रि का द्वार सबने लिए चाहे वह राजा हो या रर नग चुता रहता है। मारे प्रवृत्ति के बन जिमका वाटिका ट और जिस मादर व दीप चद्र, सुव और तार हैं। उस मन्त्रि का नाव विश्व गृहस्थ निरुपम निरामय है।]

[सं० पु०] (सं०) चि० ५०, ६६, ७२, १४०, १४२।
 क्र० ४१। म० १४।
 विष्णु। शिव। मनुज। एक ऋषि का नाम जो ईश्वर का अवतार माने जाते हैं। पुरुष। गय राज्ज का एक पुत्र। सुश्रुति व पुत्र का नाम।

नरक = प्र० २१।
 [म० पु०] (सं०) धम और पुराणा के अनुसार पापी मनुष्या को दंड देने का स्थान। मदा जगह। नरकानुर नाम का दानक।

नमामि = चि० १५३।
 [क्रि०] (सं०) प्रणाम करता हूँ।
 नमने = का० कु० ६।
 [सं० पु०] (टि०) वानया, ऐमी वस्तु निगम द्वारी वस्तु का नाम टा जाय टाया खाया आदश।

नरगन = चि० ६४।
 [सं० पु०] (हि०) मानव समुदाय।
 नरन = चि० १४१।
 [सं० पु०] (श० भा०) मनुष्या।
 नरनाह = चि० ६४।
 [सं० पु०] (हि०) राजा मनुष्या का स्वामी नृप।
 नर नारी = प्र०, १३। म०, १७। चि० ६५।
 [सं०] (हि०) पुरुष स्त्री। मानव मान। मनुष्य और स्त्री।

नयन = भा०, ३२। का० ११ पृष्ठ म नव वार
 [सं० पु०] (सं०) २४७। चि० ६९ ७२ ७३। ल०, १४ २४ ३०।
 चक्षु नयन थास।
 एक प्रकार की मछला।

नरपति = चि० ६८।
 [सं० पु०] (सं०) राजा नृपति नृपति नरेश।
 नरपतिगण = म० १०।
 [सं० पु०] (सं०) राजाका वा समूह। सभा नरेश।

नयनों = भा० ७१। का० ६८ १०१, १५२, १५३। चि० १८। ल० ४०, ४४।
 [सं० पु०] (हि०) प्र०, १७ १८। ल० ४०, ४४।
 २० 'नयन' (बहुवचन)।

नरपशु = का० १८४।
 [सं० पु०] (हि०) दुष्ट, नीच। मानव हावर भा पशु सहस्य काय करना।

नया = का० कु०, १२५। का० ३४ १५०
 [वि०] (हि०) १८८ २१५। प्र० १।
 नूतन, नवीन ताजा।

नरपिशाच = प्र० २१।
 [सं० पु०] (सं०) मनुष्य होकर भी राज्या का कार्य करने वाला। अत्यंत दुष्ट मनुष्य। नरराज्य।

नयी = का० कु० २१। ल० २१, २२।
 [वि०] (हि०) २० नई।
 नये = भा० ५१ का० ३३ ५६४ १८१
 [वि०] (हि०) २७५ क्र० ५१ प्र० १३।
 २० नया।

नरमेध = का०, १८।
 [सं० पु०] (सं०) एक प्रकार का यज्ञ जिममे मनुष्या व मान की आहुति दी जाती थी। यह यज्ञ चम मुग्ग दशमी स शुरू होकर चालिस दिन म समाप्त होता था।

नये सिर से = का० २३।
 [मुद्रा०] (हि०) किमी काय को पुन धारन करना।
 नर = का० ७७, १६४, १७०, १७१, १८२।

नराच = चि० ५३, ६७।
 [सं० पु०] (टि०) तीर, बाग शर। एक वण वृक्ष जिसे पचामर और नगराज भी कहते हैं।

नराधम = क०, २६ ।

[वि०] (सं०) नीच, पतित, अधम ।

नरी = ल०, ६ ।

[सं० पु०] (का०) बकरी या बकरे का रगा हुआ चमड़ा । मिथ्याया हुआ चमड़ा । मृत लपेटे जानेवाली नली । नली । ताल ।

[म० स्त्री०] (हिं०) नदी के किनारे होनेवाला घाम । नाली ।
(स०) नारी । ह्या ।

नरेंद्र = क० २१ । चि०, ५० ।

[सं० पु०] (स०) राजा, नरेश । बध, हकीम । एक छद का नाम जिसे सार या ललित पद कहते हैं ।

नरेश = का० कु०, ११३ । चि०, ६३ ।

[सं० पु०] (स०) राजा महाराजा । नरो म जा ईश मटश हो ।

नर्तन = का० १, ११, ७२, १२३, २५४,

[सं० पु०] (स०) २६४ । ल० २१, २२, ४६ ।
नृत्य, नाच ।

नर्तित = का०, २५४ । ल०, ६ ।

[वि०] (सं०) नृत्य या नाच करता हुआ । नाचता हुआ ।

नर्तन = धा०, ३६, ५५ वा , १६८ । चि०,

[सं० पु०] (सं०) २६ १५७ । ल०, ४० ।
कमन । जन । सारम । नाली कुमुदिनी ।

नर्तनी = का० कु०, ३६, ४०, ६५ । चि०, २६

[सं० स्त्री०] (म०) ३३, ६३, १६१ ।
कमलिनी, कुमुदिनी । कमलवाल प्रदेश । गंगा का एक धारा का नाम । नदा । नारियल का शराब ।

नर्तनीगन = चि०, १४६ ।

[सं० पु०] (प्र०भा०) कमलिनिया का समूह ।

नव = क०, १३, १६ । का०, ८, २३,

[वि०] (सं०) २७, ३२, ३५, ३७ ३६, ४७, ५०, १०६ १३० १४०, १४२, १४८, १५६, १६८, १७६, १८३, २०६, २१३, २३०, २६३, २६४, २८४ २६० । चि०, १, २, १५, २१, २८,

३६, ४६, ६८, १ ५, १४७, १४६, १५०, १५६ । ऋ०, २४ ३३, ३४ । प्र०, १०, १२ । ल०, ६, २८ ।

नवीन, नया । प्राद्युनिक ।

[सं० पु०] (म०) स्तान । उशीनर राजा के लडके का नाम ।

नव एरात = का० कु० २३, ३०, ४०, ५६ । का०,

[सं० पु०] (स०) २८ । ल० २८ ३०, ३३, ४३ ।
नवान ढग का अक्लापन ।

नव कल्पना = का० १५६ ।

[म० स्त्री०] (स०) विचार एवं बुद्धि द्वारा नई भावना-मयी कल्पना ।

नवचंद्र = चि०, ७५ ।

[म० पु०] (स०) नया चंद्र । शुक्ल पक्ष क द्वितीया का चांद ।

नव जलद = का० ८१ ।

[सं० पु०] (सं०) नया बादल । वषा ऋतु का प्रथम बरसनेवाला मेघ ।

नव जलाघर = ल० २७ ।

[सं० पु०] (म०) नवीन समुद्र । नवान बादल ।

नवजीवन = प्र० १०, ११ ।

[म० पु०] (म०) नई जिंदगी । नया जल ।

नव ज्योति = धा०, ६७ ।

[सं० स्त्री०] (म०) नया प्रकाश । प्रातःकाल की प्रथम विराग्य ।

नवत = चि०, १६३ ।

[क्रि० ध०] (प्र०भा०) भुक्त, भुक्तता है ।

नव तमाल = चि०, ४५ ।

[सं० पु०] (स०) तमाल का नया वृद्ध ।

नवनन = का० १६१ ।

[वि०] (सं०) नया नया ।

नवनिधि = का०, १६६ ।

[सं० स्त्री०] (सं०) नव प्रकार का कुवर की निधि । नवन्ति ।

नव नीर = चि०, १५७ ।

[सं० पु०] (सं०) नया जल ।

नव नील = का० कु०, ३८ । का०, ६५ ।

[सं० पु०] (सं०) अनुपम नीलिमा ।

- नवनीत रचित = चि०, १६१। प्रे०, २०।
 [वि] (२० भा०) नवनीत सहज रचित।
- नवमंडर = का० १८३।
 [मं० पु०] (मं०) नया मंडप।
- नवमसुमय = का० १२२।
 [वि०] (मं०) नवीन मादरता य पूण।
- नवमल्लिखा = चि० ५५।
 [स० स्त्री०] (स०) नवान मातिगा।
- नवमोद = चि० १६५।
 [स० पु०] (हिं०) नवीन आनद।
- नवरग = चि० १७५।
 [स० पु०] (हिं०) नवीन रग।
- नववसत विलास = का० कु० १६।
 [स० पु०] (हिं०) नये वसत का विलास। नवीन मधु ककु का आनद।
- नव हास = चि०, ५६।
 [मं० पु०] (सं०) अप्रव या नई मुस्फराहट।
- नवल = का० २८। का० कु० २३, ३६ ६६
 [वि] (मं०) १०४। का० ४८ ६३ १४२, १६८
 १५६। चि० ३२ १०१, १३७, १४६,
 १५७ १६१ १६५ १७१। क ४०
 ४१, ७६। प्रे०, ४७। ल०, १६।
 नवीन। नया।
- नवल ज्योति = का० कु०, १२६।
 [मं० पु०] (मं०) नवीन ज्योति नया प्रकाश।
- नवल प्रभास = का० ५३, ८१।
 [मं० पु०] (मं०) नया प्रात काल।
- [नव वसत—इष्ट कला ३, किरण फरवरी १६१२ म सवप्रथम प्रकाशित और काननकुमुम म पृष्ठ १७ १६ पर सक्तित। वृष्णिमा का रात्रि म चद्रमा का किरणें मुषा की चारा बरसाती रही जिसस निमल सुपमा सरग हा रहा था। रात्रि के दा वाम वीत चुक थ सुदर जमुना जल म तारा स भर आकाश प्रतिबिंबित हो रहा था।

यमुना बिनारे का कुमुमा का वन श्रयत गुदर था। वहाँ स्वच्छ प्रासादो का रमणीय पति थी, वहा आत्र को मजरी पर नायल और कही बमलदल पर भ्रमर गुजन और गुजार कर रहा था। मलयानिन क गौरभ म मत लना लनिवा मे प्रमत्त लिपट गई। वह मलयज पवन कभी कभारिया क कुमुम और कलिया का खिन्ना दता था और कभी दा डाला को सहज हा श्रपन भाका स मिला दता था। वह एक मनाहर बुज मे पहुचा जहाँ एक गुदरा महामुख म मस्त थी। वहाँ भारत उसना आंचल उडा कर चलना बना उधर ध्यान जात ही मधुकर आकर उसे सताने लगा। इन क्रीडाधा स न बहल कर कामिनी श्रयमनस्क होकर टहलने लगा। उस मुख के मूल प्रिय का मुसडा याद आ गया, जसे भूले नायिक को वाछिन बिनारा मिल गया हो। उसके नील नयन मे मीन्य छा गया और उसके श्रम प्रत्यग म भारत मत मधुर परिमल का विलास छा गया। वही वह सुदरी आरुमजरा सा खिल उठी। उसके ज्ञान हृयथा काश म चादनी छा गयी और उसका कल्पनाशाय वाम का कुमुम कालथा स भर गया। कबिला वा काकला सुन मजरा कामवापत हो उठा और प्रणय की बोरी बना मुनरा का चुटका लन लगा। एत हा समय एक युवक उस 'प्रवतम' कहत हुए समुल आया आर प्रम जताते हुए उसक वरपलव का स्पश किया। इस प्रकार प्रगति और वसत का मुखद समागम हुआ और युग हृदय क मधुर मिश्रण स भाग रस वहन लगा और प्रगट भा इभा रग म गा थी। अंतर और बाहर सबद नय वसत विलसित हा उठा।]

नय त्रिचार = का०, १६१।

[सं० पु०] (हि०) नई समझ। किसी बात को नये ढंग में सोचना। नए विचार।

नवविद्या = चि०, ७४।

[सं० स्त्री०] (सं०) नौ प्रकार का पान। सब तरह का विद्या।

नवाते = का० कु० ५।

[क्रि०] (हि०) झुकाने। विनम्र होने।

नवाय = म० १४।

[सं० पु०] (घ०) मुमन्यमानी बादशाहत में एक प्रदश का शासक। मुमलमान रईम की उपाधि। शान शोकेत स रहनेवाला।

नवाय पत्नी = म०, १०।

[सं० स्त्री०] (हि०) नवाय की बेगम।

नवीन = का० कु०, ११ धर ५५, ७३, १०१,

[वि०] (सं०) ११४। का० ३३, ८१, ६४ १३६

१४०, १६२ २६१। चि० १०,

१४८, १५१। ऋ०, १६। म०, १६।

ल० ४८।

नया राजा। अपूर्व, विचित्र। तरण। जो पहले पहल मूल रूप में अभा तयार बना हो। जून, नए।

नवीना = का०, १२३।

[वि०] (म०) युवती, मुदरा। तरणी।

नवीने = चि० १५३।

[सं०] (हि०) नवीना का सवापन।

नशीली = ऋ०, ४८।

[वि०] (पा०) मात्क। जिस नशा डाला है।

नश्वर = का०, १६१। ऋ० २०, ३०। ल०,

[वि०] (म०) ७६।

जो शीघ्र नष्ट हो जाय। नष्ट हो जाने वाला।

नश्वरता = ल० १२, ४६।

[सं० स्त्री०] (म०) नष्ट होने का भाव।

नष्ट = का०, कु०, १०६। का०, १६४

१६२। चि०, ३५।

[वि०] (म०)

जिनका नाश हो गया हो। बरबाद। निःफल। व्यय।

नस नस = का०, १०१, २३५। ल०, ३०।

[सु०] (हि०) सारा शरीर।

५०

न सीटल = चि०, १८१।

[वि०] (घ० भा०) जलता हुआ, तप्त। जा भीतल हो।

भ्रशीतल। गम।

नसात = चि०, १७८।

[क्रि०] (घ० भा०) नष्ट होना है।

नसे में चूर = चि०, २।

[सु०] (हि०) इतना अधि नसे का सेवन कि व्यक्ति अपना जान स रहित हो जाय।

नसैहों = चि०, १५५।

[क्रि०] (घ० भा०) नष्ट होना।

नहला = श्री०, ७०। ल०, ३८।

[पूर्व० क्रि०] (हि०) मिमोहर, स्नान कराने।

नहलाना = प्र०, २०।

[क्रि० सं०] (हि०) किसी दूसर को स्नान कराना।

नहाकर = का०, २६१।

[पूर्व० क्रि०] (हि०) स्नान कराने।

नहिं = का० कु० ६। १४। चि० ८, ६, १५

[त्रि० वि०] (हि०) २६, ३४, ३६, ४७ ४८, ५३, ५४,

६४, ६५ ६७, ६८ ७२, ७४, ६२,

१०५, १४१, १४२ १७४, १८६,

१८७, १९०।

नकारात्मकता का सूचक।

नहीं = श्री०, ३७, ४०। व० ८, ११ १४,

[क्रि० वि०] (हि०) १८, २२, २४, २५ २७, २६, ३१।

का कु०, ५ ६, ७, १०, १२, १४

१६, २२, २४ २५ २७, २६, ३१।

का०, कु०, ५ ६, ७, १०, १२, १४,

३५ ४, ४१, ५४, ६४, ६५, ७४।

का०, ५२, ५४, ५५, ५७, ११८,

११६, १२६, १३०, १३१, १३३,

१४३ १४५, १४६, १४७, १६२,

१७५ १७६ १७७, १८५,

१८६ १८६, १८३, १८४, १८५,

२०६ २०८, २०६, २१०, २२०,

२२८, २३०, २३४, २३८, २४०,

२४१, २४३, २४८, २४६, २६१,

२६६, २६७, २७८, २८८, २६६।

चि०, ३१, ३५, ४८, ६५, १८३,

१४८। प्र०, ६, १३, १५ १६, १०,

१६, २०, २१, २२, २३, २४, २५।
 म०, २, ७, ८, ९, ११, १२। ल०,
 १०, ११, १६, १६, १७, १७, १६।
 निगम और ध्वनीयुग्म गुणक १।
 २० ११।

[नदी डरते— ताता गुणक म वृत्त २४८। पर
 तथा प्रमाण मगता म वृत्त १४१ पर
 गवन्ति। वार रं म व वानुगा।
 है। ठरर हगरी वात मता गुणक
 मत वाता। म गण गुण रगारा वात
 तही गुणक ठीर है ध्वना सगम
 गुणो निया है तातवर सुन्दार गुण
 कह दगा। मी तो वमी गुणक वग
 तही वा वि 'मुो वाहो'। मी मीता
 हुए हृण्य की मवगाहो। गुणो मुो
 वाहा वव वा गुणो वा मुो विया
 की गामदी गमका। गुण धनन पर
 मरने हो गुण दगवा गुणा वमी मन
 वरना और यह गर्ग गीम मन भरो रि
 'हम वाट म व्याजुन हैं।' भन हा
 मिथ्या हा प्रम वा प्रत्यागयान नही
 विया जाता। सुन्दारा धारत गमन
 चुो ये। फिर भी प्रम विया और लेगा
 वरने म हम नही डरते। द०—प्रगा
 की वलुगदिवी।]

नाक चढावत = वि० १६।
 [घ०] (हि०) काव करना। प्रवसा हाना।
 नाको = वि० ६५।
 [घ०] (प्र० भा०) गतिता भा।
 नाग = वि० ११।
 [घ० घ०] (हि०) पर्वत। सर्प, तीर भुजग।
 नाग कुल = वि० १०।
 [घ० घ०] (हि०) भुजग वध।
 नाचना = धा०, ५, ४६। वा० पु० ८६, ६३।
 [क्रि० घ०] (हि०) वा०, १६०। ऋ० ३५। ल०
 ५१, ६७।
 तात एव हाव भाव क साथ धिरकना।
 नृत्य करना। चत्तर लगाना।
 मडराना।

वेता = वि० ४१।
 [क्रि०] (घ० भा०) गुण वर रग है।
 वागो = वि० १०।
 [क्रि०] (घ० भा०) गण गुण। २० गगता।
 वागा = वा० १०६, १३८।
 [म० घ०] (म०) गर्वण। विगा। गगा।
 वात = वा० १२८। वि० ६१।
 [म०] (मि०) 'गगा' वा वगता।
 वाग = वा० पु० ८, ४१, ६७। वि०, ७४,
 [म० घ०] (म०) ६१, १५, १७८, १८०, २८७।
 ऋ० ३७, ७६। प्र०, २१।
 प्रभु, स्यामी, मातिव, परि।

[वाव, गदि फीकी परे गुणक— गवप्रथम इष्ट, वजा
 ५ विरग ३ मात १६२४ म प्रा
 गिा— मवर विदु' शायक क संनगत
 पिनापार' म वृत्त १८६ पर गवन्ति।
 भतिरवक प्रातान पदति की रचना
 जिगमं ववि ये विवन्विष्ट प्रभु वे
 विर' की वात उट वा' निवान हुए
 पटा है वि—
 धािमयी वरगा वरि रागा,
 तट न वनट्ट हार।
 तरा यट 'प्रगा' वरनानिधि,
 गुमही राखनहार।]

[वाव, रोहलता सीष दो— जामजय वा
 नागवरा' म माणुवक और धास्तीव का
 प्राथना। प्रगा' मगीन म वृष्ट ७२ पर
 संवन्ति। हे नाव गाति रूपा बादल
 वा यवा वर स्नेह की मूखी लता की
 सीषो। रिमा रूपी धूल उड रहा है
 और हृण्य की वधारी मूत गई है उसे
 सिचित करो। विश्व म समता की
 घोषण मद्र मेघ स्वर म करो। वरणा
 करो ताकि सुन्दारी सृष्टि हरी भरी हो।]
 नाद = वा०, ८, १६७, २५३, २६६। वि०,
 [घ० घ०] (घ०) ६६, १५७। ऋ० ३५, ५६। म०, ७।
 शब्द धावाज। बोला, वाणी। सगात।
 का य वे मूल रूप। अनुस्वार के अनु
 सार उच्चरित होनेवाला वर्ण।

नाना ≈ चि०, १।
 [वि०] (स०) अनेक।
 नाप = का०, १८५।
 [स० स्त्री०] (हि०) माप, परिमाण।
 नाभिसौरभ = का० कु०, ७३।
 [स० पुं०] (हि०) नाभि की सुगन्धि।
 नाम = क० १३, २८। का० कु०, १३ ३।
 [स० पुं०] (स०) १०६। का०, ६, ६२ १६२, १६८,
 १७५, २७८। चि०, ४८, ४६ ५१,
 ५६, ५७, १५५। प्रे०, २१। म०,
 ६। ल०, ७८।
 किसी वस्तु व्यक्ति या समूह आदि का
 बोधक शब्द, वाचक शब्द।

नाम निरूपण = का० कु० ८६।
 [स० पुं०] (स०) नाम रखना। नाम नात करना।
 नाम मर्णाप्तौषक = का० कु०, ८६।
 [स० पुं०] (हि०) नाम का मर्णा रूप। दाप।
 नायक = म० ५ १२।
 [म० पुं०] (स०) नेता, अनुग्राही। स्वामी। श्रेष्ठ पुरुष।
 नाटक आदि का मुख्य या प्रधान पात्र
 माला के बीच का नग। वनावत।
 एक राग।

नारकी = चि० १०३।
 [वि०] (श० भा०) नरक म जाने योग्य। पापी। नरकभागी।
 नाराच = का०, २००, २०२। चि० ६६।
 [स० पुं०] (स०) द० 'नराच'।
 नारि = क०, २६। चि०, ४८, ५०।
 [स० स्त्री०] (हि०) स्त्री। नारा।
 नारी = ग्रा०, ६८। का० कु०, ६७। का०,
 ६३, ६४, १०४ १०६ १२५, १६२,
 १८५, २०७, २३८। चि०, ६१,
 १०३। ल० ७२।
 द० 'नारि'।

नारी जीवन = का०, १०५।
 [स० पुं०] (स०) स्त्रिया की जिंदगी।
 नारी सा = का० २४६।
 [वि०] (हि०) स्त्री के समान।
 नाल = का० कु० ३८, १२१। चि०, २६।
 [स० स्त्री०] (स०) फल का डठन। पीने का डठन।
 नली। बट्टक की नला। मानारा की
 फुंकनी। तलवार क स्थान की स्थानी।

नाला = का०, १७५।
 [स० स्त्री०] (हि०) दे० नाल' (बहुवचन)।
 नाथ = ग्रा०, २२। क०, ८, ६, १०, ११।
 [स० स्त्री०] (हि०) का० कु०, ८। का०, १५, ६२,
 १६५। चि०, १६०, १८७। ऋ०,
 ५५, ६०। ल०, ५६। प्रे०, २२।
 जल म चलनेवाला लकड़ो लोटे आदि
 को बनी हुई सवारी। जलयान।
 नौना। विश्वी।

नात्रिक = ग्रा० ४०, ४१। चि०, १६१। ऋ०,
 [स० पुं०] (स०) १६। ल०, १४, ४३।
 मल्लाह, कवट। जहाज चलान या
 जहाज पर काम करनेवाला व्यक्ति।

नारा = का० क०, १०६। का०, ८८, ७३।
 [म० पुं०] (स०) १३२ १४८। ल०, १३।
 अस्तित्व रहित होना। ध्वंस। बरवादी।
 गायब होना। पलायन। भ्रदशन।

नाशक = का० कु०, ८८।
 [वि०] (स०) नाश करनेवाला। हटानेवाला।
 मारनेवाला। दूर करनेवाला।

नाशमयो = का०, १७०।
 [वि०] (स०) नाश म युक्त। नष्ट होनेवाली।
 नाशिका = का०, १६६।
 [वि० स्त्री०] (स०) 'नाशक' का स्त्रीलिंग।

नसना = चि०, १०६ १३२।
 [क्रि०] (ब्र० भा०) नष्ट होना। उरधाद होना। प्रया जाना।
 नासा = ऋ०, २२।
 [म० स्त्री०] (स०) नासिका, नास। मूड। नाक का छेद।
 चौकठ के ऊपर का भाग।

नासिना = का०, ६४।
 [स० स्त्री०] (स०) नाक।
 [वि०] (स०) श्रेष्ठ प्रधान।
 नासिन = का०, २७०।
 [म० पुं०] (स०) इश्वर के प्रति प्रविश्रवाम की भावना।

नाहक = चि०, १७८।
 [क्रि० वि०] (पा०) बुधा। निष्प्रयोजन। व्यय। वेमत्तव।
 नाहर = चि०, २६। ऋ०, ८३।
 [स० पुं०] (हि०) मिट्ट, नेर। टेमू का फूल।
 नाहि = चि० १५, ३२, ४०, ५०, ६७, १४५,
 [म० भा०] १६६, १७६।

नाहीं = २० 'नही' ।
 का० कु०, ६१, चि०, ६७, १४५,
 १४७, १७६, १८०, १६० ।
 २० 'नाहि' ।

निकट [वि०] (सं०) = का० १५ २८५ । चि०, १७५ ख०,
 १७ ।

पास का । समीप का । जिसमें विशेष
 अंतर न हो ।

[क्रि० वि०] (सं०) समीप, नजदग ।

निकर = का०, कु० ८ । चि० १४६ । ऋ० ३८

[सं० पुं०] (सं०) समूह भुंड । राशि, दर । निधि, कोश ।

निकरिहें = चि०, १७२ ।

[क्रि०] (ब्र०भा०) निकालेंगे ।

निकल = का० कु० ३७, ४६ । वा० ६२
 [पूर्व०क्रि०] (हि०) ६०, प्र०, २१ ।

विलग हो ।

निकल निकल = प्र०, २१ । म०, ७ ।

[पूर्व० क्रि०] (हि०) २० 'निकल' ।

निकलना = का० कु०, १० । का०, ४ १६, २६

[क्रि० अ०] (हि०) १०१, १४५ १५७ १८२, १७६,
 १६६, २०६ २२५ । प्र० १८, २२ ।
 म०, ४ । ल०, ५१ ।

विलग होना । बाहर होना । रिक्त होना ।

[निकल मत बाहर दुर्बल आह—'चद्रयुत' का
 गीत, प्रसाद मगीत' म पृष्ठ १०७ १०८
 पर संकलित । 'राक्षस' ने इस गीत का
 सुवासिनी के प्रेम संकेत के उत्तर में
 उनकी विकलता शांत करने के लिए
 अभिनयपूर्वक गाया है । श्री दुर्बल
 आह बाहर मत निकल नहीं लोग तुम
 पर हंसिगे और वह हसी तुम्हारी आह
 के लिये शीत की भाँति भयकर होगी ।
 तू शरद भेषा के बीच विजली की भाँति
 भातर ही भीतर तडप ल । प्रेम का
 पवित्र फुहार पड रही है इसलिये कुछ
 मोठी पीर और जलन है । इसे सम्हाले
 चल, अधीर मत हो । तारे जिन प्रकार
 रात्रि के शृंगार हैं इसी प्रकार विरह के
 झंझू विरह के शृंगार हैं । भरे हुए
 झंझूधो की उफान न दा अपितु उन्हें
 घाँसा में ही रहने दो । बोलिल और

पपीहा बनने का लगन न लगा क्याकि
 पपाहा का पा कभी नही मुनता ।
 बोलिल की दया भा तो दख । तुममें
 भीषण ताप दिया हुआ है । आह
 को हृदय के पास छाया की भाँति
 सहज रूप में रहने द, छू मत
 नही ता जल जायगी । हृदय की
 पडकन स भक्कार कर उसे जगा
 मत । वह स्मृतिया का सुकुमार स्वप्न
 सोए में दख रहा है । आह को बाहर
 निकाल कर हृदय पर अत्याचार तु
 न कर ।]

निकय = ल० ५७ ।

[सं० पुं०] (सं०) कसौटी का पत्थर । तलवार की म्यान ।

निकाम = चि० १६० ।

[वि०] (ब्र०भा०) बेकार ।

निकाय = चि० २६ ।

[सं० पुं०] (सं०) समूह किसी विषय काम के लिये
 व्यक्तियों का समूह या भुंड ।

निकास = वा० १०६ ।

[सं० पुं०] (हि०) निकलने का क्रियाया भाव । निकलने का
 स्थान । वय का मूल । निर्वाह का ढग ।

[सं० स्त्री०] आमदना । चुगी । विक्री ।

निकाला = वा०, १६६ ।

[क्रि०] (हि०) चाना । आविष्कार करना ।

निकुज = वा० ८८ १७७ १७८ ।

[सं० पुं०] (सं०) लतामडप । घनी लतिकाधो स छाया
 हुआ स्थान ।

निकुजन = चि० १ ।

[सं० पुं०] (ब्र०भा०) लता मडपो म ।

निकेत = चि०, १७१ । ऋ०, ३३ ।

[सं० पुं०] (सं०) घर । स्थान । आगार । भडार ।

निरर = घा०, ७५ । वा०, १५१, २७३ । ल०

[क्रि० अ०] (हि०) ३० ।

स्वच्छ होकर ।

निररना = वा० ६७ १००, १०१ १८१ । ऋ०,

[क्रि० अ०] (हि) ७१ २३ ।

स्वच्छ होना । रंग का सुलना या
 साफ होना ।

निरिखल = का०, १५६।
 [वि०] (स०) सपूर्ण, सब, समस्त।
 निगम = वि०, १५५।
 [सं० पु०] (स०) वेत्। मार्ग। बाजार। मन्ना। निश्चित,
 वैषिक।
 निगूढ = का०, ६। ऋ०, ३८।
 [वि०] (स०) अत्यंत गुप्त।
 निच = वि०, १७६।
 [वि०] (हि०) दुष्प्रथम, निवृष्ट, बुरा।
 निचय = का०, २४४।
 [सं० पु०] (स०) ढर, समूह, समुदाय। सचय, किताब काय
 विनोप के लिए इकट्ठा किया जानवाना
 घन आदि।
 निचले = का० २४६।
 [वि०] (हि०) नीचे के नीचेवाले।
 निचोड = श्रौ० ७६।
 [सं० पु०, (हि०) निचाहने की क्रिया या भाव। निचोडने
 पर निकलनेवाला अर्थ। सार कथन।
 कथन का सारास।
 निछावर = का०, १३०। ऋ०, ५६।
 [सं० श्रौ०] (हि०) उतारा। उत्सव। नेग। किसी वस्तु
 के ऊपर घुसाकर दान दा हुई वस्तु।
 निज = श्रौ०, १४, ३८। का०, १५ २२
 [वि०] (स०) २८, २६। का०, कु, ५६, ६१।
 का०, १६ ३०, ३३, ७३, ७६, ८३
 ८४, ८५, १३५, १४०, १७०, १८१,
 १८३, १८५, १८७, १८६,
 २१०, २१३, २५१, २५४, २६८,
 २७१, २८६, २८९, २९४। वि०,
 ६ ६, १५, १६, २३, २४ २५, २६,
 ३१, ३२ ३५, ३६, ३८, ४१, ४३,
 ४५, ४६, ४७, ४८, ४९, ५०, ५१,
 ५२, ५३, ५४, ५५ ५६, ५७, ५८,
 ५९ ६०, ६१, ६२, १५२ १६१,
 १६३, १६५, १७३, १७८, १८५।
 ऋ० २१, ३५, ३८। प्र०, २ ६ १४,
 १७, २२, ३३ ३४, ४५। म०, १, ५,
 ६, १४, २०। ल०, १०, ११, २६,
 ४३, ४३।
 भपना। खास। प्रयात। वास्तविक।

(प्र-य०) निश्चय, ठीक ठीक, सही। खासकर।
 विशेष कर।
 [निज अलनों के अर्थकार मे—'लहर' मे पृष्ठ
 १० पर सकलित रहस्यवादी गीत।
 अथन ही अलकों के अर्थरे मे ह प्रियतम
 तुम छिपकर कमे भ्रात्राग। ठहरा,
 इतना मजग कोनुहल गुम कमी रच न
 सवाग। तुम्हारे जिन चरणा का मैं
 देवते ही प्रेम से चूम लू चाप चाप
 कर (ताकि अग्नि न हो मके और
 किमी की ज्ञात न हो सक) इतना
 अधिक कष्ट न दो कयो क इससे पगतल
 मे जो लाला भलक रही है वह तो
 ऊगा की लाला क रूप मे वह रहा है।
 यह वसुधा जिम पर तुम्हारे चरण है
 वह यहीं तुम्हारे चरणा के चिह्न के
 रूप मे अचला पडी रह जाएगी भले
 हा चरणचिह्नो का गाली से प्राची
 अथना मुहाग सजाए। तुम्हारी इच्छा
 कवल इतनी ही है न कि मैं तुम्ह कटी
 देण न तू तो तो मैं स्वय सिर मुका
 सता हूँ फिर अथन प्रकाश की किरणा
 स मरी खुनी आगें उर कर जीवन की
 अस्मिचितोनी के खेल मे पूछाग कि
 'पहचानो मैं कौन हूँ, बताओ मैं कौन
 हूँ।' जिन अर्थरों से तुम यह पूछोग के
 इस खेल के आनंद मे हमत हागे, इस
 लिए पहले उनकी ही हमी दबा ला।
 पर अस्मिचितोनी के खेल की वेला
 मगत हो चुकी है, आओ अपनी वाट
 लता मे मुफक जकड लो। तुम हा कौन
 और मैं क्या हूँ मने कुञ्ज रला नहीं
 है। छिपा नहीं उगार बना ताकि है
 मरे क्षितिज (प्रियतम) मानम मापर
 स कुम्भन सदा चलाता रहे।]
 निजकर = वि०, १६१।
 [सं० पु०] (स०) अपना हाथ।
 निज राघेरे = वि० ५७।
 [सं० श्रौ०] (हि०) अपना समाचार। अपना ह्याल।

निज चौकड़ी = का० कु०, ७३।
 [स० स्त्री०] (हिं०) अपनी चौकड़ी, अपना छक्का पजा, अपनी चालाकी।
 निज दोष = वा० कु०, १०२।
 [स० पुं०] (स०) अपना दोष या दुगुण, अपनी भूत।
 निज नव = चि०, ६३।
 [स०] (सं०) अपना नयापन।
 निज नाम ते = चि० ६६।
 [सं० पुं०] (श्र०भा०) अपने नाम से।
 निज निज = चि० १८६।
 [वि०] (स०) अपना अपना।
 निज पशुगन = चि० ७३।
 [सं० पुं०] (श्र०भा०) अपने पशुमा की समूह।
 निज प्रियतम = का० कु० ६६।
 [सं० पुं०] (सं०) अपना प्रिय अपना परम प्रिय।
 निज मुखवर = चि० ७१।
 [म० पुं०] (मं०) अपना प्रिय मुख या अत्र मुख।
 निज सीमा = का० कु ७५।
 [सं० स्त्री०] (र भा०) अपना सीमा अपना हृद।
 निजसुत = चि०, ५८।
 [सं० पुं०] (सं०) अपना पुत्र।
 निजसुतहि = चि०, ७४।
 [सं० पुं०] (श्र०भा०) अपने पुत्र को।
 निजस्व = वा० कु०, ८१। वा० २७१।
 [सं० पुं०] (सं०) अपनापन, निजता। मौलिकता।
 निजहि = चि०, ७०।
 [वि०] (श्र०भा०) अपने को, स्वयं वा।
 निजु = चि०, १४३।
 [वि०] (श्र०भा०) 'निज'।
 निजै = चि०, २६८।
 [वि०] (श्र०भा०) अपना हा स्वयं का ही। निजी।
 निठुर = चि० १५७, १८८।
 [वि०] (हिं०) कठोरहृदय प्रूर निदय।
 निठुरता = चि० १८४।
 [सं० स्त्री०] (हिं०) निदयता क्रूरता, हृदय का कठोरता।
 निठुर नर = चि०, ६१।
 [मं० पुं०] (हिं०) क्रूर मानव, निदय यति कठोर हृदय वाला मनुष्य।
 नित = चि० ६६, ७३ १००, १०६ १४८,
 [ध्र०] (हिं०) १५३, १७८, १८४, १६०।

प्रति दिन, हर रोज, सदा।
 नितहि = चि०, १२।
 [ध्र०] (श्र० भा०) प्रति दिन, हर रोज, सदा।
 नितहि = चि०, १८८।
 [ध्र०] (श्र०भा०) 'नितहि'।
 निसात = का०, १४४, १५८, १६०, २४०,
 [श्र०] (मं०) २४२। प्र०, १४।
 विलकुल, एतन्म, परम, बहुत अधिक।
 नित्य = का कु०, ११। वा०, १०, १६, ३३,
 [वि०] (मं०) ४७, ४६, ५१ ५४, ५८, ७४, ८१,
 १२३ २१६, २३६, २४२, २५०,
 २६२। चि०, ६६, ६४, १०६ १५३,
 १८६। श्र०, ५८। प्र०, ८, १०, १४,
 २३। ल० २३, ६० ७०।
 *
 अनश्वर शाश्वत अविनाशा।
 [ध्र०] 'नित'।
 नित्य नूतनता = का० कु०, १। का०, ५५।
 [मं० स्त्री०] (मं०) सदा नवीनता।
 नित्य कुर्य = का० कु०, १००।
 [सं० पुं०] (सं०) सदा किया जानेवाला नित्य का कार्य।
 नित्यनवल सबध सूत्र = वा० कु०, ६४।
 [मं० पुं०] (सं०) सदा नवीन सबध स्थापित करने
 वाला साधन। वह उपाय जिगस सबध
 नवीन बना रहे। शाश्वत सबध।
 नित्य परिचित = वा० कु० १००।
 [वि०] (मं०) सदा से परिचित, चिर परिचित।
 नित्य यौवन शक्ति = वा० कु ६०।
 [वि०] (सं०) सदा यौवन की क्षमता या योग्यता,
 पुण युवापन का प्रभाव।
 नित्यता = वा०, १६५।
 [सं० स्त्री०] (सं०) नित्य होने का भाव अश्वरता।
 निदाघ = वा०, २७०।
 [मं० पुं०] (सं०) गर्मी ठार, घाम।
 निदान = वा०, २६। न०, १२।
 [मं०] (मं०) चिकित्सा द्वारा रोग के निगम करने
 का मोमासा। रोगलक्षण। पवित्रता।
 वधना बंधन की रक्षा बाण्टार।
 [ध्र०] (सं०) घत म। घालित।

निद्रा = आ० ५४। वा, २६, १४८, २२६।
[स० ली०] (सं०) ऋ०, २६, ८८। प्र०, ५, १८।
म०, १८।

प्राणिया की वह अवस्था जिसमें चेतन वृत्तियाँ बाह्य वीच में कुछ समय के लिये निश्चेष्ट रहती हैं और उन्हें शारीरिक तथा मानसिक विश्राम मिलता है। तद्रा।

निद्रित = चि० ४६।

[वि०] (सं०) साया हृषा।

निधरक = ल०, ४२।

[क्रि० वि०] (प्र० भा०) नि सकाच, वयडक।

[निधरक] तुने ठुकराया तब—लहर' म पृष्ठ ४० पर सकलित रहस्यात्मक गीन। तुने तब प्रेम की मरी हूटी थाली की जय वे तुम्हारे चरणों की प्रीति माग रहे थे निधरक ठुकरा दिया। जीवन रस के जा बन बच रहे थे वे आवाश में आँसू बनकर बिसर गए और उड़ी म सावन के वादन इम वसुधा का हरातिमा द रहे थे। इम निदय हृदय म जो रूक है वह मरी पहली बूक की अगशइ है और उनका कमक की बूक से जावन की मूली डाला भी भवत हो गद है। प्राणा के प्याम से प्यासे मतवाले विस्मति व प्याल मे ऋमा के समान स्मृति टाल रही है। अत्र नश्वर प्रेम के विषय में न सोच।]

निधान = वा०, २६।

[सं० पुं०] (सं०) आगार, निधि या कोश। वह जिसम गुण की परिपूरणा हा।

निधि = आ०, ६८। वा० कु०, ६६। वा०, [सं० ली०] (सं०) ३७ ५३, ६६, २४२, २८६। चि०, १४६, १५३, १५७, १७०, १८५। म० ७।

गडा हृषा सत्राना। बुबर की ती प्रकार की निधियाँ वा टजान। ती गत्या वा मुचक शब्द। कोण। समुद्र। पर।

विद्यु। एक औपधि विरोप। एक गयद्वय विरोप।

निनाद् = वा० कु० २। का०, २७३। चि०, [सं० पुं०] (म) ११, १६०।

श २, आवाज ध्वनि। जोर का और प्रिय शब्द। मनोरजन समवत मधुर स्वर।

निनालिनी = चि०, १६७।

[वि०] (सं०) शब्द वरनवाना, बनि वरनवालो।

निपात = वा० कु० ११२। का० १४।

[सं० पुं०] (सं०) पूरा पतन, अथ पतन। विनाश, क्षय। व्याकरण क नियमों से न बननवाला और न सिद्ध होनवाला शब्द।

निघटना = का कु० १२४।

[क्रि० प्र०] (प्र० भा०) छुटकारा पाना। निर्वाह होना, निम्ना। व्यवहार तथा आचरण का बना रहना।

निबल = वा०, २५।

[वि०] (हि०) कमजोर बल से रहित।

निनही = चि० १८।

[क्र०] (प्र० भा०) 'निबटना' क्रिया का भूतकालिक रूप।

निवाहे = वा० १६२।

[क्रि०] (हि०) 'निवाहना' क्रिया का प्रत्ययार्थक रूप। निवाह करें।

निवाहो = चि०, १८४।

[क्रि० म०] (प्र० भा०) ८० 'निवाह'

निभृत = वा०, ८७, १३६। म०, ३०।

[वि०] (सं०) एकांत। गुप्त। शाल। हठ सक्ल्प। निजन।

निमित्त = वा० कु०, ११६।

[सं० पुं०] (सं०) हेतु कारण। वह जो नाम मात्र के लिये आया हो, जो वास्तविक वता न हो। शून्य। उद्देश्य।

निमीलन = वा०, २३। ऋ० २५।

[सं० पुं०] (सं०) पलक मारना या ऋषवाना। निमेष, घालि मूदन का भाव।

निम्न = वा०, २८८।

[वि०] (सं०) नीचा।

नियता = का० २५।

[सं पु०] (मं०) नियत्रण या व्यवस्था करनेवाला। वाय चलानेवाला। नियम बनानेवाला। शासन के नियम के अनुसार चलनेवाला।

नियत = का० १६३। ल० १५।

[वि०] (सं०) निश्चित, ठीक।

[सं पु०] (सं०) विधान। आना। नियोजन। विष्णु। गिव।

[सं स्त्री०] (श्र०) उद्देश्य। आशय। मशा, दियात।

नियति = श्रा० ५१, ६०। का० कु०, ११६।

[सं स्त्री०] (सं०) का० १६, ३४, ८१ ८३ १६५ २१०, २६०, २६७। चि, १४२ ल०, ६७।

वधेज। होनी, भाग्य। स्थिरता, जड प्रकृति (जन)।

नियतिचक्र = का० १६३।

[सं पु०] (सं०) भाग्य चक्र। भाग्य की हीन दशा। दैव।

नियतिजाल = का०, १७०।

[सं पु०] (सं०) भाग्य का जाल, भाग्यमयन। दुभाग्य म फयना।

नियति नटा = का० १५८। ल० ५७।

[मं स्त्री०] (मं०) भाग्य रूपी नटा या नाना प्रकार का खेल करनेवाला। भाग्य दशा के खराब होने पर स्थिर चित्त का न होना। माया।

नियति प्रेरणा = का०, २६६।

[मं स्त्री०] (सं०) भाग्य की प्रेरणा या दब का इच्छा। दब व द्वारा प्राप्त प्रोत्साहन।

नियम = का० १६१, १८६, १६१ १६२ [सं पु०] (सं०) १६६, २३६, २६५ २ ६ २६३। का०, ३८।

धार्मिक सिद्धांत या प्रतिबध। व निश्चित यातें जिनके अनुसार वाई सस्था चलता है। परंपरा दस्तूर। यापशास्त्र म ईश्वरपरायण व लिय प्राड भगम म स एक। विष्णु। शिव।

नियमन = का०, १७१ १८२, १८६, २०६।

[सं पु०] (१) नियमबद्ध करनेवाला कार्य। क्रिया विषय या काय का नियमो मे बाँधने की क्रिया या भाव। शासन, नियत्रण।

नियम परतत्र = का०, १६०।

[सं पु०] (मं०) नियमो मे बंधकर स्वतंत्रता छीन जाने का भाव।

नियमित = का०, ३३।

[वि०] (सं०) नियमो म बधा हुआ नियमबद्ध। कानून के अनुसार बना हुआ। ठाक समय पर होनेवाला।

नियामक = का०, १६१, १६२।

[सं पु०] (मं०) नियम बनानेवाला व्यवस्थापक। मछली मारनेवाला, माफ़ी।

नियोजित = चि०, १६५।

[वि०] (सं०) नियुक्त किया हुआ, लगाया हुआ, तैनात मुकरर। निश्चित।

निरकुश = का० २७०।

[वि०] (सं०) जिसके लिये कोई अकुश या स्वावट न हो या जो कोई बधन या नियम न माने। बधन रहित। विगृह्यल।

निरतर = का० ३१ १६४, २६५ १६६।

[वि०] (सं०) बिना अंतर का, लगातार होनेवाला, अविचल। स्थायी।

[क्रि० वि०] (सं०) सदा, हमेशा लगातार, बराबर।

निरतरता = का० १६७।

[मं स्त्री०] (मं०) अंतर या भेदपन का न होना। अविचल, स्थायित्व।

निरस्त = चि० २८, १४६।

[क्रि० मं०] (श्र० भा०) दलता दल रहा।

निरस्तता = श्रा० ३२, का० कु०, ४३। का०,

[क्रि०] (हिं०) ७, ११०। प्र० ७ १८ ल०, ७६।
निरस्तना' क्रिया का सामान्य वतमान रूप।

निरस्तना = श्रा० १८, का० कु० २ ३६, १००।

[क्रि०] (हिं०) का०, ४५, ६१, ११६। मं०, ६८। प्र० ५ १७। ल० ३१।

देवता ताकना, अवलोकन करना।

निरमि = चि०, ६ १४।
 [क्रि०] (हि०) निरखना' क्रिया का पूर्वकालिक रूप,
 निरखकर, देखकर।
 निरत = का०, ३३ १६१ २५४, २८५,
 [वि०] (सं०) २६०।
 विना काम म नगा हुआ, तन्वीन।
 [सं० पुं०] (ब्र० भा०) नाच, नृत्य।
 निरतत = चि०, १।
 [क्रि०] (ब्र० भा०) निरतना' क्रिया का सामान्य वतमान
 रूप। नाच करने की क्रिया।
 निरधारिकै = चि०, १७२।
 [क्रि०] (ब्र० भा०) निरधारना' क्रिया का पूर्वकालिक
 रूप, निर्धारण करके, निश्चय करके।
 मन में धारण करके।
 निरधारी = चि० १७६।
 [क्रि०] (ब्र० भा०) निरधारना' क्रिया का भूतकालिक
 रूप।
 निरधारौ = चि० ६४।
 [क्रि०] (ब्र० भा०) निश्चित कर्त्त। मन म धारण कर्त्त।
 निरपेक्षस्वावकीन = चि०, १३२।
 [सं० स्त्री०] (सं०) तुम्हारा बिना स्वाय की कामना,
 तुम्हारी इच्छा या कामना का अभाव।
 निरमलता = का०, ६८ ७४।
 [सं० स्त्री०] (हि०) स्वच्छता। दोषहीनता, शुद्धता।
 पवित्रता।
 निरमय = का० कु० ४।
 [वि०] (हि०) रोगरहित। निष्कलक। पूरा। अचूक।
 निरय = का०, २२।
 [सं० पुं०] (सं०) नरक दोजस।
 निरथक = का०, १२।
 [वि०] (सं०) बिना अर्थ का। व्यर्थ। बिना मूल्य का
 निमूल्य।
 निरलस सा = ल०, ५६।
 [वि] (हि०) महारहाल सा। निराश्रित।
 निरवधि = न० २६।
 [वि०] (न०) अवधि या सामारहित, जिमकी कोई
 अवधि न हो।

[क्रि० वि०] निरतर, लगातार।
 निरा = का०, २८।
 [वि०] (हि०) विग्रह, रालिस। केवल एक मात्र।
 निपट, निनात, एषदम।
 निरादर = का० कु०, ११५।
 [सं० पुं०] (सं०) अपमान बहृजता। परिभव अनादर।
 तिरस्कार।
 निराधार = का०, २६०, २६१। प्र० १०।
 [वि०] (सं०) जिमका कोई आधार न हा, मिथ्या।
 बिना महार का। निरवलव। निरा
 श्रित।
 निरानद = चि० १३२।
 [वि०] (सं०) आनद रहित। आनद विहीन।
 [सं० पुं०] (सं०) दुख। परम सुख।
 निरापद = म० ३।
 [वि०] (सं०) आपत्ति तथा चाधारहित। भयरहित,
 आशका से शून्य। निष्कटक, अर्धटक।
 निरालस = का० कु०, १००।
 [वि०] (सं०) आलस्य रहित, तत्पर।
 निराला = का० कु०, ३६, ६०। का०, २०१,
 २८४।
 [वि०] (सं०) अदसुव, विचित्र। अपन दग का अकेला,
 अनूठा, अपूर्व।
 निराली = का०, २२, २६। का० कु०, ३६।
 [वि० स्त्री०] (न०) का०, २८४। चि०, ८।
 द० निराला'।
 निराश = का०, ७८। का०, २०, १५८, १६६।
 [वि०] (सं०) चि०, १६०, १६२, १६६, १६६।
 ऋ०, ३७ ६१। प्र० ५।
 आशारहित, जिस आशा न हो।
 निराशा = का०, ५२। का०, १६ ५४ १६४,
 [सं० स्त्री०] (सं०) ६०, २१७। ल० ३०, ५६।
 आशा का अभाव। नाउन्मीदी।
 निराशापूण = का० ७।
 [वि०] (सं०) २० निराशामय।
 निराशामय = प्र० २०।
 [वि०] (सं०) निराशा स युक्त या भरा हुआ, हताश।

निरीक्षण सा = वा०, २०६।

[वि०] (सं०) निरीक्षण या देखा देखा करनेवाले के समान।

निरीह = वा०, ६२, १४५, १४६, २७१।

[वि०] (सं०) वि०, १७६।
सोधा गाथा बेचारा। सटम्प, प्राति प्रिय।

निरीहता = वा० १०४। ल० ३१।

[सं० स्त्री०] (सं०) निरीह होने का भाव।

निरूपम = वा० कु०, ४।

[वि०] (सं०) जिसकी उपमा न हो, उपमारहित। अनुपमेय।

निरुपाय = वा०, २/ ४८, ५२, ५४, ५६।

[वि०] (सं०) म०, १४। ल०, ६६।
जिसका उपाय न हो। जो उपाय से रहित हो।

निरस्त = वि०, १५२।

[क्रि०] (हि०) २० 'निरस्त'।

निरस्त = वि०, १०३ १७२।

[क्रि०] (हि०) २० 'निरस्त'।

निरस्तिये = वि०, १७१।

[क्रि० सं०] (हि०) निरखा' क्रिया का प्रेरणापथ रूप।

निरोगिता = प्रे०, ७।

[सं० स्त्री०] (हि०) रोग रहित रहने का भाव, स्वस्थता। आरोग्यता।

निर्जन = श्री०, १७, २३, ७६। वा, ४५,

[वि०] (सं०) ८२, ११३, १२०, १२७, १३३, २३३, २४७, २५०। ऋ०, १७ १८, ३०, ३५' ५२। ल० १४ १६।
जहाँ कोई न हो। एवात, सूतसान।

[निर्जन] गोधूली प्रातर मे - 'अजातशत्रु' मे अपनी स्थिति की अभिप्राय करने वाला श्यामा का गीत। निजन प्रात मे गोधूली की बेला में पणवुटी का द्वार खोल, प्रतीक्षा पर अधिकार किए, दीप जलाए प्रतीक्षा मे तुम बठे थे। उस समय तुम्हारी भलस प्रकपित आँखा से ऐसा आभास होता था कि

बटमारों से ठगे हुए हो या सामों योगा द्वारा छुनराए हुए हो। तुम्हारी पत्रों परदे के समान झुरी हुई थीं और अंतर्ग म अभिनय हा रहा था। इसका परिचय वेदना के माँसु की बूँद दे रहों था। फिर भा मुम मरा परिचय ब्रह्म रहे हो और दम विपुन विमन में अपना परिचय दूँ भी तो विमको। मेरे शवागा म चिनगारी उठ रही है, रो लेने दो ताकि सात से सऊ। मुझे दूग भर जाने म एवाकी रटन दो। उम शीतल बोने म सट्ट ब्यया के सोने स विग्राम सट्टल जाएग। समय बात चुका है नाल आकाश तम स भर गया है, प्रेम का वीणा छिन हो गयो है, प्यार भून गया है। अब तो बदमा के समान छिपता है, माँसु ही अब हार कर उमका परिचय देंगे।]

निर्जनता = वा०, १६, ११५ १५०। ल०, ४८।

[सं० स्त्री०] (सं०) जनराहित्य। मृतापन।

निभर = वा०, ४८, ८६ ६६, १४५, २५८,

[सं० पुं०] (सं०) २७०, २८१। ऋ०, ३१, ३४।

भरना, सोता, पानी का अपने घ्राप निकलकर ऊँचाई से गिरना।

निर्भर सा = श्री०, १८।

[वि०] (हि०) भरने के समान। अपने घ्राप द्रवित होने वाला। वाशुकि।

निर्भरिणी = प्रे० २४।

[सं० स्त्री०] (सं०) नशी। पानी का सोता या भग्ना।

निदय = श्री०, ६६। वा० कु०, २३, ७६।

[वि०] (सं०) वा०, २४८। ऋ०, ३७, ४५, ६६। म०, १४।
दयारहित, निष्ठुर, बेरहम।

निर्नयता = ल०, ४६।

[सं० स्त्री०] (सं०) निदय होने की क्रिया या भाव, निष्ठुरता।

निर्दिष्ट = वा० कु०, ११६।

[वि०] (सं०) निश्चित किया हुआ। जो निश्चित किया गया हो, ठहराया हुआ।

- निर्देश = का० कु० ६६।
 [सं पु०] (सं०) भाज्ञा । स्व । वृषभ ।
 निर्धार = क०, ३२। ऋ०, २१।
 [पूर्व० क्रि०] (सं०) बात का निश्चय । पाप मे गुण, कर्म
 आदि को समानता के विचार से
 भ्रमण वण् बनाना । धर्मो का मूल या
 महत्व निश्चित करना । निश्चित
 करना ।
 [म०]
 निर्धारक = का० कु० ६४।
 [वि०] (सं०) निर्धारण करनेवाला । निश्चय या
 निणय करनेवाला ।
 निर्धूम = ल०, ५६।
 [वि०] (सं०) जहा धूमा न हो, धूमा रहित ।
 निर्निमेष = का० कु०, २५, ५६, ६८। का०
 [वि०] (सं०) १६०, २५१। प्र०, २, १६। म०
 १४।
 बिना पलक गिराए हुए । जिमम पलक
 न गिर ।
 [क्रि० वि०] (सं०) बिना पलक झपनाए, एकटक ।
 लगातार । अघिरल ।
 निर्बल = का०, २४०।
 [वि०] (सं०) बलहीन, कमजोर ।
 निर्बोज = क०, १०।
 [वि०] (हि०) बिना बाज वा, तख रहित ।
 निर्भय = का० कु०, ८७, ६८। ११६। का०
 [वि०] (सं०) १६६, २८३, २६३। चि०, १, ७२।
 प्र०, २१।
 निरुदर, भयरहित । साहसी, निर्भय ।
 निर्भोक = का० कु०, ३०, १०६।
 [वि०] (सं०) दे० निर्भय' ।
 निर्भम, निम्भम = का०, ६३। का०, ११६ १६८, २००,
 [वि०] (सं०) २६७, २६९। ल० ७८। का० कु०,
 १२०। का०, १३२।
 निर्भोहा, ममता रहित । निदय ।
 निर्भमता = का०, १२१, १२४।
 [सं० जी०] (सं०) भमता या वासना का भ्रमाव ।
 निर्भल = क०, ७। का०, कु०, ५५, ६३, ६५।

- [वि०] (सं०) का०, १३५, २५४, २८२, २८५।
 चि०, ६३, १५४। ऋ०, २३, ३५,
 ५५। प्र०, १२, १५, १६। ल०, २५,
 २६, ३६।
 मलरहित स्वच्छ । दोपरहित
 निर्दोष ।
 निर्मेलता = का०, २४८।
 [सं० जी०] (सं०) स्वच्छता, सफाई । निष्कलता ।
 शुद्धता, पवित्रता ।
 निर्माण = का०, २५७, १६१।
 [म० पु०] (सं०) किसी वस्तु का बनाया जाना, बनाने
 वा कार्य, रचना ।
 निर्मित = का० कु०, ६। ११०। का० १६७,
 [वि०] (सं०) १६२, २०६ २८८। म०, ८।
 बनाया गया रचित ।
 निर्मोक = का०, ५।
 [सं० पु०] (सं०) साप की वेडुना केडुन । त्ववा, शरीर
 की ऊपरी खाल ।
 निर्माही = का०, ४५, ७०। का०, १५४, १५७।
 [वि०] (हि०) निदय, बठोरहृदय ।
 निर्लिप्त = का०, १६७।
 [वि०] (सं०) राग द्वेषादि से मुक्त । अलिप्त ।
 निर्वात = ल० ४३।
 [वि०] (सं०) जटा हवा न हो, वायु से रहित ।
 निनाथ = का०, १२, ८४।
 [वि०] (सं०) बिना बाधा या बदन के । स्वतंत्र ।
 निर्पसना = का०, १५१।
 [वि०] (सं०) बिना वस्त्र को, नगी ।
 निर्वासना = का०, १५१।
 [सं० पु०] (सं०) निकालना, विमज्जन करना ।
 निवासित = का० कु०, ६६, १०१। का, १५८,
 [वि०] १६२, २०८, २४४।
 निवाला हुआ, विसर्जित ।
 निर्विकार = का०, कु०, ३। का०, १५२, १५६,
 [वि०] (सं०) २४६, २८६।
 विकाररहित । जिसमे किसी प्रकार का
 परिवर्तन न हो, अपरिवर्तनशील ।

निर्विघ्न = वि०, ६७।

[वि०] (सं०) विघ्न या बाधा से रहित।

[क्रि० वि०] (सं०) जिना विघ्न बाधा ने।

निर्विवाद = वा०, १६७।

[वि०] (सं०) विवाद या झगडा से रहित।

निर्वेद = वा० कु०, ८७। वि०, १४३।

[सं० पु०] (सं०) वराम्य। धनुताप।

निलज = वि०, १६०।

[वि०] (प्र० भा०) लज्जा से रहित, निर्लज्ज।

निलज्ज = वि०, १७०।

[वि०] (हि०) '० 'निलज'।

निलय = भा०, ६। वा०, ८२, १८०। वा०

[सं० पु०] (सं०) कु०, ३६।

शालय, घर। छिपने का स्थान। जानवरों का बिल या भीटा। घामला।

निवारि के = वि०, १४०।

[प्र० क्रि०] (प्र० भा०) निवारण' क्रिया का पूर्वकालिक रूप, निवारण करके या मना करके।

निवारो = वि० ५०।

[सं० स्त्री०] (प्र० भा०) एक पुष्प विशेष का नाम।

[प्र० क्रि०] निवारण करके।

निवास = वा० १५८ २३६। का० कु०, ३६।

[सं० पु०] (सं०) वि० ५३ १५२, १५५, १७० १७७। प्रे० ४।

रहने का स्थान, आवास।

निवासी = वा०, २८३।

[सं० पु०] (सं०) रहनेवाला, बसनेवाला वासी।

निविड = का०, १०३।

[वि०] (सं०) धनधर घना, गहरा।

निवेदन = ऋ०, ४६।

[सं० पु०] (सं०) नम्रतापूर्वक कुछ कहना। विनती प्राथना।

[निवेदन—'मरना' मे शृङ्ख ४६ पर सकलित कविता। तेरे प्रेम का विष अब तो मुझ से पी रहे है। विरह रूपी सुधा हम बचाए हुए है। हम तो मरने के लिए जी रहे हैं। प्रेम के प्यास ने कारण हृदय दौड दौड कर थक चुका है और

घाशा की घृणमराचिका मे गूब भट्ट भा खुफा है। मर महमय जावन ने ह भमून गान दर्शन ने, धवन प्रमाथु से हम भी भाप निचिन कर दा। इन बात से मत डरा नि मिलन पर तुम्ह मरा उपातभ भिनगा। तुम्हारा एक चुपने मात्र मरा मुय बंद कर दगा।]

निराफ = वि०, ६, ६० ६७।

[वि०] (हि०) निर्भय निडर, नि शक।

निराश्र = वि०, १५३।

[वि०] (हि०) जटा प्रावाज न हा। चुपचाप, घात।

निराशा = भा०, ५६। वा०, ८। वा०, २०, ६७,

[सं० स्त्री०] (सं०) १०३ १३६, १६० १६७, २११।

वि०, २३, ७१, १०१, १४०, १६२।

ऋ० २३, ४८, ६३। प्र०, ५। ल०,

४४।

रात, रजनी। हल्दा। पलित ज्वातिप मे भेष वृष मिथुन, वक्, धनु मकर भादि छ राशियां।

निशाकर = वा० कु०, ६६। वि०, २३।

[सं० पु०] (सं०) चंद्रमा। महादेव। कपूर। एक ऋषि का नाम।

निशाच्छादित = वि०, २३।

[वि०] (सं०) रात्रि से षरा हुआ, भयकारमय, अनामय।

निशा तापसी = वा० १७६।

[सं० स्त्री०] (सं०) रात्रि रूपी तपस्वनी।

निशानाथ = वि०, २५।

[सं० पु०] (सं०) चंद्रमा।

निशामुख = का० ८७।

[सं० पु०] (सं०) रात्रि का मुख सध्या।

निशारानी = वि०, ७१।

[सं० स्त्री०] (हि०) निशा रूपी रानी।

निशा सरयी = का० कु०, ३५।

[सं० स्त्री०] (सं०) निशा नायिका का सरयी। रजनाथवा नामक पूल।

निशा सी = का० १२५।

[वि०] (वि०) रात्रि के समान। चांदनी के समान। सुदरी, रूपवती।

निशि = श्रा०, ५४, वा०, २३४, २८६।
[सं० शी०] (हिं०) चि०, १४, २५, १६२। ल०, ४१।
२० 'निशा'।

निशिचारी = वा०, २०५।
[सं० शी०] (सं०) राक्षसी, निशा में गमन करनेवाली।
[सं० पु०] चद्रमा।

निशीथ = वा०, ३४, ६४, ६७, ११४।
[सं० पु०] (सं०) ल०, ३६।
भद्ररात्रि।

[निशीथ नदी—सबप्रथम 'इडु', कला ४ किरण
४, अप्रैल १९१३ ई० में प्रकाशित और
नानन कुमुम में पृष्ठ ५६ ५७ पर
मकलित भक्तुकात कविता। प्रेमी के
दृगनारक के समान एकटक स्वच्छ
भाकाश में तारकपुत्र एकांत अभिनय
कर किमका भ्रनौकिक रूप देख रहे हैं।
दिशा, पृथ्वी, तक्षपति सभी चिंतित हैं
पर शांत पवन अपन स्वर्गीय स्पर्श से
उट मुख दे रहा है। अपकार में तारा
गण की मद्रिम ज्योति उसी प्रकार कुछ
कुछ प्रकाश दे रही है जिस दुखी हृदय
में प्रिय का विश्वास विमल विभा दत्ता
है। हरे भर क्रान्तों के बीच सरिता वह
रही है। वातू भरी जमीन भा इसके
लिये सिंचन से हरी भरी हो रही है
करार भी नहीं बटते और 'बीचड
बाचड भी नहीं है। यद्यपि तम्रगण
उस अपनी उजाल के सकेत से माग
दिखा रहे हैं तो भी वट किमी की
परवाह नहीं करती और अपनी धुन में
सोधी चलो जाती है। न ता उसे किमी
से कोई द्वेष है, न माह। वट न तो
उपल रजड से टकराना चाहती है और
न पकिन और फेनिल होना जाननी
है। पण्डुनीरों को भा वह अपनी
धार क वग में बहाना नहीं चाहती।
घोर गर्मी में भी वह सूखा नहीं। न
चौ उसमें गर्जन है और न उल्पात ही।
उममें शांति गात सा कामल ख हा

रहा है। हमारा जीवन स्रोत भी कब इस
नदी की भाँति का होगा। हृदय गौरम
से पूरित होकर सारे दिग्गत को कब
परिमल से भरेगा। यह अपन शीतल
नहरी से अशांत चित्त को कब शांत
शीतल करेगा और दुःख प्यास हरेगा।]

निशीथिनी = वा० ११८। चि० ४६।

[सं० शी०] (सं०) रात्रि, रात।

निश्चय = वा०, १४८, १६२।

[सं० पु०] (सं०) विश्राम। दृढ मन्थप, पक्का विचार।

निश्चल = चि० १३३।

[वि०] (सं०) अचंचल, अचल, अटल स्थायी।

निश्चित = क०, १०। कु०, ११२। वा० ३२।

[वि०] (घं०) जिसका विषय में निश्चय हो चुका हो।
जा निश्चय किया गया हो। निर्णीत,
पक्का।

निश्छल = वा० २३८ २५०। ल०, १४।

[वि०] (घं०) छन या वपट से रहित, निजपट।

निश्चेष्ट = म०, १४ १६।

[वि०] (सं०) निश्चल, निष्कारहित। बेहाश।

नि शल्य = ऋ० ८२।

[वि०] (घं०) काँटों से रहित। निविघ्न।

नि शोप = वा० कु० ७७। ऋ० ४४।

[वि०] (घं०) सपूण, जिसमें कुछ गेप न हो।

निश्वास = श्रा०, २७, ३१ ४२। वा० कु०, ८६।

[सं० पु०] (सं०) का०, ८ १४ ६४ ६०, १७७। ऋ०,
३६ ६०।
श्रवण साँस।

निश्वासो = वा० ६६ १२५।

[सं० पु०] (हिं०) निश्वास' का बन्धन।

निश्वास पवन = श्रा० १२।

[सं० पु०] (हिं०) पवन का श्रवण या पवनरूपी श्रवण।

निश्रोप = वा० ५२। म०, १४।

[वि०] (घं०) मरुण्य पूणा। अपूर्ण, जो गेप न हो।

निपग = चि०, ७२। ल० ४८।

[सं० पु०] (सं०) तरकश लूणीर। ललवार।

निपादपति = वा० कु० ६६।

[सं० पु०] (घं०) निपादा का स्वामी या राजा।

- निपिद्ध = का० कु०, ८८ । बा०, २३६ ।
 [वि०] (सं०) वजित, मना किया हुआ । मुरा । द्रुपित ।
- निष्काम = प्रे०, २४ ।
 [वि०] (सं०) काम या वास्तुना रहित । स्वामरहित ।
 प्रनासक्त ।
- निष्कषन = ऋ० ३८ ।
 [वि०] (सं०) अविचन, जिसका कोई मूल्य न हो ।
- निष्क्रिय = वा० कु०, १०६ ।
 [वि०] (सं०) क्रिया या व्यापार से रहित, निश्चेष्ट ।
 [सं० पु०] (सं०) ब्रह्म ।
- निष्कुर = भा०, ३६ । व०, १८, २४ । वा० कु०
 [वि०] (सं०) १२० । वा०, १२२, १६७, १७०,
 १७७ । ऋ०, ३२, ६१ । ल०,
 ३२, ३३ ।
 कठोर हृदयवाला, क्रूर मृगत ।
- निष्कुरता = ल०, ३२ ।
 [सं० स्त्री०] (सं०) निष्कुर होने का भाव, कठोरता, निद
 यता, क्रूरता ।
- निष्फल = वा० ३३ १३६ । ल०, ३४ ।
 [वि०] (सं०) फलरहित । व्यर्थ, निरर्थक ।
- निर्गम = भा० ६८ ।
 [सं० पु०] (सं०) स्वभाव, प्रवृत्ति । सृष्टि । दान ।
- निसानी = चि०, ७७ ।
 [सं० स्त्री०] (ब्र० भा०) स्मृति, चिह्न यादगार ।
- निसाने = चि०, ६ ।
 [सं० पु०] (ब्र० भा०) लक्ष्य । जिमपर वार किया जाने
 वाला हो ।
- निसापति = चि० १५६ ।
 [सं० पु०] (ब्र० भा०) चद्रमा ।
- निसि = चि०, १४६ ।
 [सं० स्त्री०] (ब्र० भा०) '० 'निशा' ।
- निसिदिन = चि०, १२ ।
 [अव्य०] (ब्र० भा०) रात दिन । प्रति रोज ।
- निसिनाथ कला = चि०, १४६ ।
 [सं० स्त्री०] (ब्र० भा०) चद्रमा का कला ।
- निस्तद्र = का० कु०, ८६ ।
 [वि०] (सं०) निरालस्य । जागृत या जगा हुआ ।
- निस्तद्वध = भा०, ६० । का० कु०, ६६ । का०,
 [वि०] (सं०) १६०, १६७, १६६, २११, २४५,
 २५० ।
 बिलकुल शान, निश्चेष्ट ।
- निस्तप्यता = वा० कु०, १२२ ।
 [सं० स्त्री०] (सं०) स्तप्य होने का भाव, सामोचा,
 सम्राटा ।
- निरतरग = वा०, १६६ ।
 [वि०] (सं०) तरग रहित, शान । गतिहीन ।
- निस्तार = वा०, १६६ । चि०, २४ ।
 [सं० पु०] (सं०) पार होने का भाव । छुटकारा, उद्धार ।
 मुक्ति ।
- निस्वन = वा० ६८, १६०, २६० । ल०, २३ ।
 [सं० पु०] (सं०) शब्द, ध्वनि ।
- निस्सग = वा०, २७० । ऋ०, ५२ ।
 [सं० पु०] (सं०) किसी को साथ न रखनेवाला, किसी
 में लित न होनेवाला ब्रह्म ।
- निस्सथल = वा०, १०५ १७७, २५६ ।
 [वि०] (सं०) आधार या सहारा रहित, प्रसह्यम ।
- निस्सहाय = वा०, १६७ ।
 [वि०] (सं०) बिना सहारे का, प्रसह्यम ।
- निस्सोम = भा०, २० । ल०, १६, २१ ।
 [वि०] (सं०) अघार, प्रनत । सीमारहित ।
- निस्तेज = वा०, ८७ ।
 [वि०] (सं०) प्रकाशहीन, कातिरहित ।
- निस्पद = ल०, ७६ ।
 [वि०] (सं०) निश्चल, निश्चेष्ट ।
- निस्वान = का०, २४७ ।
 [सं० पु०] (सं०) शब्द, ध्वनि ।
- निहार = वा० ८३ १७२, ३३८, २४६ । चि०,
 [क्रि०] (हि०) ४६ । ल०, ३४ ।
 'निहारना' क्रिया का पूर्वकालिक रूप,
 निहारकर, देखकर ।
- निहारि = चि०, १४६, १५५, १६४ ।
 [क्रि०] (ब्र० भा०) '० निहार' ।
- निहारिये = चि०, १७१ ।
 [क्रि०] (हि०) 'निहारना' क्रिया का प्रेरणार्थक रूप ।
- निहारी = का०, १५३ । चि० १४८ ।
 [क्रि०] (हि०) 'निहारना' क्रिया का भूतकालिक रूप ।

निहारो = वि० ५७, ११० ।

[क्रि०] (हि०) देखो ।

निहित = प्र०, २० ।

[वि०] (स०) स्थापित । छिपा हुआ ।

निहोरिं = वि०, ५४ ।

[क्रि०] (प्र० भा०) निहोरना' क्रिया का पूर्वकालिक रूप ।
निहोरा कर, मना कर ।

निहोरे = वि० ६० ।

[सं० पुं०] (हि०) अनुग्रह कृतमता, प्रायना, भराया ।

नीचे = वि०, १६० ।

[वि०] (प्र० भा०) उत्तम, श्रेष्ठ ।

नीच = का०, ७०, १८०, २१६, २२४,

[सं० स्त्री०] (हि०) २३५ । वि०, १४, ४६ । प्र०, १ ।
सोने की श्रवस्था; निद्रा ।

नींद जाल = का०, २३५ ।

[वि० स्त्री०] (हि०) नींद रूपो जाल, घोर निद्रा ।

नीच = का०, २८ । का०, ८४ । वि०, १६,

[वि०] (सं०) १०५, १०६, १९० । ल०, ७६ ।

तुच्छ अयम, निष्ठ ।

[नीच प्रकृति—'सज्जन' में एक उक्ति । नीच प्रकृति के लोग बात नहीं सात से मानते हैं । जब बटव पर में गन्ता है तभी उसकी तजी को समाप्त कर दिया जाता है । वैसे ही दुजन की भी स्थिति है ।]

नीचा = का० कु०, ७० । का०, ४५, १७

[वि०] (हि०) १२५, २८३ ।

गहरेपन का भाव, भुजा हुआ ।

नीचे = भा०, ६६ । का०, २६ । का०, ३, ३५,

[क्रि० वि०] (हि०), १२७ १८६ २०९, २११ । वि०,

७० । प्र०, १४, २४ । ल०, ४०,

४५, ८० ।

नीचे की धार, अधोभाग म ।

नीद = का०, १६ । का० कु०, १५, ३१, ६६ ।

[सं० पुं०] (सं०) का०, ७५, १५०, २३६, २८६ । म०,

१६ । म०, ७ । ल०, ४० ।

बीमला । रथ में बटने का स्थान ।

निवास स्था ।

नीइ सा = का०, १२० ।

[वि०] (हि०) नीड के समान ।

नीडों = का०, १४४ ।

[सं० पुं०] (हि०) घोसलो ।

नीति = का० कु०, ८६ । वि०, १८, १८, १०६,

[सं० स्त्री०] (सं०) १६७ । म०, २ । १४ ।

व्यवहार की रीति, आचारपद्धति ।

नीर = का० कु०, ४८, १२३ । का०, १३,

[सं० पुं०] (सं०) १५७, २१४ । वि०, ५३, ६४, १५७,

१६४, १६६ ।

पानी, जल ।

नीरज = का० कु०, ४२ ।

[सं० पुं०] (सं०) कमल । मीनी । जलजीव । शिव ।

नीरद = का०, १५ । का० कु०, ५०, १२३,

[सं० पुं०] (सं०) १२६ । का०, १६४ । वि०, ७१,

१६७, म०, २४ । प्र०, १५ ।

बादल, मेघ ।

[नीरद— चित्राधार' के पराग के अतगत पृष्ठ १६०-

१६१ पर सकलित । दा खडा में परपरा यत पदति पर यट् ब्रजभाषा की कविता है । जल भरे नवील धन समीर के रथ पर आवाश मार्ग से भी गरज के माय धा रहे हैं । य दृषक की हृषाते हैं, मार नाच उठ्य हैं धरती हरी हो उठ्ठी है । उयम इद्रव्यूटी विहार करने लगती है । विजली की झलोनी घटा उसम विराजती है । क्या होती है और श्रवर श्रवनि का भेद मिट जाता है ।

इधर बातक स्वाती की आशा लगाए है और अपने ऐसे प्रेमिया का तुम तरमाते भी है । तुम्हें पपिकों एवं विरहियों का रचक भी विचार नहीं है । तुम्हारे मन का भीर आशय जान नहीं पट्या । जो भी हो, हम तुम्ह हृदय स आशोवाँद देते हैं कि इधर भी समय समय पर आकर मुधा की बर्षा करो ।]

नीरद जाल = का० कु०, ११४।
[स० स्त्री०] (सं०) बादल का समुदाय।

नीरद माला = ऋ०, ६०।
[स० स्त्री०] (सं०) बादल का समूह।

नीरद विदु = वा कु०, १२४।
[स० पुं०] (सं०) बादल से टपकनेवाला बूद, घोस
बण। शबनम।

नीरधर = का० कु०, ११४। का० २१७। चि०,
[स० पुं०] (सं०) २२।
बादल, मेघ। समुद्र।

नीरव = ग्रां० ३१। वा० कु० ५६। का०
[वि०] (सं०) ६७, २०, १६८ २१६, २७८।
चि०, ८७, ४६, १६५, १६६। ऋ०,
१७, १८, ३०, ५५, ६६। ल०, ३१,
४८।
नि शब्द, चुप, मौन।

नीरवता = का०, ६, २६, ३२, ६३ ६७।
[सं० स्त्री०] (सं०) नि शब्दता, चुपची, मौनता।

नीरवता सी = वा०, ३ १२०।
[वि०] (हि०) नीरवता के समान, मौन सा, निस्पद सा।

[नीरव प्रम—चित्राधार' मे पराग के अतगत पृष्ठ
१६७-१६६ पर संकलित ब्रजभाषा
का पारंपरिक लया रचना। सबप्रथम
इ दु, कला २, किरण ७, माघ १६६७
वि० म प्रकाशित। नीरव प्रम कमल
कोश मे मकरद के समान अपने सौरभ
म स्वयं मस्त रहनेवाला होता है।
कवि निष्ठाजित कल्पना तथा अल्पना
की छविप्रतिमा के समान यह है।
सौन्दर्य म इनका सतत वास है। आदि
आदि।]

नीरविदु = चि०, २२।
[सं० पुं०] (सं०) जल की वृं आम बण।

नीरस = वा० कु०, ३३। चि०, १५१। प्र०,
[वि०] (सं०) २०।
रमहीन। शुष्क।

नीराजन = चि०, १५८, १६७।
[सं० पुं०] (सं०) आरता।

नील = ग्रां०, ६, ५३; ५५, ६८। का० १२।
[वि०] (सं०) वा० कु०, ४३, ५२, ६८। का०,
२६ ३५, ४६, ४७, ५३, ६५, १२२,
१२३ १४३, १५६, १७५, १७६,
१८०, २०६, २५७, २६८। ऋ०, ४१,
५६, ६६। ल० १४, १५, १६, २०,
८४, ४८। चि० २१, २३, ४६, ७१,
६३, १४१, १५४, १६०, १६३।
नीले रग का। आसमानी रग का।
राम की सेना का एक वानर। नीला
रग।

नीलकमल = का० कु०, ६५।
[सं०पुं०] (सं०) नीले रग का कमल।
नीलगगन = का० कु०, ६७। का०, ४६, २३४।
[सं० पुं०] (सं०) ऋ०, १६।
नीला आकाश।

नीलगगन म डल = प्र०, २४।
[सं० पुं०] (सं०) सख्य नालाकाश।
नीलगगन सा = वा० कु०, १५।
[वि०] (हि०) आकाश के नीले रग के समान।
नीलाभ सदृश।

नीलघन = वा० कु० ११५। वा०, ४७।
[सं० पुं०] (सं०) नीले या काले बादल।

नीलनभ = वा०, २१६।
[सं० पुं०] (सं०) नील गगन, नीलाकाश।

नीलानलिन = का०, १२। ऋ०, २२।
[सं० पुं०] (सं०) नील कमल।

नीलम = ग्रां०, २१, २२। वा०, १०१। चि०,
[सं० पुं०] (सं०) २३, ६८।
नील रग की एक मणि।

नीलमधुप = का० कु०, ६६।
[सं० पुं०] (सं०) नीला या काला भौरा।

नीलमणि = वा० कु० २६। ल०, ४३।
[सं० स्त्री०] (सं०) ३० 'नीलम'।

नीलमनि = चि०, १५६।
[सं० स्त्री०] (प्र० भा०) नीलमणि।

नीलमनी = चि०, ६।
 [स० स्त्री०] (ब्र० भा०) नीलमणि।

नीलनिशा = भ०, ३८।
 [स० स्त्री०] (स०) ग्रथकारपूरा रात।

नीललता = का०, १५८।
 [स० स्त्री०] (स०) नीली लता या लनाविशेष का नाम।

नीलवसन = वा०, ४०।
 [स० पु०] (स०) नाला वस्त्र।

नील द्योम = वा०, १४।
 [स० पु०] (स०) नाला आकाश।

नीलावर = चि० २५।
 [स० पु०] (स०) नाला आकाश। नीला वस्त्र।

नीलानर मय्य = प्र० १६।
 [क्रि० वि०] (स०) नील आकाश के बीच म। नाचे वस्त्रों
 व बीच में।

नीला = श्री०, ६६। का०, २५१। प्र०, ६।
 [वि०] (स०) एक रंग।

नीलाकाश = स०, ८। भ०, ४३।
 [स० पु०] (स०) नाले रंग का आकाश।

नीलाम = चि०, १६।
 [स० पु०] (हि०) घोना बोलकर माल बेचने का ढग।

नीलिमा = श्री०, ५५। का०, ७। का०, ३०, ६३,
 १२१। स०, ११।
 [स० स्त्री०] (स०) नातापन, श्यामता।

नीली = वा०, ५४, ६८। ल०, ५६।
 [वि० स्त्री०] (हि०) ३० 'नाला'।

नीले = वा०, १८६ २२१।
 [वि०] (हि०) ३० 'नाला'।

नीले अचल = वा०, २६।
 [स० पु०] (स०) नीले रंग का अचल।

नीलोत्पल = का० कु०, ६७।
 [स० पु०] (स०) नाला और श्वेत।

नीलोत्पल = प्र० २२।
 [स० पु०] (स०) नालकमल।

नीव = वा० ५, ७५।
 [स० स्त्री०] (हि०) जड़, जिसपर मकान की भित्ति बंधा

हाती है, बुनियाद। किमी काय का
 आरम।

नीहार = का०, १६६।
 [स० पु०] (स०) कुहरा, बाला, हिम।

नुकीली = का०, १६६।
 [वि०] (हि०) २० 'नुकील'।

नुकीले = वा०, २००।
 [वि०] (हि०) नाकनार।

नूतन = वा० १२७, १२६। चि०, ६४।
 [वि०] (स०) नवीन, ताजा।

नूतनता = वा०, ११५, १४०।
 [स० स्त्री०] (स०) नवीनता, ताजापन।

नूपुर = का० कु०, १६, ६७। का०, ११।
 [स० पु०] (स०) ल०, ४८, ६०।
 एक आभूषणविशेष जो पर म पहना
 जाता है।

नूपुराँ = ल०, ६६।
 [स० पु०] (हि०) नूपुर का बहुवचन।

नूपुर सी = का०, १०३।
 [वि०] (स०) नूपुर के समान। मपुर शब्द या ध्वनि
 करनेवाली।

नृत्य = श्री०, ६४। का० कु०, १६। का०,
 [स० पु०] (स०) १५, २०, ६६ ८६, १६८, १६०।
 २६२, २७३। भ०, २८। ल०, ४४।
 सगात के ताल और गीत के अनुसार
 हाथ पाव हिलाने, उछलने कूदने का
 मुद्रामय व्यापार।

नृत्यमयी = वा० १४०।
 [वि०] (स०) नृत्ययुक्ता, क्रीडामयी। नृत्यक्रिया से
 परिपूर्ण।

नृत्यनिरत = का०, २४२, २५०।
 [वि०] (स०) नाच म लान, मनन।

नृत्यनिकपित = वा०, १८५।
 [वि०] (स०) नाच में कापता हुआ। जो नाच नाचने
 से नाच उठे।

नृप = चि० ३१ ५२।
 [स० पु०] (स०) राजा, नरपति।

नृपचूडामणिवर्य = का० कु०, ६८ ।

[वि०] (सं०) राजाश्री में शिरोमणि । चक्रवर्ती राजा ।

नृशस = ल० ७६ ।

[वि०] (सं०) क्रूर निदय । अत्याचारी । अनिष्टकारी ।

नृशसता = ल०, ७७ ।

[सं० स्त्री०] (सं०) क्रूरता, निर्दयता ।

नेरु = चि०, ८ ६१, ६४, १४७, १४८,

[वि०] (का०) १५७, १५८, १७१, १७२, १७४, १८० ।

अच्छा, शिष्ट, सज्जन ।

नेकहु = चि० ५२, १४७ ।

[अव्य०] (प्र० भा०) तनिक सा, जरा सा ।

नेकहु = चि०, १७५ ।

[अव्य०] (प्र० भा०) तनिक भी ।

नेकी = चि०, १४ ।

[अव्य०] (प्र० भा०) एक भी नहीं ।

नेता = का० २०१ ।

[सं० पुं०] (हिं०) नायक, अगुआ । स्वामी । विद्वान् ।

नेत्र = का० कु० १०, १३, ५२ ६८ । का०,

[सं० पुं०] (वि०) २३ २६ । ऋ०, २२ २५ ।

आँसू । एक प्रकार का रोगभी वस्त्र । नाडी । जटा ।

नेत्रतारा = का० कु०, ४३ ।

[सं० स्त्री०] (सं०) आँसू की १ तली पुतली ।

नेत्राभिदरे यावत् = चि०, १३४ ।

[क्रि०] (सं०) जब तक नेत्र वा अति रंजन करे ।

नेम = चि०, १६५, १७३ ।

[सं० पुं०] (सं०) समय अवधि । गड प्रकार । छत्र । सायबाल ।

[सं० पुं०] (हिं०) नियम, धार्मिक क्रियाओं वा पालन ।

नेह = चि०, १६, १६५, १७६, १८०,

[सं० पुं०] (हिं०) १६० ।

स्नेह, प्यार । चिन्ता, तन या पा ।

नेहरस = चि०, १५६ ।

[सं० पुं०] (हिं०) प्रेमरस, स्नेहरस ।

नेही = चि०, १८६, १६० ।

[वि०] (प्र० भा०) स्नेह करनेवाला, प्रेमी ।

नेहु = चि०, १५ ।

[सं० पुं०] (प्र० भा०) 'दे० नेह' ।

नैतिक = म०, ११ ।

[वि०] (सं०) नाति सबंधी, नीतियुक्त ।

नैन = ग्रा०, १८ । चि०, २, ४, ६, ८, ४६,

[सं० पुं०] ५३ ५६, ६६, १४१, १५२, १७२,

(प्र० भा०) १७४, १७५, १६० ।

दे० नन' ।

नैनन = चि० ४७, १७६ ।

[सं० पुं०] (प्र० भा०) 'नैन' का बहुवचन ।

नैया = ग्रा०, ४२ । चि०, १८२ ।

[सं० स्त्री०] (हिं०) नाव, नौका ।

नैसर्गिक = का०, कु०, ६८ । ऋ०, ६७ । प्र०, २,

[वि०] (सं०) २० ।

सहज, स्वाभाविक, प्राकृतिक ।

नौक भौक = का०, ६४, ११७, २३५ ।

[सुहा०] (हिं०) व्यय, ताना । कहा सुनी ।

नोरुा = चि०, ४६ ।

[वि०] (प्र० भा०) अनोखी । विचित्र, अद्भुत ।

नोचते = ग्रा०, १५ । का०, १८६ ।

[क्रि०] (हिं०) 'नाचता' क्रिया का भूतकालिक रूप, (किसी वस्तु की खोजातानी करव उससे असली रूप वा बरबाद कर देना ।)

न्योद्धावर = प्र०, २५ ।

[सं० स्त्री०] (सं०) मंगलकामना से उत्सारा करके दान करने वा भाव, नम, पुरस्कार व रूप म बुद्ध देना ।

न्हाय = चि०, १८६ ।

[पुं० क्रि०] (प्र० भा०) नहाकर ।

प

पक = का० कु०, ४२ । का०, १८६, २०५,

[सं० पुं०] (सं०) ०६० । ऋ०, २२, ६६ । ल०, ७६ ।

बीचड, बीच ।

पकज = ल०, ६, ३२।

[सं० पुं०] (सं०) कमल।

पकिलता = भा०, ७२।

[सं० स्त्री०] (सं०) मलीनपन, गदगी।

पक्ति = का०, ५६, १४२, १७६। ल०, ६८।

[सं० स्त्री०] (सं०) श्रेणी, बतार। पात।

पक्तियों = ऋ०, ७१।

[सं० स्त्री०] (हिं०) पक्ति का बहुवचन।

पर्यट्टियों = ऋ०, ३६।

[सं० स्त्री०] (हिं०) पुष्प दला। पुष्प के व रगीन पटल जिनके छितराने पर फूल भगना रूप पाता है।

पर्ययुक्त = ऋ०, ८६।

[वि०] (म०) परवाला। डना वाला।

पर्या = प्र०, ७।

[सं० पुं०] (हिं०) वेना।

पखा मले = वा कु०, ६८।

[क्रि०] (हिं०) वेना डुलाए।

पखुरियों = ल०, १७, ३२।

[सं० स्त्री०] (हिं०) १० 'पर्याडय'।

पगु = वा०, १६८।

[वि०] (सं०) जो परो स न चल सके। लगटा।

पगु सा = वा०, १४५।

[वि०] (हिं०) लगड क समान।

पच = चि०, १७६।

[सं० पुं०] (हिं०) समुदाय, समाज, जनता। निष्ठाधिक पांच।

पचतत्त्व = का० कु०, ६।

[सं० पुं०] (सं०) पचभूत।

पचन = चि० १४७।

[सं० पुं०] (ब्र० भा०) २० 'पच'।

पचनद = ल०, ५१, ५२, ५३, ५४, ५५, ५६।

[सं० पुं०] (सं०) पांच नदिया का प्रदेश, पजाब।

[पचनद—३० 'पिरमिड का शय्य समपण'। इन

बहिता म खीर भूमि के रूप म पचनद का वर्णन प्राया है। मिथु, सतलज,

भेलम, ब्यास भीर चिनाव इन पाच नदियों का प्रदेश होने से इसे पचनद कहा गया है। अर्थात् पजाब।]

पचभूत = वा०, १४, १५, १५३, २६७।

[सं० पुं०] (सं०) पचतत्त्व। पृथिवी, जल, पावक, गगन, समीर।

पचभूतों = का० कु०, ८६।

[सं० पुं०] (हिं०) पचतत्त्वों।

पचम = चि०, ४७। ऋ०, ५७।

[वि०] (सं०) पांचवां। २० 'पचम स्वर'।

पचम स्वर = का० कु०, ६६। का०, १०१। ऋ०,

[सं० पुं०] (सं०) सात स्वरा म से पाचवा जो कोकिल के स्वर क समान माना जाता है।

पचमी स्वर लहरी = ऋ०, ६६।

[सं० स्त्री०] (हिं०) पचम स्वर की तरंगें।

पथी = ल०, ३१।

[सं० पुं०] (हिं०) राहो, बटाटा। किसी मत या संप्रदाय का माननेवाला।

पकड़ = का०, ६२, १००, १७६।

[सं० स्त्री०] (हिं०) ग्रहण। भिडत। सत्य का साक्षात्कार करानेवालो तत्त्वामक बात।

पकड़ना = वा०, ८८, १५८, २१३, २१६, २२७,

[क्रि०] (हिं०) २४१, २०४, २७८। ल०, १०, ७३।

धामना, ग्रहण करना, धारण करना, धरना।

पका = वा० कु०, १०१।

[वि०] (हिं०) तयार। रसभूषण। वृद्ध।

पके = वा०, १८०।

[वि०] (हिं०) पका का बहुवचन।

परान = चि०, ५, १६, १७२।

[सं० पुं०] (ब्र० भा०) पापाण, पत्वर, प्रस्तर, जड।

पग = वा०, १४। वा०, १०३, १०६। चि०,

[सं० पुं०] (हिं०) २, १५। ल०, ५०।

पंर, पांव, डग।

पग चापि के = चि०, ७०।

[पू० क्रि०] (ब्र० भा०) पर दबाकर।

पग पग = वा० कु०, १४।

[अध्य०] (हिं०) डग डग। प्रत्येक पग पर।

पगली = श्री०, ८, ५५। का०, १६, ४०।

[वि०] (हि०) पगल वा स्त्रीलिंग।

पगली सी = वा०, १०४।

[वि०] (हि०) मुधि मुधि रोई गी। पगली के मगान।

पगि = चि०, १८४।

[प्र०क्रि०] (प्र०भा०) पगवर, सनवर।

पगे = वा०, २७०।

[क्रि०] (हि०) पगना वा भूतकालिक त्रिया।

पगौगी = चि०, १००।

[त्रि०] (प्र०भा०) पगना की भविष्यकालान त्रिया।

पगोडा = का० कु० ६।

[सं० पु०] (श्रा०) ब्रह्मदेशाय मन्दिर।

पचीसी = प्र०, ४।

[सं०स्त्री०] (हि०) एक ढग के पचीस वस्तुओं का समूह। पचीसवाँ वर्ष। बीस के गेन का एक प्रकार।

पछताहि = चि०, १५८।

[त्रि०] (हि०) पश्चात्ताप करते हैं।

पट = श्री०, २७, ४५। का० कु०, ५२।

[मं० पु०] (सं०) का०, २८ ३७ ६७, १७० १७६ १८४ २६३। चि० ३८ १५० १६३। ल० ४३, ४६।

कपडा। ओहार, पदा। समूह।

पटक रहा = वा० ६८।

[क्रि०] (हि०) पछाड रहा है। गिरा रहा है।

पटल = श्री०, ३८। वा०, १७१ २३३, २५१,

[मं० पु०] (हि०) २५२, २६२। ल०, ७२।

पर्दा परत, तह। समूह।

पटली = चि०, १५७।

[सं०स्त्री०] (हि०) > 'पटल'।

पटो = का०, १७६, १८६ १६३, २५६।

[सं० स्त्री०] (सं०) ऋ०, ५६, ६६।

> 'पट्टिका'।

पट्टिका = वा०, १४२।

[सं० स्त्री०] (सं०) पट्टी।

पड़ना = श्री०, ६८। वा०, १०, ४८, ८८, ९६।

[क्रि०] (हि०) ऊँचे में नाल घाना, पनित हाना, बन्द या दुख म घाना।

पड़भो = चि०, ११। वा०, १४८।

[त्रि०] (प्र०भा०) पडा।

पडकर = वा०, ३२।

[प्र०त्रि०] (हि०) ग्रम्ययन कर।

पडना = वा०, ६७।

[त्रि०] (हि०) गीथना। पाठ करना।

पडव = चि०, १६ ६८ १०८।

[क्रि०] (प्र०भा०) > 'पडना'।

पटि = चि०, १७१।

[प्र०क्रि०] (प्र०भा०) पडवर।

पडो हुई = वा० ३६।

[त्रि०] (हि०) जो पट ली गई हो।

पट्यो = चि० ५३।

[त्रि०] (प्र०भा०) पट गया।

पण = ल० ५३।

[सं० पु०] (मं०) पासना चलना। कोई खेल जा दांव लगा कर खेला जाय। झूत। प्रण। प्रतिना।

पण्यवीथिका = प्र०, ७।

[मं० स्त्री०] (मं०) बाजार म बनी हुई गला। बाजार में जानेवाली गली। वह गली जिसमें हाट लगती हो। हाट। बाजार।

पतग = श्री० ४४। वा० कु० ७६। वा०

[सं० पु०] (सं०) १५७ १६४। चि० १६। ऋ० ६३। ल० ४६, ५०।

चिडिया भुगगा, फतिगा। गेंद। शरीर। मूय। नौका।

पतम्भ = श्री० १६ ६१। वा० ३३ ५० २२३

[मं० स्त्री०] (हि०) ऋ०, २७ ६१ प्र० १७ म० १, ल० ३७ ४०।

पतो वा भर जाना। वह ऋतु जिसमें पत्ते भर जात हैं।

[पतम्भ समीर]—मथप्रथम माधुरी वष ४ खड २, मख्या ४ मन् १६२६ में प्रकाशित अज्ञातशत्रु मे पतम्भ समार शापक हटा दिया गया। देखिए चल बसत वाला अचल सी]

पतम्भ से = का०, १६४।
[वि०] (सं०) पत्ते भरने के समान। पतम्भ ऋतु के समान।

पतम्भर = का०, २६५, चि०, १७१।
[सं० स्त्री०] (हि०) द० पतम्भ'।

पतन = श्रां०, ५८।
[सं० पुं०] (सं०) नीचे गिरना। नाश या अस्त होना। पाप।

पतनमय = का०, २३५।
[वि०] (सं०) नाशवान्। गिरने का और बढ़ा हुआ।

पतनोमुख = का० कु०, २८।
[वि०] (सं०) जिमका घोर घोर नाश हो रहा हो। पतन की धार बढ़ता हुआ।

पतली = का० कु०, ३६। का०, ११८।
[वि०] (हि०) ३० 'पतल'।

पतले = का०, १६६, २७२।
[वि०] (हि०) क्षीण। बायक। दुबना। ह्वा।

पतवार = का०, १६, ५७। चि०, १८२। ल०,
[सं० पुं०] (हि०) ५७।

पता = का० क पिछले भाग में लगी हुई एक तिकीना लरडा जिममे नौका इधर उधर घुमाई जाती है। पतवार।

पता = का० कु०, २७४। का०, १२ १६।
[सं० पुं०] (हि०) चि०, ५०। ल०, ६६।
ठिकाना। पता।

पति = का० ३० का० कु०, ६१ १०६ का०,
[सं० पुं०] (सं०) २८४, चि०, ६७, ६८, प्र०, २०।
स्वामी। मालिन। दूल्हा। मयाग्य। प्रतिष्ठा।

पतित = का० कु० ६४। चि०, १२ १०१
[वि०] (सं०) १७९।
गिरा हुआ। नाश। पाप।

पतितन = चि० १८५।
(शं० भा०) पतित का बहुवचन।

[पतितपावन—गयप्रथम 'इडु', पता ५, मड १,
जनवरी १९१४ म प्रकाशित और
'कानन कुमुम' में पृष्ठ ६४-६५ पर सब

लित। जन्मना या कमया चाह जसा पतित हो सबका पिता एक ही ईश्वर है, और यदि उसकी गोद मे पश्चात्ताप के श्रामू बहाकर उसके चरण कमल मे शरणागत हो तो कसा ही पतित नयो न हो वह पवित्र हा जाता है। जो स्वग से च्युत हो ससार के गर्त म आया उसका उसमे बडा पतन और क्या हो सकता है। एमे पतितो का बचान के लिय ही ईश्वर दीडा आता है। सममुच जा पतित है वही उम चाहता है क्याकि वह आत्त होकर ईश्वर को प्रेम स स्मरण करता है। जो पतित नही है वह इश्वर के प्रेमसागर की लहरो म पवित्र नही हा सबता और न उमे उसके पद की धून ही लग सकती है। ईश्वर जावा का जीव और पतित पावन है। वह इतना दयालु है कि पतित हान हा शरणागत का पवित्र बना देता है।]

पतिसुर = चि०, ५८।
[सं० पुं०] (हि०) म्वाभा का मुन।

पतियों = चि० १५१।
[सं० स्त्री०] (प्र० भा०) पतियों। चिट्टियां। चिट्ठी।

पत्तन = ल०, ३२।
[सं० पुं०] (सं०) नगर।

पत्ता = प्र०, ५, २२। म०, १, २।
[सं० पुं०] (हि०) वृक्षा म हरे रग का वह अचयन जा उमय तन स निबलता है। पग।

पत्तियों = का० कु०, २८। ल०, ११।
[सं० स्त्री०] (हि०) छाट पन।

पत्ते = का० कु० २। म०, ११। म०, १५।
[सं० पुं०] (हि०) ३० 'पत्ता'।

पत्थर = का० कु० ६, ११०। का०, ३।
[सं० पुं०] (हि०) प्र०, १६।

पृथ्वा का ठाय स्वर जा तून या वालू क जमन स बना हा। सिदा रड। ,

पत्नी = चि०, ७४। प्र०, १६, २०।
[सं० स्त्री०] (सं०) भार्या। दारा। यवू। सहधर्मिणी।

पत्र = का० कु०, ३६, ७६ १२४। वा०, १६०,
[सं० पुं०] (सं०) २१२, २८०। चि०, ६८। ऋ०, ३३,
४४ प्र०, १। म०, २।

पत्र, लिखा हुआ पागज। चिट्ठी, रत।

पय = झं०, ३२ ३८, ४१ ४२, ६६ ७२,
[सं० पुं०] (सं०) ७६। व०, ३१ ३२। वा०, १६ ७४
७६, ११२ ११४, ११७, ११८ १२३,
१४४, १५८, १५९, १६० १६५,
१६७ १८१, १८२, २१०, २४१,
२६७ २७७, २८२। ऋ० ७३। प्र०,
४ ५, २३। ल०, २६ ३१, ४५
५३। चि०, १५७।

गस्ता। माग। रति।

(हि०) रोगी के लिये हलरा आहार, पत्थ्य।

पथ पथ = वा० १६०, प्र०, २३।

[सं०] (सं०) प्रत्येक रास्ता।

पथिक = व०, १५। वा०, कु०, १२, १४,
[सं० पुं०] (सं०) २५ ५१। का०, ८१, १६७, १७८,
२५७, २५८। ल०, ११, ३३। च०,
१५ १४९, १५८ १६४ १७४। ऋ०,
२४। प्र०, ५, ६, ७ ८, १४, १६।
म०, ५।

राही। बटोहा। माग चलनेवाला।

पथिकन सौ = चि०, ७२।

[सं० पुं०] (सं० भा०) बटोहिया को, मुसाफिरो को।

पद = का०, ८६ १८५, १९८। चि०,
[सं० पुं०] (सं०) १५५। प्र० २३। म०, १७। ल०, ५।
दजा। मोहदा। श्रणी। पदवी। पाव।
चरण।

पदकमल = चि०, १७५।

[सं० पुं०] (सं०) कमल व समान मुद्र चरण।

पदचिह्न = झं०, ४१। वा०, कु०, ७३। वा०,
[सं० पुं०] (सं०) ५६। ल० ६।

चरण वा छाप। पर वा निशान।

पदतल = का०, ६, ५७, २६०, २६७। ल०,

[सं० पुं०] (सं०) ४३।

पैर वा तलवा।

पददलित = वा०, २००। चि०, १०५।

[वि०] (सं०) परा स रीटा हुमा। दनाया हुमा।
सताया हुमा।

[पददलित क्रिया है—यम ने गनियो का जन
मत्रय वा नागयज्ञ मे गान। 'प्रसा'
मंगीत' म पृष्ठ ७१ पर सङ्कलित।
समस्त वमुधरा को पददलित करन
वाला श्रौर भपन शीघ्र से विश्व को
चौकानेवाला यज्ञ का यह विजया
पाडा भाग चल रहा है श्रौर हम सब
उसने रक्षक है जिह देकर शत्रु
पलायित हो जाते हैं। प्राकाश तब
फहरानेवाला यह भरण पताका मलय
पवन के साथ विजय के गीत गाता है—
भार्य भूमि का जय आय जाति की
जय जनमेजय विजयी हो जिसे दबकर
शत्रु भयभीत हो उठने हैं।]

पददलिता = वा०, ६३ प्र०, ४७।

[वि० स्त्री०] (हि०) सताई हुई। परो स रादी हुई।

पद पद = का०, १६३।

[सं०] (सं०) ३० 'पग पग'।

पदपद्म = ल०, २६।

[सं० पुं०] (सं०) कमल के समान चरण। कमलरूपा
चरण।

पदाग्र = वा०, २८०।

[सं०] चरण का अग्र भाग।

पदार्थ = प्र०, १६।

[सं० पुं०] (सं०) श दससूह या पद का अर्थ। वह
जिसका कोई 'भाव' या रूप हो।
वस्तु चाज। पुराण के शत्रुमार—
धर्म, अर्थ, काम श्रौर मोक्ष।

पद्म—ल०, २६। ऋ०, १६८।

[सं० पुं०] (सं०) कमल। कमल पु प।

पद्मपलाश = वा० १६८।

[सं० पुं०] (सं०) कमल के पत्ते की तरह।

पद्मराग उद्गम = ल०, ७६।

[सं० पु०] (सं०) पराग या पुष्कराज नामक रत्न के निकलने का स्थान।

पद्मा = चि०, १३२।

[सं० स्त्री०] (सं०) लक्ष्मी।

पद्मिनी = ल० ११।

[सं० स्त्री०] (सं०) कमलिनी। लक्ष्मी। रतिशास्त्र के अनुसार चार प्रकार की स्त्रियों में से एक जिसके शरीर से कमल की सुगंध निकलती है।

पदध्वनि = का०, १४४, ल०, ३३।

[सं० स्त्री०] (सं०) पर का ध्रावाज। चलने से जा ध्वनि उत्पन्न होती है।

पदपराग = ल०, ३३।

[सं० पु०] (सं०) चरण धूलि। पर की धूल।

पद शब्द = ऋ०, २१, ८२।

[सं० व०] (सं०) द० पदध्वनि।

पधारे = प्रे० ६।

[क्रि०] (हि०) धाल। कृपाकर उपस्थित हुए।

पनघट = ल०, १५।

[सं० पु०] (हि०) वह घाट जहाँ लोग पानी भरते हैं।

पन्नग = चि०, ६५, ७२।

[सं० पु०] (सं०) मय। पद्मा। मवरद।

पपीहा = का०, १८०। चि०, १, ३६। ऋ०,

[सं० पु०] (हि०) २४, ४६।

चातक। वर्षा और वसंत में पीठ स्वर में बालनेवाला एक पक्ष।

[पपीहा पुकार सा = का० कु०, १२६। ल०, २७।

[चि०] (हि०) पपीहा को पुकार 'पी कही' 'पी कही' के समान।

पय = चि०, ८। ल०, ६८, ७०।

[सं० पु०] (सं०) पानी। दूध। रस।

पयानो = चि०, ५०।

[सं० पु०] (प्र० भा०) गमन, यात्रा, खानपान।

पयोधर = का० कु०, ३८। का०, ४४ १८२।

[सं० पु०] (सं०) स्वयं, बादल, नागरमाया, नाखिल, पर्वत, पहाड़, भदार, भाव, कष्ट, चि०,

तालाव, तडाग, दुग्ध वृक्ष। 'दोहा' छंद का ग्यारहवां भेद। समुद्र। एक प्रकार की ईंख। छप्पय छंद का सत्ताइसवाँ भेद, गाय का स्तन।

पयोधि = का० कु०, १०७। ऋ०, ६२।

[सं० पु०] (सं०) समुद्र। जलधि।

पयोनिधि = चि०, १६।

[सं० पु०] (सं०) समुद्र।

पर = घ्रां०, ८, १४, २०, ३५, ३८, ४०,

[चि०] (सं०) ४५, ४६, ५१, ५५, ७२। का० ८,

९, १०, १२, १८, २५। का० कु०,

५, ७, १० १२, १३, १४। का०,

११४, ११६, १२३, १२६, १२८,

१३३, १३६, १४१, १४४, १४६,

१४८, १५०, १५२, १५८, १६३,

१६४, १६५, १६६, १७५, १७६,

१८०, १८६, १८३, १८८, २०२,

२५७, २५८, २५९, २६३, २६६,

२७०, २७२। चि०, ४६; ५६, ५७,

६०, ६३, ६५, ६६, ७४, ११०

११३, ११६, ११९, १७४, १८५।

प्र०, १०, १२ १४, १५, १६, १७,

१८, २० २२ २५।

दूसरा, भय, गैर, परलोक, परार्थ, जा अपमान न हो, दूसरा वा। प्रतिरिक्त, भिन्न, जुटा, भलावा। पीछे वा, बाद वा। जो पर हा दूर। धलग। जा सीमा के बाहर हा। तटस्थ। अधि वरण का एक चिह्न। पल, पील।

पररय = ल० ५७।

[सं० स्त्री०] (हि०) गुण दाग की ठीक ठीक जाँव। परोक्षा, पट्टवान।

पररयते = ल०, ७७।

[क्रि०] (हि०) पहचानत।

पररमा = का० १६१।

[क्रि०] (हि०) पहचाना।

परचारो = चि०, ७४।

[क्रि०] (प्र० भा०) प्रचार करा।

परछाई = झाँ, ३३। ल०, ४३। का०, २६२।
[सं० स्त्री०] (हि०) झं १६।

प्रकाश के सामन आन स पीछे की ओर अथवा पीछे का आर प्रकाश होन से आगे की ओर पढी हुई किसी वस्तु का छाया। प्रतिबिम्ब।

परछाई सी = ल० ६।

[वि० स्त्री०] (हि०) परछाई के समान।

परत = चि० १५६ १७६।

[सं० स्त्री०] (हि०) सतह। पत्रों हुई वस्तु। माटाई। तह बगडे क लपटने या माइन पर हर भाग म प नवाला मोट।

[क्रि०] (प्र० भा०) पटता है, पठनी है।

परतन = का० १६३।

[वि०] (सं०) पराश्रित दूसरे क सहारे रहनेवाला। पराधान परवण।

परताप = चि० ५४।

[सं० पुं०] (हि०) पीसप, मदानया। वारता गक्ति। आतक। मदार का वृक्ष। रामचंद्र क मखा का नाम। ताप, गर्मी। युवराज का छत्र।

परत = झाँ, ३३। का० कु० ६० १२२,
[सं० पुं०] (का०) १२४। का० ५३ ६६ ६७। प्र०,
१६।

घाट करने क निय सत्रवाया हुआ नपटा चिक्। व्ययधान रोक झट, आभ्रत दिशार। घाट सं रखने का नियम। तन तह। परत। वह भिन्नी या बमहा जा घाट या व्ययधान क क नि" हा। पनार।

परदेशी = का० २०६।

[वि०] (सं०) अंगर विन्नी' घनन दग म भिन दग का।

परदेशी = का० १७८। म० ८१।

[वि०] (सं०) अंगर परदेश।

परनु = का० १०४।

[सं०] (सं०) मन्दिन चित् दा क त्र। का घनन करने काना चित्।

परन = चि० १५८।

[सं० पुं०] (हि०) प्रतिज्ञा, टेक, पत्ता।

परनारी = चि०, ४६।

[सं० स्त्री०] (सं०) परायी स्त्री, दूसरे का स्त्री।

परपरा = का०, ७५।

[सं० स्त्री०] (सं०) बाल बगानुक्रमत्व। प्रया।

परपरागत = का०, ११५।

[वि०] (सं०) परपरा से प्राप्त या आया हुआ।

परपीर = चि०, ५७।

[सं० स्त्री०] (हि०) दूसरे का दुख। पराई पीडा।

परम = का० कु०, २१ २२। का० २०, २६

[वि०] (सं०) १२१ १७१। चि० ५७ ७३, १४६, १७३ १६६। म०, ६३। प्र०, २१, २२। म०, १२।

जिससे अधिक या आगे और कोई न हो। सबसे बन्कर उत्कृष्ट, सबश्रेष्ठ। मुख्य, प्रधान। आद्य, आदिम।

परम गुरु = का०, १२।

[सं० पुं०] (सं०) सबका गुरु। सर्वश्रेष्ठ। सर्वोत्तम। पाना, ईश्वर।

परम धार्मिक = चि० ६०।

[वि०] (सं०) सबश्रेष्ठ धार्मिक अत्यन्त धमबुद्धि का।

परम पिता = म० १८।

[सं० पुं०] (सं०) ईश्वर।

परमा = चि०, ५४।

[वि०] (सं०) अत्यधिक, श्रेष्ठतमा।

परमाणु = का० कु०, २६, का० ४८, ७२

[सं० पुं०] (सं०) १२५, २००, ३५२, म०, २८। स० ३३।

पृथ्वा, जन तज और वायु इन चार भूतों का बह छापे म छाया भाग पुन जिसक विभाग नहीं है। सबत। अर्थत मूल्य अणु। किगा तव का बह मूल्य भाग जिसका विभाग न है। सबता है।

परमाणु पुत्र = का० १५७।

[सं० पुं०] (सं०) परमाणुका का मूल्य। पनाभूत पर माणु।

परमात्मा = का० कु० ६ १२० ।

[सं पु०] (सं) ईश्वर ।

परमात्मा प्रभुता = का० कु०, ९४ ।

[सं श्री०] (सं) ईश्वर की मत्ता, ईश्वर की महत्ता ।

परमानन्द = का०, २८ ।

[सं पु०] (सं) सर्वोत्कृष्ट आनन्द ।

परमानन्दमय = का० कु०, १२५ ।

[वि०] (सं) परमानन्द से पूर्य ।

परमात्म्य = चि०, १९५ ।

[सं पु०] (हिं०) सर्वोत्कृष्ट सत्य । आत्मज्ञान । जीव श्रीर
ब्रह्म सर्वथा जान । काई भी उत्तम
आवश्यक वस्तु । परमाय ।

परमेश्वर = चि० १५३ ।

[सं पु०] (सं) सर्वश्रेष्ठ मत्ता भगवान् ।

परमोज्वल = का० कु०, १२५ ।

[वि०] (सं) अति स्वच्छ अति मुदर, महान् ।

परलोक् = श्री०, ५७ । का०, १५४, १६० ।

[सं पु०] (सं) दूसरा लोक । शरीर छोड़ने के बाद
मिलनेवाला लोक, मरणोपरांत आत्मा
का दूसरी स्थिति की प्राप्ति का स्थान ।

परवशता = का०, ९६ १५४ । का०, १६० श्री०,

[सं श्री०] (सं) ५७ ।

परतन्त्रता, पराधीनता, पस्मुभापक्षित्व ।

परवाह = चि०, १७१ । प्र०, २ ।

[सं श्री०] (पा०) चित्त, व्यग्रता षटका, आशका ।
ध्यान । आसरा, भरोमा ।

[सं श्री०] (हिं०) बहाना धारा में छोड़ना ।

परस = श्री० ३६ । का० ३६ । चि०, ४

[प्र० क्रि०] (हिं०) १८१ ।

स्वप्नर, छहर ।

परस्पर = का० १६४ । चि० ६२ ७३, ७५ ।

[क्रि० वि०] (सं) प्र०, ८ ।

एक साथ, आपस में ।

परसस = चि०, ११ ६८ ।

[प्रि०] (हिं०) स्वर्ग करत ह । छूटा ह ।

परसि = चि०, ४, ५, ११, ९८, १७५ ।

[क्रि०] (सं श्री०) स्पश कर, दूरार ।

परसित = चि०, ६२ ।

[वि०] (श्री० भा०) स्पश किया, छुभा हुआ ।

परा = का० कु०, ९४ ।

[सं श्री०] (सं) चार प्रकार की वाणियो म नाद-
स्वरूप वाणी । परमार्यबोध की विद्या ।
ब्रह्म विद्या ।

पराई = का०, २८६ ।

[वि०] (हिं०) दूसरे की, अन्य का । दूसरी ।

पराग = का० कु०, ३४, १०४ । का०, ११,

[सं पु०] (सं) २३, ४८, १६८ १७६, १७७, १८२,
२६२, १६१ । चि०, २, ५, ६, १५६,
१५४ १५६ । का०, ७६ । म०, ३ ।
फूलों के लगे बमरा पर जमा हुई धूल
या रज । पुष्परज, नहाने के पहले
शरीर में मलनेवाला चूर्ण । चदन ।
भ्रगराय ।

[पराग—चित्राधार का एक खड जिममे निम्ना
कित रचनाए हैं—१ अष्टमूर्ति (पृ०
(१४१ १४२), २ कल्पना मुख
(पृ० १४३-१४४), ३ मानस (पृ०
१४५), ४ आरदीय शोभा—प्रभात
(पृष्ठ १४६), रजनी (पृ० १४७),
चद (पृ० १४८), ५ रमाल मजरो
(पृ० १४९ १५०), ६ रमाल (पृ०
१५१), ७ वषा म नदी कून (पृ०
१५२), ८ उद्यान लता (पृ० १५३)
९ प्रभात कुमुम (पृ० १५४) १०
विनय (पृ० १५५), ११ आरदीय
महापूजन (पृ० १५६) १२ निमा
(पृ० १५७) १३ विदाई (चपृ०
१५८-१५९) १४ नीरद (पृ० १६०-
१६१), १५ शरद शूलिमा (पृ०
१६२), १६ मध्या तारा (पृ० १६३),
१७ चदान्य (पृ० १६४) १८
इद्रमनुष (पृ० १६५), १९ भारनेदु
प्रनाम (पृ० १६६) २० नीरद प्रेम
(पृष्ठ १६७ १६८) २१ विस्तृत
प्रेम (पृ० १७० १७१) २२ विमजज

(पृ० १७२) । इनका परिचय इनके शीषको मे दूँ। ये प्रायः इदु मे प्रकाशित हैं। पहले सस्वरण म इसमे चार रचनाएँ और धी जितमे प्राण प्यारे और प्रियतम बानन कुमुम म यत्तिचित् परिवत्तन के साथ हैं और अरुम तथा भूल चिनाधार' के 'मकरद विटु' मे ही हैं।

परिकर = का०, १७१ ।
[सं० पुं०] (सं०) पयक पलग । परिवार । समूह, झुड । अनुचर वर्ग । ककर वद, पटका ।

परिकर सा = का०, १२४ ।
[वि० पुं०] (हिं) परिकर के समान । >० 'परिकर' ।

परिचय = का०, १८, ६२, ६७ । का० कु०,
[सं० पुं०] (सं०) ६८ । का०, २७ । भ०, ११ ।

जानकारी, अभिज्ञता । पहचान । लक्षण । किसी व्यक्ति के नाम धाम गुण कर्म धादि से संबंध रखनेवाली सब या कुछ बातें जो किसी को बतलाई जाय । जान पहचान ।

[परिचय - भरना] के धारम मे दी गई चार छंदों म यह कविता है । क्या का प्राची में आभास, उसी समय जलज का जलाशय म विकास । इनका क्या परिचय, क्या संबंध या जो गगन मंडल मे आहणिया के रूप मे विलसित हुआ । रात्रि में भौरें कहीं रहे ? जब सरोवर के मध्य कमल खिना । उनका क्या परिचय और संबंध रहा पर उह मकरद मधुर मधुमय और मोहन लगा । मानस गर व बाव प्रफुल्ल कमल का साज करने मलय गिरि स मनिल रात्र चलता है । उनका क्या परिचय और क्या संबंध है जगति एक हा परिमल नित्य मिलता है ? यास्तव म रागरजित मकर एव परिमल के धान मिनन म जो परिचय और गर्भ है वही प्रम र्बंधन हमार और सुधार परिचय और गर्बंध म है । ० भरना ।]

परिवारण = म० १८ ।
[वि०] (म०) परिचया करनेवाला ।

परिसलित = का०, २६८ ।
[वि०] (सं०) घनामा हुआ हिताया हुआ ।

परिचित = का० २८ । का० कु० ७७ । का०, ८१ । भ०, ४० । प्र० ८, १०, १३, १४ । म०, १८ ।

परागमय = का० कु० ३७ ।
[वि०] (सं०) पराग से युक्त जिममे पराग हो । पराग से भरा हुआ । >० पराग' ।

पराग सी = का०, ३६ ।
[वि०] (हिं०) पराग के समान । सुगंधित मूत्रम द्रव वण । भ्रतिशय सौंदर्य एव सुकुमारता का बोधक ।

परागहि = वि०, ११ ।
[सं० पुं०] (प्र० भा०) पराग को ।

पराश्रय = का०, ५६ । वि०, ६७ । ल०, ४७ ।
[सं० पुं०] (सं०) हार, पराभव शत्रु का मात खाना । हार जाने को श्रिया का भाव ।

पराजित = का० ७ ३३ । वि०, ५ । ल० ५२,
[वि०] (म०) ७५ ।
परास्त, हाग हुआ ।

पराधीनता = ल० ७४ ।
[सं० स्त्री०] (हिं०) परवशता परतन्त्रता परमुखापत्नता ।

पराया = का० २८७ ।
[वि०] (हिं) दूसरा, धय का, जो धनना न हो । दूसरा, गर ।

पराये = का० २०६ ।
[मं० पुं०] (हिं०) दूसरे, धय ।

पराशक्ति = वि०, ७२ ।
[मं० स्त्री०] (सं०) मनोबिज दानि परा विद्या व दारा प्राप्त शक्ति धिज्ञाय शक्ति ।

परि = वि०, १४३ ।
[मं०] (सं०) एक सवृत्र जनम जो मरना व पट्टन कालर जनम निम्न धय यज्ञाना है—चारों धार धरणा सवृ धिज्ञाय दूजना दूजना ।

जाना हुआ, ज्ञात। जिसका या जिससे
परिचय हो, जिसेसे जान पहचान हो।

परिचित सा = का०, ३५।

[वि०] (हि०) पहचाना हुआ सा।

परिचित से = मा०, १६।

[वि०] (हि०) पहचाने हुए से।

परिणत = का०, २४५।

[वि०] (स०) रूपांतरित, एक रूप से दूसरे रूप में
आया हुआ। पका या पचा हुआ।

परिणति = मा०, ४६, ६२। का०, १६३। चि०,
[स०] (स०) ५४।

रूप में परिवर्तन होना, परिपाक, प्रौढ़ता
पुष्टि, समाप्ति, अंत।

परिणाम = का०, ४३, ५४, ७५, ९३। अ०, ७६।
[स०] (स०) ल०, ४४।

बदलने का भाव या काय, विकार,
रूपांतर। विकास, वृद्धि। परिपुष्टि।
समाप्त होना, बीतना। किंसा काय व
अंत से उसके फलस्वरूप होवना
काय, नसाजा, फल।

परिणाम स्थिति = प्रे०, २३।

[स०] (स०) पलप्राप्ति की अवस्था।

परिवृत्त = चि०, २५।

[वि०] (स०) हर प्रकार से सजुट। जिसका अत्यधिक
सतोष प्राप्त हो चुका हो।

परितापित = प्रे०, २२।

[वि०] (स०) दुःखी सतत, जलता हुआ।

परितोष = अ०, ६४।

[स०] (स०) सतोष, जिसके बाद सामयिक शांति
का अनुभव हो। तुष्टि।

परितोषो = का०, २७१।

[स०] (स०) (हि०) 'परितोष' का बहुवचन। 'परिताप'

परिधान = का०, ४६।

[स०] (स०) वस्त्र, पोशाक पहनावा, पहनने का वस्त्र।

परिधि = का०, ८६ ६०।

[स०] (स०) वृत्त के घेरनेवाली रेखा। नियत अथवा
नियमित और प्रायः गालाकार वह
भाग जिसपर कोई चीज चलता धूमता

या चक्कर लगाती है। परिधान।
सीमा।

परिनाम = चि० १८३।

[स०] (स०) (अ०] (अ०) देलें 'परिणाम'।

परिनीता = म०, ११।

[वि०] (अ०] (अ०) परिणीता, विवाहिता।

परिपाटी = का०, २६४।

[स०] (स०) क्रम। सिपमिला। चने आई हुई
प्रणाली। पद्धति। शली। राति। प्रथा।

परिपालक = का० ३१।

[स०] (स०) हर प्रकार से पालन करनेवाला।

परिपूर = चि० २, २३।

[वि०] (अ०] (अ०) परिपूरित, अशुद्धी तरह से भरा हुआ।
पूरण वृत्त। समाप्त किया हुआ।

परिपूरित = चि०, १८०।

[वि०] (अ०] (अ०) दे० 'परिपूर'।

परिपूर्यो = का० कु०, ५।

[वि०] (स०) दे० 'परिपूर'। पूरा या समाप्त किया
हुआ।

परिभाषा = का०, १६०, १८५।

[स०] (स०) किसी शब्द या पद का अर्थ या भाव
प्रकट करनेवाला स्पष्ट बयान।
व्याख्या। वह शब्द जो किसी शास्त्र
या विज्ञान में किसी एक कार्य या भाव
का सूचक मान लिया गया हो। जैसे,
जीव विज्ञान की परिभाषा (डेफिनिशन
टर्म)। किसी शब्द की वह व्याख्या या
स्पष्टीकरण, जिससे उसकी विवेकता
और व्याप्ति पूरी तरह से निश्चित या
स्पष्ट हो जाय।

परिमल = का०, १५, का० कु०, १७, ५७, ६६,

[स०] (स०) ८३। का०, १६८, २६१, २६२,

२६४। चि०, ५। अ० ११, २८,

३६, ४५, ५५, ५६, १५८, १७३।

मुगम, मुगंय।

परिमल घूँघट = ल०, २५।

[स०] (स०) (हि०) परिमल रूपा घूँघट। परिमल से भाव
रित। मुगधित।

परिमल परिपूरित = चि०, १७५।

[वि०] (स०) मुगधित। सुवासित। परिमल से पूरण।

परिमलपूर = चि०, ५६, ६६।

[वि०] (श० भा०) मुगधित, सुवासित। परिमल से पूरण।

परिमल परित = ऋ०, ५।

[वि०] (श० भा०) >० 'परिमलपूर'।

परिमलमयमन्यो = चि०, १३२।

[वि०] (स०) सुवासितो मे श्रेष्ठ।

परिमल मिलित = क०, २५।

[वि०] (स०) मुगधित से सना हुआ।

परिमलनाही = प्रे०, ६।

[वि०] (स०) मुगधिवाहक (बायु) (अमर)।

परिमल सा = क०, ८।

[वि०] (हि०) परिमल के समान।

परिमित = का०, २७०। ऋ०, ४१। प्रे०, १६,

[वि०] (स०) २४।

सीमित।

परिमितता = ल०, ३३।

[सं० स्त्री०] (स०) मर्यादा। सीमित होने का भाव।

परिमिलित = का० कु० ५५।

[वि०] (स०) विनोपनया मिली हुई। हर प्रकार से

मिलित।

परिरभ = शी० २७।

[सं० पु०] (स०) घालिगन, गले या छाती से लगाकर

मिलना।

परिवर्तन = क०, २८। का०, २५ ५५ १२६

[सं० पु०] (स०) १५६, १६६ १७७ १६०, २४६

२५३, २७२ २६१। चि०, ७५।

ऋ०, ५५। प्रे०, २२ म०, १७।

ल०, ४६, ७४।

विना वात अथवा युग का समाप्त या

अंत। घुमाव अक्षर। कुछ अर्थ बढ़ा

कर रूप बनना। उत्पन्न, एक मात्र

व अर्थ में एक ही मात्र सना या देना।

निनिमय तबान्ना।

परिवर्तनमय = का० २३६।

[वि०] (स०) निरंतर परिवर्तनयान।

परिवर्तनशीलता = का० १३।

[सं० पु०] (हि०) बदलने का भाव।

परिवर्तित = का०, १६१।

[वि०] (स०) बदला हुआ।

परिवर्धमान = चि०, १३२।

[वि०] (हि०) बढ़ा हुआ। बढ़ता हुआ, उत्पत्तिशील,

उत्तरोमुखी।

परिवर्द्धित = प्रे०, १।

[वि०] (स०) >० 'परिवर्धमान'।

परिवार = का० कु० ११५। का०, २१६।

[सं० पु०] (स०) कुटुंब। श्रावण। म्यान। कोप। बिना

राजा या रईस के साथ उसे घेरकर

चलनेवाले लोग, पारिवर्त। घर के लोग,

वश, खानदान, बाल बच्चे। एक ही तरह

की वस्तुओं का वग। कुल। जाति।

परिवारी = ल०, ७८।

[वि०] (स०) परिवारवाला।

परिवेष्टित = चि०, १४५।

[वि०] (स०) घिरा हुआ। मुशोभित।

परिश्रम = का० पु० १३। का०, ६३, १८२।

[सं० पु०] (स०) ऋ० २६। प्रे० ७।

ऐसा काम जिस करते करते थकावट

अनंत लग। श्रम। महन। थकावट।

परिषद = ल०, १२।

[सं० स्त्री०] (हि०) विद्वान् ब्राह्मणों की व मवमाय मभाएँ

जिन प्राचीन वात में राजा विना

विषय पर व्यंग्या दन व नियं सुरता

था। मभा समाज। चुने हुए या नियुक्त

विग हुए सभ्या का सभाएँ।

परिस्थितियों = का० २८६।

[सं० स्त्री०] (हि०) विना अन्ना वाय अन्नि व धानपान

या चारा घार का वास्तविक या तर्क

मगत स्थिति या अर्थस्था। व बातें या

अर्थस्था जो विना व्यक्ति या अन्ना व

चारा घार हाती या रन्ना हैं।

परिहास = का० ६८ ऋ०, ३३।

[सं० पु०] (स०) हँसो, निन्दना। शर्या, शरु। निन्ना।

उपहास, व्यंग्य।

- परिहासपूर्ण = का०, २८३।
 [वि०] (स०) परिहास से भरा हुआ। व्यंग्यपूर्ण।
- परिहास भरी = का०, ६६।
 [वि०] (हि०) दे० 'परिहासपूर्ण'।
- परिहासशील = ल०, ६८।
 [वि०] (स०) परिहास करने के स्वभाववाला।
- परित्राण = का०, १८५, १८६।
 [म० पु०] (स०) रक्षा।
- परीक्षक = प्रे०, २१।
 [स० पु०] (स०) परखनेवाला। परीक्षा लेनेवाला।
- परीक्षा = ऋ०, ५३।
 [म० पु०] (स०) दृष्टव्य। योग्यता, विनोयता। सामर्थ्य। गुण आदि जानने के लिए अच्छी तरह से देखने या परखने का क्रिया का भाव। समीक्षा। वह प्रयोग जो कृत्वी वस्तु के गुण दोष आदि का अनुभव करने के लिये हो, आजमाइश। वह प्रक्रिया जिसमें प्राचीन पाठालय किमी अभियुक्त श्रवण साक्षी के सच्चे या झूठे होने का पता लगाने के लिये जाँच पड़ताल, दखलाल।
- परे = का० कु०, ६४। का०, ११७, २१६।
 [म०] (स०) वि० १५, ६५, १५३, १५६, १८४।
 अलग। उम घोर, उपर दूर। ऊपर। भागे, बाद।
- परै = चि०, १६, २२, २३, २४।
 [क्रि०] (प्र० भा०) पड़े, गिरे।
- पर्जन्य = का० कु०, ११२।
 [म० पु०] (म०) बादल, मेघ।
- पर्ण = प्रे०, १०।
 [स० पु०] (म०) पत्ता, पात।
- पर्णकुटीर = का० कु०, १७, ६६, १००, १०१।
 [म० पु०] (म०) प्रे०, ४।
 पत्तों से बनी कुटीर। कोपडा।
- पर्णमय = का०, १४६।
 [वि०] (स०) पत्तों से ढरा हुआ। पत्ता का बना हुआ।

- पर्दा = ऋ०, ४५।
 [स० पु०] (हि०) पट, आवरण। भिल्ली। दरवाजे पर लटकाना जानेवाला वस्त्र।
- पर्यटन = चि०, ३०।
 [स० पु०] (म०) भ्रमण। घूमना फिरना। देखाटन।
- पर्याप्त = का० कु० १११।
 [वि०] (स०) अधिक काफी। काम भर। आवश्यकता पूर्ति के अनुरूप।
- पर्श = श्रि०, २४, प्रे०, ८।
 [स० पु०] (म०) उरगव। चातुर्मास्य। श्रवण का विभाग या पंड। (मौ०)। व्रत।
- पर्वत = म०, २२।
 [स० पु०] पहाड़।
- पल = प्रा०, २३, ८७। का० ८४, १३५,
 [स० पु०] (स०) १६०, १६१, १६२, २१३, २६०।
 ल०, ४६।
 समय का एक सूक्ष्म भाग जो २४ सर्वेड के बराबर होता है। क्षण। तराजू। एक पुरानो तौल का।
- पलक = श्रि०, ३२। का० कु०, ६२। का०,
 [स० स्त्री०] (म०) १२०, १७७। ऋ०, ३१। ल०, ४७।
 श्राल व ऊपर व चमड़े का परदा।
- पलकन = चि०, ८, ७२।
 (प्र० भा०) पलक का बहवचन।
- पलकों = श्रि०, ११, ४७, ७१। का०, २८६।
 [म० स्त्री०] (हि०) ल०, ४७।
 पलक का बहवचन।
- पलने = ल०, ७४।
 [क्रि०] (हि०) पाल पोसकर बड़ा करना।
 [स० पु०] बच्चे को मुनानेवाला झूना, पालना।
- पल पल = का०, ३३, ५४, १३६, १६५।
 [म०] (हि०) प्रति क्षण।
- पलित = का०, कु०, १०६। का० १८०, २४३।
 [वि०] (हि०) चि०, १०१।
 पानी गई। जिमका पालन किया गया हो।
- पल्लव = श्रि०, ५४। का० १२७, २१०,
 [स० पु०] (स०) २४६, २८१। ल०, ४०।

- कोपत । नया निक्ता ह्या कोमल
पता । ह्या मे पहने का कगन ।
- पल्लवित = वा० कु०, ३४ चि०, १४६, १५० ।
[वि०] (सं०) हरा भरा, नयी कोपता मे युक्त हरा
भरा । जिसे रोमाच हुआ हो ।
- पन्न = वा०, ८ ६ १४ १५ । वा० कु०,
[सं० पु०] (सं०) ६ ४० ४६, ५०, ५५, ६६ । का०,
१५, १७, १६, २४ २८ २६, ३४
४६, ४८, ८८, ८६, १०६, ११०
११२, १२०, १६८, १८०, २५७
२५६ २६० । जि० १५, २३, ६६
६३, १५८ । ऋ०, ३३, ५२ । प्र,
१० ११, १४ । म०, ७ ११ १८,
१६ ।
वायु । चलनी हुई हवा श्वाम । प्राण ।
- पवन कठ = ऋ ५१ ।
[सं० पु०] (सं०) पवन रूपी कठ । प्राण कठ ।
- पवन तावित = वा० कु० २८ ४२ ६३ १०० ।
[वि०] (हिं०) वायु मे सताया हुआ । जिम पाला
मार जाय ।
- पवन परिमल परिपूरित = ऋ०, ४८ ।
[वि०] (सं०) गुनधिनाह । पवन ।
- पवन वेग = वा०, २५७ ।
[सं० पु०] (सं०) वायु की तेजी । हवा की गति ।
- पवन सस्तुति = वा० कु० ७४ ।
[सं० श्री०] (सं०) वायुस्था ममार । वायु का चरना ।
- पवन सा = वा० कु० १६, ७३ ।
[वि०] (हिं०) हवा व समान ।
- पवनट्ट = चि० १ ।
[सं०] (प्र० भा०) पवन का । पवन भी ।
- पवनों = वा० १८० ।
[सं० पु०] (हिं०) पवन का बहुवचन । पवन ४८ प्रकार
व हाउ हैं ।
- पयमान = वा० ३, २५, २७ ।
[सं० पु०] (सं०) हवा । वायु । क्षीया ।
- पवि = वा० कु०, ३१ ।
[सं० पु०] (सं०) ६८ वा वय या दक्षिण का हट्टी म
बना पा ।
- पवित्र = का० कु०, ११६, १२५ । का०, २४७,
[वि०] (सं०) चि०, ५६ । ऋ०, १६, २० । प्र०,
४ १६ म०, १७६ ।
निमल, स्वच्छ । शुद्ध । शुचि ।
- पवित्रता = ल० ७६ ।
[सं० श्री०] (हिं०) शुचिता । निर्मलता ।
- पश्चिम = वा० ४६ १४२ । चि०, २८, १०१,
[सं० पु०] (सं०) १६३ । ऋ० २१ । म० ७, ल०, ५६,
५० ।
पूव के सामने की दिशा । सूर्य के प्रस्त
होने का दिशा ।
- पश्चिम जलवि = ल० ७२ ।
[सं० पु०] (सं०) पश्चिम का मागर ।
- पश्चिमहि = चि०, २८ ।
[सं० पु०] (प्र० भा०) पश्चिम म । पश्चिम की ।
- पशु = का० कु० १६, २१, २२ २४ । वा०,
[सं० पु०] (सं०) ८४, ८५ १११, ११६ १५७ ।
चीपाया । जानवर ।
- पशुओं = वा० १७ ।
[सं० पु०] (हिं०) पशु वा बहुवचन ।
- पशुपति = चि० ७३ ।
[सं० पु०] (सं०) शिव । महादेव ।
- पशु सा = वा०, १५१ ।
[वि०] (हिं०) जानवर के ममान ।
- पशुद्वे = चि०, ६३ ।
[प्र० भा०] जानवर भा ।
- पसार = वा० १६० ।
[पु०] (हिं०) प्रसार पत्राव । पत्रान ।
- पसारकर = ल०, ७० ।
[पूव० त्रि] (हिं०) पत्राकर ।
- पसारत = चि०, १४१ ।
[प्र०] (प्र० भा०) पत्राना है ।
- पसारा = वा० कु० ८६ ।
[त्रि०] (हिं) पत्राया ।
- पसार = चि० २३, ४० ।
[पूव० त्रि०] (प्र० भा०) पत्राकर ।
- पसारिक = चि० १६० १७२ ।
[पूव० त्रि०] (प्र० भा०) पत्राकर । प्रसारित कर ।

पसारित = चि० ५७ १२१।
[वि०] (ब्र० भा०) प्रसारित, फनाया हुआ।

पसारे = चि०, १५३।
[क्रि०] (हि०) फैलाये।

पहचान = क०, २८। वा० ४ १६४, १८२,
[म० स्त्री०] (हि०) २२२, २८५। चि०, ३८, १५६,
१७६, १७७। ल०, १०। प्रे०, २२।
निर्मा का गुण, मूल्य या वाग्म्यता जानने
की क्रिया का भाव। परिचय। निश्चय
विज्ञान। परखने की शक्ति।

पहचानने = क०, २८। वा० ८५ २६५।
[क्रि० वि०] (हि०) किसी वा गुण मूल्य या वाग्म्यता
जानने।

पहचानी सी = वा०, ४।
[वि०] (हि०) जानी बूझी सी।

पहन = क०, १३।
[पूरव० क्रि०] (हि०) शरीर पर धारण कर।

पहनते = ल०, ७७।
[क्रि०] (हि०) शरीर पर धारण करने।

पहनना = क०, १०। वा० कु०, ३६। वा०,
[क्रि०] (हि०) ६८। ल०, १८ ७८।
शरीर पर धारण करना।

पहनाते = श्रा०, ३७।
[क्रि०] (हि०) शरीर पर धारण कराते।

पहने = श्रा०, ६०। वा०, १२१, १५२।
[क्रि०] (हि०) ल०, ३७।
शरीर पर धारण किए।

पहर = वा०, ४१। प्रे०, १२।
[सं० पुं०] (हि०) पूर जिन का आठवाँ भाग, तीन घंटे
वा समय।

पहरा = श्रा० ३१। वा० ६३, ७०।
[सं० पुं०] (हि०) पहर का बह्वचन।

पहल = क०, ७३।
[म० पुं०] (पा०) बगन। पत्तल। पृष्ठ। जमा हुई रुद्र
धधवा कन। किसी धन वप्राध का
महल। तह।

पहला = का० ३१, ७२, १६३।
[वि० पुं०] (हि०) प्रथम। आरम्भ वा।

पहली = वा० कु०, ७३। का०, ५ ४७। ल०,
[वि० स्त्री०] (हि०) ७३।
द० पटना। आरम्भ की।

पहले = श्रा०, १७। क०, ६, १६, २५। वा०,
[वि०] (हि०) कु०, ११६, ११७। वा०, १०६,
१६७, चि०, १०१ १६०। प्रे० ७,
२०। १७७।
पूव। प्रथम ही।

पहाड़ी = वा० कु०, ६६।
[वि०] (हि०) पहाड़ पर रहनेवाला। पहाड़ का।

पहाड़ी रागिनी = क०, ५२।
[सं० स्त्री०] (हि०) पहाड़ पर के लागे का गत। पवत
वा प्राकृतिक समीत। एक रागिनी
का नाम।

पहिरतही = चि०, ७५।
(ब्र० भा०) पहनने ही।

पहिराई = चि० ७१।
[पूरव० क्रि०] (ब्र० भा०) पहनाकर।

पहिरावत = चि०, ४२।
[क्रि०] (ब्र० भा०) पहिनाता है। पाशाव पहिनाता है।

पहिरावही = चि०, ७०।
[क्रि०] (ब्र० भा०) पहिनाते हैं।

पहिरि = चि० ७०।
[पूरव० वि०] (ब्र० भा०) पहनकर।

पहिले = चि०, १०१। ल०, १०।
[वि०] (हि०) द० पहल।

पहुँच, पहुँचकर = वा०, ८४, २०१, २७६। ल०, ६६,
[पूरव० क्रि०] (हि०) एक स्थान से चलकर दूसरे स्थान
पर आकर।

पहुँचा = वा०, २६१। प्रे० १५। म०, १५।
[क्रि०] (हि०) ल० १७ ७२।
बनाइ। बाह। पहुँचना क्रिया वा नून
कात्रिक पुनिग रूप। आ गया। किसी
जगह उपस्थित हुआ।

पहुँचाना = का, ७७। प्र०, १६।

[क्रि० सं० (हि०)] एक स्थान से दूसरे स्थान पर लाना।

पहुँची = का० १८२ २१३, २१४। चि०, [क्रि०] (हि०) ५८।

पहुँचाना का भूतकालिक स्त्रीलिंग रूप।
कलाई पर पहनने का एक गहना।
युद्ध में कलाई पर पहना जानवाला एक आवरण।

पहेली = का० २११ २२६।

[सं० स्त्री०] (हि०) धुमाव फिराव की बात। समस्या।
बुझीवल। ऐसी जटिल बात जो जदी
निमी क समझ न आवे।

पहेली सा = का० ४६।

[चि०] (हि०) बुझीवल के समान जटिल।

पाडव = चि० ४८। का० कु०, ११२, ११३।

[सं० पुं०] (म०) राजा पाहु के पुत्र।

पाडवहिं = चि० ४१।

[सं० पुं०] (ब्र० भा०) पाडवों की।

पाडित्य = म० १४।

[सं० पुं०] (सं०) पडिताइ प्रवाणता। विद्वता।

पाँसे = का० ३५।

[मं० पुं०] (हि०) पत्नी के पर, डने या पस।

पाँव = चि० ६३।

[चि०] (हि०) चार क बाद (सरया)।

पाँति = चि०, २८।

[सं० स्त्री०] (हि०) पक्ति। रेखा। लाइन।

पा = का० १७।

[पू० क्रि०] (हि०) प्राप्त कर।

पाईबाग = म० ५१।

[सं० पुं०] (फा०) महली म चारो आर बना हुआ
बगीचा या छाया बाग जिसमें राजा के
परिवार की स्त्रियाँ रहती हैं। अतः पुर
का उपवन।

[पाईबाग—] 'करना' म पृष्ठ ५१ पर सकलित
कविता। वसंत की आशा पाकर वृद्धा
ने सरना के पाले बागज पर (सरसा
पनभू के समय खिलनी है और बागज
का अर्थ है घरता) अपना पता को मुग्ना
कर गिरा दिया। य वृद्ध कामल
किमलय खिन्ने का सठे सठे परिमला

पूरित पवन के गले मिलने की राह
देखते रहे। अतल जीवनसिंधु म
जीवन की बाजी लगाकर दुश्मनी लगाने
के लिये कोई राजी नहीं हा सकता
यदि अपना गला सजाने के लिय
बाधित मुक्ता का प्राप्ति सागर स न
हो। इस तरह नाहक मरने के लिय
कोई तयार नहीं हो समता। जस पनभूड
के बाद मलयानिल आता है वसे ही
तुम आकर मरे गले लगोगे। मरे गुलाब
की यह उजड़ी बयारी फिर विकसेगी।
फिर तुम्ह चहलकदमी करने दे लिये
काँटा का ध्यान न रह जाएगा और
मरे मन को आकर तुम अपना पाई
बाग बनाकर फ्रीडा करोग।]

पाई = का०, १३२।

[क्रि०] (हि०) पाना। प्राप्त किया।

[पाई आँच सुरत की—] सवप्रथम डडु कला ५,
किरण ५, मई १९१४ मे प्रकाशित
तथा चित्राघार मे पृष्ठ १८० पर
सकलित। जब पात पात दुख की आह
उठनी है तब सारा धम नष्ट हो जाता
है। कस शात होऊ। तब तुम्हारी
शरणा छोड और कही ठिकाना नहीं।
ऐसी स्थिति मे तुम मुट मोडे हुए हो।
विसकी वसम खाकर रोज। मेरी आह
तीनी लोको मे छा गई है तेरी वृषा
से ही वह मिट सकनी है। मेर दुख से
मरा हृदय जिसपर तुम्हारा आसन
है काँप उठा है फिर भी तुम एस
अचल हा गए हो कि रचक भा दया
नहीं दिला रहे हो।]

पाऊँ = ग्रा०, ६८।

[क्रि०] (हि०) प्राप्त करू।

पाऊँगा = ग्रा०, ४३।

[क्रि०] (हि०) 'पाना' का भविष्यकालिक रूप।

पाऊँगी = का० २१२।

[क्रि०] (हि०) 'पाना' क्रिया का भविष्यकालिक
स्त्रीलिंग रूप।

- पाश्रो = का०, १३० ।
 [क्रि०] (हि०) प्राप्त करो ।
 पाश्रोणे = आ०, ५१ । वा० १३०
 [क्रि०] (हि०) प्राप्त करोगे ।
 पाक = का०, ३२ ।
 [सं० पुं०] (मं०) भोजन बनाने की क्रिया । पकाने की क्रिया । आढ, यनादि के हतु बनाई गई खीर या अन्न भोज्य पदार्थ ।
 [वि०] (वा०) शुद्ध । जिसका कोई अश शेष न हो । स्वच्छ साफ ।
 पाकर = आ० १५ ६०, ६२ । वा० कु०, २२, [क्रि०] (हि०) ३३ ३४ ६१, ६२, ६३, ६८ । का०, ११८, १३४ । ऋ०, २१, २३, ४२, ५१ ।
 'पाना' क्रिया का पूर्वकालिक रूप ।
 पागड = क०, १० । वा० ४८ ।
 [सं० पुं०] (हि०) देवविग्रह आचरण । आडवर । धृतता, चालाकी ।
 पागल = का० १२६ १५८, १७० २०१ । ल० [वि०] (स०) १७ २१, २६ ३७, ४७ ५६ ।
 जिसका दिमाग खराब हो गया हो । विक्षिप्त, नाममग्न ।
 पागो = चि० ५६ ।
 [वि०] (श्र० भा०) पगी हुई सराबोर ।
 [क्रि०] (हि०) गुड या चावा में किमा वस्तु को पागने का भाव ।
 पागे = चि० ६२ ।
 [वि०] (श्र० भा०) मरग वन तामय हुए ।
 [क्रि०] (हि०) 'पागना' का वतमानकालिक रूप ।
 पागे = चि०, ५७ ।
 [क्रि०] (श्र० भा०) 'पागना' का वतमानकालिक रूप ।
 पाग्यो = चि०, ६७ ।
 [क्रि०] (श्र० भा०) 'पागना' का भूतकालिक रूप ।
 पा जाना = क० २६ । का० कु०, ७१ ।
 [क्रि०] (हि०) प्राप्त कर लेना । गन्व्य या इष्ट तक पहुँचने का भाव ।
 पाठ = चि०, ६३ ।
 [सं० पुं०] (मं०) पढ़ने की क्रिया एक भाव ।
 पाणि भद्रमय = का०, २६७ ।

- [वि० पुं०] (हि०) हाथ, पैर से युक्त । (मनुजादृति) ।
 पात = का०, १६ । वि०, ७०, १४२, १५६, [सं० पुं०] (हि०) १७१ १८१ । ल०, २५, ३१ ।
 पते, पन । पतन । गिरना । गिराव ।
 पातकी = चि०, १५५ ।
 [वि०] (हि०) पापी, निहृष्ट ।
 पाता = क०, १४, २२ । प्रे०, १०, १३, १४ ।
 [क्रि०] (हि०) का०, २८२ । ल०, १८ ।
 प्राप्त करते ।
 पाताल = का० कु०, १२१ ।
 [सं० पुं०] (सं०) नीचे के मात लोका मे से अंतिम लोक का नाम । छद्मशास्त्र मे वह चक्र जिसस मायिक छद्म की सन्धा, लघु गुरु, कला आदि का पान हाता है ।
 पाती = आ०, ७८ । का० कु० ३६, ५४ [क्रि०] (हि०) का०, २०, १७५, २३७, २४० ।
 चि०, ७१ । प्रे०, २१ । ल०, ४६ ।
 'पाना' का वतमानकालिक रूप ।
 पाते = क०, १४, २२ । प्रे० १०, १३, १४ ।
 [क्रि०] (हि०) 'पाना' का वतमानकालिक रूप ।
 पाते थे = का० ३२ ।
 [क्रि०] (हि०) पाना का भूतकालिक रूप ।
 पात्र = आ०, २८ । वा० कु०, ७ ११५ ।
 [सं० पुं०] (सं०) ल० १७ । वा०, १३४ २२८, २७० ।
 ऋ० ३८ । न०, ७५ ।
 वट जिसमें कुछ रखा जा सक, आघार । बरतन । कुछ पाने या लेने योग्य व्यक्ति । अभिनय करनेवाला अभिनेता, नट । नाटक या उपयाम का वह व्यक्ति जिसका क्या वस्तु में कोई स्थान हो या कुछ चरित्र दिखाना गया हा ।
 पात्रमय सा = का०, १८ ।
 [वि०] (सं०) पात्र व समान ।
 पाथेय = ऋ०, ३८ । न०, ११ ।
 [सं० पुं०] (सं०) वह खाद्य पदार्थ जो रास्ते में वाय आता है । राह खच । कन्धा राशि या लन ।
 पात्र = का० कु० । २६ । का०, २५३ ।
 [सं० पुं०] (सं०) चरण, पर । मद्र, शत्रोत् । किमो वस्तु का चौपाई भाग । शिव ।

- विरण। एक ऋषि का नाम। ध्यान
वायु।
- पादप = वि०, ६६। ल०, १२।
[सं० पुं०] (सं०) वृक्ष। वेष्ट।
- पादपति सा = म० १४।
[वि०] (हिं०) चरण की पूति करने T समान।
- पान = का० कु० ३५। का०, ११७। वि०,
[सं० पुं०] (सं०) १०० ऋ०, ७७। ल० ६६।
पीना।
- पान कर्म = वि० ७३।
[क्रि०] (श्र० भा०) पीते हैं।
- पानपात्र = म० १५।
[सं० पुं०] (सं०) पीने का बर्तन। गिलास आदि।
- पाना = का० ७७ ६३ ६५, १०१ २२८
[क्रि०] (हिं०) २३०। ऋ०, ५। म०, ५।
प्राप्त करना मिलना।
- पानी = का०, ११२, २७१, २८५। वि०,
[सं० पुं०] (हिं०) १७। ल०, ५१।
जल।
- पानी सा = ऋ० ४०।
[सं० पुं०] (हिं०) पानी के सदृश।
- पाने = का० कु०, २५। का०, १२३, १५४
[क्रि०] (हिं०) १६२, १८५ १६४।
पाना क्रिया का एक रूप।
- पान्थ = का० ११६ १६३। वि०, १५०।
[सं० पुं०] (हिं०) पथिक। विधोली। विरही।
- पाप = का० कु० ११३। का०, ५ १८५,
[सं० पुं०] (सं०) १६५, २६५। वि० ३८ १८५।
ऋ० ७८।
बुरा काम। अधर्म।
- पाप घनेरे = वि० ७४।
[सं० पुं०] (श्र० भा०) घट्ट से पाप।
- पाप पुण्य = श्रा०, ७४ का० २५४।
[सं० पुं०] (सं०) सत्वाय श्रौर दुष्कार्य।
- पापन = वि० १५३।
[सं० पुं०] (श्र० भा०) पाप का बहुवचन।
- पापी = का०, २६८।
- [वि०] (सं०) पाप करनेवाला।
पामर = वि०, ६६।
[सं० पुं०] (श्र०) नीध।
पायँन = वि०, ३६।
[सं० गं०] (श्र० भा०) पर।
पाय = श्रा० ७५। का० कु०, ३५। वि०,
[श्रुं० क्रि०] (श्र० भा०) ४, ५८, ७२ १५१, १७२,
१८२।
प्राप्त करने, पाकर।
पाया = का० ३०। का० कु० ७३। का०,
[क्रि०] (हिं०) १६० १६३ १७२ २५१, २५६।
श्र० ०१ ३५ ५६।
पाना क्रिया का सामान्य भूत मे रूप।
पायो = वि० ८१८, १३ ५८ १६, ६१ ७१,
[क्रि०] (श्र० भा०) १६५।
प्राप्त किया।
पार = श्रा०, ४०। का० ३१। का० कु०, ३
[सं० पुं०] (हिं०) ८। का० ३६ १७५ १७७ २५१।
वि० ३० १५३ १८७। ऋ० ४२।
श्र० १०। ल०, ३५ ३७।
नदी या समुद्र का सामनेवाला तट।
किसी वस्तु के धाने या सामने की
घोर। अत, शिरा।
पारत = वि०, २३।
[सं० पुं०] (श्र० भा०) पारत, पारद।
[पारथ - श्र० 'अनुज'।]
पारदर्शिका = ल० ४३।
[वि०] (सं०) दूर तक देखनेवाली।
पारदर्शिनी = का०, २६२।
[वि०] (सं०) दूरदर्शिनी।
पारदर्शी = का० १७८।
[वि०] (सं०) दूरदर्शी।
पारावार = श्रा०, ४२। का०, ८। ल०, ४५,
[सं०] (सं०) ५७।
समुद्र, सागर।
पारिजात = का० कु०, १०५।
[सं० पुं०] (सं०) एक देव वृक्ष का नाम जो स्वर्ग लोग

मे इन्द्र के कानन में है। यह समुद्र
मथन के समय निकला था।
हरसिगार।

पारिजात कानन = का०, २२४।

[स० पु०] (स०) परजाता वा जगल। परजाता का
वन। हरसिगार का जगल।

पार्थ = वा० कु०, ११२, ११५, ११७, १३३।
चि०, ३५।

[स० पु०] (स०) पृथा वा पुत्र—अजुत।

[पाथ—दे० 'अजुत'।]

पार्थिव = ल०, १२।

[वि०] (स०) मिट्टी का। पृथ्वी सबधी।

[स० पु०] एक सवत्सर। मिट्टी का शिवालिंग।

पार्श्व = का०, २७७।

[म० पु०] (स०) शरार के बगला व नीचे का भाग जहाँ
पसलिया है। टेगी चाल। बगल।
काँध।

पाल = वा० कु०, ३६।

[म० पु०] (स०) रक्षक। रक्षना। बगल का प्रसिद्ध
राजवंश। पालकी, माडा। नदू।
पोला। नाव को तार गामिनी वनान के
सिये टगा हुआ पदा।

पालक = चि०, ५, ६, ६४, ६८, ७१, ७३,
[स० पु०] (स०) ७४।

पालनेवाला। पालनहार।

पालत = चि० १०६, १५३।

[त्रि०] (हि०) पालन करता है।

पालन = भा० २२। क०, १२, १५। वा०,

[स० पु०] (स०) १११, १४७, २४३। चि०, ६०, ६६।
भोजन वस्त्र आदि दान का जानेवाला
रक्षक। भरणा पापण।

पालन को = चि०, ६४।

[त्रि० वि०] (प्र० भा०) पालने क लिये।

[पालना वनें प्रलय की लहरें—स्कंदपुराण] का
नेपथ्य गात। 'प्रसाद मयीन म उद्भूत
७ पत्ति का गात। प्रभु पर भ्रमर सद्यो
विश्रान्त हा तो उसका शृपा स प्रलय
का लहरें पालना की तरह, ज्वाला की
झाँपा शीतल बहपथन की भाँति

हो जाती हैं और विपत्ति क्षण भर भी
पास नहीं ठहरती और सुख का
साश्राव्य छा जाता है।]

पाल्यो = चि०, ५८।

[क्रि०] (प्र० भा०) पालन करो या पालन किया।

पात्रक = शा०, ३८। वा० कु०, २४। वा०,

[म० पु०] (स०) २७३। चि०, ४०।

प्रग्नि, अन्नल।

पावत = चि० ४, २२, ३०, १६६, १७२।

[त्रि०] (प्र० भा०) प्राप्त करता है।

पावन = शा० २४, ३६, ६१, १, ६८, ७४।

[वि०] (स०) वा० कु०, ६४, ६५, ६७। वा०,

१६०, २२४, २५४, २७६, २८०।

चि० १२३, १२५। अ० ७७।

पवित्र।

पात्रस = का० १७। चि० १६३। ल० ३३।

[म० पु०] (स०) वर्षा ऋतु।

[पात्रस—इदु] वना २ विरण २, भाद्रपद
१८६७ वि० म प्रकाशित और चित्राधार
में सकलित। पावस में कदव पर बड़ी
मालती लता का सुपमा के वणाना-
परात कवि धरता पर पुण, तुणा,
लता को शोभा का वणन करता है।
हरी धरती पर पावस का आसन है।
पवत पर बादलो क साथ साथ मोर
नाच रहा है। कोकिल का स्वर सगीत
के स्वर का भी मात द रहा है। पवन
सबको मद मत्त कर रहा है। पावस
का यह परपरागत वर्णन है।]

पावस काल = वा० कु०, ७५।

[स० पु०] (स०) वर्षा का समय।

पावस निर्भर = का०, २३८।

[म० पु०] (स०) बरमाता भरना।

पावसप्रभात = अ०, २५।

[स० पु०] (स०) वर्षा का सबरा।

[पावसप्रभात—'भरना' में पृष्ठ २४, २५ पर
सकलित ऋतुजात कविता। श्रावण की
षोडशी रात में श्याम बदरा की और

पथिक के सदृश उमके गेप बा मुछ
रंड भटक रहे हैं। चापा रात म रिली
गालती पर पानो पडने स मलयानि
फिमल गया और वट्ट घस्तव्यस्त भटक
रहा है, उसे ठहरने के नये कही
स्थान ही नहीं है। कभा डाल से मुक्त
भाकाश म पपीहा का वातर धलछ
ध्वनि धनजाने ही निक्लकर धपन
प्रेमी तो प्रेम से खोजने लगती है।
तारो की मध्य मंडली बल से हा
रह रहकर चमकती और फिर लुप्त
जाता है। खाली प्याले के समान चद्रमा
घाकश मे लुप्त चुका है और राति
का अंत होनेवाला है यमोनि उमके
सौंदर्य उपकरण तो विलर गए हैं।
इसा समय ज्या ने घूषट खोलकर
भौंका और प्राची म घल्हड रूप स
टहलने लगा।]

पावस भूप = वा० पु०, ५२।

[म० पु०] (स०) वर्षा ऋतु रूपी राजा।

पावस रजनी = का०, १५८।

[म० खी०] (स०) वर्षा की रात।

पावही = वि०, ५१ १०१।

[क्रि०] (प्र० भा०) प्राप्त करते हैं।

पावेगा = का०, १२४। वि०, १५५। प्र०

[क्रि०] (प्र० भा०) २५। ल०, ११।

प्राप्त करेगा।

पावै = घा०, ७७। क०, ३१। का० ११६

[क्रि०] (प्र० भा०) १३०। वि०, १५३, १६२, १८७
१६०।

प्राप्त करना, पाना।

पावैगी = प्रे०, २।

[क्रि०] (प्र० भा०) प्राप्त करेगी।

पाश = वा०, ८१।

[स० पु०] (स०) बधन, जाल।

पापाण हृदय = वि०, ७२, म०, २२।

[वि०] (स०) कठोर हृदय।

पापाणी = वा०, २६४।

[वि०] (म०) पापाणमयी।

पास = क० १३, १६, ३०। वा० कु०, ३३,

[म० पु०] (अ०) ३६, ४५, ६० ६७, ६८। वा०, १६,

३१, ३३, ३६ ४७, ५७ ६७, ८४,

८५, १६४, १६५, १६६, २१३,

२३४, २६४। वि०, ५, १६, १०७

१४७ १५७। ऋ०, ५४, ६४। प्र०,

४ २०। म० १० १७, २३।

ल०, ४४।

बगल। धार, तरफ। सामाप्य, निर

उग्र, मर्मोपता। अविचार, कब्जा।

निश्च नजदार।

पाइन = वि०, १७८।

[स० पु०] (हि०) पत्थर।

पाइन हूँ = वि०, १८४ १८६।

[म० पु०] (प्र० भा०) पत्थर को पत्थर भी।

पिंग = का० २३।

[वि०] (स०) पालापन लिये हुए लाल भूरा तामडा।

पिंगल = वा०, २०७, २६१। ल० १५ ४६।

[वि०] (स०) पीलापन लिए हुए भूरापन लिए हुए

लाल तामडा। अग्नि। छद्द शास्त्र।

पिंड = क० २२। ल०, ५६।

[स० पु०] (स०) गोल पदार्थ। ठाम गालाकार कोई

वस्तु। श्राद्ध म दिया जानेवाला वस्तु

विशेष का गोला।

पिक = घा०, १५६। वि०, १७२। वा०,

[स० खी०] (स०) २० ५७।

कोयल।

पिक पौंती = वि०, १८०।

[स० खी०] (प्र० भा०) कोयला की पक्ति।

पिकपुज = वा० कु०, १३।

[स० पु०] (स०) कोयलो का समूह या भुं ड।

पिक सा = वा०, १०१।

[वि०] (हि०) कोयल के समान मधुर ध्वनि का

वाक्य।

पिघलिहै = चि०, १७२।

[क्रि०] (ब्र० भा०) पिघलना क्रिया का भविष्यत्कालिक रूप। पिघलना। दयाद्र हागा, मेर अनुकूल बनेगा।

पिचुमारियों = चि०, १८०।

[म० स्त्री०] (ब्र० भा०) एक उपकरण या यत्र विशेष जितसे कोई श्रव पदार्थ धार या चुहारे के रूप में छोड़ा जाता है।

पिच्छल = का०, ८४। ऋ०, ८०।

[स० पु०] (स०) आकाशवत। शीशम। वासुकि के वश का एक सर्प।

[वि०] (हि०) फिमलनमयो। विच्छलनभरी।

पिच्छल सी = ल०, ७४।

[वि०] (स०) पिच्छल क ममान।

पिछडा = का०, ११।

[वि०] (हि०) पीछे छूटा हुआ। निर्बल।

पिछली = का०, ५३।

[वि०] (हि०) पिछली पाछे वाली। बीवी हुई गत वातो में अतिम। पाछे की घोर वाली।

पिछले = का०, ६३, ७०।

[वि०] (हि०) गत हुए जाने हुए।

पितहिं = मा०, ३१। चि०, ४८।

[स० पु०] (ब्र० भा०) पिता का।

पिता = का, १८ २१, २२ २४ २५, ३१,

[म० पु०] (हि०) का० कु०, ६४, ६०। का० ५१, १७६ २१०, २३०। चि०, ४१, ६१। प्र०, ८, ६ १०, २१। न० १२। बाप पुत्र पदा बरनेवाना।

पितामाता = का० कु० ७।

[स० स्त्री०] (हि०) पिता और माता। बाप और माँ।

पिधामित्र = प्रे०, १०।

[स० पु०] (हि०) पिता का मित्र।

पितु = चि०, १४१।

[स० पु०] (ब्र० भा०) पिता, बाप।

पितु मात = का० कु०, ११२।

[स० स्त्री०] (ब्र० भा०) पिता और माता।

पितु

[स० पु०] (ब्र० भा०) पिता मा।

पिन्हा = का० कु० ४४।

[क्रि०] (हि०) पहना।

पिन्हायो = चि०, ७५।

[क्रि०] (ब्र० भा०) पहनाया पहना दिया।

पिपासा = का०, २६७। चि०, ६७।

[स० स्त्री०] (स०) प्यास, तृष्णा।

प्रिय = चि० ५८।

[स० पु०] (ब्र० भा०) प्रिय, जितम प्रेम हो। 'प्रिय'।

प्रियगोद = का० कु० ६७।

[स० स्त्री०] (ब्र० भा०) प्रिय का भ्रव।

प्रिया = चि० ३४ ५८।

[म० स्त्री०] (ब्र० भा०) प्रिया। जित स्त्री व प्रति प्रेम हो, प्रयसी।

[स० पु०] पति।

प्रियारो = चि०, १६०।

[म० पु०] (ब्र० भा०) प्यारा, प्रिय।

प्रियूप = चि० १८१। ऋ०, ५७।

[स० पु०] (ब्र० भा०) अमृत।

प्रिये = का० ८। का० १२२, १२३ २२६,

[क्रि०] (ब्र० भा०) २३८। चि० १८६। ल० १६ ३७, ४३।

पिने हैं। सामान्य भूत म 'पीना' क्रिया का रूप।

प्रिये सी = का०, २८६।

[वि०] (हि०) निप हुए के ममान।

पिरोती = का०, १२६।

[क्रि०] (हि०) गूथी।

पिरोना = मा०, ७७।

[क्रि०] (हि०) गूथना। पहराना। सूई म धागा डानना।

पिलाना = का० कु०, ७८।

[क्रि०] (हि०) पाने का काम दूसर म कराना। पान कराना। पीन व लिय देना। अदर भरना।

पिशाच = क०, १८। ल०, ५७।
[स० पु०] (स०) एक निम्न योनि म उत्पन्न वीभत्स कम करनेवाला पुरुष। भूत प्रेत। राक्षस।

पिशाच सो = ल०, ७६।
[वि०] (हि०) अत्यन्त निम्न योनि म उत्पन्न क्रूर पुरुष के समान।

पिसपिसकर = वा०, २५०।
[क्रि०] (हि०) विपत्तिवा भेलकर।

पीजरा = ल०, ७१।
[स० पु०] (हि०) लोहे या बाम की तीलिया का बना वह भावा जिमम पक्ष बन् करके रख जात है।

पी = मा०, २५, ५७। चि० १६०।
[म० पु०] (हि०) क० ४८। प्र०, १४। ल० ६०। प्रिय जिसके प्रति प्रेम हा। प्रियतम।

पीऊँ = वा० १११।
[क्रि०] (हि०) पाना क्रिया एव रूप।

पीकर = मा० २८। वा०, २१६। ल० ८७।
[सू०क्रि०] (हि०) 'पाना' क्रिया वा पूर्वकालिक रूप।

[पी] कर्णों?—भरना म पृ० ४६ ५० प८ मरलन। हे प्राणघन जहा वही भा नू हा मा मिला तुम्हारा भला हा। क्याच डाल पर पगहा बोल रहा है वा कटो पी कटो। प्यास स मर रहे दान चातक व लिये प्राणघातक क्या बनना चाहत हा। हे श्याम घन तुम कटो हा। हृदयानाश म बाणल छाण है उममे बिजना वा चमन प्रकाश कर रही है। उग प्रकाश में तुम्ह दस नू तुम कटो हा। मांनू व नन् म गारा जावन दून गया है फिर भा कठ प्यामा हा है घोर जन रहा है। प्याग कम न हापर यज्ञा जा रत्ता है घोर पी कटो वा कटो कट्टर पगहा उन प्रगन्त कर रहा है।

पीये = वि० ४५।
[सू०क्रि०] (स०ना०) पाकर।

पीछा = ल०, ६६, १२४।
[स०पु०] (हि०) पीछे की ओर वा भाग। भाग का उलटा, पीठवाला हिस्सा।

पीछे = क० १४। वा० १४०, २०० २३६
[स०] (हि०) २५७ १६६ २८८, २८६। चि०, ६५ २८८।

पीठे = वा०, ६६।
[क्रि०] (हि०) पाटना क्रिया का भूतकालिक रूप। मार, प्रहार किए। चोट देकर, कसा वस्तु को चिपटा किया। किसी न किसी प्रकार स किसी वस्तु को प्राप्त कर लिया। यन् येन प्ररारेण किसी काम को समाप्त किया अथवा निपटा गया।

पीटे = क० ११। ल०, ५१।
[स०पु०] (हि०) पाना, तिहासन। शरीर मे पेट की दूसरी ओर का भाग।

पीटी = वा०, ११०।
[स०स्त्री] (हि०) बुल म वश परंपरागत बाई स्थान, पुस्त। किसी विशेष सार म हान वास्ती यातयो का समष्टि।

पीडनमय = वा०, २६६।
[वि०] (हि०) पाडित पाडा स युक्त।

पीडा = मा० १ १२ १८ ३८। वा० पु०,
[स० स्त्री०] (स०) २२ २३। वा० ११ ५८, ८३, ११६ १२१ १३३ १४३, १५२, १६४ २२३, २८३। क०, ८६। ल०, ३५ ४८, ५२।

वन्ना बाया, दन्। कष्ट तत्त्वात्। राग, व्याधि।

पीडित = क० १८। ल० १३।
[वि०] (स०) क्रिम पाटा हा व्याधन। मताया दृया। रागी, बामार।

पीत = वा० ११। चि०, ६ २६, १४३।
[वि०] (स०) पाना। नूरा।

[स० पु०] (स०) पाना रग। भूरा रग।

पीतम = चि०, ६।

[वि०] (हि०) > प्रियतम।

[सं० पु०] पति, स्वामी भर्ता।

पीत पटी = चि० १७८।

[सं० श्लो०] (सं०) पीले या भूरे रंग का रंगशाल का पदा, पाला वस्त्र।

पीता = आ०, ५८। का०, ६०, १६६, २२१।

[सं०श्लो०] (सं०) लुदी। बड़ी मानवगनी। दाग हलदी। देवदार। राल। अमगध। शालिपर्णी। अनास बेल। गोरानचन। अतास। पीला बेला। विजोरा नीबू। जग्द चमेला।

[वि०] (सं०) पीले रंगवाली।

पीतानर = प्रे०, २५।

[सं० पु०] (सं०) पाले रंग का वस्त्र। रश्मी घाता जा पूजा पाठ के समय पहनी जाता है। श्रीगृष्ण। नट, अभिनयदर्शी।

[वि०] (सं०) पीले कपड़ेवाला।

पीते = का०, १२२। ऋ०, ४६।

[क्रि०] (हि०) > 'पाना'।

पीने पीते = ऋ०, ७७।

[क्रि०] (हि०) पा पी कर।

पीन = वा० १४, १८।

[वि०] (सं०) मीन, स्थूत। पुष्ट, प्रवृद्ध, परिवर्धित। सपन भरपूर।

[सं० पु०] (सं०) स्थूलता, मोटाई।

पीना = वा०, १६, १२४। ऋ०, ८८।

[क्रि०] (हि०) द्रव पदार्थ का मुख द्वारा ग्रहण करना। पय पदार्थ का घूट घूट कर गले से उतारना। पान करना। किसान वात का दवा देना। किंगी बिचार या मनोबिचार का मन हा मन दवा देना। मह जाना बर्दाश्त कर लेना। वृद्ध भाग्य या चारी न छोड़ना। मद्यपान करना, शरापान पाना। धूम्रपान करना। मोखना या जग्द करना शापण करना।

[सं० पु०] (हि०) सीमा या तिल का सना।

पी पीकर = वा०, १८३।

[पूर्व०क्रि०] (हि०) पीत पीत।

पीय = चि०, १५२।

[सं० पु०] (हि०) > 'प्रिय'।

पीथुप श्रौत सी = वा०, १०६।

[वि०] (हि०) अमृत के सोने के समान।

पीर = वा० कु० ५८। वा०, ५१। चि०,

[सं० श्लो०] (हि०) ५५, १७६। ल०, ३७।

पीडा, दुख, दद। दूसरे की पीडा दखनर उत्पन होनेवाली व्यथा, सरा गुभूति, करणा, हमदर्दी, दया। प्रसवकाल का पीडा।

[वि०] (वा०) वृद्ध, युज्य। सिद्ध, महारत्ना। धूत, चालाक।

[सं० पु०] परलोक का माग बतलानेवाला, मुगल मानो का धममुह।

पीरा = चि० ५७।

[सं० श्लो०] (हि०) पीडा।

[वि०] (हि०) > 'पाना'।

पीला = आ०, ३२। का०, कु०, २८। वा०,

[वि०] (हि०) १४२। ल०, ४६।

हलदी या केसर के रंग का। पीत, निस्तेज, नातिहीन।

पीलावन = का०, १४६।

[सं० पु०] (हि०) पाना होने का भाव। पीताभ। जर्दी।

पीला पीला = वा०, १४४, १८६।

[वि०] (हि०) पीला हाने का भाव।

पीले कागज = ऋ०, ५१।

[सं० पु०] (हि०) पीले रंग का कागज।

पी लेना = का० कु०, ८६।

[क्रि०] (हि०) > 'पीना'।

[पी ले प्रेम का प्याला—नामना का गात जिते विनाद और लीला आदि के नृत्य के साथ बिलास गा रहा है। प्रसाद संगीत में पृष्ठ ७६ पर सकलित ६ पत्तियों का गीत। जीवनपान न प्रेम की अमृतमयी हाली पा ले ताकि आखा में हा सृष्टि का विकास हो और मन मदमत्त हो उठे। भरि पूना का मानद मधुर मधु पा रहे है तारो की मद्यप मडनी, चद्रमा

का भग्न व्यापार भी रूपा है। विपरीत
समुद्रम यत् समुद्राणा मन्त्री १०० है।
शुं भी प्रेम का व्यापार भी यः।

पीपल = वि० ८।

[त्रि०] (त्रि०) पात है।

पीपल = का० कु० ११०।

[त्रि०] (म०) माता मीनः। तमहा। भाषी।

[म० पु०] (म०) जटा। कपुसा। एक जति का नाम।

पुज = वि० ५। ऋ० ६०। म०, १०,

[म० पु०] (म०) ३०। षी० ३८। वि० ६ ०३,
३६। प्र०, १५। म०, ४६ ४७।
ममू ११।

पुजोभूत = का० १६७ ०६६।

[त्रि०] (म०) बर्णभूत।

पुष्पालो = का० १६६।

[म० पु०] (द्वि०) मूला पाग। पान क मूग तत घोर
पनिर्मा।

पुष्पार = का० कु०, २। का० २६ १०६

[म० पु०] (द्वि०) १६० १५८ १५६, १६१ १७०
१७२, १६० ०५४ ०५६। वि०, १
३१ १०६, १०७। म० १३, ०६
३५ ३५ ३७, ४५, ५० ७३ ७७,
१७०।

विपरी का मुदाने या पुष्पारो की त्रिया
का भाव। हीक। निगा की रक्षा,
महायता या प्रतिहार आदि के लिये
मुदाना, दुर्गाई। विगा वस्तु की बहुत
अपित मीग।

पुष्परिहें = वि० १८५।

[त्रि०] (द्वि०) पुष्परिगे। १० 'पुष्पारना'।

पुष्पारत = व० २५। वि०, १७८ १७९।

[प्र० त्रि०] (द्वि०) १० 'पुष्पारना'।

पुष्पारना = का० कु० १२४। का०, २७।

[क्रि०] (द्वि०) व० २५। प्र०, १४।

नाम लकर मुलाना या आवाज देना।
ऊँचे स्वर म गवाहित करना। नाम
उच्चारण करना, नाम रटना। चिन्ता,

विचार करना। मीनता। मुदाना
अपना मुदाना। त्रियाका करना।

पुष्पार मा = का० १६१, ००५। म० १६।

[त्रि०] (द्वि०) पुष्पार के समान।

पुष्पारा = का० कु०, ७।

[त्रि०] (द्वि०) पुष्पारना त्रिया का मुदाना का रूप।
नाम लकर मुदाना या आवाज
देना। नाम त्रिया। त्रियाका करना।
अभिप्राय मनाया।

पुष्पारो = वि० ११६।

[त्रि०] (प्र० भा०) १० 'पुष्पारना'।

पुष्पारे = षी० १३।

[म० पु०] (द्वि०) पुष्पार का अर्थवत्।

पुष्पराज = वि०, ६७।

[म० पु०] (द्वि०) एक प्रकार का रत्न जो पात रंग का
होता है। पातमणि।

पुष्पारो = का० ८४।

[त्रि०] (द्वि०) मूलाका या मूल करत हुए व्याप
करना। पुष्पारना।

पुष्पलता = म० ७।

[त्रि० मी०] (द्वि०) पुष्पारना तारा। एक प्रकार का मूल
की तरह का तारकपुत्र जिसे धूमकेतु भा
कहा है।

पुष्पमर्दिता = म०, १३।

[म० पु०] (म०) मूष सरौ। हृद।

पुष्पाया = का० कु०, ६।

[त्रि०] (द्वि०) पूजा कराया। अथवा आदर या समान
कराया। किसी को दयाकर देना वस्तु
दिया।

पुष्पारी = का० कु० ६२। ऋ० ७८। प्र०

[म० पु०] (द्वि०) २०।

वह जो मन्दिर म देवता का पूजा क
लिये नियुक्त हो। पूजा करनेवाला।
किसी को उच्चमन्य मानकर उसकी
अचना, पूजा करनेवाला। उपासक।

पुष्पक = का०, ५। वि०, १५३।

[म० पु०] (म०) पोटली, गठरी।

- पुण्य = का०, ५। चि०, १५३।
 [वि०] (सं०) = पवित्र। शुभ। धार्मिक दृष्टि से शुभ फल देनेवाला।
 [सं० पु०] धर्म कार्य। परोपकार आदि का काम।
 पुण्यपुरोहित = क०, २२।
 [सं० पु०] (हिं०) पुण्य की प्राप्ति व लिये काय करानेवाला पुरोहित।
 पुण्यप्राप्य = का, ११३।
 [सं० पु०] (सं०) पुण्य द्वारा प्राप्त होनेवाला। मिलने व माग्य पुण्य या पवित्रता।
 पुण्यमयी = ल०, ३३।
 [वि०] (सं०) पुण्य म युक्त या भरा हुआ। पवित्र एवं मागलिक।
 पुतरिन = चि०, १५७।
 [सं० स्त्री०] (श०भा०) स्त्री को आहुति की पुतलियाँ या गुडिया। आँसु की पुतलियाँ।
 पुतरियो = चि०, १६०।
 [सं० स्त्री०] (हिं०) दे० 'पुतरिन'।
 पुतलियाँ = का०, २६२।
 [सं० स्त्री०] (हिं०) दे० 'पुतरिन'।
 पुतलो = श्री०, १६, का०, कु०, ३०, ७७, ६२।
 [सं० स्त्री०] (हिं०) क०, ४४। प्र०, ६, १२, १३, १८, १६, २२, २३। ल०, २८, ४६, ५४, ६०।
 छोटा पुतला, गुडिया। आँसु के बीच का काला दाग। कपटा बुनने की मशीन। नारिया की मुकुमारता एवं सुदरता म व्यवहृत होनेवाला शब्द। धोड़े के टाप का नाम जो भटक के समान निक्का हाना है।
 पुतले = का०, २५।
 [सं० पु०] (हिं०) > 'पुन-लो'।
 पुतला = का०, ७।
 [सं० पु०] (हिं०) कपड़े आदि का बना हुई मनुष्य के आकार की मूर्तियाँ।
 पुत्र = क०, ११, १६, १८, १९, २१,
 [सं० पु०] (सं०) २२, २४, २६, २८, २९, ३१, ६४।

- चि०, ३८। प्र०, ६। म०, १५।
 ल०, १२।
 वेग, पुत्र, लडका।
 क०, ११।
 पुत्र धर्मादान [सं० पु०] (सं०) पुत्र का बतलान। पुत्र का अपने हाथ से हूँ काटकर किसी देव, देवी या अथ किसी सम्मानित व्यक्ति का प्रसन्न करना या उनकी इच्छा को पूर्ति करना।

- पुत्रत्सला = ल०, ५२।
 [वि०] (सं०) पुत्र का प्यार प्रदान करनेवाली (माँ)।
 पुत्राधम = क०, २१।
 [सं० पु०] (सं०) नीच पुत्र पापी पुत्र।
 पुत्री = प्र०, २१।
 [सं० स्त्री०] (सं०) लडका। बेटा।
 पुन = का०, २६८।
 [सं०] (सं०) फिर, दूसरी बार, दोबारा। पीछे, उपरान, अनंतर।
 पुनरावर्त्तन = का०, १६१।
 [सं० पु०] (सं०) लौटकर आना। बराबर ससार में जन्म ग्रहण करना।
 पुनीत = का०, १६५। चि०, १७३। ल०, ३३।
 [वि०] (सं०) पवित्र। शुभ। मागलिक।
 पुन्य = चि०, १८४।
 [सं० पु०, वि०] (श०भा०) दे० 'पुण्य'।
 पुन्य पाप = चि०, ६६।
 [सं० पु०] (हिं०) पवित्र अपवित्र, शुभ अशुभ, मागलिक अमागलिक, धर्म अधर्म, परांपकार अपराध।
 पुर = का०, १८१। २४५।
 [सं० पु०] (सं०) नगर। घर, आभार, जैसे अत पुर। भवन, लोक। शरीर। मोथा। गुग्गुल। नक्षत्र। पुरखट या मोट। पीली कट सरैया। दुर्ग। राजि, डर।
 [वि०] (का०) भरा हुआ, पूरा। भरपूर, पूरा।
 पुरइत = श्री०, १३।
 [सं० स्त्री०] (हिं०) कमल का पत्ता। कमल।
 पुरइत पत्रों = का०, कु०, ३६।।
 [सं०] (हिं०) कमल के पत्ते।

पुरलक्ष्मी = का०, २०६।
[सं० स्त्री०] (सं०) नगर की लक्ष्मी। घर की लक्ष्मी। पुर
का साध्य या जोभा।

पुरघैया = चि०, १८२।
[सं० स्त्री०] (दश०) पूरव से बहनेवाली हवा। पूव की वायु।
पुरस्कार = चि०, ६७।

[सं० पुं०] (सं०) आगे लाने की क्रिया। धादर।
स्वीकार। वह धन या द्रव्य जो किसी
अच्छे काम के लिये सादर दिया जाय।

पुरातन = का० कु०, ६३। वा०, १८ २८६,
[वि०] (सं०) २६४।

प्राचीन पुराना जीर्ण घिसा हप्पा।
[सं० पुं०] (सं०) विष्णु का एक नाम।

पगलनना = का० ५५।
[सं० स्त्री०] (सं०) प्राचीनता, पुरानापन। जीराता,
घिसावट।

परारी = चि० १५५।
[सं० पुं०] (हिं०) पुर नामक राक्षस के शत्रु शिव
महादेव।

पश्य = का० ३ ६३ ६४ १४५ १८३
[सं० पुं०] (सं०) ५२ २८६ २६३। म० ८।
मनुष्य, नर। किसी पुस्त या पीढी का
प्रतिनिधि। साल्म मे अकर्ता तथा
असग चेतन पदाध जो प्रकृति से भिन्न
तथा उसका पूरक अग माना जाता
है। आत्मा। विष्णु। सूर्य। जीव।
परमात्मा। शिव। पुद्गल वृद्ध। पारा।
घोड़े के खड़े होने की एक स्थिति
विशेष। व्याकरण म क्रिया की एक
स्थितिविधेय। व्याकरण मे क्रिया
का एक भेद। पति। पूवज।

पुरषत्व = का० १६२।
[सं० पुं०] (सं०) पुरुषता, मर्दानगी, वीरता।

पुरुषार्थ = का०, १५।
[सं० पुं०] (सं०) पुरुष का अर्थ या प्रयोजन जिसके लिये
वह प्रयत्नशील रहता है पुरुष के
प्रयत्न का विषय या काम। पौष्प,
पराश्रम, पुस्त्व, शक्ति, सामर्थ्य।

पुरुषों = का०, ६।
[सं० पुं०] (हिं०) पूवज।

पुरोहारा = वा०, ११६, ११७।
[सं० पुं०] (सं०) जो के आटे की टिकिया जो नेपाल म
पकाई जाती थी। यज्ञ म काट काट
कर और मन्त्र पढ़ पढ़कर देवताओं की
किसी उद्देश्य से इसके टुकड़ा की ब्राह्मति
दी जाती थी। हवि, यज्ञ से बची हुई
हवि। यज्ञ मे होम की जानेवाला
वस्तु। यज्ञ भाग। सोमरस। पुरोहारा
बनाते समय वाले जानेवाले मन्त्र।

पुरोहित = का०, २७। वा०, १११, ११३, ११४,
[सं० पुं०] (सं०) २०१।

वह ब्राह्मण जो यज्ञमान के यहाँ कम
काठ के सब श्रुत्य तथा सस्कार
कराता है।

पुल = ल० ५३।
[सं० पुं०] (पा०) नदियों और नालों का पार करने के
लिये बनाया गया मार्ग, सेतु।

पुलक = वा०, १२ ८६, ११५, १६६, २८६।
[सं० पुं०] (सं०) म०, २३। ल०, ६ ३७ ४५।
प्रेम, हृष आदि के अतिरिक्त श शरीर के
रागटे खड़े होना, रोमांच। एक प्रकार
पदर या रल। खनिज पदार्थ। रलदोष।
हाथी का रातव। शराब पीने की काच
का गिलास। एव प्रकार का नद। एक
प्रकार का गेरू एक। प्रकार का भन्न,
सरसो। हस्तता। एक प्रकार की मिट्टी।
प्रकार का शरीर मे पडनेवाला बीडा।

पुलक वर = वा० कु० ७६, ६४।
[पूव० क्रि०] (हिं) पुलकना क्रिया का पूवकालिक रूप,
प्रेम, हृष आदि से प्रसन्न होकर,
पुलकित होकर।

पुलकावलि = श्रां०, ६४।
[सं० स्त्री०] (सं०) हृष या प्रेम के अतिरिक्त के कारण
प्रफुल्ल या खडी होनेवाला रोमांचली।

पुलकि = चि०, १५८।
[पूव० क्रि०] (श्र० भा०) ६० 'पुलक वर'।

पुलकित = श्रां०, ६४। का० कु०, ३, ६६।
 [वि०] (स०) का० १०, २६, ३४, ३६, ३७, ६७,
 ८३, १२७, २८६, २८८, २९०।
 चि०, ७३, १४६, १५०, १६०। भ०
 २७, ३२, ४०। प्र० ८, १२, २४।
 ल० ३२, ४०।

जिसे प्रेम या हृषातिरेक के कारण
 पुलक हुआ हो। रामाचिंत, भ्रान्तित।

पुलकित तनु = वा० कु०, ६७।
 [स० पु०] (स०) पुलकित शरीर, भ्रान्तित शरीर।

पुलिन = श्रां०, ११। व० ८। वा० १७८,
 [स० पु०] (स०) २७७। चि० ७१। म० ४। ल० ६।
 नदी का देताला तट, नदी का किनारा।
 एक वृक्ष का नाम।

पुष्टि = वा०, ११०। न०, २४।
 [स० स्त्री०] (स०) पोषण। मोटाताजापन, पीनता।
 दृढता। वात का समर्थन।

पुष्प = का० कु०, ६६। चि०, ४६।
 [म० पु०] (स०) फूल, सुमन। रजस्वला का रज। घोड़े
 का एक लक्षण। लवण। मास।

पुष्पपात्र = प्र० २।
 [स० पु०] (स०) फूला से सजाया हुआ बतन। फूल का
 डालवा।

पुष्पलावियों = वा०, १८१।
 [म० स्त्री०] (हिं०) पून चुनने या हलट्टा करनेवाला,
 मालिन।

पुष्पवती = का० २७।
 [वि०] (स०) फूलवाला, फूल से युक्त।
 [स० स्त्री०] (स०) रजस्वला स्त्री।

पुष्पाधार = म० २०।
 [स० पु०] (स०) कुसुमा पर आधारित या आधारित वस्तु
 वा 'यक्ति। वृत्त। फूला की चिंगरा।

पुष्टप = चि०, ३६।
 [स० पु०] (श्र० भा०) फूल। पुष्प।

पुष्टमी = चि०, २३, १०८।
 [स० स्त्री०] (श्र० भा०) पृथ्वी।

पूछ = का०, २०२।
 [म० स्त्री०] (हिं०) जतुषा पक्षियों आदि के शरीर के
 पीछे का एक पतला लंबा भाग। पुच्छ,
 दुम। पुच्छिला। पिछलगू।

पूछत = चि०, ३५। ल०, ३३, ५६।
 [क्रि०] (श्र० भा०) द० 'पूछना'।

पूछना = का० कु०, ६६। का०, ७७, ६१,
 [क्रि०] (हिं०) १८३, २१३। चि०, ५८, ६०।
 जानने के लिये प्रश्न करना। जिज्ञासा
 करना। खोज सबर लेना। दरियाफत
 करना। सत्कार या संमान का भाव
 प्रकट करना।

पूछने = भ० ४७।
 [क्रि०] (हिं०) 'पूछना' क्रिया का रूप।

पूछथो = चि०, ५८।
 [श्र० भा०] पूछना क्रिया का भूतकालिक रूप।

पूजत = चि०, ६१, १७७।
 [श्रि०] (श्र० भा०) पूजा करता है।

पूजता = का०, १६१।
 [क्रि०] (हिं०) द० 'पूजत'।

पूजन = वा०, १६१। चि०, १५४, २०८।
 [स० पु०] (स०) देवता या पूजा सेवा आदि करना।
 अचन। आदर समान।

पूज्य = क० २६। ल० ७६।
 [वि०] (स०) श्रेष्ठ, पूजन योग्य। आनेकवनीय। आदर-
 योग्य, सम्मान के योग्य।

पूजा = श्रां०, ६८। का०, १६१। चि०, १०५।
 [स० पु०] (स०) प्र०, २०।

बहु बाव जो इश्वर या देवी-देवता को
 प्रसन्न करने के लिये, श्रद्धा भक्ति करने
 के लिये किया जाय। खातिर, सत्कार।
 किसी को प्रसन्न करने के लिये कुछ
 देना। दंड, सजा।

पूजित = चि०, ६०१।
 [वि०] (स०) पूजा गया। जिसकी पूजा हुई हो।
पतरी = चि०, २।

[सं० श्री०] (प्र० भा०) गुतलिया, गुताली, घाँव न बाव बा
बाला दाग । गुदिया, गुताली ।

पूरन = वि० ४२, ११६, १६८, १७७ ।

[सं० पु०] (हि०) पूरा करने या भरने की क्रिया का भाव ।
समाप्त करना । पूर्ण करना ।

पूरय = वि०, १५६, १७० १७१ ।

[सं० पु०] (हि०) यह दिशा जिसमें गुप निष्कृता है ।
पूर्व प्रांत ।

पूरा = क०, ३१ । का० कु०, १५ । का०

[वि०] (हि०) १६३ । प्र०, ६, १२ । ल०, १३, ३५ ।

जो खाली न हो भरा हुआ । परि
पूर्ण । सम्पन्न साध, सम्पन्न । जिसमें

कोई छुट्टि या खोर बगर न हो । पूर्ण ।
भरपूर, यथेष्ट, काफी ।

पूरि = वि० ५, २३, २८, १०६ ।

[वि०] (प्र० भा०) पूरा किया हुआ । पत्थिपूर्ण । गुणा
रिया हुआ । गुणित ।

पूरित = प्रा०, ३५ । का०, ११, ६६, १६४

[वि०] (हि०) २४६, २५२ । वि०, ७२, १४६

१७५ । ल०, १४६ ।

पूरा किया हुआ । परिपूर्णा । गुणा किया
हुआ ।

पूरी = का०, ११४, १३१, १७८, २७२ ।

[सं० श्री०] (हि०) प्र०, २३ ।

खोलते हुए घा म छानकर बनाया हुआ
रोटी की तरह का एक प्रसिद्ध खाद्य ।

मूदग, तबला ढाल आदि न मुह पर
मढा हुआ गोल चमडा या जगपर लगा

हुए गान काली टिकवा ।

पूरो = वि० ४४ १४३, १५५ ।

[वि०] (प्र० भा०) > 'पूर्ण' ।

[क्रि०] (प्र० भा०) पूर्ण किया, पूरा किया सपन किया ।

पूर्ण = क०, ८ ६, २६ । का० कु०, २ ५२,

[वि०] (सं०) ५३, ८०, ६३ ६४ १०६ १२०

१२२ । का०, १०, ४७, ५८, १६२,

१६३, २४२, २६४, २६० । क० ४७,

५४, ६३ । प्र० १२ १५ । म०, २,

८, १६ । ल०, २२ ।

जा मव हृत्पिंयां स पूरा हो । और सपन

सम्पन्न तथा बाव भाँव न लिय जिन्की

की चनेछान रगता है । मृत, घातकाम ।
भरपूर, सम्पन्न । गिष्ट सम्पन्न । जा काम

पूरा हो चुका है । सम्पन्न ।

पूर्णकाम = का० कु० ५८ । का०, १६० ।

[वि०] (सं०) जिसकी मव कामना पूर्ण हो चुका है ।

पूर्णचंद्र = प्र०, १५ ।

[सं० पु०] (सं०) पूर्णिमा का चंद्रमा ।

पूर्णता = का०, १२३ १६३ ।

[सं० पु०] (हि०) सब प्रकार से पूर्ण होने का अवस्था
या भाव ।

पूर्णाहुति = का०, १३ ।

[सं० श्री०] (सं०) यग या हाम समाप्त होने पर यज्ञ म
दी जानेरगता ब्राह्मि । विना बाव

की समाप्ति के समय हानबाला संतिस
वृत्त्य ।

पूर्णिमा = प्रा०, ३३ । का० कु० ८ १७ ।

[सं० श्री०] (सं०) चांद्र मान के शुक्ल पक्ष की अंतिम
तिथि जिसमें चंद्रमा अपनी सब

कलाभी से मुक्त होकर पूरा दिखाई
देता है ।

[पूर्तिपियूप - मवप्रथम माघुरी वर्ष ५, रौंड १

सख्या ३ मन् १९२६-२७ मे पूर्ति

पियूप शापन के अंतगत प्रेम की प्रतीत

उर उज्जी सुखाई सुख' प्रकाशित ।

चित्राधार म यह छ' पू० १८२ पर

मकरदंदिदु व अंतगत मकलित है । लगता

है कि यह समस्यापूर्ति की रचना है ।

प्रेम के प्रति विश्वास हृदय म उपजा

जिसस सुख मिला । हम भूलकर भी

काम का छ'वना न सम्भना । प्रेम क

पतग उडान मे मनमाहन स खीच

राच और काट पेंच कोन करे बनेकि

उसका डार उ हान दोल दी है । चाहे

हम प्राँतें खोलें चाहे बंद करें एक

जसो उनका छवि छाई रहता है

और भरी हुई प्राँतें उनने रूपसुधा

के पान के लिये प्यासा रहता है। उनसे मिलन और विरह ग्रय दोनों में कोई भेद नहीं रहा है। चाहे मान का भाँति विद्युत् न हो या पतंग की भाँति मिलन।]

पूर्व = का० कु०, १०, ४६। का०, ८६, १६१।

[सं० पु०] (सं०) चि०, ३६, ६०। ऋ०, ४३।

वह दिशा जिधर मूय उदित होता है। पश्चिम के सामने का दिशा।

[वि०] (सं०) जो पहले हुआ है। पहल का। पहले से होनेवाला। प्राचीन, पुराना। पाछे का।

पूर्वज गन = चि०, ५८।

[सं० पु०] (सं० भा०) पूव पुण्या का समुदाय।

पूपा = का०, २५।

[सं० स्त्री०] (सं०) मूय। ह्योग में दाहिने वान की नाडी।

[पूपा—ऋषदिक दवता जो सपूण चराचर का स्वामी माना गया है तथा बकरो व रथ का उत्तम मारपी। रात्रि उमका माँ और ऊया इसकी बहन मानी गई है। उनसे इससे प्रेमयाचना भा की यो और दवतामा न उनकी कामविह्वलता दल मूर्ध से उमकी शादा करा दी। यह पृथ्वी और आकाश के बीच मदैव घूमना रहता है और मृत व्यक्तिया का अपने पितरा तक पहुचाने तथा पथिका के सरक्षण का दवता है। नक्षत्र यज्ञ कर ववस्वत मन्त्रर म इन उत्पन्न किया।]

पृथासुत = का० कु० ११४।

[सं० पु०] (सं०) पाथ, अतुन।

पृष्ट = चि०, २२।

[सं० पु०] (सं०) पिथना भाग।

पँगों = का०, १६५।

[सं० स्त्री०] (हिं०) पँग मारना। हिंडाले का दोनों ओर स झुलाने का भाव। पँग का बटुवचन।

पेट = का०, १८०।

[सं० पु०] (हिं०) शरीर में छाती के नीचे का वह अंग

जिमम पहुचकर भोजन पचना है। उदर।

पेय = ऋ०, ४७।

[वि०] (सं०) पीने योग्य या पाने का (वस्तु)।

पेश = प्र० १४।

[त्रि० वि०] (पा०) सामने, प्राग, सम्मुख।

पेशोला = ल०, ५६ ५८।

उदयपुर की पिछोला झील जिसका निर्माण महाराणा लाला के समय म हुआ था।

[पेशोला की प्रतिध्वनि—लहर म पू० ५६ स ५८ तक मकलित अतुकान कविता।

जो भूमि महसू करा स अगरे आहृतिया लुटता रहा वह विकल विवतना स और विरल प्रवतनों म नत है। पशोला जीवनविहीन सा है और दग्य और अयसाद का जीवन यहा व्यतीत निया जा रहा है। दुदुभी, मृदग, तूग सभी शात हैं। फिर भा आकाश म यह आवाज गूज रही है। कौन। अविचलित वच्य की भाति कौन जीवित व्यक्ति अविचलित ऊर्धी छाती कर यह कह कि मेवाड म जीवन है और अरावली के समान बोल, जिसका सिर उठना है। अर। काइ तो बालो। क्या तुम मर मर गण हो। इस धने अचकार मे भवाड की सास इस आशा पर अटकी है कि काई न कोई पतवार घाम लगा। आज भी पशोला की भात म वही श द गूजता है कि यह वहा प्रताप का गौरव शाली भवाड है नितु आहृत क लिये और उमका रक्षा क लिये कोई प्रति ध्वनि नहीं मुनाई पडता। द० 'लहर']]

पै = चि०, १४३ १५५, १५७।

[अ०] (सं० भा०) ऊपर।

पैठ = का०, १५०।

[सका स्त्री०] (सं० भा०) पटने या घुमने की क्रिया का भाव। प्रवच। दखल, गति, पहुच।

पैतृक-रक्तप्रवाहपूर्व = का० कु०, १२० ।
[वि० पु०] (सं०) पूजना के रक्त की भोजस्वितता स पूण ।

पैनी = ल०, ४६ ।
[वि० स्त्री०] (हि०) सीमा, लीग, तेज ।

पैर = का० कु०, १२ । का०, ५१, १६७ ।
[सं० पु०] (हि०) पांव, शरीर का वह भंग जगस प्राणी खड़े होत और चलन फिरत है ।

पैरो = का०, १४ । का० १७०, २३३ । प्र०,
[सं० पु०] (हि०) १५ । म०, २ ।
पर का बहुवचन ।

[पैरां के नीचे जलधर—ध्रुवस्वामिनी म मंदाविनी द्वारा गाया गया गीत । सामंत कुमारो के भाग घाग गाती हुई वह चलती है । प्रसाद सगत म पू० १२० पर सक्लित । परां के नीचे विजली और वादल हा तथा सबडा भरनो व सोत सवीण रास्तो पर वह रहे हा । तूफान चल रहा हो । वृद्ध रास्ता रोक रहे हा तब भी गारपय व भयक पथिन की भाँत सब भेलकर ऊपर हा बढ़ते बनो । पृथ्वा की आला में छाया के समान तुम बडा और भयकार को भ्रपना प्रातभा का गात स ज्वातिर्मय कर दो । बाबाभां का डुराकर, पाडा को धूल क समान उडाकर और कष्टो पर हसन हसत विजय प्राप्तकर भाग ही बढ़त जाभा । जहापर घात के फूल खिले हा, ब्यथा जहाँ तारा का तरह हो पद पद पर ताडव नृत्य हो, जहाँ पर मरे पग स १दशाए काँर रहा हो, निशा भय स चारत हो और कविता की धार पसाने की भाँति बहुता हो वहा भी सब कुछ भेल भाग ही बढ़त जाभा । वचालत मत हा । भयभीत मत बनो । प्र दन न करा । भ्रपन साहस पर विश्वास करा । भ्रपनी ज्वाला को भाप पा जागो और नालफठ की भाँत भ्रपना छाप छोड

जाभा । विश्राम और शांति का छाड ना तथा को वनल को उठन जाभा ।]

पैरें = वि०, ६१, ६४ ।
[त्रि०] (प्र०भा०) पारंगि ।

पोगे = वि० १७३ ।
[त्रि०] (प्र०भा०) पानन करे ।

पोवौ = वि०, ६८ ।
[त्रि०] (प्र०भा०) पालन करी ।

पोत = का० १७ ।
[सं० पु०] (सं०) गामन पगु या पत्ता का छोटा बच्चा । बपटा । गप या मानी बुनावट । बडा नाव, जहाज ।

पोपर = वि०, ७३ ।
[वि०] (प्र० भा०) पालन करनवाला ।

पोन = वि०, ६ ५५ ४६ ।
[सं० पु०] (प्र० भा०) पवन वायु हवा ।

पोरुप = का० ४ २०० ।
[सं० पु०] (सं०) पुरार्थ बल तागत ।

प्यार = का० ८६, १७७ १८२ २१० ।
[सं० पु०] (हि०) वि०, १४१ । ल० ६, १२, १३ ३४ ३५ ३७ ३८ ४४, ७७ ।

प्राति, प्रम, मुहुरत, स्नेह । प्रेम प्रदशन के लिय किए गए स्पग चुबनादि । 'पियार' वृद्ध विगेप, चिरोजी ।

प्यारी = वि० ७० ।
[सं० स्त्री०] (हि०) 'प्यारा' का स्त्रालिग । प्रिया । वह जिसस प्रेम किया जाय प्रेमपात्र । भ्रच्छी लगनेवाली वस्तु ।

[वि०] (हि०) का० ५१, १४४ । वि० ६, ५७, ५८, १६१ ।
प्रेमसी । प्रिय भ्रच्छी भ्रयवा सुखद (वस्तु) । जिससे प्रेम किया जाय । जिसका भ्रलग न किया जा सके ।

प्यारी प्यारी = का०, २० ।
[वि०] (हि०) भ्रगद्धी । भला लगनेवाली ।

प्यार = का० कु०, ५ ।
[सं० पु०] (हि०) प्रिय, प्रियतम ।

का० कु०, १, ४०, ६३। चि०, ६४,
७१, १७५, १६०। ऋ०, ४६, ६३।

[वि०] (हि०) प्रिय, प्यार करनेवाला, धच्छा लगनेवाला।

[प्यारे, निर्मोही होकर मत हमकी भूलना रे—
उदयन के समुद्र नतकियो द्वारा गाया
जानेवाला 'अजातशत्रु' का चार पंक्ति
का गीत। प्रसाद सगत म पृ० ४५ पर
मकलित। सदा दया का शातल जल
वरसो जिनसे हमारा हृदय मरस्थल
हरा हो। प्रेम के कटोले फूलों को
इम हृदय में फूलने दो। निर्मोहीं
होकर प्रिय हमको भुना मत दा।]

प्यारो = चि० १७६।

[स० पु०] (ब्र० भा०) जिसमें प्रेम हो।

प्याला = का० कु०, ७८। का०, १३४, २२१।

[स० पु०] (फा०) चि०, ६, २, १७५। ल०, ४२,
४५, ४७।

छोटा कटोरा। गर्भाशय। खप्पर।
जुलाहा के नरी भिगोने के पात्र।

प्याली = आ०, २१, २८, ३२, ६६। वा०,

[स० स्त्री०] (पा०) २७६।

प्याला का स्त्री लिंग। छाटी कटोरी।
पियलिया।

प्याले = आ०, ३२।

[स० पु०] (फा०) 'प्याला' का बहुवचन।

प्यास = आ० २८। वा०, २८२। ल० ६६।

[स० स्त्री०] (हि०) का० ७४ १२१, १८३, २७०। चि०,
१७१। ऋ०, ४७। म०, ४। ल०,
२१, ४२।

किसी वस्तु का पान की प्रवृत्ति या
इच्छा। जल पीने की इच्छा, तृष्णा,
पियास। किसी अप्राप्त को प्राप्त करने
का कामना।

[प्यास—भरना म पृ० ४७ ८८ पर सकलित।
इन भरा आसों को अपनी प्यासा आशा
स हमने उस दिन देखा जिससे हृदय

की दारण ज्वाला से हम पूरे व्याकुल
हो उठे। हमारी प्यास बढ़नी जा रही
थी। उन आशा ने अपने हाथ स
प्याला बढ़ाया जिससे उस क्षण चित्त
भीन हो गया। उस रागरजित पेया
को पीते पीते हम रुक गए और हमने
उनसे पूछा जिससे वह प्रमुदित हुए।
क्या तुम्हारी नशीली आशा के समान
ही इसमें नशा है। उत्तर था 'गुलाबी
हलवा सा'। मोह की स्तब्ध रात्रि में
मेरा यह प्रश्न सुनकर क्या यह सदा बनी
रहेगी वे भीन थे। चती गुलाब कटीला
था पर उसकी कली चटचटा कर
खिल उठी। उमो प्रकार जस उपा
का लाला। चांदनी म और पवन
परिमल के साथ। क्या प्राची में
बढ़ रही थी और आकाश बदन रहा
था। ऐसी ही बेला में फिर मैं व्याकुल
होकर कहा कि प्रियतम तुम्हारे कोमल
कर से प्या नशा पीना चाहता हूँ जा
उतरे ही नहो। हृदय की वह बात
नवीन कमी की भाँति ब्लौल कर हाथ
हमने कह दा और जीवन घन भी
फुल्ल मल्लिकार्जुन के समान यह बात सुन
मुसकरा दिए।]

प्यासा = का०, ७१।

[वि०] (हि०) तृषायुक्त, तृषित, जिसे प्यास लगा हो।
(शुल्लिंग)।

प्यासी = का०, १०६। चि०, १७१, १८१।

[वि०] (हि०) ल०, ४६, ४७।
जिसे प्यास लगी हो (स्त्रीलिंग)।

प्यासे = का०, २१६, २६८। चि०, ७, १७५।

[वि] (हि०) आ०, ७१।
जिसे प्यास लगी हो, तृषित। किसी
विशेष वस्तु को पाने की उल्ट लालमा
वाला। किसी वस्तु की कामना
स युक्त।

प्यासी = आ०, १०। चि० ८।

[वि०] (ब्र० भा०) प्यासा हुआ।

प्रकपन = का०, १३।
 [सं पु०] (सं०) कर्षणी। भयकर तथा तीव्र गतिवानी
 श्रांथी।
 प्रकट = का० कु०, १६, २८, ७५, ११३,
 [वि०] (सं०) ११७, १२४। का० १८, ७७, १२३,
 १३१, १६२, १८६, २१०। वि०,
 २६, ३६। ऋ०, ६५। प्र०, ५, ५१।
 म०, २।
 जो सबसे सामने हा। व्यक्त। सामने
 आया हुआ। जाहिर। आविर्भूत।
 स्पष्ट। साफ।

प्रकटित = का० कु०, १०, ३४ = १ १०४
 [वि०] (सं०) १२६। ऋ०, ७०। प्र० ६ २० २४।
 स्पष्ट अथवा साफ हुआ। प्रगट या
 व्यक्त हुआ। सामने आया हुआ।
 प्रत्यक्ष हुआ। उत्पन्न हुआ।

प्रकार = का०, ११५ ६५३।
 [मं पु०] (सं०) भेद, किस्म तरह, भति।
 [सं० स्त्री०] (हि०) चहार दीवारी परकोट।

प्रकाश = श्रा०, ६२, ७५, १ का० २०६ २४२
 [सं पु०] (सं०) २५२। वि, १४० १०५ १७०।
 ऋ० २१, ३५, ६३ ६४। क० १३,
 २५। वा०, कु०, १, २, ३४, ३६,
 ४०, १०३। का०, ३५, १२६, १५१,
 १५८, १७२, २४१ २४४। वि०, ६,
 १५२। प्र० १५। ल०, ३४, ४४।
 वह शक्ति या तत्व जिसके योग से
 वस्तुना का रूप आकाश का दिखाई
 देता है। आलोक। ज्योति। प्रकट या
 गोचर होना। अभिन्यक्ति। पुस्तक का
 खड। धूप। घाम। विकास, स्फुटन।
 ख्याति, प्रसिद्धि। खुलना। खुला
 हुआ हाना।

प्रकाश वालिके = का०, १८४।
 [सं० स्त्री०] (मं०) प्रकाश रचिणी वालिके। अर्थात् सुदर
 वालिका।

प्रकाशमय = क०, ३१। प्र० ११।
 [वि०] (सं०) प्रकाश स युक्त।

प्रकाशयुत = वि०, २२।
 [वि०] (ब्र० भा०) प्रकाशमय। प्रकाश युक्त।
 प्रकाशानुभवमूर्ति = का० कु०, ६७।
 [मं० स्त्री०] (सं०) मान घोर अनुभव वा मूत रूप।
 मान घोर अनुभव वा प्रत्यतिगरण।
 प्रनाशि = वि०, १६४, १७०।
 [वि०] (ब्र० भा०) २० 'प्रनाशी'।
 प्रनाशित = म०, १६।
 [वि०] (मं०) दीप्त, ज्वालित, चमकना हुआ। प्रकाश
 म आया हुआ। जिमसे प्रकाश निकन
 रहा हो।

प्रकाशी = वि० १६१।
 [वि०] (ब्र० भा०) प्रकाशित। चमकना हुआ। जिमम
 प्रकाश हा। प्रकाश करनेवाला।

प्रकाशै = वि०, ४६, १०७।
 [पुव० त्रि०] (ब्र० भा०) प्रकाश करे।

प्रकासि के = वि०, १४०।
 [पुव० क्रि०] (ब्र० भा०) प्रकाशित करके।

प्रकासिता = वि०, ५०।
 [वि०] (ब्र० भा०) प्रकाशित किया हुआ।

प्रकृति = क०, ७, ८, ६, १२, १३, ७२ १५६,
 [सं० स्त्री०] (सं०) १५६, १६१, १६६, १६८। का०
 कु०, ११, १३, १५, ६२, ६८, ११६।
 वा०, ७, ६, २३, २५, २८, ३३,
 ५५, ५६, ७२, ८८, ६१, ११६,
 १५१, १६४, १७१, १८५, १८६,
 १८६, १६४, १६५, १६६, १६६,
 २००, २२७, २५४, २८४, २८६,
 ३१४, ३१६। वि०, १, १०५,
 १८२। ऋ०, १६, २८, ३३। प्र०, २
 १५ १४। म० २।

वस्तु या व्यक्ति का मूलभूत स्वभाव।
 मिजाज। वह मूल शक्ति जिसन अनेक
 रूपात्मक जगत् का विवास किया है
 और जिसका रूप दृश्या म दिखाई देता
 है। बुदरत।

प्रकृति कर = म०, ८।
 [सं पु०] (सं०) प्रकृति रूपा हाथ। प्रकृति की बाह।

प्रकृति कला = प्र०, १२।

[सं खी०] (सं) प्रकृति की कला या सीढ़ी। प्रकृति के द्वारा होनेवाला वचिन्मयपूण काय।

प्रकृति कानन = का०, कु ४।

[सं पु०] (सं) प्रकृति द्वारा निर्मित कानन।

प्रकृतिकृत = का०, १६६।

[वि०] (सं) प्रकृति का निर्माण।

प्रकृति पद्मिनी = का० कु०, २।

[सं खी०] (सं) प्रकृति रूपा कमलिनी।

प्रकृति लीला = वि०, २३।

[सं खी०] (सं) प्रकृति का लाला।

प्रकृति विहार = प्र०, १५।

[सं पु०] (सं) प्रकृति का विहार।

प्रकृति सग = का० १६७।

[सं पु०] (सं) प्रकृति के साथ।

प्रसर = का०, १७, २८, १२३। म०, ४।

[वि०] (सं) सीढ़ण। सीत्र।

प्रगट = का० कु०, ५१। का०, ११४, १८६

[सं पु०] (हि०) २५७। वि०, ७०, १६६। ल० ५२। जाहिर। प्रत्यक्ष। जो सामा ही स्पष्ट साफ। आविभूत।

प्रगति = का०, ६४, ७६, ८१, १२४, १३५,

[सं खी०] (सं) १६८, २००।

भाग के मोर गति। अग्रगता। उन्नति।

प्रगतिशील = का० १६१।

[वि०] (सं) जो भाग की मोर बढ़े या उन्नतिमान (व्यक्ति, वस्तु या भाव)।

प्रगाढ = का०, ६१।

[वि०] (सं) बहुत गाढा अथवा गहरा। बहुत अधिक। कदा घना, बठार।

प्रचड = का० १८१। वि० ६६, १०६। ल०,

[वि०] (सं) ७८।

अत्यन्त तात्र तत्र। उग्र प्रसर, अग्रसर। बठिन। वगवान। अग्रसर। बहून् गरम।

[सं पु०] (सं) शकर के एक गण का नाम। सफेद कनर।

प्रच्छन्न = का० कु०, १५।

[वि०] (म०) छिपा हुआ। अव्यक्त।

प्रचार = का०, २६, १६१, २४४। ल०, १३,

[सं पु०] (सं) ५१।

किसी वस्तु या बात का निरंतर व्यवहार या उपयोग। चलन, रिवान। घोड़ों की श्रृंखला का एक रोग।

प्रचारक = का० कु० ८७।

[वि०] (सं) प्रचार करनेवाला।

प्रचार सी = का० १६१।

[वि०] (हि०) प्रचार के समान। विकसित। प्रचारित।

प्रचारिकै = वि०, १४०।

[क्रि०] (प्र भा०) प्रचार करके। प्रवर्धित करके। ललकार करके।

प्रचुर = का०, ५८, ६१, २०८। म०, ८०।

[वि०] (सं) अधिक, बहूत।

प्रखलित = का०, २१४।

[वि०] (सं) प्रदीप्त, प्रकाशित, जागृत्यमान।

प्रजा = का० कु० ६६। का०, १६६, १८६,

[सं खी०] (सं) १६५, १८४, १८५, १८६ १०० वि०, ४६, ५२, ७१, १०६। प्र०, ६। सतान, भोगद। किसी देश या राष्ट्र में रहनेवाला जनसमूह। रियाया या रंयत।

प्रजातंत्र = का०, १६३।

[सं पु०] (सं) वह शासन पद्धति जिसमें प्रजा ही समय समय पर अपने प्रतिनिधि नया प्रधान शासक चुनती है।

प्रजापत्न = का०, १०१।

[सं पु०] (सं) प्रजा का पत्न। प्रजा की धार का काय या विचार।

प्रजापति = का०, १८४ १८५, १६२, १६४।

[सं पु०] (सं) सृष्टि उत्पन्न करनेवाला। सृष्टि कला। अक्षर। मनु। सूर्य। धान। दिना, वाप। विश्वकर्मा। जमाई। एक प्रकार का पत्त। माठ संवत्सरों

मं से पौनर्वा । एव प्रकार का विवाह ।
एव वारा ।

[प्रजापति—गमन्त प्रजापति का अंग क समाप्त
सष्टा उत्तरार्धदिना वाती गव्यप्रमुग
देवता जिते परश्वत्स धीर विष्वात्मना क
रूप म भी गबोधित किया गया है ।
प्रजापति देव राक्षसा तथा दृढ वा
भी सष्टा माना गया है । मनु को गण्ड
पुराण एव महाभारत म प्रजापति क
रूप म भी सयोधित किया गया है ।
मत्स्य पुराण म प्रजापति के संबंध म
लिखा है—विश्वे प्रजानां पतयारम्भो
सोवा विनिश्चिता । हर एव कल्प
म नई सृष्टि का निर्माण करना प्रजापति
का कार्य है ।]

प्रजाशृद्ध = क०, २६ ।

[स० पु०] (म०) प्रजा का समूह ।

प्रजासृष्टि = का०, १६४ ।

[स० स्त्री०] (म०) प्रजा की सृष्टि । सृष्टि को उत्पन्न करने
का भाव ।

प्रज्ञा = ल० ३३ ।

[स० स्त्री०] (स०) बुद्धि शान । एकाग्रता । सरस्वता ।

प्रज्ञा = क० ३१ । का० १६१, २४३ ।

[स० पु०] (स०) प्रतिज्ञा, टेक । एव निश्चित तथ्य ।

प्रज्ञात = का०, २४४ । भ०, ३८ ।

[वि०] (स०) भुका हुआ, विनम्र, विनीत । विशेष
द्वय प्रदर्शित करता हुआ ।

प्रज्ञाति = का० कु०, ३ । का०, २४०, २८५ ।

[स० पु०] (स०) प्रज्ञाम, प्रज्ञापात । दञ्जत, ममन ।

प्रज्ञाय = का० कु०, ४५ । का०, १८ ६२ १४ ।

[स० पु०] (स०) १६३, १८४, २२६ । भ०, २७ । प्र०
१४ । ल० ५३ ।

प्रज्ञा, प्रेम । विश्वास । भरोसा ।
निर्माण । मोक्ष । अज्ञा ।

प्रज्ञायनी = ल०, ५४ ।

[वि०] (हि०) प्रज्ञायी वा स्त्री लिंग ।

प्रज्ञायप्रकाश = का० १६३ ।

[स० पु०] (स०) प्रेम रूपी प्रकाश । प्रेम प्रक्षालित चित्त
का विशेष आनन्द । प्रज्ञायालोक ।

प्रणय शिला = का०, १०७ ।

[स० स्त्री०] (म०) प्रणयरूपा शिला । प्रणयाधार ।

प्रणयमृति मूर्य = वि०, ३६ ।

[स० पु०] (म०) प्रणय संबंध स्मृतियां का प्रकाशित
करोवानी (प्रिय) ।

प्रणयसिंधु = का०, १० ।

[स० पु०] (स०) प्रेमका सागर । (प्रेम का अगाधता
का चोत्र ।)

प्रणयाङ्कुर = प्र०, १० ।

[स० पु०] (स०) प्रणय का अङ्कुर ।

प्रणयानिल = प्र०, १० ।

[स० पु०] (म०) प्रणय की वायु । प्रणय का विकसित
करनेवाला वातावरण ।

प्रणयो = ल०, ३८ ।

[वि०] (म०) प्रेमी, जिसमे प्रणय हो ।

प्रणयोच्छ्वास = प्र०, २४ ।

[स० पु०] (स०) प्रणयो के विरहोच्छ्वास ।

प्रणय = का० कु०, १२२ ।

[स० पु०] (स०) शोकार शोकार मन्त्र । परमेश्वर ।
त्रिदेव, यज्ञा, विष्णु महेश ।

(वि०) भुका हुआ । नम्र ।

प्रणाम = क०, १५ । का० कु०, ८६ । वि०,

[स० पु०] (स०) ५८ ६०, ६१ ।

भुक्कर अभिवादन करना, दञ्जत ।
नमस्कार ।

प्रताप = वि०, १५५ २४६ । म०, ६, ११,

[स० पु०] (स०) १५ १६, १७ । ल०, ५८ ।

पौरुष, मदनियोग । वीरता, शक्ति का
एसा प्रभाव या शक्तिक जिससे विरोधी
दबे रहें । मदार का पेठ । रामचन्द्र क
एक सखा का नाम । ताप, गर्मी । युव
राज का छत्र । तेज ।

[प्रताप—देखिए 'महाराणा का महत्व' ।]

प्रतारण्या = ल०, ५४ ।

[स० स्त्री०] (स०) धोखा, ठगी, बचन ।

प्रति = का० कु०, २६, ७६, १२१ । का०,

[स०] (स०) ६६, १२४, २५७ । वि०, १८५ ।

ऋ०, ४४। प्र०, १३, २२, २३।
म०, ६, २०। ल० ५०।
एक उपसर्ग जो शब्द के आरंभ में
लगता है और निम्न अर्थ देता है—
विच्छेद, विपरीत, सामने, बदले में, हर
एक, एक समान, सहश, जोड़ को तोड़,
तरफ।

[सं० स्त्री०] (सं०) प्रत्येक वस्तु। प्रतिलिपि।
प्रतिकार = का०, १६६। चि०, १८२।
[सं० पुं०] (सं०) प्रतिशोध, बदला चुकाने के लिये किया
गया कार्य।

प्रतिकूल = का०, १०६, २५७, २६०।
[वि०] (सं०) विपरीत, विरुद्ध, खिलाफ। जो अनुकूल
न हो, विरुध।

प्रतिकृति = का०, १०३, २६४।
[सं० स्त्री०] (सं०) मूर्ति प्रतिमा। अनुकृति, प्रतिलिपि।

प्रतिकृतियों = का०, २५८।

[सं० स्त्री०] (हि०) प्रतिकृति वा चतुर्वचन।

प्रतिकृति सी = ल०, ६७।

[वि०] (हि०) प्रतिकृति की तरह या समान।

प्रतिक्षण = का० कु०। २६, का०, २६७।

[सं० पुं०] (सं०) प्रतिफल, हर समय।

प्रतिघात = का०, १५। ल०, ७८।

[सं० पुं०] (सं०) प्रतिकृत घात, प्रतिवार स्वरूप किया
जानेवाला आक्षेप या प्रहार।

प्रतिज्ञा = क०, ११। चि०, ३१। ऋ०, ६४।

[सं० स्त्री०] (सं०) म०, ६७।

प्रण, टैक।

प्रतिच्छादित = का० २१७।

[वि०] (सं०) चारा तरफ से ढका हुआ।

प्रतिदान = का०, ८५।

[सं० पुं०] (सं०) लो भयवा रखा हुई वस्तु को लीजना।

प्रतिदिन = का०, ६, १६४। न०, ३४।

[सं० पुं०] (सं०) प्रत्येक दिन, हर रोज।

प्रतिध्वनि = का०, ८। का०, ७, १६, ६३, ११०, १५६, १६७, २७७, २८५। म०,

१७। ल०, १३।

अपने उत्पत्ति स्थान पर फिर म सुनाई

पडनेवाला शब्द, गूज, प्रतिशब्द। शब्द
से व्याप्त होना। गूजना।

प्रतिनिधि = का०, ६९। का०, ११, ३०, ११४,
[सं० पुं०] (म०) १७६, २६० २८३। ल०, ७१।

प्रतिमा, प्रतिमूर्ति। वह व्यक्ति जो
दूसरे के बदले कोई काम करने को
तय्युक्त किया जाय।

प्रतिपक्षी = चि०, ६३।
[सं० पुं०] (सं०) विरुद्ध पक्षवाला, विपक्षी या विरोधी।

प्रतिपग = का०, १५७।

[अ०] (सं०) पग पग पर।

प्रतिपद = का०, १५७, १५८, १८४। ऋ०, ४५।

[सं० स्त्री०] (सं०) रास्ता, मार्ग। आरंभ। पक्ष की पहली
। तथि। बुद्धि। पक्ति। अग्नि की जम
तिथि।

प्रतिफल = का०, १५६, १८०, १६० २५८।

[अ०] (सं०) प्रतिक्षण, हर समय।

प्रतिपालक = क०, २५।

[वि०] (सं०) पालन पोषण करनेवाला, पायक।

प्रतिपालत = चि०, ७३।

[।ऋ०] (अ०भा०) पालन करता है।

प्रातःकाल = का०, २६४। म०, ५।

[सं० पुं०] (सं०) छाया, प्रातःविब। परिणाम। बदल म
मिला हुआ वस्तु।

प्रतिवार = का० कु०, ६६।

[म०] (सं०) हर रोज, प्रातःदिन।

प्रतिदिन = का० कु०, ४३, ८२, ६३। का०, ४८,

[सं० पुं०] (सं०) ४६, १७६। चि०, २३, ७१।

परछाई, छाया। मूर्ति, चित्र। दण्ड,
शोभा।

प्रतिविष पूरित = का० कु०, १७।

[वि०] (सं०) परछाई में युक्त। जिम परछाई
पडा हा।

प्रतिबिंबित = का०, ६७। का०, १४७, १७६, २३३,

[वि०] (सं०) २४१। प्र०, १६।

जिमका परछाई या प्रतिबिंब पडे।
जो परछाई पडन के कारण दिखाई
देना हो। जो ऋजवता हा।

- प्रतिभा = शी०, १८ । व०, १५ । वा०, ८७, [सं० श्लो०] (सं०) १६६, २६२, चि०, १५२ ।
बुद्धि, समझ । प्रसाधारण मानगिन शक्ति । प्रसाधारण बुद्धि बल ।
- प्रतिमा = शी०, २० । वा०, १००, २२२, २६० । [सं० श्लो०] (सं०) चि०, १५२, १६६ । ल०, ३३ ।
प्रतिवृत्ति, मूर्ति, अनुवृत्ति ।
- प्रतिरूप = चि०, २२ । [सं० पुं०] (सं०) प्रतिमा, मूर्ति, चित्र, तस्वीर ।
- प्रतिरोध = वा० कु०, १०६ । [सं० पुं०] (सं०) विराध, बाधा । रोक, खावट । पुरस्कार । प्रतिद्वेष ।
- प्रतिवर्त्तन = वा०, ७६, १५० । ल०, ६६ । [सं० पुं०] (सं०) लोट घाना, वापस घाना ।
- प्रतिवर्ष = का०, २८४ । [सं० पुं०] (सं०) प्रत्येक साल ।
- प्रतिशोध = का०, १८५, २०७, २३० । ल०, ६८, [सं० पुं०] (सं०) ७४, ७५, ७७, ७८ ।
बदला चुकाने की भावना से बिया जानेवाला काम । बदला ।
- प्रतिशोध अधीर = का० १०१ । [वि०] (सं०) प्रतिशोध करने के लिये विकल । अथवा प्रतिशोध के कारण विकल ।
- प्रतिष्ठा = का०, १५७, प्र०, १० । [सं० श्लो०] (सं०) स्थापना, अवस्थान रखा जाना । दब प्रतिमा की स्थापना । सम्मान ।
- प्रतिष्ठित = का० कु०, ११३ । [वि०] (सं०) जिसकी प्रतिष्ठा हो । समानित । जिसकी स्थापना की गई है । स्थापित ।
- प्रतिहारोगण = म०, २० । [सं० पुं०] (सं०) राजाभा के यहाँ के द्वारपाला अथवा सदेशवाहकों का समुदाय ।
- प्रतिहिंसा = का० कु०, १०६ । का०, २३० । [सं० श्लो०] (सं०) ल०, ७६ ।
बदला चुकाने के हतु का जानवाली, हिंसा, बर चुकावा, बदला लेना ।
- प्रतिहिंसा पूर्ण = वा० कु०, १०८ । [वि०] (सं०) प्रतिहिंसा का भावना में भरा हुआ ।
प्रतिवारिता म पूर्ण ।
- प्रतिहिंसा पूरित = वा० कु०, १०८ । [वि०] (सं०) प्रतिवारिता में भरा हुआ ।
- प्रतीक = शी०, ६८ । वा०, १५७, १६६ । [सं० पुं०] (सं०) १६७, १६८, २११ ।
प्रतिमूर्ति, प्रतिरूप, अनुवृत्ति । मूल वस्तु का दूसरा आकार ।
- [वि०] उन्मत्त । स्थानापन्न । प्रतिनिधि ।
[प्रतीक—द्विग परिशिष्ट]
- प्रतीक्षा = शी०, ३६, ५२ । वा०, १७७, १७८ । [सं० श्लो०] (सं०) श्०, २५ ।
भासना, इतजार । प्रत्याशा ।
- प्रतीची = वा० कु०, ३३ । चि०, १०१, १०६ । [सं० श्लो०] (सं०) पश्चिम दिशा ।
- प्रतीत = श्०, ६४ । [वि०] (सं०) शात, विदित, जाना हुआ । विख्यात प्रसिद्ध, मशहूर । प्रसन्न, खुश ।
- प्रतीप = का०, ३८ । [वि०] (सं०) विरुद्ध, विलोम । एक अर्धालंकार जिसमें उपमय को उपमान मान लेते हैं ।
- प्रत्न सत्व = प्र०, २० । [सं० पुं०] (सं०) वह विद्या जिसमें प्राचीन काल की बातों का विवरण या विवेचन हो । प्राचीनता का सत्व । पुरानेपन का सार ।
- प्रत्यक्ष = का०, ६८, १६२ । चि०, १४१, [वि०] (सं०) प्र०, ७ ।
शरीरों के सामनेवाला । नयनगोचर । जिसका ज्ञान इंद्रियों द्वारा हो । इंद्रियगोचर ।
- [सं० पुं०] (सं०) चार प्रकार के प्रमाणों (दार्शनिक) में से वह प्रमाण जिसका आधार दली जाना हुई बातों में स होता है । अनुभूत प्रमाण ।
- प्रत्यक्षा = का०, १४१ । चि० ६७ । श्०, ३६ । [सं० श्लो०] (सं०) अनुप का डारी जो बमान क दोनों सिरों से बंधा होती है ।
- प्रत्यावर्त्तन = शी० ४१ । वा०, ७, १२७ । ल०, [सं० पुं०] (सं०) ५३, ७५ ।

लौटकर वापस आना । वापस आना ।
लौटना ।

प्रत्याशा = भा० ३६। ऋ०, ५१, ५४।

[सं० जी०] (सं०) आशा, भरोसा । उम्मीद, सहारा ।

[प्रत्याशा—सबप्रथम 'इदु', बला ६, पड १, किरण २ में प्रकाशित और 'भरना' में पृष्ठ ५२-५३ पर संकलित अनुकात कविता । अंधी रात में मंद पवन बह रहा है, अकेले निर्जन में प्रत्याशा में कनात हो बठा हूँ । शिथिल वशी में बिरह का मगात उदास पहाड़ी रागिनी में बल रहा है और उसपर से तुम कहत हो 'यह उल्का तुम्हारा कपट है।' (प्रताप्ता करत करत सबम निबट होने के कारण) धुपल तारो को पिढका से मैं देख रहा हूँ । ह जीवनधन । मुझे सत्य का दशन हो रहा है । तमिस्र आकाश में वह मुझे दिखाई पड रहा है । मुझे अनेला देखकर हिनका मत । तुम्हे आत देखकर सभी व्यवधान स्वय समाप्त हो जाएंगे । यहाँ आने में सबाच मत करो । लगता है हमारा मिलना तुम्हारे लिये सुनभ है इनलिये तुम्हें हमारा ध्यान नहीं है क्योंकि हम ता तुम्हारी मुट्टी में हैं । भीर की सयदना हीनी चाहिए । पर हे मेरे जीवनधन, मेरी और पराप्ता न को और नहीं किसी स ह्मारा प्रतिष्पण करारो और उ उतेजना ही दो । हमारा हृदय समर्पित है इसलिये हिलाने डुलान के साथक नहीं है । इसे मलय पवन का पवित्र चाल चलन दो । हृदय के हीरक पात्र में चद्रकिरण क हिम बिदुधो 'तुम्हारे बिरह के आसू' स बना मधुर मकरदवाला सुधा रस दी है । यह प्रम से छलाछल भरा है इम छनकाआ मत ।]

प्रत्याशय = भा०, ३० ।

[वि०] (सं०) जिस वस्तु का भाषा की जाय ।

प्रत्युत = प्रे०, १७, २६ ।

[सं० पु०] (मं०) विपरीतता ।

[मं०] (सं०) बल्कि, वरन् इमने विरुद्ध ।

प्रत्युत्तर = मं० १४ ।

[सं० पु०] (सं०) उत्तर मिलन पर दिया गया उत्तर ।

प्रत्येक = का०, ७३, २४१ ।

[वि०] (सं०) बहुता में में हर एव ।

प्रथम = का०, ११ । का० कु० ३६, ६३, १०६ ।

[वि०] (सं०) का० ५, १८ ४५, १०४ । वि०, ३६ ६८, १६५ ऋ०, १५ । प्रे० ११ ।

गिनता में पहले आनवाला पहला ।

सबसे अच्छा, सर्वश्रेष्ठ । प्रधान, मुख्य ।

[क्रि० वि०] पहले, पश्तर आग आदि में ।

[प्रथम प्रभात—सबप्रथम इदु बना छ, किरण ५, मन् १६१३ म प्रकाशत तथा भरना में पृ० १६-२० पर संकलित । अंत करण क नवान मुन्द नीड म खग-कुन के समान मनावृत्तियां सा रही थी । नाल गनन के समान आत हृदय सा रहा था । भीतर और बाहर की प्रवृत्ति भी गुप्त थी । अपने ही छिपे हुए पवित्र मकरद से नए मुकुन के समान अचचल मन संतुष्ट था । ऐसी ही स्थिति में अनातक पुत्रो के सौरभ से भरपूर मलयानिल ने स्पश कर मुदगुदाया । आन्य खुल गई और आनंद का दृश्य दिखाई देन लग्य । सन्तोषेण औरे सा गुजार करता हुआ मधुर गान गाने लगा । फूना के मकरद का वर्षा होने लगी और प्राणरूपी पर्षाहा आनंद स बोन उठा । वह छवि बालारणा सी प्रकटी और उसने शून्य हृदय को नए प्रेम स रजित कर दिया । मद्य प्रम के साथ में स्नान कर मन पवित्र हो उल्हाह में भर गया और सारा संसार पवित्र आनंदवाम हो गया । यह मेरे जीवन का प्रथम प्रेम प्रभात था ।]

[प्रथम यौवन मंदिरा से भक्त—चद्रगुप्त म

अलका का गीत । प्रसाद संगीत मे पृ० ११० पर सकलित । इसमे अलका सिहरणा के प्रति पूव स्मृतियों को प्रकट करती है श्रीर भविष्य के लिये उसपर आस्था प्रकट करती है । यौवन के पहले प्रहर मे यौवन मद से मत्त हो जब कि किसी को हृदयदान करना चाहिए इसके पहचानने तक का चाह न थी केवल प्रेम करने को चिन्ता थी । अपना अमोल हृदय मीने बेच डाल । प्राज्ञ वही हृदय मुझमे अपना मूल्य माँग रहा है । बिना किसी मतलब के ही उस लोभी प्रियतम न ले लिया जिसका परिणाम यह हो रहा है कि तराजू पर तौल कर अर्थात् अपार वेदना मिल रही है और हृदय म धूल उड़ रही है फिर भी तुम्हे कोई परवाह नहीं है । क्या आँसू झिड़ककर प्रेम के इस रास्ते को विछलन वाला बना दू ताकि तुम मेरे हृदय के रास्ते पर सभलकर चलो । और इसम तुमको विलज लगेगा इसलिये अधिक समय तक तुम्हारा स्नेह मिलता रहेगा जिसस जावन का सभी साथ सफल हांगो । और आशा का कुछ सहारा मिलेगा । विश्व की समस्त सुयमा आँसू बनकर बह जायगा जिसस रूप का रत्नाकर अथाह भर जायगा और पहचानना भी कठिन हो जायगा ।]

प्रथम स्पर्श = का० कु०, १०० ।
[वि०] (स०) पहला स्पर्श । नव मिलन । मुहागरात का प्रथम आतिगन ।

प्रथा = का० कु० ११५ ।
[म०श्री०] (स०) रीति रिवाज प्रणाली, परंपरा, प्रसिद्धि ।
प्रदर्शन = का० १३३ ।
[स० पु०] (स०) दिखाने का काम । नाना प्रकार का वस्तुया का दिग्गाने के लिय एक स्थान पर रचना ।

प्रदर्शिका = का० २८० ।
[स० ज्यो०] (स०) वह पुस्तक जिमम बिना स्थान विषयक सब बातों का सच्चेप म बणन, हा,

ताकि उस स्थान के सबध मे पूरी जान बारी हो जाय ।

प्रदेश = का०, २८०, म०, १७ ।
[स० पु०] (स०) स्थान । किसी देश का छोटा हिस्सा ।
प्रदोष प्रभा = का०, २८४ ।
[स० पु०] (स०) सायबानीन आभा, सध्या की छवि । सध्या की लायी ।

प्रधान = चि०, २५ ।
[वि०] (स०) मुख्य खास, सर्वोच्च, श्रेष्ठ ।
[स० पु०] (स०) मुखिया नेता सरदार । मन्त्रा, सचिव । ससार का उपादान कारण । एक राजपि का नाम । किसी सस्था का मुख्य अधिकारी ।

प्रधानता = का० ३ ।
[म० ज्यो०] (स०) प्रधान होने का भाव, धर्म कार्य, या पद ।

प्रपच = का०, १६६ ।
[स० पु०] (स०) ससार और उसका जजाल । भवजाल । आश्वर ढांग ।

प्रपूर्तिता = चि० १३६
[स० ज्यो०] (स०) भरी हुई । परिपूण ।

प्रपुञ्ज = का०, २६३ । चि०, ६६ । प्र० ७
[वि० पु०] (स०) प्रम न पूरा निखा हुआ विकसित ।

प्रफुल्लित = का० कु० ३५ । का०, १८२, २६० ।
[वि०] (स०) चि०, ११ २३, ५६, ६३, १६४ । म० ११ ।
फूला हुआ, खिला हुआ, प्रस न ।

प्रफुल्लित गात = का० कु० ६७ ।
[स० पु०] (स०) प्रस न शारा ।

प्रपथ = का०, १६ ।
[स०] (स०) बिना वाय का मन्त्रा प्रहार से बरने की अवस्था । प्रावाजन, उपाय । बोधने को डारा । प्रमबद्धता, गद्य या पद्य म परस्पर सब धना का भाव ।

प्रथल = का०, २४४ । का०, १५८ । का० कु०, ८ ७३ ७४ ७५ ८७ १२१ १२६ । का०, १६ । चि०, १२, ५३, ६५ । प्र० ४२४ । म०, २ ६ ।
[वि०] (स०) ताप्र । बलवान । उग्र, पार । महान ।

प्रयुद्ध = का०, २३। ल०, ५३।
 [वि०] (सं०) जाग्रत, जगा हुआ। प्रबोध युक्त, पंडित। ज्ञानी। विद्वान्, खिल्ला हुआ। सजीव।

[मं० पुं०] (सं०) नव योगशक्ती म स एक।

प्रभजन = का० कु०, ५३, चि०, ६६। क०, ६।

[सं० पुं०] (सं०) ऋ०, ६५। म०, २।
 अत्यधिक तोड़ फोड़, टुकड़े टुकड़े कर डालना। पवन, वायु विपणन कर प्राथो। महाभारत के अनुभार मणि पुर के एक राजा का नाम।

प्रभा = का० कु०, १६ १८ ५१। क०, ८।

[सं० स्त्री०] (सं०) का० ४५ १६३। चि०, १३६, १४०, १५३। ऋ०, ३५। म०, १६। ल०, ७०।

प्राभा, चमक। सूर्यविव। मृष का पत्नी का नाम। एक अम्बरा का नाम। मदाकितो। द्वादशाक्षरा वृत्ति।

प्रभात = श्री०, ७७, ७६। क० १३। का० कु०,

[सं० पुं०] (सं०) १०४। का, २७, १५१, १६२ १७५, २१८, २२६, २३०। चि०, १४०, १४३, १४५, १५६, १६०। प्र० ५, ७ ११, १५, १८।

प्रात काल, मवेरा।

[प्रभात कुसुम—यह रत्नना सवप्रथम प्रभातिक कुसुम शीपक से द्रु कना २, किरण ४, कातिक १६६७ विक्रमी म प्रकाशित हुई। चित्राधार म पराग न अतर्गत पृ० १५४ पर यह मकलिन है। प्रभात के फूल का कुसुम पवित्र सौरभवाला मकरद वायु म सुख भर देता है जिसम हृदय म असीम आनंद होना है। वह ऐमा सगता है मानो कि रमणी अणु निकास म बछ्कर प्रिय के प्रवास से आन का प्रताक्षा श्राला मे अश्रु भर कर रहा है। तुम्हारी इतनी अनुपम प्रतिभा है, तुमने किम रूप का दशन विभा जियसे तुमम

इतना प्रकाश है और तुम्हारा विकास हो रहा है। सूर्य की किरणों का सम पावर तुम फूलकर इतरा रहे हो। अर अनजान फूल। तुम नही जानने, पही तुम्ह जलावर तुम्हारे मन का मदन बरगी।]

प्रभात समीर = का० कु०, १०१।

[सं० पुं०] (सं०) प्रात कालीन वायु शीतल, मद और सुगंधित पवन।

प्रभातिक = चि०, १५२।

[वि०] (सं०) प्रात कालीन।

प्रभापुत्र = का०, २१३।

[वि० पुं०] (सं०) प्रभा का समूह। अत्यधिक प्रकाशवाला।

प्रभापूरित = का० कु० १०।

[वि०] (सं०) प्रभा से भरा हुआ।

प्रभापूर्ण = का०, १८४, २३८।

[वि०] (सं०) प्रभा से पूर्ण।

प्रभा भरी = का०, २२४।

[वि०] (हिं०) प्रभा से भरी हुई।

प्रभाव = का० कु० ८८। चि० ३२, १७७।

[सं० पुं०] (म०) प्र०, ३, १७। ल०, २४।

किसी वस्तु या बात पर किसी क्रिया का होनेवाला परिणाम, अमर। प्रादु भाव। अत बरण को विसी की धोर करने का गुण। सूर्य के एक पुत्र का नाम। सुधीव क एक मन्त्री का नाम। महात्म्य।

प्रभावती = चि०, १४०।

[वि०] (सं०) प्रभावती दासियुक्त।

[सं० स्त्री०] (म०) सूर्य की पत्नी का नाम, प्रभावती नामक राग।

[प्रभापत्नी—मेर सावणि का ब्या। यह मय दानव के निवास स्थान पर तपस्या करता थी और सीता की स्वज म गए वानरो से मिली थी।]

प्रभावशाली = म०, २०।

[वि०] (सं०) प्रभावपूर्ण प्रभावित करनेवाला। जिसने प्रभाव हो।

प्रभु = का० कु०, ३, ५८, ८७, १२०, १२१,
[सं० पु०] (सं०) १२२। वि०, १५४ १८६। प्र०, ६।
द्वेषवर, भगवान्। वह जा अनुग्रह या
निग्रह करने में समर्थ हो। अघिपति।
श्रेष्ठ पुरुष के लिये सर्वोपन। चवई
राज्य के कायस्था की उपाधि।

प्रभुचरण = प्र० २१।
[सं० पु०] (सं०) प्रभु के चरण।

प्रभृता = का०, कु० ८७।
[सं० स्त्री०] (सं०) अधिकार, प्रभुत्व।

प्रभुत्व = का०, १३६, ल०, ७८।
[सं० स्त्री०] (सं०) प्रभुता।

प्रभुपद = प्र० २१।
[सं० पु०] (सं०) प्रभुत्वपद। प्रभुचरण।

प्रभुस्मरण कार्य = का० कु० १२२।
[सं० पु०] (सं०) प्रभु के स्मरण का काय।

प्रभो = का०, ६, १० १५, २३ २५, २६,
[सं० पु०] (सं०) ३०। का० कु० १, २, ८, ६२ ६३,
८७, ६६। वि० १४०। म०, १०
२२।
प्रभु का सर्वोपन।

[प्रभो—सर्वप्रथम इदु कला ३, किरण १,
आश्विन शुक्ल १६६८ वि० (१६१२
ई०) म प्रवाशित तथा बानन कुमुम
की पहला रचना पृ० १२ पर
सकलित। पवित्र इदु वा विनाल किरणो
व माध्यम से ह प्रभा तुमम कितना
प्रवाण है यह पता चलता है। तुम्हारी
अनंत माया अनादि कान म ससार
का तुम्हारी लीना दिया रही है।
तुम्हारी दया सागर की तरह अपार है
और तुम्हारा यथागत लहरे देखती
हैं। चंद्रिका म तुम्हारा हास है और
नन्पियो के अखिल निनाम म तुम्हारी
हर्मी है। सृष्टि के विज्ञान मोर्ति म
रात्रि मे तारो की दीपमाना तुम्हारा
मसार वा पना बनाती हैं। ह प्रभा
तुम प्रममय है, प्रमाणय है और

प्रवृत्ति के पुरुष हो। धरास्वी अपार
उपवन के तुम माली हो। तुम्हारी
दया हाने से सारे मनोरथ पूण होते
हैं। सभी पुकार पुकार कर कह रहे है
और तुम्हारी हा भुभे भी आशा है।]

प्रमत्ता = का० कु०, १८।
[वि०] (सं०) नशे में चूर। मस्त, पागल, उमत्त।
असावधान।

प्रमाणा = का०, ११०। वि०, १८६।
[सं० पु०] (सं०) वह कथन या तथ्य जिससे कुछ सिद्ध
हो। सञ्चत। सत्यता, निश्चय, प्रताति।
मर्यादा। प्रामाणिक बात या वस्तु।
इयत्ता। एक अलकार जिसमे आठ
प्रमाणो में से किसी एक का उल्लेख
होता है। माय, स्वीकार करने
योग्य।

प्रमाता = ऋ०, १७५।
[वि० पु०] (सं०) प्रमाणा द्वारा प्रमेय के ज्ञान को प्राप्त
करनेवाला। ज्ञान का कर्ता। आत्मा
या द्रष्टा। साक्षी।

[सं० स्त्री०] (सं०) पिता की माता। माता की माता।
प्रमाद = का० कु०, १०२। का०, १६७। वि०,
[सं० पु०] (सं०) १८६।
उत्साह। किसी वारणवश कुछ को
कुछ समझना। भ्रान्ति। भूल बूक।
अत करण को दुर्बलता।

प्रमुदित = का० कु०, ३३, ४६, ५१। का०,
[वि०] (सं०) १८१। वि० ६१।
आनंदित, विशेष प्रसन्न।

प्रमोद = का०, १३३। वि०, ६, ३१, १७३।
[सं० पु०] (सं०) हर्ष, आनंद।

प्रयत्न = का०, ६२, १८२ १८६। प्र०, २१।
[सं० पु०] (सं०) काय वा उद्यम जो कोई उद्देश्य सिद्ध
करने के लिये किया जाय, प्रयाग, चष्टा,
वागिण।

प्रयत्न प्रथा = का०, १८१।
[सं० पु०] (सं०) मौखिक व्यवस्था, उद्योग परंपरा।

प्रयास

प्रयास = का०, १८१।

[सं पु०] (सं०) २० 'प्रयत्न'।

प्रलयकर = का०, २०२।

[वि०] (सं०) प्रलय करनेवाला।

प्रलय = घ्राँ, ५६, ७८। का०, १५ २५,

[सं पु०] (सं०) १८२, १६४, २७३। म०, ६२, १०७। ल०, ८०।

लय को प्राप्त होना। बालात म ससार का नाश। मृत्यु। साहित्य म एक सात्विक भाव जिसमे विसा वस्तु मे तमय होने क कारण स्मृति नष्ट हो जाती है। अचेतनता।

प्रलयकारिणी = का० १२।

[वि०] (सं०) प्रलय करतवाली।

[प्रलय की छाया—सर्वप्रथम हय, जनवरी १९३१ मे प्रकाशित तथा सहर मे पृ० ५६ से ८० तक सवलित प्रसादजी का सर्वश्रेष्ठ ऐतिहासिक प्रबंध मुक्तक।

'सहर' की अंतिम रचना 'प्रलय की छाया' अपना विशेष महत्व रखती है। अतद्वद्धे और मनोवैज्ञानिक विष्णोपण का गंभीरतापूर्वक उपयोग और प्रयोग कर प्रसादजी ने 'प्रलय की छाया' की रचना की है। रमणीय रूप और जीवन की पल पल परिवर्तित भावनाओं का मुन्दर प्रतापो ने माध्यम स चित्रित करने का प्रयोग और प्रयत्न, ऐतिहासिक कथा वस्तु के आधार पर, कवि ने किया है। गुजर का रानी कमला का जीवन ढलने समय अतीत के रूप सबधी अपने भावों के घात प्रतिघात का अपने मानस म सवाक चित्र की भाँति दख रहा है।

एक ममय देमा था, जब कमला क चरणी को रूपमौर्दर्य व निखार के कारण समीर छूतर सॉम लगा था। वह मधुभार म विभोर हो गई थी। गुजर राज्य का मारी गंभारता उमकी अगलतिका मे

एवत्र हों, समा गई थी। उसके अधरो म ऐसी मुमकान खिल पडती थी कि नदन व शत शत दिव्य कुमुमुकुतला अप्पाराए उसका अधर चूमती थी। जीवन मुरा की उस पहला प्याली की जिसमे आशा, अभिलाषा और कामना के कमनीय मधुर भन्नार की बागा थी, देखते देखते कमला भ्रमकी लेने लगी। घ्राँरें खुलने पर उसने दखा कि विधव का साग वभव उसके पावों पर लोट रहा है। गुर्जरराज भा उसके सामने झुके हुए हैं। मारी सृष्टि उस युवती को गेस भावा से देखती, मानो लालसा की दात मणिया—ज्योतिमयी, हास्य मयी विकल विलासमयी—उसमे थी। लोग उनमें सृष्टि का रहस्य ढूढने लग। उसका सौंदर्य चद्रकात मणि व समान था तथा हृदय अनुरागपूण। गुर्जर ने याल मे बहु स्वणमन्त्रिका सी सुरभित था और मधु की वर्षा करती थी।

नियति नटी तडित् सी भीहें नचाती उमके जावन म आइ। पपिनी की सतीरव गाया सारे भारत के वाने कोने मे गूज उठी। नारी का यशगाथा का दश मे भाल उजत हुआ। भारत का नायियो ने इस गौरवगाथा को मुनकर भविष्य को नई ऋष्टि से देरना धारम कर दिया। यह दखकर कमला के जीवन की लाजभरी निद्रा जाग उठी। वह पपिनी से अपने तुलना करने लगी और नाचने लगी कि बसा हृदय मर पाम वहाँ था ? मैं ता उम ममय रूप की लका से हृदय की महत्ता नापने लगी थी। वह मोचने लगी थी कि पपिनी तो स्वय जली थी वितु रूप के दावा नल द्वारा मैं वमे ही सुचतान को जलाऊंगी।

गुर्जर में मुल्तान के कारण ताड़व नृत्य प्रारम्भ हुआ। देश की विपत्ति में कमला अपने पति के साथ समर भूमि में हृद पडी। इससे कमला का वीर पति अत्यधिक प्रसन्न हुआ किंतु हार इनकी ही हुई। देश छाड़ना पडा। निर्वासित हो, दोनों शरण खोजने लगे। किंतु दुभाग्य उनका पीछा करने में आग था। दोपहरी में जब दोनों तह की छाया में थके सो रहे थे तुरको का एव दल भ्रम्रावात सा आया। गुजरनरेश लडते लडते दूर चले गए और कमला बदिनी हुई। वह सोचने लगी कि पत्निनी का अनुकरण तो न कर सकी किंतु पत्निनी की भूल का परिष्कार अवश्य करूगी। सिहिनी के रूप में उसने मुल्तान को मारने की अटल प्रतिज्ञा की। रूप का ध्यान वह उस समय भी न भुला सकी। उसने आहा कि तुकपति मरने के पहले मेरा यह रूप भी देखे और सोचे कि मैं कितनी महान् और विभूतिपूर्ण हू।

वह दिल्ली लाई गई। वह कभी वहाँ पति का प्रतिशोध लेने के लिये मचलती और कभी मुल्तान के निम्न हृत्प में रूप सुदरता की अनुभूति छल भर के लिये ही सही जगाने की बात सोचती। वह ऐसे ही विचारो में तिरती उतरती रही। जब वह मुल्तान के समाप पहुँचाई गई उसने आत्महत्या के लिये शृपाण निहाली किंतु शृपाण ध्यान ली गई। उस क्षण वह मृत्यु से बचा और सोचने लगी कि जीवन अलम्प्य है जावन सोभाग्य है, जीवन प्यारा है।

कमला ने मुल्तान से कहा, क्या मारकर भी मुझे तुम मरने न दान ? क्या तुम म मनुष्यता गप नहा रह गद है ? मुल्तान ने उत्तर दिया—दगत्रा हूँ कि भारत की नारिया का गौरवभाग

केवल मरना ही है। पत्निनी को मैं रो चुका हू किंतु तुमको नहीं खोना चाहता। तुम अपनी कोमलता से मेरी प्रूरताओं पर शासन करो। यह कहकर मुल्तान ता चला गया पर मुल्तान का रग महल अथ कमला के लिये स्वण पिंजर बन गया।

एक दिन सध्या के समय सहसा किसा की पदचाप मुनकर वह चौक उठी। उसके सामने शशव का अनुचर 'मानिक' था। कमला ने उससे पूछा—अरे अभाग, यहाँ तू मरने चला आया ?

उसका उत्तर था—यहाँ मरने नहीं आया हूँ, रानी, जीवन पाने का आशा में आया हूँ।

मुल्तान भी वहाँ आ पहुँचे। मानिक को मृत्यु दंड मिला। फिर कमला के काना म गूज उठा, जीवन अलम्प्य है, जीवन सोभाग्य है, जीवन प्यारा है। कमला ने उच्छ्वास भरे शब्दों में कहा, उसे छोड़ दीजिए। रानी की पहली आणा समझकर मुल्तान ने उसकी यह बात मान ली। कमला का हृदय बोल उठा—

हाय रे हृदय।

तूने कौडी के मोल बचा, जीवन का मणिकोप और आकाश को पनडने की आशा में हाथ ऊचा किए, गिर दे दिया अतल में।

गुजरेश बलदेव भी तो जावित थे, उ होने सदश भेजा था कि आन पर कमला प्राण द द, किंतु वह जावन न, रूप के व्यामाह्वश एमा न कर सकी था। मानिक भी तो उसम आज मर जाने की ही कहता है। वह पुन सोचने लगती है, मरा प्रेम गुद कहाँ है ? रूप क कारण मैं गुजरान का रानी बनी और वही रूप भारतखरी का पद प्राप्त करान

की प्रेरणा दे रहा है। भारतेश्वरी का यह पद रूपमाधुरा का उपहार और शृंगार है। यह कल्पना उसे सुगम किए हुए थी।

मानिक ने सुस्तान की हत्याकर खुसरो के नाम से राज्यशासन सभाला, पर कमला को अब यह अनुभव होने लगा कि नारी तेरा वह रूप, जिसमें पवित्रता की छाया न हो, जीवित अभिशाप है। अब उसके सौंदर्य के चपल चरण की सत्ता हिम विंदु सी डुलकन लगी। उसे रूपसत्ता सौंदर्य का पूर्ण कल्पित ज्योतिहीन तारा लगा, जो बालिमा की धारा न मिलीन होता दीख पड़ा। उसके रूपसौंदर्य की सृष्टि अब असफल हो सो गई है।

‘प्रलय की छाया’ हिंदा के उन सफल प्रबध निर्वाय मुक्तों मे है, जिनकी गौरव गाथा भाव और बला दाना दृष्टियो स सनातन है। क्या वा आधार पूरा ऐतिहासिक है। कवि ने इन ऐतिहासिक तथ्य मे रूप के एकाग्र सौंदर्य की निरधकता जिस रूप मे प्रतिष्ठित की है, वह प्रसादजी की चिरतन सोदय वाली उस बोधदृष्टि का पता बताता है जिसमे श्रद्धा ऐसा शक्ति के निर्माण की ऊजस्वित सभावनाए ह। ८० लहर।]

प्रलय घटाएँ = का०, १६।

[सं० जी०] (हिं०) प्रलय करनेवाली घटाए।

प्रलयजलधि = का० १०।

[सं० जी०] (सं०) प्रलयरूपी जलधि।

प्रलयनिशा = का०, २०, २३।

[सं० जी०] (सं०) प्रलयकालिक रात्रि।

प्रलयनृत्य = का०, १४८।

[सं० पु०] (सं०) प्रलयकालिक नाच।

प्रलयपयोनिधि = का०, १८५।

[सं० जी०] (सं०) प्रलयकालिक समुद्र।

प्रलयभीत = का०, १६१।

[वि०] (सं०) प्रलयकालिक उपद्रवों से डरा हुआ।

प्रलयमयी क्रीडा = का०, १८५।

[सं० श्लो०] (सं०) सहायक खिलवाड।

प्रलयोल्लास रज = ल०, ५७।

[सं० पु०] (सं०) प्रलयकर उत्कण्ठ रज।

प्रलाप = का० कु०, ११८।

[सं० पु०] (सं०) व्यय की बातें, बकवास, अनथकारी वचन।

प्रलोभन = का०, १३। का०, २८। ऋ०, ६०।

[म० पु०] (सं०) ल०, २६८।

लालच, लोभ।

प्रलोभनमय = का०, २६।

[वि०] (सं०) प्रलोभन से युक्त। प्रलोभन के कारण।

प्रवचकों = ल०, ५३।

[सं० पु०] (म०) धूर्तों, ठगों, मक्कारों।

प्रवचना = का०, २८। का० कु०, ८२। का०,

[सं० श्लो०] (म०) १३५। ल०, ११।

ठगी, धूर्तता, छल।

प्रवचन = ता०, २६।

[म० पु०] (सं०) उपदेश, भलोभाति समझाकर कहना।

धार्मिक या नतिक बातों की की जाने वाली व्याख्या। वेदांग।

प्रवर्त्तक = ल०, ३३।

[सं० पु०] (सं०) सचालक। हार जात का नियय करने वाला। पथ प्रचलित करनेवाला।

प्रवचन = का० १६३, २६६। ल०, ३३।

[सं० पु०] (सं०) कार्य धारण करना। कार्य सचालन करना। प्रचलित करना। प्रवृत्ति।

किसी को अनुचित कार्य करने के लिये प्रेरित करना और सहायता देना।

प्रवहमान = का०, २५८।

[वि०] (सं०) तीव्रगति से चलता या बढ़ता हुआ।

प्रवास = का०, १७८। वि०, १४३, १५२।

[सं० पु०] (सं०) प्रे०, १४।

अपना देश छोडकर दूसरे देश जा बसना। विदेश यात्रा।

प्रवासी = का०, २११।

[वि०] (सं०) प्रवाग करनेवाला। अपना देश छोडकर

दूसरे स्थान जानेवाला।

प्रवाह = का० कु०, १२५। का०, १०, २४१,

[सं० पु०] (सं०) २४८। वि०, २६, ५५, ६६। प्रे०,

११। जल का बहाव। बहुता हुआ जल।
काम का चलना। भुकाव, प्रवृत्ति।
उत्तम घोड़ा।

प्रवाहिका = का०, २६३।
[सं० स्त्री०] (सं०) बहानेवाली। दस्त की बीमारी।

प्रविसि = वि०, १६६।
[क्रि०] (अ०) घुमकर, भीतर जाकर।

प्रवीण = का०, १६१।
[वि० पुं०] (सं०) कुशल मर्मज्ञ।

प्रवीण सर्प = वि०, १४८।
[वि०] (अ० भा०) प्रवीण के समान।

प्रवीर = का० कु०, ६७ १०६। ल०, ५५।
[सं० पुं०] (सं०) बहादुर वीर, साहसी।

प्रवेश = वि०, २६।
[सं० पुं०] (सं०) भीतर जाना, घुसना। गति पहुँच।
किसी विषय की जानकारी। किसी
क्षेत्र, वर्ग आदि में उसके विशिष्ट नियम
पालते हुए घुसना या लिए जाना।

प्रशसा = का० कु० १। ल० ५२।
[सं० स्त्री०] (सं०) गुण बणन श्लाघा, स्तुति तारीफ।

प्रशात = का० कु०, ३६, ४२ ५२। का०,
[वि०] (सं०) १४८, १६०, २४२। ऋ०, ६६।
ल०, ७२।

अत्यंत शांत, स्थिर अचंचल। निश्चल
वृत्तिवाला।

[सं० पुं०] (सं०) एशिया और अमेरिका के बीच का
सागर।

प्रशांति = ल०, ३१।
[सं० स्त्री०] (सं०) मूस शांति निश्चल होने का भाव।
आंदोलन आदि के अभाव का परि-
चायिका।

प्रश्न = का० कु०, १२०। का०, २४ ३३,
[सं० पुं०] (सं०) ५१, ८१ ११३, १२४। ऋ०, ३१
४७।

जिनासा, वह बात जो कुछ जानने
अथवा जानने के निमित्त कही जाय।
एक उपनिषद्। विचारणा विषय।

प्रसंग = का० ७४। ल०, ४७।
[सं० पुं०] (सं०) मन। बातों का परस्पर संबन्ध।

पूर्वापर संबन्ध। व्याप्ति रूप संबन्ध।
स्त्री पुरुष का संयोग। विस्तार।

प्रसन्न = श्री० ७१। क०, १५, २२, ३२।
[वि०] (सं०) का०, कु०, ६१ ११२। का०, ११७,
१६६, १८०, २२४, २४२, २४६।
वि०, ४ ६७। ऋ०, ३७, ६५। ल०,
३३, ६६, ७६।

पुनः, आह्लादित। सतुष्ट, अनुकूल।
स्वच्छ।

[सं० पुं०] (सं०) शिव, महादेव।

प्रसन्नता = का०, ११५, ११६, १६७, १७२।
[सं० स्त्री०] (सं०) १५, २२।

सतोष, सुष्टि। ह्य। अनुग्रह। निमलता।

प्रसव = का०, ३२।
[सं० पुं०] (सं०) बच्चा जनने की क्रिया। प्रसूति।
जनन। जम। उत्पत्ति। बच्चा।
सतान।

प्रसव समर्पण = का०, ३०।
[सं० पुं०] (सं०) प्रसव हानेवाले का समर्पण।

प्रशसा = प्रे०, २२।
[सं० स्त्री०] (सं०) स्तुति, तारीफ, बड़ाई।

प्रसाद = का० कु०, ३७। का०, २५२। वि०,
[सं० पुं०] (सं०) १७१, १७२, १७३, १७४, १७५,
१७६, १८४, १८८, १८६, १६०।

प्रसन्नता। निमलता। स्वास्थ्य।
कोई वस्तु जो देवता को समर्पण का
जाय। बड़े लोगो क द्वारा प्रसन पुत्रा
में छोटी का दिया गया उपहार। कर्म्य
का बह गुण जिमसे भापा स्वच्छ और
साधु होती है। शत्रुलकार क अतगत
कामल वृत्ति। धर्म की पत्नी। मूर्ति
स उत्प न एक पुत्र।

[प्रसाद—हिंदी के म्यात कवि श्रीजयशंकर का
उपनाम। इनके समय में पातव्य
विवरण इस प्रकार है—

मूल नाम—बचपन—आरखडे। जयशंकर।

उपनाम—पहल 'क' नायर' फिर 'प्रसाद'।

जन्म तिथि—माघ शुक्ल १०, सं० १६४६ वि०।

निधन—प्रबोधिनी एकादशी, स० १९६४ वि० ।
ज भाग—



प्रमादजा वाशी म उत्पन्न हुए । व शिवरतन साहू सुधनी साहू के पौत्र थे । सुधनी साहू के घर सबका सम्मान होता था ।

उनके पिता दबीप्रसाद जी थे । वे प्रसाद के पितामह बाबू शिवरतन साहू की परंपरा का पालन निष्ठापूर्वक कर रहे थे । महाराज बनारस के यहाँ जो बलाकर आते व उनक बाद प्राय इनके यहाँ आते, चाहे वे कवि हो, भाट हो और चाहे ऐंद्रजानिक और सभी दबीप्रसादजी का जय मनात लीटते । काशीनरेश यहाँ के बड़े महादेव थे और वे छोटे ।

११ वर्ष की आयु में इन्होंने धारा क्षेत्र, श्रीवारेधवर, पुत्र, उज्ज्व, जयपुर, ब्रज, भयोध्या आदि स्थानों पर अपनी माँ के साथ सस्कार यात्रा की । वहाँ के नभगिक दृश्या ने उनके मन को जुमा लिया जिसका व्यापक प्रभाव इनके जीवन और साहित्य पर भी पडा ।

उनका पिता पहले ही रवगवासी हो चुके थे । माँ का भी प्यार कबल १५ वर्ष तक पा सके । घर के कर्तव्यों और विधाता उनके बड़े भाई शमूरलजी थे । शमूरलजी का इनका भूव स्नेह

था । वे इहे कुशन व्यवसायी के रूप में देखना चाहते थे । यही कारण था कि जब उह यह पता चला कि जयधरर दूकान पर बठकर रही कागजी पर कविताएँ लिखा करते हैं ता वे रुठ हुए । प्रसादजी पर उनका ऐसा स्नेह था जना बड़े भाई से छोटे भाई को बड़े सौभाग्य स मिलता है । उ होने प्रसादजी क निर्माण के लिये उनके कविता लिखने पर प्रतिवध लगाया । किंतु जब अभ्यागतो ने उनका ताव्य प्रतिभा की उनसे प्रशंसा की तो उ होने उनपर से प्रतिवध ही नहीं टटाया, उनके पढ़ने पढाने की सुदर व्यवस्था की । जहाँ तक स्कूली शिक्षा का प्रश्न है, सातवी कक्षा तक हा वह स्थानीय कवीस बालज में शिक्षा प्राप्त कर सके थे । पिता चल बसे थे, स्कूल की पढाई समाप्त हा गई । पर बाबू शमूरल ने इनके लिये घर पर ही अंग्रेजी और संस्कृत की पढाई का अछ्छा प्रबन्ध किया । दीनबधु ब्रह्मचारी जैसे सत्यरूप को उहाने इनका अध्यापक नियुक्त किया । वे और उपनिषद् के प्रभाव न जाँ छाप प्रसाद पर छोडी है, वह दीनबधु ब्रह्मचारी के अध्यापन का प्रभाव है । प्रसादजी अपने परा पर रुझे भा न हो पाए थे कि इनकी १७ वर्ष का आयु में बाबू शमूरलजी ने भी सदव ने लिये इनका साथ छोड दिया ।

अब वाशी के एक महान् प्रतिष्ठित परिवार ने उत्तराधिकारी के रूप में प्रसादजी थे । १७ वर्ष की आयु, वैभव और प्रतिष्ठा की महान् परंपरा, बच्ची शूहस्थी, घर में न पिता, न माँ, न बडा भाई—एक मात्र अकेल पुरुष । घर में विधवा भारी थी । बच्ची शूहस्था, सबका बोक विधाता ने उनके

सिर पर सा पटा। एमी ही दुदमयी विपन्न स्थिति म कुटुंबिया, परिवार के सुभेच्युभा एव सवधिया का पड्यन भी पूर्ण रूप से मर्पति पर अधिभार करने के लिये चला। १७ वष के एक युवक के सिर पर ऐसी महान विपदाएँ एव साथ भा पडें भौर वह उह गह ले, यह साधारण व्यक्तित्व का काय नही।

उहाने कठिनाइया को दला, समझा, पर उनसे उहाने समभौता नही किया। जीवन भौर मरण जैसे प्रश्नो के रहते हुए भी वे अपने पय पर बन्त रहे। बाधाभा स सपय करत रहे। पहला विवाह उहे स्वय करना पडा। दूसरा विवाह भी करना पडा। वे तासरी शादी नही करना चाहते थे। दूसरी स्त्री को एक मात्र निशानी भी उसके साथ ही समाप्त हो चुकी था। वह उससे प्रेम करते थे। पर तो वीरान पहले ही हो चुका था, मन भी वीरान हो गया। घर मे विधवा भाभी का जीवन दुख की अनत रेखा की भाँति उनके सामने प्रश्नचिह्न बना रहला था। शय व शादी नही करना चाहते थे। पर भाभी का भ्रनुरोप के टाल न सके।

समाज म जिन लोगो से उनका सपर्क हुआ उनम मुख्यत साहित्यिक लोग ही हैं। उनके विषय मे राय वृष्णदासजी ने लिखा है—

‘इही दिनो जयशकरजी ने भी पहले ‘साधना’ को देला। उ होने भा उसे बहुत पसद किया कवल जबानी हा नहीं। एक दिन भाए सुतामा की तरह कुछ छियाए हुए। उसे बहुत छीना भपटी भौर ही नहीं के बाद बडे हाव भाव से उहाने दिखलाया। उन दिनो

उता। एमी ही घाञ्ज की कि धनना रचनाएँ गिताने म बडा तग करते थे। यह एव गात्र मुयरी छाटा सी काना था, जिनम वाग के सगमग नद्य गीत उता लिय हुए थे, मीने कइया को भाँना, गुंनर थे। ए म का सध्या वगुन धभी तक नहा भूना। किनु मैं उन दिना यावना हा रहा था। मुझे धननी गला पर इतना ममत्व भौर धायह था कि जरा भी उदार नहीं होना चाहता था। मीने दूदन ही कहा ‘यवा गुरु मुझ पर हाथ केरना था।’ व मरी सकीएना पहचान गण। कई दिन बाद कोई मुनासिब बात बहतर उमे उठा ल गए भौर उन भावा म स कतिपय का छंदबद्ध कर झला। उन के भरना व प्रथम सस्तरण का अधिभार उही ब्रिततामा का मवलन है।’

श्रीरामनाथ मुमा ने लिखा है कि—

‘मीने जावन म अनेर महात्म्यामा भौर महापुपा का साक्षात किया है साव जनिव रूप स पात भी भौर धनात भी। इनम तीन चार ती अत्यंत उच्च कोटि क योगा थे भौर उनका धनासक्ति बडी ऊची सोमा तक बडी हुई थी। पर यह बात कि जावन के प्रत्येक क्षेन भौर रस मे डूबकर भी, जीवन का अतिव्याप्तियो से अलग रहना, भौर अपने लक्ष्य भौर धानद मे सदा तामय रहना, मीने अपने जीवन मे केवल दो ही धादमियो मे देला है—एक गाभीजी, दूसरे ‘प्रसादजा’। मैं जानता हू कि मैं बहुत बडा बात कह रहा हूँ, पर मैं उसकी जिम्मेदारी समझता हू। निस्संदेह इस वृत्ति का विकास दोनो म अलग अलग ढग पर हुआ है, दानो की साधना भौर उस साधना का व्यापकता मे भा भेद है पर दोनो मे प्रत्येक अवस्था मे धानद

प्रातः कर सकने की क्षमता दिखाई देनी है।'

प० रूपनारायण पांडेय ने उनके साथ रहकर उनमें जो गुण देखा उसका वर्णन वे इस प्रकार करते हैं—'पहली और सबसे बड़ी विशेषता उनमें यह देखी कि वह प्रत्येक सहृदय साहित्यिक के साथ आसाधारण प्रेम का व्यवहार करते थे। आजकल के अनेक लेखकों की तरह वह किसी प्रतिस्पर्द्धा से ईर्ष्या न रखते थे। उन्होंने कभी किसी की निन्दा नहीं की उनके मुर से मैंने उम्र मनुष्य के प्रति भा कभी कोई बुरा मत या नहीं सुना, जा उन्हें बुरा कहता था या उनकी प्रतिभा का कामल न था। प्रसादजी यथाशक्ति प्रत्येक साहित्यिक का सम्मान और सहायता करते थे। दूसरी विशेषता यह उनमें थी कि मैंने कभी उनको क्रोधित होने नहीं देखा। यहाँ तक कि उनका एक बंगाली नौकर का कारण अश्लेष आर्थिक हानि उठानी पड़ी परन्तु उन्होंने उसके लिये भी कभी कट्टाकति नहीं की। तीसरी विशेषता यह पाई कि उनमें अभिमान नहीं था। आज के जमाने में ऐसी प्रवृत्ति दुर्लभ ही है।'

हिंदी के सुप्रसिद्ध विद्वान् तथा आलोचक स्वर्गीय प० नददुलारे बाजपेयी उनके मित्रा में से थे। उन्होंने उनके व्यक्तित्व की जो भौका देखी, उसका अचलोकन कम महत्वपूर्ण नहीं है—'जो कोई किसी की आशा करता है वह अपने साथ प्रवचना करना है। जो भविष्य पर आस्था रखता है, वह अपने अंतःकरण का दुर्बलता प्रकट करता है। जो अपना वृत्ति पर अविश्वास करेगा, वही अपना कोर्नि चाहेगा। जो अपनी करनी से प्रसन्न नहीं है, ससार में उसे कभी प्रसन्नता नसीब न होगी। बनारसी रंग

से प्रसादजी का एक मात्र यही आशय था, किंतु मैं इसे समझता नहीं चाहता था। दुर्बलता तो मेरे अंदर थी। मैंने प्रसादजी का सदैव यही बनारसी रंग देखा। बाहर से उनका व्यक्तित्व देखकर कोई उनकी मुस्कान से मुग्ध होता, कोई उनकी व्यवहारपद्धता और मंत्री से मोहित होता, किंतु उनके इस दिव्य, किंतु मोहक बाह्य के भीतर जाकर अपनी ही वृत्ति में आनंद मानने-वाले, कार्ति की लिप्सा न रखनेवाले, भली बुरी समीक्षाओं से समान रूप से तटस्थ रहनेवाले नि स्पृह तथा दिव्यतर प्रसादजी को बहुत कम लोगों ने देखा। मैं जब उन्हें पढ़वाने के योग्य ही रहा था, इतने में वे स्वयं ही न रहे।' यह पूर्व ही स्पष्ट किया जा चुका है कि बनारस की मस्ती, उनकी गंभीरता, उसकी महानता के प्रसादजी प्रताक थे।

प्रसादजी को कोरा नियतिवादी और पलायनवादी कहना उनके व्यक्तित्व के साथ अयोग्य करना है। उन्होंने आचार्य प० महावीरप्रसाद द्विवेदी की परवाह नहीं की। उनके संपादनकाल में सरस्वता में अपनी एक रचना 'जलद आवाहन' छपवाने के बाद फिर कभी रचना नहीं भेजा। विपम आर्थिक परिस्थिति में अपने साहित्य को प्रकाश देने के लिये उन्होंने 'इंदु' का प्रकाशन कराया। 'जागरण' और 'हंस' उनकी प्रेरणा का परिणाम था। उन्हें प० महावीरप्रसाद द्विवेदी का ही विरोध नहीं सहन करना पड़ा, अपितु प्रारंभ में प्रेमचंद जैसे लोग भी उनके साहित्य के विरोधी थे। बाद में उनके व्यक्तित्व ने सबका अपना बना लिया।

प्रसादजी के घर के सामने अपना पारंपरिक

शिव मंदिर था। शिव के वे भक्त थे। विश्वनाथजी भा जात थे। शव भ्रान्त की भ्रम धारा में स्नान करनेवाले व दिय हृदय के व्यक्ति थे। भ्रम परिरचय के संबंध में हंस के आत्मकथाओं में प्रेमचरणी के विषय आग्रह पर उहोने एक रचना है। वह उनके जीवन में के उद्घाटन में सहायक है।

आत्मकथा उनके बड़े जीवन की मसूदा में कहा गई कथा है। यह अत्यंत प्रभावशालिनी है। व श्रीरा की मुनने श्रीर देखनेकाल गभीर द्रष्टा श्रीर छेष्टा थे। उ होने भ्रम भोल जीवन में श्रीरो को दखा था। जीवन की भ्रमती नीलिमा में असख्य जीवन इतिहास का यम्य मलिन उपहास भी उ होने देता था। यह सब होने हुए भा वे भ्रमना श्रीर से दृष्टि फेरनेवाले व्यक्ति नहीं थे। उह भ्रमती मधुर भूषो का ज्ञान था, उनका उहोने भ्रमने जीवन में परिष्कार करना भा सीखा था। इतना होने हुए भा उनका भना भलापान उनके जावन की सहेज प्रवृत्ति थी।

जावन में चतुर्दिव विडवना से पिरे व्यक्ति के लिय भ्रान्त का मूल्य समभवत सबसे बड़ा होना है। प्रसादजी ने काथ्य में सबन भ्रान्त की उपलब्धि को ही भ्रमना साध्य माना है। उनके जीवन की भांति युग भा चतुर्दिव भ्रात्रत था वना से, पीडा से श्रीर भ्रमती भाकुन परिस्थितिया से। जावन के मध्याह्न में उनके ऊपर श्रेण का भार बढ़ गया था, इसलिय भ्रमने व्यापार की धार भा उहान विगम ध्यान लिया किंतु साहित्य में वे विरत नहीं हुए।

उनका जावन इस बात का साक्षा है कि व दूसरे विचारों के साहित्यकारों का धादर बन थे। उनका यहाँ मयी मना के साहित्यकार एवज हाँ थे। स्वास्थ्य

का भी वे ध्यान रखते थे। लोगों को यह आश्चर्य लगता था कि वे कद श्रीर किस तरह लिखते हैं।

भ्रमरोधी का ताँता उनके समुल्ल था। इन भ्रमरोधी के बाच उहान चतुर्दिव निष्ठा के साथ काव लिया श्रीर जिस क्षय में उ होने चरण रखा, वहाँ भ्रमना स्वाया प्रभाव छाड दिया। यह उन वातावरण की देन है जिस वातावरण तथा सत्कारणी गोद में प्रमा का निर्माण हुआ था खेले, कूदे, पनने श्रीर बड़े हुए थे।

मिश्रो के बीच में व खुलकर हसते थे। परंतु सामाजिक मान भ्रमना एव मर्यादा का वे ध्यान रखत थे। प्रसादजी ने नोबेल पुरस्कार विजेता नागुची के रवींद्रबाबू के यहाँ कलकत्ता आने पर प्रमचर से स्पष्ट ही कहा था कि यदि नागुची रवींद्र बाबू से मिलने कलकत्ता आ सकते हैं तो काशी में प्रमचदजी से भा मिलने का मकत है।

जब विसा बात की व मन में दृढतापूर्वक ठाक समझ लेता तो उससे विचलित भा नहीं होते थे। कहना न हागा कि सभा तयारा पूरा हो जाने पर भा जब जावन के अंतिम समय में क्षय से धात्रांत हुए तो राय साहब के वर्गीचे में मारनाय नहीं गए। न जाने का कारण जो रहा हो, कुछ लोग ने इस नियतिवादा बताकर समाप्त किया है। किंतु नियति का जितना स्थान जीवन में है उनका ही प्रमाणा मानत थे, न कि हाय पर हाय रक्त भाग्य पर सब कुछ छाड दें।

जीवन के अंतिम क्षिण में रोग न उतार चलाई का। यन्मा में व पाँड़ल हुए। यन्मा का उहान जावन भी द लिया श्रीर छंद वर्ग का धवण्या में मगर न चन वम। किंतु इनकी धारा धातु

मे उनके व्यक्तित्व ने जिम साहित्यिक एव सांस्कृतिक निर्माण का काय किया है वह निश्चय ही भ्रतवत गौरवशाली तथा उनके उस वृत्तित्व का आख्यान करता है जिम वृत्तित्व का गौरव लड़ी वाली के साथ ही संस्थापित रहेगा, इमम दो मत नहीं हैं। वे सभा सोसाइटिया म तो न जाते थे, किन्तु समेलन की मस्यापना के आयोजन कर्ताओ म से एक थे। नागरीप्रचारिणी सभा के उ नयन और विनास के वे सक्रिय सहयोगी थे। उसके व उप समापति भी थे। उह काम से मनलन था, नाम स नही।

प्रसादजा की अपनी कमजोरियाँ भा थी, किन्तु उन कमजोरियाँ पर एक तपस्वी व्यक्ति की भाति, एक साधक की भाति उन्होंने सदब ह्वा विजय पाने का प्रयत्न किया।

वे साहित्य का जीवन का साधना माननेवाले व्यक्ति थे। उहान साहित्य का रचना को कभी भी आर्थिक भाय का साधन नही बवाया। किसी पत्रपत्रिका स एक पसा भी उ होने नही लिया। काशा नागरीप्रचारिणी सभा तथा हिंदुस्तानी एकेडमी से मिल पुरस्कारा का तथा पहली बार मिला रायल्टी की उहाने सभा की द शिषा। उनका पुस्तका का प्रकाशक भारती भंडार है। उसके मनजर प० वाचस्पति निपाठा न अखिल भारतीय आकाश वाणी स उनके मबध म अपना वाता म कहा कि—

प्रमाजी क लिखने म स्वात सुखाय मूलमव था। व अपने साहित्य का अपने बुरे से बुरे समय मे भी अथ प्राप्ति का साधन नही बनाना चाहते थे। फिर भा कभी कभी अपने ही

साहित्यदेव की वृपा स अथ लिखा आता था। ऐसे आए हुए अनाहूत अतिथि का निमी दूगरे को सोंपकर ही उह चन मिलता था। उ हाने अपनी अनेक पुस्तका व प्रकाशका से कई रायल्टी नही ली। अपने जीवनवाल मे मिली रायल्टी की रकम भी उहाने अपने निजी काम म रच नही की। उ होने अपने प्रवाशक को आना दे रती थी कि उनका कई पुस्तक किसा पुरस्कार प्रतियोगिता म न भेजी जाय। इनी क परिणाम स्वरूप हिंदा साहित्य सम्मनन को यह नियम बनाना पडा कि 'वामायनी' गरीद कर ही प्रतियोगिता म भेजी जाय। खड़ी बोली का वह सवप्रथम काव्य था जिसपर मगला प्रसाद पारितोषिक प्राप्त हुआ।'

जिम समय व काशी मे साहित्य सजन के लिय उद्यत हुए और अपना प्रयोग आरभ किया उस समय तथा उनके जीवन भर काशी में ऐस साहित्यकार वतमान थे जि होने अपनी वृत्तियो द्वारा साहित्य के इतिहास मे नई चेतना जगाने का काय किया है। उनके बीच मे रहकर व उनसे प्रभावित न हुए, यह उनके महान् व्यक्तित्व का परिचायक है। कहना न आगा कि उस समय काशी म सभी साहित्यकार मौलिक व्यक्तित्ववाले थे। बाबू श्यामसुन्दरदास हिंदी का उच्च स्तर पर ले जाने के लिये साहित्य और साहित्यकारा का निर्माण कर रहे थे किन्तु उनका क्षन आलोचना मात्र था। हरिऔषजा भी व, कवि, आलोचक लेखक, उप यासकार, पर विशेष रूप स उनकी प्रतिष्ठा कवि क रूप म हा थी। उनकी कविता उपदेशात्मक नक्काशवाजी वाली थी, यद्यपि था अच्छी। रत्नाकरजा ब्रजभाषा क समर्थ महान् कवि थे, पर युग उह

पीछे छोड़ चुका था। प्रेमचन्द जनजीवन के कलाकार की भाँति, जिसमें सबल प्रचारक का स्वर कमजोर नहीं था, हिंदी के क्या साहित्य का निर्माण कर रहे थे। गोस्वामी विश्वरीलाल रसमय हाथर मन की मोहनेवाली कथाएँ गढ़ रहे थे। जामुसी और ऐयारी कथाओं के स्रष्टागण भी विद्यमान थे। आचार्य रामचंद्र शुक्ल शास्त्रीय समीक्षा दे रहे थे। राम ठण्ढादास कहानियाँ और गद्यगत लिख रहे थे। उग्र की चतुर्मुखी प्रतिभा लोगों को आकर्षित कर रही थी। पंडित शांतिप्रिय कविता और आलोचना लिख रहे थे। श्रीशुष्णदेव प्रसाद गौड़ अन्नपूर्णाश्रमजी आदि लोगों की ह्सा रहे थे। प० विनोदशंकर व्यास छोटी छोटी कहानियाँ लिख रहे थे। ऐसी स्थिति में कभी में उनके जीवनकाल में सभी प्रतिभाएँ जो चमक रही थीं अपनी विचित्रता लिए हुए थीं तथा उनमें स कुछ की ऊँचाई तो आज भी अपने स्थान पर सर्वोपरि है। ऐसी परिस्थिति में सभी क्षेत्रों में उठने प्राम अपना देन दा, जो अपने स्थान पर आज भी प्रतिष्ठित तथा प्रमुख है।

कथा के क्षेत्र में वे हिंदी के द्वितीय उत्थान के प्रथम कथागीतार ठहरते हैं। गद्य में निहित उनका तृतीयम स्थान स्थान पर जा का प्रथम भंडार है वह निगी व गद्य गीता में नती मिलता। कविता के क्षेत्र में वे हरिद्वीप के बन्त प्राय हैं ऊर्ध्व ध्यातव्यता सभी दृष्टिमान। जहाँ तक निर्यात का प्रश्न है गुप्तज्ञा के निर्यात हिंदी में सर्वोपरि गौरवशाली है तिन प्रस्तावों के जा निर्यात प्रकाशित हुए, उनका ना धनता भीतर गौरव है। वे उनका काव्य का अर्थों झुंझका करते जा सजत है। मात्र

सबधा उनके निबंध भी परम उत्कृष्ट हैं। उनकी व्याख्याप्रणाली साहित्यिक एवं शास्त्रीय दोनों के समिलन से साकार हुई है। उपन्यास के क्षेत्र में वे प्रथम यथायथा उपन्यासकार हैं। बवाल उसका जीवित प्रमाण है। नाटक के क्षेत्र में उनका गौरव सर्वाधिक दीप्त है। कवि के रूप में वे क्या हैं, और कसा है उनका शब्दभंडार इसका वर्णन तो इस पुस्तक का विषय है। इस प्रकार उ होने अपने वातावरण से लिया और दिया भी।

वे भारतेंदु की काव्यधारा से परिचित थे। द्विवेदीजी के काय सिद्धान्तों पर उन्होंने मनन चिंतन किया था और उनके प्रयोग का परिणाम देखा। दोनों काव्य धाराओं की अर्थात्तों और बुराईयों की परख उन्होंने की थी। वे केवल केशर वस्तु की पारखी नहीं थे, हृदय और मन के भी पारखी तथा जीवन और जगत् क द्रष्टा थे। वे भारत की मूल सांस्कृतिक एवं साहित्यिक भाव धारा से अवगत थे। उन सत्कारों का उन्होंने अपने व्यक्तित्व के द्वारा नए युग के अन्तर्भूत रचा, जो अत्यंत गौरवशाली है।

प्रसाद की कृतियाँ—

(१) काव्य

१—शोभाचंद्र वास—मनु १९१०।

२—वानर कुमुद—प्रथम संस्करण १९१२ ई०, द्वितीय परिवर्धित संस्करण 'विनायागर' प्रथम संस्करण का भारत और गुनाय, मजाधित संस्करण १९२७।

३—प्रेम पथिक—प्रथम संस्करण, पुनर्द १९१४।

४—विनायागर—१९१८ ई०

प्रथम संस्करण में निम्नलिखित नम संघ ५—

(१) वानर कुमुद

(२) प्रेम पथिक

- (३) महाराणा का महत्व
(४) सम्राट् चंद्रगुप्त मौर्य—१९०९ ई०।
(५) छाया—परिवर्द्धित।
(६) उर्वशी चपू—
(७) राज्यश्री—१९१५ म प्रथम संस्करण।
शुद्ध कथा ६, एड १ विरला १,
जनकरी १९१५ मे प्रकाशित।

- (८) कल्याण—
(९) प्रायश्चित्त—
(१०) कल्याणपरिणय — नागरीप्रचारिणी
पत्रिका, भाग १७, सख्या २, सन्
१९१२। 'चित्राधार' का द्वितीय सशो
धिन परिवर्तित संस्करण सन् १९२८।
इसमे प्रसादजी की बाम वप तक की
ही रचनाएँ हैं।

५—भरना—प्रथम संस्करण, अगस्त १९१८,
सन् १९२७ मे सशोधित एवं परिवर्द्धित
द्वितीय संस्करण।

६—भ्रामि—साहित्यमदन चिरगाव भागी स
सन् १९२५ म प्रथम संस्करण। सन्
१९३३ म भारती भंडार, प्रयाग स
सशाधित एवं परिवर्द्धित द्वितीय-
संस्करण।

७—कल्याण—१९२८, भारती भंडार।

८—महाराणा का महत्व—१९२८, भारती-
भंडार।

९—तहर—१९३३, भारती भंडार।

१०—कामायनी १९३५, भारती भंडार।

(२) काव्येतर

उपन्यास—काल—१९२९ ई०।

तितली—१९३३ ई०।

इरावती (अभूण)। मृत्यु क उपरात
प्रकाशित।

कहानी संग्रह—छाया—१९१२ ई०।

प्रतिध्वनि—१९२६ ई०।

आकाशदीप—१९२९ ई०।

माधी—१९३३ ई०।

इंद्रजाल—१९३६ ई०।

नाटक—मेज्जन—१९१० ई०।

कल्याणीपरिणय—१९१२ ई०।

कल्याण—१९१२ ई०।

प्रायश्चित्त—१९१३ ई०।

राज्यश्री—१९१५ ई०।

विशास—१९२१ ई०।

अज्ञातशत्रु—१९२२ ई०।

कानना—१९२४ ई०।

जनमेजय का नागयज्ञ—१९२६ ई०।

स्वदगुप्त—१९२८ ई०।

एक घूट—१९३० ई०।

चंद्रगुप्त—(१९२८, ३७ ई)

ध्रुवस्वामिना—(१९३३ ई०)।

अग्निमित्र (अभूण)

निवधसमूह—नायक और कला तथा अय निवध।

प्रसाद संगीत —

'प्रसादसंगीत' का प्रकाशन भारती भंडार,

प्रयाग स सं० २०१३ मे हुआ है।

प्रसाद संगीत' म कविताश्री का

सकलन श्रीरत्नशंकर प्रसाद ने किया

है। प्रसाद के नाटकों के गीतों एवं

चतुदशपदियों का यह सकलन है।

यह स्तुय काय अपना महत्व रखता

है। महत्व इसलिए कि गीतों के सूत्र में

प्रसाद के गीतों की यह मात्रा न केवल

उनके प्रकाशक्रम पर प्रकाश डालता

है अपितु काव्य के सूत्र में यह एक

अभाव का पूर्ति करती है। इसमें

नाटकों में श्राई १९९ कविताएँ तथा

२१ चतुदशपदियाँ हैं। नाटकों में भी

तान चतुदशपदियाँ हैं। ये रचनाएँ

सन् १९१० से सन् १९३५ तक का हैं।

'प्रसाद संगीत' का अध्ययन हम निम्नलिखित

वर्गों में प्रस्तुत करना चाहते हैं :

१ नाटकों के गीत

२ सौन्ड या चतुदशपदियाँ

(१) नाटकों के गीत—

प्रसाद ने अपने नाटकों में भी गीतों का प्रयोग

किया है। प्रसाद के नाटकों की रचना

१९१० से शारभ होती है और १९३३ मे समाप्त होती है। इस प्रकार नाटकों के गीत २३ वर्ष की विभिन्न अवधि में लिखे गए हैं। यद्यपि नाट्यरत्ना के नये विकासक्रम में धार्मिक युग में मनोविज्ञान नाटकों में गीत को स्थान नहीं देता तो भी प्रसाद ने संस्कृत की प्राचीन परिपाटी का अनुसरण किया है। अपनी भावुरता तथा दृश्य काव्य का मरसता के कारण उन्होंने नाटकों में भरसक उपयुक्त अवसर पर और उपयुक्त पात्रों द्वारा गीतों का विधान कराया है।

हमें उन गीतों के सौंदर्य का अध्ययन करना है। नाटकों में उनकी उपयुक्तता पर सामान्यतः विचार नहीं करना है। हम प्रत्येक नाटक के गीतों पर अलग अलग विचार करेंगे।

विशाख (१९२१ ई०) में प्रायः सभापण्य में पद्य और गीतों का प्रयोग हुआ है। नाटक का शारभ ही प्रतीत स्थिति के गान से होता है। इसमें प्रणय संबंधी गान हैं, प्रवृत्ति संबंधी गान हैं और गाता सही स्वगत कथन का भी काम लिया गया है। उपदेश भी गीतात्मक हैं। इसके पात्र गायक हैं। विशाख की कविताएँ सामान्य हैं। इसमें ३३ कविताएँ निर्वाह छंदों में हैं।

अज्ञातशत्रु (१९२२ ई०) का शारभ भी गीतों से होता है। इनमें अर्धकाश गीत व्यक्तित्व है जिनमें जगत् का नश्वरता प्रणय की प्रतीक्षण, दुर्गिता का प्रीति गीतों के स्वर नृत्य का ताल पर हैं। एकाध गीत ही करुणा का मजीब मूर्ति के रूप में सामने आता है। भाव, भाषा और शली सभी दृष्टिगत से गीत अच्छे हैं। समस्त कविताओं का संख्या २३ है।

कामना (सन् १९२४ ई०) एक रूपक है

जिनका प्रधान पात्रा कामना भावमय गीतों द्वारा परिचयगान, 'कल्याण' का वगन, विरह हृदय का शालता, विनीतलीला, विलासलासता, प्रवृत्ति सत्रका वगन करती है। ये कविताएँ विभिन्न भावों में मग्न जोड़ने में सहायक हैं। ये कविताएँ रसमस्कार रजित हैं। इनकी संख्या २९ है।

जनमेजय का नागयज्ञ (सन् १९२६) का छायावादी गीतप्रवृत्ति पर इमरी रचना है। नृत्य और स्वरमय भावनाओं वाला राष्ट्रीय गीत भी इसमें है। इनके गीत देशप्रम और राष्ट्रीयता से पूर्ण हैं। इनके गीतों में विश्वात्मा का वगन भी है प्रेम का जय भी है उद्बोधन गीत भी है। इस प्रकार के विविध रूप, रस और गद्यवाले गीत जनमेजय के नागयज्ञ में हैं। इसमें कुल १० कविताएँ हैं।

स्वदयुग (सन् १९२८ ई०) की कविताएँ ऐस लीलों के द्वारा गाई गई हैं जिनका जीविका गायन पर निर्भर है। ऐस लील सामान्यतः मद्रमने शृंगार गीत ही मुनाते हैं। दूसरे प्रकार के गीत मातृगुण द्वारा गाए गए हैं जिनमें भावुकता अपनी सारा शक्ति के साथ केंद्रित हो प्रस्तुत हुई है। दवसना जसी पात्रा इस नाटक में है जो मगीत को मग्नता मानता है। स्वदयुग में देवसना के गान मगीत की राग रागिनिया में बध्कर जावनमशन की भावभूमि पर अपनी अवतारणा करते हैं। साथ ही वे मिलन और विरह की धनीभूत व्यजना का मगीतमयी अभि व्यक्तित्व भी करते हैं। इनके गीत हमारे गीत हैं। देशप्रम के गीत भी कवि ने सशक्त स्वर में मुनाए हैं। आर्यगीत का गायन भी कवि ने उपस्थित की है और जावन म आनंद का प्रतिष्ठा का उपक्रम भी इन गीतों में है।

चन्द्रगुप्त (१९३१) के गीत अपने स्थान पर अनुपम हैं।—

'नत मस्तक गव वहन करते।
 जीवन के धन, रस वन ढरते।
 हे लाज भरे सौंदर्य।
 बता दो मौन बने रहते हो क्यों।'

मैदिथी का ऐसा दर्शन अत्यन्त दुर्लभ है। जीवन का माधुरीबुज, कोकिल के बोल, मधु की मधुरिमा, मतवाली कवित रात, प्रेम की बहती बात, सभा कुछ इन गीतों में है। भाषा निराशा, प्रेम-बलिदान सब कुछ इनमें दीख पड़ेगा। प्रणय गीत भी हैं और गीतों में रहस्यात्मकता भी है। हिंदा का सर्वोत्कृष्ट सांस्कृतिक राष्ट्रगीत भी इसमें है। अलका गाती है

हिमाद्रि तुंग शृंग से
 प्रबुद्ध शुद्ध भारती
 स्वयंप्रभा समुज्ज्वला
 स्वतंत्रता पुकारता

अमत्य वीरपुत्र हो, दृढप्रतिज्ञ मोच लो,
 प्रशस्त पुण्य पथ है बड़े चलो, चने चलो।

असह्य कीर्त रश्मियाँ
 विकीर्ण दिव्य दाह ली
 सपून मातृमृनि के
 श्को न शूर साहसी।

अराति स य सिंधु म, सुवाडवाग्नि स जलो
 प्रवीर हो, जयी बनो, बड़े चलो, बड़े बनो।

इसमें कुल १६ गान हैं।

ध्रुवस्वामिनी—(सन् १९३४) इस ऐतिहासिक रचना में दर्शनप्रधान कविताओं की आलाकर्मरी सरस सृष्टि है। मुख-दुखवाले मंगलमय इन गीतों में बिराग की, मंगल की, प्रकृति की रत्नजडा वाग्गा प्रस्फुटित हुई है, जिसमें शृंगार का पूर्ण निखार है। ध्रुवस्वामिनी में केवल चार पद्य हैं।

एक पृष्ठ की ४ तथा राज्यश्री की अग्र्य ६ कविताएँ भी 'प्रसादमगीत' में हैं।

ममवेत रूप में इन नाटकों के गीतों पर विचार करना अधिक सुंदर होगा। सबप्रथम हम उनके रचना शिल्प को लेंगे। इस दृष्टि से ये गीत नई भावभूमि की स्थापना करते हैं। यद्यपि गीतों को मगीत के तय-ताल पर बाधने का मोहक प्रबंध निरालाजी ने बड़े व्यापक पमाने पर किया था तो भी इन कुछ गीतों में मुर, तय रागरागिनी का समावेश कम जनप्रिय भित्ति पर स्थापित नहीं होता। नाटक में प्रयुक्त गीतों में जहाँ नृत्य और गायन का समुक्त निधान होता है वहाँ कवि का दायित्व बड़ा गहन हो जाता है। मुर-तय तथा ताल का सतुलित मम्मेल वहाँ परम आवश्यक होता है, अथवा रस की पूर्ण निष्पत्ति नहीं हो पाती। इनके साथ ही राग रागिणियों का समन्वय इसलिये भी आवश्यक होता है कि नाटक के गीत श्रव्य और दृश्य दोनों होने हैं। प्रसाद ने इन तथ्या का ध्यान रखा है। यहाँ काव्य कर्म और कठिन हो जाता है क्योंकि नाटकों में चरित्र का विकास भी सामान्य इन गीतों के आधार पर कवि को करना पड़ता है। प्रसाद के गीतों के गायक अनेक पात्रों का स्व-संस्कार उनके गीतों से प्रस्फुट होता है। प्रसाद ने गीतों के लिये जिन राग-रागिणियों का उपयोग किया, उनमें भरवी, दादरा वजली, बहरवा आदि का विधान सुंदर हुआ है। छंद विविध हैं भावनाओं के अनुरूप। हिंदी में जितने भी नाटककार हुए उनमें कत लागा में प्रसादजी ही एक ऐसे हैं, जिनके गीत, नाटक को छाप लत है और टैनीज की दृष्टि से भी

ऐसी भावभूमि पर स्थापित हाने हैं, जिनकी स्वतंत्र मौलिक सत्ता हिंदी की गीत परंपरा में स्थापित होता है।

जहाँ तब भावनाओं का प्रश्न है, प्रसाद के गीत मासल सौंदर्य के प्रति जहाँ मादक अनुसूक्ति के स्वर सुनाते हैं, वही उनमें भावोच्छ्वास की गभीर विह्वलता है। यह विह्वलता विशृंखल नहीं अनुभूति के गभीर मनोविश्लेषण पर आधारित है। प्रेम और प्रणयजय समस्त सूक्ष्म भावों का काशी की मस्ता के समान सरस और गभीर रूप में प्रसाद ने वणन किया है। इन गीतों में भावा की मृदुता के साथ साथ कवि के व्यक्तित्व का मौलिक छाप है। जो लोग प्रसाद के गीतों में 'ससज्ज और सलज्ज अबगुठन' देखकर घबडाते हैं, उन्हें नाटकों के ये गीत देखने चाहिए। इन गीतों में भी छायावाद का काव्यकौशल अपने चरम उत्कृष्ट पर मिलेगा किंतु भावा की दुर्लभता इनमें नहीं। अनेक को इन गीतों में परम सत्ता का दर्शन भी हो जाता है। पर अपनी दृष्टि में वह परम सत्ता न होकर प्रसाद का गभीर चिंतन है, जीवन का दर्शन है, जो अलौकिक नहीं लौकिक है। अनेक ऐसे भी हैं जो भावुकता और आवेश की ही प्रगीतों को आत्मा घोषित करते हैं, किंतु अपने देश के गाता की शक्ति में गभीरता और चिंतन का सनातन योग रहा है। पश्चिम के विशिष्ट गीत भी इसकी अपवाद नहीं।

भावनाएं चित्रमय, ध्वनिमय रमण्य होकर अपना मूल सत्ता स्थापित करने में सफल हुई हैं। इनमें पांच चतुर्श पदियाँ हैं जिनपर भाग विचार किया जायगा।

नाटकों में अनेक गीत राष्ट्र राष्ट्रियता और मानवता से सम्बन्धित हैं। प्रसादजा

सांस्कृतिक व्यक्तित्व के गभीर प्राणा थे। उनमें राष्ट्रीय गीतों में अंतर का ध्वनि एक गभीर सस्कारनिष्ठ चिंतन की भाँति व्यक्त हुई है न कि मंच का सस्ती भाव्यतामया चंचल परिवर्तित मायताभा की तरह। इस दृष्टि से यदि दखा जाय तो छायावाद कविया में प्रसाद और निराला दो ही "यत्कि सांस्कृतिक राष्ट्रियता के सदेशनाहक के रूप में दृष्टिगत हों। निरालाजी की सस्ती निरातरया मयी है और प्रसादजी का पुनररथा नमया। इन दृष्टि से प्रसाद अप्रतिम राष्ट्रीय कवि भी ठहरते हैं जिनकी राष्ट्रियता क्षणिक नहीं, समयोपयोगिता वादी नहीं, युग युग के लिये भारतभूमि के निवासियों में जागरण और आत्म सदेश की प्रेरणा जगाती रहेगी।

प्रसाद के नाटकों के गीत, इन दोनों दृष्टियाँ से, खडा बोला का गीत परंपरा को नई भावभूमि पर ले जाते हैं जिस भावभूमि पर निराला के आंतरिक और किमी के गीत नहीं रचे जा सकते, क्योंकि उनमें भारतीय भावपरंपरा है पौरुष की मृदुलता है, सनातन भावा का सांस्कृतिक उच्छ्वास है, लय में लान करने की क्षमता है और है साधारणीकरण का प्रमत्त तत्व।

(२) सॉनेट या चतुर्दशपदियाँ—

'प्रसादनगीत' में श्रीरत्नशंकर प्रसाद ने 'एक बात' में लिखा है कि 'इस सग्रह में पिताजी की चतुर्दशपदियाँ एक उनमें नाटकों के समस्त गीतों का सग्रह है।'

चतुर्दशपदी के दो अर्थ हिंदी में लगाए जा सकते हैं। एक अर्थ है चौदह पाँच की कविता और दूसरा है सॉनेट (Sonnet)। पहले अर्थ के अनुसार निम्नलिखित ३० चतुर्दशपदियाँ इस सफल में हैं—

१	हृदय के कोने-कोने से	(विशाल)	प्रसाद संगीत, पृ० ४०
२	अलका की किस	(अजातशत्रु)	" " ६०, माधुरी, व० ४, खं० १ स० २५, २५
३	चल बगत वाला अचल से	(")	" " ६३ " " स० २, १६२६
४	ससृष्टि के सुदरतम	(स्व दगुप्त)	" " ८४ मुधा, सितंबर २१
५	सब जीवन बीना जाता है	(")	" " ६१ इट्ट, मार्च २७ ।
६	आरु धूम की श्याम	(")	" " ६६ मनोरमा, स० २, १६२७
७	जावन वन म उजियाली है	(एक घूट)	" " १०३
८	जलधर की माला	(")	" " १०४
९	तुम बनव किरण	(चंद्रगुप्त)	" " १०६

ये तो नाटक की चतुदशपदियाँ हूँ । अथ चतुदशपदियाँ क्रमानुसार निम्नलिखित हैं—

१०	सराज	(इट्ट मार्च १९१२)	प्रसाद संगीत	पृष्ठ	१२३
११	खोलो द्वार	(" जनवरी १९१४)	" "	" "	१२४
१२	रमणी हृदय	(" " ")	" "	" "	१२५
१३	प्रियतम	(" सितंबर ")	" "	" "	१२६
१४	मेरी कचाई	(" अक्टूबर ")	" "	" "	१२७
१५	हमारा हृदय	(इट्ट जनवरी १९१५)	प्रसाद संगीत	पृष्ठ	१२८
१६	प्रत्याशा	(" फरवरी ")	" "	" "	१२९
१७	अर्चना	(" " ")	" "	" "	१३०
१८	स्वभाव	(" मार्च ")	" "	" "	१३१
१९	वसंत राक्ता	(" मई ")	" "	" "	१३२
२०	दशन	(" अगस्त ")	" "	" "	१३३
२१	मुख भरी पीद	(" सितंबर १९१६)	" "	" "	१३४
२२	स्वर्ण संधार	(चाद, नवंबर १९३५)	" "	" "	१३५
२३	दीप	(फरना)	(माधुरी वर्ष १, खंड १, सन् १९२२)	" "	१३६
२४	गान	(बानन कुमुम)			
		तीसरा सस्करण			
२५	मनुहार	(नहर)	(माधुरा, मार्च १९३३)	" "	१३७ ।
२६	प्राथना	(करणालय)	(इट्ट, फरवरी १९१३)	" "	१३८ ।
२७	पाइवाग	(फरना)	(चित्राधार प्रथम सस्करण)	" "	१३९ ।
२८	नहीं डरते	{ बाननकुमुम } { द्वितीय सस्करण }	(चित्राधार " ")	" "	१४० ।
२९	महारवि	{ बाननकुमुम } { तृतीय सस्करण }	(तुलसी प्रयागजी, मभा, १९२३)	" "	१४२ ।
३०	नमस्कार	(बाननकुमुम)	(इट्ट, जून १९१३)	" "	१४३ ।

चौह पक्तिवाली इन कवितामा पर विचार जगह जगह पर पहले लिया जा चुका है।

प्रसादजी का चतुदशपदियों की ओर इधर श्रीकिशोरीलाल गुप्त ने ध्यान आट्ट किया और वे मानेट के अय म इसका प्रयोग करते हैं। 'इदु' द्वारा श्री लोचनप्रसाद पाडेय ने इधर हिंदी का ध्यान मानेट का आर आट्ट किया।

प्रसादजी ने इस संबंध में अपने विचार एक पत्र में व्यक्त किया था—

'चतुदशपदी कविता हमने तीन छंदों में लिखा है। इदु की प्रतियों में आप उह देख सकते हैं।'

यह लोचनप्रसाद पाडेय के निम्नलिखित प्रश्न का उत्तर था—

हिदा में Sonnets (चतुदशपदा कविता) लिखे जाय या नहीं। Sonnets के लिये मात्रावृत्तों में से कौन सा छंद चुना जाय ? क्या यही 'वीर' छंद ? इसमें 'तुक' का क्या नियम हो ? क्या अग्रजों और बगला शलो पर हिंदी में भी तुक रहे।'

इन दोनों के प्रश्न और उत्तर दख लेने के पश्चात् यह सहज ही कहा जा सकता है कि चतुदशपदी का सोधा और सरल अर्थ सॉनेट है। यहा अग्रजा और बगला का नाम लिया गया है। सॉनेट की बगलावाली प्रणाली अग्रजी पर आधुत है। 'तुक' की बात भी स्पष्ट आई है। इसलिय अतुकात उन पदों को सॉनेट नहीं माना जा सकता जिसमें सयोग से चौह पक्तियाँ मात्र आ गई हैं। हिंदीवाले सॉनेटकारों के लिये उस समय बगला, उट्टिया और अग्रजा का ही द्वार सॉनेट के लिये खुला था, अतएव सॉनेट के संबंध में निवेदन कर लन क पश्चात् ही प्रसाद और सॉनेट

विषय पर कुछ निखना अधिक समीचान होगा।

सॉनेट—चौह पक्ति का कवितामा का सप्रिवेय चतुदपदा के अतगत होता है। इन पक्तिया में तुक की अति वार्य प्रथा है। तुक प्रणाली अलग अलग भाषामा तथा विभिन्न कविया में भिन्न भिन्न होती है। सामायत चतुदशपदा के लिये जिम छंद का उपयोग किया जाता है, वह छं अगनी भाषा के प्रमुख छं में स एक हाता है। छं विषय मात्र सॉनेट का अतिवार्य लक्षण नहीं माना गया पर एक भाषा में एक कवि एक हा छंद में प्राय सॉनेट लिखता है।

पश्चिम में सॉनेट का आरंभ इटली से होता है। पेट्रार्क (Petrarch) वहाँ इस पदति का प्रवर्तक था। इस पदति में तुक निम्नलिखित प्रणाली पर रहता है—

पक्ति	तुक	
१	a	
२	b	
३	b	
४	a	
५	a	
६	b	
७	b	
८	a	
९	c	या
१०	d	d

पक्ति	तुक	तुक
११	c	[c
१२	d	
१३	c या	[d
१४	d	

पेट्रार्कन पदति का प्रयोग इगलड, फ्रांस, अलेक्जेंडरिया में सामायत रोमास साहित्य के लिये किया गया। विभिन्न

दशो के प्रतिभासपन्न कवियों ने भिन्न रूपा में इसका प्रयोग किया है। यह विभिन्नता तुका का लेकर है। किमा ने—

पक्ति	तुक	पक्ति	तुक
६	c	१२	c
१०	d	१३	d
११	d	१४	c

और किसी ने—

पक्ति	तुक	पक्ति	तुक
६	c	१२	c
१०	c	१३	d
११	d	१४	c

तुक के उपयुक्त क्रम को आधार बनाया। पहला घाठ पत्तिया के तुक का क्रम यथापूर्व बना रहा।

सानेट के दूसरे रूप का प्रवक्तक शेक्सपियर (Shakespeare) है। इनने सानेट में तुको का क्रम निम्नलिखित रूप में रखा—

	पक्ति	तुक
	१	a
पद १	२	d
	३	a
	४	b
	५	c
पद २	६	d
	७	c
	८	d
	९	c
	१०	f
पद ३	११	e
	१२	f
अन्तिम	१३	g
अद्वैत	१४	g

शेक्सपियरियन सॉनेट पद्धति में गलियार्थधियन या अग्रजी सॉनेट पद्धति और पूर्ववर्ती

का पदाकन, इटैलियन या क्लसिकल सॉनेट पद्धति का नाम से लागू सबाधित करते हैं।

तेरवीं शताब्दी में ही सॉनेट का आविष्कार हो चुका था। इसके आविष्कार का श्रेय मिमिलियन पद्धति के कविया का है। यद्यपि दान (Dante) तथा उसके ममसामयिक साहित्यकारों ने भी इसका प्रयोग किया है।

बाद में पद्यार ने इसका रूप तथा तुक गाना की मरमाय स्थापना का। इसका प्रथम प्रयोग उमा अग्रनी प्रेमिका (Sura Genova) के प्रति मयादित प्रमानुभूते व्यक्त करने के लिये 'राइम' (Rime) में किया। इस मानक पद्धति का प्रयोग सालहवीं शताब्दी के प्रारंभ तक केवल इटली में होता रहा।

यूरोप के अन्य देशों में इसी समय नये पद्य रूप की आकांक्षा से इसे ग्रहण किया। स्पेन में बोमबान (Boscan) और गसिलासो डी ला वेगा (Garcilaso de la Vega) ने इसका प्रयोग प्रारंभ किया। इसी समय इंग्लैंड में प्रथम सॉनेट सर थॉमस व्യാट (Sir Thomaas Wyatt) ने लिखा। सन् १५७७ ई० में सर थॉमस व्वाट तथा उनके अनुवर्ती सॉनेटकार सर (Surrey) के सॉनेटों का संग्रह साम एण्ड सॉनेट्स (Songs and sonnets) नाम में प्रकाशित हुआ। व्वाट पदाकन के अनुगमन पर पूणत चला पर प्रतिम दो पत्तिया में उमन तुक का विधान अग्रजों टग से किया। सरे ने दाना प्रकार के तुका का प्रयोग किया। इन दाना के प्रथम न रूपसर (Spencer), सिडनी (Sidney) तथा पूणरूप से शेक्सपियर (Shakespeare) के सॉनेट का द्वार स्थापित किया।

सानेट है । वे लावनिया निम्न-
लिखित हैं—

पद्यसख्या १ निम्नी भी अर्थ मे सानेट नहीं
है । न तो उसमे समान पद है न किसी
सानेट प्रणाली पर तुक ही ।

अथ पदा के सवध म निम्नलिखित तथ्य
द्रष्टव्य है ।

पद्यसख्या २ छंद की मात्रा ३०

तुक्रप्रणाली

पक्ति १, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९, १०, ११, १२, १३ १४
तुक a a b b c c d d d d e e f f

पद्यसख्या ३ छंद की मात्रा ३०

तुक्रप्रणाली

पक्ति १, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९, १०, ११, १२ १३ १४
तुक a a b b c c d d d d e e f f

पद्यसख्या ४ छंद की मात्रा ३०

तुक्रप्रणाली

पक्ति १, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९, १०, ११ १२, १३, १४
तुक a a b b c c d d c c e e a a

पद्यसख्या ५ गीत है । उसमे १४ पक्तिया
ता है पर पहला दा पक्तिया टे, का
है । इसलिय यह मानेट नहीं ही है ।

पद्यसख्या ६ छंद का मात्रा ३०

तुक्रप्रणाली

पक्ति १, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९, १०, ११, १२, १३, १४
तुक a a b b c c c c a a a a e e

पद्यसख्या ७, ८, ९ गीत हैं ।

पद्यसख्या १० छंद की मात्रा ३२

तुक्रप्रणाली

पक्ति १, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९, १०, ११, १२ १३, १४
तुक a a b a c a d a e a f a g a

पद्यसख्या ११ छंद की मात्रा ३१

तुक्रप्रणाली

पक्ति १, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९, १०, ११, १२, १३, १४
तुक a a a a a a a a b b a a a a

पद्यसख्या १२ छंद की मात्रा २४

तुक्रप्रणाली

पक्ति १, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९, १०, ११, १२, १३, १४
तुक a a b b c c d d e e f f g g

पद्यसख्या १३ छंद की मात्रा ३१

तुक्रप्रणाली

पक्ति १, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९, १०, ११, १२, १३, १४
तुक a a b b c c d d e e f f g g

पद्यसख्या १४ अतुक्रात है ।

पद्यसख्या १५ अतुक्रात है ।

पद्यसख्या १६ अतुक्रात है ।

पद्यसख्या १७ अतुक्रात है ।

पद्यसख्या १८ अतुक्रात है ।

पद्यसख्या १९ अतुक्रात है ।

पद्यसख्या २० अतुक्रात है ।

पद्यसख्या २१

पद्यसख्या २२ छंद की मात्रा २८

तुक्रप्रणाली

पक्ति १, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९, १०, ११, १२, १३, १४
तुक a a b a c a d a e a f a g a

पद्यसख्या २३ छंद की मात्रा ३०

तुक्रप्रणाली

पक्ति १, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९, १०, ११, १२, १३, १४
तुक a a b b c c d d e e f f a a

पद्यसख्या २४ छंद की मात्रा ३०

तुक्रप्रणाली

पक्ति १, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९, १०, ११, १२, १३, १४
तुक a a b b c c d d e e f f a a

पद्यसख्या २५ छंद की मात्रा ३०

तुक्रप्रणाली

पक्ति १, २, ३, ४, ५, ६, ७, ८, ९, १०, ११, १२, १३, १४
तुक a a b b c c d d e e f f g g

पद्यसख्या २६ छंद की मात्रा २१

प्रथम १२ पक्तिया मे तुक की कोई प्रणाली
नहीं है । अन्तिम दूी पक्तियो मे तुक है ।

कहें कि उन्ही तीनों छत्रों में सौनेट लिखा पर १६१५ की यह बात प्राचीन नहीं है। मगध रूप में उक्त मन्त्रिका पर साम्राज्य दृष्टि में विचार करने पर यह प्रत्यक्ष कुशल मानद्वारा नहीं उक्त प्रारम्भ प्रमुख प्रयागराज मान लहते हैं।

मन्त्रिका पर उक्त प्रयाग जावनपथन बनना रहा पर बाद रास्ता व एता न निराल मग जिग। परवर्ती माहि व प्रभावित हाना।

वत्नेवाल यह उक्त मान हैं कि व भयत गर्भार भविष्यष्टा सांख्यकार व। इगलिये आज जन विदेगा म गुन का वधन उठा लिया गया है, उक्त भा भागे बदनर उ हान धन तथा गुन माना का वधन उठा दिया, प्रसाद व प्रति भास्वा रजन हूँ भा, मग मानन का जा तयार नही है। इगलिये सानेट के छत्र म मी उक्त प्रमुख प्रयोगकर्ता हूँ मानता हूँ। यह प्रयाग उ हान उक्त पत्र लिखा। मगलिय इगका यह व इगलिये का दृष्टि से है।

प्रसाधन = वा०, १८१।
[सं० पु०] (सं०) शृंगार करना। शृंगार की सामग्री से मज्जा का काम पूरा करना। कभी से बाल मवारता।

प्रसार = वा० कु०, १ ३६, ४३।
[सं० पु०] (सं०) विस्तार। संचार, गमन। जिगा बात का चारा धीरे फताना या मुनाना।

प्रसारित = वा० १८०।
[वि०] (सं०) विस्तार किया हुआ, फैलाया हुआ। सगत भाषण आदि की कविता या रचियों द्वारा प्रसार किया हुआ।

प्रसिद्ध = वा० २३६।
[वि० पु०] (सं०) विख्यात मशहूर। भूयित, प्रलटत।

प्रसूती = वि०, ३८।
[सं० जी०] (सं०) प्रसव। जनन। वरण। प्रवृत्ति।

उपति म्यान। गतति। यह स्त्री जिगने प्रसव किया हो। जच्चा।

प्रस्नार = का० १७।
[सं० पु०] (सं०) विस्तार। फूला धीरे फता की मज या गया। आधिपत्य। परत। घाम का जगत। छंद नाम्न त प्रगुमार नन प्रत्यया म म प्रथम जिगने छत्रा व नद की मन्त्रा, उनर म्पा का वगण होना है। वस्तुप्रा, प्रवा आदि के वगयद मगुना या वगी व क्रम या विद्या म गगत तथा मभव परिवर्तन करना।

प्रस्तुत = वा० कु० ८१ १०१। ल० ७३।
[वि०] (सं०) प्र० ४ ६७।

जिगने स्तुत या प्रशमा का गद हो। जा बटा गया हो। कवित। प्रागगिन। उद्यत। निरान। उगुक्र।

प्रस्तुति = वा० कु०, ४४ २७७। वा०, ३३।
[वि०] (सं०) विक्रम, मिला हुआ। प्रगट।

प्रहर = वा० १७ ३४।
[सं० पु०] (सं०) दिन रात का आठवा भाग। ती पटे रा ममद।

प्रहरियां = का० १८०।
[सं० पु०] (वि०) पहरवाला। पहर पहर पर घटा वजावे बना, घाडवाता।

प्रहरी = वा० कु०, ६८। वा०, १८५, १८६,
[सं० पु०] (सं०) २०५। वि०, ६८।

पहरा दनेवाला, पहरवाला। पहर पहर पर घटा वजावेवाला द्वारपाल।

प्रहरीसा = वा० कु० ६६।
[वि०] (वि०) प्रहरा के ममान।

प्रह्लाद = वा० कु०, ६४।
[सं० पु०] (सं०) विष्णु का परम भक्त दानव।

[प्रह्लाद—द्विष्यवशिषु नामक असुर राजा का पुन। इसका माता का नाम कयाधु था। विद्वानों व अनुभार हाभाश्व्याय परवात (पुण्या माभा का राजा) भी इस कहा गया है। यह विष्णु का परम भक्त था। इसका पिता असुरेंद्र द्विष्यवशिषु न विष्णुभक्ति के कारण इस हाथा के परा द्वारा कुच-

लवाया, सर्प से डसवाया, पर्वत से गिराया, गडगड म गाढा, विप बिलाया, कारछीपास स बांधा, शस्त्र से मारा, अग्नि में जलाया—सार पड्यत्र किए किंतु विष्णुतृपा से यह बचता गया और अत म नृसिंह का रूप धारण कर विष्णु ने हिरण्यगण्डिपु का वध किया। यह विष्णु का नृसिंहावतार भी माना जाता है। इद्र पद प्राप्त करनेवाला यह सधप्रथम दानव था। इमकी पत्नी का नाम दवा पुत्र का विरोचन एक बच्चा का नाम रत्ना था।]

प्रह्लाद सट्टा = का० कु० ६४।

[वि०] (म) प्रह्लाद के समान।

प्रसिक्त = का० २४२।

[वि०] (स०) आनंदित, हृषित सुख।

प्राप्त = का० १४ १० २१७ २२१ २३३,

[म० पु०] (स०) २४२ २४५। म० १७।

अथ, सामा सिरा। दिशा। खड। प्रदेश, किसी बड देश का कोई शासक भाग। एक ऋषि का नाम।

प्राकार = प्र० ४।

[स० पु०] (स०) परकोटा। चहारादीवारी।

प्राकृतिक = का० कु० ५१। का०, ३५।

[वि०] (स०) जो प्रकृत से उत्पन्न हुआ हो। प्रकृति के विकार। साधारण। भौतिक। सहज, स्वाभाविक।

प्राण = का० कु०, १०८। का०, ३०, १७६।

[स० पु०] (स०) भ० २५।

आनन। सहन। एक प्रकार का ढोल।

प्राची = आ०, ३२ ६७। का० कु० ८ १०

[सं०ली०] (स०) ६५। का० ७७ १६८, १८१, १८४ १६७, २१८। चि० १८, २८, १६० १६३। ऋ० ११, २५ ८८। प्र० १५। ल०, १०।

पूर्व दिशा जिधर सूरज उगता है।

प्राचीदिशा = चि० ६।

[स० स०] (हि०) वह दिशा जिनम मूय निकरता है।

प्राची नभ = का०, १७१।

[स० पु०] (स०) पूर्वो या पूर्व का आनाग।

प्राचीर = का०, १४६, २१७।

[स० पु०] (स०) चारो ओर से घेरनेवाली गीवाल। चहारादीवारी, परकाटा।

प्राण = का०, १२, १८, २६। का०, कु०, ७,

[म० पु०] (म०) ७३, ६३। का०, ६६, ११७ १३६, १४०, १५१, १६६, १६२ २६६, २६८। ऋ०, २४ ३३ ६१ ८८। म०, ५। ल० २७, २६, ५३ ५४, ५५।

शरीर म रहनेवाली पाँच वायुओं म एक वायु। शरीर का वह हवा जिसस नर जीवित कटालता ह। सौम। परब्रह्म। इद्रिय। प्राण सदान कोई पदाथ या यक्ति। प्रम पात्र। का य की वह क्रिया जिनम दस दाप मानाओ का उच्चारण हो सक।

प्राण अघार = का० कु०, २०।

[स० पु०] (हि०) प्राण का आघार। प्राण रक्षक।

प्राणघातक = ऋ०, ४८।

[वि०] (स०) प्राण हरण करनेवाला।

प्राणधन = का० कु० ६३। चि०, १८५।

[स० पु०] (म०) प्रिय। प्राणरूपी धन।

प्राणधारी मन = चि०, १४०।

[स० पु०] (हि०) प्राणियग।

प्राणनाथ = क० १७।

[स० पु०] (स०) प्राणा का स्वामा। प्रिय, पति।

प्राणपपीहा = का० कु०, १६।

[स० पु०] (म०) प्राणरूपा पपीहा। प्रिय स जियुक्त प्राण। प्रिय, वियोग म प्राकुल प्राण।

प्राणप्यारे = ऋ०, ४३।

[वि०] (स०) प्राणा को प्रिय लगनेवाला। प्रिय।

प्राणप्रिय = का० कु० २२। का० २१४। चि०,

[वि०] (स०) १८७। प्र० १२।

प्राणतुय प्रिय। प्राणा क प्रिय।

प्राणभरी = ल०, ५२।

[वि०] (हि०) प्राण स भरा हुई। प्राण स पूरा।

प्राणमयी = वा०, १६३।
 [वि०] (स०) प्राण से युक्त।
 प्राण सट्टरा = वा०, १६३।
 [वि०] (स०) प्राण के समान प्रिय।
 प्राण समीर = वा०, २७।
 [स० पु०] (स०) प्राण प्रदान करनेवाली वायु। इनका जानवाली वायु।
 प्राणाधार = वा० कु०, ६३। वि० १२२।
 [स० पु०] (स०) जिनसे वारण प्राण रह। परम प्रिय।
 प्राणियाँ = क० १३३। ल०, १२ १३।
 [म० पु०] (स०) प्राणा या वटुवचन।
 प्राणी = क०, ३८। वा० १६ ११६ १२७
 [म० पु०] (स०) १२६ १५७ १६ १७० २१,
 २१० २२२, २४० २७०। प्र०,
 १०, १८। ल०, ३२, ४७, ७७।
 जिनम प्राण हा। जीव। प्राणवाला।
 प्राणेश = क० ५८।
 [स० पु०] (स०) प्राणा के स्वामी (प्रिय, पति, ईश्वर)।
 प्राणों = वा०, १४५ ११६ १६१ १६६,
 १७७ २००, २३७ २८८। म० ५।
 प्राण का वटुवचन।
 प्रात = घा०, ३१ ३२। ल०, ३१, ४६।
 [म० पु०] (स०) प्रभात, प्रात काल, सबेरा।
 प्रात कर्म = वा० कु०, १०१।
 [स० पु०] (स०) प्रात क्रिया।
 प्रात सा = वा०, १०१।
 [वि०] (प्र भा०) प्रात वान सा रक्तिम। कत या मुल
 करानवाले के समान।
 प्रात हिमकन सौ = वि०, १८१।
 [वि०] (प्र भा०) प्रात कानीन ग्राम कणा के सह्य।
 प्राहुर्भात = ल०, १२।
 [स० पु०] (स०) आत्रिभात।
 प्रात = वा०, ६८। वि०, ३५ १४०, १४१
 [स० पु०] (प्र भा०) १५६ १६५, १८६। क०, ३७।
 ल०, २८।
 द० 'प्रास'।
 प्रातन = वि०, ११, १७५।
 [स० पु०] (प्र भा०) प्रात का वटुवचन। द० प्राण।

प्रात प्यारे = वि०, १७०, १७५।
 [म० पु०] (प्र भा०) प्राणा के प्रिय जगनेवाले प्रिय।
 प्रात = क०, ७। वा०, ११८, १६७। घा०,
 [म० पु०] (स०) ७२।
 प्रदश।
 प्रात = वा० कु० ३५ ४२ १११। का०,
 [वि०] (स०) १८६ म० १५।
 लव्य, पाया हुआ। उत्पन्न। ममुपस्थित।
 प्राति = वा कु०, ३०। वा०, २६६।
 [स० लो०] (स०) उपलब्धि प्राप्ति, मिलना। रमीद।
 पट्टक आगमन। अष्टसिद्धियों म पांचवी
 सिद्धि। फलित ज्योतिष के अनुसार
 म्यारहवाँ म्यात। भाग्य। व्याप्ति।
 प्रदेण। मयात। मेत।
 प्राप्य = वा० १६५, २७०। क० २१।
 [वि०] (स०) पान या प्राप्त करने योग्य। बराया जा
 किसी से मिलनेवाला हो।
 प्राय = प्र०, ५।
 [प्र०] (स०) अन्तर, धकिक अवसर पर, लगभग,
 करीब करीब।
 प्रायश्चित्त = वि० ३२।
 [स० पु०] (स०) वह शास्त्रीय ऋष, जिसम कर्ता का
 पाप छूट जाता है। जन मतानुसार नौ
 प्रकार के कृत्य जिनके करने से पाप
 छूट जाते ह। शालोचना, प्रतिक्रमण,
 विवक, व्युत्सग, तप, छेप, परिहार
 और उपस्थान दोष।
 प्राप्य = वा० कु०, ६६।
 [वि०] (स०) आरभ किया हुआ।
 [म० पु०] (स०) वह कर्म जिसका फल आरभ हो चुका
 हो। भाग्य, किममत। भावी।
 प्राग्भ = वा० कु० ४७। का०, ७३।
 [म० पु०] (स०) आरभ, आदि।
 प्रार्थना = वा० कु०, ८१। वा०, १८६। वि०,
 [म० लो०] (स०) ७४। क०, १८, ६७। म०, २१।
 ल०, ७१, ७३।
 जिसी से कुछ माँगना या चाहना।
 सविनय कथन। विनय। एक तांत्रिक
 मुद्रा।

[प्राथेता—मनमय इष्ट वना २ विरग्य १, भावग्य १६६७ गि० म प्रतागिता तथा भरना म १०० ६७ ६८ पर संरति। प्राज घपयो हा प्राता। घपना रमणाय रूप मुष्ट हमारो मयम है प्राणान। यव ता प्रा- तुम्हारा मात्र अभिनव है। तुम म अण्य गौरा वा विगय उच्य हमा है और तुम जग मा गीतवमया मयुतागि म गत हा। तुम्हारा महज गीत्य मातक मन्त्रि म गमान है। मन्मयुत तुम्हारा य दग तिनना नैमगित है। जिम तनन एक बार। तगने पर तम उमम नान हा मग। यन्ति तुम स्वय घपना रूप दया ता निश्चय हा तुम घपन ऊार ही आमन हा ज मा। यन्ति तुम प्रांग केर हा ता मारी मुष्टि हा मयु वा धारा म स्नान तर न और मगर मरद वा मगा कामल गान करना हृद व सन। मर ह्यय वा यह प्राथता है और जम ज मानर ता प्राथता है कि जनमू ता तुम्हारा गीत्य निहा- और तुम्हारा हा दगित म मुके तावन से मुक्ति मिल।]

- प्राथेय = का० १३।
 [नि०] (सं०) प्रलयरात्रि पलवदाता प्रलय का।
 प्राह = चि० ६६।
 [क्रि०] (सं०) बोला।
 प्रियगी = चि० १३२।
 [सं० पु०] (स) बगली नामक अन्न टागुव। पापल।
 कुटका। राजिका।
 प्रियवदा = चि० ५६ ५६ ६७।
 [नि०] (१) प्रिय वातने घाली।
 [मं० खी०] (सं०) एक पात्रा का नाम।
 [प्रियवदा—कश्च कं आथम म रहनवाला और शत्रुनला का सखा। यह पौराणिक पात्र नहीं ह। अभिमान शत्रुतल म कल्पना द्वारा हमकी रचना वा लिखत ने का है।]
- प्रिय = का० पु०, २४, ७५, ६३। वा०, १२७

- [१] (१०) १३। ११०, २४६। नि०, २४ ६४, १५६, १७० १७४ १७७ १८६।
 जिमम म हा प्यारा। मनाइर।
 [मं० पु०] (मं०) मं० ११। मं०, १६।
 पति रमाया। कानिपय, एत प्रार क रिया। प्रदि। बगता। हिन भगई। वा। मतात। घमामा। मुंर। ईशर।

- प्रिय अतु-गिला = १०, ११।
 [मं० पु०] (मं०) प्रिय वा मरा प्रा।
 प्रिय कर = प्र० १८।
 [मं० पु०] (मं०) प्रिय वा हाय। धान-मयक वा रूप प्र-यम्पु।
 प्रियतम = घो० १७। वा० पु०, २० २३
 [नि० पु०] (सं०) ७७ ८३। वा० २५०, २६६। नि० १८८ १६०। मं० २१ ४४। प्र०, १६ १७। मं०, १७।
 मन्मे वदर प्यारा। परम प्रिय।
 [मं० पु०] (सं०) पति स्वामा।

[प्रियतम—इष्ट वना १ मन् २ विरग्य ३ मितवर १०१४ म प्रवागित तथा भरना म १०० ४४ पर सनति। दसिण प्रसाद व सानेठ या बमुदगपत्निया। यह रचना वीरछन्द म है। ह प्रियतम प्रौरा न प्रति तुम्हारा प्रम है इनका मुके दुख नहीं है लेकिन जिमके तुम एकमान गदारा हो वही वही न भुना दिया जाय। अपने को अपने प्रति प्रणाय कर हमन तुम्हें प्रफित कर दिया लेकिन तुमने हम जो क्षण भर का समय लिया वह प्रम नहीं करणा करन के लिये था। अन् भा अक्ष्छा है कि मुके नाहक बदनाम न करो। तुम्हारा खेल तो हा चुका क्या मरा भा काई काम हागा। तुम्हारा याद का खबर हम जावन हा त्याग देंग। यथ म पुनामिलन का लाभ न दिलाप्रा। मुके प्रौर कुछ नहीं चाटिए बवल अपनेता सा। अलिा मे जब मुके स्थान दिया है ता आंगु वा

तरह मत बहाग्नो। मेरे कामल मन को रचत चोट न पहुँचे। हम तुम्हारी धासो में सदा पुतली बनकर चमकते रहे क्योंकि हे जीवनधन। तुम्हारा जो हमारे प्रेम के सबध मे याप है उसे लिखते हुए कलम और कागज दोना काँप जाते हैं। देखिए भरना।]

प्रियतममय = प्र० १७, १८।

[वि०] (सं०) प्रियतम का स्वरूपमय। वण कण मे प्रिय के आभास से युक्त।

प्रियदर्शन = का० कु०, ५१। प्र० ६।

[वि०] (म०) प्रिय लगनेवाला दशन। जिगके दशन स प्रस नता हा। प्रिय का दशन।

[प्रियदर्शन—द्रौपती स्वयवर के उपरात हुए युद्ध म द्रुपद क इस पुत्र का कर्ण ने बध किया था।]

प्रिय भान = का० कु०, ६७। वि०, १८०।

[वि०] (म०) प्राण तुय। प्रिया, प्रिय (सवाचन)। अत्यधिक अच्छा लगनेवाला (व्यक्ति या रूप)।

प्रिय मनोरथ = का० कु०, ७५।

[सं० पु०] (सं०) प्रिय की इच्छाए। अत्यन्त रुचनेवाली अभिलाषाए। प्रिय सबधी हादिक शुभ, सुराद कामनाए।

प्रियलक्ष्य = का० कु०, ७५।

[सं० पु०] (म०) मुखद लक्ष्य, जिम लक्ष्य मे प्रियता निहित हा।

प्रियदहन = का० कु०, १८।

[सं० पु०] (म) प्रिय का मुख।

प्रियवर = वि० ५८, म०, २१, प्र०, २१।

[सं० पु०] (म) सर्वाधिक प्रिय। जिससे बचकर और कार्द न हो।

प्रियत्रत = वि०, ६६।

[सं० पु०] (म०) एक राजा का नाम।

[प्रियत्रत—शतरुषा का पुत्र तथा स्वायभुव मनु क पुत्रा म म एक। इनक मत्न और पराक्रम स सप्तद्वीपा एव सप्तसिधुद्रो का निर्माण हुआ था।]

प्रिय सगम = का० कु० ३३।

[सं० पु०] (सं०) प्रिय का मिलन। प्रिय के आलिंगन, सभाषण एव सयोग से मिलनेवाले सुख का भाव।

प्रियहि = वि०, १५।

[सं० पु०] (म० भा०) प्रिय का।

प्रिया = वि०, १६२।

[सं० स्त्री०] (सं०) प्रिय का स्त्रीलिंग।

प्रिये = का० १६, १७, २६। का० कु०,

[सं० स्त्री०] (सं०) ६७। म० १४।

'प्रिया' का सवाधनमूचक शब्द।

प्रीत = का० कु० ११२, ११३। वि० १८५,

[वि०] (सं०) १८६, १८८। म०, ६१।

प्रणय, आह्लादमय, सपुष्ट, धारा।

प्रीति = वि०, १५, ३५, १०६, १५७, १७२,

[सं० स्त्री०] (म०) १८३।

हृष, आनंद, प्रेम। कामदेव की स्त्री का नाम जो रति की सौत थी।

प्रेम = आ०, ३२, ४२, ६४। का०, ८, १४,

[सं० पु०] (सं०) २१, २८। का० कु०, २६, ३१, ६५,

७६, ८५, ६३, १११, १२४। का०

४० १५३, १६५, २४३, २६४।

वि०, १८, १६, ५८, ७३, ७४, ११०,

११६, १६२, १६५, १६८, १७०,

१७४, १७५ १८१, १८३, १८४,

१८६, १८०। म०, ११, १६, २४,

३४, ३८, ४४, ४६, ८६। प्र० २,

१३, १६, १७, १६, २० २२, २३,

२४। म०, १७। ल०, ४३, ७५।

मन की वह आनंदमयी वृत्ति जो किसी

को सर्वोत्कृष्ट समझकर सदैव उसके

साथ रहने के लिये प्रेरित करती है।

मुहोवत, प्रीति, प्यार, स्त्री और पुरुष

का ऐसा पारस्परिक स्नेह जा बहुधा

रूप, गुण एव वामनामानिध्य के

कारण होता है।

प्रेमत्रज किंजल्क = का० कु०, २०।

[सं० पु०] (सं०) प्रेमरूपी कमल का पराग। प्रतिगय सीदर्शानुप्राणित, आनन्दयुक्त सरसता का भाव।

प्रेमकथा = सं०, १४।

[सं० जी०] (सं०) प्रेमिया की कहानी। प्रणयशिली कथा।

प्रेमकला = का०, ७६।

[सं० जी०] (सं०) प्रेम व्यापार में होनेवाले नैपुण्य का भाव।

प्रेमकल = वि०, १८०।

[सं० पु०] (सं०) प्रेम सबधी अभिलाषाका को पूर्ण करने का वृत्ति और लताघ्रा से घिरा हुआ स्थान जहाँ प्रणया बठकर स्नेहालाप किया करते हैं।

प्रेमचन्द्र प्रसिद्धि = प्रे०, ११।

[सं० पु०] (सं०) प्रमरूपी चंद्रमा की परछाईं। प्रेमियों की अति सरम शांतिदायिनी स्निग्धता का भाव।

प्रेमचलाप माला = अ०, ३६।

[सं० जी०] (सं०) प्रेमरूपी बादलों की माला। प्रिय सामिलनात्मक आभलापाका को तीव्रता का भाव।

प्रेम जाह्नवी = प्र०, २२।

[सं० जी०] (सं०) प्रमरूपी गंगा, प्रेम की पवित्रता का भाव।

प्रेमतीर्थ = वि०, १५।

[सं० पु०] (सं०) प्रेमरूपी तीर्थ, प्रेम में मनोमलहारिता का भाव।

प्रेमधारा पारा = का०, ६३।

[सं० पु०] (सं०) प्रेम की धाराका प्रा बधन। प्राणियों की प्रणय की वृत्तियों का पारस्परिक बधन।

प्रेम नाव = प्रे०, १०।

[सं० जी०] (सं०) प्रेमरूपी नाव। जीवन के दुःसागर से पार करनेवाली आनन्द रूपिणी नौका।

प्रेमनिश्चेतन = अ०, २६।

[सं० पु०] (सं०) प्रमरूपा घर, प्रम का आवास।

प्रेमनिधि = का०, ७०, ३।

[सं० पु०] (सं०) प्रेम का खजाना। प्रीति का निधि। प्रेम का आश्रयस्थान।

प्रेमनिधि जल = का०, ७०, ३१।

[सं० पु०] (सं०) प्रेमरूपी सिन्धु का जल। प्रेम में मिलने वाला दिव्यानन्द।

प्रमपताना = अ०, ६५।

[सं० जी०] (सं०) प्रेमरूपी ध्वजा, प्रेम के महत्तम उद्देश्य का भाव।

प्रेमपथ = का०, ७०, ६३। प्रे० १४।

[सं० पु०] (सं०) प्रेमरूपी पथ। वह पथ जिसमें सारा रिक्त जीवन के क्लेश दुःख न दे सकें और प्रेमी दुःखाधिक्य में भी परमानन्द का अनुभव किया कर।

[प्रमपथ- सर्वप्रथम द्दु कला ५, खंड २, किरण ५, नवंबर १९२४ में प्रेमपथिक के खंडी बोला में प्रकाशित कुछ अंश का पूव रूप।]

प्रेमपथिक = प्र० १, १८।

[वि०] (सं०) प्रमपथ का राही, प्रणयी प्रेमी।

[प्रेमपथिक— द्दु कला १, किरण २ भाद्रपद १९६६ वि० में सर्वप्रथम प्रकाशित। ब्रजभाषा में इसमें प्रेमपथिक की कहानी है। प्रेम के प्रति प्रेमपथिक का समपण भाव इस कविता में दिखाया गया था और ब्रजभाषा के इसके इस रूप का स्वयं कवि न खंडी बोली में परिवर्तित कर किया जो प्रेमपथिक के नाम से बाद में पुस्तकान्तर प्रकाशित कर दिया गया।

‘प्रमपथिक’ प्रसाद जी की वह प्रारंभिक रचना है जो अपनी आर अनायास ही लोगों का ध्यान आकृष्ट कर लेती है। यह पहले ब्रजभाषा में ६६ पंक्तियों में प्रकाशित हुई थी और आज इसका जो रूप मिलता है वह २७० पंक्तियों की खादा बोना में है। इसके रचयिता

प्रथम सस्करण मे प्रसादजी ने जो निवेदन किया है वह अत्यन्त महत्वपूर्ण है, कालक्रम का दृष्टि से—

‘इस छाट्टी सा पुस्तक के लिये किमा बडी भूमिका की आवश्यकता नही। केवल इतना कह देना अधिक न होगा कि यह काय ब्रजभाषा म आठ वष पहले मैंने लिखा था जिसका कुछ अश तो ‘इदु’ के प्रथम भाग मे प्रकाशित भी हुआ था। यह उसी का परिवर्द्धित परिवर्तित तुकाविविहीन हिंदी रूप है। (प्रथम सस्करण से)

विनीत

जयशंकर प्रसाद’

काशी, माघ शुक्ल २, १९७० व० ।’

प्रसाद की भावस्वच्छदता का पूर्ण प्रातिनिधिक करनेवाली यह उनका पहला रचना है। यह भावनामूलक लघु प्रबंध है। भावना का आधार मानरर कथा की कल्पना लेखक न की है। उस कल्पना म प्रतीक के सहार प्रकृति का आधार ग्रहणकर जीवन के मानवीय प्रेम रहस्य का उद्घाटन करने का आयास किया गया है। इसम भावनाआ की व आरम्भिक सरल रत्ताण हैं जिसम प्रसाद का साधना जावनभर रग भरती रहती। अतएव प्राय हिंदी के सभा समीक्षक और विद्वान् एक स्वर स इसे अत्यन्त महत्वपूर्ण रचना मानत हैं।

प्रमपथिक की कहानी सत्तम म इस प्रकार है। एक तपस्वी क आश्रम म बठ एक पथिक उसके आश्रम पर अपनी राम कहानी सुनता है। कभी दो पढानी ननी क विनार आनद नगर मे रहत थे। एक को लडकी और दूसरे की लडना था। दोनों हिलामलकर परस्पर खेलते थे और गाम होने पर उनक माता पिता उह चक्वा चक्ई सा विलग कर दत थे। प्रभात होने व पुन

मिल जाते। लडके का पिता मरते समय लडकी के पिता को याती के रूप म अपना लडका सौंप गया था। अब वे खुलकर खेलते थे। अष्टमी के आकाश के तारो को भी वे सहज ही गिन लेते थे। जाडे की रात भी वे बाता में काट लेते थे। उनकी सध्या और प्रभात दोनों ही आभामय होते थे। एक दिन उसके चाचा ने उसे बताया कि उसकी प्रेयसी पुतली का फलदान जा रहा है। प्रेम का चद्रमा मेघ के भीतर छिप गया। हृदय का प्रेम बुचल दिया गया। भनहृदय युवक घर छोडकर चल पढा। अब सारा सतार, सारा समाज उसे परदश प्रतीत होने लगा। हृदय के फकोले प्रीम् वनकर बह जाते। एक दिन वह शिला पर बठकर चद्रमा को निहार रहा था और उस चद्रमा मे शत शत रूप मे चमेला उसे दीख पडी। चद्रमा क प्रतिबिंब से देवदूत सा उतरकर कोमल कठ सं कोई कहने लगा—

अभिलाषा मकरद सूख
जावेगा, मुरका जावेगी,
जिस घरणी से उठी हुई था,
उस पर ही गिर जावेगी।
‘लीलामय की अद्भुत लीला
किसे जानी जाती है,
कीन उठा सकता है धुपला
पट भविष्य का जीवन में।
जिस मंदिर मे देख रहे हो
जलता रहता है कर्पूर,
कीन बता सकता है उसमें
तेल न जलने पावेगा।’
‘पथिक ! प्रम की राह अनोखी
भून भूलकर बनना है,
घनी छाई है जो ऊपर
तो नीचे बटि बिछे हुए।
प्रेमयज्ञ मे स्वार्थ और
कामना हथन करना होगा,

सम तुम प्रियतम स्वर्ग विहारी
 होने का फल पाओगे ।
 × × ×
 'इसका परिमित रूप नहीं
 जो व्यक्तिमान म बना रहे,
 क्याकि यही प्रभु का स्वरूप है
 जहाँ कि सबको समता है ।
 इस पथ का उद्देश्य नहीं है
 श्रात भवन में टिप रहना,
 किंतु पहचाना उस सीमा पर
 जिसक आगे राह नहीं,
 अथवा उस आनंद भूमि म
 जिसकी सीमा कहीं नहीं ।
 यह जो केवल रूपजय है
 मोह न उसका स्पर्धा है ।
 यही यत्तिगत होता है
 पर प्रेम उदार अनन्य प्रहा,
 उममे इमम फल और
 सरिता का सा बुद्ध प्रतर है ।

× × ×
 'प्रियतम मय यह विश्व निरखना
 फिर उमरों है विरह कहीं,
 फिर तो बड़ी रहा मन मे,
 नयनों में प्रत्युत जगभर मे,
 वहाँ रहा तब द्वेष किता से
 क्याकि विश्व ही प्रियतम है ।
 हा जब ऐसा वियोग ता
 सयोग वही हो जाता है
 यह सनाए उड जाती है
 सत्य सत्व रह जाता है ।'
 बोसाहल था, बहुत बडा
 उत्सव था माना घर भर म,
 तोरण बदनवार सजाए
 जात थे प्रति द्वारा म,
 विनु हमारा हृदय स्तम्भ था
 क्या यह हानिवाला था ।
 पुतली व्याही जावगी, जिमस
 बह परिचित कभी नहीं ।
 यही ध्यान था उठता मन म
 'हाय प्राणप्रिय ! क्या हागा ?'

जिम तापसी की आश्रम म क्या मुनाई जा रही
 थी वही चमत्ता था । चमत्ता का सौन्दर्य
 अत्र विनष्ट हो चुका था । वह लाछिना
 विषवा समाज स पाठित प्रनाडित हा
 एरान सपस्यांतर जीवन क दिन का
 रही थी । जीवन क अतान क चित्रा न
 कल्याण माग म दाना क चरणा को
 बन्दन का प्रेरणा दा । परिणाम यह
 हुआ कि व गल गन म नहीं शरीर
 शरीर स नहीं, हृदय हृदय स मिल और
 फिर महासौंदर्य के मागर म जहाँ
 अरुण शांति विराजता है मुक्त हा मिलने
 का प्रेरणा म सवन्तित हुए । उनके
 तपन की पीत विभा सान का समार
 बनाने लगी । दाना क समुल अरुणाय
 था विश्व आत्मा' का सौंदर्य उह दीर
 पडा । यह तो मच्चन मे प्रेमपथिक
 की क्या हुई ।

मनु १११४-१५ ई० की यह रचना है और
 प्रसादजी का यह रचना समाज के बचन
 के प्रति ऐम सजनात्मक विद्रोह की
 परिचायिका है जो युगद्रष्टा माहित्यकारो
 द्वारा हुआ करता है । वे परपरा की
 याती का अग्नि म स्वाहा कर नए युग
 का निमाण नहीं करते अपितु परपरा
 पर जमी रूढि का मल को धो उस
 प्रभावान बनाते हैं । इस आलोच स
 बतमान समाज प्ररणा ग्रहण करता है ।
 प्रसादजा भा यहा अपने दश का परपरा
 नहीं भूले । उन्होंने उस देश का वर्णन
 किया है जहापर पथिक पदा हुआ,
 फला पूना जहाँ उनके जीवन की
 फुलवारी म्मंहसित्त हुई । वे उसस
 बट्लाते हैं कि वह नगरा उसक लिये
 उपा की पहिला किरण था । उस
 नगरी मे सभी सच्चरित थे, समुष्ट थे,
 सदृष्टस्थ थे । दया बहा सातस्वती
 हातर बहती थी । वहाँ सभी तिरागा
 थ । गाथें दुःखशाला हुआ करती थी ।

वहा ग्राम गीतो की घुन मे मुख विलास करता था। सब प्रफुल्ल थे। सब अपने अपने कार्यों मे परिश्रम करते थे। वहा आनन्द का स्रोत उमड़ा करता था। ऐसी विराट कल्पना सामान्यत आनन्दवादी धारा के लोग जीवन के पति करते हैं। कटना न होगा कि 'दहिक, दविक, भौतिक तापा' वाली कल्पना से यह वैदिक कल्पना मानव के लिय कम मनोहारी नहीं है।

समाज के कारण प्रेम की अमंगलता पर कथा का विकास जिस रूप में किया गया है वह भी सबया भारतीय कथा प्रणाली है। प्रेमी और प्रेमिका पिता का विरोध नहीं करते, अपितु सहज ही उनके सत्तोप के लिये अपने हृदय की कुमुद की भाँति कुचल जाने देते हैं, मोन रहकर। हो सकता है इस चरित्र की दुबलता व लोग भाँते जो उन स्वच्छता व हिमायती हैं जिसका छार ही उच्छु खलता से आरंभ होता है। प्रेम विद्राही नहीं, स्नेही होता है और मच्छा प्रेम आत्मसमपणमय। साथ ही उम नगरी का युवक जहाँ चिर आनन्द स्थापित रहता है, विद्राहा हारकर अपना ही नाम चढ़ा सकता है, उनका अवरयाग्य नहीं कर सकता, जिन्होंने उस पाला, पीना और बड़ा किया है। भारतीय ससृति की सबदनशीलता का सरल मकरद ऐसी ही भावनाओं से अमृतमय है।

सामाजिक भावभूमि का यह आधार सन्वेतिक है, क्योंकि कथा व्यक्ति की है, व्यक्ति व प्रेम की है। इस प्रेम की, जो पवित्र साहचर्य के नियमित पुलकन का परिणाम है।

मानस का प्रेममया पाठा को उहाने इस रचना में अभिव्यक्त करने का प्रयत्न

किया है और रूप सौंदर्य से विमुक्त प्रेम सृष्टि की आर जीवन का अभिभुग करने का सदा भी इन रचना में दिया है। रूप सौंदर्य की अभिव्यक्ति में प्रनादजी आधुनिक हिंदी के अग्रतिम शिल्पी हैं। किंतु हम रूप सौंदर्य में वे खाये नहीं हैं अपितु उहाने समाज में व्याप्त रूप सौंदर्य के प्रति अमाना जिव भाव धारा का, जो सामाजिक है व्यक्त भी किया है। इन अभिव्यक्ति में उहान समाज का यथाय चित्र भी उपस्थित किया है। समाज में नर-पिशाचा की क्या स्थिति है, उसका अभिव्यक्ति करते हुए प्रमाण जी ने बड़ा ही मुदर चित्र उपस्थित किया है। एक चित्र ता आधुनिक मित्रा का हैं और दूसरा पति के मर जाने पर चमेली के प्रति नरपिशाच मित्रा व काम वासना प्रकट करने वाले व्यवहार का। कटना न होगा कि तत्कालान और आज के समाज में भी विधवा के प्रति किसी प्रकार का आक्षेपण हमारा समाज में पाप है, किंतु उस विधवा के सहज रूप में प्रकृत कुत्सित वाय व्यापार समाज का एक अंग है। इसका दर्शन भी प्रनाद जी ने अच्छी तरह इस पुस्तक में कराया है। उम अश का दखना अब अप्रासंगिक न होगा—

लज्जा। मच ही लज्जा मुझका कहने दता नहीं उसे जिम नर पिशाचा ने करने का उद्योग किया। मुझमें काम वासना प्रकट की गई अर्था मित्र की जाया स। और दुख मागर म उभयुस हा न हूवन पाती थी।

प्रनादजी सागा का मित्र उनाम में हिचकते थे। हम हिचक में निश्चय ही अज्ञात की वे अनुभूतियाँ रही हागा, जिनकी प्रतिष्ठा मित्रा के व्यवहार के कारण हुई होगी। सच्च मित्र उडे सोभाग्य से जीवन में प्राप्त हाते है। प्रसाद न

ऐसा अनुभव किया था और उहाने उस अनुभव का इतनी मुदर अभिव्यक्ति की है कि इतिवृत्तात्मक हानि हुए भाये अनुभूतियाँ लागी की महज मत्य से मोह लेता है—

चूगाभर म ही बने 'मित्रवर' मुह पीछे फिर दुजन हो
'प्रिय' हो प्रियवर' हो तो नुम हा काम पड पर परिचित हा।
कहीं सुहारा 'स्वार्थ' लगा है, वही लोभ है मित्र बना,
कही प्रतिष्ठा, वही रूप है, मित्र रूप म रगा हुआ।

इतना हा नहीं, उहाने दुजनों का घोर कर्मभामा रजना स भा भयानक प्रताया है। इस दृष्टि से देखने पर प्रसाद का इस भावप्रधान रचना म जीवन और जगत् के यथाथ चित्र मिलते हैं। हिदा साहित्य म यथार्थवाद व नार रटनवाला की कमी श्वर कुछ वषा से नहीं है। हिदा मे नारा न वादा की बटावा लिया है। जिस प्रकार लोग बिना कपिटल के पढ भावसवादा, बिना गाथा की रचनाए पढ गाथीवादा बिना नेहृऊजा क कृतित्व क ज्ञान के उनका जय बालनवाल हो गए ह, उसा प्रकार आज साहित्य म श्रुत का महत्व बढ रहा है। यह श्रुत स्मृति स काई नाता नहीं रखता। श्रुति पर उस समय विश्वास रखना अधिक उपाध्य होता है जब समाज म यथा का सभ्यता पल्लवित पुष्पत नहीं रहता। स्मृति उस समय श्रुति की गति दता है। किनु इस युग म जब प्रत्येक लिखा बात की ही सनद मानने का व्यवस्था है, ऐसी बात अच्छा नहीं; वादिया क आज के युग म प्राय बौद्धिक दिवालियापन लिखाई पढ रहा है। वह हमलिये कि लाग पढना लिखना नहीं चाहते। कवल वाणा और बुद्ध क बिलाम म लाग महाम् होना चाहते हैं। प्रसाद का क इस भावनामूलक यथाथ की परखने क लिय उस दृष्टि का

भावस्थयता हागी जिकके द्वारा प्रादर्य और यथाथ का अतर दना जा सके। कहना न हागा कि प्रसादजी पहले यति हे जिहाने यथाथ और प्रार्थ के अतर का अच्छा तरह दला और समझा है। यथाथ का व्याख्या प्राणुनिव हिता म उहाने बहुत पहन हा जिस ढग स की है उसे खीनार करने से वाई विद्वान् हिषनेगा नहीं। यथाथ गन्गी नहीं है, ननता नहीं है, विषमता नहीं है, वह तो जानने के उस पक्ष का प्रतिनधित्व करता है जो वतमान क अभाव क मूल म है। वह माग पर गति की प्ररखा है किनु जावन का अत नहीं। प्रमपथिक म यथाथ का इस दृष्टि से देखना हागा।

प्रसादजी न यथाथ व सबध म लिखने हुए कहा है—यथाथवाद की बिगारताआ म प्रधान है लघुता की और साहित्यिक दृष्टिपात, उसम स्वभावत दुस की प्रधानता और वना की अनुभूत भावस्थय है। लघुता स मरा ताप्य है साहित्य के मान हुए सिद्धात व अनुसार महत्ता के कापनिक चित्रण के अतिरिक्त यत्तिगत जीवन के दुख और अभावो का वास्तविक उल्लेख। साधारण मनुष्य, जिस पहले लाग अकिंचन समझने थे, वही चुद्रता मे महाम् दिखाई पढने लगा। उस याप्य दुःखसवलित मानवता की स्पश करनवाला साहित्य यथार्थवादा बन जाता है। इस यथाथवादिता म अभाव, पतन और वदना क अश प्रचुरता म होत है।

अत यह कहा जा सता है कि यथार्थवादी साहित्य वना स प्रेरित होकर जनमाधारण के अभाव और उसकी वास्तविक स्थिति तर पहचाने का प्रयत्न करता है।

इस दृष्टि से यदि देना जाय तो प्रेमपथिक के प्रेम के माध्यम ग प्रसादजी उस आदेश का धार पढ़ने का प्रयत्न करते हैं जो आदेश दम्य व्यक्ति और जगत् को आनन्द की धार ले जाने का प्रयत्न करता है। समाज में अनन्य चेतना थी। अनेक उमके प्रेमी हैं। अनन्य के साथ वसा ही होता है जसा उमके साथ हुआ। व व्यक्ति नहीं, समष्टि के रूप हैं। उनके व्यक्तित्व की वे आभा हैं, जिसे आभा से समाज के अनन्य साग का आलोक मिलता है। साहित्यकार न तो कौरा इतिहासलेखन हाता है और न केवल प्राणों धामि मिदाता और दर्शना का प्रयत्नवत्ता। उमका तो एक अनन्य संसार होता है। एक अलग कलाय होता है, एक अलग धम होता है और वह रम की सृष्टि करता है। आज के बुद्ध साहित्यकार और आनोचक रम शत्रु को रुचिवाण समझकर चौङ्गे, किन्तु उन् यह जानना चाहिए कि रस आनन्द का साहित्यिक नाम है। स्वयं प्रसादजी ने लिखा है—

दुःखान्ध जगत् और आनन्दपूर्ण स्वग का एकावरण साहित्य है, इसी लिये अर्थात् घटना पर कल्पना को वाणी मत्त्वपूर्ण स्थान देना है, जो निज्जा मार्ग्य के कारण मत्त्व पद पर प्रतिष्ठित होता है। उमके विश्वमगल की भावना धीनप्रोत रहती है।'

इसा दृष्टि में यह रचना भी सवया विश्वमगल का भावना को प्रकट करने के लिये लिखी गानी जानी चाहिए। हो सकता है कि इसकी महत्ता बहुत बड़ी न हो, किन्तु उम महत्ता की आस्था करने का क्षमता का वाङ्ग्य रचना में है जो महत्ता कामायनी के कारण प्रसादजी के साहित्य में मस्थापित हुई। इस

दृष्टि से प्रसादजी की प्रारम्भिक रचनाओं में इसका अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है।

कहानी कहने का ढग म भी इसमें नवीनता है। स्वच्छन्द रूप से कथा कहने की प्रणाली काव्य में बड़ी पुराना है। जहाँपर भावना की प्रधानता होगी, कथा की भावना ही काव्य की नियमन शक्ति होगी। बड़ा निश्चय ही कवि को उम भावना के अनुरूप कल्पना पर कथा का गठन करना होगा। किन्तु इस गठन में अप्राकृतिक, धमनीयता निर अन्तर्गमिक तरवा का अधिक समावेश कथा के गौण्य की, उसकी सत्यता का तथा उमके मगल पद्ध को अधिक मयादित नहीं होने देता। जिस युग में इस पुस्तक की रचना हुई उममें सोधे साथे परिचित इतिवृत्ता में कल्पना का स्वयं स्थापित करना पडता था। स्वतन्त्र कल्पना द्वारा कथा के निर्माण की मयादा अधिक प्रतिष्ठित नहीं थी।

वा यस्या कहने की प्रणाली कहानी कहने की प्रणाली पर है, इसी कहानी कहने की प्रणाली पर जिसमें जिनासा वृत्ति को पर्याप्त स्थान दिया जाता है। प्रवृत्ति के बिना स कथा के विकास में पर्याप्त सहारा लिया गया है। प्रेम पथिक का आरम्भ ही प्रवृत्ति के बरण से होता है। प्रवृत्ति एक स्वतन्त्र रचना के रूप में आती है और उसमें सावेतिन ढग में कथा के मम का धारा दी गई है तथा कथा का प्राणवान् बनाया गया है।

उस युग में उपदेश की वृत्ति प्राय सर्वत्र मिलती है। प्रसादजी का प्रारम्भिक काव्य इसमें अछूना नहीं है, किन्तु इहाने मच के उपदेश की भांति नहीं, कथावाचक व्यास की भांति नहीं, उपदेशक का काम भी अत्यन्त की

स्पर्श करनेवाली प्रणाली पर कवि ने किया है और इस ढंग से किया है वह कवा की भाव बढ़ाने में महायत्न होती है। उम्र युग व का य की मा यता भी ता था कि कविता में उपदेश भी होना चाहिए। इस मा यता का दुरारातर नहीं, सवारवर उ होने प्रमपथिक म गार्हस्थ्यक मयात्ता वा रक्षा की है।

इस का य का आरभ प्रवृत्ति के चित्रण स हुआ है और प्रवृत्तिचित्रण म ही समाप्त हुआ है। आरभ तो सध्या का वेचना मे हुआ है और अत अरणा दय है।

जितनी रचनाए का यज्ञन मे प्रसाद न प्राप्त के पूर्व रही है 'प्रेमपथिक' का महत्व उनम सर्वाधिक है। सर्वाधिक इतलिये कि प्रसाद का महत्ता सदा बोला ने काव्य म जिन कारणों से सस्थापित है उनके बीज इस रचना मे किसलय के रूप म प्रकट हुए है। प्रवृत्ति है, प्रताक का रमणायता है छ यासौत्य का सस्पश ह मानवाय प्रेम है उस प्रेम का अतवृत्ति है और सबसे बड़ी बात है सादय का आत्मा का चिरतन सत्य। यह स यदर्शन विश्व आत्मा के सौंदर्य का उद्वाय करता है जिसमे ससार की मुदर लगनवाली सभा बस्तुए लय होकर आनन्दभागर म अरुण शांति प्राप्त कर सकती हैं तथा स्वच्छंद रह सकती हैं। मानवजीवन का वास्तविक अरणोदय इस दृष्टि स प्रसाद न जावनपयत माना है जिसकी पूण कौमुदा का मायना म विकसित हुई।

हिन्दी कविता के क्षेत्र म प्रमात्ता जिस नई भावधारा क प्रतिष्ठापक मान जाते हैं वह मूलत रूपमौत्य से मन का पुलकित करनेवाली महज मान्य का आनन्दमूला अभिव्यक्ति है। उनकी यह अभिव्यक्ति पौष्ट्यमपन सांस्कृतिक

ीता से शीत है। उहूनि अयन काव्य म हृद्य का उग विनाग भावना का उद्घाटन किया है, जिसका मर्म योनन-ययी रूपमौत्य का आभा स गुलकभरती जावन पाता है। इस गुलक म योवन की रूपनाला का निर्गार रहता है तथा रूपजय पाठा का स्वर भी विरहाकुन हो परिणाम का आस्थान करता है। यह कवल रूपचनना स उपन्न पीडा का ही जावन न योननववाह का परम विकास नहीं मानता, रूप क आरुण्य की ही जावन का परम मौत्य नही धापित करता वह पीडा क ससार का ही योवन क गुलवन की आतम परिणति नहीं माता, भवितु जा सालसा और भावना व्यक्ति की रूप सौंदर्य की और आदृष्ट करती है, उस आकषण के चिरतन सौंदर्य मर्म आनन्द को भी पहचानना प्रमादजी का सकुपारयक वेतना का ध्येय रहा है। प्रेमपथिक के सबध मे भी यह बात कहा जा सकती है।

चमेली के रूप य सौत्य का आतम परिणति पारस्थितियों क टाथा पडकर जसी हुई है, वह सहज ही अस्थि नमवाल आकषण के प्रति विकषण उत्पन करता है, किंतु इस आकषण मे प्राणो का सुरभित करनेवाली उल्लास का जो चतना है, वह समाप्त नहीं होती। वह पथ के उद्देश्य का सीमा का सफलतापूर्वक आस्थान करती है। वह मडरानेवाल भोरो की नहीं, सतत आत्मसमपणमयी है। विराट सौंदर्य मे, जो प्रसादजी क शान्ति म सौंदर्य की प्रेमनिधि है, इस रूपआभा स दास लालसाभरे हृदय की अरुण शांति मिल सकती है तथा स्वच्छतापूर्वक सस्थापित करन की स्थिति भी हा मवती है। यह आत भवन के आग की

मजिल है, जहाँपर वही पहुँच सकते हैं जिनके पथ का उद्देश्य टिकना नहीं, अपितु वहाँ तक बढ़ते जाना है जिसके भाग रास्ता नहीं हुआ करता।

भाकार प्रकार की दृष्टि से प्रेमपथिक बहुत छोटी रचना है। अपने समय में अपने समय के भाग का आस्थान करना उनका काम हुआ करता है जो अपने चिंतन द्वारा तिमिराच्छन्न भविष्य के पट पर भूत रेखाएँ खींच कर रहे हैं। इस अर्थ में प्रेमपथिक उस भावधारा का आस्थान करनेवाली रचना ठहरती है जिससे हिंदी काव्य का भविष्य उबर हुआ। अभिव्यक्ति में अनुभूति के मर्म की जो कथा कही है वह इस बात की साक्षात्ता है कि कवि के मानस की गहराई कितना अधिक है। इस अधिकता में सरसता की सीमा भी है, और वह सीमा अनेक स्थान पर मीठे जलस्रोत की भाँति उभर पड़ी है। उनकी उभाड़ में सात्वता का एक संदेश है उन लोग के लिये जो रूप धारण को जानने का चरम साध्य समझते हैं। रूप परिवर्तन कालचक्र के विधान का स्वचालित नियम है। भावपूर्ण उमी प्रकार विकल्प में परिवर्तित हो जाता है जिस प्रकार वसंत विकसित होने हल मीठे में, शान्त में और शीत पतझड़ में। पर इस नश्वर रूपविधान की छाया में एक अनश्वर तत्व है। उसमें उतना ही ध्यान है जितना रूपसौंदर्य में जो घटल, अडिग और शाश्वत है। वह है हृदयसौंदर्य का बोध। हृदय का प्रेम स्थायी होता है, रूप का चलन। वास्तविक शक्ति जो कभी खंडित नहीं होता, वह हृदय के सौंदर्य से ही विराट सौंदर्य में अपनी सत्ता को लानकर प्राप्त हो जा सकता है। यही प्रेम पथिक का संदेश है। इस संदेश के

भीतर हृदय की अनुभूतियाँ इस भाँति सस्वर हो बोलती हैं जिसे भाँति कभी इसी कलाकार द्वारा मनु की वाणी तुमुल बोलाहल में श्रद्धा के प्रति मुखरित हुई थी। यह कृति के प्रति कला की आस्था का निष्ठा का प्रतीक है। यह तो हुई रचनासौंदर्य की बात। अब उसके बाह्य पक्ष पर विचार करना अप्रासंगिक न होगा।

जहाँ तक छंद का प्रश्न है, नए ढंग से तीस मात्राओं के अनुकूल छंद का प्रयोग किया गया है। जगह जगह पर अनुप्रासों की छटा भी भावांग के साथ दीख पड़ती है। ब्रजभाषा में प्रेम पथिक को रचना पहले प्रकाशित हुई थी यह पहले ही निवेदन किया जा चुका है। उसकी अपेक्षा जो नया परिवर्तन तथा परिवर्द्धन भाषा के साथ कथानक में किया गया, वह अधिक मनोवैज्ञानिक ढंग से हुआ है। यह इस बात का प्रतीक है कि लेखक का काव्य कौशल प्रगति के साहित्यिक विकास के सुन्दर पक्ष का ग्रहण करने के लिये कितना सचेष्ट रहा। प्रकृतिकरण प्रसादन के काव्य का एक आवश्यक अंग है। वह इस रचना में भी सुन्दर ढंग से अभिव्यक्त हुआ है और कथामुक्त को संपुष्ट बनाता है। प्रेमपथिक का बहुत बड़ा भावपूर्ण अर्थों को उनकी उपमाओं में भी दाख पड़ता है।

इन उपमानों की विवेचना इस बात में भी है कि तत्कालीन साहित्य में ये अलग अपनी मौलिक सत्ता रखते हैं। उस समय प्रायः उपमाएँ स्थूल हुआ करते थे। अमूर्त तत्वों का उपयोग उपमान के रूप में प्रायः नहीं किया जाता था। अमूर्त को उपमा का आशय वही कलाकार दे सकता है जो अनुभूतियों

की सूक्ष्म रेखाओं से परिचित हों। इसमें सदेह नहीं कि प्रसादजी उनसे परिचित ही नहीं, उनकी तह में घुमकर तूलिका की रेखाओं का जीवन मय रंग प्रदान करनेवाले कवि थे। उ होने उठे पट्टाया था और यथा स्थान उनसे घनिष्ठ परिचय भी प्राप्त किया था, एक सफल जिल्पी की भीति। इस रचना से व्यापक रूप से भावविद्या की उपमा उ होने देती प्रारंभ की। विनाशर उनका विकास ही होता गया, मद्यपि इसके पूर्व भी उनके काव्य में इस तरह का गुण दीख पडा।

इस रचना में एक बहुत बड़ा बात है विश्वात्मा एक विश्व देवता का कल्पना। राधा यता व उस प्रारंभिक युग में हम कल्पना का मूल्य बहुत बड़ा है, यह भुजा देने का बात नहीं।

इस रचना में ऐसे स्थल बहुत कम हैं जहाँ नीरस इतिवृत्तात्मकता अपना सारी शक्ति के साथ केंद्रित हुई हो, किन्तु यह सबथा बिजुल भी नहीं है। कहीं कहीं गतिभंग सीधे भाषाप्रवाह पर टार लगाता है, पर एक स्थल घट्यत घट्ट है।

प्रेमपथिक प्रसाद के काव्य की वह संधि है जहाँ प्रसाद का व्यक्तिगत सामान्य भावना का ना नवान पथ पर चलना हुआ योग पत्ता है। यह नवानना विभाग का जिन गोप्य पर पट्टा, यह प्रसाद का दन है हिनी कविता का। प्रेमपथिक हम अथम प्रसाद के काव्य की एक अनिर्वाच्य भाषा का नवान प्रवाहमन है और वह भाषा प्रसाद के काव्यमान से संबन्धित नर। किन्तु उनका सबंध पूर्णरूप से साधुता का कविता में है। अतएव

निश्चय ही इस रचना का अपना महत्वपूर्ण स्थान हिंदी कविता में है, विशेषकर आधुनिक हिंदी कविता में।

प्रेमपरिपूर्ण = ऋ०, ५३।

[वि०] (स०) प्रेम से भरा हुआ।

प्रेमपरिपूरित = वि०, ६२।

[वि० पु०] (ब०भा०) दे० 'प्रेमपरिपूर्ण'।

प्रेमप्रवाह = वि०, ५६।

[स० पु०] (स०) प्रेमरूपी प्रवाह, प्रिय में मिलने की साधु आनन्दयुक्त उत्कठा की तीव्रता।

प्रेमपिपासा = ऋ०, ४६।

[स० स्त्री०] (स०) प्रेम की प्यास। प्रेमा से मिलने की अभिलाषाभावा का अयोग्यतातिरेक।

प्रेमपुतला = प्रे० ८।

[स० स्त्री०] (हि०) प्रेम की पुतला। प्रेम की शक्तिमता प्रतिमा।

प्रेमपुलकित गात = रा० कु०, ३१।

[वि०] (हि०) प्रणय की उस स्थिति का भाव जब वह आनन्दतिरेक अथवा विरहजय लुप्याधिक्य के कारण विभ्रम हो जाता है और शरीर का रोगदे सडे हा जाता है।

प्रेमपिय = प्रे०, १७।

[स० पु०] (स०) प्रेम का मूल रूप अथवा विप्रत्यारी प्रम।

प्रेमभर = वि०, ६२।

[वि० वि०] (हि०) प्रेम से।

प्रेमभरा = वा० कु० १३ ६१, ६६, १०१।

[वि०] (हि०) प्रेम से पूर्ण।

प्रेममदिरा = ऋ० ८।

[स० पु०] (स०) प्रेमरूपी मानस द्रव पदार्थ (प्रेम का आनन्दविभ्रमति का भाव)।

प्रेममय = ऋ०, ८। वा० कु०, २ ३१, १६, १६०,

[वि० पु०] (स०) १२२। वि० १४१।

प्रेम से युक्त।

प्रेममयी = वा० कु०, २३।

[वि० स्त्री०] (स०) प्रेम से युक्त।

प्रेममहान = का० कु०, ७५।

[सं० पु०] (सं०) प्रेम की महत्ता का भाव।

प्रेमयज्ञ = प्रि०, १६।

[सं० पु०] (सं०) प्रेमरूपा यज्ञ। प्रेम की उस भावना का भाव जिससे मिटने की आनन्द दायिनी प्रेरणा मिलती है।

प्रेमरग = चि०, १८२।

[सं० पु०] (सं०) प्रेमरूपों रगमिलन का वह आनन्द जिगमें दो सत्ताएँ एक ही बनकर रहती हैं।

प्रेमराज्य = चि०, ७५।

[सं० पु०] (सं०) प्रेम का राज्य। प्रेममय वातावरण।

[प्रेमराज्य]—सबप्रथम इसका पूजाघ इतु पला १, किरण ७, कार्तिक १९६६ वि० म प्रकाशित हुआ और उत्तरार्द्ध को मिला कर कवि ने एक पुस्तक ही इस नाम से जुनाई १९१४ में प्रकाशित करा दी जिसका समावेश चित्राधार म पू० ७३ स ८५ तक है। ७३ स ७८ तक पूजाघ है और ७९ स ८५ तक उत्तरार्द्ध। राजभाषा की यह परंपरागत कविता है। राजा मूय और बहमना मुनतान के बीच मन् १५६५ ई० में टालाकाट म युद्ध हुआ। विजयनगर के नरेश सूर्यकेतु न युद्ध म जान के पूर्व अपने एवमात्र पुत्र चद्रकेतु को जिमकी आयु केवल ५ वर्ष की था, एक भील सरदार का सौप लिया और वह चद्रकेतु का गुरदा के दृष्टि से हिमालय की तराई म लहर चला गया। मूयकेतु ने मन्त्री ने विश्वास घात किया और शत्रुघात म मिल गया। मूयकेतु मारे गए फिर भी मन्त्री को कोई लाभ नहीं हुआ और घर पर उसकी पत्नी ने उसके विश्वासघात के कारण उस बहुत ही फटकारा। ग्लानिवश वह भी हिमालय की ओर चला गया। यही पूजाघ समाप्त होता है। उपरार्द्ध म चद्रकेतु और मन्त्री को पुत्रा ललिता के प्रेम की कहानी प्रेम

राज्य म बसिण है, और अततोक्तत्वा चद्रकेतु की ललिता रानी बनी। मन्त्री ने भी भागो के बीच था भीला के राजा चद्रकेतु और अपना पुत्री ललिता को धापीनाद दिया। इसम वीरता, प्रणय, स्वामिभक्ति और विश्वासघात की कहानी अच्छे ढंग स वही गई है तथा भारत का गौरवगाथा तथा शिव के पालनवत्ता रूप का बड़ा हा मुदर ढंग स बरान किया गया है।

प्रेमलता = चि० ७५।

[सं० श्री०] (सं०) प्रेमरूपा लता। वह विशुद्ध आकषण का गुण दोष का पराक्षा या समीक्षा किए बिना ही केवल रूप, रस, गंध, शब्द एक स्पर्श के सांगिध्य की प्रेरणा से उत्पन्न होता है।

प्रेमवारि = का० कु०, २७।

[सं० पु०] (सं०) प्रेमरूपा जल। शांतिदायक होने का भाव।

प्रेमवेणु = ल० २६।

[सं० पु०] (सं०) प्रेमरूपी वशा।

प्रेमसहित = चि० १४, ७३।

[वि०] (सं०) प्रेम से युक्त।

प्रेमसागर = का० कु०, ६५।

[सं० पु०] (सं०) प्रेमरूपी सागर।

प्रेमसिन्धु = प्रि०, १६।

[सं० पु०] (सं०) प्रेमरूपी समुद्र।

प्रेमसुतीर्थ = का० कु०, १६। ऋ०, २०।

[सं० पु०] (हि०) प्रेमरूपी मुदर तीर्थ।

प्रेमसुधा = का० कु०, १२४।

[सं० पु०] (सं०) प्रेमरूपी अमृत।

प्रेमसुधानर = प्रि०, १७।

[सं० पु०] (सं०) प्रेमरूपी चद्रमा।

प्रेमसुधामय = का०, ६।

[वि०] (हि०) अमरता स निपन प्रेम। विशुद्ध प्रेम।

प्रेमसुधा सोता = का० कु०, ६१।

[सं० पु०] (हि०) प्रेम रूपी अमृत का तालाब या स्रोत।

प्रेमहि को = चि०, ७४।

[सं० पु०] (ब्र०भा०) प्रेमही को।

प्रेमालिंगन = का०, १०।

[सं० पु०] (स०) प्रेम जतानेवाला अलिंगन।

प्रेमाश्रय = का० १८०। चि०, १८४।

[वि०] (स०) प्रेम किए जाने योग्य। जिससे प्रेम

प्रेमिका = चि० १४१ म० ६।

[सं० स्त्री०] (स०) प्रयत्नी प्रेमपात्री।

प्रेमी = का० कु० ६३। प्र०, ५ २२।

[वि०] सं०) प्रेमपात्र जा किसी से प्रेम करे।

प्रेमीगन = चि० १५८।

[वि०] (ब्र०भा०) प्रेमिया का समूह।

प्रेमोद्भूत = का० कु० ३७।

[वि०] (ब्र० भा०) प्रेमरूपा जल से पैदा।

प्रेमोपालभ = चि० १८४।

[सं० पु०] (स०) प्रेम का उलाहता।

प्रेमोपालभ—इदु बला ४ किरण ६ जून १९१३ म प्रकाशित और चित्राचार म पू० १८४ पर मचलित है। सदा प्रेम करत हुए ही दिन बान गया। मकरद विदु म जिम मनभावन का देखता रहा वह नित नूतन होता रहा। जहाँ भा मन माटव सोरभ मिला वहीं मन मधुकर रम गया, चाट वह कमल हा या बकुल हा या मणार। पंवर म भा और नदी म भा उना सौम्य का चिकनाई दमकर मन जगल गया या वह गया। भंवर का भय नहीं लगा बालक उमस हुना गाह्य बड़ गया। कुमुदित डाल का दमकर उमपर बठ गया और बाँट का परबाट मुग्य मन को नहीं हुई और उगा चान, कान, धिने और बिछने में धान और मुग मिला। प्रमी को यह निष्ठुरता जानकर भी भी पाद पर नो हटाया और मन बर्यो का प्रमाण क रूप म बहर मन न दण्य कर निमा। दण्य महा नित प्रम करत निन गया।]

प्रयत्नी = का०, १२८। प्र०, १८।

[सं० स्त्री०] (स०) प्रेम पात्रा।

प्रेरक शक्ति = का० कु०, ११६।

[वि० स्त्री०] (स०) प्रेरणा देनेवाली शक्ति।

प्रेरणा = का०, ७६, १०६, १६५, २६१,

[सं० स्त्री०] (स०) २६८, २८१।

वह शक्ति जो किसी कायविशेष से अनुकूल करा दे।

प्रेरणाभयो = का० ११, १६३

[वि०] (स०) प्रेरणा देनेवाली। प्रेरणा युक्त।

प्रेरित = का० कु०, ६६। का०, ४८, २६७।

[वि०] (स०) चि० ५५। प्र० २१। ल०, २६, ७५।

प्रेरणा प्राप्त। प्रेरणा पाया हुआ।

प्लावित = का० ६४, २६६। ऋ०, १६ ३२।

[वि०] (म०) डूबा हुआ।

फ

फँसा = का० २७।

[वि०] (हि०) फसा हुआ। बचा हुआ।

फँसे = का० १३।

[क्रि०] (हि०) बंधे, फस जाय।

फटकता = का० ४०। प्र० २५।

[वि०] (हि०) फट फट शब्द बनना, प्रल आदि फँसना। साफ बनना।

फण = का० ८५।

[सं० पु०] (स०) सप का फण।

फणियाँ = का० २१।

[सं० पु०] (हि०) मर्ती।

[फनह सिद्ध—विना 'बीर वाचक'।]

फन = का०, १४, ६८।

[सं० पु०] (हि०) 'फण'।

[सं० पु०] (पा०) इन्म विद्या। हुनर। धनने का ढग।

फणोले = प्र० १५।

[सं० पु०] (हि०) धाल, भनना।

फरकत = चि० ८, ६५।

[क्रि०] (ब्र० भा०) फरकना।

फन = का०, ६ १४, १६ ३१। का० कु०,

[सं० पु०] (सं०) १ १। चि०, ६, ६४, १५३, १५४।

- १७२, १८५, १८६ । फ०, १५ ।
 म०, १८ ।
 वनस्पति मे हानेवाला मूदे ग वीज
 से भरपूर बीजकोश जो किसी विविष्ट
 श्रुतु मे फल ग्रान के बाद उत्पन्न होता
 है । वर्मभोग । नतीजा, परिणाम ।
- फलक = ल० ४३ ।
 [सं० पुं०] (घ०) स्वर्ग, आकाश ।
 फल ढेर से = का० कु०, १०१ ।
 [वि०] (हि०) फला के समूह के ममान ।
 फल फूल = व०, १७ । म०, २२ ।
 [सं० पुं०] (हि०) फल और फूल ।
 फलभरता = का० ६८ ।
 [सं० क्रा] (म०) फला न लद हाने का भाव ।
 फलभोक्ता = का० कु० ११६ ।
 [वि०] (सं०) फल का भोगनवाला ।
 फलमूल = का० कु०, १०० ।
 [सं० पुं०] (सं०) फल और जड़ । फल और खाने योग्य
 वद ।
- फलवती = म०, २४ ।
 [वि०] (सं०) फलवाला, फल से भरी हुई ।
 फल्यु सदृश = का० कु०, ७१ ।
 [वि] (सं०) गया ताप व निवृत्त बहनेवाली फल्यु
 नदी के समान । व्यय सा, निरथक सा,
 सामान्य सा ।
- फसना = का०, २६४ ।
 [क्रि०] (हि०) अनायास हा वय जाना । छल छंद का
 शिकार हा जाना ।
- फहरत = चि०, १६३ ।
 [क्रि०] (ब्र० भा०) फहरता है, लहरता है ।
 फहराती = क०, १० ।
 [क्रि०] (हि०) फहरती, लहरता है ।
- फॉस = का० ८ ।
 [म० स्त्री०] (हि०) पास, पदा, बेंत ।
 फॉसना = चि०, २३ ।
 [क्रि०] (हि०) फमाना, जाल मे फसाना ।
 फॉसी = चि०, ३ ५८ १४३ ।
 [क्रि०] (हि०) बाँध, फनाए ।
- [सं० स्त्री०] (हि०) मृत्युदंड । मूली ।
 फाड़ना = का०, ३८ । म०, ४० ।
 [क्रि०] (हि०) किसी चीज को टुकड़े टुकड़े करना,
 फाड़ देना, चीर देना, चीर लगा देना ।
- फारसी = चि०, १०१ ।
 [वि०] (ब्र० भा०) हल व फल के सदृश ।
 फारिकी = चि० १७२ ।
 [पुव० त्रि०] (ब्र० भा०) फाड़कर ।
 फिटफार = का० कु०, ८० ।
 [सं० स्त्री०] (हि०) धिकार लानत कोसना । टाट डपट ।
 फिटकी ।
- फिर = ग्रा०, ११, २७, ४०, ५३, ५६, ६४,
 [म०] (हि०) ६६ ६७३१, ७४ ७७ ७६ । म०,
 ११, १५, १७, २२, २३ २६, २८,
 ३० । का०, कु०, ५, ६ ७, ८, १४,
 १६, २५, ३२, ३५ । का०, ११ १५,
 १७, २३, २५, २८, ३१, ३३, ३७,
 ३९, ४५, ६४ ७१, ८३, ८५, ९०,
 ९२, १०१, १०५, १०९, ११०, ११३,
 ११४, ११८, १२२, १२६, १३२,
 १३३, १६०, १६१ १६२ १७६,
 १८०, १८४, १८५, १८६, १९१,
 १९२, १९३, १९४, १९५, १९६,
 १९७, १९८, १९९, २००, २०१,
 २१३, २१८, २३०, २३६ २३८,
 २४३, २४७, २४८, २५७, २६३,
 २६७, २७३, २८१, २८५ ।
 एव वाग हो चुकने पर एक बार और ।
 दुबारा, पुन, पुनि, बाद मे ।
- फिरना = ग्रा०, १६, ६८ । का० कु०, ७५, ९६ ।
 [क्रि०] (हि०) का०, ३, ४८, ११७, १३१, १३४ ।
 १४८, १५०, १७६ । चि०, ४८,
 १५२, १६६, १७७, १८३ । प्र०, ६,
 २०, २४ । ल०, ६६ ।
 चलना, डोलना, घूमना । चकर
 खाना ।
- फीकी = का० कु०, ३५ । चि०, १८६ । प्र०
 [वि० स्त्री०] (हि०) २३ ।
 फाका, मोरम, स्वादहीन ।

- फोके = का०, १२६ ।
 [वि०] (हि०) जिसम रस न हो स्वादरहित ।
 फुलवारी = भा० १६ ।
 [स० खी०] (हि०) फुलवादी, उपवन, बगीचा ।
 फुल = का० कु०, ११४ । का०, १५१ । वि०,
 [वि० पु०] (सं०) १४७ ।
 पूना हुआ, तिला हुआ प्रस न ।
 फुलमल्लिखा = का० ४८ ।
 [सं० खी०] (सं०) तिला हुआ बेला का पुष्प ।
 फुहारे = वा० २६३, वि०, १५८ ।
 [सं० पु०] (हि०) एक उपकरण विधेय जिससे दवाव
 व कारण जल की पतली धार प्रथवा
 छोटों चारा धार निकल कर गिरत
 है । जल वा महान छीटा । हन्सा
 बरसात (भोसा) ।
 फूंक = वा० कु०, १११ ।
 [सं० खी०] (हि०) फूलाए हुए माला स सबग छोड़ी हुई
 रंग । मुह का हवा सिस । मनादि
 पत्रर छाड़ी हुई हवा ।
 फूट घली = वा० २६ ।
 [त्रि०] (हि०) टाटकर घट घली ।
 फूटना = वा०, २२६, २६८ ।
 [क्रि०] (हि०) भंग होना दरकना टूट जाना । भंग
 कर निरतना ।
 फूटो = मा० २६ । वा० २८१ ।
 [त्रि०] (हि०) फूट पड़ ।
 [वि०] (हि०) टूटा हुआ भंग ।
 फूटे = मा०, १० । वा० ५६ ।
 [त्रि०] (हि०) फूटना वा एक रूप ।
 [वि०] (हि०) टूटे हुए, भंगव ए ।
 फूटकार = वा० ५७ ।
 [सं० पु०] (सं०) मुट ग हण छाटन वा भाव, कृपारार ।
 फूल = मा०, २६ ५४ । वा० ६, १४ । वा०
 [सं० पु०] (वि०) कु० ६ १५, ३८ ७३ ८२ ८३ ।
 वा०, ४६ ५५ ६३ ६४ ६५ ७३
 ७७ ६२, ६७ १५१ १७८, १६६
 २४४ २४६ । वि० २७ ६३, १५३,
 १५२ १६६, १७० १७७ । म० १६
 ३३ । प्र०, २, १३ । स०, १७, ३२ ।

पुष्प, कुसुम, सुमन । गभाणय । बेलदूटे ।
 ताम्र मिश्रित राग । राग विशेष ।

[फूल जय हँसते हैं अचिराम—महारानी वपुष्टमा
 की नवपरिचारिका कालिका वा
 जनमेजय का नागयज्ञ म गीत । लोग
 जब हसते हैं तभी हम राने लगत है ।
 जब वसत ऋतु मे सुन्दर फूल हसते है तो
 उनमे सुन्दर मकरद भरने लगता है । इस
 जो फूला वा रोना सम्भने है वह
 उनकी भूल है । उपाकाल म मलय व
 स्पश से घत सहलहा उठन है किपु
 धेतो पर पड़े भ्रोसकण बिखर जाते है,
 इसे रोना माना जाय वा हय । इसलिय
 हे नाथ हमारा अह तुम ल लो ताकि
 कोई वस्तु तुम घूट न सका और मुझे
 अपना बनाकर दया करा ताकि जब
 लोग राने लगे तब हम हसने लगे
 क्याकि इनमे ही हमार लिय सुख है ।]

फूलना = वा० कु०, ४४ ५४ । वा०, १५३,
 [क्रि०] (हि०) २६५, २६१ । वि०, २२, ६३, १५३,
 १७७ । म० ५४ । प्र० ३ ।
 कुमुमित होना, सिलना, विक सन
 हाना । मुजना स्थू न हाना । टठना ।
 प्रस न हाना ।

फूल = वि० १८ ।
 [प्र० क्रि०] (हि०) फूलकर, प्रस न हाकर, सिलकर ।
 फूली = वि०, ६३ ।
 [वि०] (हि०) फूला हुई । तिला हुई ।
 फूंकना = वा०, ५५ ८५, ६३ २८७ । वि०, ६ ।
 [त्रि०] (हि०) म० ३३ ।
 मास स एव स्थान स दूरर स्थान वा
 धार गतिमय करना ।

फेन = का० १५ । वि० १५३ ।
 [सं० पु०] (सं०) गाना व छाटे छाट चुनचुना वा कुत्र
 गटा वा गटा मसूर । म्हाग ।

फेनिल = मा० ४२ ७१ । वा० कु०, ५७ ।
 [वि० पु०] (सं०) वि०, १६० । स०, १५ ।
 फन युक्त, फनवाला, म्हागार ।

फेनिल फन = का०, ६८ ।

[वि० पु०] (स०) भागदार फण ।

फेनिल लहर = का०, ३६ ।

[स० खी०] (स०) भागदार लहरें ।

फेनोपम = का०, १६७ ।

[वि०] (स०) फेन के सदृश (भागदार) ।

फेरत = चि०, १६३ ।

[त्रि०] (ब्र० भा०) फेरते हैं ।

फेरा = का०, २११ । चि०, १७७ । प्रे०, १७ ।

[स० पु०] (हि०) चारा और घूमने की क्रिया । चक्कर, चार बार आना जाना ।

फेरि = चि०, ६ । १५०, १५७, १७०, १८८ ।

[अ०] (त्र० भा०) फिर, पुन, दुबारा ।

फेरी देना = आ०, ३६ । का०, ६५, ११४ ।

[त्रि०] (हि०) बार बार आना जाना ।

फेरी = आ०, ८ ।

[स० खी०] (हि०) परिक्रमा, प्रवक्षिणा ।

फैलाना = आ० ७३ । का०, ८, १६, १७, १८ ।

[त्रि०] (हि०) का० कु० ८८, १०७ । का०, १४, २८, ५७, ६१, १२१, १२६, १५२, १६४, १६८, १७८, १८० । १८४, १८६, १६१ । २०२, २४३, २८१ । चि० ४५, ४६ । १४८, १८२ । प्रे०, १०, १६ । म०, १ । ल०, १६ । अधिक जगह घेरना, पसरना । प्रसरित होना ।

फैलाना = आ०, ६, ४१ । ६५ । का० कु०, ३४, ४२, ५५, ७८ । का०, ११६, १५६, १६० । १६८, १७०, २५६, ३७२ । प्रे०, १५ । १८ । ल०, ३५, ४४ । पसारना, बिखेरना, छिनारना । प्रचरित करना ।

फैलाए सी = का०, ६७ ।

[वि०] (हि०) प्रसारित सी । प्रसरित हुई सी ।

फोडकर = का०, ४७ ।

[क्रि०] (हि०) तोड़कर, टुकड़े टुकड़े करके ।

फोडे = आ०, ११ ।

[क्रि०] (हि०) तोड़ दिए नष्ट कर दिए ।

फौजें = चि०, ६१ ।

[म० पु०] (अ०) सेना । झुंड ।

घ

वक = का० कु०, ३० ।

[वि०] (हि०) टेढ़ा, तिरछा । वक्र ।

वकिम भू = ऋ०, २२ ।

[वि०] (हि०) टेंडी भौह । तिरछी भौह ।

घद = आ० २५ । का०, ६५, ६७, ७१, ८२,

[स० पु०] (फा०) १४० । १६५, १८१ । १८६, १८६, २१८ । २६० । चि० ३२ । ल०, १६ ।

वह पदाघ जिमम बाईं बाया जाय । बाघ, शरीर के अग्रा का जोड़ ।

[वि०] जिसके चारा अग्र काई अवरोध हो । स्वगित । थमा हुआ ।

वद्विगो = का०, १६६ ।

[स० खी०] (फा) प्रणाम, ईश्वरोपासना, भगवान् की प्रार्थना ।

वडी = आ०, ४६, ६ । म०, ७, १०, ११,

[स० पु०] (म०) २०, २३ । ल०, ६७ ।

चारण भाट ।

[स० खी०] (हि०) आभूषण विशेष ।

[स० खी०] (फा०) कण, जाँवद किया गया हो ।

घघन = आ०, २५, ७३, १ । का०, २२ । का०,

[स० पु०] (स०) १३४, १६१, १६४, १७०, २४६ । चि० २६ । ऋ०, ६४ । ल० १५, २१ ।

वह रस्मा जिससे बाईं बाया गया हो । पाश । बाघन की क्रिया या भाव । कँद-खाना । शिव ।

घघनमुक्त = का०, ८३ ।

[वि०] (स०) मुक्त, छूटा हुआ, स्वतंत्र ।

घघनविहीन = का०, १६० ।

[वि०] (स०) मुक्त, स्वतंत्र ।

घघनहीन = का०, १६१ ।

[वि०] (स०) पाशमुक्त । स्वतंत्र ।

घघा = का०, १६३ ।

[वि०] (हि०) घघन म पदा हुआ । घघा हुआ ।

- घघु = का०, ६४।
 [स० पु०] (स०) भाई। गोनज। सहायक व्यक्ति।
- घघ्यो = चि०, १८२।
 [क्रि०] (ब्र० भा०) घघ गया।
- घश = चि० ४८, ५१।
 [सं० पु०] (घ०) कुन, कुटुंब, परिवार, खानदान।
- घशी = प्र०, १०।
 [सं० स्त्री०] (हि०) १० 'बसी'।
- घसी = का० कु०, ८। का०, ६८। ऋ०, ३०।
 [सं० स्त्री०] (हि०) मुरली, वास का बना हुआ, मुह से वजान वाला वाद्य यंत्र।
- घकत = चि० ५१, १४७।
 [क्रि०] (ब्र० भा०) बोलता है। बक बक करता है।
- घकता = का०, ३७, १०५।
 [क्रि०] (हि०) बक बक करना, बकवाद करना। अड़ बड़ कहना। बोलना।
- घक घक = का० कु०, ४४।
 [सं० पु०] (हि०) बकवात।
- घकुल = चि०, ५५, १८४।
 [सं० पु०] (घं०) मोलसिंदी का पेड़ या फूल। शिव। एक प्राचीन दश का नाम।
- घकुलतर = चि०, ७०।
 [सं० पु०] (ब्र० भा०) वकुल के नीचे या तले।
- घघारना = म० ४।
 [क्रि०] (हि०) धीकता लड़का देना। योग्यता प्रदर्शन व लिये बढ़ बढ़ कर या भावश्यकता से अधिक बोलना।
- घघरर = का० १११।
 [क्रि०] (हि०) 'वचना' का पूवकालिका रूप।
- घघन = १४० ४६ ५४ ६४ १६४।
 [सं० पु०] (घं०) धान, बाणा।
- घघना = म०, १।
 [क्रि०] (हि०) षट् भादे स अलग रहना। मुरझित रहना। बायोसरात भवगत रहना।
- घघपन = म० २३।
 [सं० पु०] (हि०) लड़कपन बाल्यावस्था।
- घघपन मी = म०, ६।

- [वि०] (हि०) लड़कपन के सटण, निरच्छल। सरलता सूचक भाव।
- वचना = अ०, ३०। का० २६। का० कु०, ८। का०, ३२ ६२ १२४, १३२, २६१। म०, ७।
 [क्रि०] (हि०) रक्षा करना।
- वचि = चि०, ५२।
 [पु० क्रि०] (ब्र० भा०) वचकर।
- वचे हुए हैं = का० १२६।
- [क्रि०] (हि०) वचाना' का आसन्न भूतकालिक रूप।
- वच्चे = का० कु०, १०६।
 [सं० पु०] (हि०) १ से ५ वष तक की आयु ल लड़के।
- [वच्चे वच्चों से खेलें—मजातगनु का गीत। इस गीत म छटना को वासवी समझती है। 'प्रसाद समीत' मे यह गीत पृष्ठ ४१ पर सकलित है। इह दाट सं जलाना अच्छा बात नहीं है। घर का आदेश यह हाना चाहिए वि बच्चों के मन मे परस्पर स्नेह हो और वे एक दूसरे से खेलें। महिलाए प्रस न हो कुल लक्ष्मी बनें और जीवन म मंगल भरे। वधु समानित हा सेवक मुली रह अनुचर विनम्र ही, घर के स्वामा का मन पूर्ण शांत हा हमस हा घर स्पृहाय बनता है।]
- वच्च्यो = चि० ४८।
 [क्रि०] (ब्र० भा०) बचे है वचा है, रक्षित है।
- वज = का० कु०, ११।
 [सं० पु०] (हि०) वज्र, बिजला, हार। इद्र का प्रधान अक्ष। हारा।
- [वजा दो वेणु मनमोहन—स्वदगुप्त का गीत 'प्रसाद संगत' म पृष्ठ ६४ पर सकलित है। हे मनमोहन वीणा बजाकर हमार जीवन का जगा दा। हमम पवित्र स्वातन्त्र्यमत्र पूरा तावि सर्ग मत्र और अना न मुक्त करा दा। तुम्हारी अगुलियो व सहार जा रम का सृष्टि हो उमम मन रमरजित

हो जाय। तुम्हारी इस स्वरलहरी के द्वारा जायन की जेतना सन्निधानदमय हो जाय।]

बजाना = आ०, १४ २३, २६। का० कु०, [क्रि०] (हि०) ६३। का० ३५, ६८ ११२, २७७, २६३। वि०, २३, ३०, १७६। ऋ०, ३६, ५२। प्र०, १०, ११, १३। ल०, ४८ ५७, ७६, ६३।
 भाषात करके शब्द उत्पन्न करना।
 भाषात करना। हवा के भाषात द्वारा ध्वनि उत्पन्न करना। पालन करना।

बजावती = चि०, ४७।
 [क्रि०] (ब० भा०) ध्वनि करती है। बजाती है।

बजावहु = चि०, १००।
 [क्रि०] (ब० भा०) बजायो।

घटमारहूँ = चि०, १६१।
 [म० पु०] (ब० भा०) लुटेर, डाकू।

घटा = का०, १६६।
 [सं० पु०] (हि०) गोल बस्तु। गोला गेंद। रोडा। पथिक, यात्री।

घटोरना = ल०, १८, २४।
 [क्रि०] (हि०) बिलरी बस्तुघो को एक स्थान पर रखना, समेटना, इकट्ठा करना।

घटोही = का०, २१३, २५७।
 [सं० पु०] (हि०) राहा, पथिक, मुसाफिर।

घडभागी = चि०, ३३।
 [वि०] (भवषा) अत्यथक भाग्यशाली।

घडवानल = आ०, ४२ ६१।
 [सं० पु०] (सं०) वह आग जो समुद्र के ऊपर जलती हुई माना जाती है।

घडा = का० कु०, २३ ३१, ३२। का० १६७,
 [वि०] (हि०) २०६, २२८, २६८। चि०, ७० प्र०, १०। म० २२।

अधिक विस्तारवाला। अधिक भवस्था-
 वाला, श्रेष्ठ।

घडाई = चि० ४१, ८३।
 [सं० स्त्री०] उच्चना महता, श्रेष्ठता।

बडी = का०, १५। का० कु०, २३।
 [वि०] (हि०) दाप। दीघतायुक्त। छोटी का विलोम 'बडी'।

बढती = का०, २०१, १३४, १३६। प्र०, १५।
 [सं० स्त्री०] (हि०) उन्नति वृद्धि। अग्रदावृत्त अघिकता।

बढाना = आ०, १४ २५ ५२। का० १४।
 [क्रि०] (हि०) १५। का० कु०, २६, ६६, ७३।
 का०, १५, ४६, ५१, ५६, ६४ ८७,
 ६६, १२१, १३४, १३६, १४१,
 १५० १६४, १७१, १७२, १८०,
 १८२, १८६, १६० १६३, १६७,
 २००, २०६ २१०, २१०, २५७,
 २७८, २८६। चि०, १२, ४७,
 ५३, ५६, ६१, ६२, १०१, १०६,
 १५५। प्र०, १०। म०, ३, ५, १७।
 अधिक विस्तार करना। विस्तृत करना,
 फलाना। दुकान आदि बढ करना।

बढावन = चि०, ६१, १०१।
 [क्रि०] (ब० भा०) दे० 'बढाना'।

बतरावत = चि०, ५८।
 [क्रि०] (ब० भा०) बात करते हो।

बतलाती = का०, २६३।
 [क्रि०] (हि०) कहती, जताती निर्देश करती। नृत्यादि म आंगिक चेष्टाएँ करती। मार पीट कर ठीक रास्ते पर लाता।

बताना = आ०, ७६। का०, १८, २६। का० कु०,
 [क्रि०] (हि०) १, २, ५, ३६ ५१। का० १७, २८,
 ४६, ५२ १०४, १४६, १६६, १८४,
 १६२, १६८, २२६, २६१, २६५
 २७२ २८०। चि०, १६ ४६, ६६,
 ६८, १५५। प्र०, २, ५ ८ २१।
 ल०, १०।
 दे० 'बतलाना'।

[घतायो धौन जोर है - सबप्रथम इदु कला ३,
 किरणा १२, अक्टूबर १९१२ म विनाद-
 विदु के अतगन प्रकाशित तथा प्र०
 १८० पर चित्राधार म मकरदविदु
 के अतगत सकलित 'बग्गानिधान

मुयो तेरी यट याग' कविता। ह
 यग्गागागर मुग गदा नीन दुर्गता पर
 गना वरत रो पुग्गारा यट आगग है
 णगा मुना था तव भी यात स्वराम य
 मुग्ह क्या पुरागग ८ और दाता की
 धार दोडरर उताग याम त्या गटा
 वना। ता, मुग सवमुन पवर के टा
 क्वाक दाता की आह गार तरर भा
 मुग्ह गही टिग पाता है। कग्गा
 गागर मे यदि तरगा को उत्तानरर
 उसम मुग्हा डुवाधो ता धार कीत
 सटारा है। अयत् दाता का जा
 अशुभागर म यदि मुग्ही डुवाता
 चाहा हा तो और कीत उनपर श्या
 वरेगा।]

[सं पुं] (सं) ७६। व०, २६। ग० कु० ८, १६
 ३६, ६१, ७०, ७२ ७२, १०२
 १०४ १२८ १ ६ १-१, १०४
 १२। १२६, १४। १४- १६०
 १६४ १७०, १७१ १७६। का०,
 १३ ३१, १८, ८४ ८६ १७८,
 १८६ २००, २६४ १६६ २०८
 २८१ २८६ २६० २६३। वि० १
 २२ ११ ४७ ६० ७२, १०६,
 ११७। क०, ८१। प्र० १५। म०
 ११, १८। ल०, २५ ३० २५ ३८,
 ४२ ४३, ४६ ४६ ५०।

[क्रि०] (हि०) वाना' गिया वा एव रूप।
 वनकर = ग० कु० १०। ग० २७ ४८ ५०
 [पू० क्रि०] (हि०) १६, ६०, ७०, १६५ १६६ १६६
 १७८। ल० १० ३९।
 रचर। वनना क्रिया वा एक
 रूप।

वन गया = का० १५०। ग० २६।
 [क्रि०] (हि०) वनना क्रिया वा भूतनातिक रूप।

वनचर = का० १७६।
 [सं पुं] (हि०) जगती आदमा। बन पगु।

वनचारी = वि० १६१।
 [सं पुं] (हि०) वन मे विचरण करनेवाता वनवासा।

वनन ही = वि०, ७०।
 [क्रि०] (हि०) वनन ही।

वादेवी = वि० ७३।
 [सं गी०] (हि०) वन की प्रथिष्ठानी गयी।

[वनदेवि—दरें बभ्रुवाहन-वागकर आस की पुतता
 विगाख' वा दा पति का गीत जो
 चद्राखा गिन ल' को सुनता है—मुग्हारे
 आस वा पुतली वननर तुग्हारे साथ
 खला बरगा।]

वनना = आ०, १४ २८ ५३ ५४। का० कु०,
 [क्रि०] (हि०) ८४। का०, ३ ८ १८ १६ २०
 २७ ४६ ५७ ५६ ६५ ६६, ६६,
 ७१, ७२ ७५, ७६, ८६ ६८ ११०
 १११, ११३, ११५, १२३, १२६,

वसावत = वि० ३० १७८ १७६।
 [क्रि०] (सं भा०) वताती है।

वदन = का० कु० ३४ ६७ १००। का०, ८३
 [सं पुं] (सं) १५२ १८६। वि०, २८, ४० १६
 ६५ ७०, १७७ १८२। म०, ५ ८।
 देह शरार।

वदनाब्ज = वि०, १३४।
 [सं पुं] (सं) मुररूपा वमल।

वदला = क० १३, २२। का० ३३ १३५
 [सं पुं] (हि०) १६४ १६०, २३५ २६६। क०
 ८६। प्र० १६ २१।
 परररर कुछ लन देने का यवहार।
 पतटा विनिमय। प्रतिवार।

वग्राह = वि ४२।
 [न गी] (हि०) विभा शुभ अवसर पर गिया जाने
 वाला या आनंद प्रकट कानेवाता
 वचन। मुवारकमान। वृद्धि मयन
 उताव।

वधू = वि० २२।
 [सं ली] (सं) कुनताता। छुटन मी। नमविवा
 हिता पनी।

वध्य पशु = का० कु० ११४।
 [सं पुं] (सं) बलि का पगु।

वन = आ० २०, ३० ३८ ६६, ७३,

१४४, १४७, १४८ १६०, १६४
 १७०, १७६ १८०, १८१ १८२,
 १८८, १८९ १८६, १९०, १९२,
 १८४, १९७, २०१ २०८, २०९,
 २१० २१४, २१८, २१८, २०३,
 २०६, २२८ २२१ २२८, २३६,
 २४१ २४३, २४८ २४८ २४८,
 २५० २५१ २१० २५३, २१४
 २५३ २६८ २७३ । चि०, ६० १७०
 २८१ । प्र०, १६ । म० ६, २४ ।
 ल०, १०, ११, १५, २४, २७ ।
 तैयार होना, रखा जाना । मिमना ।
 मरम्मत होना । प्राप्त होना । मुप्रनगर
 मिना । मूर्त्ति या हास्यास्पद गिद्ध
 होना ।

२६४ । चि०, १६४ । प्र०, २१ । म०,
 २१ । ल०, २८, ४३ ।
 जनाना क्रिया का एक रूप ।
 जनाना = घ्रा०, १०, ४८ । व०, १८ २८ । वा०
 [क्रि०] (हि०) कु०, ६, ११, ३३ ३६ । का०,
 १६, ८३ ६३, १६३ १८०, १८१,
 १६० २४५ २१०, २१७ । चि०,
 ६८ । व० १०, १४ १६ १८, २४
 २६ । ल०, ६, ४८, ७० ।
 रचना । अन्विष्ट म लाना । तयार
 करना ।
 जनाना = वा० कु०, ६, ४२ । वा० ३०, ८६,
 [क्रि०] (हि०) १२७ १३२ १४२ १४८, १८७,
 १६६ । चि० २ ४२, ७१, १०४ ।
 ल०, २३, ७५ ।
 बनाना क्रिया का भूतकालिक रूप ।
 बनानी = वा० १८१ । चि०, १४३, १७१ ।
 [क्रि०] (हि०) बना लिया ।
 [सं० स्त्री०] (म०) बन का पक्ष ।
 बनासा = वा० १४२ २०० । ल०, ७१ ।
 [वि०] (हि०) बने हुए व समान ।
 बनि = चि० १७४ ।
 [वि०] (हि०) मन कुल ।
 [अ-व्य०] नतकर ।
 बनि सोपा = चि० १७२ ।
 [प्र०। क्रि०] (हि०) मीठा बनकर ।
 बनी = घ्रा०, ३२ ३३ । व०, ३० । वा०
 [क्रि०] (हि०) कु०, ८, ३१ । का०, १३, १६, १६,
 १६ २०, ७०, ७३, ७४ १०६,
 १२६ १३१, १४७, १६०, १६२,
 १७२ २६५ २६६ २७१, २७२,
 २८५ २६४ । चि०, ४५, ४७, ४८,
 ७८, ८५ । ल०, १०, १४ ।
 'बाना' क्रिया का एक रूप ।
 बनी सी = वा०, १८३, १८६ ।
 [वि०] (हि०) बनी हुई वै समान ।
 बनेगी = चि०, ७३ । ल०, १६ ।
 [क्रि०] (हि०) द० जनना' ।
 बन्धि = चि०, ६१ ।
 [सं० स्त्री०] (प्र०। भा०) आग ।

वन वागा = प्र०, १४ ।
 [सं० पुं] (हि०) जगल घोर जगावा । (बहुवचन) ।
 वननाला = चि०, १६, ५८, ५९ ।
 [सं० स्त्री०] (सं०) जगल की रमणा ।
 वनवास = चि०, ३५ १०७ ।
 [म० पुं] (हि०) जन म जावर निवास करना । जगल म
 वसना ।
 जनवासिनो = चि०, ६० ।
 [म० स्त्री०] (हि०) जगल म वाम करनेवाता ।
 वननासी = चि०, ५७ ।
 [म० पुं] (हि०) वानर म रहनेवाता ।
 वननिहग = प्र०, १२ ।
 [सं० पुं] (म०) जगल क पक्षी । वानर निहग ।
 वनमाला = चि०, १ ।
 [सं० स्त्री०] (म०) जगल फूल का माला ।
 वन रहा = वा० ८७, ६३, ६४, ६८, ६८, १०१
 [प्र०] (हि०) १०३ । १४५ ।
 वनना क्रिया का एक रूप ।
 वनराजी = चि०, ६६ । ल०, ७० ।
 [सं० स्त्री०] (प्र० भा०) जन म मुखाभिन यक्ति या श्रेणा ।
 वननाला = घ्रा०, ३२ । का०, ३३, ४८, ६४ ७३,
 [क्रि०] (हि०) ११४, १२० १२४, १२६, १८८,
 १६७, १६६, २६७, २८७, २८८,

वधुवाहन = चि० ७३।

[स० पुं०] (सं०) अञ्जुन का एक पुत्र।

[वधुवाहन—इंद्रु बला २, किरण १२ आपाठ १९६८ विक्रमी मे सवप्रथम प्रकाशित तथा 'चित्राधार' मे सशुद्धीत चतु। इसम अञ्जुन और चित्रागदा का कथा नाटकीय ढंग से है और महाभारत और जमिनी अपवमेय से यह कथा ली गई है। इसम पहले परिच्छेद मे ११ तथा दूसरे परिच्छेद मे १०, तीसरे परिच्छेद मे ५ और चौथे मे ७ कविताएँ हैं जो सभी सामान्य एव परपरागत हैं।]

वयार = का० १६६। चि० १७६, १८७।

[स० स्त्री०] (पुं०) हवा। वायु।

वर = चि० १४६।

[स० पुं०] (हि०) श्रेष्ठ। वर। वटवृक्ष। दूल्हा।

वरजोर = चि० १५।

[वि०] (हि०) जजरदस्त। बलवान। अत्याचारी।

वरजोरी = चि० १८२। ऋ०, ७०।

[स० स्त्री०] (सं०) जवर्दस्ती। अत्याचार छेडछाड़।

वरसै = चि० १०६।

[त्रि०] (ब्र० भा०) काम मे ल आवा। व्यवहार कर।

वरसस = भा० ५५। का० १२८। चि० १४७।

[क्रि० वि०] (हि०) ऋ० ६४। ल० १७।

अनायास। 'यर्थ' बलपूर्वक।

वरसस ही = चि० १७६।

[क्रि० वि०] (हि०) अनायास ही। 'यथ ही'।

वरपी = चि०, ५६।

[सं० स्त्री०] (हि०) मृतक का वापिक श्राद्ध।

(वि०) सबधी।

वरस = भा०, ५५, ७८। का० कु०, ११३।

[सं० पुं०] (हि०) का० २२५।

वप साल।

[क्रि०] वरस कर।

वरसता = भा०, ३५, ६७। का० ८६, ६१।

[क्रि०] (हि०) चि०, १ ५ १६ २२ ५७, ५६

६० १४६ १५६, १७४, १७५। ल०,

२१, २७।

आकाश से गिरता। ऊपर से गिरता।

[परस पड़े अश्रुनल—जनमजय का नागयज्ञ म

सरमा का गीत—'प्रमाद संगीत' म शृष्ठ ६७ पर सकलित। एव दो क्षण का परिहास ऐसा हुआ कि वह निर्दय ऐसा हुटा कि लोटकर आया ही नहीं और हमारे रोने का विषय बन गया। आँसू बरस रहे हैं। मान भाग गया है। नसों मे अश्रु की सरिता बह रहा है और क्रोध इद्रपथुप के समान आकाश पर उड़ गया है। अब वह स्वय उस पार सदा हाकर पुकार रहा है लेकिन बीच म बहूत बडी खाई पड़ गई है। भला तुम्ही बता दा अभी आने का समय हो गया है जो मैं आऊ, जीवन भर भले ही रोता रहूँ इसकी मुझे चिन्ता नहीं है। बसी हसी फिर न करना' कहकर वह भेरी और अपने आप आने लगा है। न जाने क्यों वह ऐसा दयालु हो गया है।

धरसहु = चि०, १५६, १६८।

[क्रि०] (प्र० भा०) बरसा।

[स० पुं०] (हि०) वप भी।

धरसा = भा० ३६। चि०, १८०।

[त्रि०] (हि०) ऊपर से गिरा।

वरसात = भा० ५८। का० २१७।

[सं० स्त्री०] (हि०) वर्षाश्रुतु। वर्षाकाल। वर्षा।

वरसाती = का० कु०, ३। चि०, ११।

[वि०] (हि०) वर्षा श्रुतु का। बरसात सबधी। वर्षाकालीन।

(त्रि०) बरमाना' जिया का रूप।

बरसाना = का० कु०, ७२। का० १३ २३।

[क्रि०] (हि०) ऋ० ६२।

ऊपर से गिराना।

वरसि = चि० ३६।

[पूर्व० त्रि०] (हि०) बरमकर।

धरसे = का० २३८ २६३। चि०, १४६।

[क्रि०] (हि०) आकाश से गिरे।

धराबर = का० कु०, २। ऋ० ६१, ८१।

[वि०] (हि०) समान। तुल्य। एक सा।

धरणा = सं०, १२ पर तीन बार, १३ पर तीन बार, ३१।

[सं खी०] (सं०) काशी में सारनाथ के समीप से बहने वाली नदी जो गंगा में मिलती है।

[वरुणा]—सहर के गीत 'श्री वरुणा की शक्ति बछार' में इन नदी की चचा है। यह नदी वाराणसी नगर का उत्तरी सीमा बनाती है और वाराणसी नामकरण का कारण यहां गंगा में मिलकर सावक बरती है। इसका उत्तर में १ मील से भी कम दूरी पर सारनाथ है।

बरोनी = ग्रा०, २२। का० कु०, ७७। ऋ०, ७४।

[म० खी०] (हि०) पत्तों के प्रागै के बाल।

बर्फ = का० कु०, ७१।

[सं० खी०] (प्र०) पाना का जमा हुआ शीतल रूप।

बर्बरता = सं० ३३।

[सं०] (हि०) क्रूरता। जगतीपन।

बल = ग्रा०, २२। व०, १४। का० कु०, [सं० पु०] (सं०) ३८। का०, ६, ३६, ५६, ७४, ८७, १७०, १७८, १८२, १६६, २२०, २३८, २३६, २४०। चि०, ६६। ऋ०, ८१। ल०, ७६।

शक्ति। पराक्रम। शौर्य। वेरा। लपेट।

बल खाता = ग्रा०, १५।

[क्रि०] (हि०) (हि०) लचकना हुआ।

बल खाना = का०, ६८।

[क्रि०] (हि०) टेढ़ा होना। दब जाना।

बलभीयुत = का०, १८२।

[वि०] (हि०) मकान में बनी ऊपर की काठरी व सहित। चौपारा के सहित।

बलवान = चि०, ६५।

[वि०] (हि०) बलवाला। शक्तिशाली।

बलवैभव = का० ६६।

[सं० पु०] (सं०) शक्ति और ऐश्वर्य।

बलशाली = का० कु०, ६६, १०६।

[वि०] (हि०) 'बलवान'।

बलाका = का० कु०, १४।

[सं० पु०] (सं०) बगला। बकुला।

बलि = व०, ११। का०, ५२, १२६।

[सं० पु०] (सं०) एक भूत यज्ञ। भन्व्य। देवभोग।

बलिकर्म = का०, ३१।

[सं० पु०] (सं०) बलिदान, बलि दान।

बलिवेदी = सं०, ५४।

[सं० खी०] (सं०) बलि चढ़ाने का स्थान।

बलिहार = ऋ० ६३।

[सं० खी०] (हि०) निष्कावर होना। चढाना।

बली = ग्रा०, १५, २०, ४३। चि०, १०६।

[वि०] (हि०) बलवाला, शक्तिशाली।

[सं० पु०] (सं०) एक नरेश।

बलै = चि० १०६।

[सं० पु०] (ब्र० भा०) मडल, घेरा।

बल्लरियो = प्रे०, ३।

[सं० खी०] (हि०) मजरियो, लताए।

बसत = का० कु० ११८। चि० १७१ १८०।

[सं० पु०] (सं०) प्रे०, ६। ल०, २३।

एक श्वेतु का नाम जिस श्वेतुराज कहा जाता है।

बसतहि = चि० १७२।

[सं० पु०] (ब्र० भा०) बसत का।

बस = ग्रा०, ८, २०, २५। व० १३ १६।

[वि०] (हि०) का०, कु०, ८२। का०, ६, १५, १२४, १७१, १८६, २००, २०५, २१०, २२८, २३३, २३६, २४२, २४५, २६६, २७१, २७३, २७८, २८६। चि०, ६, २६, ६५, १५०। म०, २१। ल०, ५२।

पूरा, बहुव, पयात।

बसकर = का०, १७१।

[क्रि०] (हि०) 'बसना' क्रिया का पूवनालिक रूप।

बसन = का० कु०, ३६। चि०, ५, १५६।

[सं० पु०] (हि०) वस्त्र। निवास। छिद्रा की बमर का आभूषण।

बसना = ग्रा०, २४ २६। का०, ८६, ८७,

[क्रि० पु०] (हि०) १२४, १८१। चि०, ८, १७६।

निवास करना। किसी स्थान पर टिकना।

वसरा = वारस का एव स्थान ।
 [सं पु०] (पा०) वसरा व गुनाय का मुख्य विशेषविद्यमान है, महाराणा के महत्त्व म प्रकवर के भजन का इसके द्वारा वाचित होने का चचा है ।

वसाऊँ = ऋ०, ८२ ।
 [त्रि० म०] (टि०) 'वसाता' क्रिया का सामान्य वतमान कालिक रूप ।

वसाया = वा०, १८३ ।
 [त्रि० स०] (टि०) 'वसाता' क्रिया का सामान्य भूतकालिक रूप ।

वसायो = चि० ६६ ।
 [त्रि० स०] (ब०भा०) 'वसाता' क्रिया का सामान्य भूतकालिक रूप ।

वसुधा = वा० १७५ १८२ १८५ । वि०, [सं० स्त्री०] (सं०) १६३ । ल० २४ ३० ४०, ४२ ।
 पृथ्वा का सूचक अर्थ । पृथ्वा ।

[वि०] (सं०) धन का धारण करीयाता ।

वसती = घा० ६ ।
 [सं० स्त्री०] (टि०) यह स्थान जहाँ वरुण निवास करत है । सामान्य कहते हैं वरुण ।

वसुती = ऋ० ५५ ।
 [त्रि० घ०] (टि०) 'वसुता' क्रिया का सामान्य वतमान कालिक रूप ।

वहना = वा० १ । वा० बु०, १६ । ता० ४
 [क्रि० घ०] (टि०) १२८ १२० १४२ १४८ १६० १६७ १८० १६० २०१ २२५ २२८ २४६ २६१ । चि० १ ११, २६ १७४ । ऋ० ३४ ५५ । प्र० ११, १५ । ल० ७० ७२ ।
 इस लक्ष्मी का गीत । वा० का

वहरी = वा० ४ ।
 [वि०] (टि०) लक्ष्मी का ।
 [म० १०] (म०) लक्ष्मी का विशेष ।

वहलाती = वा० १७५ ।
 [त्रि० म०] (टि०) वसुता क्रिया का सामान्य वतमान रूप ।

वहलाता = घा० १० ।
 [त्रि० म०] (टि०) वसुता क्रिया का सामान्य वतमान रूप ।

वहाना = घा०, ३१, ४२ । वा०, १०६ । ऋ०, [त्रि० घ०] (टि०) ४३ । प्र०, २४ । ल०, ७८ ।
 प्रेवाहित करना, पानी को धारा मंत्रिया चात को डालना । फेंक देना । बराद कर देना ।

वहार = ल० ३६ ।
 [म० स्त्री०] [पा०] वसत चतु । मीन । रमणायता ।
 वहानी = वा० बु० ४६ ।

[क्रि० स०] (टि०) 'वहाना' क्रिया का सामान्य रूप ।
 वहिने = चि० १२ । प्र०, २२ ।
 [सं० स्त्री०] (टि०) वहने । भगिनिवा ।

वही = घा० १८ । ता० १८१ । ल० १० ।
 [त्रि० घ०] (टि०) 'वहना' क्रिया का भूतकालिक रूप ।
 [म० स्त्री०] (टि०) उसी जाया स्थान वा पुस्तिका ।

वहु = वा० बु० ७४ ६८ । चि० २६ मार ।
 [वि०] (म०) म० १४ ।
 अधिर, बहुत धन ।

वहत = वा० २६ । ता० ११२ २१६ । चि० [वि०] (टि०) ५७ ५८ । प्र० १३ । म० १ ।
 २० ३१ ।

[चतुर्थ द्विपाया धरसरा पडा अत्र—प्रजातपु का गात प्रमा गगात म पृथु ११ पर सक्रित । शमा व प्रम का उपाय करीयाता पर गात है । तत्र प्र प्रिय उपाय प्रम था । फने प्रम का पुत्र धिप वा पर प्रम वर उपाय पडा है । इन प्रम व उपाय का महत्त्व का प्रम सम्य नु है । वा मार ममार म नता व माय प्राय का तरह वन गया है । यह प्रम है प्रणय ना । वहा कालिमा का वपन ग जाय प्रोर न वही तत्र वर प्रजात मर । पुत्र न पार मग तत्र प्रिया वसा व प्राय तत्र है । वा हान व की तत्रा तत्र है । वा मी का वना । यह तत्रा व है । वर पु वी प्रिया व वसा व पार म म ता पु त्रि । प्राय वा तत्रा व तत्रा प्री मर तत्र का पुत्रा पुत्र प्रि व त्र त्र मर है । पु त्र प्राय म प्राय

पावडे विद्याए हूँ। मुके विगी वा भय नहा है और न कोई दूसरा मेरा है हा।
दम मरी हृदय कुटिया मे न आरर हूँ चंचा तुम वहाँ जा रहे हा यदि यहा नहा आना है तो ही अपने कामल चरणा से कुचल दो और इमने जो मेरे दव हृदय मे आर निवोगी वह भी प्रेम म मेरे विजय की बात हा वहेगी।]

बहु नाको = चि० ६३।

[म० पु०] (हि०) वृत्त म नाके। वृत्त स्याज जहा मे शशुभा को घेरकर पराजित किया जा सकना है।

बहुमति = चि० ४६ ५५।

[द्रव्य०] (हि०) सब तरह का।

बहुमल्य = क० १८।

[वि०] (स०) मूल्यवान कीमती, अधिक मूल्यवाला।

बहुरगा = का०, १८२।

[वि०] (स०) अनेक रगावाला, रगविरगा।

बहुस्त्रिया = भ०, ६४।

[म० पु०] (हि०) वह जो तरह तरह का रूप धारणकर लोगो का प्रसन्न करके अपना जीवन निवाह करता है।

बहुल = चि०, १६५।

[वि०] (स०) अधिक, ज्यादा, विशेष।

उहे = का०, १२८, १६५।

[क्रि० अ०] (हि०) उहना' क्रिया का प्रयोग क रूप।

वाग्धो = चि०, १३०।

[स० पु०] (हि०) भाषा, बहुधा। मित्रा रिक्तगा।

बौसी = का० कु०, ४३।

[वि०] (हि०) सुन्दर और उला ठनी हुई। छली।

[म० गी०] (हि०) राम व टन का टण एक औजार।

बौटती = का० २७०।

[क्रि० सं०] (हि०) 'बौटना' क्रिया का सामा य वतमान कालिक रूप।

बौध = का०, १६६।

[म० पु०] (हि०) पापा व बहाव का रोक्ने क लिये भट्टा चून आदि का बना हुआ पुस्ता।

बौजता = का०, ६२।

[क्रि० सं०] (हि०) वाचना' क्रिया का सामा य भूत कालिक रूप।

बौजता = का० कु० ८८।

[क्रि० सं०] (हि०) कसने क लिये बरकर रोहना। पावद करना। प्रेम पाश म बद्ध होना।

बौधि = चि० २६, ७३।

[क्रि० म०] (ब० भा०) बौधकर।

बौधि पराजे = चि०, ६३।

[क्रि० म] (ब०भा०) पराजय को अवसूद्धकर, विजय की कामना साथ लेकर।

बौगे = चि० ७४।

[क्रि० सं०] (हि०) वाचना क्रिया का आणाधिक रूप।

वाग = चि०, १८०।

[स० पु०] (अ०) उद्यान, वास्त्रिका, उपवन।

[म० कौ०] लगाम।

वाजी = भ०, ५१।

[वि०] (हि०) काई।

[स० स्त्री०] (फा) शत, दाव।

[पु०] (हि०) घोडा।

[क्रि० अ०] (हि०) बजना' क्रिया का मूलभूत कालिक रूप।

वाजी जीतना = का० ६३।

[क्रि० म०] (हि०) दाव का जीत लेना, शर्त म जीत जाना।

[पु०] विजय प्राप्त करना।

वाटने = का०, ८७ १५३।

[क्रि० सं०] (हि०) किसी वस्तु का भाग अलग करने के लिये। वितरण करने क लिये।

वाट्यो = चि०, ६६।

[क्रि० म०] (ब० भा०) वाट दिया। विनरित क दिया।

वाडव = का०, १६, २७।

[स० पु] (स०) बटवानन। ब्राह्मण। घोडियो का समूह।

वाडवरूप = का० कु०, ७५।

[म० पु०] (म०) बहवानता का रूप या स्वरूप।

वाड = का०, २०२। चि०, १८१। ल०, १३।

[म० गी०] (हि०) नदी के पाना का अपनी सीमा से ऊपर आकर चारा तरफ फैल जाना, बन्दे का आर अग्रसर होना।

घाटी = वि० १२, ५३।
 [क्रि०] (२० भा०) ढढ गई।
 घात = घ्रा०, ८। ००, १, १८, १६ २२,
 [सं० स्त्री०] (हि०) २८। वा० कु०, ४७, ८४। वा०,
 ६४, ८६ १११, १३४, २७८। वि०,
 ३, ८, १८, २६ ३१, ३५, ६०, ६१
 ७२, ६०, १०३, १०५, १६०, १७२,
 १८७, १६०। प्रे०, ११, १६, १६,
 २४। म० १०, १४, २४। ल०, ११।
 वधन, वाणी, वचन।
 [सं० पुं०] वायु।
 घातन = वि०, ६१।
 [सं० स्त्री०] (प्र० भा०) वात' का बहुवचन।
 घाद = ल० १३, ३१।
 [सं० पुं०] (सं०) सर्क। भृगुदा, उपद्रव। मामला।
 घादल = ऋ०, ३१ ५४। ल०, ३७।
 [सं० पुं०] (हि०) मेघ घन।
 वाधक = वा०, ११७।
 [वि०] (सं०) बाँधनेवाला, बाधा पहुँचानेवाला
 रोकनेवाला। प्रतिवधक।
 वाधा = घ्रा०, २१। ऋ०, १४। का० कु०,
 [सं० स्त्री०] (सं०) १०६। वा०, १३६, १८६, १६।
 ऋ०, ७७, ८२। ल०, ६६।
 ग्रहचन। एकावट।
 वाघार्छ = का०, ६६।
 [सं० स्त्री०] (हि०) रुकावटें। ग्रहचर्चें। विघ्न।
 वाघार्छो = वा०, २०७।
 [सं० स्त्री०] (हि०) रुकावटो। कठिनाइयो। विघ्नो।
 प्रवरोधो।
 वावामय = वा० वा०, १६५।
 [वि०] (सं०) विघ्नो से भरा हुआ। कठिनाइयो से
 परिपूरा। प्रवरोधमय।
 वान = वि०, ३, १६३, १७८, १७६ १८६।
 [सं० पुं०] (हि०) तीर। प्रादत। पानी की ऊँचा लहर।
 बनाव। शृंगार।
 वानन = वि०, ४२।
 [सं० पुं०] (प्र० भा०) वान का बहुवचन।
 वानि = वि०, १८६।

[सं० पुं०] (हि०) दे 'वान'।
 वानी = वि० ५०।
 [सं० स्त्री०] (प्र० भा०) वाणी। वचन। मरस्वती।
 साधुमा व' उपदेश।
 वाना = ऋ०, ६१।
 [सं० पुं०] (हि०) वाप का वाप। दान। माघु। स'यामी।
 वडे बूढ़ाक लिये प्रादरमुचक सवोधन।
 वारवार = वा० कु०, ६४। वा०, १६। ऋ०,
 [क्रि० वि०] (हि०) ८१। ल० १३। वारवार। लगातार।
 धनवरत।
 वार = ऋ०, ३०। का०, ८६। वि०, ४१,
 [सं० पुं०] (हि०) ४२, ६६। म०, १०। ल० ३५।
 द्वार। राजसभा। समय। काल।
 बाल। वारी।
 वार वार = ऋ०, ११, का०, १२, १४, २३,
 [क्रि० वि०] (हि०) १६६। वि०, ६ प्रे०, ६। ल०, ३५।
 २० 'वारवार'।
 वारिधि = वि० १४६।
 [सं० पुं०] (सं०) समुद्र।
 वारुद = ल०, ६५।
 [सं० स्त्री०] (प्र० भा०) प्रसिद्ध विस्कोटक चूर्ण जो घाग
 लगने से भटक उठता है।
 वाल = वा० कु०, १०६, १२१। का०, ४७,
 [सं० पुं०] (सं०) ७२ १५२। वि०, ५७, ६३, ६६ ७,
 १४१। ऋ०, ६१, ८१। प्रे०, १८।
 वानक। नासमझ। केश।
 वाल अरुण सी = का० २४८। ऋ० २०।
 [वि०] (सं०) वाल मृग के समान या जगते हुए सूर्य
 के समान।
 वालक = वा० कु० ४२, १०५ १०६। का०,
 [सं० पुं०] (हि०) २७६, २८०। वि० ६४, ७१, ७३,
 ७४, ७५। ऋ०, ६।
 लडका बेटा, पुत्र।
 वालक युगल करस्थ = का० कु०, ७, ११६।
 [वि०] (हि०) वालक के दोना हाथो मे।
 वालककोमल कठ = का० कु०, ११८। वा०, २४३।
 [सं० पुं०] (सं०) बालक का सुरीला गला।
 [पाल श्रुद्धा—सर्वप्रथम इदु कसा ३, विरण २,
 वातिव १६६८ विव्रमी मे प्रकाशित

श्रीर 'बाननकुमुम' मे पृष्ठ ४६ ४७ पर सकलित । हे वच्चा । ऐसी क्या बात है कि तुम खेल म इतने व्यस्त रहत हो जो मेरी मुने नही । तुम्हें आनंद का कौन सी डरी मिल गई है । यदि हम रहे हो तो खूब हम्या पर खेल म टार न जाओ श्रीर हमने हमते हमी पे खेल म रोझा मत । खेल म तुम्हारे गौर गार गाल आनंद स लान हा गए हैं श्रीर निर्द्वंद्व विनाद से हृदय मस्त है । इस खेल म उपवन वं फन पून तुम्हारा रास्ता दखने ह और इसके निय तुम काटो की भी परवाह नही करत हा । जब तुम्हें राकन क लिये बूटा मानी बक्वाम करता है तो तुम्हारा हमी दरुकर उसका शोध जाता रहता है । राजा हा या रक खेल मे सभी समान हैं श्रीर वे ही परस्पर श्रेत हैं जा एव हमारे से स्नेह करन हैं । जब कमी वृद्धो का गल्प कहानियाँ प्रारभ हाती है तो तुम इतने आनंदमग्न हो जाते हो कि हस देते हो ।]

बालक्रीडा भूमि = का० कु०, ११२ । म० २२ ।

[सं० स्त्री०] (स०) बालक के खेलन की जगह ।

बालपन = ल०, ७२ ।

[स० पु०] (स०) लडकपन । बचपन ।

बाल बकुले = चि०, १३२ ।

[सं० पु०] (स०) बकुले के बच्चे ।

बाल सखी = चि०, ५६ ।

[सं० स्त्री०] (स०) बचपन की सखा ।

बाला = आ० ६१ । का० कु०, ८६ । का० ३६,

[सं० स्त्री०] (स०) ६२ ११६ १६८, १७१ १७८ । चि०, ५८, ६७, ६८, ६६ ७०, ७५ । ल०, ४८ ।

बालिका । सखा । पुत्रा । भार्या ।

बालिका = का०, ५, ४३ । ल०, १५ ।

[सं० स्त्री०] (स०) लडकी । बाला ।

बालिकाएँ = ल०, ६० । प्रे०, १० ।

[सं० स्त्री०] (हि०) नडकिया । बालाए ।

बालिका स्त्री = का०, ६३ ।

[वि०] (हि०) नडकी गा ।

बालिके = का०, १६५ ।

[सं० स्त्री०] (म०) बालिका का सवाधन ।

बालुका = चि०, १७० ।

[सं० स्त्री०] (म०) रत बालू ।

बालू = का० कु०, १२ । का० १८२ । ऋ०

[सं० पु०] (म०) ३१ । प्रे० १५ ।

रत । चट्टान का चूर ।

बालू की दीवाल = का० कु० १०८ ।

[सुटा०] (हि०) ज रौ नष्ट हो जानेवाला ।

[बालू की वेला सबप्रथम 'मासुरी', वष २ मख्या ५ मन् १६२४ ई० प्रकाशित श्रीर 'भरना' म पृष्ठ ३२ पर सकलित । हे प्रियतम, इस जीवन मने म श्रांस वचाकर मारा आनंद ही किर-किरा न कर दो । दुःख भीड मे यदि नही मिलोगे तो कहां मिलोग । क्या किसी दर निज्ज मे । आखिरकार प्रेम के इस दुःख म पथ पर दूर श्रीर कितनी -२ मैं चलू । घनन चलने थककर चूर हा गया हू और मार अग भा चूर चूर हा गए ह । मैंने प्रेम वं खेल म बहुत कष्ट पाया है । फिर भी तुम कहते हो कि मुझे काइ दुख नही हुआ । हा ठीक है । इस ला पर अपनी बानी चिनवन स स्वयं पूछ लो कि क्या कष्ट मैंने नहीं मेल । प्रेम का मोठी मोठी से नुपूर की ऋकार आन दो श्रीर हाथ बढानर मनवाटा दा श्रीर अपने मुख स कटो कि अपने हृदय का प्याला ले आप्र । उस प्रेम स भर दें । तुम्हारे ही चरणा पर हृदय अश्रु का सागर उलीच रहा है । पसीनी, पुलकित हा बालू की तरह आसू वं रलानर का साख मत जाओ ।]

बाले = का०, १००, १६६ ।

[सं० स्त्री०] (म०) बाला का सवाधन ।

वाल्म्यसूत्री = प्र०, १६।

[सं स्त्री०] (हि०) वचनन की सहोत्री।

वावली = का० ३०।

[सं स्त्री०] (हि०) पगनी। घाटा गहरा ताताय।

वावले = का० २११।

[सं पुं०] (हि०) पगन। त्रि घात।

वास = चि० २७।

[सं पुं०] (हि०) सुगंध। स्थान। निवासस्थान।
प्रग्नि। वस्त्र।

वासर = चि० ३५।

[सं पुं०] (सं०) दिन।

वासी फूल = का० ५५।

[वि०] (हि०) पुराना फूल। विगत वन का फूल।

वासुरी = का० कु०, १११।

[सं स्त्री०] (हि०) वेणु। मुह स फूलाकर प्रजाया जाने
वाला एक वाद्य।

वाह = का० कु०, १६। ल० ५२।

[सं स्त्री०] (हि०) भुजा। वाह।

वाहन = चि० १५७, १८६।

[सं पुं०] (हि०) सवारी।

वाहनहो को = चि०, ७२।

[सं पुं०] (प्र० भा०) गवारी का भा।

वाहनि = चि० ५७।

[मं स्त्री०] (हि०) सवारी। सेना।

वाहर = का० २१६, २३४ २३८ २५१।

[क्रि० वि०] (हि०) भ० ध३।

सीमा के उस पार का सामा। अदर
का उलटा।

वाहुवाश = ल० ५४।

[सं स्त्री०] (सं०) हथकड़ा। भुजवद।

वाहुलता = आ० २४ ल० १०।

[सं स्त्री०] (सं०) भुजारूपा लता।

वाहो = का० ६७ १७६ १६८।

[सं पुं०] (हि०) भुजाए।

विंदी = का० कु० ११।

[सं स्त्री०] (सं०) सौभाग्यवती के मस्तक पर सिंहर का
गोल टाका। शूय का मुचक।

विंदु = वा, २१/ २७२। चि०, १६२,
[मं पुं०] (मं०) १८१। ल० ३५।

गानी ता ३५। त्रिणा, शूय।

विभ जाती = वा०, ११२। ऋ. २१।

[प्रि०] (प्रि०) पंज जा।। उजभ जाती।

वित्र = वा० १६३।

[प्रि०] (प्रि०) विद्या हूण। पंज हूण।

वित्र = वा० २३३। वि०, २१, १६२।

[मं पुं०] (मं०) वन्मा। मंल। धाया।

वित्रल = वि० ७७६।

[वि०] (प्रि०) व्याकुत। व्यग्र। व्यधित। घबहाया
हूमा।

विषसाया = वा० कु ३४।

[क्रि०] (हि०) प्रफुलित किया। प्रगन्न किया।

विषसित = वा० कु०, ३४ ३६ ४२।

[वि०] (हि०) उगा हूमा। प्रफुलित। खिता हूमा।

विषसे = वा० कु० ४८।

[क्रि०] (हि०) खिले प्रसन्न हूण।

विषास = वा० कु०, १८।

[सं पुं०] (हि०) फलान। उाति। प्रगति।

विग्ररती = वा० ८४ ६१।

[क्रि०] (हि०) चारो तरफ छिन्कती।

विग्ररता = आ०, २५ ३८ ५४। का० कु०, ८१।

[क्रि०] (हि०) वा०, २३, २५ ३६, ४०, ५४ ५८,

६६ ६८, ७०, ७५ ६१, १४३ १५१,

१५८, १६७ १६८, १६६, १७६,

१७७ १७६, १८३, १६७ २१३,

२१८, २२१, २७१ २७३। चि०,

४६। ऋ०, २५ २८, ३३। प्र०,

२५। ल० १५, २१, २४, ३, ४२

४३, ५० ५६ ७६।

चारो तरफ छिटकना।

विग्रग = आ० ४५ ४८। का०, ८६, २६२।

[क्रि० प्र०] (हि०) ल०, ३६ ४५।

तितर बितर हूमा, फना हूमा।

विग्रराए = आ०, ३८।

[क्रि० सं०] (हि०) छिटकाए गए।

[वि०] (हि०) विखरे हुए ।

विखरता सा = वा०, १८५, ६५, २१० ।

[वि०] (हि०) विखरता हुए व ममान ।

विखरावत = चि०, ६७ ।

[क्रि० प्र०] (हि०) विखर दता है । विखरता है ।

[विखरा हुआ प्रेम—भरना म पृ० ३८ पर सकलित है । प्रभात काल म विफल प्रेम मे व्याकुल हार, माया वा प्रप मुता प्रवस्था मे प्रवार हार तारा की मति जावन वा निमूत्र भान दुनडे दुनडे कर केन निया या, आशा वा तारा लविन पुन उधा ममय म उन्नि हया है । हम उम व्यय ही फारर घोर प्रवचार व कारण विफल हुए थे । प्रपना दुनरता ममभकर चोम म प्रणा क्या वनू । क्याकि मैं ता प्रणयी हूँ । तुच्छ लाग से राबर जानन क पात्र म काम वा मदिरा कन भर्त् । घर म प्रभिमान तुमन मुक्त प्रविचन बना बना दिया । तुम्हार इन प्रनत पय वा ता वहा प्रणान पायय रहा है । प्रव मानू की वू वूद से साचने पर भा ता प्रणु प्रणु स्नेहिन न हा सर्वे मे । इमालये प्रपना प्रेम गुषारर खाना तारि यह सगर हिमाला से प्रोतल रा प्लावित हा ।]

[विखरी निरण अलख व्याकुल हो—यह वावता सवप्रथम मनारमा प्रकटकर १६२६ म 'तारिका के प्रात' शीपक स प्रराजिन हुइ और चद्रगत म प्रलका वा गीत बन गई तथा प्रसा संगान म यह पृ० १११ पर सकलित की गई है । देखिए 'तारिका व प्रति' ।]

विखेरत = वा० २८४, २८८ । चि०, १५६ ।

[क्रि० प्र०] (हि०) विखेरता है ।

विगडता = वा०, १२६ ।

[क्रि० प्र०] (हि०) खराब हो जाता । काम म भाकर कुछ बहता ।

विगडते घनते = वा०, १०६ । ल०, ७६ ।

[मुहा०] (हि०) उषान प्रौर पतन वा स्थिति म ममान रूप से प्राग वदता । गुम्मा होता ।

विगरयो = चि० ४८ ।

[प्र० प्र०] (प्र० भा०) विगड गया, नष्ट हा गया ।

विचारि = चि० ४२ ४८ ।

[प्र०] (प्र० भा०) विचार कर ।

विचारी = चि० ५०, ५६ ।

[प्र०] (हि०) विचार किया ।

[स्त्री०] दीन खा प्रमहाम स्त्री ।

विचार = प्र०, ४ ।

[वि०] (हि०) जगवा वाइ गाथा न हा । गरीय दान । (वटवचन ।)

विद्य = वा० कु० १३ । वा०, ११८ ।

[प्र० क्रि०] (हि०) ज्ञाना प्रया वा र ।

विद्यहना = वा० कु०, १०६ । फ०, ६३ ।

[प्रि०] (हि०) प्र०, २ ।

प्रलग या जुग हाता । विवाग हाता ।

विद्ये = वा०, १२ ।

[वि०] (हि०) छूटे हुए ।

[प्रि०] विद्यना क्रिया वा एक रूप ।

विद्यती = प्र०, २५ ।

[प्र०] (हि०) विद्यना क्रिया वा एक रूप । विचाराती । भ्राम पर विगरी ।

विद्यना = वा० कु०, १०१ ।

[क्रि०] (हि०) फतना ।

विद्य रहा = वा० १०८ ।

[प्र०] (हि०) विद्यना क्रिया वा एक रूप ।

विद्यलता = वा०, ११, १०१ । फ०, २४ । ल०, २३ ।

[प्रि०] (हि०) फिगलता । विद्यना क्रिया वा एक रूप ।

विद्यलन = वा०, ६३ ।

[मं० स्त्री०] (हि०) सरान । फिगलन ।

विद्यला = ल०, ४४ ।

[क्रि०] (हि०) विद्यना क्रिया का भूतकालिक रूप ।

विद्याइ = चि०, ७० ।
 [क्रि०] (ब्र० भा०) २० 'विद्याकर' ।
 विद्याकर = भा०, १४ ।
 [क्रि०] (हि०) विद्याते हुए । फलाकर । (पूर्वावालिफ) ।
 विद्युडना = का० कु० १०१ । प्र०, १३ ।
 [क्रि०] (हि०) अलग या जुटा होना । वियोग होना ।
 विद्युडे = का०, २२७ ।
 [वि०] (हि०) छूटे । अलग हुए ।
 विद्युरन = चि०, १८१ ।
 [क्रि०] (ब्र० भा०) २० 'विद्युडना' ।
 विद्युरे = चि० ६१ ६२, १८१ ।
 [वि०] (हि०) २० 'विद्युडे' ।
 विद्ये = का०, १५ । प्र० १६ ।
 [वि०] (हि०) फल । विखरे ।
 विजली = का०, ७ ४६, ८१ २२४ २२६ ।
 [सं० शी०] (हि०) विद्युत् । चमकाला । चपल । अतिशय चपल ।
 विजली सी = भा०, ६२ ।
 [वि०] (हि०) अत्यंत चपल सा । विजली के समान, चमकाला सा, विद्युत् सा ।
 विज्जुलता = चि० १३ ।
 [सं० शी०] (अप०) विद्युत् लता । बिजला की बेलि ।
 विज्जुली = चि०, १५० ।
 [सं० शी०] (अप०) २० 'विजली' ।
 विठलाया = प्र० २० ।
 [क्रि०] (ब्र० भा०) बठाया । बठाना क्रिया का एक रूप ।
 विठा = का० कु० ४५ ।
 [पुव० क्रि०] (हि०) बठाना क्रिया का एक रूप ।
 विठाता = प्र० २१ ।
 [क्रि०] (हि०) बठाता । बठाना क्रिया का एक रूप ।
 विडवना = का० ११ ।
 [सं० हि०] २० 'विडवना' ।
 वितरहु = चि० ६१ ।
 [क्रि०] (ब्र० भा०) वितरण करा । बाटा । बाटना क्रिया का एक रूप ।
 विताना = का० कु० ३३ । का०, १७५ । प्र० २१ । ल०, ३५ ।

[क्रि०] (हि०) गुजारना । व्यतीत करना ।
 वितै = चि०, १७१ ।
 [पुव० क्रि०] यिनारर । व्यतीत करके । बीतना (ब्र० भा०) दिया का एक रूप ।
 विदा = का० कु०, ६६ । प्र० १४ ।
 [सं० शी०] (हि०) घाग हुए का लोट जाना । गमन । जाना । जाने की आना ।
 विगाई = प्र० १४ ।
 [सं० शी०] (हि०) जाने का भाव (जुगई) ।
 विधान = चि० ६८ ।
 [सं० पु०] (सं०) कानून । नियम ।
 विधि = चि० ६६, ७३, ७४ १३३, १४३ ।
 [अप०, (हि०) प्रकार ।
 विधु = प्र०, १६ ।
 [सं० पु०] (हि०) चद्रमा ।
 विधुकर = का० कु०, ३४ ।
 [सं० पु०] (सं०) चंद्र किरणें ।
 विधुकला = चि०, ४५ ।
 [सं० पु०] (सं०) चंद्र किरणें । चद्रमा की कला ।
 विद्वयो = चि०, १८४ ।
 [वि०] (ब्र० भा०) छिन्ना । विधा ।
 विन = भा० ५१ । चि०, ३४ ५७, १६६ ।
 [अप०] (हि०) विना ।
 विनती = का० कु० ८४ ।
 [सं० शी०] (हि०) प्रार्थना विनय निवेदन ।
 विना = का० कु०, ४३ । का० ५६ । चि०, [अप०] (सं०) २१, ३४ ६१, १७१ । प्र० २, २३ । म०, १२ । सिवा । अतिरिक्त । छोड़कर ।
 विनु = चि०, १७४ ।
 [अप०] (ब्र० भा०) २० 'विना' ।
 विनोद = चि०, १६७ ।
 [मं० पु०] (सं०) द० 'विनोत्' ।
 विनोदमय = का० कु० ४८ ।
 [वि०] (हि०) विनोदयुक्त । मनोरंजनयुक्त ।
 विपिन = चि०, ३१, ५३ ।
 [सं० पु०] (ब्र० भा०) विप्रा, ब्राह्मणा, द्विजा ।

विभाते = चि०, ७० ।
 [वि०] (ब्र० भा०) चमकता हुआ । उजानित ।
 विमल = का० कु० १६ । चि०, ४५, १६५ ।
 [वि०] (मं०) २० 'विमल' ।
 विरल = का० १७७ ।
 [वि०] (सं०) २० 'विरल' ।
 विरह = चि० १४ १७१, १६० ।
 [१० पु०] (हि०) २० 'विरह' ।
 विरहाग्नि ज्वाला = चि०, ३६ ।
 [न पु०] (मं०) विरह के अग्नि का ज्वाला ।
 विराजहि = चि० ४७ ।
 [क्रि०] (ब्र० भा०) विराजमान हो ।
 विलापता = का० कु०, ६४ ।
 [क्रि०] (हि०) विलाप करता ।
 विलापाता = प्रा० ३१ । ऋ, ३१ ।
 [क्रि०] (ब्र० भा०) २० 'विलखना' ।
 विलखाती = प्रा० ८ । का०, ११८, १६४ ।
 [क्रि०] (ब्र० भा०) २० 'विलखना' ।
 विलसै = चि०, १४६ ।
 [क्रि०] (ब्र० भा०) प्रमुदित होना है । बिलनाम करता है ।
 विलोकत = चि, १७६ ।
 [क्रि०] (ब्र० भा०) देखता है ।
 विलोकै = चि०, १८२ ।
 [क्रि०] (ब्र० भा०) 'विलाकत' ।
 विलोल = चि० १४३ ।
 [वि०] (सं०) हिनना हुआ, चञ्चल ।
 विशेषवर = का० कु० ३१ ।
 [सं० पु०] (ब्र० भा०) ईश्वर, प्रभा ।
 विश्व = चि०, १६ ।
 [सं० पु०] (सं०) जगत्, मसार ।
 विसरत = चि०, ३ ।
 [क्रि०] (ब्र० भा०) भूल जाता है ।
 विसरायो = चि०, ३४, १६६ ।
 [क्रि०] (ब्र० भा०) भुला दिया ।
 विसारी = चि, ३५, ५७ १७६, १८३ १८४ ।
 [क्रि०] (ब्र० भा०) बिसार दिया । भुला दिया ।
 विसैति = चि०, १७२ ।
 [पु० क्रि०] (ब्र० भा०) विशेषतः सुक्त हाकर ।

विस्तृत = का० कु०, ३६ ।
 [वि०] (हि०) फैला हुआ । २० 'विस्तृत'
 विहगम = का० कु०, ३३ ४२ ।
 [सं० पु०] (हि०) पक्षी । चिटिया । २० 'विहगम' ।
 विहसती = प्रा०, २५ ।
 [क्रि०] (हि०) प्रमदित हाती प्रमन होती ।
 विहरण को = चि०, १६ ।
 [क्रि० वि०] (ब्र० भा०) विचरण करने के लिये । विहार करन के लिये ।
 विहरत = चि०, १४३ ।
 [क्रि०] (ब्र० भा०) विहार करता हुआ । विहार करता है ।
 विहरन = चि० ६० ।
 [क्रि०] (ब्र० भा०) विचरण । विहार करना ।
 विहरे = चि, १४६ ।
 [क्रि०] (ब्र० भा०) विहार करे ।
 विहारथल = चि०, १८८ ।
 [मं० पु०] (हि०) विहार करने का स्थान । अभिमार का स्थल ।
 विहारि = चि०, ५१ ।
 [पुन० क्रि०] (हि०) विहार करके ।
 विहारी = प्रे०, १६ ।
 [वि०] (हि०) विहार करनेवाला ।
 विहाल = चि०, १७१, १७७ ।
 [वि०] (हि०) प्रसन । कामुक । व्यग्र ।
 वीच = प्रा०, २५ । का० कु०, ३६ ४८, १०३ । का०, ४६, ४८, ५३, ५४, १३६, १५०, १८१ १८२, २६१ ।
 [मं०] (हि०) चि०, २, ११, २४, ४६, ५५, ५९, ६६, ६७ । ऋ०, ११, ५५ । प्रे०, १४ २१, २२ । मं०, ४, ८ । मध्य ।
 वाच वीच = का०, १८२ ।
 [मं०] कुछ अंतर पर ।
 वीचि = का० कु०, ३४ । चि०, १४६ ।
 [सं० खी०] (हि०) लहर, तरंग ।
 वीचिन = चि० । १७० ।
 [सं० खी०] (ब्र० भा०) छोटी छोटी लहरें ।

वीचियों = वा०, १६६।

[सं० स्त्री०] (हि०) छोटा छोटा लहरियाँ।

वीचियों = ऋ०, ३५।

[सं० स्त्री०] (सं०) लहरो।

बीज = वा० १४१ १४६ १८२। म०, २४।

[सं० पुं०] (हि०) मूल। गुठना। बीया।

बीणा = चि० १४ ३०। ऋ० ३४।

[सं० स्त्री०] (सं०) एक प्रकार का बाघयन्त्र। *० बीणा'।

बीणा स्वर = चि० ४७।

[सं० पुं०] (सं०) बाणा का स्वर।

बीत चली है = वा० १८६। ल० १०।

[त्रि०] (हि०) गमाप्त हो चला है।

बीतत = चि०, ८।

[क्रि०] (प्र० भा०) व्यन्त होना है।

बीतना = प्रा० ८, ५५ ७०। वा०, १७, २४,

[क्रि०] (हि०) ६० १६२, १६४ १६५ १६६

१६७, २०७, २२२। चि०, १८ ५७,

६०। प्र० १६, १८, १९ २०, २२।

ल०, ३२।

व्यतात होना।

बीती = वा० २३, १७७। प्र० १२ १६

[क्रि०] (हि०) १६ २३। ल०, १६।

*व्यतात हुई।

[बीती बिभाबरी जाग री—जहर म पु० १६ पर सन्तलित जागरणगात। उपाख्या वाला अक्षर के पनघट म तारा जटित घट डुबो रही है अथात् उपा दील रही है और तारे अक्षर मे विलान हो रहे हैं। रात बीत चुका है, जागा। पक्षियों का परिवार कलरव कर रहा है। मलयज समार के सपर्यर्ष किसलय का अचल डोल रहा है अथात् कलिया खिल रहा है और लीन यह सातका भी मधु मुकुला के नवल रस स गगरी भर लाई है अथात् ललिका म खिल फूल रस रजित हू लेकिन अचने अक्षरा म अमद रागरजित किए हुए हो तथा जिसस

मलयज पवन भी सुन्दारे मनका म बन हो गए हैं। (मलयज पवन सगने पर घाग्गी जाग जाता है किन्तु यहाँ मन्मस गाँव बारग उमका भी अगर रही पठ रहा है। एगी स्थिति म जब प्रकृति घोर पक्षा तक जाग गए हैं तब भी घाग्गी तू घाग्गी म रामगति तिम गार्द है। राग बीत चुका है, उठा जागा।)]

घोत = वा० १० ६६ ११२, १६३। त्रि०

[सं० पुं०] (हि०) ४७ १०० १६७। ल०, ७६।

मुट्टास दूधरर रनाया जानवाना एव बाघ यन्त्र। बागा।

घोनकर = वा० १८१।

[प्र० त्रि०] (हि०) छाँटकर। उतार।

घोनती = वा०, १८६।

[त्रि०] (हि०) छाँटता। घुन्ती।

वीर = चि० ३८ ४१ ५१, ६५, ७० ७२,

[सं० पुं०] (हि०) ६७, १०५।

भाई। अता।

[स्त्री०] सखी, सहना।

[वि०] शक्तियाला। बहादुर।

वीर कर्म = चि०, ६३, ६६।

[सं० पुं०] (हि०) बहादुरा का काम।

वीरन गले = चि०, ४२।

[सं० पुं०] (हि०) वारा क गले।

वीरपथ = चि०, ६५।

[सं० पुं०] (सं०) वीरो का मार्ग।

बोहड = प्रा०, ४०। का०, १५८।

[वि०] (हि०) उजाड। वीरान।

सुम्न न जाय = का०, १७६।

[क्रि०] (हि०) ठंडा न हो जाय। प्रकाश समाप्त न हो जाय।

सुम्नना = का०, ११८ १२०, १३६, १६० १७६

[क्रि०] (हि०) १८३। ऋ० ४७।

जलने के बाद समाप्त हो जाता।

सुम्नी न प्यास = चि० १५, १०३।

[सं० स्त्री०] (हि०) व्याप्त समाप्त न हुई। इच्छा नष्ट न हुई।

सुदसुद = का०, १७, १७६, २२३, २७० म० ४।

[सं० पुं०] (हि०) पानी का बुबुला।

सुदसुद सा = का०, २८८।

[वि०] (हि०) युनयुल के समान। जराभयुर।

सुद = प्र०, २१।

[वि०] (हि०) जागा हुआ। ज्ञानी।

[सं० पुं०] (म०) गौतम बुद्ध।

बुद्धि = का० कु०, ८, १२२। का० ६, १०,

[मं० स्त्री०] (म०) १३४ १६६ १७१, १७२, १६३,

२७०। मं०, ६३। ल० २१।

सोचने ममकने और निश्चय करने की शक्ति। श्रवण।

बुद्धिचक्र = का०, २६६।

[सं० पुं०] (सं०) बुद्धिरूपी चक्र।

बुद्धिवल = का०, १८६।

[सं० पुं०] (सं०) बुद्धि की शक्ति।

बुद्धिवाद = का०, १७२।

[सं० पुं०] (हि०) वह मित्रात् जिसम बबल बुद्धिसम्मत या समझ मे आनेवाली बात ही मानी जाती है।

बुधजन = मं०, १२।

[सं० पुं०] (हि०) विद्वान् लोग। बुद्धिमान् लोग।

बुधि = चि०, ३५।

[सं० स्त्री०] (प्र भा०) दे० 'बुद्धि'।

बुनते = भा०, १४। का० १७६।

[क्रि०] (हि०) बुनना क्रिया का एक रूप।

बन दे = का०, १५०।

[क्रि०] (हि०) कान दे। बना दे।

बुनना = का०, ३२, ६५ ७५, ६८, १४३,

[क्रि०] (हि०) १४४, १६८।

लोगा का सहायता से कर्षे पर कपडा तयार करना।

बुरा = का० १८६।

[वि०] (हि०) मंद। खराब। निष्ट।

बुराई = का०, १६५।

[सं० स्त्री०] (हि०) खराबी। दोष। श्रवण।

बुरी दशा = का०, २५।

[सं० स्त्री०] (हि०) खराब हालत। दयनीय स्थिति।

बुलाई = चि०, ५२।

[क्रि०] (हि०) पुकारा।

बुलाता है = का० कु०, ४६। का० ६७, ८६।

[क्रि०] (हि०) पुकारता है।

बुलाती = क०, ८।

[क्रि०] (हि०) पुकारती।

बुलाना = क० १६। का०, ८६ ८७। मं०,

[क्रि०] (हि०) ६४।

पुकारना।

बुल्ले = का० ६७।

[सं० पुं०] (हि०) पाना के बुनबुल।

बुँद = भा०, ६६, ७२। का० कु०, २१,

[सं० स्त्री०] (हि०) ३१, ४५। का० १६, २२३, २६३,

२६१। चि०, ५७, ७०, ७१, १७२।

मं० २१। प्र० ६, २२, २६।

पाना का बतरा। गिरते समय किसी

द्रव पदार्थ का सधमे छोटा कण।

बुँद सदृश = प्र०, १६।

[वि०] (हि०) बूद व समान।

बूक्ति = चि०, ५३।

[पूर्व० क्रि०] (प्र० भा०) ममभ्रर।

बुदानन = ल० २६।

[सं० पुं०] (हि०) मथुरा के निकट एक नगर जहा कृष्ण

ने प्रेमलीला की थी।

बुद्ध = प्र०, २१।

[वि०] (हि०) बुद्ध। बूडा।

बुद्धि = का० कु०, ४७।

[सं० स्त्री०] (हि०) बढ़ता। बढ़ावा। व्याज।

बुध = का० २७७।

[सं० पुं०] (सं०) बल, साठ।

वेग = चि०, १२।

[सं० पुं०] (हि०) गति। तज। प्रवाह। बहाव।

वेगसहित = का० कु०, ४०, १।

[वि०] (हि०) प्रवाह के सहित।

बेगार = ग्रा०, १२ ।
 [सं० पु०] (हि०) बिना कुछ दिए हुए लिया गया काम ।
 बेगि = चि०, १४७, १७५ ।
 [सं० पु०] (ब्र० भा०) 'बेग' ।
 बेगिहि = चि० ४२ ।
 [सं० पु०] (ब्र० भा०) ज दी से ।
 बेगुन = ग्रा० ४२ ।
 [वि०] (हि०) गुण रहित । बिना डारी का ।
 बेगे = वि ६६ ।
 [वि०] (ब्र० भा०) जल्पा हा ।
 बेचारी = चि०, ५८ ।
 [वि०] (हि०) निस्महाय । मवलरहिता ।
 बेटे = का० २१३ ।
 [सं० पु०] (हि) पुत्र ।
 बेडी = भ०, ५१ ।
 [सं० स्त्री०] (हि०) लोहे का जजर जिसे कदिया को पहनाते हैं ।
 बेदी = चि०, ६८ ।
 [सं० स्त्री०] (हि०) हवनकुंड । बेदी ।
 बेघो = चि०, १७२ ।
 [क्रि०] (हि०) घेघ दो । ताड डालो ।
 बेमन श्री = ग्रा० ४४ ।
 [वि०] (हि०) अ यमनस्क बिना मन की ।
 बेर = चि०, ६० ।
 [सं० पु०] (हि०) एक वृक्ष । बार, दफा ।
 बेरोक टोक = का० ६४ ।
 [वि०] (हि०) बिना किसी रोक टाक क । निबिध्न ।
 त्रयधान रहित ।
 बेल = का०, ५७ ७८ । भ०, ६६ ।
 [सं० पु०] (हि०) श्रीफन । लता ।
 बेला = ल०, १० । ग्रा० ६० ।
 [सं० पु०] (सं०) चमली की भाँति का एक सुगन्धित फूल । लहर, तिनारा । तरंग । समय ।
 बेलि = का० कु०, ८६ । चि०, ५ ।
 [सं० स्त्री०] (हि०) लता ।
 बेली = का० १२६, २६० ।
 [सं० स्त्री०] (सं०) वन्ना लता ।
 [सं०] सापी, मपी ।

बेसुध = ग्रा०, ११, १३ । का०, ४० ।
 [वि०] (हि०) अचेत । वदत्वासा ।
 बेहाल = चि०, ५६ ।
 [वि०] (पा०) व्याकुल, बेचन ।
 बैठता = ग्रा० २५ । का०, २६१ २६५ ।
 [क्रि०] (हि०) बठना क्रिया का एक रूप ।
 बैठना = ग्रा० २५ ३८ ४३ ५५ । का०, १४ । का० कु० ३६ । का० २४ ३३ ८५ ६१ १ ५ ११६ १२३, १४१ १८३, १८६ २०६ २११, २१३ २१५ २१६, २१८, २३० २७८ २८४ २८५ । चि० २ १३, २४, ५५ ५६ ५८ ६६ १८० । प्रे०, १६ । म ७ ८ । ल०, ६६, ७२ ।
 आसीन होना, आसन जमाना ।
 बठी सी = २३० ।
 [वि०] (हि०) बठी हुई के समान ।
 बेठो = चि० ७२ ।
 [क्रि०] (ब्र० भा०) बठा ।
 बेतन = चि० १७६ ।
 [सं० पु०] (ब्र० भा०) वाता बचनी ।
 बैरिन = चि० ३५ ।
 [वि०] (हि०) शत्रु । दुश्मन । वर रखनेवाला ।
 बैरी = चि०, १०६ ।
 [वि०] (हि०) 'बे बरिन' ।
 बोझ = का० कु० १२ ।
 [सं० पु०] (हि०) भार बजन ।
 बोझ सी = का०, ११८ ।
 [वि०] (हि०) भारमय, भारयुक्त ।
 बोध = का० २३० ।
 [सं० पु०] (सं०) ज्ञान । धर्म । सात्वता ।
 बोलफर = का० कु० ५१ ६६ ।
 [पूर्व० क्रि०] (हि०) बहक ।
 बोलन बोली = चि०, ५८ ।
 [क्रि०] (ब्र० भा०) व्यग करता है ।
 बोलति = चि०, १४, ४५, १५१ ।
 [क्रि०] (ब्र० भा०) बोलती है ।

बोला = भा०, ६५। व०, १६। वा० कु०,
[क्रि०] (हिं०) ४५ १२६, १२८, १३२। वा०
१६ म २८७ वा २८ वार। वि०,
१, ४८, ५७, ५३, ५६, ६१, ७०,
१५८। प्रे० १२, १४। म०, १४।
ल, १८, ५७।
मुह न शब्द निवृत्तना। उच्चरण।
मुद्र रहना। वाकी न रहना। हार
मान लेना।

बोली = वा० कु० ४५। वा० ६३, १२८,
[म० ली०] (म०) १३२, १६८ २६०। वि०, ५६ ५७
प्रे० ११ १८ ६१।
वाणा। नाथरु मान। रिनी प्राणा के
मुँह में निवृत्ता दुःखा शब्द।

बोलु = वि० १४७।
[सू० क्रि०] (म० भा०) वावा, वावर।
बोत्यो = वि० ५४, ५८ ७२ ७३; १८४।
[क्रि०] (म० भा०) बोला। वहा।
बोने = भा० ७७।
[स० पु०] (म०) नाट, वृत्त में छटे। वावन अगुल वा,
ठिगने।

बयजव = वि०, ७७।
[वि०] (म०) अभिपक्ष करनेवाला।
बयधन = वि०, १३४।
[क्रि०] (म० भा०) प्रवना है। कष्ट देता है। मारता है।
प्रहार करता है।

ब्याकुल = वा, १४०। व०, २६।
[वि०] (म०) घबड़ाया हुआ। वचन।
ब्याह = प्रे० १७।
[म० पु०] (हिं) विवाह, शादा शाशिवर्ष।
न्याही = प्रे०, १३।
[वि०] (हिं०) विवाहिता।
न्योम मध्य = का० कु०, ४३।
[म० पु०] (हिं०) वाच आकाश म।
ब्रजनाला = वि०, १६२।
[स० ली०] (हिं०) ब्रज का युवती। ब्रज की तरुणिया।
गापिया।

ब्रह्मभैला = वा० कु०, १००।
[म० ली०] (म०) ब्रह्म मुहता।
ब्रह्माह = वा, २५३। वि० १५५।
[स० पु०] (म०) सवन सृष्टि। गानधो के ऊपर का
त्रिचमला भाग।
ब्रह्माह निम्न = वा०, १८३।
[म० पु०] (म०) सृष्टि।
ब्रह्मा = वा० कु० ११४।
[म० पु०] (म०) ब्रियाना सृष्टि।

[ब्रह्मा—एव पौराणिक देवता जो संपूर्ण प्रजा का
सृष्टा माना जाता है। ब्रह्मा की उत्पत्ति
विष्णु ने कमल रूप घारी पृथ्वी क
निमाण द्वारा किया। भगवान् विष्णु
के मन में सृष्टिसृजन की भावना से
भी ब्रह्मा की सृष्टि मानी जाती है।
पुराणां म इस चार मुखवाना बत-
लाया गया है। इसे पाचवा मुख
भा था किंतु उसे शंकर ने मरोड़ कर
द्वैक दिया। यत् वेदा वा विमाता भा
था। मर्गाचि शक्ति, शक्तिरय, पुलस्त्य
पुलह व्रतु दत्त, भृगु एव वशिष्ठ इवक
पुत्र थे। धाता श्रीर विधाता नामक
इसके दा और पुत्र माने जाते हैं।
इसका पुत्री का नाम जतन्मा था।
स्नायभू मनु की उत्पत्ति इसका पत्नी
सावित्री द्वारा बतनाई जाती है।
शतरूपा और सावित्रा भा इनकी
पुनियौटा थी। शतरूपा का नाम मत्स्य
पुराण म सावित्री मरस्वती गायत्री
और ब्राह्मणी भी दिया है। दुःहेतुगमने
से लजित हुए ब्रह्मा का रश्म द्वारा मदन
वहन का शाप दिया गया था किंतु
रश्म के उपरांत भी बारह स्वाना पर
निरास धनग रूप से करने का वात
बहो था। वे स्वान हैं—स्त्रिया क मंन
वृत्त जघा, स्तन स्वय, अचराष्ट
(शारीरिक धनधर) तथा वसन
वा बिलवत् चंद्रिका, वषा क्रतु चन
और वजास नाम आदि। सावित्री के

शाप से यह प्रपूज्य हो गया। ब्रह्मा के बारे में अनेक कथाएँ मिलती हैं। सरस्वती के प्रति पुहरवा के मोह के कारण तथा उसके रति पर कुपित हो उसने सरस्वती को नदा बन जाने का शाप दिया और उद्यमों द्वारा प्राथना करने पर पुनः सरस्वती को नदियों में पवित्र समझा जाने का वरदान दिया इसने तार्थों की रचना भी की है।]

ब्रह्म = ऋ०, ५६।
[सं० पु०] (हिं०) धाव, फोडा।

[ब्राह्मद्वय—[वृहद्रथ] मगध देश के गिरिब्रज नगर में शासन करनेवाले वृहद्रथ राजा के वंशज वाहृद्रथ नाम से सदा भक्त किए जाते हैं। यह जरासभ का पिता था।]

भ्रीडा = का०, ६७, ११६। ल०, ७६।
[सं० स्त्री०] (सं०) लज्जा।

भ

भग = का०, २१। का०, ७७, १५७। प्र०,
[सं० पु०] (सं०) ४। ल०, ४६।
खड। टूटने का भाव। विष्वस।
भय। पराजय। भाँग।

भँवर = भाँ०, २८। वि०, १६४, १८४।
[सं० पु०] (हिं०) भीरा। धावत। भवरा।

भँवर सी = का० कु०, ८।
[वि०] (हिं०) भवर के समान।

भई = वि०, ५०, ६२, ६४, ७४, १८१।
[क्रि०] (हिं०) हुई।

भक्त = का० कु० ३०, ७२।
[सं० पु०] (सं०) उपासक। विभक्त। अनुयायी। सेवा करनेवाला।

भक्त भावना = का० कु० ६।
[सं० स्त्री०] (सं०) भक्ति। भक्ति की लानसा। सेवा भावना।

भक्ति = का०, ११, १५। का० कु०, ५। का०,
[सं० स्त्री०] (सं०) १६५। वि०, ५६। ऋ० ७८ ८८।
म०, १५, १६।

पूजा। धरदा। वाटना। धवधर।
धम।

भक्ति प्रयाग = प्र०, २२।

[सं० पु०] (सं०) भक्ति रूपी प्रयाग।

[भक्तियोग—इदु कला ४, रज १, किरण ४, अग्रल १६१३ म सवप्रथम प्रकाशित। यह लबी कविता कानन कुसुम क पृष्ठ २८-३२ पर सफलित है। सूर्यास्त की बेला था। पीली किरणा का सहारा दे ले रहे थे और उनका प्रभा मलान पड गई थी। भय और वाकुलता से पतनो-मुक्त सूर्य का रूप पीला पड गया था। जिन पक्षिणा पर किरणों आश्रय ग्रहण करती थी वे भी उनसे दूर हटती जा रही थी। ससार म सुख व साथा सभी है और डूबनेवाले को मरु धार में बचाने कौन जाता है? उसी पहाडा प्रदेश म नदी बल कल नाद करती हुई बह रही थी और उसके अतर के आनंद का उसम उठनेवाली लहरियाँ प्रकट कर रही थी। पर पवत ऐसा शात था जैसे कोई विरक्त योगमग्न हो और सरिता माया के समान था जो कह रही था कि 'अनुरक्त बनो', बन के वृद्धा पर सुदर फूल खिल रहे थे जिनम म कुछ हवा क वशीभूत हो आनन्द से हिल रहे थे। एसी स्थिति म ही 'आलोच बाणी' को खोज म चितित पद्यासन साथे शिला पर शात दीप्त मस्तकवाला बठा योग साधन कर रहा था। दुःप्राप्य का प्राप्ति के लिये बड मुक्त जावनवद था। एमे व्यक्ति का अनुरक्त कहा जाय या विरक्त। कुछ समय तक वह जब ध्यान भंग था इतने म हा नुस्तर की मधुर ध्वनि हुई और ध्यान मग्न हुआ और आकाश स एव पुनरा उतरी और उसक सामने खडा होकर कहन लगी हे भक्तवर। यह परिश्रम क्या कर रहे

हो, विष्वक् का ध्यान तुम यो क्या खो रहे हो। समार म सुन्दर माथी, सपत्ति, सुन्दरा सुन्दरा है। संसार सुन्दर स्वर्गात् बर रहा है फिर क्या भाग रहे हो भ्रम जात तटा। ध्यानद विद्वत् भक्त ने तत्र सुन कर कटा ध्यान के दा बूद धर्म ही हमारा सब कुछ है क्याकि प्रेममय सर्वेश का ही सारा जग है। उनको वृत्ता मे हा ध्यानद है। वह प्रेम का प्रागट्य परम ध्यानद दाता है। हम ता प्रेम मतवाले हैं भ्रम मनवाला कौन बने। मत धम सबका प्रेम सागर मे बटा दिया है। हम धीर सर्वेश का समुत्त गंगा म स्नात हो ध्यानद धामन पर बठे देख तुम्ह ईप्या हा रहो है मुदरी। कुछ दिन धीर ध्यनीन हान दा फिर तुम्हीं देखोगी कि हम तुम सभी उमक हैं धीर वह हमारा है धीर हमारा उमका तादात्म्य हो जाने पर तुम भा हमस भिन न रहाग। यह मुन वह मूर्ति हँसी धीर कदगा का बाटविना हा गई धीर ध्यानद की वषा होन लगा।]

भक्ति सुधा = का० कु०, ८६।
[म० ख०] (सं०) भक्ति रूपी समुत्त।

भद्राक = का० कु०, ६३, ७१। का०, २७३।
[वि०] (सं०) ल०, ५६।

भनण करनेवाला। निज स्वार्थ के लिये दूसरे का विनाश करनेवाला।

भग रहा = का०, १७२।
[क्रि०] (हिं०) भगना क्रिया का एक रूप।

भगवति = का० २२४, २८७।
[सं० स्त्री०] = दुगा। देवा।

भगाली = का०, ११२।
[क्रि०] (हिं०) भगाना क्रिया का एक रूप।

भगे = का० २४८, २५८।
[क्रि०] (हिं०) भगना क्रिया का एक रूप।

भग्न = का०, ८४। ऋ०, ३०।
[वि०] (सं०) टूटा हुआ। नष्ट।

भग्नारा = का०, २५६।
[वि०] (सं०) निराश। धाशा को जो खो चुका हो।

भज्यो = चि०, १५६।
[क्रि० म०] (प्र० भा०) भगा। भजन किया। भजना क्रिया का भूतनालिक रूप।

भटकना = का०, ४६, ७७, ८१, ६३ १११
[क्रि० प्र०] (हिं०) १४४, १५३, १६०, २२७। ऋ०, १७। ल०, ५६।

माग भूलकर इधर उधर घना जाना। भूत जाना। भ्रम में पडना।

भटकाओ = का० कु०, ८३।
[क्रि० प्र०] (हिं०) भटकना क्रिया का एक रूप।

भटक्यो = चि०, १८७।
[क्रि० प्र०] (प्र० भा०) भटका। भूना। भटकना क्रिया का एक रूप।

भद्र = प्र०, ६।
[वि०] (सं०) श्रेष्ठ। माधु। मंगलकारी।

भद्र पथिक प्र०, ७। ६।
[सं० पुं०] (सं०) सम्य पथिक। श्रेष्ठ यात्री (संबोधन)।

भद्रे = प्र०, ११।
[वि०] (हिं०) भद्र, सम्य। (सबायन स्त्री)

भयन्त्र = का०, २०२।
[वि०] (सं०) भयानक, उग्र, डरावना, विकट। जिसे दखकर डर लग जाय।

भय = का० कु०, २८, ७२, १२०। का०,
[सं० पुं०] (सं०) १५७, १८५, १८६, १६८, २०६
२४०। ल०, ५२, ७७।
डर, रौक। विकार।

भयकरी = का०, १६६ २५७।
[वि०] (हिं०) डरानेवाली, डरावनी।

भयते = चि० १८७।
[सं० पुं०] (प्र० भा०) डर से।

भयभीत = का० कु०, १२०। का०, ५१, १५७।
[वि०] (सं०) चि०, १६१।

डरा हुआ, भययुक्त। जिससे मन में डर उत्पन्न हो जाय।

भयसकुल = ल० ३२।
[वि०] (सं०) भय से व्याघ्रादित। भयभीत।

भयानक = का० कु०, १२१, १२२ । का०, १८५,
[वि०] (स०) २००, २८१ । ऋ०, ८८ । प्र० ५ ।
जिसे दखने से डर उत्पन्न हो जाय ।
भयावना भोगण ।

भयावने = का० २१८ । चि०, ४१ ।
[वि०] उरावन ।

भयानह = का० कु०, ६७ ।
[वि०] (स०) भय उत्पन्न करनेवाला । विषट
भयकर, भीषण ।

भयी = चि०, ११ १२ १४ २४ ३६ ५६
[क्रि० श्र०] (हि०) ६३, १६४ १६६ १६७, १८३
१८४ ।
हुई ।

भये = चि०, १५ ३५ ४२ ६५ ६६ ६७
[क्रि०] (हि०) १५७, १६४, १८४ ।
हए ।

भरत = चि०, ६० ।
[स० पु०] (स०) शत्रु तला क गम से उत्पन्न दुष्यत
पुत्र । दशरथ और ककयी क पुत्र ।

[भरत ? —दुश्शरीरराज्य दुष्यत तथा शत्रु तला
का पुत्र । यह करव क आश्रम में उत्पन्न
हुआ था तथा वचनपन म दानवों
राक्षसा तथा सिंहा का दमन किया ।
शत्रु तला क साथ दुष्यत क दरवार
म आन पर डा दुष्यत ने नहीं
पहुचाना । पुन जन मे दसन अश्वमेध
यज्ञ के समय दुष्यत क घाड़े का रोक
और दुष्यत का युद्ध म पराभूत किया ।
शत्रुतला द्वारा पिता का वध कराए
जाने पर यह माना । इमने भारत
साम्राज्य का स्थापना का । भव्य
पुराण क अनुसार इमने नाता दत्ता का
विभक्त नागा म बाट दिया । इन कारण
इस दत्त का नाम भारत पडा । दमन
३१४ अश्वमेध यज्ञ किए य । दमन
म्लच्छा तथा दानवों आदि का नाश
भा किया था । प्रसिद्धनपुर से टटाकर
हस्तिनापुर का स्थापना कर अपना
राजधानी इनन बन ई था ।

[भरत २ —दशरथ और ककयी का पुत्र । कुशाज
जनक का कन्या मांडवी इसका पत्नी
था । ककयी ने दशरथ से वरदान प्राप्त
किया था कि राम को वन तथा भरत
का राज्य मिल । उस समय भरत
अपने ननिहाल मे थे । ककयी क इस
पड्यन ने रामप्रम क कारण दशरथ
का प्राण भा हर लिया । सिद्धाय ने
भरत का अयोध्या बुलाया जा एव मथा
था । सभी स्थितिमा से अवगत होने
पर भरत प्रजा समत राम का लाजते
खाजते वन म राम से मिश्र कितु इनका
अनुनय अनुरोध राम ने स्वाकार नहीं
किया और नदा याम म जब तक राम
बा से वापस नहीं आए तब तक उनका
पाहुका लकर अयोध्या का शासन भरत
निमित्त मान वनकर चलाते रहे और
उस राम का प्रमानन समभ कर रखात
रहे । भरत ने गधवों का पराजित
किया तथा तक्षशिला और पुष्कलावती
पुष्कल का साप कर विजया हा भया य
पुन वापस आए । द्वादश भाई क रूप
इन्का प्रतिष्ठा है ।]

भरना = श्रा० १६ वार । क०, २ वार । का०
[क्रि०] (हि०) कु १३ वार । का०, १०५ वार ।
चि० २७ वारा ऋ० ८ वार । प्र०
५ वार । म० ३ वार । ल०, ३१
वार ।
उडेलना उलटना । फेलना । चुकना ।
दना । पूण करना ।

भरपूर = का०, ३२ ६१ ।
[वि] (हि०) अज्झा तरट भरा हुआ । सपूण ।

भरभर धर = का० कु०, २८ ।
[क्रि०] (हि०) पात्र म ल लहर । (भूतकालीन क्रिया) ।

भरमार = का० १७८ ।
[स० श्रा०] (हि०) वृत्तायन प्राधनता ।

भरमोद् = का०, ४७ ।
[क्रि०] (हि०) धान न पूरत हाकर (पूवकालिक
क्रिया ।)

[भरा नयनों में, मन में रूप—मन प्रथम तिरा रूप शीपक से 'इदु', गला न किरण २, फरवरी १९२७ में प्रकाशित 'स्कन् गुप्त' का गात, प्रमाद समात म पृष्ठ ८७ पर मकलित। दवगना के भावी जीवन का संकेतात्मक अभि-प्रति देनेवाना यह यौवन विरासित गीत है। किर्गी छलिया वा सुदर अपूर्व रूप आरु और मन में भरा हुआ है। जमीन आसमान, पाना और वायु चारा और वहा छाया हुआ है पर में प्रेम विद्वान उम खाज खोजकर पागत हा गई। सारे कुए म ही भाग पडी हुई है। नस नस में प्रेम तथी बज रहा है और तू कान लगाए वठा है बलिहारी है। प्रियतम तू मरा जीवन और प्राण है और उसा प्रकार तू मुझ से खेल खेलना है जस छाया स घूब।]

भरिके = चि०, १८५।

[क्रि०] (ब्र० भा०) भरकर। (भूतकालिक क्रिया।)

भरि भरि = चि० ३४, ५३।

[क्रि०] (हि०) भर भर कर। पूरा कर करके। (पूव कालिक)

भरी = का०, १४०। का० कु०, ५४।

[वि०] (हि०) पूरा। भरा हुआ।

भर = चि० १५२।

[वि०] (हि०) भरा हुआ। पूरित।

भरयो = चि० ६, १७। म० ५७।

[क्रि०] (हि०) भरा पूरा किया। भरना क्रिया का भूतकालिक रूप।

भल = चि०, २४, ५१, ५७, ६८, ७३

[वि०] (ब्र० भा०) १८४।

भला, कल्याणकारी। सुदर।

भला = का० १३। का० कु० ३१ ५३,

[वि०] (हि०) १०६। का०, १२५, १५६, १६०,

२१२, २१५, २१८, २३८। म० ३६

४६, ५१। प्रि०, ३। म०, १५, १६,

१८, २१। स०, ११ ७२।

बढिया, अज्झा। कल्याणकारी। सुदर।

भली = का०, ८। चि०, १५८। का० कु०, ८,

[वि०] (हि०) ५२, ६६। का० २२२। चि०, १८,

३३, ४५, १५६, १६४, १७७। म०,

२४, ४८। म०, २, ७, १७।

अच्छी, सुन्दर, मनारम।

भले = चि०, ३६, १८०।

[वि०] (हि०) दे० 'भला'।

भले बुरे = का०, २१०।

[वि०] (हि०) अच्छे बुरे। उचित अनुचित।

भले = चि०, १७७।

[वि०] (ब्र० भा०) भले। अच्छे। भले ही।

भरल = चि०, ४१, ४२, ५३।

[वि०] (ग्र०) भला। ठीक। उचित।

भव = का०, ६२। का० कु०, २६ ८६।

[म० पु०] (म०) १६६, म० २८।

उत्पत्ति, ज म। मसार। कामदेव।

भयकानन = का० कु० ३।

[म० पु०] (स०) समार रूपी वन।

भयजन्य = का० कु०, ७२।

[म० पु०] (स०) ससार स उत्पन्न।

भवजलनिधि = का०, १४७।

[म० स्त्री०] (स०) ससार सागर। माया का सागर।

भवतम = प्र०, २।

[स० पु०] (स०) माया। ससार रूपी अंधकार।

भवतापदग्ध = का० कु० ६।

[वि०] (स०) ससार व ताप स जलाया हुआ। भव

दुख दुखी।

भवनिक = का०, २४२।

[वि०] (हि०) भौतिक। मसार सबधी। पबभूत

सवधा। पाथिव।

भवधरा = प्रि० २२, म० २०।

[स० स्त्री०] (म०) अस्तित्व विवक। सपूरा जगत्।

भवन = का०, १५। का०, २१८। चि० ४६।

[स० पु०] (स०) म०, ३६। म०, १६, २०।

मदान। घर, प्रामाद। आश्रय या

आधार स्थल।

भवनो = का०, १८०।

[म० पु०] (हि०) दे० 'भवन' (बहुवचन)।

भवबंध = ल० १३।
 [सं० पु०] (सं०) साप्ताहिक बंधन। माया मोह आदि
 ना जाल।
 भवबंधन = का० कु० १२६।
 [सं० पु०] (सं०) साप्ताहिक बंधन। > 'भवबंध'।
 भवरजनी = का०, १३६, २०५।
 [सं० स्त्री०] (सं०) ससार रूपी रात्रि।
 भवसागर = चि, १२।
 [सं० पु०] (सं०) संसार रूपा सागर। मामा माह वा
 प्रपाह सिधु।
 भवसिंधु = चि०, १८६। प्र०, १०।
 [सं० स्त्री०] (सं०) ससार रूपी समुद्र। > 'भवसागर'।
 भविष्य = का० ७, ८६, १६६, १६७ प्र०, ३।
 [सं० पु०] (सं०) भविष्यकाल।
 भविष्यचिंता = का०, २१०।
 [सं० स्त्री०] (हि०) भविष्य के संबंध की चिंता।
 भविष्यन्तु = का० कु०, १२०। का०, ५२। प्र०,
 [सं० पु०] (सं०) २३।
 होनहार। भावी।
 भस्म = चि०, ७४।
 [सं० स्त्री०] (सं०) राक्ष। रस घोषधि।
 भाडार = ऋ०, ३६।
 [सं० पु०] (हि०) भडार, खजाना, बंध।
 भाँति = चि०, ४, २३ ४३, ५०, ५१, १४२,
 [सं० स्त्री०] (हि०) १४८।
 तरह। विस्म। प्रकार। मर्दा।
 भाँवरो = का० ८३।
 [सं० स्त्री०] (सं०) केरा। चक्कर। परिव्रमा।
 भाग = का०, ४१, ८४ १३२ १६६ २२६,
 [सं० पु०] (हि०) २३६, २७१। चि०, ६५। ल० १२।
 भाग्य। मोभाग्य। खड। घोर।
 लताट।
 भागन = चि०, ६५।
 [सं० पु०] (ब० भा०) भाग्य स।
 भागना = का०, ४८। का०, कु०, १०। का०,
 [क्रि०] (हि०) १६५ २६८। चि०, २५। ऋ० ३५,
 ६०। म०, १०, ल०, ४०।

दोडना। हट जाना। किसी काम स
 डरना या बचना।
 भागीरथीतट = का० कु०, ११४।
 [सं० पु०] (सं०) गंगा का किनारा।
 भाग्य = का०, १३, १५। का० कु०, ९३,
 [सं० पु०] (सं०) ११६। का०, १६०, १६६, १७६,
 २३६, २४४। चि०, २५। ऋ०, ६०।
 प्र०, १०।
 प्रारब्ध। तदनीर। नियति।
 भाग्यगन = का०, १८४।
 [म० पु०] (सं०) भाग्यरूपी आकाश।
 भाग्यवान = का०, २६८।
 [वि०] (सं०) सौभाग्यशाली। अच्ये भाग्यवाला।
 भाता = प्र० ३२।
 [क्रि०] (हि०) अच्छा लगता है।
 भान = का०, २६। ऋ०, ८८।
 [सं० पु०] (सं०) प्रकाश। ज्योति। दासि। आभास।
 काल्पनिक विचार।
 भानु = चि० २६, १०३, १६३।
 [सं० पु०] (सं०) सूर्य किरण। राजा।
 भानुहि = चि० १६३।
 [सं० पु०] (ब० भा०) भानु की। सूर्य ही।
 भाप = का०, १०। चि०, ६६।
 [सं० पु०] (हि०) वाष्प। ताप पाकर विलीन होनेवाली
 पानी का अवस्था।
 भाभनि = चि०, ४५, ४७।
 [सं० स्त्री०] (सं०) स्त्री, घोरत।
 भाया = चि०, १४६।
 [वि०] (हि०) प्रिय, प्यारा।
 [क्रि०] अच्छा लगा।
 भायो = चि०, ५४, ७५, १८६।
 [क्रि०] (ब० भा०) अच्छा लगा। पसंद आया।
 भार = का० २६, ६६, ८५, ८६, ६४,
 [सं० पु०] (सं०) १४८ १७१। चि०, २२, २८, १४८,
 १६० १६०। ऋ०, २१। ल०, १३,
 ५७ ७३।
 वाक्, उत्तरदायित्व, वजन, सम्हाल।
 भारत = का० कु०, १०४, १०६, ११०, ११२,

[सं पु०] (मं०) ११८। चि०, १६४। म०, १७, १९।
हिंदुस्तान। अग्नि।

[भारत—इडु, कला १ किरण ११, ज्यष्ठ, १९६७
वि० मे प्रकाशित। भारत दुदशा की
बचा कर कवि ने हिमगिरि पर भारत
के भाग्य दिवाकर के उदय की कामना
ब्रजभाषा की इस राष्ट्रीय कविता मे की
गई है।]

भारतखण्ड = चि०, ६६।

[सं पु०] (सं०) भारतवष का भाग।

भारतवासी = का० कु०, १०६। म०, ६।

[सं पु०] (हि०) भारत मे रहनेवाला, हिंदुस्तान का
निवासा।

भारतेंदु = चि०, १६४।

[सं पु०] (सं०) भारत का चंद्रमा। कविवर हरिश्चंद्र
का उपाधि।

[भारतेंदु प्रकाश—भारतेंदु हरिश्चंद्र (सन् १८५१
१८८५ ई०) आधुनिक हिंदी साहित्य के
प्रवक्तक हैं। यह कविता उनकी हीरक
जयती के अक्षर पर नागरी प्रचारिणी
पत्रिका म तथा 'इडु' कला २, किरण १,
आश्विन १९६८ वि० म प्रकाशित और
चित्राचार मे 'पराम' क अतगत पृष्ठ
१६५ पर सजलित है। प्रसादजी ने
भारतेंदु को श्रद्धाजलि अर्पित करते हुए
उहे आनन्ददायिनी हिंदा की चंद्रिका का
छिटकानेवाला, अक्षकार म पथ प्रदर्शन
एव पथप्रकाशक, कविबचन मुधा की
घार, प्रकाश की चंद्रायली हिंदीरूपी
रजनीगंधा का खिगानेवाला महान्
हिंदा प्रवक्तक के रूप मे स्मरण
किया है।]

भारतेश्वरी = ल०, ७५।

[सं खी०] (सं०) भारत की मातृनी।

भारवाही = का०, २०।

[सं खी०] (सं०) भार बहन करनेवाली, गाढी।

भारी = का० कु०, १२। चि०, ५६, १६०।

[वि०] (हि०) गभीर। कठिन। शात।

भाल = का० कु०, ६ ११, १२१। का०,
[सं पु०] (हि०) १६८। चि०, ९, २२, ३८, १६१।
भ०, २८।

मस्तक। कपाल। तेज। ललाट।

भाव = का०, १३। का० कु०, ६, २०, ३६,
५५, ७५, ८१। का०, ११, ५८, ८१,
११६, १२९, १३२, १४३, १६१, १६६,
१८३, १८४, १८५, १९२, २३६,
२५०, २६२, २६४, २६५, २७७,
२८८, २८९। चि०, ५६, १६६।
प्र०, १, ४, १८, २०, २४। म०, ६।
ल०, २३।

अभिप्राय। विभूति। आत्मा। विचार।
चाह। अदा।

भाव अनेक = चि०, ६०।

[सं पु०] (हि०) अनेक भाव। विभिन्न विचार।

भावचक्र = का०, २५०।

[सं पु०] (सं०) कुडली मे ग्रहस्थिति प्रगट करने की
क्रिया। विभिन्न विचारों का जाल।

भावत = चि०, ३०, १५१।

[क्रि०] (प्र० भा०) अर्च्छा लगता है।

भावती = चि०, ४५।

[क्रि०] (प्र० भा०) अर्च्छी लगती।

भावते = चि०, ३८।

[क्रि०] (प्र० भा०) अर्च्छे लगते, भाते।

भावन = चि०, १६१।

[वि०] (प्र० भा०) अर्च्छा लगनेवाला।

भावना = का०, ८८। ल०, २१, ७४।

[सं खी०] (सं०) चाह। विचार। ख्याल। कल्पना।

भावनाओं = आ०, ६४।

[सं खी०] (हि०) दे० भावना। (बहुवचन)।

भावनामयी = का०, १४०।

[वि०] (सं०) काल्पनिक। भाव से भरी हुई।

[भावनिधि में लहरियाँ—स्कंदपुराण म नर्तकी का
गोन। प्रसाद संगीत म पृष्ठ ६३ पर
सकलिन। भट्टक के शिविर म नृत्यांगना
गा रही है। जब भूलकर श्री तुम्हारी
याद धा जाती है तो भवसागर मे
स्मृति की लहरियाँ उठने लगती हैं।

अभी अभी मुझ को नीचे आइये यी वि
 तुमने मधुर मुरली फूँव दी जिससे रग
 रग में मित्रता बोध रही है। हे
 धनश्याम क्या कभी भी वरसोने नहीं।
 अथात् क्या तटपान ही रहोपे। मन्था
 निल का एव मोटा ही छुद्र कलिका
 का खिला देता है। मर मर कर इस
 तरह कौतुजिएगा। क्या यह नमस्या
 कभा हूँ न होगा। अर्थात् क्या कभी
 चिरतन प्रेम तुम्हारा नहीं मिलेगा ?]

[म० खी०] (हि०) म०, ५।
 भविष्य में होनेवाला भाग्य। आनेवाला
 समय। नियति।
 भाजोदधि = का०, २३५।
 [स० पु०] (म०) भविष्यत् रूपा मित्रु
 भाषण = चि०, १६५।
 [म० पु०] (स०) यात्रयान। वक्तव्य।
 भाषा = का० पु०, ८१। का० ६६।
 [म० पु०] (म०) वाक् वाक्य।
 भासत = चि० १२३।

भावभूमि = का० २६४।
 [स० खी०] (म०) भाव रूपा पृथ्वी।
 भावमयी = का० २६२। २० १६।
 [मि०] (स०) भाव से भरा हुई।
 भावमानस = का० पु० २६।
 [म० पु०] (स०) मन के भाव।
 भावसागर = का० पु० ८१।
 [स० पु०] (स०) भाव रूपा समुद्र।

[भावसागर—वाचन तुमु म पू० ८०-८१ पर
 सरलित। हे भावसागर मुनी। मेरा
 स्वर लहरा क्या बह रही है। घाटा
 भी ज्योता मुझका। हमन देखने ही याहा
 मुझे स्नान के लिये उत्रक हो जाते
 हैं। मेरा स्नाना दशकर तुम्हें इया क्या
 है। पूजा कर भा तुम यह श्रुयता
 क्या ? तुम्हारे स्वरग म मेरा हृदय
 गंध म पून ताता है और अन्ततन वा
 मुझे मान है। यद्यपि हमारा यह
 प्राथता प्रचार म नरा हुई है। पर
 हम दशकर गङ्गा तुम हाना। वास्तव
 म यदि तुम ध्यान म दय त ता एमा
 आगा कि तुम्हारी उम प्रहारा क बाव
 तुम मातुम द रहें। मातुम करक
 तुम्हें जिया ता पर मवाच क मार न
 न। मरा क्या क भाषा वास्तविक
 नय का प्रकट नहीं कर पा रहा है।]

[क्रि०] (हि०) बालन।
 भिक्षा = ल० ५४।
 [म० खी०] (म०) भक्ष मागता। भिक्ष दना। चानरी।
 भिक्षुक = का० १२३।
 [म० पु०] (म०) भिक्षमया। मगन। भिक्षारी।
 भिक्षारिणी = ल०, ७०।
 [मि०] (हि०) भिक्षुगा।
 भिक्षारी = का १२३ १६४। ल० ४५।
 [म० पु०] (हि०) भिक्षुक भिक्षमया मगन।
 भिक्षारी सा = ल० ७०।
 [मि०] (हि०) भिक्षुक के मगन।
 भिडना = चि० ४१ ६५।
 [क्रि०] (हि०) टक्कर खाना लडना, मटना।
 भिन्न = का० ८। का० पु०, ११६। का०,
 २७२, २८८। प्र० ११।
 अलग पृथक् अथ दूरगा। तज धार
 स क्रिया वस्तु के क्रिया अलग क अलग
 होने का क्रिया।
 भिन्न = चि० १३।
 [क्रि०] (प्र० भा०) मिटना। लटना। सटना, भिन्न
 क्रिया का एक रूप।
 भिन्नि गण = मि० ५३।
 [क्रि०] (प्र० भा०) भिन्न गण। वटिबद्ध टा गण। जूक गण।
 भी = का० १२ वार। प्र०, ८ वार। प्र०,
 ३ वार। ल० ८ वार।
 क्रिया वात विचार पर प्रभाव डालने का
 क्रिया इस क्रिया का उपलक्षण है।
 प्रवश्य। अविश्व। अजर।

भाव सो = का० १६७।
 [मि०] (मि०) भाव क मगन।
 भावो = का० १४३। चि०, २० १४१।

भील = म०, ६। ल०, २६।

[स० स्त्री०] (हि०) भिक्षा। गैरात। भिक्षा द्वारा प्राप्त वस्तु।

भीगना = श्रा० ११। का० कु० १२३। का०, [क्रि०] (हि०) ३ ४७, १०६। ऋ०, २१ ३६, ३८। भाजना। किसान तरल पदार्थ या पानी से आद्र होना।

भीगी पलकें = का०, १७८।

[स० स्त्री०] (हि०) अशुभ पलकें। भीगी हुई पलकें।

भीगी पॉरें = का०, ३५।

[स० पु०] (हि०) भीग हुए पल।

भीजि = वि० ४१।

[क्रि०] (ब्र० भा०) भाजकर (पूर्वकालिक)।

भीजिए = वि०, १७५। ऋ०, ३४।

[क्रि०] (हि०) भोजना क्रिया का एक रूप। भागिए।

भीड़ = का०, १२, ६८ १४०, १८६। ऋ०, ३१।

[स० स्त्री०] (हि०) जनमगूह। किसान स्थान पर अत्यधिक लोग का जमावडा।

भीत = क०, १५। का०, १८६। वि०, १६१

[म० स्त्री०] (हि०) म०, १०।

भित्ति, दीवार, छत। ऋरी, ऋड, दरार।

भीतर = का० कु०, ७१। का०, ४ ६४ १७१

[अव्य०] (हि०) १८२, १८६, १६, १६८, २२८, २३४ २५१।

अदर। म। अतः कारण।

भीतर बाहर = का० १५५।

[अव्य०] (हि०) अदर बाहर।

भीतर हूँ = वि०, १७६।

[अव्य०] (ब्र० भा०) भातर हा। भातर भा।

भीति = का० कु० १४ ८८। का०, २४३,

[स० स्त्री०] (स०) २६७।

दीवार। भय। रूप।

भीती = का० ८८, २६३।

[वि०] (हि०) क्षोभप्रोत। सती या लिपटी हुई। मधुर।

भीनी सी = वि०, १८०।

[वि०] (हि०) मधुर सी। हलरी (सुगंधि) सी।

भीने = का० कु०, ७६। वि०, १५३, १७१।

[वि०] (हि०) द० भीनी' तरावीर।

भीन्यो = वि०, १४७।

[क्रि०] (ब्र० भा०) भीन गया। भिनना क्रिया का एक रूप।

भीम = का० कु० १०६, ११४। का०, १३,

[म० पु०] (स०) २ ८। वि०, १००।

पांडु के पांच पुत्रों में से एक। एक राक्षस। शिव का एक नाम।

[वि०] (स०) भयानक। भयकर।

[भीम—पांडु के पुत्रों में से द्वितीय, जो वायु द्वारा कुंजी के गर्भ में उत्पन्न हुआ था। पाल्वा में महाबल वीर तथा महाभारत का श्रेष्ठतम योद्धा। यह शारीरिक शक्ति तथा गदा चलन में अद्वितीय था। यह दुर्योधन का आत्म विरोधी था। दुर्योधन तथा दुःशानम के सहित सभी धृतराष्ट्र पुत्रों का इससे वध किया था। इनमें कौचक और जरासभ का भी वध किया था। कण से भी इनमें युद्ध किया था और उसे पराजित न किया था। इसकी तान पानिया था, हिंडिवा, शौरदा और बलभरा। इसकी तामरी पत्नी का नाम भागवत म काली दिया हुआ है। महाभारत में अनुसार काली शिशुपाल की बहन थी। शिशुपाल भीम का बेटा शत्रु था।

भीमकाय = म० ११।

[वि०] (स०) भयानक शरीरवाला। विशाल शील-शीलवाला।

भीमा = का० १३६ २०५।

[स० स्त्री०] (स०) चाबुक। दुर्गा। एक प्रकार का नाव। दक्षिण भारत की एक नदी।

[वि०] भीमल। भयकर।

भार = वि० ५१, १६४।

[वि०] (ब्र० भा०) भीड, मजमा।

भील = का० कु० ६८ । वि०, ७३ ७४ ।
 [सं पुं०] (हिं०) एक प्रकार की जगली जाति ।
 भीलन = चि०, ७४ ।
 [सं पुं०] (ब्र० भा०) दे० 'भील' (बहुवचन) ।
 भीलनाल = चि०, ७४ ।
 [सं पुं०] (ब्र० भा०) भील के बालक ।
 भीलहि = चि०, ६४, ७४ ।
 [सं पुं०] (ब्र० भा०) भील की ।
 भीषण = का०, कु०, ८६ १०८ । वा०, ५,
 [वि०] (सं०) १२ १८ २०, १२८, १३२, १५८,
 १६६ २००, २०१ २०२, २०५,
 २५७ २६७ २६६ । म०, १ । ल०,
 १५, ४७ ।
 भयकर । विकट । घोर ।
 [सं० पुं०] (सं०) शिव । ब्रह्मा । भयानक रम ।
 भीषणतम = वा० १७०, १८६ ।
 [वि०] (हिं०) अत्यंत भयण । अत्यंत भयकर ।
 भीषणतर = वा०, २५४ ।
 [वि०] (सं०) अत्यंत भयण । बहुत भयकर ।
 भीषणता = वा० कु०, १०६ । का० ११६ ।
 [सं० स्त्री०] (सं०) भयकरता । उराननापन ।
 भीषण रव = वा० १३, १४ ।
 [सं० पुं०] (सं०) भयंकर आवाज । डरावनी ध्वनि ।
 भीरम = चि० ६७ ।
 [सं० पुं०] (सं०) राजा शासन के पुत्र देवत ।
 [भीष्म—शात्रु एक गया से उषन मुक्तिपात
 राजनीति, रणकुशल एवं शास्त्रन
 आज्ञा म श्रद्धाचारा तथा वुस्त्रा व
 धनय शुभच्यु । द्रवत गागय
 जातृवपुत्र भागारथीपुत्र मदि
 नामा म द्वा ग्नाधिन त्रिया जाता
 है । महाभारत म यह वीरव पक्ष का
 धरिष थ । महाभारत व युद्ध म
 धनु द्वारा वनाई गइ गरग्या पर
 उम मनय इवका ग्गान द्वा जय
 मय उतरानगा दुषा । यह मग कुष्मा
 की रना करन र्ण । यह महाभारत
 कानन मवधु पराक्रमी क्षत्रिय मान
 जान है । मह सभी दृष्टिमा म धपन
 दुः व कश्चित्तर थ ।]

भुज = वा०, १८२ । चि०, १, ३४, ५६,
 [सं पुं०] (सं०) १७४, १८८ ।
 हाथ । बाह । हाथी का सूड । शाखा ।
 भुजदंड = का० कु०, १०६ । वि०, ६५, ६४ ।
 [सं पुं०] (सं०) बाहु रूपी दंड ।
 भुजन = चि०, ६६ ।
 [सं पुं०] (ब्र० भा०) बाहो । 'भुज' (बहुवचन) ।
 भुजपंच = चि० १५१ ।
 [सं पुं०] (हिं०) भुजपाश ।
 भुजबल = वा०, १० ।
 [सं पुं०] (सं०) भुजाओं का बल ।
 भुजबल ते = चि०, ६७ ।
 [सं पुं०] (हिं०) बाहु की शक्ति से ।
 भुजमूला = का०, १०, १२५ ।
 [सं स्त्री०] (हिं०) कबो, कालो ।
 भुजलता = वा०, ७३, १०५ ।
 [सं स्त्री०] (सं०) भुजाएँ लता ।
 भुजाश्रो = वा०, १६७ ।
 [सं पुं०] (हिं०) बाहुप्रा, हाथा ।
 भुजनी = ल०, ५० ।
 [क्रि०] (हिं०) जल का सहायता व बिना गरम करके
 पनाना । जलाना ।
 भुलवावी = का० १३५ १४४ ।
 [क्रि०] (हिं०) भ्रम म डाननी । धावा देती ।
 भुलवात = चि०, ४८ ।
 [क्रि०] (ब्र० भा०) भूल जाता । भ्रम मे पड जाता ।
 भुला देना = वा० कु०, ७३ । वा०, ४१ २८७ ।
 [क्रि०] (ब्र० भा०) विस्मरण कर देना ।
 भुला ली = चि० १८४ ।
 [क्रि०] (ब्र० भा०) विस्मृत हुआ । भूत गया
 भुलाना = वा०, २८६ । ल०, १४ ।
 [सं पुं०] (हिं०) धारा ।
 भुलाना देना = वा० कु० ८२ ।
 [क्रि०] (हिं०) धाव म डानना ।
 भुलावे = ल० ६७ ।
 [सं पुं०] (हिं०) भ्रम म डानना । भ्रम ।
 भुवन = वा०, ५३ । वा०, १५६ । ल०, २१ ।

[स० पु०] (स०) समार । जन । जन । लोक पुराण के अनुसार चौह हात हैं । जैसे, भू, भुव, स्व । मह । जन तप और सत्यमय ऊपर क और अतल, सुनल, वितल, गभस्तिमद, महातल, रमातल और पाताल यह सात नीचे क मान गए हैं

भू = का०, १८ ।

[स० स्त्री०] (स०) पृथ्वी । स्थान ।

भूर = का०, १७, १८ । का०, १२,

[स० स्त्री०] (हि०) ३५, ५१, ७४, २५०, २६७ । चि०, ६६ ।

क्षुधा । भाजन का इच्छा ।

भूना = का० ५६ ।

[वि०] (हि०) क्षुधित । जिन भाजन का प्रबल इच्छा है ।

भूमी = का० १८१ ।

[वि०] (हि०) भूमा वा स्त्रा लिंग ।

भूये = का०, ७८ ।

[वि०] (हि०) क्षुधित लोग । भूये लाग ।

भूत = का०, २५, १८५ । चि०, १४१ ।

[स० पु०] (स०) प्राणा । जीव । बीता हुआ समय । मृत शरीर का आत्मा । वह मूल तत्व जिससे सृष्टि का रचना हुई है ।

भूतनाथ = का० १८५ । चि०, ७३ ।

[स० पु०] (स०) शिव ।

भूवल = का०, ५८, २३८ । ल०, ३१ ।

[स० पु०] (स०) पृथ्वा का ऊपरी तन । ससार ।

भूतहित रत = का०, ५२ ।

[वि०] (म०) प्राणियों की भलाई में लगा हुआ ।

भूधर = का०, २५३, २६० ।

[स० पु०] (स०) पहाड़, पर्वत ।

भूधरनुपति = चि० ५५ ।

[स० पु०] (स०) हिमालय पहाड़ ।

भूप = चि० १०० ।

[स० पु०] (स०) राजा, नृपति ।

भूपर = का०, २०२, २४५ ।

[स०] (हि०) पृथ्वा पर ।

भूमटल = का०, २६१ । चि०, १६३ ।

[स० पु०] (स०) पृथ्वी । अखिल विश्व ।

भूमा = का०, ५४ ।

[स० स्त्री०] (स०) पृथ्वा । धरती ।

भूमि = का० १४ १७ । का० कु० ५ १०,

[स० स्त्री०] (हि०) ७२, १०१, १०६, १११, १२१ । का०, ६३ २६३, २७८ । चि० १०, १५७ १८६ । प्रे०, १५ । ल०, ३३, ५२ ७४ ।

पृथ्वी । जमीन ।

भूमिका = का०, १५६, २५१ । ल० २२ ।

[स० पु०] (स०) निता प्रथ क आरंभ का वह वक्तव्य जिसमें प्रथ क सबध में लिखा है । पृष्ठभूमि ।

भूमिपति = का० कु०, ६६ ।

[स० पु०] (म०) राजा । भूमति ।

भूल = का०, ७६ । का० ११ २८ । का०,

[स० स्त्री०] (म०) ७५ ८७ ६२, १६२, १८६, २५१, २५६, २८६ । चि०, १६६ । का० ४१ ।

त्रुटि । गलती । चूफ । अपराध । दाप ।

[भूल—इट कला ४ खड १, निरण ५ मई सन् १६१३ इ० में प्रनाशित गजल । इसका भाव यह है कि जा प्रेमी है उसे मत भूना । सज्जन जिस स्वीकार कर लेता है उसे कभी छाहत नहीं ।]

भूलना = का० कु०, ७ वार । का०, २५ वार ।

[क्रि०] (हि०) चि०, ७ वार । का०, २ वार । प्रे०, ३ वार । म०, १ वार । ल०, ३ वार । विस्मृत करना । गलती करना । चूकना ।

भूल भूलकर = प्रे०, १६ ।

[पुर्व० क्रि०] (हि०) गलती कर करके ।

भूल सी = का०, ३६, १४५ । ल०, ४० ।

[वि०] (हि०) विस्मृति के समान ।

भूल सुघारो = का०, ७७ ।

[क्रि०] (हि०) गलता ठीक करो ।

भूलि भूलि = चि०, १७६ ।

[पुर्व० क्रि०] (हि०) भूल भूलकर ।

[भूलि भूलि जात—दृष्ट गना ५, विरग ३, गितवर १६१४ म मररर्दीदु व चंतगत प्रनागित कविता । त्रिनापार म मररद विदु के चंतगत पु० १८१ पर गकलित । ह दानमंगु एसी पतित मू मति ह्मारी क्या कर लिया है ति तुम्हार पक्कमल का भूल जाता है घोर दोष दोडकर काम प्रोष व संगम म दूष जाता है और सषय सधियाँद स प्रेम न कर भूते सांगारिव लोग स दोडकर प्रेम करता है । व्याकुल है । फिर भा सुम दानबंगुना विसरा कर हृदय की पाया क्या नही माचत ।

भूली = वा० २८६ । चि०, ६३ । प्र० २३ ।
[वि] (हि०) विस्मृत । भूला हुई । चुटे या चूर म पडा ।

भूले भटके = ऋ० २४ ।
[वि] (हि०) गलता स रास्त का छाडे हुए ।

भूपण = चि० ६ ।
[स० पु०] (स०) अलवार ।

भूपनों = चि० १०१ ।
[स० पु०] (हि०) गहना ।

भूपित = चि० १४४ ।
[वि०] (स०) भूपायुक्त । शोभित ।

भृग = ल०, ५० ।
[स० पु०] (स०) भौरा ।

भृगा = चि०, १३२ ।
[स० पु०] (स०) भवरा । फतिगा ।

भृकुटि = चि० ४०, ४६ ।
[स० खी०] (स०) जू, भी ।

भृत्य = ल०, ५० ।
[स पु०] (स०) नौकर । सयक ।

भेजना = का० कु०, ८१ । का०, ११४ । प्र०
[क्रि०] (हि०) ६ । म०, १० १२ । ल० ७५ ।

काई वस्तु एक स्थान स दूसरे स्थान के लिय रवाना करना ।

भेट = ऋ० ३४ ३५ । प्र० १५ ।
[स० खी०] (हि०) भेंट भुलाकात । मिलना ।

भेटवा = वा०, ८० ।
[वि०] (हि०) विना ग पट्टि गन म गल मिलना ।

भेटति = चि०, १४१ ।
[वि०] (हि०) भटवा * । गन म गल मिलना है ।

भेटि = चि० १६, १६३ ।
[पूर० वि०] (प्र० भा०) भरर ।

भेटिये = चि०, १७४ ।
[वि०] (हि०) भटंग ।

भेटो तो = ल०, २४ ।
[वि०] (हि०) गल स गल मिल ता ।

भेद = वा० कु० ६ । वा०, ४६, १४६
[स० पु०] (हि०) १६४, १६४, २१७ २७० २७१ ।
चि० १४३ १५८ १८१, १८६ ।
१८७ । ऋ० ७७ ।
रहस्य । गुप्तबात, छिया हुई बात ।

भेदनी = वा० १८१ ।
[वि०] (हि०) भननाला ।

भेद बुद्धि = वा०, १३२ ।
[स० खी०] (हि०) रहस्य का जाननेवाला बुद्धि ।

भेद सी = का० ६० ।
[वि०] (हि०) रहस्य क समान ।

भैरव = वा कु० १०७ ११८ । वा०, १४
[वि०] (स०) = १५ ।

भौपस्य रववाना । भयानक, भयकर ।

भैरवी = ल०, २० ।
[म० खी०] (स०) दवा का नाम । मयेर माई जानवाली एक रागिनी ।

भोग = वा०, ५६ १४८ । ल० १२ ।
[स० पु०] (स०) दुख सुख आदि का अनुभव करना ।
प्राच्य । सभोग ।

भोगत = वा० कु०, ६६ ।
[वि०] (हि०) भाग करत ।

भोगा = वा० १६० ।
[क्रि०] (हि०) उपभोग किया । दुख सुख आदि का अनुभव किया ।

भोगे = चि० ५१ ६४ ।
[क्रि०] (स० भा०) भागना क्रिया का रूप । भोगे अथवा अनुभव करे ।

- भोग्य = वा० कु०, ११५। का०, १२८।
 [वि०] (म०) जिसका भाग किया जा सके।
- भोजन = क०, १६।
 [सं० पु०] (हि०) भाज्य पदार्थ। खाने की सामग्री।
- भोर = वा०, ४७। चि०, ५२।
 [सं० पु०] (हि०) तड़का, प्रभात। धाखा। भय।
- भोरी = चि०, १८२।
 [वि०] (ब्र० भा०) भोली।
- भोला = का०, ७, ८३, १००, २४३। क०,
 [वि०] (हि०) २८।
 मीठा सादा। मरल।
 [सं० पु०] (हि०) भगवान् गजर।
- भोली = स०, ११।
 [वि०] (हि०) माधी सादा।
- भोली भाली = स० ११।
 [वि०] (स०) सरल स्वभाव की।
- भो = म० ५।
 [सं० स्त्री०] (सं०) वरीनी। भू।
- भौतिक = वा० २०, १६६, १८६, २६६।
 [वि०] (हि०) सांसारिक। जगद् सबधी।
- भौरे = क०, ६७।
 [म० पु०] (हि०) भ्रमर।
- भौह = का० ६८। चि० ३ १६०। ल०,
 ७६।
 [सं० स्त्री०] (हि०) ३० भौं।
- भ्रम = का० ६६, १६२, १६३, १८४ २४०
 [वि०] (हि०) २५१। चि०, १६७ १७१। ल०,
 ६७।
 भूल। गनता। चूक।
- भ्रम कुहेलिका = का० कु०, १४।
 [सं० पु०] (हि०) भ्रमररूप कुट्टर।
- भ्रमत = चि०, २८, १७१।
 [क्रि०] (ब्र० भा०) भूलता है। गतती करता है।
 भ्रमता है।
- भ्रमपूरित = वा० कु०, १०२।
 [वि०] (हि०) भ्रम से भरा हुआ।
- भ्रमर = चि०, १७१ १७३।
 [सं० पु०] (सं०) मोरा। शृग।

[भ्रमर इट्ट बला ३, किरण ३, फरवरी १६१२
 में 'वसत विनाद' के अतगत प्रकाशित।
 यह समस्यापूर्ति है। समस्या है—कीर्त
 बन वलिन घाज भूल हा। मकरद भरे
 सतत सौरभमाल कमल व हिडालि पर
 चडकर भूल हो। मजुन घात्र मजरिया
 म प्रेम का प्रसाद पाकर गुजन किया
 है। अब केतकी के ताक म मधुमास
 का ही भुगाकर स्वाथ के वषाभूत हा
 गए हो—तुम्ह अपने हित का चिंता
 नहीं है। इतना किए पर भा तुम्ह लज्जा
 नहीं है, पता नहीं किस बन वलिन पर
 अब तुम भूल हुए हो।]

- भ्रमरावलि = वा० कु० ५०।
 [म० पु०] (सं०) भ्रमरो का समूह।
- भ्रमरत = चि०, १७०।
 [क्रि०] (ब्र० भा०) भ्रमण करता है। भ्रम में डालना है।
- भ्रात = वा० कु०, १४, ११६। वा०, ३०
 [वि०] (म०) ४८, ८२, ८८, ६३, ११०, १६२,
 १६६, १६७ २४०, २४१। चि०,
 ३५। क०, १७।
 भूला हुआ। जिसमें गलती की हो।
- भ्राति = वा० ४०। क०, ६२।
 [सं० स्त्री०] (सं०) भूल। गलता।
- भ्रातृ = का० कु०, ६०।
 [सं० पु०] (सं०) भाई। भ्राता।
- भ्रभग = का०, २५।
 [पुहा०] भौहो का टडा हाना। क्रोधित होना।
 भ्रविलास।
- भ्रूयुग्म = का० कु०, ३०।
 [सं० स्त्री०] (सं०) दोना भाह।
- भ्रूलता = वा०, ६४।
 [सं० स्त्री०] (सं०) भीह रूपी लता।
- म
- भंगल = घा०, ६५। का०, ५३, ५७, ६१,
 [सं० पु०] (सं०) १२४, १४८, १५०, १६०, २२७,
 २३६, २५२, २७८, २८८, २६०,
 २६२। चि०, ६, ६२, १०६, १५३।

क राग लभ । गीर रत्न वर प्रतिष्ठ
 पत्नी मन्त्र रंग की लक्ष्मी क मयु ।

मन्त्र - ४१०, २०६, २१२, २२६ ।
 [मं० पुं०] (मं०) मन्त्र की के लिए शक्ति प्राप्त
 पूज्य रत्न व मन्त्र का पत्नी
 स्वयं । मन्त्र । इन्द्रिय के मन्त्र क
 पात वरत्न रत्न मन्त्र का मन्त्र ।

मंगलशरी = वि० १६१ ।
 [वि०] (मं०) क राग करीना म धन करीना म ।
 मंगलपाठ = वा० कु० १११ । २० २३ ।
 [सं० पुं०] (मं०) मन्त्र मन्त्रानुसंग मन्त्र मन्त्र का
 क मन्त्र मन्त्र का मन्त्र मन्त्र मन्त्र
 का मन्त्र है ।

मन्त्रशरी - वा० १६० ।
 [वि० मं०] (मं०) मन्त्रशरी मन्त्र मन्त्र मन्त्र
 मन्त्र । मन्त्र मन्त्र क मन्त्र मन्त्र मन्त्र
 मन्त्र मन्त्र मन्त्र मन्त्र मन्त्र मन्त्र
 मन्त्र मन्त्र मन्त्र मन्त्र मन्त्र मन्त्र

मंगलमय = वा०, १८ । वि० ३८ १४७ ।
 [वि०] (मं०) • मंगलमय ।
 मंगलमयी = वा० ६३ । वा० २१ । मं० ३१
 ३२ ।
 क राग म मन्त्रानुसंग मन्त्र मन्त्र मन्त्र

मन्त्र - वि० १२४ १६० । मं० ११ १६ ।
 [मं० पुं०] (मं०) मन्त्र मन्त्र मन्त्र मन्त्र मन्त्र
 क मन्त्र मन्त्र मन्त्र मन्त्र मन्त्र मन्त्र
 मन्त्र मन्त्र मन्त्र मन्त्र मन्त्र मन्त्र
 मन्त्र मन्त्र मन्त्र मन्त्र मन्त्र मन्त्र

मंगल सा = वा० २०३ ।
 [वि०] (मं०) मन्त्र मन्त्र मन्त्र मन्त्र मन्त्र
 मन्त्र = वा० १८३ । मं० २० ।
 [सं० पुं०] (मं०) मन्त्र मन्त्र मन्त्र मन्त्र मन्त्र
 मन्त्र मन्त्र मन्त्र मन्त्र मन्त्र मन्त्र

मन्त्रा = वा० कु०, १०८ । मं० ११, १४८ ।
 [मं० मं०] (मं०) मं०, २१ ।
 मन्त्र मन्त्र मन्त्र मन्त्र मन्त्र मन्त्र
 मन्त्र मन्त्र मन्त्र मन्त्र मन्त्र मन्त्र
 मन्त्र मन्त्र मन्त्र मन्त्र मन्त्र मन्त्र

मन्त्रवेदिवा = वा० १८३ ।
 [सं० मं०] (मं०) मन्त्र का मन्त्र वा मन्त्र मन्त्र ।
 मन्त्ररी = वा० कु०, १३ १६ । वा० २८४ ।
 [सं० स्त्री०] (मं०) वि०, १ १४७ १४८ १४९ १६१ ।
 मं० ७० ।
 मन्त्र मन्त्र मन्त्र मन्त्र मन्त्र मन्त्र
 मन्त्र मन्त्र मन्त्र मन्त्र मन्त्र मन्त्र

मन्त्रित = वा० ४३ २६३ । वि० १२८, २४८ ।
 [वि०] (मं०) मन्त्र मन्त्र मन्त्र मन्त्र मन्त्र
 मन्त्र मन्त्र मन्त्र मन्त्र मन्त्र मन्त्र

मन्त्ररी = वा० कु०, ३० ।
 [सं० पुं०] (मं०) मन्त्र मन्त्र मन्त्र मन्त्र मन्त्र
 मन्त्र = वा० कु०, ४२, ४८ । वा०, ८४ ।
 [वि०] (मं०) वि० १, १ १६, ६२ १३२ १४७,
 १४८, १४९ १३६ ।
 मन्त्र मन्त्र मन्त्र मन्त्र मन्त्र मन्त्र

मन्त्र = वा० १६३ । वि० १४६ १७१ ।
 [सं० पुं०] (मं०) मन्त्र परामर्श । मन्त्र मन्त्र मन्त्र
 मन्त्र मन्त्र मन्त्र मन्त्र मन्त्र मन्त्र
 मन्त्र मन्त्र मन्त्र मन्त्र मन्त्र मन्त्र

मन्त्रमान = वा० ७७ ।
 [सं० पुं०] (हिं०) मन्त्र मन्त्र मन्त्र मन्त्र मन्त्र
 मन्त्रुल = मं०, ६७ । वा०, ६७ । वि०, १६
 [वि०] (मं०) ७०, १६४ ।
 मन्त्र मन्त्र मन्त्र मन्त्र मन्त्र मन्त्र

मन्त्रमुख = मं०, १८ ।
 [वि०] (मं०) मन्त्र मन्त्र मन्त्र मन्त्र मन्त्र
 मन्त्र मन्त्र मन्त्र मन्त्र मन्त्र मन्त्र
 मन्त्र मन्त्र मन्त्र मन्त्र मन्त्र मन्त्र

मन्त्रुलता = वा० १५१ ।
 [सं० स्त्री०] (मं०) मन्त्र मन्त्र मन्त्र मन्त्र मन्त्र

मन्त्र = वा० कु०, १२३ । वा०, ८६, २७७ ।

[वि०] (मं०) ऋ०, २७ ।
धामी गतिवाला, मंद, धीमा ।
मंद = वा० कु०, ८६, १०० । वा०, २६,
[वि०] (सं०) ४८ । वि०, २६, ४५, ४६, ४७, ५५,
६३, १४६, १५६ १६० । ऋ०, २२ ।
धामा, मुस्त, आलसी । जडबुद्धि । भूर्ग ।

मदहि = वि०, ४६, १५६, १६० ।
[मं० पु०] (ब्र० भा०) मद की, मूर्ख या आलसी की ।
मदाक्रिनी = वा० कु०, १०० । का०, १६७
[सं० स्त्री०] (सं०) ऋ० ६८ ।
आकाश गगा । एक नदी । गगा ।

मदाक्रिनी तट = का० कु०, १०१ ।
[मं० पु०] (मं०) मदाक्रिनी का किनारा ।
मदिर = वा०, २८, ८६, ८७, १८१ । वा०
[मं० स्त्री०] (सं०) कु०, २, ४, ६७ । वि०, ४६, १५३,
१५५, ऋ०, ६, ३७ । प्रे०, ३ ।
देवालय ।

[मदिर—वाननकुमुम म पृष्ठ ५-६ पर सकलित ।
जब मभी यह मानते हैं कि क्षिति, जल
पावक, गमन, समीर, तारा शशि सब
म भगवान् यास है तो ग्राहक यह
हठ क्या कि वह मदिर म नहीं है ।
भगवान् या ब्रह्मा के लिय नहीं (नास्ति)
शब्द है ही नहीं । जिस पवित्र मूर्ति पर
सहस्रा नमन करन हैं वह एम मूढ
चित्त की बयो नहीं आता । जिस पच
तत्व से शरीर बनता है उसी स यह
मदिर भी बना है इसलिय अपना
आत्मा और परमात्मा म भेद न मानन
वाला क लिये शोभा की बात नहीं ।
सां जग म उसी की लीला व्याप्त है ।
मस्ताद, पगोडा, गिरिजा य सबक
सब एक हा भक्तिभावना के प्रतीक
हैं । यह मारा सत्तार हा उसका
मदिर है ।]

मदिर घटा स्त्री = वा०, १८४ ।
[वि०] (सं०) मस्ना उत्पन्न करनेवाला घटा के
समान ।
मह = वि० ३६, ४०, ४१, ४५, ४६, ४७,

[अध्या०] (ब्र० भा०) ५०, ५३ ५५, ६३, ६४, ६७ ।
६८, ६९, ७१, ७४, ७५ ६४, १०१,
१४०, १४८, १५०, १६०, १६२ ।
ल०, ४७ ।
मध्य, बीच ।

मकरद = आ०, ३५, ४४ ४५, ७७ । का० कु०,
[मं० पु०] (सं०) १०, १५, ३४, ३६, ५२, ५४, ६४,
७२ ११० । वा०, ६५, १७४, २२३,
२६१ । वि० १, ६, २३, २६, १५२,
१६५ १८८ । ऋ०, ११, १६, २०,
४०, ५३, ५६ । प्रे०, ३, ६, १० ।
फूना का रस, पुष्प का रस या तत्व ।

मकरद घोस = वा०, १५२ ।
[मं० पु०] (सं०) पुष्परस या फूलों का केसर मिला
हुआ कोई सरस पदार्थ, सुरभिरस
पूरण ।

[मकरद्विंदु—सबप्रथम इदु, कला ५, किरण ३,
माच १६१४ तथा इदु कला ५, किरण
५ मई १६१४ तथा इदु कला ५,
किरण ३, सितवर १६१४, इदु के
तीन अक्षों म, मकरद्विंदु शोषक के
अतगत निम्नांकित रचनाए प्रकाशित
हुई, माच अक्ष-(क) और जब कहिहै
तब कहिहै । (ख) नाथ नहीं फोकी परें
गुहार । (ग) मधुप ज्यों कज देखि
मडरावें । (घ) मरे प्रेम का प्रतिकार ।
मई अक्ष-(क) तुम्हारी सवहि निराली
वात । (ख) प्रियस्मृति कज म लवलीन ।
(ग) पाई आच सुख वा । (घ) आमुन
अह्लात । सितवर अक्ष-(क) आज इस
घन की अधियारी मे । (त) हृदय नहि
मेरा शूय रहे । (ग) आजुत नीने
नेह निहारा । (घ) यह सब ता पहले
समुभयो हा । (ङ) भूलि भूलि जात ।

इसके अतिरिक्त चित्राधार म मकरद्विंदु के
अतगत पृ० १७५ से पृ० १८८ तक
निम्नांकित पद सङ्गीत है । १ पात
बिन किहो । २ कौन अम भूलि कै ।
३ राते नैन कोहै । ४ कौन भुल्य

पाप । ५ सींच जी न प्रेम । ६ तरिता
मुकूलन मे । ७ फेरि एक जान ही । ८
पुत्रवि उठ हैं रोम रोम । ९ अलव
तुलित आस । १० रजित बियो है
कुमुमावर । ११ आवत ही अतर मे ।
१२ दखि क भ्रमल मुख चद । १३
मानस की तरल तरण । १४ पूरा
भल फून । १५ वरणानिधान मुन ।
१६ पाई आच दुख की । १७ आमुन
अह्वात । १८ भूलि भूलि जान । १९
मिलि रहे माते मधुर । २० भले अनु
राम मे रंगि हो । २१ आव इठलात ।
२२ प्रेम का प्रतीति । २३ बदन
विलोक । २४ घोर उठे घन रात । २५
जा तुम सो बियो । २६ भई दाठि
फिर । २७ अहा नित प्रेम करत ।
२८ दियो भल उत्तर । २९ दाठ
ह्व करत । ३० पुन्य ओ पाप । ३१
छिपि क भगवा । ३२ ऐसा ब्रह्म ।
३३ श्रीर जब कहि है । ३४ नाथ
नहि फीकी । ३५ मधुप ज्यो कज ।
३६ मरे प्रम को प्रतिकार । ३७ प्रिय
स्मृति कज मे । ३८ अरे मन अबहू ।
३९ आउ तो नीक । ४० यह तो सब
समुभयो ।

वाननकुमुम म मकरदविदु पृ० ६२ से ६४
तत है जिसम निम्नांकित रचनाए हैं ।
१ तत ह्यय की । २ है पलक परदे
खिचे । ३ हृदय नहि मेरा शून्य । ४
मिले प्रिय । ५ प्रथम परम आदर्श ।
६ गज समान है प्रस्त । इन रचनाओ
का परिचय इन रचनाओ के शार्पक के
समुख दिया जा चुका है ।]

मकरद भरा = का० कु०, १३ ।

[वि०] (सं०) मकरद स परिपूर्ण सुरभित (वायु) ।

मकरद भार = का०, २६ ।

[सं० पु०] (सं०) मकरद का भार, सुरभित वायु का
घोषक ।

मकरद सिद्धु = का० कु० १०३ । का० १३३ ।

[सं० पु०] (सं०) पुप रम की बूद, सुरभि विदु ।

मकरद सा = का०, ६४ ।

[वि०] (सं०) मकरद व सगात, भरगता का घोषक
शब्द ।

मग = का०, १६ । का०, १८, २३५ । वि०,

[सं० पु०] (सं०) १३, १६४ । ल०, १० ।

माग, रास्ता ।

मगध = ल०, ४६ ।

[सं० पु०] दक्षिणी विहार का प्राचीन नाम ।
वदाजन ।

मगध सम्राट = का० कु० ११२ ।

[सं० पु०] (सं०) मगध दण का राजा ।

मगन = का०, ६८ । वि०, ६४, १५७ १६० ।

[वि०] (हि०) मगन, प्रसन्न ।

मगन = का०, ३२, १५१ ।

[वि०] (सं०) २० 'मगन' ।

मचना = का०, ७७ । का०, २६ । का० कु०,

[क्रि० अ०] (हि०) ३८ । का० ३६ १६८, २०१ ।
म०, ६ ।

शोर आदि का आरंभ होना । उत्तव
आदि की खचा का चारो ओर फलना ।
धूम होना ।

मचल = का० कु०, ३४ । का०, २६४ २७६ ।

[क्रि० अ०] (हि०) 'मचलना' क्रिया का पूर्वकालिक रूप,
हठ करके । विचलित होकर ।

मचलता सा = का० १०१ ।

[क्रि० वि०] (हि०) मचलते हुए के समान, हठ या अडिगल
का द्योतक शब्द ।

मचलना = का० ५१, २०५ २५७, २६१ ।

[क्रि० अ०] (हि०) किसी चाज के लिये बालका या स्त्रिया
की तरह हठ करना, अडना ।

[मचा है जग भर मे अघेर—विशाल की रचना

प्रसाद सगात म पृ० १४ पर एक लित ।

विशाल की अतिरज्जन प्रशासा मे उते

प्रस न करने की दृष्टि से महालिंगम्

गता है । सारे समार मे धार अघेर

मचा हुआ है । उल्ता साधा जो जो कुछ

भी समझ रहा है उसा को सहा मान

रहा है और बुद्धि एसा हो गई है जसे

अघे के हाथ मे बदेर लग गइ हो ।

किमी तरह से दूसरा का धन उड़ाओ।
बक वाम करने दूसरा को चुा कर दो
यही चतुराई है। यहाँ चालवाजी
चलता रहेगी और ऐसा स्थिति म जो
चतुर और समाने हैं वह हेराफेरी
करते रहेंगे।]

मछली = ग्रा०, १०। का० कु०, ८।

[स० स्त्री०] (हि०) एक प्रसिद्ध जल जंतु, मीन।

मजूर = का० कु०, ९१।

[स० पुं०] (हि०) साधारण शारीरिक बम करके जीवन
निर्वाह करनेवाला, मजदूर, श्रमिक,
बाक ढोनेवाला। मयूर।

मज्जन = चि०, १५।

[स० पुं०] (अप०) स्नान, नहाना।

मढे = का० कु०, १०३।

[क्रि० स०] (हि०) 'मडना' क्रिया का पूरणरूप।

मणिया = ल०, ४८, ७६।

[स० स्त्री०] (स०) बहुमूल्य रत्न।

मणियाभूषण = प्र०, २५।

[स० पुं०] (स०) मणियों से बना हुआ आभूषण।

मणिया दीप = ग्रा०, ३८, ६०। का०, ७।

[स० पुं०] (स०) मणियों का दीप या दीपक के समान
चमकती हुई मणिया।

मणिया पदमवासी = चि०, १५३।

[वि०] (स०) मणिया के कमल पर निवास करनेवाला,
(ईश्वर)।

मणियापुर = चि०, ३३।

[स० पुं०] (स०) यह उडासा की राजधानी थी। आज
कल इस मणिया पट्टन नाम से लोग
जानते हैं।

मणियाघो = ल०, ५४।

[स० पुं०] (हि०) कलाई के जोड़।

मणियावलय = ल०, ५४।

[स० पुं०] (सं) मणियों का वक्त्र या कगन।

मणियाभय = का० कु०, १०४। म०, १६, २०।

[वि०] (स०) मणिया से युक्त या मणिया से भरा हुआ।

मणिया माणिक्य = चि०, ५१।

[स० पुं०] (स०) मणिया और माणिक या मानिक। धन-
धा य पूणता, सफरता।

मणियाचित = का०, २३।

[वि०] (स०) मणिया से बनाया हुआ।

मणियारत्न = का०, २६।

[स० पुं०] (स०) मणिया और रत्न।

मणियाराजी = का० ४०।

[म० स्त्री०] (स०) मणिया को पतिमा।

मणियाशलाक सम = प्र० ११।

[वि०] (स०) मणिया की सलाई के समान, चमकीली
किरण का द्योतक शब्द।

मणिया सम = चि०, १६०।

[वि०] (स०) मणिया के समान, बहुमूल्य या कांति
मान् वा सुचक।

मतग तुग = चि०, ५१।

[स० पुं०] (स०) प्रचंड हाथियों का समूह।

मत = ग्रा० ४४, ५७। व०, १४, १७, १६।

का कु०, ४०, ४३, ४६। का०, ३७,

६१, ११०, १५४, १७०, १८४, १८६

२०१, २५०, २६१, २७१। चि०,

१५। म०, ४३, ४५, ५२। प्र०, २३,

२४। म०, ३, ६, १४।

[स० पुं०] (स०) समति। घम। सप्रदाय। भाव। बोट।

[क्रि० वि०] (हि०) नहा, न, (निपेय)।

मत धर्म = का० कु०, ३१।

[स० पुं०] (स०) सप्रदाय और धर्म या भाव और धर्म।

मतवाला = का० कु०, ३६, ५५। का०, १७१

[वि०] (हि०) २२२, २६३ २६८। म०, २३। ल०,

३१ ४२, ४७।

नये म चूर। हर्ष से उ मत्त। पागल।

शत्रुओं को मारने के लिये किले पर से

लुत्काया जानेवाला भारी पत्थर। एक

खिलौना विशेष।

मतवाली = का० कु०, ४०, ६१। का०, ५ ४०,

[वि० स्त्री०] (हि०) ६३, ७३, १०३। म०, १२६। ल०,

११।

३० मतवाला'।

मति = वा० कु०, ५३, ५६। का०, ६,
[सं० स्त्री०] (सं०) १६२। चि०, ६१ ६७, १००, १०७,
१८६।

बुद्धि, समझ।

मत्त = वा० कु०, ५०, ५४। का०, २३६।

[वि०] (सं०) ऋ०, ६७। ल०, ५३।

मतवाला, मस्त।

मत्तता = ऋ० ५७।

[सं० स्त्री०] (सं०) मतवालापन, मस्ती।

मत्तमारुत = ल० २१।

[सं० पुं०] (सं०) मतवाली हवा। शीतल, मद, सुगंध
वायु।

मत्स्य = का० कु०, ४८। का०, १७। चि०,

[सं० पुं०] १४३।

बड़ी मछली, मान। बिराट देश का
प्राचीन नाम।

मथ = घ्रा०, ४२।

[क्रि० सं०] (हिं०) मथना क्रिया का पूर्वकालिक रूप।

मथने = वा०, ११६।

[क्रि० सं०] (हिं०) बिलोने की क्रिया। किसी को बार
बार दुःख देनेवाली पांडा का घातक।

मद = घ्रा०, २१। वा० कु० ५२। चि०,

[सं० पुं०] (सं०) २। ऋ० २२। ल० ३७।

हृष। घमड़। हाथियों के गडस्थल से
चूनेवाला गव द्रव। मतवालापन।

मदनल = चि० ४५।

[वि०] (म०) मतवाला मस्त।

मन्मथ्यो = ऋ० ४७।

[क्रि० सं०] (सं०) मद से भरकर। 'पूरने' या सं० पूखन'
क्रिया का पूर्वकालिक रूप। मस्ती में
पूरकर।

मदन = चि० ७०।

[सं० पुं०] (सं०) श्रद्धा का पुत्र वामदेव (दक्षिण श्रद्धा)।

मन्मत्त = ल०, ४८।

[वि०] (सं०) मन्ता म झुकी हुई या मतवालापन के बोझ
से दबकर झुका हुई। गमदावनन।

मदनहु = चि० ७०।

[सं० पुं०] (सं०) मन्मत्त या वामदेव भा।

मदनीर = चि०, ५१।

[सं० पुं०] (सं०) हाथी का मद जल।

मदभरी = वा०, ४७।

[वि०] (हिं०) मस्ती में चूर, पूर्ण मतवाली। मादकता
से भरी हुई।

मदमत्त = वा० कु०, ३४। वा०, १०। चि०,

[वि०] (म०) १५७।

प्रमानता में चूर, घमड़ में चूर। मद से
पागल।

मदमाने = का० कु०, १३, ७३८। वा०, २६२।

[वि०] [हिं०] चि०, ४८, १७१। ल०, २०।

मद से मतवाले, मदमस्त।

मद्यप महली = ऋ०, २४।

[सं० स्त्री०] (सं०) शराब पीनेवालों का सम्प्रदाय या
समूह।

मदिर = का०, ११, १२, ८६, ८८, ८६, ६१।

[वि०] (सं०) प्रे०, २०, २२।

मस्त करनेवाली नशीली।

मदिरा = घ्रा०, २५, २७, ३२, ३६, ५१।

[सं० स्त्री०] (सं०) ऋ०, ६८, ६७।

मद्य, शराब।

मदिरा मकरद = ऋ०, २६। ल०, २१।

[सं० पुं०] (सं०) मन्त्रिणा वा रस या सौरभ।

मदिरा मोद = का०, १८२।

[सं० पुं०] (सं०) मदिरा का शानद।

मदीय = घ्रा० ५।

[वि०] (सं०) मरा।

मदोद्धत = ल० ७६।

[वि०] (सं०) मद से उद्वेगत या उद्वेग मदा मत्त।

मधु = घ्रा० २५ ३१ ३५ ६५ ६६ ६८,

[सं० पुं०] (सं०) ७५। वा०, १०, ३५ ४६, ४८,

६५, ६८, ८४ ८८, ६०, ६२, ६४,

६७, १०४, १४५ १७७ १७८ १८४

२०७, २७१, २६०। चि०, २, १७,

१६, २८ ४३, ४४, ४८, ४६, ६०,

१४६। ऋ०, २८, ४०।

गहन, मकरद। वसंत ऋतु। शत्रु

माग। श्रमण। मोठा। मद्य।

मधु अंध = वि०, ५६ ।
[वि०] (स०) मधु स अथा होनेवाला या वसत की बहार से पागल ।

मधु अंधरों = का० कु०, ७३ ।
[स० पु०] (हि०) अमृत भरे हुए अंधर या होठ ।

मधु उत्सव = का०, ७३ ।
[स० पु०] (हि०) वसंतो मव ।

मधु ऊपा = धा०, २३ ।
[स० का०] (म०) वासती ऊपा, मधुवर्षी उपा ।

मधु गुरु = ल०, ७० ।
[स० स्त्री०] (म०) वसंत ऋतु ।

मधु कण = ल०, ७३ ।
[म० पु०] (स०) मकरद कण । पराग कण ।

मधु वर = धा०, ७८ । का० कु० १९ २६, ३४,
[स० स्त्री०] (स०) ३१, ४० ८३ । का०, ११, २६ ।
चि०, १, ५, ८, २६, ३५ ५६, ६६,
१३३, १४७, १४८, १४९, १५०
१६१, १८०, १८५, १८६ ।
अमर, भौरा ।

[मधुकर प्रीति की रीति नई—चित्राधार म बबुबाहन चतु का गीत जा उसके पु० ४१ पर सकलत है । चित्रागदा की सखी उसके अनुराध पर गाती है । जब गुनाम की नई कलिया रिली हुई देखते हो सब फाटों में सुध युध भुला कर उलभने धूमने हा । जबतक मलवानिल से वे खिलती नही तबतक तो उनके पास ठहरत हा और अपने स्वाथ वण फुला का रस लेकर फिर पुंड्र नहीं दिसलाते । हे मधुकर यह प्राति की रीति नई है ।]

[मधुकर वीत बली अथ रात—'उवशा' म अपनी बोणा बजाती हुई उवशा गाती है । यह पु० २३ पर सकलित तथा सर्नप्रथम इ दु कला ६, किरण ४, अग्रल १९ १५ ई० मे प्रकाशित है । हे मधुकर अथ रात वीत बली है । शिशिर का यह कुदकली फुल रही है और अग नही सभाती ।

अथ तो दुख के गुजार छोडो । यह शुभ अक्षर है । अरण किरण ती आचा प्राची मे दिखाई पड रही है ।]

मधुकर सा = का० कु०, १६ ।
[वि०] (हि०) भौर के समान ।

मधु करी = का०, ३६, ४५, ८२ ।
[स० स्त्री०] (स०) दे० मधुवर' ।

मधु साति = ऋ०, ६७ ।
[स० स्त्री०] (स०) वामता गोभा ।

मधु मीडा वृटस्थ = का० कु०, ६२ ।
[स० पु०] (स०) वसंत के आमान प्रमोद रूपी पवत की ऊची चाटी (मकरद) ।

मधु गध = का० ३६ ।
[स० पु०] (स०) पुण्य केसर की सुगधि ।

मधु गुजार = का०, ४५ ।
[स० स्त्री०] (स०) अमृतमया ध्वनि ।

मधु जीवन = का० १५१ ।
[स० पु०] (स०) अमृतमय जीवन ।

मधु धारा = का०, ६४, ६७ १४८, २२४, २२८,
[स० स्त्री०] (स०) २५६ । ऋ०, ६८ ।

अमृत की धारा या पुण्यरम का धारा या प्रवाह ।

मधुनि = चि० १३२ ।
[म० पु०] (ब० भा०) मधु के बहुवचन का रूप मकरद ।

मधुप = का० कु०, ५४ । का०, १६८ १७५,
[वि० पु०] (स०) १८२, २१७ । चि०, २७, २६, १८८
ऋ०, ५६, ७३ । ल० ११ ।

[मधुप कव एक कली का है—चंद्रगुप्त नाटक का गीत, प्रमाद समीन मे पु० १५५ पर सक लेत है । मालविका का गीत । मधुप एक कला का प्रेमी कव है । जिसम उस प्रेम रस का सौरभ और सुहाग प्राप्त होता है, वेमुध हो अनुरागपूर्वक वह उस कली से मिलता है, वह तो कुजकली का विहारी है । वह कुमुदमूलि स धूमरित भले हो जाय । वह तो रगरली की राह पर बावला बना फिरता है चाह भले हा काटा म उलफ जाय । चाहे

मल्लिका हो चाहे सरोजिना हो या जूही हो उसे तो सुप्रमय क्रीडाकुज चाहिए। इस कविता में चद्रगुप्त के ऊपर एक यग भी है। मल्लिका कल्याणी का, सरोजिनी कानैलिया का तथा यूथी मालविका का प्रनीर भा माना जा सकता है।]

[मधुप गुन गुनाकर कह जाता—दक्षिण आत्म क्या। यह कविता इस के आत्मकथा के जनवरी फरवरी १९३२ में मधुप गुनगुनाकर कह जाता' थापक से प्रकाशित हुई थी।]

[मधुप यथो कज देरि मडराये—सवप्रथम इ दु, कला ५, किरण, ३, माच १९१४ में मकरदबिंदु के अतर्गत प्रकाशित और विनायाधार में मकरदबिंदु के अतर्गत पृ० १८७ पर संकलित। जैसे भवरा कली दखकर मडराता है वैसे ही हे मन मधुकर। भगवान् के चरण कमल में क्या नहीं चित्त लगात। वहाँ सदा सुगंध का मकरद चूता है और दुख का तुषारपात नहीं होता। वहाँ आनन्दरूपी मूष का विरणा से सदा उजियारा रहता है। एसा बिहारस्थान तजरर तू कही न जा। भगवान् के प्रसाद के मकरद से सय दुख भूल जाएगा।]

मधुप सट्टा = का०, ६।

[वि०] (सं०) मधुप के समान।

मधुप सा = प्र० २४।

[वि०] (हि०) भार के समान।

मधुप से = म० ४५।

[वि०] (हि०) 'मधुप सट्टा'।

मधुपान = वि० १७८। ल०, ५०।

[सं० पु०] (सं०) अमृत या मकरद पान का भाग।

[मधुपान कर चुने मधुप—विनाय का गीत जा प्रसाद समान में पृ० ३७ पर संकलित है। इस मधुप गुन मधुपान कर चुन। योवन मुमन सुरभा गया। प्रभ का

शीतल मलयानिल चला गया। मुमन का कौन सींचे। पत्ते नारस हा गए। डाल मूल गई। अथ जीवन के उपवन में लू चल रही है। हरियाली कहीं है। योवन ढलन पर महारानी का नरदबक प्रति यह व्यग है।]

मधुपां = का०, २६, ६४। का०, १७१, २८५।
[सं० पु०] मधुप का बहुवचन।

मधुपाला = ल०, ४५।

[सं० ख०] (सं०) मधुपयी नायिका। शराव ढालनेवाली नायिका।

मधुबूंदो = का०, १६६।

[सं० खी०] (हि०) मकरद या फूल के रस की बूंदें।

मधुभार = ल०, ६०।

[सं० पु०] (सं०) मकरद का भार या बोझ।

मधुभिच्छा = ल०, १७।

[सं० खी०] (सं०) मधु की भिक्षा या पुष्परस की याचना।

मधुमगल = ल० १८।

[सं० पु०] (सं०) वसंत का शोभा।

मधुमथन = का०, २५२।

[सं० पु०] (सं०) अमृत का मथा जाना।

[मधुमत्त मिलिद माधुरी—विशारत का चार पक्ति का गाल, प्रसाद सर्गीत में पृ० २० पर संकलित। जा मिलितो की भांति रात भर जगकर मधु का पान करते हैं उन्हें प्रभातकाल में शतदल मकरद का पुत दान देता है। प्रमानंद का यह अंगन कि आनन्दपान में सग लगे रहनेवाले की सदा मकरद मिलता रहता है, इस पद्य से अभिव्यक्त है।]

मधुमय = का० पु० १४, ३५। का०, ४, ५, ८, १२, २३, २७, ३८, ५४, ६३, ६७, ७४, १३३, १४८, १५, २४१, २६३। अ०, ११।
अमृतमय या मुरमित। मुग्धवना।

मधुमाया = का०, ७१। ल०, ६१।

[सं० खी०] (सं०) मधु या मद्य का मायामादृशता।

धुमिश्रित = का०, १२८।
[वि०] (सं०) मधु मिला हुआ।

धुमुख = का० कु०, ८४।
[सं० पु०] (सं०) जिसके मुख में मधु हो या मधु बरसाने-
वाला मुख।

धुर = क०, १७। का० कु०, १६, २२, २६,
[वि०] (सं०) ५४, ५५, ६, ६२, १०१, १०४।
का०, पृष्ठ २७ से २६३ तक २६ बार।
वि०, २६, ३६, ४६, ५६, ६३, १४१,
१४३, १४७, १४९, १५८, १७०,
१७६, १८६। ऋ०, ११, १५, २८।
सं०, ११, १४, १५, २३, २५, २७,
३३, ४१, ४३, ४४।
स्वाद में माठा। मुन में प्यारा।
सुदर। कोमल।

मधुर गान = का० कु०, ३४। का०, १५०।
[सं० पु०] (सं०) मीठे स्वर से युक्त गीत।

मधुर चाँदनी सी = का०, १८०।
[वि०] (हि०) रस बरसानेवाली चाँदनी के समान।
रस पूर्ण कोमलता का चोतक शब्द।

मधुर जीवन = का० ८१। सं०, २२।
[सं० पु०] (हि०) वह जीवन जिसमें सरसता हो।

मधुरतम = का०, ६। ऋ०, ५४।
[वि०] (सं०) श्रेष्ठतम मधुर।

मधुर ध्वनि = का० कु०, ७४।
[म० जी०] (सं०) मधुर वाद या धावाज, माठा बीनी।

मधुर प्रान = क०, १४५।
[सं० पु०] (सं०) वह प्राण या जीव जो सरस हो।

मधुर प्रेम = का०, १२।
[सं० पु०] (सं०) वह प्रेम जिसमें मधुरता या सर-
सता हो।

मधुर भार = का०, ६६, ८६।
[सं० पु०] (हि०) कोमलता का भार या बोझ या
मुकोमलता।

मधुर मधु = ऋ०, ३६।
[सं० पु०] (सं०) वह मधु जो मधुर हो।

मधुर मधुर = का० कु०, १६, ६७। का०, १३०,
[वि०] (सं०) १८०। ऋ०, १६।
श्रेष्ठतम मीठा।

मधुर मराली = का०, १८४।
[सं० जी०] (सं०) मधुर बोलनेवाली हसी या मधुर चाल
से मन मोहनेवाली हसिनी।

[मधुर माधव ऋतु की रजनी—जनमेजय का नाग-
यज्ञ में रत्नावली और प्रमदा का नृत्य
और गायन। प्रसाद सगात में सकलित।
यह वसंत ऋतु की मधुर रात्रि है। काकिल
की रसीली तान सुन शरीर छ्वाली हठीला
मान अपना छोड़ दे और माजन
को सुखी कर। मदमाती प्रकृति की
इन लाला को झाल भरकर गलवाही
डाल हृदय में प्रेम भरकर देखे। इस
समय कामल किसलपकुज खिले हुए
हैं। मुरभि और मकरद सं सरोज भर
हूए हैं। मुखधाम मुखमडल खालकर
बाल ताकि प्रमवृद वज उठे।]

[मधुर माधवी संध्या में—लहर का गात पू० ४४
पर संकलित। जब मधुर वासती
साँझ में रागरजित मूय अस्त होता
है, कोमल विरल पतावाली डाल से
जब वायु उलभकर व्यस्त होता है,
जब श्यामल धावाज में प्यार भरे
काकिल का अधोर कूजन होता है,
तब तू श्राव्या में श्रापु भरकर उदास
क्यों हाता है और इतना एकांत
क्यों चाहता है कि कोई भा पास न
हो और प्रेमवचित यह अतात का
किम "याकुन कल्पना का फल है ?
जिसी की श्रावो में पहल कमी क्षिणिक
विश्राम कर चुका है क्या ? क्या वह
स्युति ऐसे समय में एकांत में अपार हो
रुहट हा जाता है ? संध्या के समय
जब प्रकाश का किरणों नक्षत्रा से
खेलन आती है तब तुम्हारी संध्या
कमला की तरह उदास क्या हो
जाती है ?]

मधुर मारुत से = का०, ५४।

[वि०] (सं०) वह धामु जो मधुर हो उसने समान।

मधुर मिलन = का०, १७१, २८६, २६२।

[सं० पु०] (सं०) वह मिलन जिसमें सरसता एवं आनंद हो।

[मधुर मिलन कुज में—एक पृट' का प्रतिम गीत। 'प्रसाद संगीत म गृध १०५ पर सनलित। प्रेमलता और आनन्द के मिलनोत्सव पर यनलता का गान। जहाँ जगत् का सारा श्रम गंताप ग्यो गया हो और 'हाँ गुल', सहज, निष्पाप मुमन (भाव) विल रहे हा एष मधुर मिलन कुज म त एव सता एष गल मिलन है वि उनका माय कभा छूट ही नहीं सकता। उसी का पवित्र छाया क नीच प्रेम का एक पृट वा लान।]

मधुर लहर = का० ६६।

[सं० पु०] (सं०) वह लहर जिसमें आनन्द प्राप्त हो, सुंदर लहर।

मधुराका = का०, १७। का०, ४८, २१५।

[सं० खी०] (सं०) का०, २६। सरस चांदनी।

मधुराक्षर = वि०, १६६।

[सं० पु०] (सं०) सुंदर लिखे गए अक्षर या वक्त्र।

मधुरिमा = का० ४८ ५१ ५७, ८१। का० ७६।

[सं० खी०] (सं०) मधुरता, मिठास सुंदरता।

मधुलहरी = का०, ६६।

[सं० खी०] (सं०) दे० मधुर लहर'।

मधुलुब्ध = प्र०, २५।

[वि०] (सं०) मधु पर लुभाया हुआ।

मधुल्लेखा = का०, १५।

[सं० खी०] (सं०) सुन्दर रत्ना।

मधुलोभी = वि०, २७।

[वि०] (हिं०) मधु का लोभ करनेवाला। अमर का चातक बाद।

मधुवन = का०, ६४। का० १२०। ल०,

[सं० पु०] (सं०) १८, २०।

वन का एक वन, रिविंधा क पाग वा एक वन।

मधुघ्नत = का० कु०, ६, ३७, ३६।

[सं० पु०] (सं०) भौरा, अमर।

मधुराला = ल० ४५, ५७।

[सं० खी०] (सं०) मदिरापान, शरास्रमत्ता।

मधु-संगीत निनादित = ल०, २६।

[वि०] (सं०) सुन्दर से गाए जानराल गान म मुञ्जित।

मधुसंचित = का०, ६६।

[सं० पु०] (सं०) इतना किया हुआ मधु या अमर।

मधुसा = का०, १६।

[वि०] (सं०) मधु या वसत क समान (मादक)

मधु स्नेह = का०, १४४।

[वि० पु०] (सं०) आनंद उत्पन्न करनेवाला स्नेह या प्यार।

मधु स्वप्न सी = का०, २७।

[वि०] (हिं०) यह स्वप्न जिसे दलते से आनंद मिल उसके समान। आनंदोत्पादक स्वप्न के समान।

मधुदास = का०, ७२। का०, ७६।

[सं० पु०] (सं०) मिठा हसी।

मध्य = का० २६२ २६३। वि०, ४६ १०१,

[सं० पु०] (सं०) १५२।

बीच का भाग। कमर। अंतर।

मध्य पथ = ल०, १३।

[सं० पु०] (सं०) मार्ग के बीच म या बीच मार्ग म।

मध्यम = का०, १८, १६। वि०, ४२।

[वि०] (सं०) मध्य का, अंशत मान का।

मध्याह्न = का० कु०, १०८। वि०, ११।

[सं० पु०] (सं०) ठाक दोपहर।

मान = का०, १२ १६, २० २६, ४२ ४८,

[सं० पु०] (सं०) ११, ७०, ७३, ७५। का० कु०, ६

२६, ३१ ३६, ५१ ५३, ५८, ५६,

६३, ७५, ७७, १०६। का०, ३२,

३६, ४०, ४५, ४८, ५०, ५१, ५२

६४, ७०, ७४, ६७ ६८ १००, १०२

१०३, १०६, १०६, ११०, ११२

११५, ११८, ११९, ११७, १३४,
१३५, १३६, १४२, १५४, १५७,
१६२, १७५, १८४, १८६, २१६,
२२६, २२९, २४८ : चि०, १, ११,
३४, ३६, ४५, ५४, ६७, ६९, ९१,
९४, १५१, १५८, १६१, १६३,
१६४, १७१, १७६, १८०, १८१,
१८४, १८९ १९० । ऋ०, १६, १८,
२०, ३३, ३५, ३६, ३७ । प्रि०, २, ८,
११, १३, १५, १७, २३, २५ । ल०,
१७, २३, २८, ४७, ५२, ५४ ।

अनुभव । संकरण, विवन्ध, इच्छा,
विचार आदि करनेवाली शक्ति । अतः
करण की वह वृत्ति जिससे संकट
विवन्ध होता है ।

मन कुरंग = ल०, ४८ ।

[चि० पु०] (सं०) मनरूपी मृग या हिरण्य ।

[मन जागो जागो—'जगमेजय का नागयश' म
वल्कि का प्रभाती । कलिका रानी
बपुष्टमा की नवपरिवारिका थी । मोह
रात्रि को त्याग जागो । कमल दल
विकसित हो । मधुपमालिका गुजार
करती है जागो, जागो । प्रकृति ध्रुव
सागर से स्पृश पात्र भरकर तुम्हारे
सिंघे खड़ी है जागो, जागो । प्रसाद
समील भ पृष्ठ ६९ पर सवलित ।]

मनन = का०, ५, ३३, ८२ ।

[सं० पु०] (सं०) चिंतन । अच्छी तर० से सोचकर किया
जानवाला अध्ययन या विचार ।

मननशील = का०, २४४ ।

[चि०] (सं०) वह जो बराबर मनन या चिंतन
करता रहता है ।

मननस्थली = का०, २२५ ।

[सं० को०] (सं०) मन रूपी वनस्थली या जंगल ।

मन भरि = चि०, ७२ ।

[चि०] (ब्र० भा०) यथेच्छ । मन की भाँग के अनुसार ।

मनभावन = का० कु०, ९७ ।

[चि०] (ब्र० भा०) मन का अच्छा लगावाला या मन
वाधित ।

मनभावे = चि०, १६२ ।

[चि०] (हि०) अच्छा लगे ।

मन भौह = चि०, ७२ ।

[सं० पु०] (ब्र० भा०) मन मे ।

मनसदिर = का०, ३५ । का०, २२२ ।

[सं० को०] (सं०) मन रूपी मंदिर ।

मन मधुकु = चि०, १८४, १८८ ।

[सं० पु०] (सं०) मन रूपी मौरा ।

मन मधुकर = का०, ६५ ।

[सं० पु०] (सं०) मन रूपी मौरा ।

मन मधुप = का० कु०, ६३ ।

[सं० पु०] (सं०) मन रूपी मौरा । लोनुप मन ।

मनमयूर = ऋ०, ३६ ।

[सं० पु०] (सं०) मनरूपी मार । लोनुप मन ।

मनमान = चि०, १४३ ।

[चि०] (ब्र० भा०) जो अच्छा लगे । यथेच्छ । जो मन में
भावे ।

मनमालिक = चि०, १५६ ।

[चि०] (ब्र० भा०) मनरूपी मणि ।

मनमानो = का०, १९७ ।

[चि०] (हि०) ३० 'मनमान'

मनमाने = का०, ५१, ७८ । चि०, १ । ऋ०,

[चि०] (हि०) ७० ।

दे० 'मनमान' ।

मनमाने से = ऋ०, ४५ ।

[चि०] (हि०) मनमान के समान । मनमाना काम
करने के समान ।

मनमारे = का० कु०, ९३ ।

[चि०] (हि०) उत्पन्न होकर, व्यापा सा । वित्र होकर ।

मन माहि = चि०, २८ ।

[सं० पु०] (ब्र० भा०) मन म ।

मनमुग्धकारी = का० कु०, ४२ ।

[चि०] (सं०) मन को मुग्ध या प्रसन्न करनेवाला ।

मनमोद = चि०, १८० ।

[सं० पु०] (सं०) मन का प्रसन्नता ।

मनमोहन = का० कु०, १२६ । चि० १८४, १८५ ।

[चि०] (हि०) ४०, ५८ ।

[सं० पु०] (हि०) मन का मोहनवाला । प्यारा । श्रीकृष्ण ।

मनमोहिनी = का० कु०, ४२।
 [वि० स्त्री०] (हि०) मन को मोहनेवाली।
 मनमृगा = का० कु०, ७३।
 [सं० पुं०] (सं०) मनरूपी मृग या हिरण। चंचल मन।
 मनसों = वि०, ७०, ७३।
 [सं० पुं०] (श्र० भा०) मन से।
 मनस्ताप = का०, १८६।
 [सं० पुं०] (ब्र० भा०) मन का ताप या दुःख।
 मनस्वी = का० २८१।
 [वि०] (सं०) बुद्धिमान्। स्वच्छाचारा।
 मनहर = का० कु०, ३४। चि, २६, ७२।
 [वि०] (ब्र० भा०) मन को हरने या मोहनेवाला।
 मनहरन = वि० ५६।
 [वि०] (श्र० भा०) मन का हरण करनेवाला। चित्तचोर।
 मनहारी = का० कु०, ६६। चि०, १६२।
 [वि०] (हिं) मन हरनेवाली मन को लुभानेवाली।
 मनहि = चि०, ५८।
 [सं० पुं०] (श्र० भा०) मन म।
 मन ही मन = का० २२८, २३०। चि, ५६, १६६।
 [सं० पुं०] (हि०) अपने-आप स्वयं।
 मनहुँ = चि०, २, २१, २६, ३३।
 [प०] (श्र० भा०) माना।
 मनहु = चि० ११ २१ २३ २३ ७०।
 [प०] (श्र० भा०) माना।
 मना = का० ३१ का० १७६, १८०।
 [वि०] (प०) निषिद्ध, वर्जित।

[मना आनन्द मत—विशास नाटक का वह गात
 निगम उस प्रमाण ने सिखा दी है।
 प्रमाण मंगल म दृष्ट १८ पर सकलित।
 मसार के मुख में ही मुहारा मुख है
 इगलिय मन्त्रि कोई दुगा है तो आनन्द
 मन मना। दूगरो का दबावर तू गर्ज
 न कर कथावि विनी का दुस पढ़वाने
 स हा तू दुखी है।]

मनाता = सं० ७६।
 [वि० म०] (हि०) मनाना क्रिया का सामान्य भूत रूप।
 मनात = चि० ६०।
 [वि० म०] (हि०) मनाना क्रिया का सामान्य भूत रूप।

मनाना = का० कु०, ८८। का०, ८६, १०३
 [क्रि० सं०] (हि०) ११७। प्र०, २३।

रूठे हुए को प्रसन्न करना, राजी
 करना। प्रार्थना करना, जैसे भगवान्
 को मनाना।

मनाया = का० कु० ३३।
 [क्रि० सं०] (हि०) मनाना' क्रिया का सामान्य भूत रूप।

मनाये = का०, ५०।
 [क्रि० सं०] (हि०) 'मनाया'।

मना ले = चि०, १४।
 [क्रि० सं०] (हि०) मनाना क्रिया का प्ररखाणक रूप।

मनि = चि०, १४२।
 [सं० स्त्री०] (श्र० भा०) 'मणि'।

मनी को = चि०, ६।
 [सं० स्त्री०] (श्र० भा०) मणि को।

मनीपा = का० ६।
 [सं० स्त्री०] (सं०) बुद्धि जो सत्य प्रत्यय का विवेक
 रखती है।

मनु = का० पृष्ठ ३० से २८७ तक ६६
 [सं० पुं०] (सं०) बार। चि० ४२ ४६, ६८, १४१
 १६०, १६१ १६२।

ब्रह्मा के चौहूँ पुत्र जो मूल पुरुष माने
 जाते हैं। अंत करण, मन। बबरवत
 मनु। चौहूँ का मर्यादा।

[मनु—'मनु' का मना, कामायना के
 चरित्र।]

[मनु की चिंता—कामायना का प्रादि ग्रंथ 'हिम
 गिर के उत्तम शिखर पर' मनु
 का चिंता शीर्षक से सबप्रथम 'मनुष्य'
 वर्ष २, गद्य १, कथा ३, वर्ष
 मर्यादा १५ अक्टूबर १९२८ में
 प्रकाशित हुआ था। 'मनु' कामायनी
 का मना।]

मनुच = का० २७। का० कु० ७। चि० ५,
 [सं० पुं०] (सं०) १४१, १४३ १५०। प्र०, २२।
 मनुच्य धाम्ना।

मनुजहिं = चि० १४१।
 [सं० पुं०] (श्र० भा०) मनुज का।

मनुवीणा = वि०, ४७ ।

[स० स्त्री०] (स०) मानो वीणा वा मनु की वीणा ।

मनुष्य = क०, २६, २७ । वा० कु०, ३६, ३७ ।

[स० पुं०] (स०) वा०, १६२ । वि० १४०, १४१ ।
आदमी, नर ।

मनुष्यता = स० ७१ ।

[स० स्त्री०] (स०) मनुष्य का भाव, मनुष्य का आवश्यक
धर्म, शिष्टता ।

मनुहार = वा०, १३४ ।

[स० स्त्री०] (हिं०) मनावन, पुगामद, विनय, प्रार्थना ।

मनो = वा० कु०, १३ । का०, १४ । वि०,

[अध्य०] (त्र० भा०) ४७ ७० १४२ १५८ ।
माना, मनु जनु ।

मनोरथसंपर्ण = (नाम) कामायना से ।

मनोगत = क०, १३ ।

[वि०] (स०) मन म हाने या आनेवाला (भाव
विचार आदि) ।

मनोगत भाव फूल = वा० कु०, २७ ।

[स० पुं०] (स०) मन म आनेगाने भावरूपा फूल ।

मनोह = वा० कु०, १३ ३४, ६३, १००,

[वि०] (स०) १०५ ।
मुदर, मनाहर ।

मनोनीत = वा० कु०, ४७ ।

[वि०] (स०) जा मन वे अनुकूल हो । पसद किया
हुआ ।

मनोबल = क०, ८० ।

[स० पुं०] (स०) मन का बल, मन की हृदता ।

मनोभाव = वा०, १२६ १७२, २७० ।

[स० पुं०] (स०) मन मे उत्पन्न होनेवाला भाव ।

मनोमय = वा०, २६४ ।

[वि०] (स०) मन स मुक्त या पूरा । मानसिक ।

मनोमुकुल = वा० कु०, १३१ ।

[स० पुं०] (स०) मन की कली ।

मनोमुकुल माल = वि०, १८० ।

[स० स्त्री०] (स०) मनकी कली का माला ।

मनोरथ = आ०, ४५ । वा० कु०, २, ११५ ।

[स० पुं०] (स०) मन की इच्छा या अभिप्राय ।

मनोरम =

[वि०] (मं०) मनमोहक, सुन्दर ।

मनोविकार = वा० कु० ८८ ।

[स० पुं०] (मं०) मन मे उठनेवाले विकार जैसे काम,
क्रोध, मद, मोह, मत्सर, लिप्सा
आदि ।

मनोवृत्ति = का०, १६० । ल०, ६७ ।

[स० स्त्री०] (सं०) मन क चलने या काम करने की वृत्ति,
मन की स्थिति ।

मनोवृत्तियाँ = वा० कु०, १५ । क०, १४ ।

[स० स्त्री०] (हिं०) 'मनावृत्ति' का बहुवचन ।

मनोवेग = क० १६ ।

[स० पुं०] (सं०) मनोवृत्ति ।

मनोवेदना = म०, २३ ।

[म० स्त्री०] (सं०) मन मे उत्पन्न होनेवाली वेदना
या दुःख ।

मनोहर = क०, ६, १३ । का० कु०, १५, ३०,

[वि०] (स०) ३५, ३७, ४०, ४२, ४३, ११२ ।
वा०, १३, ३१ ३४, ७५, ८५, ८७,

९०, १३५, २१७, २८४, २८५
२६३ । वि०, २१, २८, ३३, ५६,

५९, ६०, ६३, ७०, ७१, १००,
१४३, १४५, १४०, १५४ १५८,

१५९, १६०, १६३ ।
१६५ । क०, १२, १५, २८ । प्र०,

८, १३, १४, १५, २३ ।
मन को आकर्षित करनेवाला, सुन्दर ।

मनोहरसा = वि०, १८३ ।

[म० स्त्री०] (सं०) आकर्षण, सोदय ।

मनोहारिणी = का०, २६३ ।

[वि०] (सं०) दे० 'मनोहर' ।

मनोहारिणी = वि०, ४५ ।

[वि०] (त्र० भा०) दे० 'मनोहर' ।

मम = वि०, ३१ ५७ ७४, ८८ ९६, ९९,

[वि०] (सं०) १५५, १७३, १८८ ।

मेरा ।

ममता = आ०, ४३, ५० । क०, ११ । वा०,

[म० स्त्री०] (सं०) ८४, १०१ १०४, ११२, १५७,

१५८, १५९, २०७, २३८, २४३,
२६७, २८६ । ऋ०, २६ ।
अपनपन का भाव, स्नेह, लोभ, मोह ।

ममत्व = वा०, १७३, २६७ । ऋ०, ५ ।

[स० पु०] (सं०) अपनत्व का भाव, ममता ।

ममत्वमय = वा०, १६१ ।

[वि०] (म०) ममता से भरा हुआ । जिसमें ममत्व
भर गया हो ।

ममारिष्यो = वा०, २७१ ।

[स० स्त्री०] (हि०) मधुमक्खिलाया ।

मयक = चि०, ६, १४६ ।

[स० पु०] (म०) चद्रमा ।

मय = आ०, ५१ । का०, २०७ । चि०, ४६,

[म० पु०] (स०) ७३ ७४ । ल०, २१ ।

एक दानव का नाम जो बहुत बड़ा
शिल्पी था ।

(त्रि) दप घमड ।

(अ०य०) युक्त ।

मयो = वा०, २६५ ।

[अ०य०] (हि०) युक्त, भरी हुई ।

मयूरो = चि०, ६३ ।

[स० स्त्री०] (स०) मारनी ।

मरद = का०, ७३, १७८, २१७ । चि०, २७,

[स० पु०] (सं०) ५६ १३२, १४६ । ऋ०, ६८ ।

३० 'मकरद' ।

मरत् उत्सय सा = वा० ११ ।

[वि०] (म०) मरद के उत्सव के समान । वसत
के समान ।

मरद उद्दगम = आ०, ६६ ।

[म० पु०] (म०) मकरद के निकटो का स्थान फूट कर
पराग का स्रोत ।

मरत्मथर मलयन सी = वा०, २२४ ।

[वि] (सं०) मकरद युक्त गभीर वायु सहज । पराग
से युक्त मद हवा के समान ।

मरदे = चि०, ४६ ।

[सं० पु०] (श० भा०) मरत् वा ।

मरवत्त = वा०, २८४ ।

[सं० पु०] (सं०) एक प्रकार का मणि या रत्न विणोप ।
पना ।

मरवत्त द्वारावलि = चि०, ५५ ।

[मं० स्त्री०] (सं०) मरवत्त मणि के हार की वक्ति ।

मरत्तर = वा०, ५५, २२१ ।

[क्रि०] (हि०) 'मरता' क्रिया का पूर्वकालिक रूप ।

मरय्य = वा०, १७, ३२३ ।

[सं० पु०] (सं०) मृत्यु, मौत ।

[मरय्य जघ दोन जीवन से भला हो—'विशात'

का गीत । 'प्रमाद सगात' में पृष्ठ ३५
पर संकलित । महाविप्लव की हत्या के
उपरोक्त 'विशात' का कथन । मनुष्य
हान्तर दाता, अग्रमान और धिक्कार
का जावन जीने से मृत्यु भरी है ।]

मरय्यपर्य = वा० २०' ।

[सं० पु०] (सं०) मरणा का पव । प्रलय ।

मरता = ल०, ५५ ।

[क्रि० अ०] (हि०) मरना क्रिया का रूप ।

मरना = क०, १२ । वा०, ५, २८, १२३ ।

[क्रि० अ०] (हि०) प्रे०, १० । ल०, ३८ ४३ ५३ ।

शारीरिक क्रियाआ का सदा के लिये
धृत हो जाना । अत्यंत दुःख या बध
उठाना । आसक्त होना ।

मर ले = का०, १३३ ।

[क्रि० अ०] (हि०) 'मरना' क्रिया का प्रेरणाधिक रूप ।

मराल = का०, २३५ । चि०, ६६ ।

[सं० पु०] (सं०) हंस । घोडा । हाथी ।

मराल सी = चि०, ७० ।

[वि०] (सं०) मराल के समान ।

मरालिनि = चि० १४३ ।

[मं० स्त्री०] (श० भा०) २० 'मराल' ।

मराली = चि०, ४५, ५८ ।

[सं० स्त्री०] (मं०) ३० 'मराल' ।

मरी = चि० ६७ ।

[क्रि० अ०] (सं०) 'मरना' क्रिया का सामा व भूत रूप ।

[मरीचि—एक ऋषि जिनके आश्रम में
शकुंतला और भरत को दुःखत से
तिरस्कृत होने पर मेनका ने धाई और
उसी में दुःखत से शकुंतला का
पुनर्मिलन हुआ ।]

- मरीचिका = का०, २६८ । सं०, ४८ ।
 [सं० १०] (सं०) विरण, वाति, मृगनृणा ।
- मरीची = चि०, ५६ ।
 [सं० पु०] (सं० भा०) मूर्ध । चद्रमा ।
- मरु अचल = का०, ६७, १५८ ।
 [सं० पु०] (सं०) बालू प्रदेश का अचल, शुष्कता ।
- मरु ज्वाल = का०, २१७ ।
 [सं० स्त्री०] (सं०) बालू प्रदेश की ज्वाल । सदा ताप से जननवाली ज्वाल ।
- मस्त = का० पु० १७ । वा, २५, १६७,
 [सं० पु०] (सं०) प्रे०, २४ ।
 वायु । प्राण ।
- मस्त सदृश = का०, १५७ ।
 [वि०] (सं०) वायु के समान । न रुकनेवाला । गर्त शीत ।
- मरुधरणी सम = ऋ, ४० ।
 [वि०] (सं०) मरुस्थल के समान । शुष्क ।
- मरुभूमि = का०, १६ । चि०, १८० ।
 [वि० स्त्री०] (सं०) मरुस्थल । मरुवाड देश ।
- मरुभूमि निराशा = प्र०, १५ ।
 [सं० स्त्री०] (सं०) निराशा की मरुभूमि । वहाँ जहाँ काम नाए पुरा नहीं होनी ।
- मरुमय = ऋ०, ४६ ।
 [वि०] (सं०) मरु से युक्त । ज्वलनशील ।
- मरुमरीचिका = का०, १८ ।
 [सं० स्त्री०] (सं०) मरु प्रदेश की विरणों जो लहराते हुए जल सी दीखती है । निष्कल प्रयास ।
- मरुसम = चि०, १६० ।
 [वि०] (सं०) मरुस्थल के समान । ज्वलनशील ।
- मरुस्थल = आ० ४१ ।
 [सं० पु०] (सं०) वह प्रदेश जहाँ पानी नहीं बरसता, बालू के बग होते हैं मरुभूमि । रेगिस्तान ।
- मरुँ = का०, २३०, २४३ ।
 [क्रि०] (हिं०) 'मरना' क्रिया का सामान्य वर्तमान रूप ।

- मरे = का०, २८७ । चि०, १८१ ।
 [क्रि० अ०] (हिं०) मरना क्रिया का सामान्य भूत रूप ।
- मरोरु = का०, १०३, १४० ।
 [सं० पु०] (हिं०) मरोरुन की क्रिया या भाव । युगाय ।
 पेट म हानवाली पेटन, व्यथा ।
- मर्दन = चि०, ११२ ।
 [सं० पु०] (सं०) कुचलना, मसलना मलना ।
- मर्म = का० पु०, ६४ । मं० १४ ।
 [सं० पु०] (सं०) स्वरूप । रहस्य । गमिस्थान ।
- [मर्म कथा—सवप्रथम 'दु' बला ५, विरण १० सितंबर १६१२ मे प्रकाशित तथा बानन कुमुम' म पृ० २०-२१ पर सकलित । प्रियतम तुम्हारे वे प्रमभाव क्या हुए ? प्रेम स्तवन कसे सुव गए ? हम म तुममे इतना अवर कम हो गया । प्राणाधार शत्रु उस हा गया ? मर्म वेदना कहती है कि उमम जाकर मेरा दुख क्या कहा ? लेकिन चुप रहकर ही सारी क्या कह दूंगा । मेरा मौन ही तुम्हें सुव करेगा । चाहे जितना घात गभार वगैरे मेरा मौन तुम्हें बुनवा कर ही दम लेगा और न बोला ता जानें कि तुम धीर हा । जो युव भी हो तुम रखे ही रहा लेकिन रम की बू देँ भरती रहे । हम तुम जब एक हैं तो लोपा का बववास करने दो ।]
- मर्मर की दीवाल = का० पु०, १०६ ।
 [सं० पु०] (हिं०) समरमर का बनी हुई दीवाल ।
- ममबाधा = का० २०६ ।
 [सं० स्त्री०] (सं०) रहस्यमयी बाधा या विन, अवि पात बाधा ।
- मर्मवेदना = का० पु०, २० । का० ४ ।
 [सं० स्त्री०] (सं०) मममरी हुई वेदना, वह वेदना जिस कोई जान न सके ।
- मर्यादा = का०, १८१ । चि०, ६५, १०६ ।
 [सं० स्त्री०] (सं०) सीमा । तट । प्रतिष्ठा ।
- मर्यादा = का०, १५ ।
 [सं० स्त्री०] (सं०) दे० 'मर्यादा' ।

मल = ऋ०, ५१।
 [सं पु०] (सं) मल। दौघ। पाप।

मलना = ऋ०, ८७।
 [त्रि० स०] (टि०) हाथ से घिसना या रगड़ना।

मल मल = आ०, १०।
 [त्रि०] (टि०) मसल मसल कर।

मलय = आ०, २७ ४२। वा०, ६७, २१६।
 [सं पु०] (सं) चि०, २४ १७०। ऋ०, ११ ७२।
 ल० २४ २१, ३७।
 दक्षिण भारत का एक प्रदेश, तथा
 वहाँ के निवासी, वहाँ की जन वायु।
 सपेन चदन।

मलय की वात = वा०, २१६।
 [सं पु०] (टि०) मलय प्रदेश की हवा, मुगधिन वायु।

मलयन = घा० २६। वा० कु० १३ ८६,
 [सं पु०] (सं) ६६। चि० १७७। ऋ० २७ ४१
 ५६ ६२। प्र० ११, १४। ल०, १६
 ४५।
 मलय प्रदेश में उत्पन्न होनेवाला चपन।

मलयन श्वादास = ऋ० २६।
 [सं पु०] (सं) मलय पर्वत से आनेवाला शीतल मल
 मुगधिन वायु का पर। चपन का
 गुणाधि में पूषण भाव।

मलयज धोर = चि० ६३।
 [सं पु०] (सं) गतिन मल मुगधिन वायु।

मलयन पवन = चि० ६८।
 [सं पु०] (सं) मुगधिन एवं गतिन मल वायु।

मलयन सा = वा० १५२।
 [त्रि०] (सं) >> 'मलयन गा'।

मलयन सी = वा० २०४।
 [त्रि०] (सं) चपन का समान शब्द। मरुतना
 एवं चानन प्रकृत करनेवाला वायु का
 समान।

मलय पवन = स० १०।
 [सं पु०] (सं) मुगधिन मल तथा पवन।

मलय वायु = स०, ३१।
 [सं पु०] (टि०) >> मलय की वात।

मलय बालिका सी = का०, १८२। ल०, २०।
 [त्रि०] (सं) मलय जाति की बालिका के समान।
 मलय गति से चलनेवाली बालिका के
 सन्ध।

मलय मरत = ऋ०, ८५।
 [सं पु०] (सं) >> 'मलय पवन'।

मलय मारस = का० कु०, ८।
 [सं पु०] (सं) २० 'मलय पवन'।

मलय हिलोल = वा० कु० ४६।
 [सं पु०] (सं) मुगाभत वायु से अत स्थल में उठने
 वाला धानद की लहर।

मलयाचल = वा० १७१।
 [सं पु०] (सं) मलय प्रदेश का एक पर्वत। चदन
 वन।

मलयानिल = घा० ३१। वा० ६। वा० कु०, १५,
 [सं पु०] (सं) ३४, ६२, ६६। वा० ७३, २२०,
 २६२। चि०, १ २६, ३६, ३६
 १४३ १८३ १७२। ऋ०, १६ २५,
 ४६, ८३। प्र० १। ल०, २८ ३१,
 ४०।
 >> 'मलय पवन'।

मलयानिलनादित = वा०, ८।
 [त्रि०] (सं) मलयानिल व द्वारा चपन चहुँबाया
 हुआ। गुणामरुत का पवन।

मलयानिल सा = ऋ० ६४।
 [त्रि०] (सं) मलयानिल व समान, आनात्न करने
 वाला।

मलयानिली = त्रि०, ४८।
 [सं पु०] (प्र० भा०) मलयानिल म।

मलिन = घा० ४०। वा० कु० ३६, ६३।
 [सं पु०] (सं) वा० १४ ३१, ६० ११३, १२०,
 २०१, २३६ २४१ २८१, २६६।
 चि०, १५७ १७०। ल०, ७२।
 >> मलय'।

मलिनना = चि०, १० ३६। प्र०, १८।
 [सं पु०] (सं) मलयन होने का भाव। चपन, घन।
 दिवार पाव।

मलिनचल = ऋ०, ३०।

[सं० पुं०] (सं०) मलिन अवन। विकार से भरा हुआ, दोषपूर्ण औचल।

मलिनता = का० कु०, २७, २८।
[वि० स्त्री०] (सं०) १० 'मलि'।

[मलिनता—कानन कुमुम' मे पृष्ठ ३८-४० पर सन्निव। नभम मतवाले नव श्याम जलवर छाए हैं और घुमड रहे हैं। ललिता लला नजीली नुवाला भी सजाती तद्वत्ता के सग सजोती बनी है। फूला स भरी दा डालिया हिल रही हैं और दोना पर बठा पक्षिया की जोड़ी मिल रही है। युननुल वापन शार मचाने हैं और बरसाती नाल उछल उछलकर बल था रहे हैं। हरी ननामा का धमराई मुकुमारी सी बनी बठी है। सभा आर भावक अनूठा दृश्य गेख पड रहा है। उस मुख सघन गुज मे अमर महरा रट हैं। जहाँ कुछ नया दृश्य और निराती मुवमा छाद है वही एक बाला मलीन वगन पटने बठी है जैसे पुरइत पाता के वाच कमल की माला हो। उवता मोंत्य मलीन घन से घिर चद्रमा का मालि है। इम कमलकीश पर तुवार पात क्या ? किस हालत न उसे मतवाला बना दिया है ? किस धीवर न यह जान डाल दिया कि मलीनता र्चनी सीरी स सोंत्य रूग माली की यह माला प्रकटी है। दुख सागर की उताल तरगा म मुकुमार मृणालनलिना के सपान हिलनवाली यह सुदरी है। हवा के भाका म उसे वेग सहित भङ्ग कोरो मत और न इस कर्मनिन का प्यारे मधुपर स अभी मिलाओ ही। अभी इसे मितन दा ताकि इस चद का नवल सतत प्रकाश व्याप्त हो जाय और इसके मनवाली हो जाय।]

मलिनाम = वि०, १६०।
[सं० पुं०] (सं०) मलिन वाति या शोभा।

मलिया = वि०, १५१।
[सं० पुं०] (ब्र० भा०) माली।

मलीन = का० कु०, ४५, १०२। वि०, ४६,
[वि०] (हिं०) १७६। भ०, ३३।
२० मलिन'।

मलीनता = का० कु०, ११२। म०, ८।
[सं० स्त्री०] (सं०) १० 'मलिनता'।

[मल्लिकादि सुमन से—चिन्ताधार पृ० ३३ पर सक्लित बबुवाहन के अतगत एक सखी दूसरी सखी स पूछती है कि चद्रमा क्या इतना मुदर है। उसका उत्तर दूसरी सखा देती है। स्वच्छ चदिनी रान मल्लिकादि सुमना से घरणी पर पथिन वितान रचकर तारो के हीरक हार घोडकर सुरभित मलय माखन विजन मे सीवन चद्रमा स मिलने बंठी है।]

ममलन = का०, १०३।
[सं० स्त्री०] (हिं०) मसलने की क्रिया या भाव।

मसि = म०, ६।
[सं० स्त्री०] (सं०) स्याही। काजल, कालि।

मसृण = का०, ४६, १२५।
[वि०] (सं०) मुलायम, चिक्का।

मसृण बाल = का०, १५२।
[सं० पुं०] (सं०) चिक्के और मुलायम बान।

मस्त = का० कु०, २२। का०, ६८। भ०,
[वि०] (फा०) ४३, ४२।
मतवाला। मदा'मत्त।

मस्तर = का०, ११४। का० कु० ६०। का०,
[सं० पुं०] (सं०) २३७।

शरीर के अग का शीर्ष भाग, शिर,
ललाट।

मस्तानी = का०, ८।
[वि०] (फा०) मस्ती से मरी हुई। वट जो मस्त हो।

मस्तिज्जद = का० कु०, ६। वि०, १८६।
[सं० स्त्री०] (ब्र०) मुगलमाना का प्रार्थना स्थन।

मस्तिष्क = का०, १६५। ल०, १२।
[सं० पुं०] (सं०) यस्तक के अदर का सूदा। सावने समझने की शक्ति, बुद्धि।

- मह = वि० ७७ ।
 [प्रत्य०] (प्र० भा०) गतमी विभक्ति, वा ७७, में ।
- महत = वि०, १०१ ।
 [वि०] (सं०) बहुत बड़ा ।
- महत्त = वा०, २७६ । म० १७ २३ ।
 [वि० स्त्री०] (सं०) उद्दत घड़ी, मद्दता ।
- महत्तय = वा० ३० ।
 [सं० ।] (सं०) महान वा भाव, गुणता श्रेष्ठता ।
- महत्त्वमय = म०, ६ २३ ।
 [वि०] (सं०) गुणता एव श्रेष्ठता म पूर्णा ।
- महत्वा = वा० कु०, २६४ ।
 [सं० स्त्री०] (सं०) 'मह'व ।
- महाराज = वि , ६३ ।
 [सं० पुं०] (प्र० भा०) महाराज, राजाया म श्रेष्ठ राजा ।
 ब्राह्मण पंडित । बहु प्राज्ञता जा विगा
 के यहाँ माधारण नौकरा करता हो ।
- महाराजहि = वि० ६८ ।
 [सं० पुं०] (प्र० भा०) महाराज वा ।
- महाराजिन = वि०, ५८ ।
 [सं० स्त्री०] (प्र० भा०) महाराजिनिया ।
- महर्षि = क०, २६, २७ ।
 [सं० पुं०] (सं०) बहुत बडा या श्रेष्ठ ऋषि ।
- महल = वा० कु०, ६७ । वि०, ४६ । ऋ०
 [सं० पुं०] (प्र०) २५ । प्र०, ३, १४ । म०, १६ ।
 प्रासाद । रनिवास ।
- महा = वा०, ६ । वा० कु०, ४२, ५३ । वा०
 [वि०] (सं०) १५, १७, १०४ १६०, २५१ २५३,
 २५४, २७३ । वि , ३६ ४२ ५४,
 १७० १३६, १५४, १५५, १६२ ।
 प्र०, १५, १७, २४, २५ । म०, ६ ।
 ७०, १५ ।
 बहुत अधिक, सबश्रेष्ठ । बहुत बडा ।
- महाकर्मनीय = वा० कु०, १७ ।
 [वि०] (सं०) शताव सुदर, सुकामल ।

[महाकवि तुलसीदास—सवप्रथम तुलना पद्या
 बना, भाग ३ (ना० प्र० सभा) सन्
 १६२३ ई० मे प्रकाशित चतुदशपदी
 तथा काननकुसुम मे पृष्ठ ८६-८७

तथा 'प्रगाथ मंगीत' में पृ० १८० पर
 संवर्णित । मार मंगल म हमारा राम
 रमा हुआ है और मरत बरारत म
 उमरी प्रीति प्राप्त है । मंगी राम क
 गता वा धनुर्भूति तुलना १ वा पा
 और मवा तु राम वा म उमका मान
 बना वा म था । मंगाररूप विरत
 म उमरी नाम वा मणि मर जगाया ।
 मर १ तुलना मान भला भा बिमानम
 वा दात बहु करा म और मरतुधा
 म मारमताम हरेत म । मर मरत
 स्तमता तथा प्रभु राग व निभर उमर
 म । मरत जगन्नाथ पीर मरत मरत
 उमर विरत स्तमक म । प्रभु की
 प्रभुता व हृद प्रथम प्रचारक की
 उमका विभुता वा पूर्णा बाध था । राम
 वा मरारत जिनमे कभी विगा म
 प्राणा नहीं वा । रामचरित मानम मे
 उम मरत तुलनामरत का जय हो ।]

- महाशाल = वा० कु०, १०७ । वा० २७३ ।
 [सं० पुं०] (सं०) ल०, ५५ ।
 महादेव ।

[महाकवी—मवप्रथम 'इदु' बना ३, विरण ४
 माच १६१२ ई० म प्रकाशित कानन
 कुसुम में पृष्ठ ६-११ पर संवर्णित ।
 पूर्णिया की राति का शशि घल्ल होने
 वाला है । प्राची सुदरी विमल उपा से
 मुह धोनेवाली है । तारिका अपनी
 काति खानेवाली है । स्वर्ण जल स
 सूय भालाश पट की धनियाला है ।
 ये विहंगम आगत के लिये स्वागत
 यान कर रहे है । मलय पवन आरर
 व्यथा हर रहा है । कुछ कुछ चाँदना
 वा कि सुदरी कया मर गई और कोमल
 कमल की कनी कुछ कुछ विकसन लगा
 है । लता कुसुम माल लिए राडी है ।
 चंद्रमा और तारे कपूर से दोर पड
 रहे है । अभा अभी सूर्य की धामा
 प्राची म दिखई पडने लगा और उसके

किरणों का बड़ी भी निकलने लगी। सूर्य देव क्या अब पूरा प्रभा के साथ उदित होनेवाला है और चक्रवाल के जोड़े मिलनेवाले है। आकाश में कज कानन का मित्र कुम्कुमाम सूर्य पूव में प्रकट हुआ। जिसका कपना सदा शिशु के खेल का गेंद कहती है और मारा रसार हा जिसकी प्राडा भूमि है। कहे ऐसी स्थिति में तुम किस और खींचते हा चले जाभाग। क्या कभी खेल छोडकर मरे पाम नही घाग्रागे। आख मीचकर इस प्रकार भागना अच्छी बात नही फिर भा तुम चाहे जहाँ भी रहो हम तुम्हें खोज लेंगे। तुम्हीं कहो कि छिपकर तुम कहा जाओगे। मेरे चित्तचार को छिपा सके ऐसी भूमि है ही नहीं। हे परम ब्रह्म प्रियतम तुम कलियों के मलयपवन, अली बनकर कलिया से मकरद पान श्यामा के स्वर में ज्ञान तथा प्रकृति की सुपमा के मूल में हो। ऊगा को प्रकृति का पट पहनाकर अपना सहचरा बनाते हो और उसके भाल पर बिनी के समान सूर्य का कुटुम लगाते हो। उगा मुदरी का जो तुम्हारा प्रकृति है उसका स्वय नित्य नूतन रूप बना उसकी छवि देखते हो। वह तुम्ह देपती है। इस प्रकार तुम प्रकृति और पुरुष दोनों मिलकर महाक्रीडा करते हो।]

महागत = ल०, ७०।

[वि०] (स०) सत्ता के लिये नष्ट कर देनेवाला, अत कर देनेवाला।

महाचिति = का०, ५३।

[सं० स्त्री०] (स०) महादुगा। महान् चेतना शक्ति।

महा चेतना = का०, १६३।

[सं० स्त्री०] (सं०) बलवती चेतना, वह चेतना जा स्वामी और दृढ़ हो।

महा छल = वि०, ६६।

[सं० पुं०] (सं०) बहुत बडा छन या कपट।

महाछत्रि = वि०, १६२।

[म० स्त्री०] (म०) अत्यंत शाभाशाली।

महात्मा = वि०, ६०।

[म० पुं०] (सं०) जिसकी आत्मा महान् हो, साधु। महान् पुरुष, महापुरुष।

महाभ = ल०, ४७।

[म० पुं०] (म०) बहुत बडा घमड।

महादेश = का०, २६१।

[म० पुं०] (सं०) बहुत बडा देश, महाद्वीप। गुर घाना।

महान् = का० कु०, १८। का०, ५१, ४४, ८५।

[वि०] (सं०) वि०, ६६, १०३, १०५, १४०, १४३, १४३। अ०, ७७। म०, १८, २३। ल०, ६८।

बहुत बडा। अ०।

महानद = का०, २८२, २६०।

[म० पुं०] (सं०) बहुत बडा तालाब। बड़ी नदी।

महानील = का०, २६।

[वि०] (म०) गाढी नीलिमा से परिपूरण।

महानील लोहित उजाला = का०, १८६।

[सं० पुं०] (सं०) वह उजाला जो नीलिमा से युक्त लाहित या लाल हो। (क्राय)।

महानृत्य = का०, १८।

[सं० पुं०] (सं०) ताडव नृत्य प्रलयकालान नाच।

महापत्र = का०, २६६।

[सं० पुं०] (सं०) बहुत बडा पत्ता, कमलपत्र का द्योतक।

महापर्व = का०, १४३।

[सं० पुं०] (सं०) पर्वों भा त्योहारों में महान्।

महापाप = का० कु०, १२१।

[सं० पुं०] (सं०) बहुत बडा पाप।

महाप्राण = म० ८।

[सं० पुं०] (सं०) प्राणा या जीवा में महान्। वाक्करण में उच्चारण का एक स्थान।

महापुरुष = का० कु०, ५१।

[म० पुं०] (सं०) पुरपा में महान्।

महापट = का०, ४।

[म० पुं०] (सं०) अत्यंत बट।

महाबल = वि०, ६३।

[सं० पुं०] (सं०) बहुत बडा बल। अत्यंत बलवान्।

- महात्वि = वि०, ५८।
 [सं० पु०] (सं०) महाभाग्य।
- महाभयाजह = वा० कु०, २५।
 [वि०] (सं०) धरत इराया।
- महाभारतगगा = वा० कु० ११३।
 [सं० पु०] (सं०) महाभारतगी गगा।
- महामत्र = वा० १५४।
 [सं० पु०] (सं०) महत्त्वशाता मंत्र। बहूत यथा मंत्रि।
- महामति = वि० ९८।
 [वि०] (सं०) बडा बुद्धिमान्। गलेग जी।
- मडामेघ = वा०, ७।
 [सं० पु०] (सं०) पनधोर बादन प्रत्य गान वा मघ।
- महा रण्यग्रनि = वा० कु०, ११४।
 [सं० पु०] (सं०) महायुद्ध रूपी अग्नि।
- महारथी = वा० कु० ११४।
 [सं० पु०] (सं०) बद्ध बडा योद्धा।
- महाराज = वा०, ९। वि० १८, ६४, ६५, ६६।
 [सं० पु०] (सं०) बद्ध बडा राजा। ब्राह्मण, पुत्र धात्रि
 के लिये आदरपूर्वक शब्द।
- महाराणा = म० ४।
 [सं० पु०] (सं०) चित्तोर त राजा 'महाराणा प्रताप'।

[महाराणा वा महत्त्व—महाराणा प्रताप का जावन त्याग तथा तपस्या उन लागे के लिये प्रेरणा प्रदान करनेवाली है जो देश वा परतंत्रता के पाष से मुक्त करने के लिये सधप करते हैं। इस दृष्टि से महाराणा का महत्त्व खडाबोला व काय मे एतिहासिक महत्व रखता है। यह पुस्तक अपने भारत प्रकाशक वा एन न हा कथन भी समेटे हुए है, जो अत्यंत महत्वपूर्ण है। उसे यहाँ अविकल दिया जा रहा है।

कथन

(प्रथम सम्स्करण से)

यह 'महाराणा वा महत्त्व', डबु के क्ला ५, खट १, किरण ६, जून १९१४ मे प्रकाशित हो चुका है। इसके लेखक को भिन्न तुकात कविता लिखने का जय रुचि

हई तब उया समय यह प्रत्य उनरु मने मे उपागिया दृषा वा रि इगके लिये बाई गाम रई हाना धारयक है। कर्वाणि तुगापिहीन कविता मे यगा वि वाग वा प्रसाह धोर युगि व धनु मून गति वा हाना धारयक है। नही ता गध धोर पध मे ५ हई क्या है। धा ममग त भिन्न तुगापि कविता के लिये गई गरह व छ। य काय निवा है। उमम २१ मात्रा वा रई धरिन् नाम मे प्रसिद्ध था, वही किरणि व है। पर मे प्रचलित कथा दृषा धाधिरागे कवितापामे ध्यवहृत है। इन रई मे भिन्न तुगापि मे, ममम पहना कविता सगक वा 'भरत' नाम वा है। हई वा बात है कि इमी रई को भिन्न तुगापि व खतरा ने पगद दिया है, धोर दसा रई मे य मपने बिचार प्रकट करत लग गग है। कर्वाणि भिन्न तुगापि हई पर भा गति हाना चाहिए। बहू इममे सख्या प्रस्तुत है। मरा समर मे गात रूपक व लिये भी यहा छ सवत उगकुटे है।

मार्थ १८१३ मे खलन मे 'कल्याणव' नाम वा एक गातरक 'इदु' मे लिखा था। यह दखरर धोर भा हप होना है कि प० रानारायण पाडेव जैम साहित्यिक न हल हाम 'तारा' नामक गातरूपक वा इता छद मे अनुवाद करके उक्त मत का पुष्टि का है। (प्रवाशक)

इम रचना वा पुस्तकार प्रकाशन सन् १९२८ मे हुआ, यद्यपि सन् १९१८ मे ही 'विशाधार' पुस्तक व प्रथम सस्करण मे यह रचना उसने एक अंग के रूप मे लोग के सामने धा चुकी था। कथन मे जून १९१४ वा बात स्पष्ट ही है। इमे उस समय पुस्तकार प्रकाशन का रूप प्राप्त न हो सका। प्रसादजी की कृतियो मे, विशेषकर उनका प्रारम्भिक रचनाधरो मे यह धरयत

महत्त्वपूर्ण रचना है। इस कारण नहीं कि 'अरिन छ' में यह भिन्न तुल्य रचना है। उम छद को प्रतिष्ठा का कारण तो 'कहगालय' है। 'बरगालय' ही क्या, 'भरन' के सर पर ही इनका सेहरा बधना चाहिए, क्योंकि इसमें डेढ़ साल पूर्व ही जनवरी १९१३ में वह प्रकाशित हो चुका था। प्रमाद साहित्य के मर्मज्ञ विद्वान् तथा आलोचन प० नन्ददुलारे बाजपेयी ने प्रसांजी के साहित्यिक व्यक्तित्व का सबसे म एक स्थान पर लिखा है कि 'भने श्रीर बुरे पुण्य श्रीर पाप, देवता श्रीर श्रीर दानव, दुख श्रीर सुख, प्रसांजी के लिये एक सिक्के के दा पहलू भर है। दोनों इन का यजगत् के लिये समान रूप से आवश्यक हैं। बिना एक के दूसरे का सत्ता ही नहीं है। कवि न तो देवता का भक्त है, न दानव का दुश्मन। उनके लिये तो दोनों उप योगी ह दानो बराबर है। यह उनका तात्विक विचार था और इस तात्विक विचार को हम वस्तुस्थितिमूलक दशन का हिंदी में प्रथम प्रवेश कह सकते हैं।'

इस तात्विक विचार का स्पष्ट दशन इस रचना में होना है। इसमें सभी पात्र आदश ह। यह द्विवेदीजी व युग की पहिली रचना है निमम सभी पात्रा का देवत्व प्रकट हुआ है, सांप्रदायिकता का बधन को, लगाव और दुःख का भावना को बिना स्थान दिए हुए ही। यह रचना प्रमाद की प्रतिभा की सुवर्ण वाणी का, जो भविष्य में फूटी, परिचय देने के लिये सशक्त है। हिंदी में कुछ ऐसे आलोचक भी मिन, जिन्होंने द्विवेदीजी के प्रभाव का रचना का भीतर ही इनका मूल्या कन किया है। किंतु ऐतिहासिकता, क्या कहने की प्रणाली काव्य की मर्यादा सभी दृष्टिया से यह रचना उस

धेरे के बाहर है। पूव इसने कि इस रचना के साहित्यमीय की व्याख्या की जाय, इसका परिचयात्मक विवरण प्रस्तुत कर देना अप्रासंगिक न होगा।

सबप्रथम इसकी काव्यस्तु का आख्यान यहां किया जा रहा है। यह कथावस्तु इतिहास की अनुश्रुतियों एवं साक्षात् पर आद्भुतता है ही माथ ही कवि ने काव्यकथा कहने की प्रणाली में नाट्य प्रणाली का मानवताकर कथा में एक सौंदर्यपूर्ण आकषण की सृष्टि का है। पुस्तक पाच राउंड में विभक्त है। कथाक्रम पाच घटनाओं के मधुदंत प्रभाव से महाराणा का महत्ता निदर्शित करती है। विभिन्न कडियां टार की मरिया हैं।

पहले लड़के में अदुल रहीम खानखाना की पत्नी को मर्यादा में प्यास लगती है। 'हरम' के नायक का इसकी सूचना दासी देती है। 'हरम' का नायक शादल की ओर सकेत करता है तथा बताता है कि वहाँ पानी मिल सकेगा। दूसरा अंश वहाँ प्रारंभ होता है जहाँ हरम शादल पर पहुंच जाता है। वही महाराणा प्रताप के पुत्र अमर सिंह एकाएक हरम पर आक्रमण कर देने ह। युद्ध होता है। 'हरम' बंदी होता है, नवाज की पत्नी भी। सब कटी जाकर तीसरे स्थल पर महाराणा प्रताप प्रकट होने ह, अरावली का ताजहटी में। अपने पुत्र तथा सनिको के इस वृत्तित्व से महाराणा के हृदय को बहुत बड़ा आघात लगता है। वे न केवल सादर और सममान नवाज की पत्नी को वापस करने का आदेश देते हैं अपितु यह भी आदेश देते हैं कि भविष्य में ऐसा न हो। पुन महाराणा प्रताप कथा से अंतधान हो जाते हैं, पर महाराणा की महत्ता की कहानी का क्रम चलता रहता है।

कोरे स्थल में तबाल की पत्ता का तबाल से गुंथिना यगिना है जहाँ महाराणा का बाय व्यापारा का मन्था व्यापार द्वारा अंगम तबाल का महाराणा जन्म महान् व्यक्ति का निय कुपु करणे को प्रेरणागत तबाल करती है। पौरुष स्थल है दिनी दरबार का। धनधर के मनुग तबाल का धातु की साम्य गता का धातुगतकर धीर धनधर का धनगी सात का धातुगत धनधर धाने का धातुगत दे कथा समाप्त होती है। क्या इतने ही में महाराणा का मत्ता का धातुगतन कवि कर देता है धर्मात्तु इवल प्राजन का २५ शृंढा में जो बाद में लिखे गए कुपु तथावधि वायुसे स भाय की दृष्टि से कम गौरव शाली नहीं है। प्रसादजी की दृष्टि भी यहाँ नहीं है, महाराणा को देखने में। महाराणा यहाँ युद्धभूमि पर लडने हुए नहीं चित्रित किए गए हैं। उनका मन कितना महान् था इसका निदर्शन यहाँपर किया गया है। शक्ति के सचयन मात्र से तथा उसके प्रयोग के प्रदर्शन मात्र से कोई बडा नहीं हो सकता। भारत में बढप्पन तो चरित्र को महत्ता पर जीवन पाला है। महाराणा के चारित्रिक गठन की विशेषता स्पष्ट करने में प्रसादजी यहाँ अपने धातुगतों में सफल हुए हैं। यह बहुत बडा बात है।

लेखक ने क्या कहने का जो रूप धरनाया है वह सबका अपने ढंग का है। वार्तालाप से क्या का प्रारम्भ होता है और वार्तालाप से हा क्या की पूर्णाहुति भी। प्राय किसी का विशिष्टता दिखाने का सर्वात्म प्रकार किसी के वृत्तित्व को स्पष्ट रूप से सामने रखना है। साथ ही उस कायव्यापार में जिन लोग का सामान्य और सयाग

हा उन लोगों का भी उनी मन्मं तथा उमा यातापरग में उन्मियत करता है सुभ है। सातगाता का अंगम का साम्य कथा कथा साता की महत्ता पर प्रता। धातुगत है धीर दन धातु का मन्मं करती है कि महाराणा का विगत महान् लय विगत लय गाया था। व धर्मवृद्ध के पतागी में जा सवया भारतीय का निय करेकम रहा है। महाराणा का अंगम का कन्ता हीने पर जा कुपु कथा यह उग हृत्प की बागी है जा मनु का सामने पठ गरी करता धातु हृत्प का तब प्रतिपा का हा युद्ध में डाल गाता है।

धार्मिकता का कथा—'तिया कियने उग यनी ? खी को सुनिप दो दुप नहीं।'

कथा समक कर तब प्रताप ने— क्या कथा अनुचित बल से सेना काय मुक्कर्म है। दन धवला के बल से हमि सबल क्या ? रण में दूटे डाल तुम्हारी जो कभी तो बचने के लिये शत्रु के सामने पीठ करोग ? नहीं, कभी ऐसा नहीं दृढ़प्रतिज्ञ यह हृत्प, तुम्हारी डाल बन तुम्हें बचावेगा। हमपर भा ध्यान दा धीर अंधेरे में उठनी जब लहर हो।'

× × ×

ध्वेड, कृत्ता तिनक का भवसब ले धीर सिधु में क्या बुपजन का काम है ? परम सत्य का ध्वेड न हटते धीर हैं। साधुनाधिपते। क्या धव होगा यही सुद्रकम इस धर्मभूमि मेंवाड मे ? सिंह सुधित हो तब भी तो करता नहीं मृगया, डर से दबी शृंगाली वृद की।'

इसके साथ ही वेगम का चरित्र भी सबका उनमें अनुरूप हा उ होने प्रकट किया। वेगम उनके इस सुवृत्तय पर अपने पति के समुल्ल नेवल उपवृत्ता तब ही नहीं हुई अपितु खानखाना की इस बात

के लिये बाध्य कर दिया और उह यह मनवाकर छोड़ा कि महाराणा प्रताप जमा आत्मोत्सर्ग करनेवाला याँडा जीवन मे कभी उहे नही मिला । खानखाना भी अपनी पत्नी से सच्चे सुदृढ वीर की भाँति प्रताप की प्रशंसा करते हुए कह उठे कि—

‘जैसे भ्रष्टे सिंह, वहा विक्रम लिए
वीर ‘प्रताप’ दहकता था दावागि सा ।
सत्य प्रिय, मैं देख शूर छवि वीर को
हाता था निश्चेष्ट, बाह कमी प्रभा ।
कितने युद्धा मे मेरा निश्चेष्टता
हुई विजय का कारण वार ‘प्रताप’ के,
कथोनि मुग्ध होकर मैं उनको देखता ।’

‘प्रिये ! भला किस मुख से मैं तलवार ध्वज
लेकर कर मे समर करू उस वीर से,
मिलती मुझे पराजय भी यदि युद्ध म
तो भी इतना क्षोभ न होता हृदय म ।’

पत्नी के आग्रह पर सच्चे वार की तरह
उहाने महाराणा के समुख अपनी हार
स्वीकार का तथा अत तक महाराणा
के हित के लिये प्रयत्नशाल रहे । यह
महाराणा की चारित्रिक तथा नतिक
विजय था । नवाब न अकबर से भी
यह मनवा वर ही दम लिया—

‘अकबर ने फिर कहा, बात यह ठीक है
अब न लडाइ राणा स उपयुक्त है ।
भेजो आनापन शीघ्र उम स य को
सब जल्दी ही चल आय अजमेर म ।’

अकबर भा यहाँ सबथा अपनी मयादा क
अनुरूप ही उपस्थित हुआ और उसने
हठवादिता न स्वाकार कर अपने उस
परम दूटनीतिक चरित्र का परिचय
दिया जिनके लिय अकबर की क्वाँति
इतिहासविदित है । अमरगिह भी एक
अच्छे याँडा के रूप मे उपस्थित किए
गए हैं, महाराणा प्रताप के पुत्र के
अनुरूप । मुगल सपिना का भा कामर
या क्लाव उ हाने चिभित नही किया ।

वे भी लडाके थे । उनको बकरी
उहाने नही बनाया । वे भा विशाल
हृदयवाले आदशवादी थे । उहोने
हरम की रक्षा के लिये प्राण गवा
दिए, लेकिन शस्त्र समर्पित नही किया ।
प्रसादजो न सफल वातावरण की
सृष्टि भी अपने कथानक का सगुट
करने व लिये की है । प्रकृति का जा
रूप उहाने उपस्थित किया है, वह
उस वातावरण के अनुरूप रहा है ।
साथ ही दाशानेक चिन्तन की उन
भावनाओं की आभा भी यहा मिलती है
जिन भावनाओं के साथ प्रसादजा का
आत्मोपेक्षा सवत्र फलकता है । विनु
कवि ने इस बात का ध्यान रखा है
कि वातावरण के अनुरूप ही प्रकृति
के दृश्यो स ही प्रभाव प्रकट कराया
जाय तथा रहस्य निकाला जाय और
वसा किया भी है—

‘पूण प्रकृति को पूरा नीति है क्या भली,
अननति को जा सहन करे गभार हो
धूल सहश भा नाच चढे सिर ता नहा
जा हाँता उद्विन्न उसे हा समय म
उस रज कण को शीतल करने का अहो
मिलता बल है, छाया भी देता वहा ।
निज पराग को मिश्रित कर उनमे कभी
कर देता है उह मुगधित, मुदुल भी ।’

जहाँ उहाने जीवन के भौतिक विलास का
वर्णन किया है, वहा भी उह पयाप्त
सफलता प्राप्त हुई है । अकबर क
म-यनालीन विलासयुक्त राजमी वाता
वरण का भी एसा सुदर चित्र दिया
है जिसे देखकर हृदय वर्णन का दाव
दिए चिना गही रहता । यथा राजभवन
का यह वर्णन—

‘कल रहा था स्वच्छ मुविस्तृत भयन म
वृत्तिम मणिमय लता, भित्ति पर जा बनी
नव वसत सा उहें विमल आनोच हा

मुक्तापनमानिनी याता या यही
 शुभम बली का माना भी भूमणी
 सारन संनयार हर दुमयय क।
 मुनि पया से सब कनिवी निनागणी,
 वृष माताए गजर भी सब हा गर्द ।
 प्रगाओ नारीचरित्र प गिन्द पारगा भ ।

तत्परंभा भावा व धाउ द्रमव जा निव
 उहाउ उपस्था किए व प्रनाम मयांग
 की ली सीमा याता है सभवन जिम
 सक प्रापुनिव काव्य का काई नि पा
 गरी पईचा । कृता न ह्यामा प्रगा की
 यहा पवट सबल रूप स नारा क प्री
 यही भा है जिस वे उपस्थित करने म
 मयत सिद्धहस्त मा गण है । जब
 बगम महाराणा स मुफ हो नवाय व
 पास पदुवी धोर मजार व स्वर
 म नवाय ने यह कटा कि 'वह गांधार
 व मुंदर दास पर दौत न लगा सवा'
 ता भारताय गारा वा, धोर ली नारा
 का जा केवल एक से प्रेम करती है
 क्या स्थित हो सक्ता है इसका जसा
 मफल चित्र प्रसाद न चिन्तित किया,
 सभवत वह भावना का ऐसा जीवित
 कियमय प्राणवान् रूप है जिसे बार
 बार देखने व लिये जी तरसता रहेगा—

'कपी सुराहा कर की छलकी वाहणा
 दख ललाई स्पन्द मधुक बपोल मे,
 विसक गई सर स जरतारा भोङ्गनी
 बकाबाभ सा लगी विमल आलोक बो,
 पुञ्जमन्तिता वेणा भा धरि उठी ।
 आभूगण भी भ्रं भन कर बस रह गए ।
 मुमन कुज म पचम स्वर से तीप्र हो
 बोल उठी वाणा—'जुग भा रहिए जरा
 जिसकी नारा छोडा जाकर शत्रु स,
 स्वीकृत हो सादर धरने पति स भला
 वह भा बाले, तो जुप होगा कौन फिर ।'

अमरसिंह का रूपवर्णन भा कम गठा हुआ
 नहीं है । वह भा राजपूत है सच्चा
 राजपूत—

'रात्रूत वा, उगना बनी बाग रहा
 जैनी भी भा पड़ा ठीक यगा बहा
 पड़ा भुज मा व जा धीरे मान की
 तनवाग वा भा। उग या रहा ।

हरम क तावक धोर मयगिण वा द्र द्र मगन
 भी मना गेन वा धाया तमा गानि
 विव है—

'मुभा विचरिनी न माता रग भान म
 यगा ह्या मकी रल व विनु की,
 मुगत निपादा चंद्र उतिन मयगा ह्य
 मुनि पत्न वा उग जात मा कट क।'

धरहरणा वा मुदर विधान भा म व म्याना
 पर दम रगा म मो लत उग म विवा
 गवा है । पर मगाय स्वत यही
 उगदिया विवा जा रहा है—

प्रसर धोम वा ताग मिगाता या यहा
 छाटा वा शुचि स्या हटाता प्राभ वा
 जग छाटा मधु शत्रु, हो एक ही ।'

रचना में यही कटी द्विरीतातान काव्य
 नीरसता दात पक्या है । यही बात
 चीत न मुगलमानों द्वारा उद्गु शक्यता
 धोर वही गद्यत हिंदी शक्यता वा
 प्रयोग पठकनवाता बात है । किनु
 वातलाप म जहाँ तक भावाभिव्यक्ति वा
 सबष है, यह काफी चुस्त धोर दुस्त
 है । यही राष्ट्रियता की भाषा वा
 ध्यान भी कवि की है । समाज व
 सधुर महाराणा को जिस रूप म
 उ होने उपस्थित किया वह निरक्षय हा
 कवि वा विशाल रूप यत करता है
 धोर यह स्पष्ट बतता है कि प्रसादजी
 समाज से विरक्त रहनेवाले नहीं,
 समाज वा ध्यान रखनेवाल व्यक्ति थ ।
 उ होने भारतवासियों को इन बात के
 लिय प्रारत किया कि महाराणा जते
 व्यक्ति वा आदेश मानकर चलें ।

उ होने एक कलाकार की तरह आस्था उप-
 स्थित किया है, जिसम उनके वे सभी

रूप स्पष्ट दोख पडते है, जो बाद मे विकसित हुए। वे नेता नहीं, प्रचारक नहीं, चिंतनशील साहित्यिक थे और इस रूप की सफात अभिव्यक्ति उस युग मे भी व कर सके, यह महत्व की बात है।]

महार्द्र = चि०, ४१।

[म० पु०] (म०) प्रलय क समय शवर का क्रोडित रूप।

महाशक्ति = का०, १६५, २०२। चि०, १५४।

[सं० स्त्री०] (सं०) बहुत बडा शक्ति। देवी का क्रोडित रूप।

महा शिशु खेल = का० कु०, १०।

[म० पु०] (हि०) महत्वशाली बालका का खेल।

महाशून्य = का०, २७३।

[वि०] (म०) आकाश।

महासगीत = का० कु०, ३।

[सं० पु०] (सं०) महासगीत से परिपूर्ण, ईशनीला जय प्रहृति का गान।

महासमीर = का०, १५७।

[सं० पु०] (सं०) वायु का महान् वगमय रूप, भ्रमा।

महिना = ल०, ६६।

[सं० स्त्री०] (म०) कई माह।

महिमा = व०, ३१। का०, १८१, २२२, २८३,

[सं० पु०] (सं०) २०। चि०, ३०, १५३। ऋ०, ४१।

म०, १७।

महता। प्रभाव। आठ सिद्धिया मे स एक।

महिमामण्डित = म०, ८।

[वि०] (सं०) महिमा स शोभित।

महिला का०, २७८।

[सं० स्त्री०] (सं०) मने घर की स्त्री।

महिषी = चि०, २३।

[सं० स्त्री०] (सं०) भस। रानी।

मही = का०, ४। वि०, १६२।

[सं० स्त्री०] (सं०) पृथ्वी। नदी।

[सं० पु०] (हि०) मठा।

महेश = चि०, १५६।

[सं० पु०] (म०) महादेव।

महोत्सव = चि०, १३४।

[सं० पु०] (सं०) बडा कमल।

महोत्सव = का०, १६८। चि०, ७२। ल०, ७६।

[सं० पु०] (सं०) बहुत बडा उत्सव।

महो = चि०, १६१।

[क्रि० सं०] (ब्र० भा०) 'गहना' या 'मयना' क्रिया का सामान्य भूत रूप।

माँ = का०, १७६, १८०, २१५, २१६,

[म० स्त्री०] (हि०) २३६, २४४। ल०, ५४।

माता, जननी।

मोंग = श्री०, ४६। का०, २७०।

[म० स्त्री०] (हि०) मागने का क्रिया या भाव, माँगना। प्राथना या आग्रहवाला यात। वाली का कधी स विभक्त करने पर उनक बीच म बनी हुई रखा, सीमत।

माँगता = आ०, ६६। ल०, ४२, ७०।

[क्रि० सं०] (हि०) मागना क्रिया का सामान्य भूत रूप।

माँगता हूँ = ल०, ४४।

[क्रि० म०] (हि०) मागना क्रिया का वतमानकानिक रूप।

माँगती = श्री०, ५५। का०, १६५। ल०, १६।

[क्रि० सं०] (हि०) दे० 'माँगता'।

माँगना = म०, ६।

[क्रि० सं०] (हि०) याचना करना, प्राथना करना। चाहना।

माँगने = ल०, १७।

[क्रि० म०] (हि०) मागने व लिये उल्मुक होना या आगे बडन का भाव।

माँझी = क०, १०।

[सं० पु०] (हि०) मल्लाह, खेनवाला।

[माँझी साहस है —स्क०गुप्त म सखिया का यात। प्रमाद संगीत म पृष्ठ ६२ पर सबलित। देवसेना का स्कंदगुप्त के प्रति प्रमरहृष्य का उद्घाटन होने पर सखिया ठिठाली के स्वर म गान

गा रहा है। यानिया ने भरी हुई कुम्हारी जजर नीचा है, फलम वाले यादल छाए हैं, वर्षा की झड़ी है, प्रेम नदी में जल एरत्र नहीं जाल बिछाए हैं ऐसे भ्रममय दुःखिन की घटा में घुम अपने शक्ति की मापागी। प्रेम के अनजान तट की भावणा मदमत्त सहरें धावाश तब उछल रहा है ऐसी स्थिति में क्या प्रेम में ध्यानवाला विपत्तिया के धपोठा का बरदाश्त कर सकोगी। क्या इतना साहम है कि एमी भयंकर बला में नीचा पोलोगी]

मौस = का० १८।

[स० पु०] (प्र० भा०) शरीर का हृदिया के बीच का मुलायम और लचीला पदार्थ, गोस्त।

मौसपेशियाँ = का०, ४।

[स० ख०] (स०) शरीर के अंदर का मांसल भाग।

मौसल = का० १२५ १४७ २६४।

[वि०] (स०) मांस से भरा हुआ। मोटा ताजा, पुष्ट।

मौहि = चि०, ४६।

[अ य०] (अ० भा०) मध्य में, बीच में।

मातलि = चि० ५६।

[स० पु०] (स०) इंद्र के सारथा का नाम।

[मातलि—दुग्धत, शकुतता और भरत के प्रागमन का सूचना देनेवाला।]

माता = का० पु०, ६०३। चि० ६२। अ०,

[स० खी०] (हि०) ३४। प्र० १६।

मा, जननी। आदरणीय स्त्री।

मातापि = का०, २७८।

[स० खी०] (हि०) माता का बहुवचन रूप।

माति = चि०, ३ १८०।

[पु० त्रि०] (अ० भा०) मतवाला होकर, मदो मत होकर।

मातो = का०, ७०।

[वि०] (हि०) मतवाला, मस्त, मदामत्ता।

मातु = चि०, ४१, १८२।

[स० खी०] (अ० भा०) दे० 'माता'।

माती = चि०, १६।

[वि०] (हि०) मगमा, मग्गा।

मातृरज = का० १४२।

[स० पु०] (स०) माता होने का गुण।

मातृत्वशोक = का०, १४२।

[स० पु०] (हि०) मातृरज का भार, मातृरज का शोक।

मातृभूमि = स०, ५४।

[स० खी०] (स०) वह भूमि या दश जड़ी जिनका जन्म हुआ हो।

मातृभूमिद्रोही = चि०, ६७।

[वि०] (स०) मातृभूमि से द्राह करनेवाला, दश दाही।

मातृमूर्ति = का०, २४७, २४८।

[स० खी०] (स०) माता की मूर्ति।

मात्र = अ०, ५८। प्र०, १८। ल०, ५१।

[अव्य०] (स०) केवल।

मादक = अ०, १२। का०, ७३, ११५, १५६,

[वि०] (स०) १८३, १८६, २६१।

नशा लानेवाला, नशीला।

मादकता = अ०, २६, ३३। का०, ७० १२२,

[स० खी०] (स०) १२५ १२८, १२६, २२३, २३७

२६३। ल०, २०, ६०।

नशा का भाव, नशीलापन, मस्ता।

मादन = का०, २०३।

[वि०] (स०) मादक, मस्त करनेवाला।

माधव = का०, ७२, ८६, ६७, २६२। चि०,

[स० पु०] (स०) ५।

विष्णु। वसंत ऋतु। माधवा, माधविका।

माधवी = का०, ४७ ६७ ८८। चि०, ५७।

[स० खी०] (स०) ल०, ४४।

सुगंधित फूलोवाली लता। एक प्रकार

की शराब। दुर्गा।

माधविका कुसुम = अ०, २६।

[स० पु०] (स०) माधवा लता का फूल।

माधवीकुज = अ०, १८।

[स० पु०] (स०) वह कुज जो माधवी लता से बना हो।

माधवी लता = चि०, ६०।

[सं० स्त्री०] (मं०) माधवा नाम की सुगंधित फूलावाली लता ।

माधुरता = चि०, १६२ ।

[सं० स्त्री०] (मं०) माधुय, मिठास । सुदरता ।

माधुरी = का० कु०, ११४ । का०, ४७, ७३,

[सं० स्त्री०] (सं०) २२२ । चि०, १७०, १३६ । ऋ०, ३५, ६३, ६४ । ल०, २६ ७१, ७६ । मिठास । शोभा । शराब ।

माधुरी सी = क०, १८, २७ । का० कु०, ४७, ८१,

[वि०] (सं०) ६८ । का०, ६३, ११७, १४७, १६२, १६३, १६६ । चि०, ४६, १०२, १०५ । १४२, १७०, १८६ । ऋ०, ३३, ७७ ।

माधुरा के समान, मधुरता सी ।

मानकर = का०, १७१ ।

[पूर्व० क्रि०] (हि०) स्वीकार करके, कल्पना करके ।

मान को = चि०, ६८ ।

[सं० पुं०] (सं०) समान को, प्रतिमान को ।

मान चल्नूँ = का०, १६० ।

[क्रि०] (हि०) 'मानना' क्रिया का बतमानकालिक रूप ।

मानत = चि०, ३२, १०५ ।

[क्रि०] (ब० भा०) मानना क्रिया का सामान्य बतमान का रूप ।

मानती = का० कु० ३३ । ल० ७१ ।

[क्रि० सं०] (हि०) 'मानना' क्रिया का भूतकालिक रूप ।

मानती सी = का०, ६० ।

[क्रि० वि०] (हि०) कल्पना करती हुई के समान ।

मानत = का० कु०, ५, ६७ । का०, ८८ १६१ ।

[क्रि०] (हि०) ल०, ५३ ।

सहमत होते । कल्पना करते । स्वीकार करते ।

मानदंड समान = का० कु०, २६ ।

[वि०] (हि०) नापने के दंड के समान । मापक के समान ।

मानमोचन = का०, १८४ ।

[सं० पुं०] (सं०) रुठे हुए को मनाने या प्रसन्न करने का भाव ।

मान लिया = श्री०, ५ ।

[क्रि०] (हि०) कल्पना किया । स्वीकार किया ।

[मान लूँ क्यों न ?—'विशाख' में प्रेमानंद का गान । 'प्रसाद संगीत' में पृष्ठ ३३ पर सकलित । जिसमें पूरी करणा भरी हो श्रीर जो दमा का दानी हो, विश्व बदना का जो मानद आह्वान करता हो, जिसे तृण तक में सम सत्ता का का बोध हो, मोहहीन, प्रमी, द्वेषरहित सबमाय ऐसा व्यक्ति चाहे नर हो या चिन्नर, चाहे कौक्ष भी क्यों न हो उसे भगवान क्यों न मानू ।]

मानव = श्री०, ४६ । का० कु०, ६० । का०,

[सं० पुं०] (सं०) ५८, ७६, १६४, १६६, २४३, २४४, २५०, २७७, २८६, २८६ । चि०, १०३, १५५ । ऋ०, ४१, ६६ । प्रे०, ४, २५ । म०, ७ । ल०, ३०, ४७ । मनुष्य, भ्रादमी, मनुज ।

[मानवकुमार—दे० कामायनी के चरित्र और कामायनी की कथा ।]

मानव जाति = का० कु०, १२५ ।

[सं० स्त्री०] (हि०) मनुष्य वर्ग ।

मानवता = श्री०, ६१ । का० कु०, ८६ । का०,

[सं० स्त्री०] (सं०) ५८, ५६, १२४, १२६ । ऋ०, ३३ । ल०, २३, ७७ ।

मनुष्य का वह धर्म जिससे वह मनुष्य कहा जाता है । मनुष्यता, मनुजत्व इति सानियत ।

[मानवता का विकास—सर्वप्रथम 'हंस' मई १९३० ई० में प्रकाशित । कामायनी श्रद्धा संग का 'ढरो मत धरे श्रमृत सतान' से अत तक का अर्थ । दे०—कामायनी की कथा ।]

मानवता धारा = का०, १३४ ।

[सं० स्त्री०] (सं०) मानवतारूपा धारा या प्रवाह, सस्त्रुति का सूचक शब्द ।

मानवती = का०, १२७ ।

[सं० स्त्री०] (सं०) वह स्त्री जो अपने प्रेमी या पति से मांग करे, मानिना।

मानव देव = का० पु० ८६।

[सं० पु०] (सं०) मनुष्या के देव।

मानवी = का० पु०, १५०।

[वि०] (हिं०) राजा मनुषी के दाया या बाया।

मानस = श्री० २८, ६५, ६८ ७७। का० पु०

[वि०] (सं०) ६६ ६०। का०, ५० ५६, १०१, १०५, ११३, १२० १४७ २२१, २२५, २८२, २८४ २८६ २६०। चि०, १४३, १५३, १७७। म० ११, १७, ६६ ७७। ल० ४३ ७१। मन से उत्पन्न, मन से विचारा हुआ। मन के द्वारा।

[सं० पु०] हृदय। मानसरोवर। कामदेव।

[मानस—सर्वप्रथम 'इदु' कला १ किरण ३, प्राशिवन १६६६ ई० म प्रवाशित और 'चित्राधार मे 'पराग' क अतगत पृष्ठ १४५ पर सकलित। हे मानस तुम मानस की भाँति विमल और विस्तृत हो। तुम्हारे बाच अग्रणित सहर्षे जो मनोहर हैं, उठती रहती हैं। वे सुधा सम हैं। तुम्हारे किनारे बठकर मनुष्य तुम्हारे तरणों से निकली अनोखी ध्वनियों को सुनता है। चिंता, हृष, विद्या, श्रौच, निर्वेद लोभ, मोह, ध्यान आदि मनोभावों की तरणें तुमम उठना हैं। इनम आशा और मुक्ता के दाना का खान भरा पडी हैं जिसे सानद कल्पना का मराल चुगता है।]

मानस जलधि = ल० १०।

[सं० पु०] (सं०) हृदय रूपी सागर। अग्रगण्य मन।

मानस युद्ध = का० पु०, ८।

[सं० पु०] (सं०) अतस्तल मे बननेवाता युद्ध। सकल्प और विकल्प की स्थिति।

मानस शतदल = का० २२३।

[सं० पु०] (सं०) मानसरोवर से उत्पन्न कमल। हृष कमल।

मानस सर = का० पु०, ८३।

[सं० पु०] (सं०) मानसरोवर, हृषक्या तासाय।

[मानसरोवर—प्राग पान के निरुद पवित्र फाल।]

मानस सागर = श्री०, ८।

[सं० पु०] (सं०) हृष सागर।

मानसिख = का० पु० ८। का०, १६६, २६६।

[वि०] (सं०) प्रे०, २३।

मन से उत्पन्न मन गर्वधी। मस्तिष्क ग्रन्थ।

मानसी = का० २६४।

[सं० स्त्री०] (सं०) मन म ही की जानेवाली पूजा। विद्या दयी का एक नाम।

मानसिंह = चि०, ६६।

[सं० पु०] (श्र० भा०) समान को।

मानसुँ = चि० १४३, १५४।

[प्रव्य०] (श्र० भा०) मानी, जनु।

माना = श्री०, २०। का०, १६० १६१।

[सं० पु०] (सं०) एक प्रकार का मीठा, नियास।

[त्रि०] (हिं०) 'मानना' क्रिया का भूतकालि रूप मान लिया। स्वीकार किया।

मानि = चि०, ५०।

[क्रि०] (श्र० भा०) मानकर।

मानिक = ल०, ७२, ७८।

[सं० पु०] (म०) एक प्रकार का रत्न। एक व्यक्ति का नाम।—द० बाफूर।

मानिक मंदिर = श्री० २१।

[सं० स्त्री०] (सं०) मानिक क समान। साल शराब। यह शराब जो मानस पात्र म ढाँधी गई हो।

मानित = चि०, १५८।

[वि०] (श्र० भा) मानवती, मान करनेवाली। रुठने वाली।

मानिहोँ = चि० ३३।

[त्रि० सं०] (श्र० भा०) मानूँगा। स्वाकार करूँगा।

मानो = चि०, १६४।

[वि०] (हिं०) अहंकार। समाहित। मनस्वी।

- मानूंगा = वा०, १८ ।
 [क्रि० ग] (हि०) स्वीकार कहेगा ।
- माने = वा०, १६२ ।
 [घ्रा०] (हि०) जन, गोया ।
- माने = चि०, १०६ ।
 [क्रि० स०] (ब्र० भा०) मान ले । जान ले । प्रेरणाधक रूप ।
- मानो = का० कु०, ६७ । वा, २८, २६,
 [क्रि०स०] (हि०) २०, १२१, २१६, २६१ । चि०, ६१ ।
 प्रे०, १३ । ल०, ६०, ६८ ।
 स्वीकार करो, व पना करा ।
- मान्यो = चि०, ६६ ।
 [क्रि० स०] (ब्र० भा०) मान लिया ।
- माप = वा०, १०, १६ ।
 [सं० खी०] (हि०) मापने की क्रिया या भाव, नाप । नाप लेनेवाली वस्तु ।
- माफ = चि०, १८३ ।
 [वि०] (प्र०) क्षमा ।
- माया = ग्रा०, १८, २४, २५, ७६ । वा०,
 [सं० खी०] (स०) २७ । का० कु० १, २६, ४६ । वा०,
 २८, ३३, ६६, ७०, ७३, ७५, ८३,
 ८७ ६०, ६७, १०४, ११२, १२२,
 १२६, १२७, १६६, १७८, १८४,
 १८६, २००, २०८, २२०, २२३,
 २२७, २३८, २४६, २६२, २६४ ।
 चि०, २६ । ल०, १४, १५, ५८ ।
 ईश्वर का वह कल्पित शक्ति जिसमे
 समस्त सृष्टि मूली हुई है । सृष्टि की
 उत्पत्ति का मूल कारण ।
- मायाजाल = वा०, ६३ ।
 [सं० खी०] (हि०) मायास्त्री जाल, बधन म डालने
 वाली माया ।
- माया ममता = का०, ५७ ।
 [सं० खी०] (सं०) माया और ममता, माया मोह ।
- मायामयी = अ०, ३८ ।
 [वि०] (सं०) माया से युक्त, माया से परिपूष ।
- मायाराज्य = वा०, २६५ ।

- [सं० पु०] (सं०) माया का राज्य, माया की 'यापवर्त'
 और उसका सबपर जमा हुआ प्रभाव ।
- मायारानी = वा०, १५६ ।
 [सं० खी०] (हि०) मायास्त्री रानी, सबपर शासन
 करनेवाली माया ।
- मायात्रिनी = वा०, १५३, १६६ ।
 [सं० खी०] (हि०) छन करनेवाली नारी । जादूगरिनी ।
- मायास्तूप सा = ल०, ७६ ।
 [वि०] (सं०) माया के रूप के समान । मोहक किंतु
 अस्थायी ।
- मार = ल०, ७१ ।
 [सं० पु०] (सं०) कामदेव । विष्णु ।
- मार राना = का० कु०, १०६ । चि०, १०७ ।
 [क्रि०] (हि०) किसी व द्वारा चोट या घाघात पहु
 चना, पीटा जाना ।
- मारग = चि०, १०५, १६४ ।
 [सं० पु०] (ब्र० भा०) रास्ता, पथ । भृगुशिरा नक्षत्र ।
 वस्तुरी ।
- मार छवि = चि०, २२ ।
 [सं० खी०] (सं०) कामदेव की छवि या शोभा ।
- मारुत = चि०, १८५ ।
 [क्रि०] (ब्र० भा०) मारुता है । मारना क्रिया का पूव-
 कालिक रूप ।
- मारना = का०, १६ ।
 [क्रि०] (हि०) प्राण लेना, वध करना । पीटना ।
 पछाटना ।
- मार सों = चि० ६५ ।
 [वि०] (ब्र० भा०) कामदेव व समान । बहुत अधिक सु दर
 तथा मादक ।
- मारि = चि० ५३, ६६ ६७ ।
 [क्रि० स०] (ब्र० भा०) मारना' क्रिया का पूवकालिक
 रूप, मारकर ।
- [सं० पु०] कामदेव ।
- मारुत = का० कु०, १३, ३४, ११३ । का०,
 [सं० पु०] (सं०) १२७ । चि०, १५, २४, १८२ ।
 अ०, २१ ।
 वायु पवन, समार ।
- मारुतवश = वा० ८ ।

[क्रि० वि०] (स०) वायु के वशीभूत होकर, हवा या वलाग के वश से।

भारत सग = चि०, १७०।

[क्रि० वि०] (स०) पवन के साथ।

भारे = का, १०३। ल०, ७८।

[क्रि० स०] (हि०) मारना' क्रिया का पूर्णभूतकालिक रूप।

भार्गी = ल०, ४६।

[क्रि० स०] (हि०) मारना क्रिया का प्रानार्थक रूप।

भार्ग्य = का० कु० १४। का०, ४६, ४६, ४६, ४६।

[सं० पु०] (स०) १०६ १७० १६२ १६३। प्र०, १४ १८। म०, ३ ४।

रास्ता पथ। मृगशिरा नक्षत्र। विष्णु।

भार्यादहें = चि०, ४८।

[सं० स्त्री०] (ब्र० भा०) मर्यादा को। सदाचार तथा प्रतिष्ठा को।

भारथो = चि०, ४२।

[क्रि० स०] (ब्र० भा०) मार डालना, मारना क्रिया का भूतकालिक रूप।

भाल = का०, ६३, १६६। चि०, १४३ [सं० पु०] (स०) १६६। ल०, २५।

धन। सामान, क्रयविक्रय की वस्तुएँ।

उत्तम सुस्वादु भोजन। माला।

भालति = चि० ५ ५८।

[सं० स्त्री०] (ब्र० भा०) एक तला विशेष का नाम और उसका फूल। चादनी रात्रि। जायफर।

भालतिथी = श्रा० ३६।

[सं० स्त्री०] (हि०) मालती का बहुवचन रूप। दे० 'मालति'।

भालती = श्रा०, ४८। चि०, ५५। भ०, २४।

[सं० स्त्री०] (स०) प्र०, ४। ल० ५६।

दे० 'मालति'।

भालतीकुज = प्र० ४।

[सं० पु०] (सं०) मालता का कुज या मालती लता के पिरा हुआ स्थान।

भालती मुकुल = ल०, २७।

[सं० पु०] (सं०) माननी का कनी।

माला = श्रा०, ११, १६, ५१, ६०। क०, [सं० स्त्री०] (सं०) १३। का० कु०, १०, ३६, १०४।

का० १३, ६७ ११६, १२१, १६८।

वि० १ १८, ३५, ११, १८, ५६

७०, ११४ १६०। भ०, १७, २४,

५४। प्र०, २। ल०, ४५, ५७, ४८,

५६।

श्रेया, मरती। हार। समूह।

मालाचवरी = प्र०, ६।

[सं० स्त्री०] (हि०) चरवा नामक मृग का समूह।

मालाचर से = म० २०।

[वि०] (हि०) माला बनानेवाले के समान। हार बनानेवाले की तरह।

मालायें = श्रा० ७७। का० १३। म०, १६

[सं० स्त्री०] (हि०) २०।

माला का बहुवचन, दे० 'माला'।

माला सी = का० ६८, २२५। भ०, ७६।

[सं० स्त्री०] (हि०) माला के समान। किसी का प्रिय बन जाने का भाव।

मालिका = भ०, ६७।

[सं० स्त्री०] (सं०) माला बनानेवाला स्त्री, मालिन। श्रेया। एक धातुपत्र विणय।

मालिका सी = चि०, १०६।

[वि०] (सं०) मालिन के समान। श्रेणियों के सदृश।

मालिनि = चि० १५०, १५५।

[सं० स्त्री०] (ब्र० भा०) माली की स्त्री। माला बनाने वाली स्त्री।

मालिनि तरल तरंग = चि०, ६२।

[मं० स्त्री०] (ब्र० भा०) मालिनी नामक नदी में उठनेवाली सुंदर लहर।

मालिनी = चि०, ४५, ५६। प्र०, २।

[सं० स्त्री०] (सं०) वह नदी जिसके तट पर मेनका के गम से शकुंतला पदा हुई थी। एक कर्णावृत्त।

मालिन्य = चि०, ४७।

[सं० पु०] (सं०) मलीनता, मलापन। अथवा।

माली = का० कु०, २४१। चि०, १५३, १७७।

[सं पु०] (हि०) प्रे०, २।

बाग क पीमा को देखभाल करने और सोचनेवाला -यक्ति, वह व्यक्ति जो पीये लगान और रक्षा करने में निपुण हो। एक जाति विशेष।

मालूम = म०, ४।

[वि०] (अ०) जाना हुआ। नात।

माह = चि०, १०, ४२।

[अ० य०] (अ० भा०) मध्य, बीच।

[म० पु०] (फा०) महीना।

माहि = चि० २२ ३०, ३५ ४२, ४६, ४८,

[अ० य०] (अ० भा०) ४६, ५३ ५४, ५६ ५७, ५६,

६० १४५ १४७ १४८ १५२ १५५,

१५६, १५८, १५९, १६४, १७०,

१८१।

द० 'माह'।

माहीं = चि०, ६८, १०७ १४५।

[अ० य०] (अ० भा०) द० 'माह'।

मिटना = वा०, १७५। प्रे०, १४, १७।

[क्रि०] (हि०) मिटना क्रिया का सामान्यभूतकालिक रूप।

मिटना = का०, २५०। ल०, ४२।

[क्रि० अ०] (हि०) नष्ट होना, न रह जाना।

मिटाती = क०, १७।

[क्रि०] (हि०) 'मिटाना' क्रिया का सामान्यवर्तमान रूप।

मिटा देना = वा० कु०, १४।

[क्रि०] (हि०) द० 'मिटाना'।

मिटाना = वा० कु०, ८७। वा०, ५०। म०, ४।

[क्रि० सं०] (हि० सं०) नष्ट कर देना। न रहने देना।

उपरास या चौपट करना।

मिटो = का० ५१। प्रे०, १८।

[क्रि०] (हि०) मिटना क्रिया का भूतकालिक रूप।

मिट्टी = वा० कु०, ११०, १२१। प्रे०, १७,

[सं० स्त्री०] (हि०) १८।

वह भूरभुरा पदार्थ जो पृथ्वी तल पर

प्राय पाया जाता है धूल। मृत शरीर।

मिट्टी होना = वा० कु०, ११०।

[पुढा०] (हि०) बरबाद हो जाना।

मिट्ट्यो = चि०, ५४।

[क्रि०] (अ० भा०) 'मिटना' क्रिया का पुराभूतकालिक रूप, मिट गया।

मिठी = वा० कु०, ४५।

[वि०] (हि०) मधुर। धीमी, मध्यम श्रेणी की, मद्धिम। प्रिय।

मिठी मिठी = ल०, ७०।

[वि०] (हि०) धीमी धीमी।

मिठोहें = चि० ५६।

[क्रि०] (अ० भा०) मीठा है।

मित्र = वा० कु० ३१, ४३, ४५। वा०, १४,

[सं० पु०] (सं०) ३६, ११४। चि०, ४२, ६२। प्रे०,

६, १०, २१।

सखा, दोस्त। वह जो मुबदुख दोनो

म समान रूप से सहायक हो।

मित्रता = प्रे०, ६।

[सं० स्त्री०] (सं०) मित्र हान का भाव, घम। मित्रत्व।

मित्ररूप = प्रे०, १०।

[सं०] (हि०) मित्र के रूप या वचन।

मित्रर = प्रे० ६, १०।

[सं० पु०] (सं०) श्रेष्ठ या धनिष्ठ मित्र।

मित्रा = वा० ११४। प्रे०, २०।

[म० पु०] (हि०) मित्र का बहुवचन।

मिथिलाधिप खली = वा० कु०, १००।

[म० स्त्री०] (सं०) मिथिला देश के राजा की पुत्रा, (जानका)।

मिथ्या = आ०, १६। वा० कु०, ८५। वा०,

[वि०] (सं०) १६६। चि०, १०३। ल०, ७८।

असत्य, झूठ।

मिथ्या चल = वा०, २४०।

[म० पु०] (सं०) वह शाक्त जो अस्थायी या नश्वर है।

मिथ्याभाषी = क० १०।

[वि०] (म०) झूठ बोलनेवाला।

मिलकर = आ०, ४२। का० कु० ११, ३८।

[पुव० क्रि०] (हि०) का०, १७६। ल०, ३५।

मिलना क्रिया का पुवकालिक रूप।

मिलके = का०, ११०, ११६।

[पूर्व० क्रि०] (हि०) मिलकर।

[मिल जाओ गले—सर्वप्रथम इट्टु कला ६, किरण ४५, अक्टूबर, नवंबर १९१५ सयुक्ताक म प्रकाशित तथा कानन कुमुम म पृष्ठ ८२-८३ पर सक्तित । कुमुमित कानन म जो सौंदर्य का छाया विराज रहा है यह तो तुम्हारा ही प्रति बिंब ह । अपनी छाया मे तुम मुझे क्यों मुनमा रह हा, जग की वृत्तिमता का रूप चाहे वह किना ही सुंदर और उत्तम क्या न हो वह बिना तुम्ह पाए उमम नहा भूल सक्ता । जिस भ्रमर का नए कमल का परिमल मानमरुपी सर म मिल गया है वह कुरवक व फूल पर (षटसरया का फूल) वसे मुख हो सक्ता है । चाहे भल ही लाग घुणा का पात्र समर्भे एस नाच और धमडी जाया का हम परवाह नहीं क्याकि तुम्हारा आविबल छाव भरे हृदय पर छा गई है । मन मुझे इधर उधर वृत्तिम सौम्य म मन उलझाया । मी धोर दला धोर भावर गल स मिल जाओ ।]

मिलस = वि० १६० ।

[प्र०] (५० भा०) मिलने की क्रिया करना; मिलते हैं ।

मिलता = भा०, ३१, ४४ । का० कु० ८० ।

[प्र०] (हि०) का० ६२, १२४, २२५, २७० ।

॥०, ११ ।

भैरू हाता प्राप्त हाता ।

मिलना = भा० ४८ । का०, १७ । का० कु०,

[प्र० घ०] (हि०) ३८ ।

। माया त्रिया का गामाय वन मान ३७ ।

मिलते = भा० ४४ । का० १४६ १६३,

[प्र०] (हि०) २४५ । म० ५० ।

०० 'मनता' ।

मिलना = भा० ७३ ३७, ५१, ५६ । का० कु०

[प्र० ३] (हि०) ४० ७५ । का० ८ ३६, ७३ ८२

८४ ८१ ६२ १७६ ७८ ७४५

२८६ २८३ । वि०, ८, २४ ३४

६०, १८१ । ॥०, ४५, ५६ । म०, १५, ४८ ।

सयोग । मेट । साक्षात्कार ।

[मिलन—सर्वप्रथम इट्टु कला ५, खड १, किरण ५, मई १९१४ म प्रकाशित, तथा 'भरना' पृष्ठ ५६ ५७ पर सक्तित । हमारे श्रोत्र प्रिय के मिलन से स्वयं धरती से, कोकिला का स्वर विपची व नाद से, मनवज पवन मकरद से, मधुप मायना कुमुम से मिल रहे है— हृदय में ऐसी तरल तरंग उठ रही है जिसमे चद्रमा उदय होने लगा है । फूल के भावर के समान आवाश म तारे शामा दे रहे हैं । चद्रमा अमृत तुटा रहा है । सक्त्र प्रनाश ही प्रवाश है और विश्व वभव स पूण है हृदय वीखा उल्लासपुवक पचम स्वर का प्रसार कर रहा है । शिशु मूछना का मादरता व आग पित्र का तान बेनुरा लग रहा है ।]

मिलनकथा = का०, १७७ ।

[घ० आ०] (हि०) बट कथा या याता जिसका सवय किमा व । मनन स हा । सयोग कइना ।

मिलना = भा०, १२ ६६ । का०, २० । का०

[प्र० घ०] (हि०) कु०, ७५, ८३, ६३ । का०, ८, ३३,

६८ ५५ ७३, ८१ ८६ ११२,

१३६, १५८ १६६, २११, २१४,

२२६ २३०, २४३, २५४, २६५,

२७७ २७३, २७८ २८८ । म० १०,

प्र० १०, ११ १५, १८, २४ २५

२६ । ॥०, ३० ३६ ४०, ५३, ५६ ।

म० ११ १३ ५०, ४८ ।

जुटा मिलवर एर हाता । अलग अलग

पनायो या प्राणुया का एव हाता ।

बीच का अंतर मिट जाना, गमान

।

[मिल रहे माते मधुकर—गवप्रथम इट्टु कला ४ किरण ३, मार्च १९१३ म प्रकाशित मकराशित क अद्यत बिना

घार म पृठ १८१ पर सकलित । मन मे मोद भर मदमस्त भँवर खिले हुए सुमनो स मिल रहे हैं, ठडो मोनो समीर चल रही है जा परागा से मिलने से एसी लगती है जम गुलाल बिखर रहा है । कमलकनी का पिचकारिया से वसत मकरद का बूँत बूँत वषा कर रहा है घोर घाम की ढाला पर वम हों पदीहे की यात मस्ती मे घमार की घुन गाए जा रही है ।]

मिला = क०, १५, ३०, ३१ । वा०, ८४, ८७, [क्रि०] (हि०) १८८, १९०, १९४, १९६, १९९ । ऋ०, ११ । प्र० १६ । ल०, १३, १८ ।

'मिलाना' क्रिया का ध्रुणभूत रूप ।

मिलाई = चि०, ५८ । ल०, ३४, ३५ ।

[सं० ली०] (हि०) मिलने का भाव या क्रिया, मिलाप करना ।

मिलाओ = का० कु०, ४० ।

[क्रि०] (हि०) 'मिलाना' क्रिया का रूप ।

मिलाते = का०, १६२ ।

[क्रि० स०] (हि०) 'मिलाना' ।

मिलाना = का० ६३ ।

[क्रि० स०] (हि०) एक वस्तु को दूसरी मे डालकर एक करना । ममिलिन या मिश्रित करना ।

मिलाने = आ०, १७ ५० । का० ६२, १३६ । [क्रि०] (हि०) प्र०, १० । ल०, ३०, ३४ ।

मिलन कराने के लिये ।

मिलाप = म०, १८ ।

[सं० पु०] (हि०) मिलने की क्रिया या भाव, मेल या सद्भाव होना ।

मिला ली = चि०, ४६ ।

[क्रि०] (हि०) मिला लिया, एक में कर लिया ।

मिलावत = चि०, १६७ ।

[क्रि०] (हि०) मिलाता है ।

मिलिंद = चि०, २२ । ऋ०, २६ ।

[सं० पु०] (सं०) भार, भ्रमर ।

मिलि = चि०, ३६, ४२, ४७, ५४, ६३, ७१, [क्रि० घ०] (हि०) ७७, १४३, १४५, १५०, १८०, १८६ ।

मिलकर ।

मिलित = आ०, १८ । वा० १८२, २८६ । [वि०] (हि०) चि०, ५, १८० ।

मिला हुआ, युक्त ।

मिलि राज = चि०, ७१ ।

[पूर्व० क्रि०] (हि०) सन राजा मिलकर ।

मिलिय = चि०, १५६ ।

[क्रि० वि०] (प्र० भा०) मिलन क लिए ।

मिली = का० कु०, ४२, ४६ । वा०, १२३, [क्रि०] (हि०) १२५ ।

चि०, ७४, १६३ । ऋ०, ५२ ।

ल०, ६० ।

मिल गई ।

मिले = आ०, ६३ । वा०, १४ । वा० कु०, ६३ । का०, ४१, ७३, २१६, २६५, २७१, २७८ । चि०, ३५, ५८, ६२, ६७, १८१ । प्र०, २६ । ल० २७ ।

मिल गए या मिल चुके ।

मिलेगा = क०, १४, २५ । का०, १३३ । चि०, १४, ३४ । ऋ०, ४८ । प्र० २५ ।

[क्रि०] (हि०) म०, ४ ।

मिलना' क्रिया का सामांय भविष्यत् रूप ।

मिलेगा = चि०, १७०, १८०, १८४ ।

[क्रि०] (प्र० भा०) मिला, मिल गया ।

मिश्र = का० कु०, १०७ । का०, १०, ३६, [सं० पु०] (हि०) ८४, १३६, २०७, २४७, २७१ ।

चि०, ११ । ल० ३२ ।

ब्राह्मणा का एक वग, मिसिर ।

मिश्रित = का० कु० ३६ । का० १४, १२६ । [वि०] (सं०) चि०, २२ ।

मिला हुआ ।

मौच = का० कु०, १० । का०, ६७ । चि०, [सं० ली०] (हि०) ६६ ।

भरण, मौन, मृत्यु ।

मौचं = वा०, १२७, २२१ ।
 [सं०] (हि०) 'मौच' का बहुवचन ।
 मौठ = वा० कु०, १०७ ।
 [वि०] (हि०) मधुर ।
 मौठी = का० कु०, १० । का०, १५०, २११,
 [वि०] (हि०) २३५ । ऋ०, ३२, प्र०, १६ ।
 मधुर । कौमल । मद ।

मौठी चाल = वा० कु०, ६६ ।
 [सं०] (हि०) मंद गत ।
 मौठी रसना = वा०, १५२ ।
 [सं०] (हि०) मधुर बोली । माठा जीभ ।
 मौड = ल०, २८ ।
 [सं०] (सं०) संगीत म स्वर बदलने का सुदर ढंग ।

[मौड मत रिंचे बीन के तार—प्रजातशत्रु का गीत जिसम पद्मावता ध्रुपती दुखा वस्था का बणन करता है । सबप्रथम माधुरा वष ७, लड २ सख्या ६, सन् १६२६ म प्रकाशित, प्रताद सगत मे पृष्ठ ७६ पर सकलित गीत । धरा निधय अंशुली जरा ठहर जा धीर पल भर के लिये धनुकपा कर द क्योकि मेरा मूछित मूछना का ग्राह प्रकट हा जाएगी जा निस्पद है । मूक वीण के तार फी छेड छेडकर विचलित मत कर क्योकि वह मेरा बरुगा मे द्रवाभून हो जाएगी और इसके स्वर का सतार हा समाप्त हा जाएगा । यह करुणामया वाणा मसक उठेगी और किसा हृदय का पाडा होगी और नगी व्याकुलता नाच उठगी जिस दलकर मेरे प्रिय पदे क उस पार व्याकुल हा उठेग ।]

मौडों = ऋ०, ३२ ।
 [ऋ०] (प्र० भा०) मौड का बहुवचन ।
 मौव = का० कु०, ७६, १५६ । वि० १७,
 [सं०] (हि०) १४१, १८५, १८६ । ल० ७६ ।
 मित्र । दोस्त । सखा ।
 मौन = वा०, १६७ । वि०, २३, १८६ ।
 [सं०] (सं०) ऋ०, ७२, ८४ ।

मधनी । बारह रातिया में से प्रतिम ।
 मौतार = म०, १६ ।
 [सं०] (सं०) बट्टा जैसा धीर गानाकार स्तम ।
 साठ या धरहरा ।
 मुँदती = झौ०, ७६ वा०, २६३ ।
 [प्रि०] (हि०) मुँ जाती, या मूँ सती ।
 मुँदते = वा०, ११६ ।
 [प्र०] (हि०) बद होना ।
 मुफता = वि०, ७०, १७३, १८१ ।
 [सं०] (हि०) मोता । मुता ।
 मुफ्त = व०, २१, ३१ । वा०, ५१ १८०,
 [वि०] (सं०) २१६, २८३ । ऋ०, २४, ६३ ।
 म०, ५ ।
 जिस मुक्ति मिल गई हो । बधन से छूटा हुआ । स्वतंत्र, स्वच्छद ।

मुक्त कठ से = वा० कु०, १२४ ।
 [वि०] (सं०) खुला जमान से बिना किमी सवाब या दबाव के, न्यतामूक वही हुई ।
 मुक्ता = झौ० २३, ३२ ३२ ३५ । का०,
 [सं०] (सं०) २२५ । वि०, २२ । ऋ०, ५१,
 ल०, ७८ ।
 माती ।

मुक्ता गण = ऋ०, २२ ।
 [सं०] (सं०) मोती का समूह ।
 मुक्ताफल शालिनी = म० १६ ।
 [वि०] (सं०) मोतियों के समान फलवाली ।
 मुक्तामय = ऋ०, ७२ ।
 [वि०] (सं०) मोती से भरा हुआ ।
 मुक्तामाल = वि०, ३३ ।
 [सं०] (सं०) मोती की माला ।

मुस्ति = वा०, १५७ १८०, २७६, २७० ।
 [म०] (सं०) ल० १३ ।
 मोच ।
 मुस्ति द्वार = का०, १७० ।
 [सं०] (सं०) माछ का दरवाजा ।
 मुकुट = झौ०, ६७ । वि०, ७१, ७५ । ल०,
 [सं०] (सं०) ७७, ७८ ।

देवताओं, राजाया आदि के शिर पर
रहनेवाला एक प्रसिद्ध शिराभूषण।

मुकुट मणिन = चि०, ६७।

[सं० पुं०] (त्र० भा०) मुकुट की मणियों। सवधेड
वस्तु या रत्न।

मुकुटवर = चि०, ५५।

[सं० पुं०] (सं०) अष्ट मुकुट। सु दर ताज।

मुकुट सा = वा०, १६८।

[वि०] (हिं०) मुकुट के ममान।

मुकुल = वा० कु, १३। वा०, २६३। चि०,

[सं० पुं०] (सं०) १८०। ऋ०, ६४। ल०, १६, ३५,
३७, ५६।

कोरक। पुण्य। शरीर। आरमा।

मुकुल मन = वा० कु०, १५। ऋ०, १६।

[सं० पुं०] (सं०) मनरूपी कली।

मुकुल माल = ऋ०, ६६।

[सं० पुं०] (सं०) कलियों की माला।

मुकुल सदृश = वा०, १६८।

[वि०] (सं०) अघखिले फूल के समान।

मुकुल सा = का०, ६०।

[वि०] (हिं०) अघखिले फूल के समान।

मुकुलित = वा०, १६६, २१७। चि०, १४७।

ऋ०, ८५।

[वि०] (सं०) अर्धविकसित। अघखिला।

मुकुर्ला = आ०, २६। का०, २६१।

[सं० पुं०] (सं०) > 'मुकुल'। (बहुवचन)।

मुकुर = का०, ४३, ४७, १३१, १४७, १७६,

[सं० पुं०] (सं०) २८४। ल०, २६।

दर्पण। शीशा। कली।

मुकुर अचल = ल०, ७६।

[सं० पुं०] (सं०) अचल रूपी शीशा।

मुस = आ०, २१, ४६, ६८। वा० कु०,

[सं० पुं०] (सं०) ८, १२, १११। का०, १०, १२, २३,

४५ ४६, ४७, ११४, १२१, १३२,

१३४, १३६ १४०, १६६, १७२,

१८३, १८४ १६६, २३३, २३८,

२७७। चि०, २, १४, २२ ४६, ५६,

५८, ६०, ६१, ६३, ६४ ६७ ७०,

७३, ७४, ६८, १०५, १३३, १५८,

१७४, १७८, १८८। ऋ०, ४६। प्रे०,

१२, १६, १८। ल०, ४६, ६६।

मुट। आनन।

मुस कन = चि०, १४६।

[सं० पुं०] (सं०) मुसहरी कमल।

मुस कमल = आ०, २३।

[सं० पुं०] (हिं०) मुसहरी कमल।

मुस चद्र = आ०, २७, ४१। चि०, ४६, १७६।

[सं० पुं०] (हिं०) ल०, २६।

मुसरूपा चद्र।

मुसचद्र जिभा = वा० कु०, ५। ऋ०, ५।

[सं० स्त्री०] (सं०) मुसहरी चन्पा का प्रकाश।

मुसपर = वा०, २५६।

[सं० पुं०] (हिं०) अघिक्करण कारक 'मुस मे'।

मुस फेरि = चि०, ६४।

[पुं० क्रि०] (त्र० भा०) मुह फेरकर, विरोधी भाव
प्रदर्शित करके।

मुसमडल = का० कु०, १०८। का०, १२६।

[सं० पुं०] (सं०) प्रे० ४।

चेहरा, मुसाकृति।

मुसर = वा०, २१६ २१७।

[वि०] (सं०) ध्वनियुक्त।

मुसरित = आ०, २६। वा० कु०, ८६। वा०, ८,

[वि०] (सं०) ११, १६, १८२, २५२, २७८, २६०।

ध्वनित, स्वरयुक्त।

मुस सदृश = वा० कु०, १०८।

[वि०] (सं०) मुस के समान।

मुस सिहयाल = का० कु०, १०५।

[सं० पुं०] (सं०) सिंह के बालक के सदृश मुख।

मुसाकृति = चि०, ७३।

[सं० स्त्री०] (सं०) मुसमडल, चेहरा।

मुख्य = वा० कु०, ६३।

[वि०] (सं०) प्रधान।

मुगल = म०, ३।

[सं० पुं०] (अ०) यवनो की एक जाति विशेष जिसने
भारत पर राज्य किया था तथा जो
मंगोलिया से आये थे।

मुगल अष्टाकाश मध्य = ११० कु०, १०८ ।
 [सं पु०] (सं०) मुगला व भाग्यवती आकाश म ।
 मुगलमहीपत = का० कु०, १०८ ।
 [सं पु०] (हि०) मुगलो के राजा ।
 मुगलवाहिनी = म०, २२ ।
 [सं स्त्री०] (हि०) मुगला की सेना ।
 मुगल साम्राज्य = वा० कु०, १०८ ।
 [सं पु०] (हि०) मुगलों का तथा उनके अधिन राज्य ।

मुग्ध से = वा० कु०, ६८ ।
 [वि०] (सं०) माहित के समान ।
 मुग्ध = क०, २५ । का० कु०, ४२ । वा०,
 [सव०] (हि०) १४८, १५४, १५८ १८४, १९७ ।
 ऋ०, ५२ ।
 में का एक रूप ।

मुग्धको = वा०, १६, २५, २८ । का० कु०, ५५,
 [सव०] (हि०) ८३ । का०, १५४ १६६, १६२,
 १८६ १९७ १९८ २१८, २१८,
 २३० २४२, २४३, २४४ २५६,
 २८७ । प्र०, १६, २०, २२ । म०
 १६ १८ । ल०, ३४ ३५ ३६, ४५
 ५६, ६६ ।
 (सं०) 'वम कारक' में

[मुग्धको न मिला है कभी प्यार—मररवता,
 वर्ष ३७, अक १, सख्या ५ मई-
 १९३३ में सवप्रथम प्रकाशित श्रीर
 लट्ट मे पृष्ठ ३४ पर सकलित देखिए
 'चिर लुपित कठ से लूम विपुल' शयो
 के प्रति सवप्रथम माधुरी वष ४
 राव १, सख्या १, १९२५ २६ मे
 प्रकाशित तथा प्रसात संगत मे पृष्ठ
 ६० पर मन्वलि अज्ञातशत्रु का गात-
 देखिए 'मलका का किस विना
 विरहिणी' ।]

मुग्ध पर = वा० कु० ७५ । का० १४८, २३६ ।
 [सव०] (हि०) भर पर ।
 मुग्धमे = व०, २७ । वा०, ८६, १६१ ।
 [सव०] (हि०) अधिचरण मे (सं०) ।

मुग्धसे = वा०, २५ । व०, २५ । वा०, १६८,
 [सव०] (हि०) २२४, २३७, २४३ । ल०, ३८ ।
 अधिचरण 'चरण' मे (सं०) ।
 मुग्धे = व०, १८, २६ । वा० ८५, ८६, १६०
 [सव०] (हि०) १६४ १६६, १६८, २२६, २२८
 २४३, २४७, २६१, २८६ । प्र० १५
 २१, २२ । ल० ३८, ३९, ६६, ७८ ।
 २० मुग्धको ।

मुग्धने = वा० ४६ । वा०, १८६, २३६ ।
 [क्रि०] (हि०) मोठ से घुग्ने की क्रिया ।
 मुग्धभरि = वि० ५ ।
 [क्रि०] (सं० भा०) प्रसन्न हाकर, मोठ मे भरकर ।
 मुग्धा = वि०, ५०, १६८ ।
 [सं स्त्री०] (सं० भा०) प्रसन्नता ।
 मुग्धित = का० कु०, ३३, ३६, ४३ । वि०,
 [वि०] (सं०) २४, ४५, ४६, १४३, १४५, १४६ ।
 प्रसन्न ।

मुग्धित = का० १३२, २१८ ।
 [वि०] (सं०) मुग्धा से युक्त । मुग्धावित ।
 मुग्धिन मन = वि०, ५५, ५६ १६३ ।
 [सं पु०] (सं०) कृषि का मन ।
 मुग्धिनर = वि० ५८ ।
 [सं पु०] (सं०) शत्रुहृदयि ।

मुग्धु = का० २०२ । ल० ७७ ।
 [वि०] (सं०) मुग्धु । मूर्धिन । मरणामस
 मुग्धुसा = का०, २०६ ।
 [वि०] (हि०) मुग्धु के सदृश । मूर्धित सा ।
 मुग्ध = वि०, १३६ ।
 [सं स्त्री०] (सं० भा०) २० 'मूल' ।
 [क्रि०] मुग्धकर ।
 मुग्धकर = वा०, १७५ ।
 [सव० क्रि०] (हि०) कुम्हला कर ।

मुग्धता = का० १७५ । ऋ०, ३३ । प्र० ३ ।
 [क्रि०] (हि०) ल०, ११ ।
 कुम्हलता ।
 मुग्धाहि = वि०, १५ ।
 [क्रि०] (सं० भा०) मूलत है ।

सुरम्भि = चि०, २४।
 [पूव० क्रि०] (श्र० भा०) सुरम्भा कर।
 सुरस्त्री = घा०, २६, २६, ३१। वा०, ७७,
 [सं० स्त्री०] (सं०) २६०, २६३। ऋ०, २८, २९।
 वामुरा, वयो।
 सुरि = ति०, ५६, १८८।
 [पूव० त्रि०] (श्र० भा०) सुराया त्रिया या एव रूप।
 मुडकर।
 सुसक्या = वा०, २८७। ल०, ११।
 [पूव० क्रि०] (हि०) सुसकावर।
 सुसक्यायन = वा० कु०, ४३। वा०, २६ ४७, ८७,
 [सं० स्त्री०] (हि०) १३०। चि० ५६ ७०, १८८।
 ल०, ७६।
 मुसकराहट।
 सुसक्याय = ऋ०, ४८।
 [पूव० त्रि०] (श्र० भा०) सुसकरा कर।
 सुसत्रयाती = घा०, १६, १७, ३५, ६४। वा०, ३६,
 [त्रि०] (श्र० भा०) १२८, १७८, २३६, २६४।
 मुसत्राती।
 सुसक्यानि = वा०, २८१।
 [सं० स्त्री०] (श्र० भा०) सुसकराहट।
 सुसक्याने = चि०, ११।
 [क्रि०] (श्र० भा०) सुसकराए।
 सुसक्यायि = चि०, ६१।
 [पूव० त्रि०] (श्र० भा०) सुसकरा कर।
 सुस्करा उठी = का०, १४३। घा० २७।
 [क्रि०] (हि०) सुसकराई।
 सुस्करान = ल०, ६०।
 [सं० स्त्री०] (हि०) सुसकराहट।
 सुहँ = घा०, २७, ७३, ७७। वा०, कु०, ७८।
 [सं० पुं०] (हि०) वा०, २४३। चि०, ३६। ऋ०, ३६
 प्रे०, ६। ल०, ५१।
 मुष धानन।
 मूक = भ०, २६। ल०, ७३।
 [वि०] (सं०) मूक।
 मूढ = का०, २७। का० कु०, १। चि०, ६६,
 [वि०] (सं०) १५५।
 मूर्ख, जड।

मूढ मति = चि०, १७६।
 [सं० स्त्री०] (हि०) मूर्ख, मतिहान।
 मूढे = चि०, १८१।
 [त्रि० सं०] (श्र० भा०) वद करे। घालि वद करे।
 मूरर = का०, १६। वा०, १७०। चि०, ८, १४,
 [वि०] (हि०) ६६, १८४। प्रे०, ६।
 मूर्ख, बुद्धिहीन (° मूर्ख)।
 मूरि = चि०, ३४।
 [सं० स्त्री०] (श्र० भा०) मूर, जड, सार।
 मूरति = चि० ६६, ७२, १७४, १८६।
 [सं० स्त्री०] (श्र० भा०) प्रतिमा, मूर्ति।
 मूर्ति = का०, १६८, २८८, ३०८।
 [वि०] (सं०) मूर्तिपारा साकार। प्रकट, व्यक्त।
 मूर्ति = घा०, ३८। वा० कु०, २२, २३,
 [सं० स्त्री०] (सं०) ३०, ३२, १२१। वा० ४७ ५१,
 ५३, १०२। चि०, १२६, १४१, १५४,
 १५७। प्रे०, १७। ल०, ५३।
 प्रतिमा, बाह्य, प्रस्तर या किसी घातु
 की बनी आहृति।
 मूर्तिमती = का०, १६६।
 [वि०] (सं०) साकार, सविग्रह।
 मूर्तिमान = वा०, १५६। ल०, ७५।
 [वि०] (हि०) साकार, मूर्तिमय।
 मूर्तियाँ = का० कु०, ११६।
 [सं० स्त्री०] (हि०) मूर्ति का 'बहुवचन'।
 मूर्खता = प्रे०, २४।
 [सं० स्त्री०] (सं०) जहता, मूढता।
 मूर्च्छित = का०, १०, ६६, १६६, १८०। चि०,
 [वि०] (सं०) ४२। ल०, ३५, ४३।
 मूर्च्छाग्रस्त, बेहोश।
 मूर्च्छना = का०, ११, २६२। ऋ०, ५७।
 [सं० स्त्री०] (पुं०) सगीत में आरोह और धरोह की सधि
 विशेष।
 मूल = का० कु०, ४५। का०, ५३, ५७, ७२,
 [सं० स्त्री०] (पुं०) ७६, ६२, ६४, १३३, १४४, २७२।
 जड, सार।
 मूलों = का० कु० ४५।
 [सं० स्त्री०] (हि०) मूल का बहुवचन। दे० 'मूल'।

मूल्य = श्रां०, ६२। ष०, २०, २२। षा०
[सं० पुं०] (सं०) कु०, ८६। म०, ७४।
मोल, वीमत। महता विशेषता।

मृगक हूँ को = चि०, ७२।
[सं० पुं०] (सं० भा०) वृहे को भी।

मृग = षा० ११८, १४१, १४४ १७६,
[सं० पुं०] (सं०) २८४। चि०, ६०, ६७, १६३। ल०,
३३, ५६।
हरिण। मृगशिरा नक्षत्र। पुरप के चार
सेदो मे से एक।

मृगलौनाहि = चि० ६६ ७०।
[सं० पुं०] (सं० भा०) हरिण के बच्चे का।

मृगवृष्णा = चि० २७०।
[सं० स्त्री०] (सं०) जल की लट्टी की वह धाति जो कभी
कभी रेगिस्तान में कड़ा घूप पड़ने पर
होती है और जिसे जल समझ कर मृग
बहुत दूर तक दौड़ता रहता है।

मृगन = चि० ५६।
[सं० पुं०] (सं० भा०) मृग का बहुवचन।

मृगनाभि = चि०, १६६।
[सं० पुं०] (सं०) मृगमद। बस्तूरी।

मृगमन = ऋ० ४३।
[सं० पुं०] (सं०) मन् रूपी मृग।

मृगमरीचिका = षा० कु०, १२।
[सं० स्त्री०] (सं०) मृगवृष्णा।

मृगमरीचिका श्राशा = ऋ० ४६।
[सं० स्त्री०] (हिं०) भ्रम क बारण रेत वणो को जल
समझनेवाले मृगा की श्राशा के
समान झूठी श्राशा।

मृगया = क०, १३। का०, १३६, १४१, १४६।
[सं० स्त्री०] (सं०) चि०, ६६, १८५। म०, १२।
भहेर, शिकार।

मृगशावक = षा० कु०, ६६।
[सं० पुं०] (सं०) हरिण के बच्चे।

मृगी = षा० कु०, ६६।
[सं० स्त्री०] (सं०) मृग का स्त्री, हरिणा।

मृगाल = षा० कु०, ४३।
[सं० पुं०] (सं०) बमल नाम। बमल का उठन।

मृगालमाली = षा० कु०, ३६।
[वि०] (हिं०) मृगाली मृगालमयी।

मृत = ल० ७४।
[वि] (सं०) मरा हुआ। जो मर पुरा हो। गत
प्राण। जिसे मरे कुछ समय हुआ हो।

मृति = षा० २३५।
[सं० स्त्री०] (सं०) दे० 'मृत्'।

मृत्यना = चि०, १००।
[सं० स्त्री०] (सं०) मिट्टी।

मृत्यु = श्रां०, ५०, ५४, ७६। षा० कु०,
[सं० स्त्री०] (सं०) ११६, १२०। षा०, १७, १८, २६८।
ल० ५३, ५८, ७०।

मरीर से प्राण निवतना। मरना,
मौन।

मृत्युसदृश = षा०, २०।
[वि०] (सं०) मरण के समान। मृत्युतुल्य। अत्यधिक
दुःखद।

मृत्युसीमा = षा० १६१।
[वि०] (हिं०) मृत्यु का घेरा। मौत की सीमा।

मृदग = षा० कु० ६३। का० २६३। चि०,
[सं० पुं०] (सं०) ११। ल०, ४८ ५६।
एक प्रकार का बोल के समान प्रसिद्ध
पुराना बाजा।

मृदु = श्रां० ७४। का०, २४, २६, ३८,
[वि] (सं०) ७३ ६०, १३०, १४५, १५२, १५७,
२२२ २७८ २६३। चि०, ४५, ५६।
ल०, ४२।

कोमल, मुलायम।

मृदुाथ = ल०, ५६।
[सं० स्त्री०] (सं०) मुलास। सुगंध। माठी गंध।

मृदुमात = ल० ४५।
[सं० पुं०] (सं०) कोमल शरीर।

मृदुतम = षा०, २६३।
[वि०] (सं०) कोमलतम। सबत अधिक कामल।

मृदुल = श्रां०, ८, ११, २६, ७५। षा० १६,
[वि०] (सं०) ४६, ६७ १४६, १५१, २४४। चि०,
२६। ल० १० ४४।
कोमल। मुलायम। मनोहर।

- शुद्धलक्षिका नव = चि०, ५७।
 [स० खी०] (स०) नवीन और कोमल बनी।
 शुद्धलता = का०, ११२।
 [स० खी०] (स०) कोमलता। मुनायमित।
 शुद्धल फेन = का०, १५१।
 [सहा पु०] (हि०) हल्की सी गाज।
 शुद्धहास = का०, ६६।
 [स० पु०] (हि०) मुस्कुराहट।
 शुभान्त सो = चि०, ५७।
 [वि०] (हि०) युगाल की तरह। कमल के डठन के समान।
 शूया = का०, २७१।
 [भ्र०] (स०) झूठमूठ, व्यर्थ।
 शै = भा०, १, १२, २०। क० २०, २८,
 [भ्र०] (हि०) ३० ३२। चि० १४०। ल०,
 ६६, (६ बार) ६७, ६९ ७०।
 अधिकतरण कारक का चिह्न।
 शैव = का० कु०, १२४। का०, १८६। चि०
 [म० पु०] (स०) ११ ३४। का०, ४०। प्र०, १२।
 ल०, ४३।
 बादल। घन। नारद।
 शैघरसह = प्र० १२।
 [स० पु०] (स०) बादल के छोटे टुकड़े।
 शैघर्जन शुद्धग = का० कु०, १२४।
 [स० पु०] (स०) बादली का गर्जन रूपी शुद्धग।
 शैघपट = ल०, २७।
 [स० पु०] (स०) बादली का पटा।
 शैघबन = का०, ८६।
 [स० पु०] (स०) शैघ का समूह।
 [क्रि०] शैघ बन कर।
 शैघबाहन = का० कु०, १३।
 [स० पु०] (स० भा०) शैघ को ढानवाला। हवा।
 शैघमाला = का० कु०, ५७, १००। का०, ४६।
 [स० खी०] (स०) बाला का समूह, वाग्विनी।
 शैघाद्धत = का० कु०, ६८।
 [वि०] (स०) वादना से घिरा हुआ।
 शैघाहवर = का०, ७५।
 [स० खी०] (स०) बादल का आडंबर।

- शैटत = चि०, १५०।
 [क्रि० स०] (स० भा०) मिटा देना है।
 शैटहुँ = चि०, ५०।
 [क्रि०] (स० भा०) मिटा दा।
 शैदिनी = का०, ५६।
 [स० खी०] (स०) धरती, पृथ्वी। यात्रियों का वह दल
 जा भडा लेकर किसी तार्थ या दव-
 स्थान का जाता है।
 शैघा = का०, १११।
 [स० खी०] (स०) मस्तिष्क। बुद्धि। धारणा शक्ति।
 शैनेका = चि०, ६२।
 [स० खी०] (स०) एक अप्सरा का नाम।
 [शैनेका—स्वर्गलोक की एक श्रेष्ठ अप्सरा विण्णव
 (शैने) की पुत्री और ऊण्णु
 गधव की पत्नी। विश्वावमु से इमे
 प्रमद्वरा नामक बया उत्पन्न हुई जिसने
 स्वर्लोक ऋषि के आश्रम में जन्म देने
 ही प्राण त्याग दिया। इसने अरुन्ध के
 जन्मोत्सव में नृत्य किया था। पृथ्वी
 राजा इमपर मुग्ध हुआ था जिसने
 दुपद नामक पुत्र उत्पन्न हुआ था।
 इद्र द्वारा भेजे जान पर इसने विश्वा
 मिन का मोहित कर उनका तप भंग
 किया और शकुतला को जन्म दिया।]
 शैरा = भा०, सत्तरह बार। क०, छ बार।
 [सब०] (हि०) का०, कु०, सात बार। का०, एता-
 लिस बार। चि०, पांच बार। का०,
 एक बार। म०, एक बार। ल०,
 नव बार।
 शैरी = भा०, तीन बार। क०, दो बार।
 [गव० खी०] (हि०) का० कु०, दो बार। का०, सालह
 बार। चि०, एक बार। ल०, सात
 बार।
 [शैरी श्रौतों की पुतली में सवप्रथम जागरण,
 १८ जून, १९३२ में प्रकाशित, लहर में
 पृष्ठ २८ पर संकलित रूढ़िवादी गाल।
 हे प्रियतम ससौर की मायारूपी शैरी
 शाला में तुम प्राण के सदृश समा
 जाया जिससे जठता स्पष्टित हो सके

श्रीर मन मे तुम्हारे प्रति पवित्र मलयज भाव उत्पन्न हो श्रीर जीवन मे तुम्हारी करुणा का अभिनन्दन हो। इससे मेरे अग्ररी पर आनन्द की ऐसा रेखा अचिन्त हो जाएगी जिसकी हसी यह विश्व चिरन्तन देखता रहेगा।]

[मेरी कचई—अनुवात चतुःशपदी जो सबप्रथम इदु बना ५ किरण ४ अन्नद्वार १६१४ म प्रकाशित हुई था श्रीर प्रसाद संगीत म पृष्ठ १२० पर संकलित है— है प्रियतम। यद्यपि हम तुमसे कहने लायक नहीं हैं फिर भा विनय वा हमारा अधिकार है। हम ही कायर है तुमसे क्या कह कि तुम स्वच्छ मन से, साफ हृदय म हमसे मिलत नही हो। मेरी कचई तो घरी है कि मैं बचन तोड़कर तुमसे नहीं मिलता। सबको समझा मुझावर सबसे झलक हा जिस क्षण हम तुमसे मिलने के लिय प्रस्तुत थ उस समय तुम अपना वस्त्र नहीं सभाल सने दोड़ पड। मर आकषण मे लिखे रहे फिर भी मरा खेती था। तुमका सब कुछ पात है फिर तुमन ही क्या मुझे अपनी श्वा से वाचन किया। मुझ कचई है ता क्या तुम भी नहीं मिल सकत थ ? यह मैं कह रहा रहा वत प्रापना कर रहा हूँ।]

मेरे = सं०, चार चार।
[गव०] (हि०) मैं वा मयथ कारक।

[मेरे प्रेम को प्रतिहार—इदु, बना ५ किरण ३, माघ १६१४ म सबप्रथम प्रकाशित श्रीर विनाधार में पृष्ठ १८७ पर मत्तन। इन्द्रभागा वा पत्। मेरे प्रेम वा वन्ता प्रियतम मत राजिए। मैं सब कुछ छाड कर तुम्हारे पत् बनत म प्रेम करता हूँ। या मर निरुर मात तुम धनोध बनभान हो हाय फनाकर ह प्राण जब हन मुझे छाया म भरन वत तुम पद मुझकर तुम्हारा हूए हट

गए। हम तुम्हारा अनुगमन करते रहे श्रीर तुम मुह केर कर चल गए—कम से कम अपने चरणा की धूल ही मेरे सिर पर गिग दो।]

[मेरे मन को चुराकर वहाँ ले चले—विशाख मे सरला का गीत, इस गीत मे नरदेव के अंतर की वाणी प्रकट हुई है। मेरे मन का चुराकर मेरे प्यारे मुझे भुनाकर वहाँ चल। हम तो तुम्हारे प्रेम वा प्राण म ऐसे जले जस पत्थे भा नहीं जलते तुम ऐसे विषम पवन के समान चल रहे हो जिससे हमारी प्रेम लना कुम्हथा गई, एता क्यों ?]

मेल = का०, ५०। वा० कु०, १०। का०,
[सं० पु०] (हि०) ८१ २२६। चि०, १।
मिलने की प्रिया या भाव।

मेली = का० ३२। सं० १४।
[सं० सं०] (हि०) उत्सव व्योहार आद वे समय होने वाला बहुत से लागे वा जमावडा। भाड।

मेली = चि०, ५६।
[त्रि० सं०] (घ० भा) पहना दो।
मेराड = म० १२, ल, ५७।
[सं० पु०] (हि०) राजपूता वा भारत वा बँद स्थान जा राजस्थान म है।

मेराड गगन = म० १०।
[सं० पु०] (हि०) मवाड रूपी प्राणाड।

मेपों = वा० ४६।
[सं० पु०] (हि०) भेडा।

मैं = व० १७ १८, २२, २३ २४ २८
[गव०] (हि०) ३०। वा० ४० ७१ ६३ ६४
६८ ६९ १०० १०३, १३१ १४६,
१५० १६६ १७६, १८३, ६८४
२११ २१२ २१६, २१७, २१८,
२१९ २२०, २२७ २२८ २३७,
२४८ २३६, २४० २४३। म०, १४
२१ २३। सं० १०, ११, ६६, १७,
६८, ७०

पुण्यवाचक शब्दनाम वा उगम पुस्त।

मैदान = का० कु०, १७, ६६। प्र० १५।
 [सं० पु०] (हि०) घेत, क्षेत्र। लवा चौग भूमि भाग।

मैने = का०, १६, २१, २२। का०, १२७,
 [सब०] (हि०) १४६, १८६, १६१ १६६, १६७,
 १६६ २२३। ल०, ६७।
 दे० मै।

मौ = चि० ७३।
 [प्रत्य०] (ब्र० भा०) सममा विभक्ति, मे।

मोचत = चि०, १७६।
 [क्रि० सं०] (ब्र० भा०) दूर करता है। नाश करता है।

मोचहु = चि०, ५०।
 [क्रि०] (ब्र० भा०) दूर करा।

मोचै = चि०, १०६।
 [क्रि०] (ब्र० भा०) दूर कर।

मोड़ = चि०, १७८।
 [सं० पु०] (हि०) चौराहा। जहा से मुग जाय।

मोड़ना = का०, २४३।
 [क्रि० सं०] (हि०) घुमाना।

मोड़ोमे = का०, १३३।
 [क्रि०] (हि०) झुका दागे।

मोली = का० २३, ६७, ७७। का० कु०, ३६,
 [सं० पु०] (सं०) ४३, १२६। का०, १२६, १७८,
 १८४। चि०, ७३, ७५, १७२। ऋ०,
 ३१, ७६। ल०, १८, ३५।
 समुद्री सीपी से निकलनेवाला एक
 रत्न, मुस्ता।

मोली महिजद = का० कु०, १०८।
 [सं० स्त्री०] (सं०) दिल्ली की एक प्रसिद्ध महिजद।

मा ले = चि०, ४८।
 [सब०] (ब्र० भा०) मुग्ध।

मोद = का० कु० २६ ४६। का० ४७।
 [सं० पु०] (सं०) चि०, २२, ३८, ६०, ६२, १०६,
 १४०, १५०, १५४, १६४, १६५,
 १६७, १७१, १७३। ऋ०, ८१।
 प्रमलता, पानंद।

मोद भरना = का० कु०, १०६।
 [क्रि०] (हि०) घातण्ड करना।

मोदभरी = चि०, १०१।
 [वि०] (ब्र० भा०) प्रसन्नता से युक्त प्रसन्न।

मोदभरे = चि०, १६५।
 [वि०] (ब्र० भा०) आनंदित।

मोदभार = का० कु०, ४८।
 [सं० पु०] (सं०) प्रसन्नता का भार। मानद की प्रचुरता।

मोदमय = का० कु०, १०।
 [वि०] (हि०) आनंदमय।

मोद माते = चि०, १०१।
 [वि०] (ब्र० भा०) आनंद में विह्वल।

मोम = का० ६८।
 [सं० पु०] (हि०) एक प्रकार का वह चिकना पदार्थ
 जिसे शहद का छत्ता बनता है।

मोर = का० कु० ५७। चि०, ५७।
 [सं० पु०] (हि०) पक्षी विशेष मयूर।
 [सब०] (ब्र० भा०) मरा।

मोल = का०, १६६ २३७।
 [सं० पु०] (हि०) मूय, क्षमता। विद्ययता।

मोह = का० कु०, ११५। का०, ७१ ८३,
 [सं० पु०] (सं०) १४५, १६२। चि० १४, १४३,
 १८१। ऋ०, ४८, ५४, ८६। प्र०,
 १६ १७। ल०, ३५।
 समस्त दुखा वा मूल। भ्राति। प्रेम।

मोह जराद = का०, १५६।
 [सं० पु०] (सं०) माहुर्या मय, माह की गहनता का
 भाव।

मोहव = चि०, ७०, ६३।
 [क्रि०] (ब्र० भा०) मुग्ध करता है।

मोहति = चि०, ५०।
 [क्रि०] (ब्र० भा०) मोहता है।

मोहते = चि०, ३६।
 [क्रि०] (ब्र० भा०) मुग्ध हात है या करत हैं।

मोदत = का० कु०, ७८ ७६, १११। चि०,
 १५६, १८१। ऋ०, ११, ५५, ६६।
 [वि०, सं० पु०] (सं०) मुग्ध करनेवाला, धृष्ट।

[मोहन—सबप्रथम द्दु बना ५, विरणु ४, प्रमल
 १६१४ में प्रकाशित मोर बाननकुमुम में
 पृष्ठ ७८ ७६ पर सफलित उद्गर्त का

गीत—हे मोहन तुम अपने सु दर प्रेम के रस का प्याला पिना दो ताकि उसमे हम अपने को भुला दें और तुम्हारे रूप माधुरी मे सदा छुके रह। यिधन भर मे व्याप्त अपना सोदय मरे मन मे अवतरित कर दो और हमारा अस्तित्व तुम्हारे म विलान हा जाय। अपनी रूप शिला वा हमे पतग बना दा। मेरा हृदय तुम्हारे रग म रग जाय ऊगा की एसी लाला दिला दो। अपना ऐसा अमृत सगीत सुना दा जिससे रोम रोम भ्रानद से भरकर पुलकित हो जाय।]

- मोहना = का० कु०, १११।
 [वि०] (ब्र० भा०) मोहक मुख परन्धाला।
 मोहनी = का० कु० ११४।
 [वि०] (ब्र० भा०) मुखकारिणी।
 माहमयी = घा०, १२। का० ६६। १८६।
 [वि०] (स०) माहनेवाला मुखकारिणी। माहक।
 मोहसुग्ध = का० १८।
 [वि०] (स०) का० १८।
 मोह द्वारा सुग्ध या मोहित।
 मोहि = चि०, ३० ७६ ५० ६१ ६८ ७४।
 [सव०] (ब्र० भा०) मुक्तो।
 माहि = चि० ७६।
 [हि०] (ब्र० भा०) सुय कर। माहित कर। तुभा कर।
 मोहित = भा० १५। वा कु० १३।
 [वि०] (स०) सुग्ध।
 मोहिनि सो = का० ६५।
 [वि०] (हि०) मुखकारिणी कम्पड श।
 मौचिका हार = चि०, ७५।
 [स० पु०] (स०) मातिया का माला।
 मौच = का० कु० १७, ३७। चि० १४
 [स० स्त्री०] (स०) १४३।
 लहर, तरंग, उर्मग।
 मौजे = चि० ६५।
 [स० स्त्री०] (स०) धानद। मन वा उर्मगें।
 मौन = का० कु० ७४। का० १०, १८ २६
 [वि०] (स०) ३०, ५५ ५१, ८१ २३० २३८,
 २४५। चि०, १६७। ऋ०, २८, ४५,

७८। ल०, ११, ३५, ३६, ३८, ५८।
 पुषचाप। नीरव। शाव। स्तप।

- मोहे = चि०, ११, ३६, ५५, ५६, १६३,
 [क्रि०] (ब्र० भा०) १५३।
 मोहित करता है।
 म्यान = का० कु०, ७५।
 [स० स्त्री०] (हि०) तलवार रखने का खाना।
 म्यानते = चि०, ६४।
 [क्रि० वि०] (ब्र० भा०) म्यान से या तलवार रखने की खोली से।
 म्लेच्छतम = चि० ६६।
 [स० पु०] (स०) गदे यवन। महा धनार्थ। वह जो धार्थ धर्म या धामभावा का मोही हो।
 य
 यत्र = का० १६३।
 [स० पु०] (स०) बल। मशीन। जतर।
 यत्रो = का०, १६६।
 [स० पु०] (हि०) यत्र वा बहुवचन।
 यत्न = ऋ० ७६।
 [स० पु०] (स०) बुजेर की निधियो के रजक। एव देवता। कुचेर।
 यजन = का० १३, ३१ ५६, ११४।
 [स० पु०] (स०) यज्ञ करना।
 यज्ञ = का०, ११, ३१। वा०, १३, ३२, १०६,
 [स० पु०] (स०) ११२, ११४, ११६, १२६, १३२,
 २४०।
 हवन करने वा एव धार्मिक इत्य।
 यज्ञार्थ = का० २३।
 [स० पु०] (स०) हवन वा कार्य।
 यज्ञ प्रज्वलित = चि० ६१।
 [स० पु०] (स०) हवन वा प्रज्वलित अग्नि। होता हुआ यन।
 यज्ञपुरोहित = का० २०१।
 [स० पु०] (स०) हवन करानवाला। बर्मशही।
 यज्ञपुरुष = का० १३२।
 [स० पु०] (स०) विष्णु।
 यज्ञभूमि = चि०, ६०।

[सं० स्त्री०] (सं०) यज्ञक्षेत्र, यह स्थान जहाँ पर यज्ञ होता है।

यत्न = चि०, ७४।

[सं० पुं०] (प्र० भा०) > 'यत्न'।

यत्न = चि०, ४७। ऋ०, ७३। प्रे०, २०।

[सं० पुं०] (सं०) कोशिका, उद्यान, तदनीर।

यत्र तत्र = प्रे०, २०।

[अव्य०] (सं०) यहाँ वहाँ।

यथा = चि०, ६२, ७०। म०, १।

[अव्य०] (सं०) जिस तरह, जस।

यथातथ्य = का० कु० ८१।

[अव्य०] (सं०) ज्यों का त्यों, जसा हो ठीक उमी के अनुसार यथा यसा।

यथार्थ = ऋ०, ४१।

[अव्य०] (सं०) ठीक। उचित। सत्य। जसा है वसा।

यथाविहित = प्रे०, ६।

[वि०] (सं०) नियमों के अनुसार जिसका विधान किया गया हो। नियमों के अनुसार जो उचित या ठीक हो।

यद्यपि = चि०, ६०, ३६, ४१, १७१। प्रे०, ६।

[अव्य०] (प्र० भा०) देखिए 'यद्यपि'।

यद्यपि = चि० ७०, ६६। म० ८।

[अव्य०] (सं०) यदि ऐसा है। भगरचे। गो कि।

यदि = आ०, ४५। व०, ११, १५, १८, २२,

[अव्य०] (म०) २७, २६। का० कु०, ७५। का०, ८१,

१२५, १२६, १४७, १६४, १६३,

२२६। चि०, ६६। प्रे० ६। म०,

४, १८।

धर, जो।

यम = सं०, ५१।

[सं० पुं०] (सं०) इन्द्रियों को बश में रखना। नियंत्रण। यमराज, मृत्यु के बाद कमनुसार दंड की व्यवस्था करनेवाला हिंदुओं का एक देवता—धर्मराज।

[यम—समस्त प्राणियों का नियमन करनेवाला मृत्युलोक का अधिष्ठाता एन मृतको पर शासन करनेवाला, विवस्वान् का पुत्र। इसे दक्षिणा का और मनुष्यों में पहला राजा भी माना गया है।]

यमन = चि०, ६५।

[सं० पुं०] (हिं०) यवन। मुगलमान।

यमनराज = चि०, ६३।

[सं० पुं०] (हिं०) यमनराज, मुगलमानों का राजा।

यमुना = व०, ७२। प्रे०, २२।

[सं० स्त्री०] (म०) उत्तर भारत की एक प्रसिद्ध नदी।

यम की बहन।

यमुनाकूल = का० कु०, १११।

[म० पुं०] (सं०) यमुना नदी का किनारा।

यमुने = का० कु०, १२५।

[सं० स्त्री०] (सं०) हे यमुना।

यवन = का० कु०, १२०, १२१, १२२। चि०,

[सं० पुं०] (सं०) ६५। म० ५, ७, ६, १०, १२।

यूनान देश का निवासी। मुगलमान।

यवन चमूनायक = म०, ६।

[सं० पुं०] (सं०) मुगलमानी सेना का सेनापति।

यवनन के = चि०, ६७।

[सं० पुं०] (प्र० भा०) मुगलमानी के।

यवन वीर = म०, ६, ७।

[सं० पुं०] (सं०) वीर मुगलमान। यवन सेना के सरदारों के लिये संबोधन।

यवनिष्ठा = का०, २८।

[सं० स्त्री०] (सं०) नाटक का परदा।

यवनी गण = म० १२।

[सं० पुं०] (हिं०) यवन जाति की स्त्रियों का समूह।

यवनों = ल०, ५३।

[सं० पुं०] (हिं०) मुगलमानों।

यश = का० कु०, ६८। का०, १७१, १८४।

[सं० पुं०] (सं०) चि०, ७३, १४६। ल०, १३।

बड़ाई। प्रशंसा। ब्याप्ति। कीर्ति।

यस = चि०, ३३।

[सं० पुं०] (प्र० भा०) देखिए 'यश'।

यद् = आ०, पृष्ठ ३६ से ७७ तक १४ बार।

[अव्य०] (हिं०) क०, पृष्ठ ६ से ३२ तक १६ बार।

का० कु०, पृष्ठ ३ से ६७ तक ११

बार। का०, १३ पृष्ठ से २६० तक

१०६ बार। चि०, पृष्ठ ८ से १८४ तक

२८ बार। ऋ०, १६, ३७, ५०, ५७।
ल०, पृष्ठ २० स ७६ ता १४ बार।
'इय' वा एव रूप।

[यह कसक अरे अर्यसु सह जा—ध्रुवस्वामिनि वा पहला गात जिये पुजारिनी नंदाविनी ने गाया है। तू अभिमान की विनम्रता बनकर मेरे अस्तित्व का बोध करा तू प्रेम से छलनकर अपनी एकांत बहानी बहता जा, दुखी यमुधा पर बरणा बनकर शांतलता फला, जावन का यह कसक—अरे धामू सट ते।]

[यह सव तो समुभयो पहिले ही—सवप्रथम मवरंद विदु के अतगत इदु कला पांच, बिरण लील सितवर १६१४ म प्रवा शित और चित्राधार म मवरंद विदु के अतगत पृष्ठ १८८ पर संकलित चित्रा धार का अतिम पद। नीच, निराम, निर्लज्ज बनकर ही संसार म तुम्हारा नेही बना। उसपर स भी तुमस प्रम करके भी तुम्हें प्राप्त न कर पाए। प्रिय तम जगह जगह दौटाते हो और मन तुम्हारे लालच मे दौडता है। ऐसा करने से तुम्हारा मेरा प्रम छुटनेवाला नहीं है। तुम्हारा श्याम मूर्ति धलकर श्रीरो को मैं नहीं छूडता। जो कुछ भा हो तुम्हारी मधुर हसी, देड़ी भी मब कुछ सानद सहींगा तुम्हार बरणा म लेटवर सार ससार क सार पर पर धर कर रहूंगा। मैंने सब कुछ पहले ही समझ लिया है।]

यहाँ = क०, ६, १५, १६, २१ २६। बा०,
[क्रि० वि०] (हि०) ५२, ५७, ८१, १५०, १६६, १७२,
१७६, १८३, १८४, १८६, १९०,
१९२, १९५, १९६, २३८, २३९,
२५८, २६४, २६५ २६६, २६७
२६८, २६९, २७० २७१, २७२
२८६, २८७ २८८। वि०, १७६।
म०, ३, १०, ११। ल० ७२।
इस स्थान पर। इस जगह पर।

यति = वि०, १, १५, ३३, ४८, ५४, ५६।
[प्रथ्य०] (प्र० भा०) यही। इगी।

यहिरे मन = बा० कु०, २२। वि०, १८४।
[प्रथ्य०] (प्र० भा०) हे मन। हे मा यहीं।

यही = म०, ४। ल०, १३।
[त्रि० वि०] (हि०) यहीं ही। इगी स्थान पर हा।

यही = क०, १४, १६, २६। बा० कु०, ७, ७,
५०। पा०, २६, ५३ ५६, ८५, १०५,
[सव०] (हि०) १११, १३०, १३६ १६६, १८५,
१९३, १९६, २१२, २१४, २१८,
२१९, २४२, २४३, २६०, २६४,
२७८, २८७। वि०, ४८, १०२, १०३,
१८३। ऋ०, ४४, ५३। म०, १२।
ल०, १०, ७६।

'यह ही' का सक्षिप्त रूप। इगी।

यहँ = वि०, २५, ६१।
[क्रि० वि०] (प्र० भा०) इसी स्थान पर।

या = बा०, २०, ४०, ८२, १४१, २०५,
[प्रथ्य०] (फा०) २११, २१६। वि०, १४५। ऋ०,
२५। ल० ११, ४३।
प्रथवा, वा।

याकि = का० ४७।
[प्रथ्य०] (हि०) प्रथवा कि।

याये = वि०, २४।
[सव०] (प्र० भा०) इसके।

याकी = वि०, ४८ ५८, ६६।
[सव०] (प्र० भा०) इसके। इसके।

[याचना—सवप्रथम इदु कला पांच किरण दा, फरवरा १६१४ मे प्रवाशित तथा कानन कुसुम मे पृष्ठ ६२ ६३ पर संकलित है। इस कविता म ईश्वर से याचना का गर्द है। जब प्रलय काल हो ज्वालापुला प्रज्वलित हो, सागर मे प्रलय नाड म्हा रही हो सारे तारे केंच्युत हो, परस्पर लडकर चकना चूर हो रहे हो और सारी शक्ति और साहस दम तोड रही हो, ऐसी स्थिति मे भी तुम्हारे चरणा कमला मे

हम तल्लान हैं। जब सारे पर्वतों की चाटियाँ बिजली के आघात से टूट कर विश्व पर प्रहार कर रही हो और आकाश में प्रलयकर वातुल धाए हो ऐसी भीषण स्थिति में हमारा यह मन तुम्हारी प्रेम धारा में बसने में लवलीन रहे। जब सभी ऋणुए मन को दुःख को ज्वालामुखी से सभी मुखा को भस्म कर रही हो और बिजली की भीति कुटिल घनघन, स्वार्थी जब छत्र प्रपञ्च से भयकर बछ दे रहे हों जब मित्र और प्रेमिया ने बिनारा कम कर पाव पर नमक छिड़कना आरंभ कर दिया हो तो हे! दयासागर दुःख या आनन्द जिस स्थिति में हो हमारा मन मधुकर तुम्हारे चरण कमल में विश्वस्त रूप से आनन्द करता रहे। दुःख सुख प्रत्येक अवस्था में तुम हमारे हृदय में विराजित रहो हम किसी भी लोक में रह, हे! नाथ ऐसा आलोक दा कि तुम्हारे प्रेमपथ पर ही चलते रह।]

- यातना = का० १६७।
 [सं० स्त्री०] (सं०) कष्ट, दुःख। पीडा।
 यात्रा = का० २१६, २२३, २८७।
 [सं० स्त्री०] (सं०) एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाना। सफर।
 यात्री दल = का० २७७। २७८, २८४।
 [सं० पुं०] (सं०) यात्रा करनेवालों का दल या कूट। मुसाफिरो का समूह।
 याद = का० कु० ७, १४, ७३। भ० ४३। १८ प्र० १६।
 [सं० स्त्री०] (का०) स्मरण, स्मृति।
 यादव वृद्ध = का० कु० ११२।
 [सं० पुं०] (सं०) अहार लाग, गोप समुदाय।
 यान = का० १६३।
 [सं० पुं०] (सं०) जहाज। गाड़ी, सवारी।
 यात्रिक = का० ४३।

- [वि०] (सं०) यत्रसंबधी। यत्रविद्या का जाननेवाला।
 याम = का० कु० ५६। चि० ४५।
 [सं० पुं०] (सं०) तीन घंटे का समय, पहर। समय।
 यामिनी = का० कु०, २। का० ८६, ६१। चि० [सं० स्त्री०] (सं०) ४५। ल० ७४। रात्रि। निशा।
 यामें = चि० ४०, ५६, ६१, ६४, ७२, १७७। [सव०] (ब्र० भा०) इममें।
 यायावर = का० १६६।
 [सं० पुं०] (सं०) वह जो एक स्थान पर टिककर न रहता हो, स यासा। ब्राह्मण। अश्वमेध का घोडा।
 यासो = चि० ६६। [सव०] (ब्र० भा०) इमसे।
 याहि = चि० ५६, १८१। [सव०] (ब्र० भा०) इमको।
 याहो = चि० १६ ६०, १८४। प्र० २। [सव०] (ब्र० भा०) दे० 'याहि'।
 युक्त = का० ८३। [वि०] (सं०) जुग या मिला हुआ। साथ लगा हुआ।
 युक्ति = का० कु० ८६। का० १६५। [सं० स्त्री०] (सं०) उपाय तरकीब। चातुरी, कौशल।
 युग = का० ७७। का० कु० ४२। का० [सं० पुं०] (सं०) १६२, १६६ १७८ २५३। चि० १३, ३३ ४५ ४६। ल० १५, २७, ३२, ३३, ७४। दो जोडा युग। बारह वर्ष का काल। काल का एक मान। युग चार हैं—सत्य, त्रेता, द्वापर और कलि।
 युगनू = चि० १६४। [सं० पुं०] (हिं०) जुगनू पटबीजना, सोनविरवा।
 युगनैत = चि० ७२। [सं० पुं०] (ब्र० भा०) दाना नेत्र दोनों आँखें।
 युग युग = का० १२१, १८१। चि० ३३। प्र० [सं०] (सं०) २२। ल० १५। बहुत दिन तक, बहुत समय तक।

[युग युग यह जोड़ी जिये—बधुवाहन मे भर्तुन
घोर चिन्तागण की शानी क घात
श्राद्धण लोग विवाह मंडप मे ह्य दोहे
के द्वारा आशीर्वाद दे रहे है कि यह
जाडा युग युग तर जिये घोर भवल
राज्य कर। दोना का प्रेमलता फून
फले घोर सुखी रह चिन्तापार म पृष्ठ
उत्तलीस पर संलिन।]

युगल = का० कु० ५, ६, ११, ४३, ११६,
[सं० पु०] (सं०) १२७। का० ८१, १४४, २१०, २७३,
२६०, २७१, २८२, २८६। चि० १३,
२२, २४, ३१, ५६, ७०, १७७।
भ० २२, ५८। प्रे० ८। म० ६।
युगम। जोडा। जुडुवा।

युगल = चि० ७१।

[सं० पु०] (हिं०) देखिए 'युगल'।

युगौ = का० ५६।

[सं० पु०] (हिं०) युग का बहुवचन, बहुत दिनो।

युत = का० १२७।

[वि०] (हिं०) मिला हुआ। संयुक्त।

युद्ध = का० कु० ११५ ११६। का० १०६,
[सं० पु०] (सं०) १६१, १६६। चि० ४५, ६४, १६१।

म० ५ १० १२। त० ५२।

लटाई। सग्राम। रण।

युद्धभूमि = चि० ६३।

[सं० पु०] (सं०) रणक्षेत्र, लटाई का मदान।

युधिष्ठिर = का० कु० ११४।

[सं० पु०] (सं०) भ्रजुन क बडे भाई। धमराज।

[युधिष्ठिर—पांडु राजा का पत्नी कुती के ज्येष्ठ
पुत्र, नानो धर्मनिष्ठ तथा महात्मा
के रूप में महाभारत में इनकी चर्चा
है। ये समस्त पांडवों का प्रेरणा शक्ति
के अविश्रुता थे। ये पांडवों में सबसे
बड़े थे।]

युवक = का० कु० ६१। प्र० २४। म० ५।

[म० पु०] (म०) ल० ७२।

सोलह स पैंतास वर्ष तक का अवस्था

का पुण्य। युवा, जवान।

युवकौ = का० २७८।

[म० पु०] (हिं०) युवक का बहुवचन।

युवतिया = प्र० ७४।

[म० स्त्री०] (सं०) युवती का बहुवचन। जवान स्त्रियाँ।

युवा = चि० ११।

[सं० पु०] (म०) जवान। युवक।

यूथपति = चि० ६२।

[सं० पु०] (म०) सनापति। दान का मरदार मुषिया।

यूथिया = प्रा० ४४।

[सं० स्त्री०] (सं०) जूही का पीया और उमरा पून।

ये = भ० ४४। का० कु० ७, २४। का०

[सव०] (हिं०) ५१, ५४, ८३, १२६, १३२, १७२,

१७८, १८१, १८४ २१५, २३०,

२३४, २४०, २४८। चि० १४५,

१७७ १७६। म० ११, २५।

'यह' का बहुवचन।

येहि = चि० ४६, ७४।

[सव०] (प्र० भा०) 'ये हो', यह सब हा।

येही = चि० ६४।

[सव०] (हिं०) हे 'येहि'।

यौ = प्रा० ४६। का० १३, ३६, ६३, १६०।

[प्र० य] (हिं०) इसी प्रकार। ऐसी।

यौही = क० ३०। का० ३३। प्र० ७।

[प्र० य०] (हिं०) बिना किसी काय या कारण के, ऐसे

हो। इसी प्रकार हा।

योग = का० १३१। चि० २६ १०५।

[सं० पु०] (सं०) मेल, संयोग। प्रयोग। ध्यान। शुभ

फन। उपयुक्तता। शुभ मुहूर्त। चित्त

को एकाग्र करने का उपाय या शास्त्र।

योगक्षेम = का० १६६।

[सं० पु०] (म०) लाभ और उसकी रक्षा, गुजारा। वह

संपत्ति जिम्मा बटवारा न हो। कुशल

मगल।

योगमान = का० कु० २६।

[सं० पु०] (सं०) योगी, योग करनेवाला।

योग्य = क० १२, २२। का० कु० ११५।

[वि०] (सं०) का० ७७। भ० ५३। प्र० ४।

उपयुक्त ठीक। समर्थ। श्रेष्ठ। अनु

रूप, लायक।

योपित = चि० १३३।
[स० खी०] (स०) छा, शीरत।

यौवन = आ० ६६, ६८। का० कु० ८६।
[स० पु०] (म०) का० ४, ४०, ४७, ५४, ७२, ७४,
६६, १२३, १५६, १६४, २२२, २३१,
२७७। चि० ७०। भ० २०, २७,
३४। ल०, ४६, ५३, ५४, ५६।
जवानो युवावस्था।

[यौवन उपा प्रथम प्रगट जब हिये भई है—
चित्रागदा अपने सखी से अपने भावो-
च्छ्वात प्रकट कर रही है कि यौवन
को प्रथम उपा हृदय में प्रकट हुई है।
हृदयावाश नवराग रजित है। हाय।
प्रणय की स्मृति का सूर्य नित्य हृदय
के आकाश में उदय की ओर पूवराग
वा विस्तार कर उसे अपने श्लोकिक
प्रेमराग से रजित करे, उसकी तीक्ष्ण
किरणों से विरहानि की ज्वाला बर स
ओर झंझू की धारा भी प्रिय के
विमोग में चले जिससे शांत मिले।

बराबर इस प्रेम का वही राग रहे जो
पहले पहल प्रकटा है। यह मधुर कण्ठ
सुख हृदय को मुरमित किए हुए है।
यद्यपि नव वसत की मध्या में विमोग
के कारण बहुत कष्ट है तो भी वह कष्ट
मुत्सकर है।]

[यौवन तेरी चंचल छाया—ध्रुवस्वामिनी का
तीमरा गीत। कोमा का एकांत सगान है।
र यौवन तेरी चंचल छाया में तुम्हारे रस
का एक घूट पा लू क्याकि पता नहीं
कब मरे हृदय के प्लात में लू मद बन
कर समा गया और जावन का वानुरी
क छिगे में मदमस्त स्वरलहरी क
समान समा गया। अरे, पल भर
रुकनवल पथिक। इतना तो बता दे
कि तू कहाँ स आया है।]

यौवन विलासो = ल० ५३।
[वि०] (हि०) जवानो की वासना में मतवाला।
यौवन स्मित = का० ६। चि० ३६।
[म० खी०] (स०) जवाना को मुम्कुराहट।

र

रक = का० कु० ४७। वा० १६६।
[वि०] (स०) गरीब, दीन। हीनता से युक्त।

रक नरेश = का० कु० ४।
[स० पु०] (म०) दरिद्र और राजा।

रग = आ०, ३७। का०, ८५ १६४, १७५,
[स० पु०] (स०) १७६, २३५, २४६। चि०, ४२, १४८,
१६३। ल०, ३६, ७५। भ०, ७०।
म०, ५ २४, ३३।
रागा। नृत्य। गीत। सौंदर्य। आनंद।
धाक। उत्सव। उमग। पंगथ या उमके
आकार से वह मित्र गुण जिनका नाम
दृष्टि से होता है। रगने का पदाथ।

रग देता = का० २०७।
[क्रि०] (हि०) अरने विचार के अनुकूल बना देता।

रग भरी = चि० १६६।
[वि०] (हि०) रगान, रगा हुई।

रगमच = का० २६४।
[स० पु०] (स०) नाट्यशाला का वह स्थान जहाँ अभि-
नेता अभिनय करते हैं।

रगमयी = ल० २२।
[वि०] (हि०) रगी हुई। रगीन, आनंदमयी।

रगमहल = ल० ७१।
[स० पु०] (हि०) आनंद प्रमाद करने का स्थान।

रगरलियाँ = ल० ५६।
[म० खी०] (हि०) दे०—'रगरला'।

रगरली = का० २२२।
[म० खी०] (हि०) आनंद प्रमाद, आनंद ब्रीडा।

- रंगराते = चि० १७२ ।
 [वि०] (हि०) भ्रानद या प्रसन्नता म विभोर या
 अनुदत्त हुए ।
- रंगरेली = चि० ५६ ।
 [स० खी०] (हि०) दे० 'रंगरसी' ।
- रंग विरगी = का० ३० ।
 [वि०] (हि०) विभिन्न रंगों वाली ।
- रंगशाला = ल० ७६ ।
 [स० खी०] (स०) वह भवन जहाँ अभिनय होता है ।
- रंगस्थल = भा० ७६ । का० ७५ ।
 [स० पु०] (स०) वह स्थान जहाँ अभिनेता अभिनय
 करते हैं, रंगमंच, रंगभूमि ।
- रंग साँ = चि० ७० ।
 [स० पु०] (हि०) भ्रानद से प्रसन्नतापूर्वक ।
- रंगा = का० १०० १०२ । प्र० १० ।
 [वि०] (हि०) अनुदत्त ।
- रंगिनि = भा० ७५ ।
 [वि०] (स०) रंगी हुई भ्रानदमयी ।
- रंगी = ऋ० २८ ।
 [वि०] (स०) रस रंगवाली भ्रानदी मोजी ।
- रंगीन = का० ६०, २६२ ।
 [वि०] (हि०) रंगा हुआ ।
- रंगे = चि० १७१, १८० ।
 [क्रि०] (हि०) रंग दिए, रंग गए ।
- रंगोगा = ल० ७१ ।
 [क्रि०] (हि०) रंग देगा । अपने अनुरूप बना लेगा ।
- रंग्यो = चि० ३४, ३६ ।
 [वि०] (प्र० भा०) रंगा हुआ । विभोर ।
- रंगों = का० ७७ ।
 [स० पु०] (हि०) रंग का बहुवचन, दे० 'रंग' ।
- रजक = ऋ० २५ ।
 [वि०] (स०) रंगनेवाला । प्रसन्न करनेवाला ।
- रज्जन = चि० १७० ।
 [स० स०] (स०) रंगने की क्रिया । वह पदार्थ जिससे रंग
 बनते हैं । स्वर्ण । जायफल ।
- रञ्जित = भा० ६५ । का० ३७, ८१, ८८, १५७ ।
- चि० १५०, १७५, १८० २०, २२, ३५,
 ७७, ५७ ७७ । प्र० १ ।
- [वि०] (स०) रंगा हुआ । अनुदत्त ।
- रञ्ज = का०, ६६, ६८, २६३ । ल०, २६ ।
 [स० पु०] (स०) छत्र, मोनि ।
- रञ्जक = का० ७ । ऋ० ७६ ।
 [वि०] (स०) रङ्गा करनेवाला ।
- रञ्जहु = चि० १०६ ।
 [क्रि०] (प्र० भा०) रंगा करो ।
- रञ्जा = का० २२ । का० कु० ७ । का० १४६
 [स० खी०] (स०) १८५ २७२ । चि० १८५ । ल० ५३ ।
 बचान, बचाने की क्रिया । धारण, पनाह ।
- रञ्जा करना = पा० कु० १२१ । म० ३ ।
 [क्रि०] (हि०) बचाना ।
- रञ्जित = का० १८२ ।
 [वि०] (स०) बचाया हुआ, रङ्गा किया हुआ ।
- रञ्ज = भा० ५२ । का० कु० ६० । का० ४,
 [स० पु०] (स०) ७७, १३६, १३६ १६५ २६६ २०१ ।
 प्र० १८ । म० ६ । ल० ७७, ७८ ।
 खून लहू रक्षिर । लाल ।
- रक्त दुःशासन = का० कु० ११४ ।
 [स० पु०] (स०) दुःशासन का खून ।
- रक्त नदी = का० २०२ ।
 [स० खी०] (स०) खून की नदी, शोणित की सरिता ।
- रक्तमयी = ल० ७८ ।
 [वि०] (स०) रक्तिय, खून से सनी हुई ।
- रक्तवर्षा = ल० ७७ ।
 [स० खी०] (स०) खून की वर्षा ।
- रक्ताढ्य = का० १४४ ।
 [वि०] (स०) खून के समान लाल ।
- रक्तिम = का० २०० । ल० ४६ ।
 [वि०] (स०) लाल रक्तवर्णवाला ।
- रक्तिम मुख = का० १७८ ।
 [वि०] (स०) लालमुख, मूढ़ मुख वा मूचक ।
- रक्तोमद् = का० २०१ ।
 [वि०] (स०) रक्तपात करने के कारण उमत्त ।
- रञ्जित = म० ११ ।
 [वि०] (स०) जिवकी रङ्गा की गई हो । मुख्या
 प्राप्त ।

रत्नना = भा० २८, ३५, ५५। का० कु० १०,
[क्रि०] (हि०) ६२। का० ३२, ३३, ८६, १०६,
१६१, १८३, २३७, २८८। चि० २६,
६१, १४१, १४७, १७६। प्र० २।
बचाना, रत्ना करना।

रत्नघाली = का० कु० ६०। का० १०३ २११।
[स० स्त्री०] (हि०) ल०, ५५।
देखभाल, रत्ना करने की क्रिया या
भाव, हिफाजत।

रत्नठ = चि० १५८।

[क्रि०] (ब्र० भा०) रखो।

रघु = चि० ५२।

[स० पु०] (सं०) एक मयवशी राजा का नाम।

रघुकुल राई = चि० ५२।

[सं०] (ब्र० भा०) रघुकुल के राजा।

रघुनरा = चि० ४६।

[सं० पु०] (स०) रघु के नाम से पुरारा जानेवाला वंश।

रघुवश जहाज = चि० ४८।

[सं० पु०] (स०) जो रघुवश के लिये जहाज हो,
रामचंद्रजी।

रघुवशाहिं = चि० ४६।

[सं० पु०] (ब्र० भा०) रघुवश की।

रघुवशी = चि० ४६।

[वि०] (सं०) रघुवश म उत्पन्न होनेवाला।

रचकर = का० १६६, १६०।

[पूर्व० क्रि०] (हि०) बनाकर।

रचती = का० १६, ६३, १६४, २०७, २६४।

[क्रि०] (हि०) बनाती निर्माण करती।

रचदू = न० ४०।

[क्रि०] (हि०) बना दू।

रचना = भा० ५७। का० ७७, १५३, १७०।

[क्रि०] (हि०) बनाना, उत्पन्न करना।

[सं० स्त्री०] [सं०] निर्माण।

रचनामूलक = का० १३२।

[वि०] (सं०) जिसस रचना होता हो, जो रचना का
मूल में हो।

रचहु = चि० १४१।

[क्रि०] (ब्र० भा०) बनाओ, निर्माण करो।

रचित = का० ४८। भ० ३७।

[वि०] (सं०) बनाया हुआ, निर्मित।

रचे = का० ३२, १२६, १६५।

[क्रि०] (ब्र० भा०) बनाये।

रच्छक = चि० १५७।

[वि०] (ब्र० भा०) रक्षा करनेवाला।

रच्यो = चि० २४, ४८, ६७।

[क्रि०] (ब्र० भा०) निर्माण किया। बनाया।

रज = भा० ६२। का० १८१, १६१,

[सं० पुं०] (सं०) १६२। चि० १८८।

पराग। पुष्पधूलि मकरन्द। स्त्रियो की
जननेंद्रिय से निकलनेवाला रक्तमय आव,
ऋतु। आकाश। पाप। जल। प्राचीन
समय का एक प्रकार का वाद्य।
बादल। धूलि।

रजकण = म० ३।

[सं० पुं०] (सं०) मकरन्दकण, धूलिकण।

रजकुसुम = ल० १०।

[सं० पुं०] (सं०) मकरन्द। पराग, पुष्पधूलि।

रजत = का० १०६, ११६, २६६, २६४।

[म० स्त्री०] (सं०) चि० २३। भ० ५५।

चांदी। हाथी। हार। लहू। सोना।

रजतकुसुम = का० ३६।

[सं० पुं०] (म०) रजतम पुष्प। चपा।

रजतगौर = का० २५२।

[वि०] (सं०) चांदी जसा श्वेत।

रजधानी = चि० ५७।

[सं० स्त्री०] (ब्र० भा०) किसी देश अथवा राज्य का वह
प्रधान नगर जहां में वह शासित होता
है तथा जहां शासनकर्ता एक अधिकारी
रहते हैं।

रजधूसर = का० १७६।

[वि०] (सं०) धूलिधूसरित।

रजनी = भा० १७, २७ ३१, ५७, ७६, ७६।

[सं० स्त्री०] (सं०) का० २५। का० कु० ३५, ६६।

का० ३४, ३८ ३६ ४७ ५३, ६३,
७५, १३६, १७८, १८६, २१३, २२६
२२६, २३४, २४५। चि० ४७,
१७१। भ०, ११, २१, ८५।

सं० २६, ३२, ३१, ३८, ४४, १८,
६८।
रात्रि, त्रिशा रात। ह्रीं। जमुवा
सता। पहाडा। गान। दाहू-नी।
स.स। एव ११ का गाम।

रजनौगंधा = का० कु० ३५। वि० १६४।
[सं० स्त्री०] (सं०) रात क समय पूनवयाला एव मुगंधित
पुष्प।

[रजनौगंधा]—सद्यप्रथम 'इदु बला ३, विरला १,
जनवरा १६१२ म प्रफाणित क यता जो
बानन कुमुम म वृष्ट ३३ से ३५ तक
सकलित है। यह ४० पक्ष्या की
कविता है जिसमे भावार्मक दग से
प्रवृत्तिवला है। रात्रि धारम हो
के साथ रजनागंधा क चितने का यणन
भोर उस की महिमा तथा उन क
सौरभ का भाख्यान परंपरागत पद्धति
पर बिया गया है। रजनागंधा से सारा
वातावरण कामल भोर मधुसूय हो
गया है भोर उसके आगे तारागण
की ज्योति भी धीमी पड गई है। यह
रातभर खिलवर मधुकर का बाट
जोह रही है भोर अपलक उस की
प्रतीक्षा कर रही है। इसने छोटे से
मन म बहुत अधिक प्रेम भरा हुआ है।
लगता है कि यह रात्रि का सखी के रूप
मे है। यह अपने सौरभ भोर गुणधम
के कारण रजनौगंधा नाम की सबसुत्र
प्रधिकारिणा है।]

रजनौतम = का० १६७। सं० २४।

[सं० पुं०] (सं०) रात्रि का अथकार।

रजनौभर = का० कु० ३५।

[अ-य०] (हिं०) रातभर।

रज से रजित = का० २६६।

[वि०] (सं०) पराग से अभिषिक्त।

रजरस = अ० २३।

[सं० पुं०] (सं०) परागरूपी रस।

रजसिप्त = का० कु० १००।

[वि०] (सं०) रज म तिटा हुआ। पूनमप।

रज्जु = का० कु० ३३। का० ६८, १६६,
२७७।

[सं० स्त्री०] (सं०) रज्जु।

रज्जु सी = अ० ५५।

[वि०] (वि०) रज्जु का गमना।

रटन = वि० १६०। सं० १७।

[सं० स्त्री०] (वि०) रटा की त्रिया का भाव।

रटगा = अ० ११। म० ६।

[त्रि०] (हिं०) यात्र करना बार बार दुहराना।

रणनीत सिद्ध = सं० ५४।

[सं० पुं०] (हिं०) पंजाब क एक प्रसिद्ध विजना तथा
राजा का नाम।

रणनाद = का० २००।

[सं० पुं०] (सं०) युद्ध का धारणा। युद्ध म होनेवाली
ध्वनि।

रणनीति = का० कु० ११२।

[सं० स्त्री०] (सं०) युद्ध नीति।

रणमीम = वि० ६७।

[सं० पुं०] (सं०) विकराल युद्ध।

रणमूमि = का० कु० ११४, ११७। म० ६।

[सं० स्त्री०] (सं०) युद्धस्थल।

रणमत्त = वि० ६५।

[वि०] (सं०) युद्ध करने मे मतवाला।

रणरगिनी = सं० ५१।

[सं० स्त्री०] (सं०) वह जा रण रग म रगी हुई हो।

रणवपा = का० २००।

[सं० स्त्री०] (सं०) युद्धरूपा वपा।

रणविमुख = का० कु० ११५, ११६।

[वि०] (सं०) रण से भागनेवाले।

रणशिक्षा = म० ६।

[सं० स्त्री०] (सं०) युद्ध की शिक्षा।

रणगण = सं० ६६।

[सं० पुं०] (सं०) युद्ध क्षेत्र, युद्ध का आंगन।

रसित = का० ११।

[वि०] (सं०) भट्टत।

रस = का० ४२। वि० ३६, १७३।

[वि०] (सं०) लगा हुआ, भासक।

रत्न = का० २४७। वि० २३, ६६, ७५, १४७।

[सं० पु०] (हिं०) बहुमूल्य खनिज प्रस्तर, नवाहिरात, रत्न। माणिक, लाल।

रत्नन = वि० १६३।

[सं० पु०] (ब्र० भा०) रत्न वा बहुवचन, रत्नो, जवा हिरातों।

रत्नेस = वि० १४६।

[सं० पु०] (हिं०) रत्ना का स्व मी, रत्नेश। समुद्र, सागर।

रति = का० ७२, ७४, १०३। वि० ६, १८।

[सं० स्त्री०] (सं०) कामदेव की रत्नी जो प्रजापति दक्ष की कन्या थी। सादय। शोभा, तेज। वाति। सभोग।

रती = वि० १६४।

[सं० स्त्री०] (ब्र० भा०) कामदेव की स्त्री का नाम।

रत्न = का० ७०, ७४, ८६। का० १२। वि०

[सं० पु०] (सं०) ४६, ५४। ऋ० ३४, ७६। ल० ७६। २० 'रत्न'।

[रत्न—भरना मे सकलित। एक अनजान रत्न जो अनगण हाने हुए भी स्वभाविक है, मुझे मिल गया है। यद्यपि इस का मूल्य अज्ञात है तो भी इसके सहज सौन्दर्य के कारण मन उस चूम लेता है और फिर रह रह कर उस अमूल्य रत्न का मूल्य भी आँकन लगता है। कवि अत मे बहता है कि जोभी मन, इस पहनकर देख ले।]

रत्नहार से = वि० ४७।

[वि०] (सं०) रत्ना का माला के समान।

रत्नाकर = का० ३३, ७२। का० कु० ६५। वि०

[सं० पु०] (सं०) २३, १४६। ऋ० ३२, ७६। समुद्र।

रत्नावली = का० कु० ४२।

[सं० स्त्री०] (सं०) रत्नों की पक्ति। रागिना विनेप। एक आभूषण, अलंकार विनेप। रामचरित मानस व रचयिता गोस्वामी तुलसीदास की पत्नी का नाम।

रथ = का० कु० १४४। का० ११८। वि० ४१। ऋ० ६३।

[सं० पु०] (सं०) स्यदन। शतरज का एक मोहरा जिस ऊट कहते हैं। चार पहियो की गाड़ी।

रथचक्र = का० कु० ७२। म० ६।

[सं० पु०] (सं०) स्यदन का पहिया।

रथनाभि = का० २६४।

[सं० स्त्री०] (सं०) घुरी।

रत्न = का० २०१। ऋ० ३१, ७७। म० ६, ११। ल० ४३, ६६। वि० ६५, १०३।

[सं० पु०] (ब्र० भा०) युद्ध, रण, सग्राम।

रत्नहेतु = वि० ५३।

[वि०] (हिं०) लडाईं के लिये।

रमण = का० १५३। प्र० २४।

[सं० पु०] (सं०) विलास, फ्रीडा। मधुन। गमन। पति। कामदेव। अडकोप। गया। सूर्य का सारथी।

रमण = वि० ४८।

[सं० स्त्री०] (ब्र० भा०) जिससे रमण किया जाय। युवता। स्त्री।

रमणी = का० १७१, २४८। वि० ५४, ६१। म० १३।

[सं० स्त्री०] (सं०) २० 'रमण'।

रमणीय = का० २६, ३०, ३५, १०१, १७१।

[वि०] (सं०) ऋ० ३, ६७।

मुदर, मनोहर। रमण करने योग्य।

रमणीहृदय = का० कु० ७०, ७१।

[सं० पु०] (सं०) रमणा का हृदय।

[रमणी हृदय—'इंदु' कला ५ खंड १, किरण १, जनवरी १९१४ मे सत्रयथम प्रकाशित और काननकुमुम मे पृष्ठ ७० ७१ पर सकलित १४ पंक्तियों की कविता। देलिए प्रमाद का चतुष्पदी। रमणी का हृदय अथाह है। उस का रहस्य जानना सहज नहीं है। वह स्मृति की तरह अपार है। उस के भातर क्या है और

बया बया यह रदा है यह बिनी को
पात नही हो पाता । जस बय से बनी
चोरी के भीतर बया है कोई नहीं
जानता लेकिन जब उगम से बभा बनी
ज्वालाभुग्ना पूर पड़ता है तो सबको
भस्म कर दना है बया ही नारी का
हृदय है । यह स्नेह से भरा हुआ स्वच्छ
है और उस के भीतर सिधु का ज्वाला
मुखी छिपा रहता है । रहस्यमय रमणी
का हृदय पाय है ।]

रमति = वि० १३२ ।

[क्रि०] (प्र० भा०) रमना है ।

रमती = वि० २८ ।

[क्रि०] (प्र० भा०) बिलास करती है, धूमती फिरती
रहती है ।

रमा = का० १६४ ।

[स० स्त्री०] (सं०) लक्ष्मी, कमला, चचला ।

[रमा—देखिए लक्ष्मी,]

रमा हुआ = का० कु० ८६ ।

[वि०] (हिं०) त मय ।

रमि = वि० १८४ ।

[क्रि०] (प्र० भा०) रमना कर ।

रम्य = का० ८ १५, का० कु० १०५ । का०

[वि०] (सं०) ६३, १८२ २२४, २७७ । वि० ४५,
१५७ ।

रमणीय, सुदर, मनोरम ।

रम्यतटी = प्र० ३ ।

[सं० स्त्री०] (सं०) सुदर किनारा, सुदर तट ।

रम्यतीर = वि० १४७ ।

[सं० पुं०] (हिं०) सुदर तट, मनोहर किनारा ।

रम्य फलक = का० १४८ ।

[सं० पुं०] (सं०) सुदर तस्वी । सुदर हथेली । सुदर
फल ।

रमे = वि० ४६ ।

[सं० स्त्री०] (सं०) रमा का 'सवोधव' ।

रव = का० १३ । ल० ५६ ।

[सं० पुं०] (सं०) धरति । गुजार का शब्द ।

रवार्थ = वि० १०१ ।

[सं० पुं०] (प्र० भा०) रमण करीवाने प्राणी ।

रवि = का० २१ । का० १७४, २४७ । ऋ०

[सं० पुं०] (गं०) ८८ । ल० १३, ४४ ।

गुण, भातु, निरकर । मंगार ।

रथिकर = का० ३० । ऋ० ७६ । प्र० १८ ।

[सं० पुं०] (सं०) गुण की किरणों ।

रथिकर सदृश = का० कु० १०० ।

[वि०] (सं०) गुण का किरण के समान ।

रथिकरोज्ज्वल दाम = का० कु० ६६ ।

[सं०] (सं०) गुण की स्वयं किरणों की रज्जु का
माला ।

रथि किरन = वि० २६ ।

[सं० स्त्री०] (हिं०) मूर्य का किरणों ।

रथिषद = ल० १३ ।

[सं० पुं०] (हिं०) मूर्य चद्र ।

रथिशिम = का० ११ । का० कु० १०४ ।

[सं० स्त्री०] (सं०) गुण किरण ।

रथि शशि तारा = का० १६० १६५ ।

[सं० पुं०] (सं०) मूर्य चद्रमा और तितारा ।

रथिम = का० कु० ११४ । का० २६३ । ल०
४४ ।

[सं० स्त्री०] (सं०) गुण किरण । किरण ।

रथिमयो = का० २६४ ।

[सं० स्त्री०] (सं०) रथिम का बहुवचन ।

रस = का० २६, ३७, ६६, ७८, १२८,

१२६, १३५ १५१ २६२ २६३,

२६४, २७० २६१, २६३ । वि० ६,

१५ ३६ ६५ ६५, १५७, १७१,

१७४ । ऋ० ९३ । का० कु०, ८३ ।

[सं० पुं०] (सं०) रसना या जीभ । ग्रानद । साहित्य के
अनुसार रति हास, शोक, क्रोध, उत्साह
भाव । आश्चय । निर्वेद ।

रस भरना = का० कु० ५१ । का० ६६, १८४ ।

[सं० पुं०] (हिं०) वि० ५६, १६७ १८४, २८६, १६० ।

रस से पूर्ण करना ।

- रसना = वा० कु० ५१ । का० १११, २८५ ।
 [स० स्त्री०] (सं०) जीम । चद्रहार । स्वाद लेना । करघनी ।
 रस वृँद = श्रां० १६ ।
 [स० स्त्री०] (हि०) रम का वृँद ।
 रसभार = चि० ३८ ।
 [वि०] (हि०) रस परिपूष वा अत्यधिक आनन्द ।
 रसमय = वा० २८८ ।
 [वि०] (स०) रम से भरा हुआ ।
 रसमेघ = चि० १४ ।
 [स० पुं०] (स०) रस के जाल ।
 रसरगा = वा० ७७ ।
 [स० पुं०] (स०) रसजनित आनन्द, रसमय आनन्द ।
 रस लोना = ल० ११ ।
 [क्रि०] (हि०) आनन्द लेना ।
 रस लोभी = ऋ० ६४ ।
 [वि०] (हि०) रम का लोभी, रसोलुप (भ्रमर) ।
 रससागर = वा० कु० ३३ ।
 [स० पुं०] (सं०) रसरूपी मिथु या अतिशय आनन्द ।
 रससौं = चि० ६५ ।
 [सं० पुं०] (प्र० भा०) रम से ।
 रसाल = वा० कु० ४८ । चि० ५५, ५७, ६८, १४८, १७५ । ऋ० ६६ ।
 [वि] (स०) मधुर रमनाला ।
 [स० पुं०] (सं०) आम का फल ।

[रसाल—सवप्रथम 'रसु' किरण १२, आषाढ १६८७ में प्रकाशित, चित्राघार म पृष्ठ १५१ पर तर्क लत ब्रजभागा की कविता । मंद मद वायु रसाल के साथ खेल रही है जा अत्यंत मुक्त वा कारण है । तस्वरराज, तुम उदारचरित हो । तुम्हारे ही कारण बसंत बलशाला हाना है । आम्र का मज्जा यो फा मधुर गव के कारण बन सीमपूर है और भीर जो मधु क लोभी है गुजार कर रह है । तुम नया स्यात करते हो और तुम म अच्छा और वीन सजन्हार ह ? जन्मनाल भीम म तुम शीतल छाया दत हा तथा पशिका वा मन चुमात

हो । तुम्हारा हरा भरा रूप देखकर यानिया म मुक्त की वर्षा होती है । नए बादल देखकर तुम पुलकित होते और कोपन को फल का रूप देकर लोगो में वितरण करते हो । तुम अपार यश की प्राप्ति करते हो और तुम्हारे यश का गान डाल डाल पर बठकर विह्वगम करत हैं ।]

- रसालन = चि० १८० ।
 [स० पुं०] (प्र० भा०) आमा ।
 रसाल पुत्र = प्र० १४ ।
 [वि] (स०) माधुर्यातिरेक ।
 [स० पुं०] (स०) आम्र वृक्षा वा समूह ।
 रसाल मजरी = चि० १४७ ।
 [स० स्त्री०] (सं०) आम का बौर ।

[रसालमजरी—सवप्रथम इदु बला १, किरण ८, फाल्गुन ६६ चि० में प्रकाशित और चित्राघार में पृष्ठ १४६ ५० पर सक् लित । यह रोला छत्र म लिखी गई रचना है और इसकी भाषा बड़ी ही जीवत है । यह कविता कवि की उन आरम्भिक कविताया म है जो उसकी भाषा शक्ति का परिचय देता है । बसंत का वृत्ता म रसालमजरी न नया सुन्दर रूप धारण कर लिया है । इसमें अभी थोडा ही मधुर मकरद भीना है और अत्रतक मधुकर न इसे स्पश नहीं किया है । कावरी के रम्य तट से पवित्र मलयानिल धीर धीरे आया । इस कुन कागिनी क अक्षरे को एकएक मछ उडाओ बयोंनि यह मजरी प्रभा अनात घोवना है । यहा धीर धीरे आयो । रे कोजिने डाल से हट कर बठ नही तो तगा पचम स्वर सुन मनरा हिल जाता है । तुम्हारी आँवा का अनुगम यह कामन डालो सह नही मकया । बोलना हा हो तो स्वल्प मधुर स्वर पास बठार धोल ले । तब तक इगव साथ

द्विद्विधा न कर जय तब नि मत्तवानित
के स्वर्ण स यह मजरा नव नी न वन
जाय । इगणे बटि म गो राज्यापन
है वह गभी प्रवार स वृष्ण के प्रग वा
मधिकारी है । नित्य प्रत मधुकर यही
इसके पुत्रो वा मधुवान करता है और
यह मंजरी उसे नित्य गव न लगता है ।
तुमस विनती करता हूँ छुपा करन गुन
लो । भती सिखावन है, दग भवन
हृदय म स्थान दा । चचलता तजा ।
यह पवित्र मंजरी है इसपर सौभाल कर
पाव रता तावि यह वही भ्रान्त
कसित न हो जाय ।

रसाला = चि० ६० ।

[स० पु०] (ब्र० भा०) ग्राम ।

[वि०] मधुमय, रसभरा ।

रसीली = ब्रा० १३ । ऋ० ५७ ।

[वि०] (हि०) मोठी, मधुमय, सरस ।

रसीले = वा० कु० ११ ४६, १११ । वा०
१६३ । चि० ३ ।

[वि०] (हि०) मोठे सरस ।

रसोज्ज्वल = चि० ७० ।

[वि०] (सं०) ग्रामद की गरिमा से उज्ज्वल ।

रस्सी = वा० १११ ।

[स० स्त्री०] (हि०) डोरी रज्जु ।

रहना = आ० ३ ११, २० २५, २६ ४१
४१ ४७, ४६, ६६ ७१ । व० न, ६
१४ १७ १६, २२ २४ २६, २७
२८, ३० । वा० कु० १०, १२ १३,
१५, २१ २२ २८, २६, ३० ३४
३५, ३६ ३७ ८१ । वा० न, १०
१४ १६ २० २४ २६, ३३, ३५
४५ ५७ ७१ ७२ ७३ ७४, ८१,
८२ ८८, ९२ ९६ १०३ १०६,
१११, १६५ १७६, १८० १८२
१८३, १८५, १८६, १९०, १९१
१९२, १९४, १९५, १९६, १९७
१८८, १९९, २००, २०१, २०२,

२०६, २०७ २०८, २०९, २१४,
२१५ २१६ २१६, २२०, २२७,
२२८, २३०, २३३, २३४, २३६,
२३८ २३९, २४७ २४३, २५८,
२६८, २६९ २६३ २६६, २६५,
२६७, २६८, २६८ २७०, २७१,
२७३ २७७, २७८ २८१, २८२,
२८४, २८६, २८७ २८८ । वि० न,
६, १८ ३४ १० १६ ७२, ६५,
१५३ १५६ १६५, १७७ १७८
१८० १८२ १८८ । म० ११ । ल०
१० ३६ ६२ ६३ ४६ ७६ ।

[प्रि० घ] (हि०) स्थित होना, ठहरना । प्रस्थान न
करना । ममागम करना ।

रहस = चि० ४६ ।

[सं० पु०] (सं०) समुद्र । स्वग ।

[सं० पु०] (हि०) गुप्त भन् धिरी बात । मर्म वा भेद का
बात गुप्त तत्व । मजाक हसी ।

रहस्य = वा० कु० १२५ । वा० १६ ३५, ३७,
४५ ५३, ५७ ६६, ६७ ८१ ८६
१०० ११७ १६५ १६६, १७६
२५१ २५७ २६५ । प्र० ५ २३ ।

[सं० पु०] (सं०) मम वा भेद ।

रहित = वा०, २४ । ल० ५६ ।

[वि०] (स) हान बिना वगर ।

रहिये = चि० ७४ ।

[त्रि०] (हि०) रहना क्रिया का एक रूप ।

रहियो = चि ४८ ६२, ६४, १४७ ।

[क्रि०] (ब्र० भा०) रहो ।

रहि सके = चि० २६ ।

[त्रि०] (ब्र० भा०) रह सके वा रह सकी ।

रहिहो = चि० १६० ।

[त्रि०] (ब्र० भा०) रहूगा ।

रही = वा० कु० १ २ । वा० अनेको वार ।

[त्रि०] (हि०) 'रहना' का एक रूप ।

रहीम रॉ = म० ११ २० ।

[मं० पु०] (फा०) अकबर के नवरत्ना मे से एक का
नाम । दे० अदुरहीम खानखाना' ।

रहै = वि० २, १४ २५ ४३, ७०, १०१, १०८, २३६ ।

[क्रि०] (ब्र० भा०) रहै ।

रहो = क० १४ । वि० ८६, २६७, १७२ ।

[क्रि०] (ब्र० भा०) ठहरा, रुका ।

रह्यो = वि० ४१ ५२, १६६ १६७ ।

[क्रि०] (ब्र० भा०) रह्यो ।

रह्यो = वि० १७०, १८४ ।

[त्रि०] (ब्र० भा०) रहा था ।

राई सा = आ० २० ।

[वि०] (हि०) छाटा मा, न हा सा ।

राक्षस = का० कु० १०१ ।

[स० पु०] (म०) दानव अमुर गतान ।

राका = आ० १८ । का० कु० १११ । का० ६१ । वि० २४ । ऋ० २४ ६५, १६२ । ल० ४३ ।

[स० खी०] (स०) पूर्णिमा । पूर्णिमा की रात ।

राना रानी = का० २८४ ।

[स० खी०] (स०) पूर्णिमाखी रानी । चादना ।

राखत = वि०, ३२, ६६, १३८ ।

[क्रि०] (हि०) रखना है । रक्षा करता है ।

राखनहार = वि० १८७ ।

[वि०] (हि०) रखनेवाले । रक्षा करनेवाले (ईश्वर) ।

राखि = वि० ६६, ७१, ६५ ।

[क्रि०] (ब्र० भा०) रख लो । बचाओ ।

राखिकर = वि० १६३ ।

[पूर्व० क्रि०] (ब्र० भा०) बचाकर, रक्षाकर ।

राखिले = वि० २६ ।

[क्रि०] (ब्र० भा०) रख लो, शरण म ल लो ।

राखिहें = वि० १७२ ।

[त्रि०] (ब्र० भा०) रखेगा ।

राखे = वि० ७०, १०६ ।

[क्रि०] (ब्र० भा०) रख ल ।

राखे = वि० ५६ १७१ ।

[क्रि०] (ब्र० भा०) रक्षा करे ।

राखेंगे = वि० ६४ ।

[क्रि०] (ब्र० भा०) रक्षा करेंगे ।

राग्यो = वि० ४७, ७४, १५८ ।

[क्रि०] (ब्र० भा०) बचाया है, रक्षा किया है ।

राग = का० कु० १, ११, ४३, ४८, ४९, १११ । का० ७४, ८८, ६७, १६५

१६८ २४०, २४२ । वि० ३६ ६७

६३ १७७, १५१, १६८, १७५

१७६ । ऋ० ११, २०, २२, ६७, ८४ ।

प्र० १८ । ल० १६, ४१ ।

[स० पु०] (म०) प्रिय या प्रिय वस्तु के प्रति हानवाला मान सक भाव । ईर्ष्या और द्वेष, प्रेम, अनुग । अगराग । एक वण वृत्त ।

रग निगपत लाल रग । मूय । चद्र ।

महावर । सगत म स्वरो क विशेष

प्रकार तथा श्रम या निश्चित याजना

द्वारा बने हुए गीत का ढांचा ।

रागपूर्ण = का० १८३ ।

[वि०] (स०) राग स लप्य । रागा प्रेमी ।

रागभाव = का १६३ ।

[म०] (स०) प्रेम का भाव । ईर्ष्या भाव ।

रागमय = का० २६० ।

[वि०] (स०) राग से भरा हुआ ।

रागमयी = ल० ५६ ।

[वि०] (हि०) प्रयत्न, प्रमिका ।

रागमयी सध्या = का०, १४२ ।

[वि०] (हि०) अनुरागरजिता सध्या ।

रागमयी सी = का० १६५ ।

[वि०] (हि०) अनुरागरवती सी ।

राग रग = ल० ४७ ।

[म० पु०] (स०) प्रेमानंद ।

राग रगी = प्रे० ११ ।

[वि०] (स०) प्रमानदी ।

रागारुण = का० २६२, २६४ २८० । ल० ४४ ।

[स० पु०] (स०) अनुराग व समान अरुण । वह सालिमा

जा माधुय और प्रम बिधेरती हा ।

रागिनी = ऋ० ६२ ।

[म० खी०] (स०) विन्ध्या स्त्रा । मेनका का कया का

नाम । जयश्री नामक लक्ष्मी । सगीत म

बिमी राग की पत्नी ।

राघव = का० २४, ३६ ४६, ५८, ८८ २६७ ।
चि० ३३, ३५, ४५, ६४ १०६
११० १४६ १६१ । ऋ० ६६

[सं० पु०] (सं०) रघुवशी राजा । रघु के वंश में उत्पन्न
व्यक्ति । रामचंद्र ।

राजकाज = का० १७१

[मं० पु०] (हिं०) राज्य सवधा काय ।

राजकुमार = का० ११ ।

[सं० पु०] (सं०) युवराज, राजा का लड़का ।

राजकुमार से = का० १७ ।

[वि०] (हिं०) राजकुमार व समान ।

राजकुंजर = चि० ६४ । मं० १०, २३ ।

[सं० पु०] (हिं०) राजकुमार ।

राजविह्वल = का० २०७ ।

[मं० पु०] (मं०) राजाओं के चिह्न ।

राजत = चि० १६१ १६२ ।

[क्रि०] (ब्र० भा०) शोभा देवी है, शोभित है ।

राजन् = का० २२, २६ । मं० १० ।

[सं० पु०] (मं०) राजा का सहायक ।

राज्य = का० कु० ११२ । चि० ३० ।

[मं० पु०] (मं०) राजा । क्षत्रिय ।

राजपथ = का० २१२ ।

[सं० पु०] (मं०) मठ का राज मार्ग ।

राजपुत्र = का० २२ ।

[सं० पु०] (सं०) राजा का पुत्र । क्षत्री ।

राजपूत = मं० ५, ७ १० । लं० ६६ ।

[सं० पु०] (हिं०) क्षत्रिय ।

राजपुत्रा = लं० ७७ ७८ ।

[सं० पु०] (मं०) राजा का पुत्र ।

राजमद रग = का० कु० १०२ ।

[वि०] (सं०) राजाचित शोभिमान का ध्यान ।

[राजमतेरर—मवप्रथम द्रु' बना ३ विरग ५
परवरा १८१२ म प्रकाशित । वा ५ म
पुस्तिका व ५ म प्रकाशित । म
प्रकाशित । इय कविता म ५ वा द्यवार
वर्णित है जिनमें मद्यत पदम जाज व
मद्यमन म मकर उदका । व ५ इ त क का
वृत्त है । पंठ म उदक म ५ वाचना

की गई है कि भारत दुखा न रह जाय,
इय सुखी बना दो । इतना सुखा बना
दा कि भारत तुम्ह भूले नहीं ।]

राजशरण = का० १८६ ।

[मं० क्षी०] (सं०) राजा का शरण ।

राजसभा = चि० ५२ ।

[मं० क्षी०] (सं०) राजा की सभा ।

राजसुर = चि० ४३, ५७ ।

[वि०] (सं०) राजाचित मुख । राजाघा के तुल्य मुख ।

राजसूय = का० कु० ११२ ।

[सं० पु०] (सं०) वह धन जिसको करने का अधिकार
केवल मन्त्राट को होता है ।

राजस्य = का० ८४ ।

[सं० पु०] (सं०) भूमि आदि का वह वर जो राजा या
राज्य को दिया जाय ।

राजहो = चि० २३, ४६ ।

[क्र०] (ब्र० भा०) शोभित दात है ।

राजा = का० १० । का० कु० ४७ । चि० ३३,
७१ ।

[सं० पु०] (सं०) क्रिया दश या जाति का प्रधान शासक
श्रीर स्वामा । श्रावपति, मालिक ।

रानि = चि० ५५ ।

[मं० क्षी०] (सं०) पात वतार ।

राजिय = मं० २३ । लं० ७६ ।

[मं० पु०] (सं०) दमल ।

राजी = ऋ० ५१ ।

[वि०] (प्र०) नष्टमत अनुशूल । निराग, स्वस्थ ।
प्रथम पुता ।

राजे = चि० ४८ १४०, १७० १६१ १६२ ।

[वि०] (ब्र० भा०) विराजमान है । शाय करता है ।

राज्य = का० १८ २० २७ ३० । का० कु०
६६ । का० २६६ । चि० ८८, ७५,
७६ १६१ । लं० ७१ ७८ ।

[सं० पु०] (सं०) राज्य का नाम शोभन । एक राजा
या केंद्राय मत्ता द्वारा शोभित दश ।

राज्या = चि० ७१ ।

[वि०] (सं० ना०) राज्य किया । शोभित हुआ ।

- रात = का० ८८, २१७, २३३, २७०। वि० १८, १८२। ऋ० ५२। प्र० २, ५८। ल० ११, २०, २५, ३१, ३७।
- [सं० स्त्री०] (हि०) मृगश्रिष्ट से लेकर सूर्योदय तक का समय। रात्रि, निशा, शबरी, विभावरी, रजनी।
- राती = वि० १२।
- [वि०] (हि०) अमुरक्त।
- रातें = आ० ७०। का० १७८, २०७। वि० १०१, १७२। ल० २१, ४५।
- [सं० स्त्री०] (हि०) रात का बहुवचन।
- रातों = का० १८४।
- [सं० स्त्री०] (हि०) रात का बहुवचन।
- रात्रि = का० १३। का० कु० ८। का० १८६, २६१।
- [सं० स्त्री०] (म०) रात।
- रानी = आ० ७६। का० ६३, १४८ १८४, १८७ १६६, २०१। वि० ७१, ७४। ल० ४५ ६७, ७१ ७२, ७३ ७५।
- [म० स्त्री०] (हि०) राजा की धर्मपत्नी। स्वामिनी मालकिन। स्त्रियो व लिंग आदरमूचन शब्द।
- राम = का० कु० ८६, ८७, ६६, ६७, ६८, ६८ १०१। वि० ४८ ५१ ५२। ऋ० ६३।
- [सं० पुं०] (म०) राजा दशरथ के पुत्र सीता के पति का नाम आराम। इश्वर।
- [राम—भयोध्या कं सुविख्यात राजा दशरथ क चार पुत्रा म ज्येष्ठ। भयोध्या के रघुनक्षाय राजाभा म परमाक्ष वभव शाला आदश भयोध्यापुत्र्य तथा माना के पति। वामीक और तुनमी व कापनायक।]
- रामचरित मानस = का० कु० ८७।
- [सं० पुं०] (म०) राम क जीवनवृत्त पर गोरवामा तुनमी दशमी रचित हिंदी भाषा का प्रासिद्ध प्रबवात्मक काव्य ग्रंथ। दक्षिण महा कवि तुलसीदास।

- रामबाहु = का० कु० १०३।
- [सं० पुं०] (हि०) राम के हाथ।
- राम वैदही = का० कु० ६५।
- [सं०] (हि०) राम और सीता।
- राशिसुख = का० ८६, ६१।
- [वि०] (म०) सुख का राशि। सुख का ढर।
- राशिरुत = का० २६८।
- [वि०] (सं०) ज्ञातवृत्त म पढनगल तारा के वारह समूह म से किसी एक या कुछ या सबके द्वारा किया हुआ। तारो का वह समूह निम्नलिखत ह—मघ, वृष मिथुन, कर्क मि० व या तुला वृश्चिक, धनु, मकर कुम्भ और मीन।
- राष्ट्र = का० १६३ २६६, २६६।
- [सं० पुं०] (सं०) राज्य दश। एक राज्य मे बसनेवाला पूरा जनमूह।
- राष्ट्रनीति = का० २४३।
- [सं० स्त्री०] (सं०) किसी भा राष्ट्र द्वारा अपनाई गई नीति।
- रास = का० कु० १११।
- [म० पुं०] (प्र० भा०) प्राचीन भारत के गावो की एक श्रृंखला जिसम घेरा वाचकर नाचते थे। श्रावृष्ण और रामलीला या उमका अभिनय। घाड़ बल आदि का लगाम। तलिहान म रखे घना का ढेर।
- राह = का० ६८, २४१, २४२। का० कु०, ५१। वि० ६५। ऋ० ५१, ५२।
- [सं० स्त्री०] (हि०) रास्ता पथ।
- राहु ग्रस्त सी = का० २३६।
- [वि०] (हि०) राहु द्वारा चनेत होने के समान।
- [राहु—अथर्ववेद म राहु का निर्देश मूय का प्रमने-वाल दानव व रूप म एक उस दनु का पुत्र बताया गया ह। कुछ ग्रंथ म इन कश्यप एव सिद्धिना का पुत्र बताया गया ह। यह पापघ्न भा माना जाता है। मनुग्रन्थन व बाद प्रच्युत रूप से जब यह अमृत का पान कर हा रहा था त्रि मूर्त्य और चंद्र न इनकी सूचना विष्णु का दी और विष्णु न इनका

सिर घड़ से अलग कर दिया। राटु वा निर्माण सिर स ह्या और दोष अग से केनु वा। मूय और चद्र स आज भी इनका द्वेष माना जाता है और उह आज भो राटु और वेनु प्रसते ह जिसत ग्रहण लगता है।]

रिक्त = का० ३६, ११७ १८३, २८३। ऋ० २५, ३८। ल० ३८, ५२, ७१।

[वि०] (स०) खाता खाता। निधन।

रिक्तावस = वि०, ४१।

[क्रि०] (प्र०भा०) किसा का अपन पर प्रस न या मोहित कर लेता है।

रिक्तावहि = वि० १००।

[क्रि०] (प्र०भा०) किसा का अपन पर रिक्ताते या माहित करत है।

रिमभिम = ना० २२५।

[सं०] (हि०) वर्षा की छोटा छोटा बूद गिरना, फुहार।

रिस = का० १८४।

[सं०] (प्र०भा०) प्राय, रोप।

री = वि० १६३। ल० ६७।

[प्रय०] (हि०) सबोधन वा चिह्न (स्त्रयो के लिय)।

रीभता = वि० १५५।

[क्रि०] (प्र०भा०) रीभता है। दे० 'रीभना'।

रीभना = प्रे० २४।

[क्रि०] (प्र०भा०) किसी व रूप गुण आदि के कारण उस पर प्रस न अनुसक्त या माहित होना।

रीभा = का० १५८।

[क्रि०] (प्र०भा०) रीभना क्रिया वा भूतकालिक रूप, माहित हुआ।

रीति = का० २४३। वि० ३५, १६७ १८२।

[सं०] (सं०) कोई काम करने वा ढंग वा प्रकार। रिवाज परिपाटी नियम। साहित्य में वर्णों की एमा याचना जिसमें वर्णों में मात्र प्रमा माधुप प्रादि गुण प्रा सके।

रती = का० कु० ७३। ल० ११।

[वि०] (हि०) साता, रिक्त, शू म।

रुड = म० ७।

[सं०] (सं०) मिर कट जाने पर खाली बचा हुआ धड। वह शरीर जिसके हाथ पाँव कट गए ह।

रुकना = का० ७७। क० १४। का० कु० ४६। का० ६४, ६६, १०५, १६०, १६१, १८६ २०१ २१०, २१४, २२०, २७६, २८४। प्र० ४, १५। म० ३। ल० ३०।

[क्रि०] (प्र०) (हि०) गति, प्रवाह आदि में किना प्रकार का विग्राम या अवरोध होना। अटकना। अवरुद्ध होना। ठहर जाना।

रुनेवाली = का० २०६ २४१, २६१।

[वि०] (हि०) (बह वस्तु) जा रुक जाय।

रुक रुक कर = ल० २६।

[क्रि०] (वि०) (हि०) गतिमय क्रिया में बार बार रुक कर।

रुकावट = क० १४। ऋ० ६०।

[सं०] (सं०) (हि०) रुकने या रोके जाने की क्रिया का भाव। अवरोध, रुकाव।

रुस = का० ४५। वि० १७३।

[सं०] (का०) मुह। आहति। चेष्टा चेहरे या आहति से प्रकट होनावाली इच्छा।

रुख सो = वि० १।

[वि०] (प्र०भा०) चेहरा या आहति से प्रकट होनेवाली इच्छा या अनुसार।

रुपाई = वि० १८३।

[सं०] (सं०) (हि०) 'हला' होने का भाव, रूपान्त। शुद्धता, शुष्की। व्यवहार में सतीव या शाल का अभाव।

रुचता = का० १३६।

[क्रि०] (प्र०भा०) रुचता लगना।

रुचि = का० १६०, १६३।

[सं०] (सं०) मन का वह अवस्था जिसमें अनुसार मनुष्य का वृत्त या वस्तु रुचता लगता है। कता माहित, प्रकृति प्रादि का वृत्ति का पद करनेवाली या न करनेवाली मन का वृत्ति। प्रम, चाह, स्वाद।

रचिर = का० १४२ ।
[वि०] (सं०) मुदर । भीठा ।

रचि सो = चि० ७३ ।
[सं० स्त्री०] (ब्र० भा०) रचि म । हृष्टता से ।

रदन = का० १६१ ।
[सं० पु०] (हि०) रोजे की क्रिया ।

रद्ध = का० १७, ८७, १६६, १६६, १८५,
२१२ ।

[वि०] (सं०) घेरा, रोना या रखा हुआ । बंद ।

रुद्र = का० कु० ८६ । का० १८५, १८६,
२४१, २०२, २५६ ।

[सं० पु०] (सं०) एक प्रकार के गण देवता जो सरया मे
भ्यारह हैं । भ्यारह का सरया । शिव
का एक रूप जा बहुत हा उग्र माना
जाता है जिसे उहाने कामदेव का भस्म
करने तथा दक्ष के ब्रह्म को नष्ट करने के
समय धारण किया था ।

रधिर = का० ११६, १६६ । ल० ६६ ।
[सं० पु०] (सं०) रक्त रत्न, लहू ।

रधिर फुहारपूर्णा यवन कर = म० ६ ।
[सं० पु०] (हि०) रक्त के फुहार से पूर्ण मुसलमाना का
हाथ ।

रज्जाना = का० कु० ८० । भ० ८२ ।
[क्रि० सं०] (हि०) दूसरे का राने में प्रवृत्त करना । खराब
करना ।

रष्ट = का० कु० ८४ । का० १८६ ।
[वि०] (सं०) नागज, कुपित ।

रुसा = भा० २८ । प्र० १३ ।
[सं० पु०] (हि०) शुष्कता, खुपकी । जिम 'यवहार में
सकोच या शीलता का अभाव हो ।

रुखा सा = भ० ३३ ।
[वि०] (हि०) शुष्क ।

रुग्नी = प्र० २३ ।
[वि०] (हि०) 'रुखा' ।

रुरो = का० कु० २१ । वि० ५६, १८० ।
[वि०] (हि०) 'दे 'रुवा' ।

रुरो मन = चि० १८१ ।
[सं० पु०] (हि०) विना किसी मकोच या शीलताभर
मन से ।

रूठ = का० ११७, १७७, १७८, १७६, २५६ ।
[सं० स्त्री०] (हि०) रुठने की क्रिया का भाव ।

रूठना = का० कु० ८४ ।

[क्रि० अ०] (हि०) अग्रमत होकर उदासीन, चुप या अलग
हो जाना ।

रूठी = भा० ३८ ।

[क्रि० अ०] (हि०) 'रूठना' क्रिया का भूतकालिक रूप ।

रूठे = भा० ५० ।

[क्रि० अ०] (हि०) रुठ हुए नाराज हुए ।

रूप = भा० २५ । क० ७ ३, २८ । का०
कु० ११, १३, २८, ५१, ५२, ७६
८६, ६३, १२१ । का० ६५, ६६, ७२,
८१, ६१, १०१, ३६२, २६५, २६७,
२८८ । चि० ८, २५, २८, ४२ ५६,
७०, ७२ १००, १४०, १४६, १५०,
१५८, १६१, १६३, १६५, १७१,
१७७ १८१, १८५, १८६ । प्र० १०,
१५, १८ । म० २ । ल० ६८, ७१,
७६, ७७, ७८ ।

[सं० पु०] (मं०) शकल, मूरत । स्वभाव । प्रवृत्ति सादृश्य ।
शरीर । दशा ।

[रूप—नखशिल वगुन शला पर लिखी गई १६
पक्षिया की अनुकूल कविता जिसमे
आख, वपाल, नासिका, घोवा, दात,
चितवन आदि का वगुन परपरागत ढग
पर किया गया है वकिम अ, कुटिल
कुतल, नील कमल से नेत्र सुदर नासा,
चपल धावा आदि सभी कुछ उसी
पुराना परिपाटी पर वर्णित है ।]

रूपचद्रिका = का० १२५ ।

[वि० स्त्री०] (सं०) चंद्रिका रूची रूप ।

रूपजन्य = प्र० १७ ।

[वि०] (सं०) रूप मे उत्पन्न ।

रूपजलधि = भ० २२ ।

[सं० स्त्री०] (सं०) रूप का समुद्र ।

रूपनिधान = चि० ४६ ।
 [वि०] (म०) रूप का आगार । रूप का निधिवाला ।
 रूपमधुर = वा० ७२ ।
 [वि०] (सं०) रूप का माधुर्य ।
 रूपमाधुरी = वा० कु० ७८ ।
 [वि०] (सं०) रूप माधुर्य ।
 रूपवती = का० २६२ प्र० २ ।
 [सं० स्त्री०] (सं०) गौरी नामक छंद । चण्डमाला वृत्ति का एक नाम ।
 [वि०] (म०) सुदरी, सूत्रमूरत ।
 रूपवाले = ऋ० ६३ ।
 [वि०] (हि०) सूत्रमूरत सुदर ।
 रूपसीमा = श्रा० २० ।
 [सं० स्त्री०] (सं०) रूप सादय की साम्या ।
 रूपहली = वा० १८४ ।
 [वि०] (हि०) चांदी के रंग की ।
 रूपावली = चि० ७३ ।
 [सं० स्त्री०] (सं०) रूप की पक्ति ।
 रे = चि० १७० । न० ३४ ३५, ३६ ।
 [प्र० य०] (हि०, सवावन का चिह्न ।
 रेख = वा० ५० ५८ ।
 [सं० स्त्री०] (हि०) रेखा लकार । चिह्न, निशान । गिनना, गणना । नई निवली हुई मूर्छे ।
 रेखा = श्रा० ४५ । वा० कु० ६५ । वा० ५ ३६, १०४ १०५ ११७, १२१, १४० १५६ २३६, २६१ २७३ । चि० ६५ ।
 [सं० स्त्री०] (सं०) बहू लकीर जिसमें समझ हो पर चौड़ाई और मुटाई न हो ।
 रेखाएँ = श्रा० ६७ । वा० १८० । न० ६ ।
 [सं० स्त्री०] (म०) रेखा' वा बहुवचन ।
 रेखावाली = म० ८ ।
 [वि०] (हि०) जिसमें रेखा या लकीर हो ।
 रेखासी = वा० ६६ ।
 [वि०] (हि०) रेखा क ममान ।
 रेणु = वा० २८२ । वा० कु० ८७ ।
 [सं० स्त्री०] (म०) धूल । वातू । पृथ्वा । कणिका ।
 रेणुप्र = वा० २८२ ।
 [सं० स्त्री०] (सं०) लघु छिद्र ।

रे रे = व० २८ ।
 [अ० य०] (हि०) मन्त्रोपन धारक वा चिह्न ।
 रेला = ऋ० ३२ ।
 [सं० पुं०] (हि०) तज बटाव, तोड़ । समूह द्वारा चढाई या धारा । घननी घुक्ता ।
 रेशमी = ल० ४८ ।
 [वि०] (पा०) रेशम का बना हुआ ।
 रेन = चि० २४ १६४ ।
 [सं० स्त्री०] (हि०) रात्रि ।
 रैनि = चि० ८५ ।
 [म० स्त्री०] (प्र० भा०) रात्रि ।
 रो = श्रा० ५७ ।
 [क्रि०] (हि०) राना, विलाप करना, रुदन करना ।
 रोइ = चि० ६८ ।
 [प्र० क्रि०] (प्र० भा०) रोना ।
 रोइये = चि० १७८ ।
 [क्रि०] (हि०) दे० 'रोना' । रोघो ।
 रोई = श्रा० ५७ ।
 [क्रि०] (हि०) रो दिया ।
 रोऊ = वा० १२५ १३०, १६७ ।
 [सं० पुं०] (हि०) श्वरोव ।
 रोन्टोन = वा० २३५ ।
 [सं० पुं०] (हि०) छडछाड ।
 रोम्ना = का० कु० ३६, ४४ ।
 [क्र०] (हि०) श्वरुद्ध करना ।
 रोम्न = वा० ८१, १६५ २४८ ।
 [क्रि०] (हि०) राना का पृथक्कालिक रूप ।
 रोमी = वा० कु० ४५ ।
 [क्रि०] (हि०) श्वररोवन बना ।
 रोम्ने = वा० ११८, २३८ ।
 [क्रि०] (हि०) रोम्ना प्रिया का भूतकालिक रूप ।
 रोम = प्र० ६ । म० २३ ।
 [सं० पुं०] (प्र०) बीमारी व्याधि, मृगता ।
 रोम = ऋ० ११ ।
 [सं० पुं०] (प्रा०) प्रतिदिन ।

- रोता = का० १५८ ।
 [क्रि०] (हि०) रुदन करता ।
- रोती = ग्रा० १२ । का० १६, ६६ । ल० १८ ।
 [क्रि०] (हि०) रुदन करती ।
- रोते = ग्रा० ३०, ४७ । ऋ० ६४ ।
 [क्रि०] (हि०) रोग क्रिया का भूतकालिक रूप ।
- रोदन = ग्रा० ६२ । का० १२४, १६५ ।
 [स० पु०] (स०) रोना ।
- रोना = ग्रा० ७७ ।
 [क्रि०] (हि०) प्रलाप करना ।
- रोप्यो = चि० ६२ ।
 [क्रि०] (ब्र० भा०) रोपा । आरोपित किया ।
- रोम = ग्रा० ४६ । का० ४६, १३०, २२५ ।
 [स० पु०] (स०) शरार के ऊपर के छोटे छोटे बाल ।
- रोमराज्जी = का० ८३ ।
 [स० स्त्री०] (स०) रोमावलि ।
- रोम रोम = का० कु० ७६ । चि०, १७४ ।
 ऋ० ६३ ।
 [स० पु०] (हि०) सर्वांग ।
- रोमाच = का० कु० २६ ।
 [वि०] (म०) श्रान्त या भय से रोए का खड़ा होना ।
- रोमाचित = का० १७६ ।
 [वि०] (स०) पुलकित । भय से जिसके रोगटे खड़े हो गए हों ।
- रोमानी = का० ६६ ।
 [स० पु०] (म०) रोमों का पक्ति ।
- रोमावलि = ल० ४५ ।
 [स० स्त्री०] (स०) रोमा की पत्निया ।
- रोय = चि० १६६ ।
 [क्रि०] (ब्र० भा०) रोकर ।
- रोया = का० १३ ।
 [क्रि०] (हि०) राना क्रिया का भूतकालिक रूप ।
- रोये = का० १४०, ११५ ।
 [क्रि०] (हि०) रोग क्रिया का भूतकालिक रूप ।
- रो रो = ग्रा० १५, ५२ ।
 [स० पु०] (हि०) दुष्ठा होकर, रो रा कर ।
- रोली = ग्रा० ६१ ।

- [स० स्त्री०] (हि०) तिलक लगाने की प्रसिद्ध लाल बुकनी ।
 शोभा, सौंदर्य ।
- रो लेती हूँ = का० २३७ ।
 [क्रि०] (हि०) रोग क्रिया का सामान्य वर्तमान ।
- रोख लागी = चि० ५६ ।
 [क्रि०] (ब्र० भा०) रोने लगी ।
- रोवै = चि० १०३ ।
 [क्रि०] (ब्र० भा०) रोता है ।
- रोप = का० १० । का० कु० १०२, १०६ ।
 का० १६६, २४१ । चि० ५३, ५४, १७१, १७५ ।
 [स० पु०] (स०) कोप, गुस्सा, क्रोध ।
- रोपभरी = का० १८१ ।
 [वि०] (हि०) क्रोधित ।
- रोपानल = का० कु० १०८ ।
 [स० पु०] (स०) क्रोधानि ।
- रोहित = का० २१, ३१ ।
 [वि०] (हि०) लाल ।

[रोहिताश्रु—महाराजा हरिश्चन्द्र और या या के पुत्र जो बाद में अयोध्या के राजा हुए । यह वरुणा के भागीवदि से हुए थे ।]

ल

- लकी = का० ४६, २१४ । ऋ० ३६ । प्र० ११ ।
 [वि०] (हि०) जो दूर तक एक ही दिशा में चला गया हो, चौड़ा का उलटा ।
- लवे = का० ३ ।
 [वि०] (हि०) द० 'लवी' ।
- लई = चि० ३६ ।
 [क्रि० स०] (ब्र० भा०) 'लैना' क्रिया का भूतकालिक रूप, लिया ।
- लिप = का० कु० १८ ।
 [क्रि०] (ब्र० भा०, ० 'लई' ।
- लकीर = ग्रा० २० । का० १६६ ।
 [स० स्त्री०] (हि०) जिसमें लवाईं हैं किंतु चौगाईं और मोटाईं न हों, रखा ।

- लक्षण = चि० १०३ ।
 [सं० पु०] (सं०) पहचानन का चिह्न, निशान। नाम। परिभाषा। शुभ या अशुभमूचक शरीर का प्राकृतिक चिह्न। चाल ढाल, रंग ढंग।
- लक्षणहार = सं० ३५ ।
 [सं० पु०] (सं०) लक्ष्यरूपा माला।
- लक्षागृह = चि० १०७ ।
 [सं० पु०] (सं०) लाल से बनाया हुआ महल जिसे दुर्गो धन न पाहवो के विनाश के लिए बनवाया था। उस स्थान वा आधुनिक नाम।
- लक्ष्मण = का० कु० ६८, ६९, १०१ ।
 [सं० पु०] (सं०) श्रीरामचंद्र जी के छोटे भाई।
- लक्ष्मी = बा० कु० ८८ । चि० ५४, ६५ । प्र० १६ ।
 [सं० स्त्री०] (सं०) धन वा अविष्ठात्री देवी। विष्णु की पत्नी, कमला, दे० 'रमा'। धन संपत्ति। शोभा। गृहस्वामिनी।
- लक्ष्य = का० १३५ १६३ २६६ । चि० १८६ ।
 [सं० पु०] (सं०) जिसपर दृष्टि रखा जाय, निशान। वह जिसपर किसी प्रकार का आक्षेप हो। उद्देश्य।
- लक्ष्यभेद = वा १५७ ।
 [सं० पु०] (सं०) चलने या उड़ने हुए जीव या पत्थर पर निशाना लगाना या साधना।
- लक्ष्यहीन = बा० कु० ७३ ।
 [वि०] (सं०) उद्देश्यहीन, उद्देश्यरहित।
- लख = बा० कु० १३ । बा० १३३ १७१, १८६ । म० ३६ ।
 [क्रि०] (हि०) लखना क्रिया वा पूजकालिक रूप, देवकर, लखकर।
- लखत = चि० ५० ६६ ७५ १६० १६३ १६८ १७१ ।
 [क्रि०] (हि०) लखना क्रिया वा सामान्य वर्तमान कालिक रूप।
- लखवा = बा० कु० ४४ ४६ ।
 [क्रि०] (हि०) लखना क्रिया का एक रूप। देखवा।

- लखहु = चि० ५७ ७२ ७३, १५६ ।
 [क्रि०] (प्र० भा०) अचलको, देखा।
- लखो = चि० ३१, ४७, ५१, ५३, ५४, १४२ ।
 [क्रि०] (प्र० भा०) अचलकोन किया देवा।
- लखात = चि० ३१, ४७, ४६ १०१ १४५, १४६, १५२ १५४, १५६, १६०, १६१, १६८ १६६ ।
 [क्रि०] (प्र० भा०) लिखाता है। दाख पडता है। दिखाई पडता है।
- लखती = चि० ७१ ।
 [क्रि०] (हि०) दिखाती है।
- लखाय = चि० ३३ ५२ ।
 [क्रि०] (हि०) लखाना क्रिया वा पूजकालिक रूप, लखाकर।
- लखायो = चि० ८५६ ।
 [क्रि०] (प्र० भा०) लखाना क्रिया का पूर्ण भूतकालिक रूप, दिखाया।
- लखि = चि० १५ २८ ३२ ४२ ५३ ५४, ६४ ६८, ६९, ७०, ७१ ७२, ७४, ६१ ६८ १५० १५२, १६० १६१ १६६ ।
 [प्र० क्रि०] (प्र० भा०) लखयर। देखकर। विलोकर।
- लखिहीं = चि० ३८ ।
 [क्रि०] (हि०) लखना क्रिया का भविष्यकालिक रूप देखूगा।
- लखु = चि० ३४ ।
 [क्रि०] (प्र० भा०) लखना क्रिया वा आशार्पक रूप, देखा।
- लखे = चि० २२, ५४ ५६ ५८ ६१, ७५ १५७ ।
 [क्रि०] (हि०) लखना क्रिया वा प्रत्यापक रूप, देखे।
- लखै = चि० १५ ३७ ५१ ६३ ६४ ।
 [क्रि०] (हि०) लखना क्रिया वा रूप लखता या देखता है।
- लखौ = चि० १०१ ।
 [क्रि०] (प्र० भा०) देखा।
- लगव = चि० १७६ ।

[क्रि०](ब्र० भा०) लगना क्रिया का सामान्य वर्तमान कालिक क्रिया का रूप।

लगता लगती = ब्रा० २०। व० १४। वा० कु० १६। का० ३६ ४१, ५० ५२ ८२ ९० ९१, १५०, १५८, १६२, १८८, २१५, २५८ २६०, २६४। म० २०। ल० ३८, ५०।

[क्रि०] (हि०) लगना क्रिया का एक रूप।

लगन = का० १३, १५, १७, २४ २७ ३१, ३३ ७३, २८४। म० ५।

[म० स्त्री०] (हि०) किसी काम या व्यवस्था की धारणा लगाना। तो स्नेह।

लगना = ब्रा० २ बार। व० २ बार। वा० कु० १ बार। का० २७ बार। चि० १७ बार। ऋ० २ बार। म० १ बार। ल० ४ बार।

[क्रि०] (हि०) सटना या जुड़ना। मडा जाना या जडा जाना। बिना आधार पर रचना। क्रम स सजना। जान पडना। चुनचुनाहट आदि मालूम पडना। काम म रत होना।

[लग दो गहने का बाजार—विशाल का गीत, प्रसाद सगान मे पृष्ठ २५ पर सकलित तरला और महापिगल का गान। खाना मिले या न मिले इसकी चिंता नही है। गहनों से नाक छेद कर, कान छेद उसे भर दो तभी प्यार पूरा होगा। इसी से पति पत्नी का प्यार प्रकट होता है।]

लगा लगा = ऋ० ५१।

[क्रि०] (हि०) लगाना क्रिया का पूर्वकालिक रूप। लगा लगा कर।

लगयो = चि० ९, ४२, ५९, ७३, ९९।

[क्रि०] (ब्र० भा०) लगना क्रिया का भूतकालिक रूप।

लगी = का० कु० १८।

[क्रि०] (हि०) लगना क्रिया का भूतकालिक रूप।

लधिमा = ऋ० ४२।

[म० स्त्री०] (म०) लघु का भाव, लघुता। घाठ प्रकार की सिद्धिया मे से एव का नाम।

लघु = ब्रा० ४४, ७०। वा० ५, ३७, ४७, ५०, ८१, ८९, १४८, १५१ १७६, १८०, २२४, २४९। ऋ० ३४। ल० ३८, ४०, ४३ ४६।

[वि०] (स०) छोटा। हलका। नि सार। थोडा।

लघुतम = का० २५८।

[वि०] (म०) बहुत ही छोटा या कम। निस्तत्व।

लघुता = का० २५०। ल० २२।

[म० स्त्री०] (स०) छोटाई हलकापन। निस्सारता, कमी।

लघुभ्राता = का० कु० १२०।

[म० पु०] (स०) छोटा भाई।

लघु लघु = का० १७०। ल० २५ ३०।

[वि०] (स०) छोटा छोटा बिलकुल छोटा या बहुत छोटा।

लचकीला = का० २७३।

[वि०] (हि०) सहज म ही झुकनेवाला, लचकदार। जो सहज म ही परिवर्तित हो जाता हो या जिसमे सहज मे ही कमी वेशी का होना सभव हो।

लजत = चि० ५८।

[क्रि०] (ब्र० भा०) 'लजाना' क्रिया का सामान्य वर्तमान कालिक रूप, लजाती है।

लजाई = चि० २८।

[पूर्व० क्रि०] (ब्र० भा०) शर्माकर, लजाकर।

लजाई = का० कु० १००।

[क्रि०] (हि०) लजाना क्रिया का भूतकालिक रूप।

लज्जा = का० कु० ३५। वा० ९४, १३६, १८५। चि०, ७३। प्र० २०।

[स० स्त्री०] (स०) वह मनोभाव जा स्वभावतः या सकोच, दोष आदि के कारण दुसरा के सामने सिर उठाने या बोलने नही देना, शर्म। मान मर्यादा। हया।

लज्जा कर = म० १२।

[क्रि०] (हि०) लजाना क्रिया का पूर्वकालिक रूप। लज्जा करके।

- लज्जावती = का० कु० ३४। ऋ० ३६।
 [वि०] (सं०) लज्जाशीला।
 [सं० स्त्री०] (म०) लाजवती पुष्प, लजाधुर का फूल।
 लज्जा सा = ऋ० ३६।
 [वि०] (सं०) लज्जा के समान।
 लज्जित = क० २७। का० कु० १२३। ऋ० ३७।
 [वि०] (म०) लजाया हुआ। जो नजाता हो।
 लज्जितो = का० कु० ३८। का० १४२।
 [वि०] (सं०) जिसे स्वभावतः शीघ्र ही लज्जा आती हो, लज्जाशाल।
 लज्जे = ऋ० ३३। क० २३।
 [सं० स्त्री०] (सं०) लज्जा का संबोधन रूप।
 लट = धा० ३८ ६०।
 [सं० स्त्री०] (हि०) केशपाश, उलझे हुए बाला का समूह।
 लटफना = का० कु० १ बार। का० ३ बार।
 प्र० १ बार।
 [क्रि०] (हि०) किसी ऊपरी आवार के सहारे नीचे की ओर झूलना। झुकना। काम का अधूरा पडा रहना।
 लड = का० २५६।
 [सं० स्त्री०] (हि०) एक ही तरह का चीजो को थोड़ी या या माता। रस्ती या डार क कई तारों में का एक तार। लर।
 लडके = का० १६६।
 [सं० पुं०] (हि०) लडका का बहवचन। बालक, पुत्र या बंटा (स्त्री लडकी)।
 लडती = ल० ५१।
 [क्रि०] (हि०) 'लडना' क्रिया का एक रूप। सपर्ष करती।
 लडना = का० ८१। ऋ० ८८।
 [क्रि०] (हि०) भिडना। ऋगया या तर्कार करना। टकराना। सफलता के लिये विरुद्ध प्रयत्न करना।
 लडाईयाँ = का० कु० ११२।
 [सं० स्त्री०] (हि०) लडाई का बहुवचन।
 लडाई = वि० ४१। म० २४।
 [सं० स्त्री०] (हि०) लडने का भाव या क्रिया। सपाम।
 ऋगया मनबन।

- लडियाँ = का० ११५।
 [सं० स्त्री०] (हि०) २० 'लड'।
 लडी = का० कु० १०।
 [सं० स्त्री०] (हि०) २० 'लड'।
 लता = क० १७। का० कु० ३४ ३८, ४१, १०५। का० ७२, ७८, ८६ १६८, १८२। वि०, ३ २२ ५७, १५०।
 ऋ० ५८। म० १६।
 [सं० स्त्री०] (हि०) जमीन पर फलन या किसी आवार पर लटनेवाला कीमल पतला पीया बल।
 [लता—'डु' किं ए छ, वातिक ६७ वि० में प्रकाशित, चित्रावार पुच्छ १५३ पर 'उद्यान लता' शीपक से संकलित ब्रजभाषा का कवित। पुष्पा से लगी हुई नवीन हरी पत्तियाँ मधुमयी लहरा रही हैं। व पेड़ का हृदय में समेटती है जिससे उसका ताप नष्ट हो जाता है। तुम्हारे घारे फूल मकरंद भर हुए ह जो आस के धूल के समान है। तुम किस आशाभंग दृष्टि से देखती हो और वृक्ष के पास खड़ी रहकर भी नहीं बोधती ? यह वृक्ष बड़ा नीरस है। इन्ने क्या मासूम ? तुम ज्या ज्यो हसकी ओर बढ़ना हो त्या त्या यह रुखा होता जाता है क्योंकि यह भ्रजाती जानबूझ कर तपता जाता है। माला तुम्हें सींच कर लगाता है, वहीं तुम्हारा मनभाता है। पर तुम्हारे निरुद्ध तरी वृक्ष है दोड़कर तुम उसी को गले लगाती हो।]
 लताश्री = का० कु० ३६।
 [सं० स्त्री०] (हि०) लता का बहुवचन रूप।
 लतादल = क० १४।
 [सं० पुं०] (सं०) लताका क पत।
 लतामत्र = का० कु० ६८।
 [सं० पुं०] (सं०) पेड़ पर। जड़ो सूटा। रूढ़ा चीजें।
 लतापुं = का० कु० १०। वि० ११।
 [सं० स्त्री०] (हि०) २० 'लताश्री'।
 लताललित = का० कु० १८।

- [सं० स्त्री०] (हि०) ललित या मुदर लता ।
 [वि०] (म०) लनाशो से ललित होने के कारण मुदर ।
 लतावृक्ष = का० २४७ ।
 [सं० पु०] (स०) लता प्रौर पेड पीया ।
 लता समान = का० ४६ ।
 [वि०] (हि०) लता की तरह सुकामल ।
 लता सी = का० कु० १०० ।
 [वि०] (हि०) लता के समान ।
 लतिमा = का० कु० १२२ । का० ६४, १५१, २६५ । चि० १, ५७ । प्र० ३ । ल० १६, ३२ ।
 [सं० स्त्री०] (सं०) छोटी लता । लतर ।
 लतिकाओं = का० १४६ । न० २६ ।
 [मं० ग०] (हि०) 'लतिका' का बहुवचन ।
 लतिमा लास = का० ८६ ।
 [सं० पुं०] (म०) लतिकाया का नाच हवा के भीज व भूमती हुई लतिकायें ।
 लतिमा सी = का० ६७, १४२, १५३ ।
 [वि०] (हि०) छोटी लता के समान, कौमलता का सूचक ।
 लद गई = का० ६४ ।
 [क्रि०] (हि०) 'लदना' किया का भूतकालिक रूप । भार से पूरा हो गई ।
 लदा = का० कु० १४ । म० १६ । प्र० २५ ।
 [क्रि०] (हि०) लद गया ।
 लदि = चि० १५१ ।
 [क्रि०] (हि०) लदकर, लदना' क्रिया का पूर्वकालिक रूप ।
 लदे = का० २७८ ।
 [क्रि०] (हि०) लद गया ।
 लथेडना = म० २ ।
 [क्रि०] (हि०) धूल मिट्टा लगाकर मदा करना । जमीन पर घसीटना । विवाद म विपदा को हरा देना ।
 लपट = का० कु० ७५ । म० १६ ।
 [सं० स्त्री०] (हि०) भाग की लो, भाँच का लो । गरम हवा का भाँका ।
 लपटल = चि० १५ ।
 [क्रि०] (हि०) 'लपटना' क्रिया का सामान्य बतमान

- कालिक रूप । भगडा करता है । लडता है ।
 लपटाई = चि० १५८ ।
 [क्रि०] (हि०) लपटा लिया, लपटाना क्रिया का भूत कालिक रूप ।
 लपटयो = चि० २१ ।
 [क्रि०] व्र० भा०] लपट गये ।
 लपटि = चि० ११, १२ ।
 [पुव० क्रि०] (हि०) लपटकर ।
 लपटि लपटि = चि० १३ ।
 [पुव० क्रि०] (हि०) बार बार लपटकर ।
 लपटी = चि० २२, ६२ ।
 [क्रि०] (हि०) लपट गई ।
 [वि०] (हि०) लपटी हुई ।
 लपटी = का० १८२ ।
 [सं०] (हि०) लपट का बहुवचन ।
 लप लप = ल० ५१ ।
 [क्रि० वि०] (हि०) बार बार लप लप करती हुई या लचकती हुई ।
 लघ = का० २०८ ।
 [वि०] (सं०) प्राप्त, मिला हुआ ।
 लय = का० ११, ७४ १६१, १६३, १६५, २५२ २७३ ।
 [सं० पुं०] (सं०) समाना, विलीन होना । सृष्टि का विनाश या प्रलय ।
 [सं० स्त्री०] गीत गाने का ढग या धुन । संगीत म ताल का निवाह ।
 लय सीमा = ल० ४६ ।
 [सं० स्त्री०] (स०) लय की सीमा या प्रलय का घेरा ।
 लयो = चि० १८४ ।
 [क्रि०] (व्र० भा०) लिया, लेना' क्रिया का पूराभूतकालिक रूप ।
 ललक = का० १०६, १६१, २५६ । ल० ३५ ।
 [सं० पुं०] (हि०) लालवा, लालच ।
 ललकारना = का० कु० १२५ ।
 [क्रि०] (हि०) अपने गाय लहन व लिये या किमी पर आक्रमण करने के लिये बिन्ना वर बुलाना, कटना । प्रचारना ।

ललनाम = आ०, ११। का० २०१।
 [क्रि०] (हि०) 'ललकारना' क्रिया का भूतकालिक रूप।
 लला = १० ४८।
 [म० पु०] (हि०) ललन का बहुवचन।
 ललचना = प्रा० ७७।
 [क्रि०] (हि०) लालच करना। लालसा से प्रपीत होना।
 ललचाई = ल० १७।
 [क्रि०] (हि०) 'ललचना' क्रिया का भूतकालिक रूप, ललचाना क्रिया का रूप।
 ललचाते = वा० ८६।
 [क्रि०] (हि०) 'ललचाना' क्रिया का सामान्य भूत कालिक रूप।
 ललचान = वि० ६।
 [स० पु०] (प्र० भा०) ललचाने का क्रिया। वह जिसे देख लालच प्राप्त।
 ललचावत = वि० १६।
 [क्रि०] (प्र० भा०) ललचान की क्रिया करना। ललचाता है।
 ललजना = वि० १६२।
 [स० स्त्री०] (स०) मुदर स्त्री।
 ललाई = ल० २०, ३२।
 [स० स्त्री०] (हि०) लाल होने का गुण, लाली।
 ललाट = वा० ५। वि० ४७।
 [स० पु०] (म०) मस्तक, माथा।
 ललाम = वा० कु० ८६। का० १३६। वि० २।
 [वि०] (स०) रमणीय, सुन्दर अथ।
 ललित = वा० ८६, १६५। वि० ५, ७१, ७३।
 [वि०] (स०) मुदर। प्रिय। मुकुमारता का लक्षण, मर्दोहर अंगभंगी।
 ललित पत्नी = का० ५१।
 [स० स्त्री०] (स०) वह पत्नी जो विद्या जितने अभिमानन में मुकुमारता और सौन्दर्य का अंगभंगी हो।
 ललित गान = वा० १४५।
 [स० पु०] (स०) सुन्दर एक मनोहर संगीत।
 ललित कालसा = भा० १०६।
 [स० स्त्री०] (स०) वह लालसा या इच्छा जिसका मूल में सौन्दर्य भरा हो।
 ललित = वा० कु० ३८ १००। वि० ६७ ७१, ७३, ७४ ७५।

[वि० स्त्री०] (स०) मुदर, मनोहर, रम्य।
 ललिता स्त्री = वा० ६४।
 [वि०] (हि०) ललिता की तरह, सान्ध्य सूचक।
 ललितसह = वि० ७५।
 [म० स्त्री०] (प्र० भा०) ललिता की।
 ललितार्ह = वि० ७१।
 [म० स्त्री०] (प्र० भा०) ललिता की।
 लला = वि० १८२।
 [स० स्त्री०] (हि०) लला, या उसके लिए प्यार सूचक शब्द। नाशिका प्रयत्नी।
 लल = वि० २८।
 [स० पु०] (स०) बहुत थोड़ा मात्रा। बरस। दो बाछा, छटास निमेष का समय।
 ललमीष ललमे = वि० १३२।
 [३] (स०) ललम पर निमेष मात्र भा।
 लललीन = वि० १८८।
 [वि०] (स०) ललमय ललीन मान।
 ललसत = वि० ४५ ७२ १६०।
 [क्रि०] (प्र० भा०) 'ललसा' क्रिया का सामान्य वर्तमान कालिक रूप। शक्ति होता है।
 ललसै = वि० १०२ २२।
 [क्रि० प्र०] (प्र० भा०) ललस का बहुवचन।
 ललसै = वि० ७१, ९८ १३६, १४६।
 [क्रि०] (प्र० भा०) 'ललसत'।
 ललहत = वि० १४६ १५४, १६५।
 [क्रि०] (प्र० भा०) 'ललहना' क्रिया का सामान्य वर्तमान कालिक रूप प्राप्त करता है।
 ललहर = प्रा० १८। का० ३ १८ ल० १।
 [स० स्त्री०] (हि०) द्विपार। मीन। मानव।

[लहर—'लहर' प्रसाद की रमण्य गारुष्टि है। इसका प्रथम संस्करण भारतीय मन्थर, प्रयाग सन् १६३५ में हुआ। इसमें सन् १६३५ तक पत्र पत्रिकाओं में प्रकाशित व रचनाएँ भी गई हैं जो लक्ष्मी लाली में हैं और पूरा गणना में नहीं आ पाई हैं। लहर में निम्न लिखित ३० मुक्तक और ३ निबंध अथवा कविताएँ हैं।

- १ उठ, उठ री । लघु लघु लोल लहर ।
- २ निज झलका के झपकार में ।
- ३ मधुप मुनगुना कर कह जाता ।
- ४ झरी बरुणा की शात बध्दार ।
- ५ उे चल वहाँ भुनवा देकर ।
- ६ हे सागर सगम झरणा नाल ।
- ७ उस दिन जू जीवन के पय मे ।
- ८ बाता विभावरी जाग री ।
- ९ झाली मे झलल जगाने को ।
- १० झाहे रे, वह अधोर जीवन ।
- ११ तुम्हरी झाला का बचपन ।
- १२ झव जागो जानन के प्रभात ।
- १३ कोमल कुसुमा का मधुर रात ।
- १४ कितने दिन जीवन जलनिधि मे ।
- १५ व कुछ दिन कितने सु दर ये ?
- १६ मेरा झाली की पुतली मे ।
- १७ जग की सजल कालिमा रजना म ।
- १८ वमुधा के झञ्जल पर ।
- १९ झपलक जगता हा एक रात ।
- २० जगती की मगलमयी उपा बन ।
- २१ चिर तृपित कठ स तृप्तिविधुर ।
- २२ वाली झाला का झपकार ।
- २३ झर की देखा है तुमने ।
- २४ शशि सी वह मुदर रूप विभा ।
- २५ झरे झा गई है भूनी सी
- २६ निदय तूने ठुकराया तब ।
- २७ झोरी मानम का गहराई ।
- २८ मधुर माधवा स-या मे ।
- २९ अतरिक्त म झभा सो रही ।
- ३० झशोक की चिना ।
- ३१ गेरुसिंह का झल समपग
- ३२ पेसोला की प्रतिध्वनि ।
- ३३ प्रलय की छाया ।

ये गीत विविध विषया पर हैं और इनका सबध विभिन्न क्षेत्रों से है। यदि उनका वर्गीकरण किया जाय तो उहे निम्नलिखित वर्गों में विभाजित किया जा सकता है, आत्मपरक गीत, रहस्यवादी कविताएँ, लोकपरक गीत तथा ऐतिहासिक

कविताएँ। प्रकाशक ने इस सग्रह के वे विषय म निम्नलिखित सूचना 'लहर' के पृ० ३ पर दी है—
सूचना'

'प्रसाद जी की स्फुट कवितामा का यह नवीन सग्रह है। कवि के गते व हिंदी का प्राधुनिक कविता शली के निर्माता माने जात हैं। अत साहित्य क्षेत्र म यह सग्रह यदि अपना विशेष गौरव स्थापित करे, तो हमें आश्चय न होगा। क्योंकि अनेक दृष्टियों से मह सग्रह कविता मर्मज्ञा की अपनी ओर आग्रहपूर्वक देखने क लिये वाध्य करेगा।'— प्रकाशक ।

सूचना के अनुरूप ही हिंदी साहित्य म इस का यमग्रह का विशेष गौरव है।

अब हम यह देखेंगे कि आत्मपरक गीत को क्या उपलब्धियाँ हैं। इस सग्रह की प्रथम रचना 'लहर है। इनका प्रकाशन 'तरंग' मे हुआ था। यह रचना लहर के वाच्यवरातल का निर्देश करती है। इसमे जावन की लहर स याचना की गई है कि वह तट के सूखे अथवा का प्यार क पुलक से भरकर अब चूम ले, और केवल कमलवन म ही भूनी न रहे। यह कामना इस बात का संकेत देती है कि कवि कमलवन की कल्पना स सूखे जावन क व्यासक कितना तक अपनी का परिधि का प्रसार कर चुका है।

इस प्रकार 'लहर' की भावभूमि विस्तृत है तथा कवि 'श्रीमू' में जगती को प्रकाश देने की कामना को नयी भावभूमि पर स्थापित करने का प्रयत्न करता है। आत्मपरक गीतों म सबप्रथम कवि की आत्मकथा की ओर वनवस ध्यान खिच जाता है। यह आत्मकथा 'हस' क आत्मकथाक मे प्रकाशित हुई थी। यह गात इस बात का साक्षी है कि कवि श्रोतों की सुनना चाहता है पर विगत जीवन की स्मृति अब भी उसने

गीतो की प्रेरणा है। साथ ही कवि सकेत सूत्रों में यह भी संदेश देता है कि अभी आत्मकथा कहने का समय नहीं आया है, क्योंकि अभी उसके प्रयत्न की पूरुता, हूनय की कामना के अनुसार, अपनी सृष्टिरचना नहीं कर पाई है। यह जिज्ञासा वृत्ति सतत गतिशील चेतना के मगल विकास का मणिगोप है। उसके भीषेपन की हृदी बराबर उडाई गई, लेकिन वह तन्स्य रहा। उसने दूसरों की प्रवचना नहीं की। यह सत्साहित्यकार की बहुत बड़ी विशेषता है।

आरामपरक गीतो में निम्नलिखित गीत की अत्यधिक चर्चा है,—

ले चल वहाँ मुलावा देबर,
मेरे नाविक। धीरे धीरे।

यह चर्चा इसलिये है कि कुछ लोग इसी के आधार पर प्रसादजा की पलायनवादी घोषित करने का आनन्दलाभ उठा पाते हैं। लेकिन वस्तुस्थिति यह है कि कवि इस गीत में समरसता के सिद्धान्त का संकेत करता है। दुर्लभस्य के जगत्सत्य द्वारा अमर जागरण का नवव्यंश कवि देता है।

इस संदेश के मूल में अतीत की स्मृतिगर्भ हैं जो याता के रूप में समुच्चिद्रु हो फूँ पड़ी हैं और बिना वा अतीत में वचनवाले भीषेपन का बरजोरी पर भी कवि अपने जीवन का घन परिष्कृत करता है। आब भी उस वह अपने घन के रूप में स्वाकार करता है। कवि उन सुन्दर दिनों की कल्पना करने लगता है जब सावन के सपन घन उसके नयनों का छाया में बरसत थे और जिनसे जीवनस्मृति के मधुर रूप सिस उठते थे। इन जले जगत् की घृणन बनान का बाउ धीरे सजापो से सन्हा विगन करना कवि अब भी नहीं भूतता।

वह कह उठता है 'सुम्हको न मिला रे कमी प्यार' और स्वयं इसका उत्तर भा देता है—

पागल रे। वह मिलता है कब

उसको तो देत ही है सब,

आसु के कन कन से गिनकर

यह विश्व लिये हैं ऋण उधार।

विश्व को ऋण उधार देने की बात अपना महत्त्व रखती है। यहाँ कवि अपने काव्य में विश्व से स्पष्ट रूप में नाता रिश्ता जोड़ता है। भले ही यह रिश्ता विभ्रम मय हो, किंतु आकुल मन का भ्रम उच्छेदित होने पर सत्य और मगल का सोपान बन जाता है। कवि यहातक कह उठता है कि वह अब कौनसे लगा है। वह अपने अनुराग को नभ के अभिनव कलरव में फलने की याचना विश्ववन की नव विरण के रूप में करता है, भले ही रूपविभा उससे छिन जाय। वह कह उठता है—

इस एकांत सृजन में कोई कुछ बाधा मत डालो,
जो कुछ अपने मुदर से हैं दे देने दो इनको।
वह अतात की उतराई मानव का गहराई के रूप में देने की तत्पर हा जाता है। वह शाक, प्रेम, मरण, सब में हगने को याचना मानव को गुराई से करता है। उसे यह चेतना जगाती भी है। खिन्न हृदय वाता रस का यह भिन्नारा प्राचा की मधुमाता में उपा का मधुबाला का साता हृषा दखकर अपना पुहार गुजरित कर उठता है—

घर अचिचन तू बढ़ता जा,

छोड़ दण्ड स्वर अपने,

सोने बाल जग कर दौरे

भरने मुय का सपना।

इस प्रकार, अपने आरामपरक गीता में दून कव मांस खानकर विश्व के मुख दुय से अपने हृदय का सबस स्थापित करने के नियम मवलता दास्य पढ़ता है। इस मवलन के मूल में

प्रसादना के वाच्य का अभिनय कावली भावा क शनदल के रूप में लिखती है, जिसका प्रकाश दो रूपों में स्फुटित है एक तो गीतपरक है और दूसरा अपने में श्र्लोकीक हो गया है। इस श्र्लोकीकता के मूल में श्र्लोकीक प्रेम का श्रमून दर्शन या रहस्यवाद है।

लोकपरक कविताभा का और 'मान जान पर' की शाखाएँ दो रूपों में पूरता दीखती हैं। एक और तो प्रभाता के गायन के रूप में कवि के स्वर गुंजते हैं दूसरा और वरुणा एक चेतना के गीत हैं जिसका सबंध श्र्लोकीक के व्यक्तित्व और वृत्तित्व से है। ऐसे व्यक्तित्व और वृत्तित्व से जहाँ लोकमगल के लिये सचेत है।

यद्यपि भाषा का प्रयोग मन में पूर्व ही कवि जग गया है, ता भी इस पूर्व जागरण की (जगने का) खुमारी का बाद प्रभाव अब उसपर नहीं देखता। अपितु यह पथ पर चल पड़ता है, तथा जीवन में प्रभा का जगाने लगना है। वह यह दटना है विभावरी कोत चली है। अब वह सोये योगी की जगाने का प्रयत्न करता है। यह प्रयत्न होठवा मधाकर नहीं मधुर रूप से, श्र्लोकीक स्नेह सूत्रों के द्वारा वह करता है। मानव जावन को नये रूप में कवि देखता है—

लानना निराशा में डलमल,
धेना और मुख में निहल
यह क्या है रे मानव जीवन
कितना है रहा निखर।

मानव के निखरे जोवन का पार उसका ध्यान जाता है तथा वह मुख और दुख का विह्वलना का अनुमान लगाता है। मानव के इस प्रेम में उनके आत्मपरक व्यक्तित्व की विगट मानव सत्ता के श्र्लोकीक के रूप में प्रस्फुटित किया है।

लहर में सकलित 'धरा वरुणा की शात बच्चार', 'जगती की मगलमयी उपा बन वरुणा उस दिन आई थी' और 'अशोक की चिता' ऐसी ही रचनाएँ हैं। लहर में चार रचना बसी हैं। इनमें श्रमो उल्लिखित प्रथम दो रचनाएँ मूलगध कुटी विहार के मन्त्र में हैं। 'निज अलको के अधार म' और 'शशि सी वह सुदर रूप विभा' प्रसादजी ने चद्रगुप्त नामक नाटक के अभिनय के समय गाये जाने के लिए लिखा था। चद्रगुप्त का अभिनय वतमान गरीब टाकान में, सम्भवत जिनका नाम उस समय एकसलियर सिनेमा था, १७ दिसबर सन् ३३ को हुआ था। मूलगध कुटी विहार से सबद्ध रचनाओं के द्वारा विश्व मानवता का जयघोष करने का कवि ने प्रयत्न किया है तथा तिमिर हर कर विश्व के दुखभार हरण की भगवान् बुद्ध से याचना की है। वा भी भगवान् बुद्ध की श्रभिवदना में मध्य पथ की प्रशंसा का गया है, और उस ही उद्धार का मार्ग धारित किया गया है। दूसरी रचना जो मूलगध कुटी विहार से सबद्ध है, उसका अभिवाचन मगलाचरण के रूप में समाराट्म्य में किया गया था। उस रचना में गौतम का चेतना का तन की तारण्यमयी प्रतिभा तथा प्रता प्रतिमितता की गरिमा धारित किया गया है। सार ही वमचक्र के प्रवचन द्वारा युग युग का मानवता को कल्याण मध की इस ज प्रभूमि का नव आभरण सदेश भी सुनाया गया है। वह सन्धन भूलन की बात भी कहा गया है, जिसे धम की दुहाई देरी था।

तीसरी रचना 'अशोक की चिता' कलिंग विजय से उत्पन्न पाठा की आधार बनाकर लिखा गया है। इसमें विजय पराजय

के बुद्ध के भक्तों की गयी है, तथा मानव से मानव के प्रति स्नेह की याचना की गयी है। जग की बभ्रव की मधुशाला में पामल बताकर उठने और गिरनेवाला कहा गया है तथा इस ज्ञानिक रागरग के रूप में मायता दी गयी है। इस रचना द्वारा भुवती वसुधा और तपते जग पर स्नेह की करुणा बरसाई गई है और सृष्टि की मंगल कामना की गई है।

इस रचना का देखकर अनेक व्यक्ति सहज ही एसी कल्पना कर लने हैं कि बुद्ध के बरख्तावाद में आन्वयित हो प्रसादजी का मन बौद्ध रंग में रग गया था। भगवान बुद्ध शांति के सदशवाहक हैं। वे जीवन काल से भगवान् के रूप में अपने देश में पूजित होते चले आये हैं। उनकी वदना निर्विकल्प रूप से प्रत्येक भारतीय करता है। वदना कृतित्व के प्रति अज्ञात की सूचिका है। अज्ञात की अपनह गहो है कि अज्ञानु अज्ञापण के कारण अज्ञान के विचारों में रग गया है। प्रमाणा ने बुद्ध के कृतित्व का यहाँ पर अभ्यथना की है और ऐस भवमर पर अभ्यथना की है जय बौद्ध का उत्सव था और वह जयज उम भूमि में हा रहा था, जिस भूमि में उदका अज्ञान आम्ना है, जिस भूमि में प्रिय का मन्त्र प्रकाश किया है। एता स्थिति में अज्ञान और भावना ही ताता है। इन कथितों में भावनामरों का ज्ञान दूसरा ही गहना है। इगविण एता इति मन्त्र रचना का बौद्ध ज्ञान में अज्ञानिता नया मानना चाहिए।

या भी हा कथित एन रूप में प्रमाणा का मार अज्ञानता यही मानना है। उन स्थिति पर स्थिति है। ६ न की राष्ट्रीयता

की बुद्धिम दावार बह जाता है। जिम ममय प्रसादजी ने ये रचनाए लिखी उस समय राष्ट्रीयता का भाव विश्व में सबभ मानस मन का चाणी पर पर था। प्रत्येक राष्ट्र अपने स्वार्थ के लिए दूसरे राष्ट्र के प्राणियों का हनन शोषण हिंसक टुकारा से करना चाहता था। वसा स्थिति में मानवता वाता दृष्टि अपना अग्रतम विवेकता रखता है। यह हाष्ट प्राद का अपना है। जिसमें अपने अस्तित्व का बनाये रखकर दूसरे के अस्तित्व की मर्मादा सन्धित रहने देन की बात उमड कर ती आती ही है, मानवता के कल्याण की मधुर कल्पना भी का जाती है। हिंदी काव्य में विज्ञापकर मातृकाव्य में यह लोकप्रिय दृष्टि अपना मौलिक महत्व रखती है और प्रसाद के उस प्रयत्न का आस्थान करती है जिसके लिए उनका वाद का का प्रजापन प्रमत्तशाल था और वह था मानवता क विविधता ही का मदेश।

ये निह का गतममण पैगारा की प्रतिध्वनि और प्रत्य की छाया शीपक रचनाए निराव एता में हैं। प्रयम दा म राष्टा यता का भावना का एतहामिक प्राधार पर उपापन किया गया है।

नतिदानवाता वाग नतिहासिक राष्ट्रीय स्वय है। वरी अज्ञान और निवला न मोवा दृष्टा। एन कर एन निवला सतापति अज्ञान से मिल गया। निवला वा वागत्र बुद्धभूमि में पराभूत हुआ। वागत्र का दृष्टिवा शक्ति पडे। इग यादा न गाना तट पर बुद्ध यादा शराम निर का निवला का गीरव गाया वा गान करन हुए स्मरण किया। वी चेतना मन्त्र देना है, राष्ट्रम म बुद्धभूमि पर मुक्तु अज्ञानता न बाहुवास मोर पनापरा मा की गाए स प्रथि

मूर्खताल है। मानुषीय के घोर पुत्रा के लिये, हारने पर, प्राण का निजा माँगना, ठीक नहीं, क्योंकि मुद्गभूमि म मरनेवाले ही वास्तव में रिजयी होते हैं। यह गदग देश के घोर पुत्रा को था। भारत के तरणा के लिए यह साहित्य खड़ा का मग था। छत्र प्रपञ्च के कारण, स्वतन्त्रता की मुद्गभूमि म हार कर यदि शत्रु समरण करना पड़े तो प्रथम मृत्यु को चरो, वह विजय की प्रतिभूति है।—रग रचना का यह संदेश है।

पेशोला की प्रतिध्वनि' भी एसा ही रचना है। उग रचना म यह कहा गया है कि राणा प्रताप की इस वारभूमि म भाज बह वीरता कहीं गई, भाज तो सन अता और मौनसा है। सवध सध्या क बलक सो बालिमा उतरा हुई है। काव प्रश्न करता है अस्थिमास का दुचलता लेकर इस मनाह म वीर एसा है, जो छाती ऊँची करके यह कह सवे कि साहे स ठोपकर और बख से परख कर यह देख लिया जाय कि मैं पिशाचो की सीला का बिखरा कर चूर चूर कर दूँगा और उह घूल या उठा दूँगा। पुन कवि पूछता है कि काई बालता क्या नहीं? क्या इन अघड म, अघकार के पारावार म, कोई पतवार धामने वाला नहीं है। कवि को आशा उसी की लाज म उस क्षीण ज्योति के लिये चुं म होकर अटक है। सान्न कवि अत म पुन दुतकार भरा आत्माय सबापन कर पूछता है—
'धोरव का काया,
पढी माया है, प्रताप का,
वही भेवाड
कितु भाज प्रतिध्वनि कहीं?'

भारतीय इतिहास की राष्ट्रीय भावनामा वाली प्रज्वलित गीत गाथाका की आधार बनाकर कवि ने इन दोनो (अनुगत, अमानिद)

निवेन रचनामा की सृष्टि की है। इन दो रचनामा के पठने के पश्चात् एसा पात होता है कि गभार राष्ट्रीय उद्योपन का अमर मदन जीवन की प्रेरणा संभाषला-वित हाकर कवि द रहा है। यह सदेश राशाय हाज हुए भी मानवता का विराधी नहीं है। यह कवि का अरम सफलता है। दूसरा बहुत बडा सफलता कवि का इसम यह है कि उसकी राष्ट्रीयता का यह गणेश गुग युग के लिए है, मनातन है, कालातीत है, पल पल पर परिवर्तित एव जड नहीं है।

'लहर' की अगिम रचना 'प्रलय की छाया' अणना विगत महत्व रखती है। यह रचना सन् १९३१ म 'हस' म प्रकाशित हुई थी। अणद्वदा और मनोवनानिब विषयपण का गभीरतापूर्वक उपयोग और प्रयोगकर प्रसादजी ने 'प्रलय की छाया' की रचना का है। रमणीय रूप और जीवन की पल पल परिवर्तित भावनामा को सुंदर प्रतीको के माध्यम से चित्रित करने का प्रयत्न, ऐतिहासिक कथावस्तु के आधार पर कवि ने किया है। गुजर की रानी कमला का जीवन चलन समय अतीत के रूप सवधी अणन भावो के घात प्रतिघात को अणने मानस म सचाक चित्र की भाँति देख रहा है।

एक मपय एसा था, जब कमला के चरणा को रूप सादय क निखार के कारण समीर छूकर सात लेता था। वह मधुमार म विभार हा गई भा। गुजर राज्य की सारी गभीरता उसकी अगलतिका मे एअथ ही समा गई थी। उसके अघरो म एमी मुसकान खिल पढती थी कि उदन की शत शत दिव्य कुसुमकुतला अप्सराए उमका अघर चुमती थी। जीवनमुरा की उण पहला प्यानी की जिसम आशा, अमिलाया और कामना के

कमनीय मधुर भ्रंकार की वाशा थी देखते देखते कमला भ्रंकी लने लगी। आरों खुतने पर उसने देखा कि विश्व का सारा वैभव उसके पाँवों पर लोट रही है। गुर्जरराज भा उसके सामने झुके हुए हैं। सारी सृष्टि उस युगता को एस भावा से देखती, माना लात्सा का दास मणियाँ—उद्योतिमयी, हास्यमयी विकल विलासमयी—उममे थी। लाग उसने सृष्ट का रहस्य हूँदने लग। उसका सौंदर्य चद्रवात म श्व व समान था तथा हृदय अनुभूतिपूर्ण। गुजर के थाल में वह स्वयम्भूति का सो सुगन्धित था और मधु की वषा करता थी।

निमित्त नटी तद्धिता सो भीह नचाता उसके जीवन म आया। पक्षी की रुतावगाथा सार भारत क बोन वान म पूज उठा। नारी की यगाथा वा दस म भाल उनत दृषा। भारत की नारियो ने इन गौरवगाथा को मुन कर भविष्य का वड टाए से देखना धारम कर दिया। यह देखकर कमला के जावन का लाज भरा निद्रा जाग उठी। वह पक्षिनी से अपना तुलना करने लगी और साचने लगी कि क्या हृदय मेरे पास कहा था ? मैं छी उस समय रूप की महता नापने लगा थी। वह साचने लगी थी कि पक्षिनी सो स्वयं जला था, किंतु रूप व दावानन द्वारा मैं वस ही मुलतान का जल जगी।

गुजर म मुन्तान व कारग लाडव नृत्य अरंभ हुआ। देश की विपत्ति म वमना धरन पत के साथ समर भूमि म क्रूद पडा। इसस कमला का वार पात अत्यधिक प्रसन्न हुआ। तितु हार इनका हा हुई। दस छाहना पडा। निवामित टा दाता गरण धोजन लग। किंतु दुर्भाग्य जनना पाधा करन म भाग पा। दापहृश म जव दाता तर का छाया म पर सो

रहे व तुरका का एर दन भसावात मा आया। गुजरनेज लडत लडते दू उन गय और कमला बलिनी हुई। वह गचन लगा कि पक्षिनी का अनु बरग तो न वर सवी, किंतु पक्षिनी का भूल का परिवार अवश्य बरगा। निहिला के रूप म उमने मुन्तान को गारन का अन्त प्रविगा की। रूप वा ध्यान वह उस समय भा न भुगा सवी। उसन चाह कि तुक्पति मरन के पडले मेरा यह रूप भा दये और सोचे कि मैं नितनी पटान और विभूतिपूण हूँ।

वह नि-तो लार्द गया। वह कभी वहा पति का प्रतिभाव लन के लिये मचलती और कभा गु तान व विमम हृदय म रूप सुदरता का अनुभूति क्षण भर के लिये ही गहीं जगाने का जात सोचता। वह एव हा विचारा म तिरती उतरती रहा।

वह मु तान व समाप पट्टाई गई। उसन आत्महत्या के लिये कृपाण निकाला। किंतु कृपाण छन नी गई। उन क्षण वह मृतु से बचा और साचने लगी कि जीवन अलभ्य है, जावन शोभाग्य है, जावन प्यारा है।

कमला न मुन्तान से कहा क्या मार कर भी मुझे तुम मरने न दोग ? क्या तुम मे मनुष्यता गप नही रह गई है ? मुलतान न उत्तर दिया—देखता हूँ कि भारत का नारिया का गौरव भाग बचल मरना हा है। पक्षिनी का मैं खो चुका हूँ किंतु तुमकी नही खाना चाहता तुम अपना कामतता से मरी क्रूरताआ पर शासन करा।

यह कह कर मु तान ता चला गया पर मुन्तान का रग मटल अत्र कमला क लिये स्वण विजर बन गया।

एक दिन सध्या क समय सटसा बिसा की पदचाप

मुनकर वह चीक उठी। उसके सामने शशव का अनुवर 'मानिक' था। कमला ने उससे पूछा, अरे अभाग यहा तू मरने आया ?

उसका उत्तर था यहा मरने नहीं आया हूँ रानी जीवन पान की आशा में आया हूँ।

मुल्तान भी वहा आ पहुँचे। मानिक का मृत्यु दृष्ट मिला। फिर कमला के कानों में शूँक उठा, जीवन अत्यंत है जीवन मौमाय्य है। कमला ने उच्छ्वास भरे शब्दों में कहा, उस छूट दीजिये। रानी की पहली आगा समझकर, मुल्तान ने उसकी यह बात मान ली। कमला का हृदय बोल उठा—

हाय रे हृदय !

तूने कौडी के माल बेचा, जीवन का मण्डि कोष

और आकाश का पकड़ने का आगा मे हाथ ऊचा किये, सिर द दिया अतल म'।

बणदेव गुर्जरेश भी तो जावित थे उ होने मदेश भेजा था कि आन पर कमला प्राण्य दे द, किंतु वह जीवनमाह वश एसा न कर सकी थी।

मानिक भी तो उससे आज मर जान को ही कहना है। वह पुन सोचने लगती है, मेरा प्रेम शुद्ध कहा है ? रूप के कारण मैं गुजरान की रानी बनी और वहा हूँ भारतेश्वरी का पद प्राप्त कराने का प्रेरणा दे रहा है। भारतेश्वरा का यह पद रूपमाधुरी का उपहार और शृंगार है, यह कल्पना उस मुग्ध किये हुए थी।

मानिक ने मुन्तान की हत्या कर खुशरो के नाम से राजशासन सभाला। पर कमला को अब यह अनुभव हान लगा कि नारा तेरा वह रूप, जिनम पवित्रता की छाया न हा, जावित अभिगाप है। अब उसक सौदर्य के चपल चरण का

सत्ता हिमविंदु सी दुलबन लगी। उसे रूप सत्ता मोदय का पूग कल्पित ज्योतिहीन तारा लगा जा वः मा की घारा मे बिलीन होता दीख पडा। उसके रूप सौंभ्य की सृष्टि अब अमफल हो सो गयो है।

'प्रलय की छाया' हिरी ने उन सफल पवनिवाय मुक्तको म है, जिसकी गौरवगाया भाव और कथा दाजा अष्टिषा मे सनातन है। कथा का आधार पूष्य एतिहासिक है। कवि ने इस एतिहासिक तथ्य म रूप के एकाया मादय की निरर्थकता जिस रूप म प्रतिष्ठित की है, वह प्रसाद का चिरता मादयवाली उस वाचट्टि का पता बताना है, जिसम अज्ञानी शक्ति के निर्माण की ऊर्जस्वित मभाव नाए हैं। इस सत्य के उद्घाटन के अंत म रबाद्र की उवशा प्रसाद की कमला के सामने टिकती नहीं है। यह कवि की अपूर्व सफलता है। हो सकता है कि कुछ लाग कमला के अंतर चित्र का कालिदास के अंतर चित्रा से तुलना करें किंतु यह बात भूलने की नहीं है कि कालिदास के युग म मनोचिन्तन की धार नही था ? वहाँ अनुभूति दशन का, सूक्ष्म निरीक्षण का साम्राज्य था। एसा स्थिति म हम सीमा तक पटुत्वता अपना काम नहीं हा सकता यह माहमिक वाय उपावधारिया को ही घोभा दता है।

लंदर में तीन निर्वाय छ' हैं जो अयन मफल हैं। निदाप छंद का विनेयताया की और सवाधेय गभीरतापुत्र उसके प्रतिश्रवण 'निगला' ने विचार किया है। उ'टान उसके मवष म जा वृद्ध लिया है, उसम नई दान न तो वही दास्य पडी और न मुझे गात ही है। इमलिय परिमल की भूमिका स उन सबय म

जिसे मे वाप्य मे विनीत कर दिया हो
या असीम सागर मे मिला दिया हो ।
साहित्य मे इस समय यही प्रवृत्ति जोर
पकड़ता जा रहा है और यही मुक्ति
प्रयास के चिह्न भी हैं। अन्तर्लोक
ज्यातिमूर्ति की सृष्टि कर चतुर साहित्यिक
फिर उसे अत्यन्त नील मंडल मे लीन
कर देत है । पानवा के मिलने मे विना
अनात चिरन्तन अनादि सवा का हाथ
के इशारत अपने पाम युवाने का
इंगित प्रत्यक्ष करते हैं । इस तरह चित्रा
की सृष्टि असीम मादय मे पयवसित का
जाती है । और भा जाति के मस्तिष्क
मे विराट् दृश्या के समावेश के साथ ही
साथ स्वतंत्रता की व्यास की भी प्रखर
तर बरत जा रहे हैं ।

यही वात छन्द के सबसे म भी है । छन्द भी जिस
तरह बानन क अदर सीमा के मुख मे
आत्मविस्मृति हो मुँह नृत्य करते,
उच्चारण की शृंखला रहते हुए, अन्त
माधुन के साथ हा साथ श्रोताओं को
सामा क आनन्द मे बुना रखते हैं, उनी
तरह मुनन्द भी अपनी विषम गति मे
एक हा साम्य का अकार मीर्य देता है,
जैसे एक ही अन्त महासमुद्र के हृदय
की एक छोटा बडा तरंगें हा, दूर प्रसरित
दृष्टि मे एकाकार, एक ही गति मे उठता
और गिरती हुई ।]

लहर' मे रहस्यवाद से संबद्ध अनेक गीत भी हैं । इन
गाता मे अद्वैत मौल्य की अभिव्यक्ति
वक्त मान है, अह स इद वा समन्वय—
रहस्यवाद की मवमा य सस्थिति—तो
इनमे है ही । इन गीतों मे कवि वदना
के आधार पर मिलन का साधन
उपस्थित करता है । इन गीतों मे
प्रकृतिप्रतीक विधान द्वारा अन्तर्लोक
सत्ता की एक ममसरता की स्थापना
मिलेगी । भावनाओं, अनुभूतियों तथा
अभिव्यक्ति की तादात्म्य स्थिति अनेक
गीतों में समन्वित हीकर साकार हुई है ।

उदाहरण के रूप मे लहर से कुछ
पंक्तिया उद्धृत की जा रहा ह —

तुम हा वीन और मैं क्या हूँ
इसमे क्या है धरा, मुनी ।
मानस जलधि रहे चिर युजित
मेरे द्विज, उन्कर बनो ।

○ ○ ○

देवनाथ का अमृत क्या की माया
छोड़ हरित बानन की आलम दया ।
विश्राम मागनी अन्त,
जिसका दला था सपना,
निस्साम व्याम तल नील अक में,
अन्त ज्योति की झील बनेगी वन सलील
ह सागर सगम अन्त नील ।

○ ○ ○

ठहर, भर आओ देख नयी—
भूमिका अपनी रगमयी,
अस्मित का लघुता आई अन्त—
ममय का सुदर वातायन,
देखने की अदृष्ट नतन,
अरे अभिलाषा के यौवन ।

○ ○ ○

कितने दिन जीवन जलनिधि मे—
विकल अनिल से प्रेरित हाकर
लहरी, नून चूमन चल कर
उठनी गिरती सी रक रक कर
सृजन करण छवि गति विधि मे ।

रहस्यवाद का ऊपर उल्लिखित भावनाएं प्रसाद के
रहस्यवादी पदा मे मिलता है । ये गीत
भी उनमे आभावान है ।

लहर का वैयक्तिक व्यक्ति और समष्टि का
संगम करता है तथा विश्व मानवता
का मधुर बन्पना कर लासमगल के
लय न्यतनशील होगा है । इस प्रयत्न
क मून मे जीवन के आलाक की
शाश्वत आभा है । 'लहर' के गीत
सर्व हैं । भाषा सग समय है तथा
अनेक स्थानों पर उभरा एक सांगोपाग
रूप मे भी दीप्त पडत है । लहर के गीत

साहा मे पूरा तब साहा न साहा का
साहसा मे परिष्कृत है। सहा साहा
क साहासा मे साहा की सहा
साहासा मे साहासाहा है।

- साहा से = धा० १८।
[वि०] (हि०) साहा न साहा।
- साहासा = धा० वृ० ३८।
[वि] (वि०) साहासा त्रिधा वा साहासा वासा
साहा। साहासा।
- साहासा = धा० ३५। वा १८ १८५।
[क्रि० घ०] (वि०) साहासा वा साहासा। साहासा।
साहासा = धा० ३५।
[वि०] (प्र० भा) साहासा त्रिधा वा साहासा
साहासा वा साहासा।
- साहासा = धा० १४ १२१। क० २२ ३६।
[सं० वा] (हि०) साहासा साहासा।
- साहासा = धा० १३, २३।
[सं० स्त्री०] (हि०) साहासा।
- साहासा = धा० २४। धा० वृ० ३६ १४। धा०
[सं० स्त्री०] (हि) ५ ५० १७६ २०१ २२३ २३३।
वि० ४७ क० १५ ३४ ३५ १५
७७। ल० २१।
साहासा साहासा।
- साहासा = ल० ५६।
[वि०] (हि०) साहासासा, साहासासा।
- साहासा = धा० १२।
[सं० स्त्री०] (हि०) साहासासा।
- साहासा = धा० १७।
[वि०] (वि०) साहासासा।
- साहासा = धा० ६३।
[वि] (प्र० भा०) साहासासा।
- साहासा = धा० ८ ३३ ५६। क० ८। का०
[क्रि०] (हि०) १८, ३६, १५२, १६५, २२०, २४१,
२४६ २५२, २६२। वि० १२, २६।
क० ६१।
'साहासा' त्रिधा वा प्रेरणाधर रूप,
साहासा।
- साहासा = धा० ७१।
[सं० स्त्री०] (प्र० भा०) साहासासा।

- साहासा = धा० वृ० १७। धा० ३ ३४ ६३,
[सं० स्त्री०] (वि०) ६८ ९६ ६६ ६७ १०१, १०२,
१०३। धा० २० ३६ ३७।
साहासासा साहासासा साहासासा
साहासासा। साहासासा। साहासासा
साहासासा।
- साहासासा = धा० ९८।
[वि] (वि०) साहासासा साहासासा साहासासा
साहासासा।
- साहासासा = धा० वृ० १७। धा० ८ १४ ८।
[वि] (वि०) १८ २० २४ २४ २४ २४ २४।
साहासासा साहासासा।
- साहासासा = धा० ९, २६।
[वि०] (वि०) साहासासा साहासासा।
- साहासासा = धा० ९, २७ २८ ३६, ४५, ५०,
[क्रि०] (प्र० भा०) साहासासा साहासासा साहासासा।
साहासासा साहासासा साहासासा।
- साहासासा = धा० १८३।
[क्रि०] (प्र० भा) साहासासा साहासासा।
- साहासासा = धा० वृ० ३८। धा० ४१।
[क्रि० घ०] (प्र० भा०) साहासासा साहासासा साहासासा,
साहासासा।
- साहासासा = धा० १६५।
[क्रि०] (प्र० भा०) साहासासा साहासासा।
- साहासासा = धा० ६२।
[क्रि०] (प्र० भा०) साहासासा साहासासा साहासासा
साहासासा साहासासा।
- साहासासा = धा० १११।
[सं० वृ०] (हि०) साहासासा, साहासासा।
- साहासासा = धा० वृ० ४०। धा० ६७, १०१,
[क्रि०] (हि०) १६७।
साहासासा साहासासा।
- साहासासा = धा० ३५, ६१।
[क्रि०] (प्र० भा०) साहासासा साहासासा।
- साहासासा = धा० १५ २२ १०५, १६६।
[क्रि०] (प्र० भा०) साहासासा साहासासा।

- लहो = चि० १६५।
 [क्रि०] (ब्र० भा०) प्रातः वरता है।
- लौघ कर = ल० ४१।
 [क्रि०] (हि०) लपटा क्रिया का पूर्वकालिक रूप।
- ला = वा० ७७।
 [क्रि०] (हि०) लाना क्रिया का ध्रानामुचक रूप।
- लाछन = चि० २८। प्र० २३।
 [सं० पु०] (सं०) दोष, बलक।
- लाछित = क० ३०। चि० २८।
 [वि०] (सं०) जिसे लाछन या बलक लगा हो, कलकित।
- लाइ = चि० १४१।
 [क्रि०] (ब्र० भा०) लाकर, लाना का पूर्वकालिक रूप।
- लाई = ल० १६, ३२।
 [क्रि०] (हि०) लाना क्रिया का पूरणभूतकालिक रूप।
- लाओ = भ० ८४।
 [क्रि०] (हि०) लाना क्रिया का ध्रानामुचक रूप।
- लाओगे = का० १३३।
 [क्रि०] (हि०) लाना क्रिया का भविष्यत्कालिक रूप।
 ले आओगे।
- लारों में = भा० २०।
 [सं० पु०] (हि०) बहुता में।
- लागत = चि० १७६।
 [क्रि०] (ब्र० भा०) 'लगना या लगना' क्रिया का सामान्य वतमान रूप लगता है।
- [सं० जी०] (हि०) किसी काय की तैयारी में होनेवाला यय।
- लामी = चि० ५६, ६०, ६८, ७०।
 [क्रि०] (ब्र० भा०) 'लगना' क्रिया का पूरणभूत रूप।
- लाग्यो = चि० १६१।
 [क्रि०] (ब्र० भा०) लग गया पूरणभूत रूप।
- लाघव = वा० १८२।
 [सं० पु०] (सं०) 'लघु' भाव लघुता, नमी। नमी, छोटाई। हाथ की सफाई।
- लाज = चि० ४१। वा० २०, २४, २५, १७०, १८३, १८४।
 [सं० जी०] (हि०) शर्म। हया। नीड। लज्जा।

- लाजै = चि० ५५।
 [क्रि०] (ब्र० भा०) लाज करती है।
- लाजोहें = चि० ३, ५६।
 [वि०] (ब्र० भा०) सजानेवाली या, लाज करती हुई।
- लातन = चि० १०५।
 [सं० पु०] (हि०) नातो या परा।
- लातो = भा० १८, ७१। का० ३६। भ० ५६।
 [क्रि०] (हि०) 'लाना' क्रिया सामान्य भूत रूप।
- लाता सी = का० १३२।
 [वि०] (हि०) लानी हुई सी।
- लाद लिया = का० कु० १२।
 [क्रि०] (हि०) 'लादना' क्रिया का पूरणभूत रूप। बोझा किसी दूसरे पर रख दिया।
- लाभ = चि० ५२, ६२। म० ८।
 [सं० पु०] (सं०) हाथ में भ्राना। व्यापार आदि में होनेवाला मुनाफा।
- लाय = चि० १७१, १७२, १८५।
 [क्रि०] (ब्र० भा०) लाना क्रिया का पूर्वकालिक रूप।
- लायक = चि० १८४।
 [वि०] (अ०) उचित, उपयुक्त। सुयोग्य, समय।
- लाया = भा० ४०। का० २६१। चि० १८४।
 प्र० १३।
 [क्रि०] (हि०) लाना क्रिया का पूरणभूत रूप।
- लाये = का० १६३।
 [क्रि०] (हि०) ८० 'लाया'।
- लायो = वा० २८२, २८६।
 [क्रि०] (ब्र० भा०) २० 'लाया'।
- लाल = भा० ३६। का० कु० ४६। का० २३५। चि० ६। म० ५। ल० ५१।
 [वि०] (हि०) रक्त वर्ण का।
 [सं० पु०] (हि०) प्यारा पुत्र।
- लालन = वा० २४३।
 [सं० पु०] (हि०) लाल का बहुवचन रूप।
- लालसा = का० २८, ५२, ११६, १३६, १५६, १६४, २३६, २६३, २६८। भ० १६।
 प्र० ५। ल० ३०, ७०।
 [सं० जी०] (सं०) प्राप्त करने वा उत्पन्न इच्छा, लिप्सा।

लालसिंह = ल० ५१।

[सं० पुं०] (हि०) एक व्यक्तिविशेष का नाम।

लालिमा = का० कु० ३० ३६। का० १८३।
चि० १६४।

[सं० स्त्री०] (हि०) लाल हान का भाव। लाली।

लाली = आ० ११, ६६। का० कु० ४५ ७६।
का० ६६ १००, १०३, १३६ १७१,
२८१। चि० १४७। ल० ३०, ४२,
६०।

[सं० स्त्री०] (हि०) लाल होने का भाव, लालपन, प्रतिष्ठा।

लाघरय = प्रे० १८।

[सं० पुं०] (स०) सरस सुदरता। जवला या नमक का भाव या धर्म। नमकीनपन।

लाघरय शैल = आ० २०।

[सं० पुं०] (सं०) सार्ध का पर्वत। नमक का पहाड़।

लाघने = चि० ४१।

[क्रि०] (ब०भा०) लाने।

लास = का० १६०, २६४।

[सं० पुं०] (सं०) नृत्य, नाच।

लिखने लिखते = का० कु० ५१।

[अभ्य०] (हि०) बार बार लिखने की क्रिया।

लिखना = आ० ४५। का० कु० ७६ ८१। का०
३८ ६३ १०६, १६७। चि० ४८।
भ० ४४। म० ६।

[क्रि०] (हि०) लिखबद्ध करना, चिहित या अहित करना काय रचना करना।

लिपट गइ = का० कु० २४, १२४, १२५। का०
१७६।

[क्रि०] (हि०) लिपटना क्रिया का पूर्ण भूतकालिक रूप।

लिपटती = का० १४। का० ६७।

[क्रि०] (हि०) लिपटना क्रिया का सामान्य भूतकालिक रूप।

लिपटा = का० कु०, ६३। का० ४६ १०३,
१४३ १५२ १६८।

[क्रि०] (हि०) लिपटना क्रिया का वृणु भूतकालिक रूप।

लिपटा लिपटा = का० २१।

[सं०क्रि०] (हि०) बार बार लिपटा कर।

लिपटा = का० कु० ७५। का० १०१। का० २२,

[क्रि०] (हि०) ३० 'लिपटा'।

लिपटे = आ० ४८। का० १५१। का० २२।

[क्रि०] (हि०) लिपटना क्रिया का प्रेरणार्थक रूप।

लिपि = का० ६४। चि० १६८। प्रे० २०।

[सं० स्त्री०] [सं०] अक्षरों या वर्णों के विह्वल। वर्णमाला लिखने की प्रणाली।

लिप्सा = का० कु० ८३।

[सहा स्त्री०] [सं०] पान का इच्छा। लालसा।

लिया = आ० ४०। का० १३, १८, २२। का०
१६२, २०६, २८५। प्रे० ६, १०,
११, १२, २३, २५।

[क्रि०] (हि०) ग्रहण या स्वीकार किया, प्राप्त किया।

लिया है = का० ५४।

[क्रि०] (हि०) लेना क्रिया का वृणुभूत कालिक रूप।

लिये = आ० १ बार। का० ५ बार। का० कु०
३ बार। का० २३ बार। चि० ७
बार। म० ३ बार। ल० ३ बार।

[क्रि०] (हि०) 'लिया'।

लियो = का० कु० ४६। चि० ३४, ३५, ७३,

[क्रि०] (ब०भा०) १५६, १६३।

लिया।

लिया च लूंगा = का० २२०।

[क्रि०] (हि०) 'लिवा चलना' क्रिया का भविष्यत् कालिक रूप। साथ लेकर चतुगा।

लीक = का० २५१।

[सं० स्त्री०] (हि०) लकार, रेखा। पगडंडी। रुद्धि।

लीजिए = का० कु० ६। चि० १७५।

[क्रि०] (हि०) लेना क्रिया का प्रेरणार्थक रूप।

लीजे = का० कु० ६। चि० ७१, १८४।

[क्रि०] (हि०) २० 'लीजिये'।

लीजे = चि० १७६।

[क्रि०सं०] (ब०भा०) 'लीजिये'।

लीन = का० १४, १५, १६७, १७७, १६५,
२५७। चि० ५१। का० ३६।

[क्रि०] (सं०) समाया हुआ निम्न। काम म लगा हुआ, लमप।

लीना = आ० ७३।

[क्रि० स्त्री०] (सं०) ३० 'लीन'।

लोने = चि० १७१ ।
 [क्रि०] (ब्र० भा०) 'लेना' क्रिया का भूतकालिक रूप ।
 ली हे = चि० ६८ ।
 [क्रि०] (ब्र० भा०) 'लेना' क्रिया का भूतकालिक रूप ।
 लीन्हो = चि० ५८, ६०, ६४, ६५, ६६, ६७, ६८ ।
 [क्रि०] (ब्र० भा०) ६८, १५६ ।
 लेना क्रिया का पूणभूतकालिक रूप,
 ले लिया ।

लीन्हो = चि० ६५, १४७ ।
 [क्रि०] (ब्र० भा०) दे० 'लीहो' ।

लीला = का० कु० १, ६ । का० ३२, ६३, ७६, १०३, १०४, ११५, १४०, १९०, २५३ । चि०, २३, ४६, १६१ । म० १६ । प्र० ३, १८, २३ । ल० ३०, ६६ ।
 [सं० ली०] (सं०) मनोरंजन के लिये किया जानेवाला व्यापार, माडा, खेल आदि, प्रेम विनाद । साहित्य मे एक भाव । विचित्र काम । श्रवतारा या देवताआ क चरित्र का अभिनय ।

लुटेरा कर्म = का० कु०, ८८ ।
 [सं० पु०] (हि०) लुटनेवाला का कार्य ।

लुटे से = का०, ४५ ।
 [वि०] (हि०) लुटे हुए के समान ।

लुडकना = म० २५ ।
 [क्रि०] (हि०) ऊपर नीचे चक्कर खाते हुए भाग या नीचे की ओर जाना, बुलकना ।

लुडका = भा०, २८ । ल०, ४८ ।
 [वि०] (हि०) जो लुडक गया हो या जिसे लुटका दिया गया हो ।

लुप्त = का० कु०, १०६ । का०, २५२ ।
 [वि०] (सं०) छिपा हुआ । गुप्त, अदृश्य ।

लुब्ध = का० कु०, ८३ ।
 [वि०] (सं०) लाम्बी । लुभाए हुए ।

लुब्धनयन = का०, ३१ ।
 [सं० पु०] (सं०) लुभाए हुए नयन या सलचामी हुई भाँलें ।

लुरि = चि०, २२ ।
 [क्रि०] (ब्र० भा०) 'लुखना' क्रिया का भूतकालिक रूप ।

लुंग = का०, १५२ । म० १७ ।
 [क्रि०] (हि०) लेना क्रिया का भविष्यत्कालिक रूप ।

लू = म०, ५ । ल०, ६६ ।
 [सं० ली०] (हि०) गरम और तज हुआ ।

लूट = ल० ५२ ।
 [सं० ली०] (हि०) लूटने की क्रिया या भाव ।

लूटती = भा०, १० । का०, ४०, ६५ ।
 [क्रि०] (हि०) 'लूटना' क्रिया का एक रूप, बलात् प्राप्त करती ।

लूटना = ल० १७ ।
 [क्रि० सं०] (हि०) मारकर या टरा घमकाकर किसी का धन छीन लेना । ठगना । माहित या मुग्य करना ।

लूटने = चि०, ७२ ।
 [क्रि०] (हि०) 'लूटने' क्रिया का भविष्यत्कालिक रूप ।

लूसा = म०, ११ ।
 [वि०] (हि०) गरम और तज हुआ के समान, झुलना देनवाली गरमी के समान ।

ले = भा०, ४७, ५८, ६६ । क्र०, २० । का०, ३८, ४०, ४७, ४८ २२१, २२५, २२७, २३७, २४४ । म०, १२ । ल० १०, १४, ३७, ४८, ४९ ।

[क्रि० सं०] (हि०) लेना क्रिया का प्रेरणाथक रूप,

लेइ = चि०, ३६, १८६ ।
 [वि०] (ब्र० भा०) 'लेना' क्रिया का भूतकालिक रूप । सकर ।

लेइहें = चि०, ३३ ।
 [क्रि०] (हि०) लेने, 'लेना' का भविष्यत्कालिक रूप ।

लेकर = भा०, ३६, ४४, ४९, ७६ । का०, २१, २६ । का० १४, ६४, १४१, १५०, १५४, १५७, १६१, १७६, १८०, १६१, २४८, २६४ । प्र०, ११, २५ । ल० ४०, ४५ ।
 'लेना' का भूतकालिक रूप ।

लेवे = चि०, १६२।

[क्रि०] (ब्र० भा०) लेना क्रिया का सामान्य वतमान-कालिक रूप।

लेश = वा०, ६२, २५४। प्रे०, १६। ल०, ५१।

[स० पुं०] (सं०) अणु, बहुत ही थोड़ा अणु। चिह्न, निशान

लेहू = चि०, १६६।

[क्रि०] (ब्र० भा०) लेना क्रिया का आनायक रूप, लो।

ले के = चि०, ६, ३८।

[क्रि०] (ब्र० भा०) लेना क्रिया का पूर्वकालिक रूप, लेकर।

लो = व०, १८, २५। वा० कु०, ५८। का०, ५७, १२८, १८३, २४६। ल०, १०, १६।

[क्रि०] (हिं०) दे० 'लेहू'।

लोक = वा० कु०, ६३। का० ७०, ८७। १६६, १६७, १७०, १७१, १७५, १८२, १८३, २३५, २४२, २६१, २६४, २६६। चि०, ४३, १५७, १८३। ऋ०, ३४।

[स० पुं०] (सं०) ससार, जगत्, भुवन। लोग, जनता।

लोकअग्नि = का०, २४७।

[सं० स्त्री०] (सं०) ससार की आग। ताप, दुःख।

लोकन = चि०, १७८।

[स० पुं०] (ब्र० भा०) लोक का बहुवचन रूप।

लोकपथिक = वा०, १२३।

[सं० पुं०] (सं०) ससार पथ म गमन करनेवाला यानी। ससार के सुख दुःख का सहन करनेवाला मानव।

लोकललाम = फा० कु० ५६।

[सं० पुं०] (सं०) अनप्रीय, लोकरजक।

लोग = ग्रा०, ४०। वा० कु०, ५१। वा०, १६६। चि०, १०१, १८३। म०, १७।

[सं० पुं०] (हिं०) जनवग, जनता।

लोगन = चि०, १७६।

[सं० पुं०] (हिं०) लोगो, जनता।

लोगे = व०, २७।

[क्रि०] (हिं०) लेना क्रिया का प्ररणायक रूप।

लोगों = म०, १२। ल०, १७।

[स० पुं०] (हिं०) लोग का बहुवचन।

लोचन = वा०, २३५, २५१, २८०। चि०, ३।

[सं० पुं०] (सं०) नन, आँख, नयन।

लोटना = वा०, १२१। का०, ४६, ८८। चि०, ३८। ऋ०, ३३।

[क्रि० अ०] (हिं०) चित और पट हाते हुए इधर उधर हिलना। लुडकना। कष्ट से बरबटें बदलना। तड़पना।

लोटि = चि०, ४२, ६०।

[क्रि० अ०] (हिं०) लोटना क्रिया का पूर्वकालिक रूप, लाटकर।

लोघ्र = वा०, १८१।

[सं० पुं०] (सं०) एक वृश्च विशेष का नाम, लोघ।

लोनी = चि०, २२, १४७।

[वि० स्त्री०] (सं०) मुदर, मुहावनी।

लोप = प्रे०, १७।

[सं० पुं०] (सं०) नाय, गायव, अतढान।

लोभ = वा० कु०, १३, ६२। चि०, ६५, १४२। ऋ०, ३८, ४४। प्रे०, १०।

[सं० पुं०] (सं०) दूसर की वस्तु प्राप्त करने की कामना। लालच, लिप्सा।

[लोभ सुख का नहीं न सो डर है—भजातशत्रु का मोत, प्रसाद सगीन म पृष्ठ ५८ पर सवालत २ पक्ति की कविता। स्वामि भक्त युवक का कथन है कि मुझे सुख का लाभ नहीं है न तो दुःख से भय है। मेरा प्राण ता कतव्यपथ पर निद्यावर है।]

लोभा = चि०, १५०, १६३।

[क्रि० अ०] (हिं०) लुभा जाना।

लोभी = वा०, ११५। चि०, १४६। ऋ०, ७४

[वि०] (हिं०) लाभ करनेवाला या जिस लाभ हो, लालची।

लोम = वा० कु०, ७७। ऋ०, ३१।

[सं० पुं०] (सं०) रावी, बास।

वक्तता = का० कु०, १०६।
 [स० खी०] (स०) वाक्पटुता। भाषण देने की योग्यता या शक्ति। व्याख्यात।

वक्त = का० कु०, ७५। का०, ६२। ऋ०, ६०। ल०, १२, ६६। वा०, २५०।

[सं० पुं०] (सं०) छाती, सीना, उर स्थल।

वक्तस्थल = का०, १६४, १६८, २३३। ल०, ३१।

[सं० पुं०] (स०) छाता, उर, हृदय।

वक्तो = का०, १२५।

[सं० पुं०] (स०) वक्त का बहुवचन।

वचन = वा०, कु०, १०१। का०, ११०, २४४।

[सं० पुं०] (सं०) मनुष्य के मुँह से निकलनेवाले सायक शब्द। वादा। वाणी, कथन, उक्ति।

वज्र = का, २००।

[सं० पुं०] (सं०) फोलाद। इद्र का एक ताक्ष्य और कठोर शस्त्र। त्रिजली। हारा। भाला।

वज्रसंचित = का०, १६८।

[वि०] (सं०) वज्रमय। वज्र से जडा हुआ। अटल। वज्रलिखित।

वज्रप्रगति = का०, १६५।

[वि०] (सं०) विद्युत् गति, दृढ गति।

वज्रहृदय = प्रे०, ६।

[वि०] (सं०) अत्यंत कठोर हृदय, पापाण हृदय।

वदन = वा० कु०, ३४, ६६, ५१। का० पु०, ११। चि०, ५६।

[सं० पुं०] (सं०) मुख, मुँह। बात कहना, बोलना।

वदनविधु = वा० कु०, २२०।

[वि०] (सं०) चंद्रमा के समान मुख।

वदान्यता = ल०, ५६।

[वि०] (सं०) बहुत बड़ी दानशालता। मधुरभाषिता।

वत्स = वा०, १५। वा० कु०, १०१, १०२। चि०, ६४, ७४, १३७।

[सं० पुं०] (सं०) गीवा वच्चा, बछड़ा। बालक पुत्र।

वर्त्तमान = वा०, १३१, १६५, १६६, २१०। प्रे०, १३।

[वि०] (सं०) जो इस समय हो या चल रहा हो।

उपस्थित, मौजूद, विद्यमान। आयु निक आज़कल वा।

वध = वा० कु०, १२१।

किमी मनुष्य को जान बूझकर किसी

[सं० पुं०] (सं०) उद्देश्य से मार डालना।

वधिक = का०, २८, २६।

[सं० पुं०] (सं०) वह जो प्राणदंड पानेवाले का वध करता है, फाँसी चढ़ानेवाला। व्याध, बहेलिया।

वधू = का०, २४।

[सं० खी०] (सं०) नवविवाहिता स्त्री, दुलहन। पत्नी, माया। पुत्र की बहू।

वधु = आ०, ४४, ४६। का० कु०, ६६, ६७, का०, ६३, ६६, १५३, १५८, २१७, २६५, २६८, २८१, २६०। चि०, २८। ऋ०, १७।

[सं० पुं०] (सं०) जगल। वगीचा। जल भरण।

वनकुञ्ज = वा०, २६।

[सं० पुं०] (सं०) जगल। वाटिका। भाड़ी।

वनकुसुमो = वा० १८१।

[सं० पुं०] (सं०) जगल के प्रमूत। उपवन के फूल।

वनपथ = वा०, ८१।

[सं० पुं०] (सं०) जगल का रास्ता। उपवन का मार्ग। ऊचा नीचा, बीहड़ रास्ता।

वनमाला = का०, २८।

[सं० खी०] (सं०) जगली फूलों की माला। गले से परो तक लटफनेवाली पुष्पमाला।

घनमिलन = चि०, ५५।

[सं० पुं०] (सं०) वन में हुआ मिलन। जगल में हुई अंत।

[वन मिलन—इदु षोप ६६ किरण ६, कला १ म 'वनवासिना बाला' के नाम से प्रकाशित तथा चित्राधार में 'घनमिलन' शीपक से पृष्ठ ६३ ७२ तक संकलित, अभिज्ञान शांकुतल की प्रेरणा से रचित प्रबंध। प्रारंभ में कवि ने हिमालय का वणन किया है और यह बताया है कि हिमालय अपनी प्राकृतिक सुपमा के मध्य पर्वतराज के रूप में विराज रहा है और उनके कटि प्रदेश में महहि वणन का सुंदर प्राकृतिक माध्यम है जहाँ

वन की सहज श्रौतपदा शोभित है। परंपरागत रूप में फूला और पंड पीया का बखान किया गया है। उसके मध्य सुंदर सहज पवित्र स्त्रभाववाले पुनि विराज रहे हैं। वहाँ पर प्रियवदा और अनुसूया नाम की वनवालाएँ सुशोभित हैं। व शकुंतला के लिये चिंतित हैं। परस्पर इनकी बातों इस सबंध में कायमपूरण है। साथ ही उसमें उत्तियाँ और मुद्गावरे भी हैं। उसी समय कश्यप का शिष्य वहाँ आया क्योंकि इसके पूर्व यद्यपि गौतमी राजधानी से आई थी फिर भी उसने शकुंतला का कोई समाचार नहीं दिया था। गालव ने यह समाचार दिया कि शकुंतला एव भरत ने साथ महाराज दुष्यंत मरीचि ऋषि के आश्रम में आ रहे हैं। वनवासियों के बीच में जब यह राज परिवार आया तो उसका बखान कवि ने इस रूप में किया है कि शकुंतला और दुष्यंत के बीच में भरत इस प्रकार शांभित हैं जब धम और शांति के बीच में आनंद। मिलने पर प्रियवदा और अनुसूया दुष्यंत पर कायम करने लगी तो शकुंतला ने उन्हें रोका कि बीती बातें बिसार दो और इनके चरित्र पर कुछ मत कही ताकि हमारा इनका फिर विछोह न हो। अपने पिता वरुण ऋषि से शकुंतला ने अपने इन दोनों प्रिय सखियाँ माँग लिया। मेनका भी इसा बीच में उतर पड़ा। कश्यप ने सब को आशुवाद दिया और सब अपने अपने स्थान की चल पड़े। पूरा बखान काव्यात्मक ढंग से है। सौं य बखान में जो सफलता प्रसादजी ने प्राप्त की उसका बाजबिंदु इस रचना में है। यह रचना प्रसादजी के सहज प्रेमसौंदर्य का परिचायक है।]

वनलक्ष्मी = का०, २२२।

[सं० स्त्री०] (सं०) वन की छटा, वन की शोभा। वन की देवी।

वन धन = का०, १५३। प्र०, ६।

[अर्थ०] (सं०) एक जगल से दूसरे जगल की।

[वनव्यसिनी जाला—देखिए वन मिलन।]

वनवासिनी = का०, १०२।

[सं० पुं०] (सं०) जगल में रहनेवाला। बस्ती छोड़कर वन में रहनेवाले व्यक्ति। जगली, अर्थम्य व्यक्ति।

वनवैभय = का०, १०१।

[वि०] (सं०) वन का ऐश्वर्य, जगल की मर्दा। वन की शोभा।

वनशोभा = म०, ६।

[सं० पुं०] (सं०) वन की-छटा, जगल का सौंदर्य।

वनस्थला = का०, २३५।

[सं० स्त्री०] (सं०) जगली स्थान, वनभूमि। वनसड।

वनस्पति = का०, ७८।

[सं० स्त्री०] (सं०) वन पीने। जडा बूटी।

वनिता = वि०, ७७। म०, १११।

[सं० स्त्री०] (सं०) नारी, स्त्री। प्रिया प्रमिष्ठा। रमणी।

वनिताश्र = प्र०, ७।

[सं० स्त्री०] (सं०) स्त्रियों, नारियाँ रमणियाँ।

वनो = का०, १८२।

[सं० पुं०] (हिं०) दे० 'वन' (बहुवचन)।

वनो से = का०, १८२।

[सं० पुं०] (हिं०) जगल का मध्य से।

वय देश = वि०, ७४।

[सं० पुं०] (सं०) जगला प्रदेश जगला, प्रात। अर्थम्य एव अर्थि चित जगली इलाका।

वन्या = का०, १६।

[वि० स्त्री०] (सं०) वन में पैदा होनेवाला वनोद्भवा। जगली।

वपु = का०, ७६, २८८।

[सं० पुं०] (सं०) शरार। देह।

वय = का०, ७४, २१३। वि०, ७०।

[सं० स्त्री०] (सं०) उम्र, अवस्था।

वर = वा० कु०, १०६ वा०, ३१, २११,
[म० पु०] (स०) चि०, ४५, ७०, ३६।
पति, स्वामी। दुलहा। किमी पूज्य
से प्राप्त सिद्धियाँ। फन।

वर कर्णधार = वा०, १५। चि०, ४८।
[म० पु०] (स०) श्रेष्ठ नाविक।

वरणीय = वा० ३०।
[चि०] (स०) वरण करने योग्य।

वरदान = का०, २७, ५३, ५७, ६८, १०२,
[स० पु०] (स०) १४८, १४३, १६२, २४३, २८१।
किता देवता या बड़े का प्रसन होकर
कोई भाई हुई वस्तु या सिद्धि देना।

वरनायक = चि०, ७३।
[म० पु०] (स०) श्रियपति। श्रेष्ठ नायक अथवा बर्णधार।

वररूप आगरी = चि०, ४७।
[चि०] (हि०) श्रतिशय रूपवता।

वर वीर = चि०, ५२।
[स० पु०] (हि०) श्रेष्ठ वीर।

वरण = वा०, १२। वा०, १४, २५, ३६, ६५,
११४।

[म० पु०] (स०) एक वदिक देवता जो जल के अधि
पति माने गये है, जलेश। सूर्य।

[वर्णण—श्रेष्ठ वदिक देवता जलेश वरुण वेदवाल
मे आकाश के एव उमके बाद क
साहित्य म समुद्र क प्रतीक रूप में
माय हैं। वरुण वदिक युग म नतिक
एव नोतिन नियमो क श्रेष्ठ प्रति
पालक देवता मान गये हैं और बाद
मे धार धीर इसका प्रभाव साहित्य
म कम हाता गया और यह बवल
समुद्र क देवता क रूप म प्रतिष्ठित
रह गए। यह एकेश्वरवाद का प्रति
निधि रहा है। तथा प्रमादजी इसे
मुस्लिम सभ्यता क आदे प्रवतक क रूप
म भी प्रतिष्ठित मानत हैं। समोटक
साहित्य म भा इफका स्थिति है। साम
का कया भद्रा का इग्ने हरण किया
था और उस वापन भी कर दिया।

इसकी ज्येष्ठ परनी शुक्राचाय की कया
थी। इसको एक अय पला का नाम
वाग्णी था।]

वर्णालय = क०, ३०।
[स० पु०] (स०) समुद्र, सागर सिधु।

[वरुणालय चित्त शत था—विशाख का पहला
गीत, प्रसाद संगत म पृष्ठ ८ पर
सकलित। स्नातक विणाव्य द्वारा यह
गीत गाया गया है। वह प्रिय श्रुतीत
वोत गया और जीवन का वाला सध्या
उमे छिपा ले गई। भविष्य इतना
पास नहीं है कि इन चवल चित्त को
उसे साप दें क्योंकि शशव मे श्रुति,
सतोप, वरुणा और सुपमा की दृष्टि
होती था। कल्पना मगलमान क ती
थी। जम जम की सुखद स्मृतिया
सुमनावली के रूप मे खिलती थी।
शशव का यह मगनमय रूप और उस
की स्मृतिया वडी सुखद थी। लेकिन
सब क सब ने समय के साथ हमारा
साथ छोड दिया। भविष्य अवकारमय
है। इम दोलायमान हृय का अय
कया कहे ?]

वरुणी = का० कु०, ६२।
[चि०] (स०) वरण का, वरण सबगी, वरण की।

वर्नी = चि०, १७४।
[स० पु०] (स० भा०) भौह, बरीनी।

वर्ग = वा०, १८१, १६६, १३६।
[स० पु०] (स०) एक ही प्रकार का अनेक वस्तुप्रा का
समूह। कोटि। श्रुति। सामा य धम
या स्वल्प रखनेवाल पदार्थों का समूह।
सभा। परिच्छेद।

वर्गा = वा०, १८६।
[स० पु०] (हि०) 'वर्ग' का बहुवचन।

वर्जन = चि०, ६६।
[स० पु०] (स०) त्याग। छाडना। कुछ करने स रोमना।
मनाही। मुमानियत।

वञित = वा० पु०, १०६। वा०, १२२।
 [वि०] (सं०) निपिड। अग्रार्ण। त्यागा हृषा।
 वर्य = वा०, १६१, १६६, २६४।
 [सं० पु०] (सं०) पदार्थों के ताल फल धार्मि भेग के नाम। रग। भेद। प्रसार। सतत।
 धञ्जर। रूप।

वर्णा = वा० ७२।
 [सं० पु०] (हिं०) वग वा बह्वचन।
 वम = का०, १८। वा०, ४६। वि०, ६२।
 [सं० पु०] (सं०) वचन। वस्तर। पर। मवान।
 वर्ध = वि०, ६३।
 [सं० पु०] (सं०) साल। वृष्टि। सात टोयो वा समूह या भाग।

वर्षा = धा०, ३५, ५५, ७१। वा० पु०, १६,
 [सं० लो०] (सं०) ७३, ११०। का० २३, ८१, १६६,
 १७६, १८१, २२३, २२६ २६६,
 २२१। वि०, १५०। ऋ० १५, २०
 ३१, ३६। प्र०, २४। म०, ६।
 एक ऋतु का नाम। पावस ऋतु।
 वरमात।

[वर्षा में नदी फूल—दुहु कला १ किरण १, आ०या
 ६७ वि०] में प्रकाशित तथा बिना
 धार म पराग जापक के अतगत पृष्ठ
 १५२ पर सकलित प्रजभाया का
 कविता प्रारभ म कवि ने मेधाच्छन
 मनोहर प्राकाश और पुलकित धरा का
 वरान किया है। साथ ही लता, पल्लव
 मधुकर आदि सबका परपरागत
 आख्यान किया है। बिजली, वर्षा के
 सब इन कविता में वर्णित ह और सभी
 स्थिति में स्यालव भरी नदा और
 उस के किनारे का वर्णन किया है।
 तरंगें बचल हैं और गतिपुवक चलती
 है तथा अपार हिलोरें लेती हैं। किनारे
 से मिलकर व प्रसन होती हैं और उन
 की धारा का विस्तार होता है। नदी
 की धारा से कलकल नाद होना है
 और उस म जा वेग है उस चलकर
 अनुद्य का मन मुग्ध हो जाता है।

किनार के घुटों की पति अत्यंत मुग
 दती है और मुग्ध सगता है। एसा
 सगता है कि ये घुट सया की नग्नी
 न वस्त्र म मुग्ध किनारे है।]

वर्षाकतु = वा० पु०, १३।
 [सं० लो०] (सं०) बरमान का भोगम। यह ऋतु जियम
 वर्षा हानी है।

वलि = व०, ११ ३१। वा , १८, २२, २६,
 [सं० लो०] (सं०) २०१।
 रेखा, लरीर। दवता का बदाई
 जानना या चाज या उमर उद्देश्य स
 पदाया या मारा जानवाला पशु। पट
 पर की रेखा।

वलि कर्म = व०, १३, २४, ३१।
 [सं० पु०] (सं०) बलिदान का भाव।
 वलि देना = व०, १०।
 [दि०] (हिं०) दवता को अर्पण करना या बदाना।
 वलि योग्य = व०, ११।
 [सं० लो०] (सं०) बदाने योग्य। देवता का अर्पित किये
 जान योग्य।

वल्कल = वा०, २८५। प्र० ४।
 [सं० पु०] (सं०) पेट की छाल। छाल का वल्ल। क्रम्वे
 का एक शाखा।

वल्कल वसन = वि०, ५८।
 [सं० पु०] (सं०) पट के छाल का वल्ल।
 वल्कल वसन विभूषित = वि० ५।
 [वि०] (सं०) पट के छाल के वस्त्र से विभूषित।

वल्मा = वि०, १६३।
 [वि०] (सं०) प्रियनम प्यारा।
 वलारियों = का०, २८२।
 [सं० लो०] (सं०) भजरीयां। तताएँ वल्लियां। एक
 प्रकार का बाजा।

वशिष्ट = व० १२।
 [सं० पु०] (सं०) समर्थियों में एक ऋषि।

[वशिष्ट—प्रयोया के विशतु एक हरिश्चंद्र राजाओं
 के पुरोहित तथा हरिश्चंद्र के यज्ञ क
 ब्रह्मा। विशतु राजा से विरोध हुआ
 और उस कारण विश्वामिन से इनका

भयङ्कर सर्वर्ष प्राचीन भारतीय साहित्य में अत्यन्त उन्नतिपात है। सत्यव्रत की मृत्यु के उपरान्त हरिश्चन्द्र ने विश्वामित्र को अपना पुरोहित नियुक्त किया पर वशिष्ठ से हरिश्चन्द्र के राजसूय यज्ञ में बाधा उत्पन्न होने पर उन्हें पुनः अपना पद प्राप्त हुआ। वशिष्ठ ने गुण गेय का यज्ञ में बलि देने का भाग पड़ाने रचा था किन्तु विश्वामित्र ने उनकी रक्षा की और उसे अपना पुत्र माना। और इस प्रकार वशिष्ठ हरिश्चन्द्र के पुनः राहित का बदला न ले सका। इन्हें वशिष्ठ देवरात के रूप से संबोधित किया जाता है।]

वसत = का०, १६। का० कु०, १३। का०, [सं० पु०] (सं०) १०, ५०, ६३, २४६। वि०, ३६। ऋ०, २६। प्र० १०, ११, १३, १४, १७।

साल की छह ऋतुओं में से प्रथम सुहावनी ऋतु। छह रागों में से दूसरा राग।

[वसत (१)]—भरना में सकलित कविता। वसत प्रणय की कवि ने एक समान माना और है। जैसे वसत के आने पर परीक्षा, रसाल, मलयज पवन और डाली डाली, पत्ते पत्ते का आनंद बढ़ जाता है और जब वह जाता है तो पतझड़ रह जाता है उसी प्रकार प्रणय आता है तो हृदय का तार तार खिन्न उठता है और वह जाता है तो हृदय का सब वृद्ध पतझड़ हो जाता है।]

[वसत (२)]—चित्राधार में सकलित। देखिए 'वसत विनोद'। यह मकरद्विदुष का पहला छंद है। जिह पतझड़ ने कोप कर के बिना पत्ते का कर दिया था उन्हें तुम ने पले और पूजा स भरपूर कर दिया। शरद ने जिह विग्रह से बेहाल कर दिया था उन्हें आश्र की मजूरिया से तुमने भर दिया। कोकिला का काकली से और रसरग तथा केलि स तुमने सारे वन प्रातर

को भर दिया। हैं वसत, तुम रसभीने हो। कौन सा ऐसा मंत्र पढ़ दिया कि सबका मन उछाड़ स भर गया और उसे और स और ही कर दिया, अर्थात् विरह स प्रेममय कर दिया।]

[वसत की प्रतीक्षा—भरना की एक रचना। यह रचना अतुल्य है और दस पंक्तियों की है। कवि करता है कि अपने आसुधा से कटको का परवाह न कर के बड़े धर्म से यह क्यारी हमने सीची हैं इस आशा और विश्वास से कि मेरे जीवन का वसत आया और इसमें फूल खिलेंगे, बुज बुज में मलयसमीर छाया, काकिल की किलकार हंगी। इसीलिए प्रतीक्षा कर रहा हूँ कि एक क्षण के लिये हा सही हमारे पास जब बढोग और मुझे प्रेम के मकरद की मदिरा का पान कराओगे तो वसत सब व छा जाएगा।]

[वसतविनोद—इदु, कला ३, किरण ३, फरवरी १९१२ ई० में सब प्रथम प्रकाशित, चित्रा धार में मकरद्विदुष के अंतर्गत सकलित कविता। देखिए वसत, चंद्र, कोकिल, चातक, शिरीष सुमन, तखर, अमर, आह्वान, सुनो, कही।

[वसतोःसव—देखिए मकरद्विदुष। सर्वप्रथम इदु, कला ४, एब १, किरण ३, मार्च १९१३ ई० में प्रकाशित दो पद। मिल रहे माते मधुकर भले अनुराग स रगे हो, चित्राधार पृष्ठ १८१ पर सकलित। देखिए वे दोनों पद।]

वसन = का० कु०, ४५। का०, १०, १४३, [म० पु०] (म०) १६८, २१२, २६३।

वस्त्र कपडा। रहना, निवास। स्त्रिया के कमर का एक आभूषण। आवरण।

वसना = का०, २७७, २८५।

[वि०] (हिं) निवास करना।

[सं० पु०] (हिं०) स्त्रिया के कमर का एक आभूषण।

वायुमंडल = भा०, ५६।
 [सं० पु०] (सं०) धातान।
 वाट = का० कु०, ४/ ६६। म० ६। ल०,
 [सं० पु०] (सं०) ३७।
 जन, पानी। गुड समर। घयगर,
 दफा। भावरण।
 वारण = का०, २००।
 [सं० पु०] (सं०) किमी वात को न कहन का गनेत या
 भागा। मनाही। रोक बाधा। बनन।
 हाथी। मनुष्य।
 वार पार = का०, १५६, २५१।
 [सं० पु०] (हिं०) मार पार।
 [अव्य०] (हिं०) इस निनारे स उम निनारतक।
 वारि = वि०, १४ २४ १५८, १६३।
 [सं० पु०] (सं०) जल, पाना, तरल पदार्थ।
 [सं० खी०] (सं०) वाणी सरस्वती। बलसा।
 वारिद = का० कु०, ५२।
 [सं० पु०] (सं०) मय, बादल।
 वारिदपुत्र = का० कु०, ११३।
 [सं० पु०] (सं०) बादलों का समूह।
 वारिधारा सी = का० पु०, ११५।
 [वि०] (हिं०) जल की धारा के समान।
 वारी = भा०, २०। वि० ५६, ५८, ६५।
 [सं० खी०] (सं०) योद्धावर। हाथी के वाधने जजीरे।
 वारुणी = वि० १०१।
 [सं० खी०] (सं०) मदिदा, धराव। वरुण का परना। एक
 पक्ष का नाम। वृषभ के एक
 कदब का रस जो वरुण की शिपा से
 बलराम के लिए निकला था।
 वारें = वि०, ६५।
 [क्रि०] (प्र० भा०) निछावर करें।
 वारों = वि०, ५७, १६०।
 [क्रि०] (प्र० भा०) निछावर करू।
 वाला = भा०, ६२। का०, १२१, १६६। प्र०,
 [प्रत्यय] (हिं०) १३। न०, ४७।
 दे० वाली।

वाली = का०, १०२, ११५ ११६, १६४,
 [सं० पु०] (सं०) २८४, २८६। न०, १४, २०, ४४,
 ४८, ६६।
 गुपीय का बटा भाई। याना म पहनन
 का प्राभूण।
 [प्रत्यय] (हिं०) कृष्ण, स्वामिन, सर्वम धानि का
 प्रत्यय।
 वाले = भा०, २१, ६५ ७। का० २५६,
 [प्रत्यय] (हिं०) २६२, २७०, २७१। न० ३८, ४२,
 ५५, ७७।
 कृष्ण, स्वामिन मय धानि का
 मूचक प्रत्यय।
 वाल्मीकि = वि० ४८।
 [सं० पु०] (सं०) एक प्रसिद्ध मुनि जा रामायण के रच
 यिता कीर भादि कवि है।
 [वाल्मीकि—वाल्मीकि भाषिकवि हैं जि हाने
 सत्तव व भाय महाकाव्य वाल्मीकिय
 रामायण की रच ग का। इहाने सब
 प्रथम राम की नायक बनकर महाभारत
 स कम से कम तीन सौ वर्ष पूर्व
 रामायण की रचना की।]
 वाप्य = का०, २०, २६३।
 [सं० पु०] (सं०) भाप, भाषि।
 वास = का०। कु०, ३३ ११३ का०, ३३।
 [सं० पु०] (सं०) निवास, रहना। घर मकान।
 वासना = का०, ७, ११, ३५, ७२ ८७, ८६,
 [सं० खी०] (सं०) ११६ १२५ १६३ २६७। ल०, ६६,
 ७४।
 इच्छा वामना। वाम की प्रवृत्ति।
 वासनाएँ = ल०, ७४।
 [सं० खी०] (सं०) प्रत्याशा, कुछ पाने या करने का
 इच्छाए। चाह इच्छा, वाछा।
 वासना लुप्ति = का०, १६२।
 [सं० खी०] (सं०) इच्छा का सतुष्टि।
 वासना धारा = का० १२८।
 [सं० खी०] (सं०) चाह या इच्छा की धारा।
 वासना भरी = का०, १५१।

- [वि०] (हि०) वासना से पुण।
 वाहरी = ल०, ६७।
 [वि०] (हि०) बाह्य।
 वासना सरिता = वा० १०।
 [स० स्त्री०] (सं०) वासना रूपी नदी।
 वासर = का० कु०, ३५।
 [म० पुं०] (म०) दिन, दिवस।
 वासित = म०, १६।
 [वि०] (म०) मुग्व स युक्त या मुग्वधित किया हुआ।
 वासी = वा०, १६। चि०, १५३।
 [सं० पुं०] (म०) किसी स्थान पर रहने या बसनेवाला।
 वास्तव = वा०, १६२।
 [वि०] (सं०) यथार्थ प्रकृत, भ्रमली।
 वास्तविक = प्रे०, २४।
 [वि०] (सं०) असली, सच्चा।
 वास्तविकता = क०, २११।
 [स० स्त्री०] (सं०) असलियत, सच्चाई।
 वाह शुद्ध = वा० कु०, १२०।
 [स० पुं०] (हि०) सिक्खा के गुफ का मन्त्रोपन।
 वाहद्रथ = का० कु०, ११८।
 [सं० पुं०] (सं०) एक राजस का नाम।
 वाहन = का०, ८७। चि०, १६३।
 [म० पुं०] (म०) सवारी।
 वाही = चि०, ४७, १८६।
 [वि०] (म०) भार ढोनेवाला, ले जानेवाला।
 वाह्य = वा० कु०, १५। का०, २४५, २५८।
 [क्रि० वि०] (सं०) क्र०, १६, ४५।
 वाहरी, अलग पृथक।
 [वि०] (म०) बहने करने योग्य। जो बहने करता है।
 [सं० पुं०] रथ, यान, सवारी।
 वाह्य उदार = वा०, ४६।
 [वि०] (सं०) ऊपर से उदार।
 वाह्य रूप = वा० कु०, १२३।
 [सं० पुं०] (हि०) वाहरी रूप। वाचिक रूप।
 विकंपित = वा०, १६५, १६८, २६०।
 [वि०] (सं०) कपला हुआ, अस्थिर, हिलता हुआ।
 भयभीत।

- विकच = चि०, २६, ६६।
 [वि०] (सं०) खिला हुआ, विकसित, प्रस्फुटित।
 विकट = वा०, २११, २२६। २०१।
 [वि०] (मं०) चि०, ४०१।
 बठिन, भीषण, मुश्किल, भयकर, दुःगम।
 विकट ध्रुनि = चि०, ५१।
 [म० स्त्री०] (सं०) भयकर स्त्री, कठोर आवाज।
 विकट भृष्टनि = चि० २२।
 [सं० पुं०] (म०) ब्रुट या भयकर भीड़ा का किनारा।
 विकट मुग्व = वा०, कु०, ६८।
 [सं० पुं०] (हि०) भयकर मुख।
 विकर्षणमयी = का० २००।
 [वि०] (हि०) अनात्मक, खिचाव या आकर्षणहीन।
 विकल = प्रा०, ७ ११, ४७, ५३। क०, १८।
 [वि०] (सं०) का०, कु०, २२, २३। वा०, ४, ११, १६, २५, २६, ३६, ५६, ६०, ६३, ६४, १०५, १४०, १५७, १६०, १६३, १६५, १८०, १८६, १८८, २००, २६०, २६७, २७१, २८१।
 चि०, १२, ६५। क०, १८, ३३, ३८। ल०, १७, २६, ४४ ४६, ५२, ५३ ५६, ५८।
 विह्वल, व्याकुल, वेचन।
 विकलता = का०, १२१।
 [सं० स्त्री०] (सं०) बेचना विकल हाने का अवस्था या भाव।
 विकल रूप = प्रा० १०।
 [सं० पुं०] (हि०) व्याकुल अवस्था। बेचनी का दशा।
 विकलित सी = वा० १५।
 [वि०] (हि०) व्याकुल सा।
 विकल व्यथा = का०, २२४, २४१।
 [सं० स्त्री०] (हि०) व्याकुल करनेवाला यथा। भयकर कष्ट।
 विकल्प = वा०, १७२।
 [सं० पुं०] (सं०) भ्रम, धोखा। विपरात सोच विचार।
 चित्त की पञ्चविध वृत्तियां मे से एक।
 विकस = का०, ७६।
 [पुं० क्रि०] (श० मा०) विकसित होकर।

विकसत = वि०, १।
[क्रि०] (प्र० भा०) विभाग होना विकसित होना।

विकसता = वा० ५३ १०१ १३२।
[क्रि०] (हि०) विकसित होता। प्रयुक्त होता हुआ हुआ।

विकसद् = वि० २४।
[क्रि०] (प्र० भा०) विकसित हो। पूना।

विकसा = मा० २८।
[क्रि०] (हि०) तिला हुआ। पूना हुआ।

विकसात = वि० २६।
[क्रि०] (प्र० भा०) विकसित करता है। गिनता है।
प्रयुक्त करता है।

विकसित = मा०, २३। वा० पु० ८३। वा०,
[क्रि०] (सं०) ७४, १६२। वि० १५। क्र०, २७।
प्रे० १, १४, १५।
जिसका विभाग हुआ हो। तिला हुआ।
प्रयुक्तित।

विकसी = मा० ३८। वि०, १६। वा०, २६०।
[क्रि०] (हि०) जिसका विभाग हुआ हो। तिला हुआ।

विकस = वि० १६४।
[क्रि०] (प्र० भा०) विकास टा, कूनें।

विकसेगी = क्र० ५७।
[क्रि०] (हि०) विलगी। पूलेगा। विकसित होगी।

विकार = वा०, ३२। वा० ५७ ८१।
[सं० पु०] (हि०) दाप। अथयुगा सुराई। वातना।
विट्टित।

विकारा = वा० ७। वि०, १५२।
[सं० पु०] (सं०) प्रभाव। प्रसार। विस्तार। विकास।

विकास = वा० पु० ५०। वा०, २३, ५४ ७६
[सं० पु०] (सं०) १३२, १६०, १६१ २६१। वि०
२१, १५४ १५४ १६६। क्र०
११, ६३।
प्रसार। फलाव। विस्तार।

विकासन = वि०, १४६।
[सं० पु०] (सं०) विकास या बहुवचन।

विकासमयी = वा० २८।
[वि०] (हि०) विकसित होने योग्य।

विकीर्ण = वा०, १६०।
[सं० पु०] (सं०) बिगारा हुई। इतर उपर बिगारा हुआ।
खिन्नाया हुआ।

विकृत = वा० १६०।
[वि०] (सं०) जिसका विभाग तरह का बिगारा हो गया
हो। बिकार मुक्त। झूगा, झूगा।
रागा।

विक्रम = मा० १६।
[सं० पु०] (सं०) पराक्रम। वारता।

विक्रय = वा० २०।
[सं० पु०] (सं०) बनना। विक्रयण, विक्री। मुख्य तार
कीर्त वस्तु देना।

विकृत = वा०, २५७। ल० ५०।
[वि०] (सं०) पायल। पना हुआ।

विक्षुभ्य = ल०, १३। वा० ५७, २२१।
[वि०] (सं०) दुःखा। प्रस्त। पाठित। क्षोभयुक्त।

विकरी = वा० २५८।
[क्रि०] (हि०) पत्नी छिन्नी।

विकारे = वा० १७८। २५३।
[क्रि०] (हि०) फल हूण धितराग हण।

विकरेता = वा०, २४५।
[क्रि०] (हि०) फलता हुआ।

विकरेयी = वि०, २३।
[क्रि०] (प्र० भा०) पत्ना दिया। विकेर दिया।

विकत = वा० ३२। वा० ५७ ८१, १२६,
[वि०] (सं०) २०५ २५०। वि०, ५१।
समय जो गत हो चुका हो। बीता
हुआ। गत। पिछला।

विकर = वा० २६३।
[प्र० क्रि०] (हि०) घूमकर, भ्रमण करने, यात्रा करने।

विकरण = प्र० १८।
[सं० पु०] (सं०) चलना फिरना, घूमना।

विकरणकारी = प्र० १८।
[वि० पु०] (सं०) घूमने योग्य। भ्रमणशील।

विकरत = वि०, १३२।
[क्रि०] (हि०) घूमता है।

[क्रि०] (हि०) घूमती है।

विचल्लंगा = वा०, १५३।

[क्रि०] (हि०) चमकना।

विचलित = चि०, २३।

[वि०] (सं०) अस्थिर, चञ्चल। स्थान, प्रतिभा, सिद्धांत आदि से हटा हुआ।

विचरित सी = वा०, १५।

[वि०] (हि०) विचलित होने के महत्त्व।

विचल्लेगा = ल०, ५७।

[क्रि०] (हि०) विचलित होगा। हड़ता से च्युत होगा।

विचार = वा० बु, ८, ७४। वा० ५६, ७७,

[सं० पु०] (सं०) ६८ १००, ११२, १४१, १५३,

१७१, १८, २०५, २११, २३८,

२४६। चि०, ५६, ६६, १४७, १५८,

५०, १६। म०, ४। ल०, ७१।

बहु जो मन में सोचा गया सोचकर

निश्चित किया जाय। सकल्प। मन

में उठनेवाली बात यात। सोचना,

ममभना।

विचारसकट = वा०, १८६।

[सं० पु०] (म०) मानसिक उलझन।

विचारि = चि०, १४८।

[त्रि०] (ब्र भा०) विचारना क्रिया या पूर्वकालिक रूप।

विचारि के = चि०, १३०।

[एक क्रि०] (ब्र भा०) विचार करके।

विचारै = चि०, १५३।

[क्रि०] (ब्र भा०) विचार करे।

विचारो = वा०, १२६, १६८। ल०, ६६।

[क्रि०] (हि०) विचार करो। सोचा।

विचित्र = क०, ६। ऋ० ७७।

[वि०] (सं०) कई रंगों वाला, विचल्लगा।

[सं० पु०] (सं०) एक अव्ययकार जिसमें किसी फल की सिद्धि के लिये किसी उलटे प्रयत्न का उल्लेख है।

विच्छेद = का०, २४६। मा०, ६५।

[सं० पु०] (सं०) काटकर अलग करना। नाश। वियोग। परिच्छेद। कविता में यति।

निद्धलना = क०, ५५। ल०, ३१।

[क्रि० प्र०] (हि०) विचलित होना। फिफनना।

विद्धला पडना = ऋ०, ६६।

[क्रि० प्र०] (हि०) फिफनना। फिफल पडना।

विचदित = ल०, ६०।

[वि०] (म०) जडा हुआ। मलमल। जटित।

विजगत = वा०, २४, ३४, ३६, १५८, १६७,

[सं० पु०] (म०) १७५। चि० २४। ऋ०, ३२, ८५।

ल०, ५६।

जिमम जन या मनुष्य न हो। एकांत।

निराला। हवा करने का पक्षा।

विजगपथ = का०, ८१।

[म० पु०] (सं०) एकांत पथ।

विजय = वा० कु०, ११५, ११७। का० १६,

[सं० स्त्री०] (सं०) १३५। चि०, ६ ४१ ४२ ६३, ६७

६१, ११०, १६३। म०, १३। ल०,

४७, ५२, ७६।

जीत। जय।

[सं० पु०] (सं०) भोजन करना। विमान। एक प्रकार का शुभ मुहूर्त। अजुन का एक नाम।

विजय ऋथा = का० १६०।

[सं० स्त्री०] (सं०) विजय की कहानी।

विजय लक्ष्मी = का० बु, ११५।

[सं० स्त्री०] (सं०) विजय की अभिप्रायों तथा विजय कराने वाली देवी।

विजयिनी = वा० ५६, १८१। चि०, ५।

[वि०] (सं०) जीतनेवाला। जिमने विजय प्राप्त की हो।

विजयिनी सो = का०, ६३।

[वि०] (म०) विजय करनेवाली के समान।

विजयी = क०, २२। का०, ५७। म०, १५।

[वि०] (म०) ल०, ५६ ५१ ५२ ७७।

विजना। विजय प्राप्त करनेवाला।

विजया = का०, २६७।

[सं० जी०] (सं०) विजय का बहुवचन । ३० विजय ।

विजित = सं० ७६ ।

[वि०] (सं०) पराजित, हारा हुआ । जीता हुआ ।

विज्ञान = वा०, १७१ २७२ । वा० कु०, १०६ ।

[सं० पु०] (सं०) ज्ञान । जानकारी । भाषणा । विद्या विषय, विषयत जड पदार्थों और सीखित विषयों की जानी हुई बातों, तरवा सिद्धांतों भाषि का बहु विचयन का एव स्वतंत्र शास्त्र के रूप में है ।

विज्ञानकार = वा० कु०, ६४ ।

[वि०] (सं०) वचानिब ।

विज्ञान ज्ञान = वा० १६८ ।

[सं० पु०] (सं०) सभी प्रकार का वचानिक ज्ञान ।

विज्ञानमयी = वा० १८६ ।

[वि०] (हिं०) ज्ञान से भरी हुई ।

विटप = वा० २६५ । ऋ०, १६ ।

[सं० पु०] (सं०) वृद्ध । पेड़ ।

विडम्बना = क० १८ । वा०, २७२ ।

[सं० जी०] (सं०) किसी को विडम्बने या तुच्छ ठहराने के लिये उसकी नकल करना । हसा उठाना । उपहास करना । उपहास । दम ।

वितरती = का० कु० १३ ।

[क्रि०] (हिं०) वितरण करती । बाँटती । फलाती ।

वितरना = वा०, १६८ ।

[क्रि०] (हिं०) बाँटना । वितरण करना । दे देना ।

वितरित = वा०, १६४ ।

[वि०] (हिं०) बाँटा हुआ । दिया हुआ ।

वितर = वा०, २४४ ।

[क्रि०] (हिं०) दे दिए ।

वितरो = का० १५३ ।

[क्रि०] (हिं०) दो । फला दो ।

वितान = का० कु०, ६ । का० १२६ । चि०

[सं० पु०] (सं०) २४ ।

विस्तार । तल्ल या सेमा । चदवा । यज्ञ । घृणा । एक वर्णवृत्त का नाम । शूय ।

वित्त = वा० कु०, ११६ ।

[सं० पु०] (सं०) धन । राशय, मरणा धार्मिक के साथ धाय और शय का व्यवस्था ।

[वि०] जाना हुआ । मिला हुआ ।

विदग्धता = का० ७४ ।

[सं० जी०] (सं०) पाठिय्य । विद्वता ।

[विदग्ध]—इदु कता छ, विरग १ (जुनाई १६१३ म तयप्रथम प्रकाशित और विद्याधर म पु० १५८-१६ पर सक्लिन ब्रजभाषा का यह रचना दाहा छ मे है । ये दोहे मरत होने हुए भी विग्धना स परिपूर हैं । इसमें कुल १२ दोहे है । य सरल सुबोध दाहे हैं किनु इनमें काव्यत्व मरा पडा है । उदाहरण के रूप में—

प्रकृति सुमन बरसत रही
भली रही मपरत ।

या मिलिये के समय में

तेहि जनि करहु प्रमात ॥

मन मानिकु वित चाहि ने

पहले सी हो धीन ।

जानि समय नीलाम को

किय कीडी को तीन ॥

जाहु हमारे भाह ए

रचक तुम्हरे पास ।

जो स ऐसै खीचि पुनि

तुम को हमरे पास ।

विदारत = चि०, १६३ ।

[क्रि०] (प्र० भा०) विदारण करता है ।

विदाबभूव = चि०, १३३ ।

[क्रि०] (सं०) प डत हुआ ।

विदारित = ऋ०, १५ ।

[वि०] (सं०) फाटा हुआ । विदीर्ण किया हुआ ।

विदित = वा० कु०, ११५ । चि० ६६, १८७ ।

[वि०] (सं०) जाना हुआ । ज्ञात ।

विदूषक = का०, २६३ ।

[सं० पु०] (सं०) अपने वेश, चेष्टा, वातचात भाषि से दूसरों को हसानेवाला । भांड । मसखरा ।

विद्या = का०, १६५ ।
[सं० स्त्री०] (सं०) शिक्षा आदि के द्वारा उपाजित ज्ञान । मोक्षप्राप्ति की सिद्धि करनेवाला ज्ञान । ज्ञान के विशेष विभाग । गुण । दुगा का एक नाम ।

विद्याधर = चि०, ३० ।
[सं० पुं०] (सं०) देवयोनि विशेष । एक प्रकार का रतिवध । एक मंत्रविशेष । विद्वान् ।

विद्युत् = का०, १००, १२५, १७०, २५३
[सं० स्त्री०] (सं०) २६३ । चि० १०६ ।
विजली । सध्या । अतिशय ज्योति ।

विद्युत्बृद = का० कु०, ६०, १२६ ।
[वि०] (म०) बिजलिया का समूह ।

विद्युत् विलास = का० २५४ ।
[सं० पुं०] (सं०) विजली के सदृश विलास । क्षणभंगुर चमक दमक का सूचक भाव ।

विद्युत्कण = का०, २०, २६, ५६, ७३, १७८ ।
[सं० पुं०] (सं०) आधुनिक वज्ञानिकों के मतानुसार प्रत्येक परमाणु के गम में धन विद्युत् से आविष्ट कण जिसके चारों ओर ऋण विद्युत् से आविष्ट अनेक कण चक्कर लगाते रहते हैं । बिजली के कण ।

विद्युत्पात = का० कु०, ६३ ।
[सं० पुं०] (सं०) बिजली गिरने का भाव ।

विह्वल = प्रा०, २३ ।
[सं० पुं०] (सं०) प्रवाल । मृगा । मुक्ताफल नामक वृक्ष । कापल ।

विद्वान् = ऋ०, ७७ ।
[सं० पुं०] (सं०) जिसमें बहुत अधिक विद्या पढ़ी हो । आत्मन । सर्वज्ञ ।

विद्वेष = का० कु०, १०६ ११२ ।
[सं० पुं०] (सं०) शत्रुता, बैर, विरोध ।

विधवा = प्रे०, २० । ल०, ५ ।
[सं० स्त्री०] (सं०) वह स्त्री जिसका पति मर चुका हो, बेवा, रौंढ ।

विधाता = का०, ५७, ५८ । ल०, ५३ ।
[सं० पुं०] (सं०) ब्रह्मा, विधान करनेवाला । ईश्वर ।

विधान = का० कु०, ७३ । का०, ७१, ११३, [मं० पुं०] (सं०) २०६ । चि०, १३६ ।
किसी काम का आयोजन । अनुष्ठान । विधि, रीति, प्रणाली ।

विधायिनी = चि०, २२, १६४, १८२ । ऋ०, ७० ।
[वि०] (सं०) विधायिका । निर्माण करनेवाली ।

विधि = का० कु०, ८८ । का०, ११४ ।
[सं० पुं०] (सं०) ऋ० ६३ ।
कोई काम करने का ढंग या रीति । व्यवस्था । प्रवृत्ति, नियति ।

विधियौ = का० कु० ८८ ।
[सं० स्त्री०] (हिं०) रीतियाँ प्रणालियाँ ।

विधिवत् = का०, २७८ ।
[क्रि० वि०] (सं०) विधिवत्क ।

विधु = प्रा०, २१ ७२ । व० ७ । का० कु०, [सं० पुं०] (सं०) १०१ । का० ४७, ५५ ८७, ८८ ११८, १२७ । प्रे०, १२ ।
चंद्रमा । वायु । कर्पूर ।

विधुकर = प्रे०, १ ।
[सं० पुं०] (सं०) चंद्रकिरण ।

विधुकर धवलाभा = चि०, ४६ ।
[सं० पुं०] (सं०) चंद्रकिरण के प्रकाश सदृश उज्वल कांति । चंद्रमा की उज्वल ज्योति ।

विधुकुल राई = चि०, ६० ।
[वि०] (ब्र० भा०) चंद्रकुल के राजा (कृष्ण) ।

विधुमडल से = चि०, ७१ ।
[सं० पुं०] (हिं०) चंद्रमडल से ।

विधु मोंहि = चि०, ७० ।
[सं० पुं०] (ब्र० भा०) चंद्रमा में ।

विधुर = का०, २४६ । चि०, २ ५८ । ल०, [वि०] (सं०) २७ ।

वियामी । व्याकुल । असमर्थ । जिसकी पत्नी मर चुकी हो । रड्ड्या ।

विधुरों = चि०, १३२ ।
(सं०) विधुर का बहुवचन ।

विध्वंस = का०, १८ ।
[मं० पुं०] (सं०) नाश, बरबाद ।

विषयसूची = भा०, १६० ।

[वि०] (भा०) विद्या ।

विदु = भा०, २३ ५७ । भा० पु०, ५१,

[भा० पु०] (भा०) ५३, ५४ । भा०, ३७, १२२, १५२,
१५७, १७८, २१० २४५, २६१,
२६२ २६४ । वि०, १८० । वि०
६१ । ग० ६ ।

जलराश । सूँद । शूय ।

विदुसा = भा० ७५ ।

[वि०] (हि०) विदुस सतस ।

विदुहि = वि० ७० ।

[सं० पु०] (हि०) विदुषी ।

विनत = वि०, १४१ ।

[वि०] (सं०) भुक्ता हुआ । विनत । नत ।

विनता = क०, २६ ।

[सं० स्त्री०] (वि०) विनय । प्राग्रह ।

विनम्र = क० २१ । भा०, ६ ।

[वि०] (सं०) भुक्ता हुआ । विनीत । सुशील ।

विनय = भा० पु०, २२ । वि० ६१ ।

[सं० स्त्री०] (सं०) प्रायना । प्राग्रह । विनती ।

[विनय (१)]—इदु बला ६, किरण ४ (अग्रल १६१५)

मे सवप्रथम प्रकाशित और कानन
कुसुम मे पृष्ठ ५८ ५९ पर सकलित १८
पंक्तियों का कविता । इस खंडा बोली
की कविता मे कवि ने ईश्वर से प्राथना
की है कि मेर हृदय मे अपना निवास
स्वान बना ला और प्रभा हम तुम्हारा
नाम कभी न भूँने । तुम सदा हमारे
साथ रहो । हमारा सभा कामनाएँ पूरा
वरो और हम भवहीन बना दो, मन
का सारा पीडा मिटा दो । स्वच्छ प्रेम
का जल पान कराओ । धरता पर धर्म
छा जाय और विषम सुदर बन जाय ।
सारा दुख दूर मिट जाय । छल छद्म
पास मे न पटके । हे प्रभो आकर हम
भ्रूने मिसा ताकि हम तुम्हारे चरणों
मे लवलीन रह और हमारे हृदय क

बाध घटना पर बना तो तमा मुन
पूजायाम करो ।]

[विनय (२)]—तु कता २ किरण ४, कामि ६७

मे प्रकाशित और विनायार मे पराग
के अनगत पृष्ठ १५५ पर संकलित
अज्ञेय की कविता । हे प्रभा, तुम
सकलमानुष हारक भा सवम पर हो ।
तुम मुन हो और धरती क बना बना
मे हो । प्रभा भा तुम्हारा पार नही पात
तो कवि तुम्हारा महिमा का बरान
कम कर सता है ? मूय और धरत क
बोध प्रभा क रान मे तुम विराजते
हा । मलयानिल का तुम मुग्धि हा ।
तुम्हारे महान् गुणों का रहस्य काई
प्रथ प्रकट नहा कर सता । तुम्हारी
ही टपा स केनिल सगुद तरंगयमान
हारक गभार गजन करता है । हे अनन
दन, तुम कितने दवानु हा कि सारा
होते हुए भी मुन माधरो मे रहते हा ।
तुम पद्य क पराग क समान नित्य
सीरनशाहा हा और धानद का तरल
लटरो मे विराजते हो । सवार पर
गुणा कर स्वामा तुम उसका पालन
करते हो और कल्पवृक्ष का भाति
समार को नित नवीन मंगलफल दने
हो । एत सवशक्तिमान परमेश्वर का
नमस्कार है ।]

विनयन = का०, १६६ ।

[सं० पु०] (सं०) विनय । नमता । विद्या । निशय ।
निराकरण । दूर करना ।

विनष्टि = भा०, १६४ ।

[सं० स्त्री०] (सं०) नाश । लोप । पतन ।

विनया = वि० १४८ ।

[वि०] (प्र० भा०) विनय करता हा ।

विनाश = भा०, ६०, १५७ १५८, १७०, १६१,

[सं० पु०] (सं०) २४०, २४५ ।

नाश । लोप । विगाह । खराबी ।
सबाह । हासन ।

विनाशशील = का०, १२३।

[वि०] (सं०) विनाशी। नष्ट होनेवाला।

विनाशी = का०, १२४।

[वि०] (सं०) विनाश का बहुवचन। '२० विनाश'।

विनिमय = का०, १७८, २४१, २४६।

[सं० पुं०] (सं०) आदान प्रदान। लेन देन। किसी एक वस्तु के बदल में कोई दूसरा वस्तु लेना।

विनियुक्त = का० कु०, ११६।

[सं०] (सं०) नियोजित। काम में लगाया हुआ। प्रेरित। धर्मित।

विनोद = प्रा०, ५५। का, कु०, २६। का०,

[सं० पुं०] (सं०) ७१, ७४ १३६। चि०, ६, २२, १६४ १६५, १७३। ऋ०, ३४, ४१, ८२। ल०, ३३।

खेल। प्रमनता। आनंद।

[विनोद विंदु (१)]—सबप्रथम इंदु कला ४, किरण ६, जून १६१३ में प्रकाशित। इसके अंतर्गत तीन कविताएँ प्रकाशित हुई थी—'बूक हमारी', 'प्रेमपालन', 'उत्तर'। देखिए 'बूक हमारा', 'अहानित प्रेम करत दिन गयो', 'उत्तर'।

[विनोद विंदु (२)]—इंदु कला ५, सप्ताह १, फरवरी १६१४ ई० में प्रकाशित। इसके अंतर्गत निम्नांकित ४ कविताएँ हैं—(१) हृदय में छिप रहे इस डर से, (२) आया देखो विमल बसंत, (३) भ्रमा का कहिए सुंदर राका, (४) मिले शीघ्र इन चरखों की धूल। ये चारों कविताएँ भरना में संकलित हैं और इन्हें देखिए—हृदय में छिप रहे इस डर से', 'आया देखो विमल बसंत', 'भ्रमा को कहिए सुंदर राका' और मिले शीघ्र इन चरखा की धूल' के अंतर्गत।

[विनोद विंदु (३)]—इसके अंतर्गत ६ कविताएँ हैं जो भरना में संकलित हैं। इनको इनकी प्रथम पंक्ति के स्थान पर देखिए।]

विन्यास = का०, ८६।

[सं० पुं०] (सं०) स्थापना। रखना। सजाना। जडना। किसी स्थान पर डालना।

विपक्ष समूह = का० २००।

[वि०] (हिं०) शत्रुपक्ष का समूह, शत्रुपक्ष।

विपत्नी = चि०, २३, १७६। ऋ०, ५२ ५६।

[सं० स्त्री०] (सं०) प्रे०, ११, १६। एक प्रकार की बीणा। वासुती।

विपत्ति = जि०, १०३।

[सं० स्त्री०] (सं०) दुःख। सकट। आपत्ति। दुःख की स्थिति या अवस्था।

विपत्ति विदारी = चि०, ४६।

[वि०] (हिं०) विपत्ति दूर करनेवाला।

विपद् = प्रा० ५५। ल०, ३३।

[सं० स्त्री०] (सं०) विपत्ति। आपत्ति।

विपद् नदी = का०, १८१।

[सं० स्त्री०] (सं०) विपत्ति रूपी नदी। दुःख का समय।

त्रिपिन = प्रा०, ३५। का०, ११३।

[सं० पुं०] (मं०) वन, जंगल।

विपिनवासी = का० कु०, ११३।

[वि०] (सं०) जंगली म रहनेवाले।

त्रिप्रयोग = ऋ०, ८८।

[सं० पुं०] (सं०) भ्रमण होने की अवस्था या भाव। सयोग का विपरतायक।

त्रिपुल = का०, १२१ १२३, २६३, २६८। चि०,

[वि०] (सं०) ५१। मं०, ७, ८।

अधिक।

विपुला = प्रा०, ४८।

[वि०] (मं०) बहुत बड़ा। पृथिवी।

त्रिप्लव = का० कु०, ८। का०, ७६, १११,

[सं० पुं०] (सं०) १८६, २३६।

उपद्रव अशांति, दगा, बलवा।

विफल = का०, १७ १२७ १३१, १४७, २४०।

[वि०] (सं०) असफल (प्रयत्न)। फलहीन, व्यर्थ।

विफलता = का०, २६७। ऋ०, १७।

[सं० स्त्री०] (सं०) विफल होने का भाव या प्रिया। असफलता।

विभक्त = का०, १६५।
[वि०] (सं०) झलम झलम हुआ, बटा हुआ, विभाजित।

विभक्त = का० १८।
[वि०] (सं०) घृणस्वण घृणा करो योग्य, घुरा।
विभय = का० १८। का० कु०, १७। का०, ८,
[सं० पु०] (सं०) घृ०, ११ १७, १०६ १६६, २६८।
त० ६८ ७६।
ऐश्वर्य धन। प्रभिवृत्ता, बाहुल्य।

विभा = का०, ३०। वि० घृ० घृ६ ५५,
[सं० जी०] (सं०) १३६। १६६। प्र०, २६। ल०, ३६।
दीप्ति, प्रकाश, किरण।

विभाकर = वि० ६३।
[सं० पु०] (सं०) अग्नि। सूर्य। राजा।

विभाजन = का० २७१, २७१।
[सं० पु०] (सं०) झलम झलम करने की क्रिया या भाव।
बटवारा।

विभाचरी = का०, ८। ल०, १६।
[सं० जी०] (सं०) रात, रात्रि।

विभाग = का०, २७१।
[सं० पु०] (सं०) विभाजन। वामसञ्चालन का सुविधा या
दृष्टि काय च्चत्र के छोटे छोटे हिस्से।
मुहकमा।

विभाजित = का०, १६५।
[वि०] (सं०) बटा हुआ। विभक्त।

विभास = वि०, १३६।
[सं० पु०] (सं०) प्रकाश, दीप्ति। रागविशेष जो प्रातः
काल गाया जाता है।

विभासि = वि०, १६६।
[पुन० क्रि०] (प्र० भा०) प्रकाश करने।

विभुषा = का० पु०, ८७। का०, १३५। ल०,
[सं० जी०] ३३।
द० 'विभूति'। प्रभुता।

विभु सी = ल० १४।
[वि०] (हि०) नित्य सा। ईश्वर व सहस्र।

विभूति = का०, १४। क०, १४। का० १६,

[सं० जी०] (सं०) २६, ३१, ६०, ८५, २७६, १६७।
त०, १२।

प्रथिता। अतीतिर शक्ति, एश्वर्य।
महापुरुष। सृष्टि। जिन क प्रथम म
सगान का रास या भस्म।

विभूतियौ = का०, १०।
[सं० जी०] (हि०) विभूति या बहुवचन ३०—'विभूत'।

विभूयित = का०, २६। वि० २८।
[वि०] (सं०) शक्ति, सुगन्धित।

विभा = वि० १६।
[सं० पु०] (सं०) 'विभू' का सवचन। हे ईश्वर हे भगवान्।

[विभो]—इदु कला २, किरण ३, आश्रित ६७ म
सकप्रथम प्रकाशित पराग शीर्षक के
झलमल चित्रपार म पृष्ठ ५७ पर
सकलित। हे प्रभो, तुम जगत्पद
आलोचनपूण, सबव्यापार शीर आनंद
क हो। सारा ब्रह्मांडमंडल तुम्हारे
प्रकाश से पूरित है शीर निगम भी
तुम्हारा गुण गाते गाते पक चुके हैं।
तुम अनाथ के नाथ हो शीर तुम्हारा
नाम ईशान है। तुम सद्गुण की सृष्टि
हो। हे प्रभो, यदि तुम हमारे कर्मा
पर ध्यान दोग तो मैं इतना पवित्र हूँ
कि तुम्हारे आशुतोष पद की स्थापि
मिट जायगा। पता नहीं किस बात से
तुम प्रसन्न होते हो शीर भ्रुक जसे मूढ़
मनुष्यो से क्यों चिक्ते हो? सभी
मनुष्यो के हृदय के बाच म जब तुम्हारा
निवासस्थान है तो क्यों नहीं मुझे
स मार्ग का पता बताते ताकि मैं उसपर
चलूँ? हमारी बीम्या सुदर रंग से सन्न
कर आनंद का राग क्यों नहीं बजाती
है? हे प्रभो, यद्यपि मैं पातक हूँ फिर
भी तुम्हारा दास हूँ। दास को हृदय से
तुम्हारी ही आस है। पुन मेरे हृदय से
द्विराजो ताकि मेरे हृदय मे आ प्रकाश
जगे शीर मुझे अशोम सुख की
प्राप्ति हो।]

विभोर = का०, १५०, १६१। ल०, २३।

[वि०] (स०) विह्वल, विक्ल, मस्त।

विभ्रम = का०, ६७, २२६।

[स० पु०] (स०) भ्राति, घात्सा। साहित्य के संयोग
शृंगार का हाव विशेष।

निर्मल = क०, ८। का० कु० १, १५, २४,

[वि०] (स०) १००, १०१। का०, २६ ६१, २६०
वि०, २४ ५६ ६१, ६३, ६६ ७०,
७१ १४३, १४७, १५०, १५४, १५७
१६८, १६९, १६९। क०, १६, २०,
२६, ७२, ७६, ६६। प्र०, १, ६,
१०। म०, १६। न, १३।

स्वच्छ। निर्मल। धवल। पवित्र।
पावन। निष्कलक।

विमल कीरति = चि०, ५०, ५२।

[सं० स्त्री०] (ब्र० भा०) स्वच्छ कीर्ति, निष्कलक यथा।

विमल विद्यु फाल = का० कु०, २६।

[वि०] (स०) पूर्ण के चंद्रमा के प्रकाश सा उज्वल।

विमला = का०, २६४। चि०, ४६, १६४।

[वि०] (स०) श्वेत निर्मला धवला।

विमक्ति = का०, १५१।

[सं० स्त्री०] (सं०) छुटकारा, मोक्ष।

विमोहित = चि०, १६५।

[वि०] (स०) विशेषरूप से म्रुव।

वियोग = क०, ४५। प्र०, १७, २३, २५।

[स० पु०] (स०) ल०, ४६।

अलग रहने का भाव या अथवा जब
दो प्रेमी अलग रहते हैं।

वियोगिनी = चि०, ६।

[वि०] (स०) प्रिय से विमुक्त (प्रेयसा)।

विरक्ति = का० ११८ २३७। क०, ८८।

[सं० स्त्री०] (सं०) विरह रहने का भाव क्रिया या कार्य।
पद या सवा आदि से अलग होना।
वराग्य, उदासता।

विरचित = क०, ५४।

[वि०] (स०) बनाया हुआ।

विरत = चि०, ६५।

[वि०] (सं०) विरवत। अलग।

विरति = का०, ११६। क०, ३६।

[सं० स्त्री०] (सं०) विरत रहने का भाव या क्रिया, विरक्ति।

विरथ = म०, ३२।

[वि०] (सं०) रथ हान।

विरह = का०, २४६। ल०, ३५, ४३, ६८।

[वि०] (सं०) जो सघन न हो दुर्लभ। कम। घीमा
धीमा, मंद।

विरला = ल०, २७।

[अव्य०] (हिं०) कोई कोई।

विरस = का० ५०। ल, ९।

[वि०] (ल०) नारस। मुष्क।

विरह = श्री०, ३०, ३१। का०, १६५, १७५,

[सं० पु०] (सं०) १७६। चि०, ६४। क०, ३४, ४२।
प्र०, १७। ल०, ५८।

किसी से अलग या रहित होने का भाव।

[विरह—रदु कला ५, रदु १, विरह ४, अर्धरत्न
१६५४ में प्रकाशित चार चार पक्तियों
के चारपद जो काननकुमुम में पृष्ठ ६८
६९ पर सकलित हैं। जम जम प्रियजन
दृष्टि से दूर होने है तो य वियोगी उत्र
रक्त के आँसू राग हैं और प्रेमी की
सुखबीजा प्रति क्षण स्मृति में नाचने
लगता है। प्रिय के पदरज का धूल
से विरही के हृदय का आकाश मेघा-
च्छन्न हो जाता है और सारा विश्व
उसम धो जाता है। स्मृतिरूपी सुख
विजली की भाँति रट रह कर चमक
उठता है और वास्तव में विरह की
अविरल अश्रुधारा में सब कुछ भीग
जाता है। अर्थात् को याद कर कर
के हृदय द्रवित हो उठता है और हृदय
के सार भाव सशान्त होकर मूर्तित
होने लगत हैं। अर्थात् की निधि में
व्यक्ति गाँवे लगाने लगता है और
जबतक प्रियमिलन नहीं होता तब
तक शांति नहीं मिलता। यह सब क्या
है और ध्यान से यह देखिए कि क्या

यह विरह पुराना पढ गया है ? विरह मे हम पूरा से भगत होते हैं इसलिए यह स्मृति प्रेम की नीद सोरर जगती रहती है ।]

विरह अश्रु = वि०, ५७ ।

[स० पु०] (स०) वियोगकालिक वेदनाश्रु ।

विरह कोक = का०, १७१ ।

[स० पु०] (स०) विरह रूपा कोक । ('विरह' की तावा रता का चोतव) ।

विरह तम = का०, १७८ ।

[स० पु०] (स०) विरहरूपी अथकार । विरहजन्य मुग्य कारा स्थिति ।

विरह निरा = श्रा०, ३६ ।

[स० को०] (स०) वियोगकालिक रात्रि ।

विरह मिलन = श्रा०, ४६ ।

[म० पु०] (स०) वियोग एव सयोग । विछोह शीर समिलन ।

विरह मिलनसय = का०, २४२ ।

[वि०] (स०) वियोग सयोग से युक्त । 'भौतिक' प्राणिया की धारणा या सासारिक स्थिति का चोनक ।

विरह वहि = का०, ८० । प्र०, १५ ।

[स० पु०] (स०) विरहरूपी अग्नि ।

विरह सुधा = का०, ४६ ।

[स० को०] (स०) विरहरूपी अमृत ।

विरहियी = का०, १७५ ।

[स० को०] (स०) पति से वियुक्त पत्नी । वियोगिनी ।

विरही = का०, ४, ८४ १२४, १५७, १६५,

[वि०] (हि०) १६८, २३६, २४० । वि०, १४, १५८ १८० । ल०, १२, १३, ३५ । वियुक्त, वियोगी ।

विरहपूर्ण = का०, ३४ ।

[वि०] (स०) विराग से भरर हृषर, रागररहित, वराग्यवान् ।

विराग भूमि = का० कु० २३ ।

[स० को०] (म०) वराग्यदायिनी भूमि, वराग्यरूपी भूमि ।

विराग त्रिभूति = का०, ८४ ।

[सषा को०] (म०) वराग्यरूपा त्रिव संपति ।

विराजत = वि०, ५१ ७२, १५८ १६८ ।

[क्रि०] (प्र० भा०) शोभिन है । स्थित है ।

विराज राजासम = वि०, १४० ।

[वि०] (हि०) राजा क समान शोभित ।

विराजदि = वि०, ६७ ।

[क्रि०] (प्र० भा०) शोभा देना है ।

विराजिता = वि०, १३६ ।

[वि०] (स०) शोभिता । स्थिना ।

विराजै = वि०, १५० ।

[क्रि०] (प्र० भा०) शोभा देता है ।

विराट् = का०, १७, २४, २६, ३३ १२६,

[स० पु०] (स०) २८३, २८८ । वि०, ७२ ।

विराट्प्रभू । विरव । क्षत्रिय । काति ।

विरदूध = का० कु०, ८ । का०, १०६, १६१,

[वि०] (स०) १६५ १६६ । वि०, १८७ ।

विपरीत, उलट, प्रतिकूल ।

विरोध = का०, १४३ । वि० ७३ । का० ६३ ।

[स० पु०] (स०) ल०, ७८ ।

वैर शत्रुता । प्रतिकूलत ।

विरोधी = वि०, ७३ ।

[वि०] (हि०) वरी, शत्रु । प्रतिकूल, विपक्षी ।

विलस रही = का , १५८ ।

[क्रि०] (हि०) रो रही है ।

विलगाना = वि०, १५७ ।

[क्रि०] (प्र० भा०) भलग हुषर ।

विलस = का० कु०, १०२ । का०, ४६, ५६ ।

[अभ्य०] (स०) वि०, ६४ ।

अवेर, देर ।

विलासत = वि०, १७ ५६ १४३ ।

[क्रि०] (प्र० भा०) आनद करता है ।

विलासही = वि० ६६ ।

[क्रि०] (प्र० भा०) विलास करता है । उपभोग करता है ।

विलासती = का०, २६४ ।

[क्रि०] (प्र० भा०) उपभोग करता है ।

विलासित = का०, २८३ ।

[वि०] (म०) विलास करता हुआ ।

विलासित हिमशृंग = चि०, ५१ ।

[वि०] (स०) हिमशृंग म विलास करता हुआ ।

विलास = का० कु०, १०० । का०, ८, १२, १५,

[सं० पु०] (सं०) ७१, ८४, ९०, १०३ । चि०, ६ ।

झं०, ११ । ल०, ५३ ।

प्रम न कलनवाली क्रिया, मनाविनोद ।

अनुरागमूवक चेटाए । साहित्य के सयोग

शृंगार म 'हाव' विशेष । आन ।

विलासमयी = का०, २८ ।

[वि०] (हिं०) विलासिनी ।

विलासिनि = चि०, ५६ ।

[सं० पु०] (ब० भा०) दे० 'विलास' ।

विलासिता = का०, ७ । चि०, ५० ।

[सं० जो०] (सं०) सासारिक भोग । आराम तलवा ।

विलासिनी = का०, १३, १३० ।

[वि०] (सं०) विलास करनेवाली ।

विलासो = का०, १० । चि०, १५३ ।

[वि०] (म०) विलास करनेवाला ।

विलीन = का०, ७ । १०, ७१, ८५, १४०, १५७,

[वि०] (म०) २२७, २५३ । ल०, ५३ ।

नष्ट । गुप्त, अदृश्य । छिपा हुआ । जो एकमेक हा गया हो ।

विलीनपटपद् = चि०, १३३ ।

[ल० पु०] (सं०) छिपे हुए भीरे ।

विलीन सी = का०, २६१, २६८ ।

[वि०] (हिं०) अन्तित्वरहित हान के समान । लुप्त वा अदृश्य हुई सा ।

विलुलित = चि०, २२ ।

[वि०] (सं०) चंचल, हिलता डालता हुआ । गतिमय ।

विलोकन = का०, २०८ । का० कु०, ९६ । प्र० २ ।

[सं० पु०] (सं०) दर्शन, अन्वेषण ।

विलोडित = का०, १६ । चि०, १६६ ।

[वि०] (सं०) मथित, झालोडित ।

विलोम = झं०, ३३ ।

[वि०] (सं०) उल्टा, विपरीत ।

विलोल = चि०, ४०, ५६ ।

[वि०] (सं०) चंचल ।

विलोलदृष्टे = चि० १३३ ।

[वि०] (सं०) चंचल नेत्रवाली । चपल नेत्रवाली ।

विवर = का०, ४९, १६० ।

[सं० पु०] (सं०) द्विद, दरार । गुफा, कदरा ।

विवरण = का०, २३ ।

[वि०] (सं०) जिसका रंग बिगड गया हो । बदरग,

कातिहीन ।

विवर्तन = ल०, ५६ ।

[सं० पु०] (सं०) चक्कर लगाने या घूमने का भाव ।

चक्कर । घुमाव ।

विश = का०, २५, ३४, २६७ ।

[वि०] (सं०) लाचार ।

विवस = का० कु०, ९९ । चि०, १०१ ।

[वि०] (सं०) इच्छानुकूल काय न कर सकना ।

लाचार ।

विवस्मान = चि०, १३२ ।

[सं० पु०] (सं०) यमराज । मृतदव ।

विवादी = का० १९३ ।

[वि] (सं०) झगडालू ।

विवाह = प्र० १९ ।

[सं० पु०] (सं०) वह धार्मिक या गामाजिक कृत्य जिसके

अनुसार पुष्य और स्त्री म पति एक

पत्नी का सवध स्थापित होता है ।

पाणिग्रहण ।

विवाहा = का० कु० ११२ ।

[क्रि०] (ब्र० भा०) विवाह किया ।

विविध = चि०, ४६ ।

[वि०] (म०) अनेक प्रकार के । तरह तरह के ।

दिवेक = चि०, ५६ । झं० ६३ ।

[सं० पु०] (सं०) नान । भलाबुरा बातें मोचने का

शक्ति । बुद्धि ।

विशाल = का० कु०, ७५, ९९ । १०५ । का०,

[वि०] (सं०) २३५, २५२ । चि० १३८, १४३,

१६६ । झं०, ५७ ।

बड़ा । दार्ढ्य । विस्तृत । भय । बृहत्तर ।

विशाला = वि०, ३६।
 [वि० स्त्री] (सं) द० विशाल'। जो सामारण न हो।
 प्रसाधारण।
 विशुद्ध = वा०, १६६।
 [वि०] (सं) शुद्ध। पवित्र। निमल।
 विशेष = का० कु०, ७७, १०६, १११। वा०,
 [वि०] (सं) १४ ८१, १११ २६५ ऋ०, ७४।
 विशेषतायुक्त, खास।
 विश्लेषण = ल० ६६। वा०, ७३।
 [सं पुं] (सं) किमी वस्तु या द्रव के प्रत्येक भाग
 को तथ्यसमाह्वय एव परीक्षा की दृष्टि
 से अलग अलग करना।
 विश्वभर = वि०, ६६ ७३।
 [सं पुं] (सं) विश्व का भरण करनेवाला। भगवान्
 विष्णु।
 विश्व = श्रां० ५१ ६१। क०, ८ १०, २५,
 [सं पुं] (सं) ३१ ३२। वा० कु०, ६, ६२, ७२,
 ७४, ८६ ९० ९३, ९४, १२६।
 वा० ९, से २६३ पृष्ठ तक ४३ बार।
 वि०, १४१ १५४ १८७। ऋ०, १६,
 १८ ३० ३५ ६३। प्रे०, १७ १८,
 २३। ल० १४ २५, २८, ३३, ३६,
 ५६, ७०, ७६, ७७।
 समार, जगत। विष्णु। शरीर।
 विश्व कल्पना सा = वा० २६।
 [वि०] (हिं०) जगत् का कल्पना के समान।
 विश्वकुट्टर = वा०, १७० १६३।
 [सं पुं] (सं) सत्तार ऋषी मुराख गुफा या विल।
 विश्वगृहस्थ = वा० कु० ४ ६२।
 [सं पुं] (सं) जो समारणी गृहस्थी का प्रधान हो
 क्षपण।
 विश्व जनता = वा०
 [सं] (सं) समार
 = वा०, ०
 मृग। पर
 या का
 हि

विश्वधारिणी = वि० ११४।
 [वि०] (सं) सपुण विश्व को धारण करनेवाली।
 विश्वधारी = वि०, १५४।
 [वि०] (सं) विश्व को धारण करनेवाला।
 विश्वपति = ऋ०, १८।
 [सं पुं] (सं) परमात्मा। ईश्वर जो सत्तार का
 मातृक है।
 विश्वपथिक = वा०, १६६।
 [सं पुं] (सं) समार का मुनाफिर। मनुष्य जो समार-
 पथ का मानो है।
 विश्वपात्तिनी = जि०, १५४।
 [वि०] (सं) विश्व का पालन करनेवाली।
 विश्वप्रेम = प्रे०, २४।
 [सं पुं] (सं) सत्तार के प्रति प्रेम भाव, मानव प्रेम।
 विश्वभर = वा० कु०, ७८। का०, ५७। ऋ०, ४२।
 [अ यं] (हिं०) सपुण सत्तार। सारा जगत्।
 विश्वमदिर = श्रां० ६०।
 [सं पुं] (सं) सत्ताररूपी मदिर।
 विश्व मधु ऋतु = ल० २२।
 [सं पुं] (सं) सत्तार की मधु ऋतु। वसत।
 विश्वमात्र = प्रे०, २४।
 [सं पुं] (सं) सपुण विश्व। केवल सत्तार।
 विश्वमाधुरी = वा०, १३१।
 [म० स्त्री] (सं) सत्तार का सौम्य या मधुरता।
 विश्वमान्यता = ल० १३।
 [सं पुं] (सं) सत्तार का मनुष्यत्व। सत्तार के सपुण
 मनुष्य के एव होने का भाव।
 विश्वरध = का०, २७३।
 [सं पुं] (सं) विश्व का छेद। द० विश्व कुट्टर'।
 विश्व रानी = का०, ६३।
 [सं पुं] (सं) समार का रानी। विश्व की शासिका
 थदा।
 विश्व = वा०, ५।
 [सं] समाररूपी कानन।
 विश्व = ल०, १३।
 [सं] समार की धाराज।

विश्ववीणा = का० कु०, ३ ।

[स० स्त्री०] (स०) सत्कार स्था बंगाल । जगत् की वीणा ।

विश्ववेदना बाला = स्त्री०, ६१ ।

[स० स्त्री०] (स०) विश्ववदना स्त्री बाला । सत्कार की पौर स्था बाला ।

विश्ववभय = का०, ६४ । ऋ०, १७ ।

[स० पुं०] (स०) सत्कार का ऐश्वर्य ।

विश्वव्यापी = प्रे०, २४ ।

[वि०] (स०) जो सत्कार म सब जगह हा ।

विश्वव्याप्त = वि०, १५४ ।

[स० पुं०] (स०) विश्व में व्यापक रूप से समाया हुआ । भगवान् ।

विश्वशरीरी = का० कु०, ६४ ।

[वि० पुं०] (स०) विश्वरूपी शरीरवाता । भगवान् । सत्कार ही जिसका शरीर है वह ईश्वर ।

विश्वसदन = भा०, ७६ ।

[स० पुं०] (स०) सत्कार स्त्री घर ।

विश्वसप्रमुदित = का० कु०, ६३ ।

[वि०] (स०) जिसका विश्वास किया जा सक और जा प्रस न हो । जो विश्वास होने से प्रस न हा ।

विश्वत्मा = प्रे० २४, २५ ।

[स० पुं०] (स०) ईश्वर । विश्वपुरुष ।

विश्वामित्र = क०, २७ ।

[स० पुं०] (स०) विश्वमित्र । सत्कार का मित्र । श्रीरामचद्र के गुरु । एक ब्रह्मर्षि ।

[विश्वामित्र—प्रत्यत प्रतापी क्षत्रियकुल मे का प कुज देश के कुशिक वंश म उत्पन्न ऋषि जिहाने वशिष्ठ का विराय किया था । इ होने त्रिशकु का सहायता को और उसे राज्य पर प्रतिष्ठित किया । त्रिशकु के मे राजपुरोहित थे । विश्वामित्र ने इन काय द्वारा दक्षत्राकुवश का राज्य भवामित रखा । हरिश्चद्र ने भी इहू अपना पुराहित नियुक्त किया था । राजमूय यत्र म वशिष्ठ ने ब्राह्मण पुरा हित न होने के कारण दक्षिणा लन स इनकार कर दिया था और इनम रुष्ट होकर इहूने पुराहित पद छाड दिया

और रूपगु तीय पर तीव्र तपस्या की जिसके कारण इहू ब्राह्मण पद की प्राप्ति हुई थी और पुन तप का मरद्घण करन के पत्रात् इहू ब्रह्मर्षि पद प्राप्त हुआ । य इहू क इपापात्र ना थ ।]

विश्वसास = स्त्री०, ४ । का०, ५७, १०४, १०६,

[स० पुं०] (स०) १४८ १८३, १६७, १६ २२३, २३०, २४४ । ऋ०, ४, ७७ । ल० २१ ।

भरोषा । प्रतीति ।

विश्वसासन = वि० ५६, १०६ ।

[स० पुं०] (स०) विश्वास का बहुवचन ।

विश्वसामयी = का० १६६ ।

[वि०] (स०) जिसका विश्वास किया जा सने । जा विश्वास स भरी हा ।

विश्वसासहीन = का०, १६७ ।

[वि०] (स०) जिसका विश्वास न किया जा सके । अविश्वासी ।

विश्वेति = वि०, १५४ ।

[स० पुं०] (स०) सत्कार एसा ।

विश्वेश = प्र० २३ ।

[स० पुं०] (स०) परमात्मा । ईश्वर जा सत्कार का स्वामी है ।

विश्वेश्वर = वि०, ७२, ७४ ।

[स० पुं०] (स०) दे० 'विश्वेश' । परमेश्वर शिव की एक मूर्ति और नाम ।

विश्वभक्त्या = स० ६० ।

[स० स्त्री०] (स०) प्रेमकथा । प्रेमा और प्रेमिना के वाच म हानेवाल ऋणडे या बटाक्ष का वृत्तात ।

विश्वरुच्य = का० ५२ ।

[वि०] (स०) शात । विश्वास के याग्य । निश्चित ।

विश्रान्त = का० कु०, १३ । का०, ८ ८८, ६३ ।

[वि०] (स०) ऋ०, ३१ । म०, ७ ।

थका हुआ । जो विश्राम करता हा ।

विश्राम = स्त्री० ५३ । का० कु०, १३, ७२ ।

[स० पुं०] (स०) का० ४७ ६५ ७०, ८७, ६२, ११८, १२४, १४८, १५६ १७२ २१४, २२६ । वि०, ४, १४१ । प्रे०, ४ ।

ॐ, ३१। ल०, १२, १६, ४४, ७१।
आराम। आनंद। शांति।

विश्रामराज = ॐ, २६, ६३।

[सं० पु०] (सं०) विश्राम करने के लिए रजनी के समान।
विश्राम देनेवाली रात्रि।

विश्रामस्थान = ॐ, ३३।

[सं० पु०] (सं०) विश्राम करने का जगह।

विश्रुतल = ॐ २१२।

[वि०] (सं०) अस्थिर। जिसका गृहला या क्रम
अपवर्धित न हो।

विष = ॐ, ३२। वा०, ६, ८६ १२२,

[सं० पु०] (सं०) २५ २३६ २४१। ॐ, ७७।
ल०, ३५।
जहर। परल।

विषम = ॐ, १६ १२१, १७५, १७१, २०१,

[वि०] (सं०) २३६ २४१ २७३। ॐ, ३८।
वि०, १४२।

जा सम न हा। ऊचा नीचा। उबड़
खाउबड़। असमतल। सगीत का एक
ताल। भयकर। विषम। जा दो
व भाग देने में पड़े।

विषमता = ॐ ५४ १२१, १७१ १७२।

[सं० क्री०] (सं०) असमानता। विरोध। बैर।

विषमयी = ॐ १२१।

[वि०] (सं०) जहरानी। जहर में भरा हुई।

विषयशून्य = ॐ २४१। ॐ ३१।

[वि०] (सं०) जिनमें मजबूत या प्रतिपाद्य तत्त्व
न हो। जिनमें किसी प्रकार विवेचन
न हो। तर्कहीन।

विषयसूत्र = ॐ पु०, १२।

[सं० पु०] (सं०) विषयों का सूत्र।

विषाद = ॐ पु० १। वा०, १७० २२७।

[सं० पु०] (सं०) १६५। ॐ, ३०। ल० ४८।
वा०, ७, १८ २४ १२२, १६७,
१८०, २०५ २३६। वि०, ३५।
ॐ, ३१, ४३। ल० ५३ ७२।
ल०, ३३ ४३ ५६।

दुःख। बट। मानसिक दुःख। काम
करने का इच्छा न होना। दुःखता।

अप्रसंगीय अभिलाषा के कारण मन में
होनेवाला दुःख। साहित्य में एक
संचारा भाव।

[विषाद—माधुरी खंड ३, सूर्या १, पृष्ठ ३, पर लक्ष्म
१६२५ में सर्वप्रथम प्रकाशित,
भरना का गीत। मलिन अचलन में
कोई सतत जगती एकमत निजम में
पेट का छाया के तल पटा है। उसका
प्रत्यय शिथिल, उसका धनुष टूटा
हुआ और वधो चुप पडी है। स्मृति के
भ्रोंके उसका हृदय तो श्रम के बग उठा
रहे हैं। उसकी दृष्टि विषयशून्य है और
उसके हृदय की पीडा भरने के रूप में
बहती चला जा रहा है। उसकी दृष्टि
में सुख है। उसे छोड़ो मत। कवि का
सुख तो उसके विषाद में ही है यह
बीज विदुः श्रम में और कामाग्नी में
अपनी भावात्मक मन्त्रपात्मक तथा
रमात्मक भूमि ग्रहण कर सता है। दण्ड,
श्रीन प्रकृति के बहण काव्य सा।]

विषाद आवरण = ॐ, २०५।

[सं० पु०] (सं०) विषाद का पटा।

विषादविलीन = ॐ, २२७।

[वि०] (सं०) दुःखमल। घेद में निमग्न।

विषादसो = ॐ, ४७।

[वि०] (वि०) दुःख का समान।

विश्रुत = ॐ, १८।

[सं० पु०] (सं०) नाटक का एक भाग जिसमें गत
और भागत घटनाओं का सूचना निदान
श्रुति का पात्रा द्वारा दी जाती है।
बाधा। विषय।

विसद = ॐ, ४६, १४१, १६६।

[वि०] (प्र० मा०) बडा, विमान।

विसरे = ॐ १५३।

[वि०] (प्र० मा०) शून्य। विमर्या प्रिया का एक रूप।

विसर्जन = ॐ, १७०।

[सं० पु०] (सं०) बिना करना।

[विसर्जन—सबप्रथम इंदु कला २, होलिकाक ६७-६८ वि० मे प्रकाशित, चित्राधार में पराग क अंतगत पृष्ठ १७० पर सकलित । तारकगण आकाश में क्यो मद मद हल रहे हैं ? हे चंद, तुम्हारी विरणा की कीर्ति मलिन हो कर क्यो आगती जा रही है ? रे निलज्ज, तुम्हे यह विचारकर लज्जा नहीं आता कि तुम्हारे दशन स जो मुल मिला था वह सब मलय के गग उडाए लिए चल जा रहे हो । फून अग्नी छिले है किंतु सोरम स हीन है । क्या कमलिनी क कुञ्जसमूह म अब भी पराग है ? किस कारण जल को व सुरभिन कर रहे हैं ? हे वगवती नदा, एक, भाग मत । इस प्रकार रात्रि विसर्जन वा साहित्यिक वरुण करते करते कवि अत म कहता है, जाग्रो अस्ताचल म निवास करो ।]

- विसरलैय = वि०, ५५ ।
 [म० प्र०] (स०) कमलनाल के ककण ।
 विसारहु = वि०, १६६ ।
 [क्रि०] (प्र० भा०) मूल जाग्रो । भूलो ।
 विसारि के = वि०, १७१ ।
 [पूर्व० क्रि०] (प्र० भा०) भूल कर ।
 विसारो = वि०, १७६ ।
 [क्रि०] (प्र० भा०) भूलो ।
 विसाला = वि०, ५५ ।
 [वि०] (प्र० भा०) विशाल । बडा । विस्तृत ।
 विसिख = वि०, ३४ ।
 [सं० जी०] (सं०) विशेष प्रकार की शिचा या विशिष्ट सीख ।
 विस्वार = का०, ५६ । वि०, १५८ । म० ४१ ।
 [सं० प्र०] (सं०) फलाव । तनाव । विस्तृत होना ।
 विस्तारो = वि०, ७४ ।
 [क्रि०] (हिं०) फलावो ।
 विस्तीर्ण = क०, १४ ।
 [वि०] (सं०) द० 'विस्तृत' ।

विस्तृत = का०, ३, २०, ३५, ५६, ७१, १२०, १३२, १८०, २८० । म०, ६३ । प्र०, ७, १३ । म०, ४, ल, ३३ । वि०, १५० । फला हुमा । विशान । बडा ।

विस्तृत सी = का०, २७७
 [वि०] (सं०) फले हुए के समान । विशाल के सदृश ।
 विस्मृत = क०, २४ । का० १७७, १६२ । वि०, ६०, १६८ १७०, १८४ । म०, ६ । भूला हुआ । जा याद न हो ।

[विस्मृत प्रेम—इंदु कला २, वि रा ४, कातिक ६७ म प्रकाशित और पराग क अंतगत चित्राधार म पृष्ठ १७०-७१ पर सकलित । कवि विस्मृत प्रेम के सवय मे अनक प्रश्न उठाता है कि प्रेम अतीत के सागर में डूब जाता है ता भी उस प्रेम का रागरग क्यो हृदय मे उठता रहता है यद्यपि वह ऊपर से समाप्त हो जाता है तौ भी उसकी लाली भीतर से क्यो पगती है ? प्रकृति की सुंदर सुपमा देखत समय भी तुम्हारी स्मृति आमा कहा स प्रकट हो जाती है ? जब सारा आकाश मघाच्छ न हो जाता है और हृदय निगाशा स भर जाता है तब भी विस्मृत प्रेम का प्रमा दिखाई पडती है । ध्रुव के समान तुमने यह कीन सी प्रमा धारण कर रखी है ?]

विस्मृत से = का०, २४५ ।
 [वि०] (हिं०) भूले हुए के समान ।
 विस्मृति = म्र ८, २६, ५५, ७०, ७५ । का० कु०, [मं० जी०] (सं०) ६० । का० ६, ४६ ६७, ६७, १७७, १६३, २८६ २६३ । प्र०, १६ । विस्मरण, याद न होना, भूल ।

विहंग = का०, १७२, १८२ ।
 [सं० प्र०] (सं०) विहंग, पक्षी । बादल, अन्न । वीर, वाण, शर । आनाशचारी, आकाश म विचरनेवाला प्राणी या कोई वस्तु ।

विहंगम = का० कु०, ८। पि०, १४५।
 [मं० पु०] (सं०) पत्नी।
 विहंगमस्य = नि०, १४४ १५५।
 [पि०] (हि०) पत्निया के माप।
 विहंसते = मा० २६। का०, २६०।
 [क्रि०] (हि०) हसत। प्रसन्न होता।
 विहंग = का०, १४४, २६०। पि०, १४६।
 [सं० पु०] (सं०) ल०, ४५।
 २० 'विहंग'।
 विहंगकुल = पि०, ५४ म०, ७।
 [सं० पु०] (सं०) पत्निया का समूह या परिवार।
 विहंगवालिकासी = का० १७५।
 [सं० स्त्री०] (हि०) पत्निया के निगु के गमान।
 विहरण = पि०, ६८ १६३।
 [सं० पु०] (सं०) घूमना। घूमने का विधा करना। विहार
 करना। विशाव रूप स ध्यान ला।
 विहरणप्रेमी = वि० ६६।
 [पि०] (सं०) विहार का प्रमी। विहार करनेवाला।
 विहरत = वि०, २८, १५७।
 [क्रि०] (ब्र० भा०) विहार करता है।
 विहरते = का० १८२।
 [क्रि०] (ब्र० भा०) विहार करते। घूमते।
 विहरदि = वि०, ६३।
 [क्रि०] (ब्र० भा०) विहार करते हैं।
 विहस = ल० ४८।
 [पुव० क्रि०] (हि०) हसकर।
 विहसते = मा०, ६४।
 [क्रि०] (हि०) हसते हैं।
 विहंग = ल०, १६।
 [सं० स्त्री०] (सं०) एक प्रकार का काजल जो आँखों में
 लगाया जाता है। एक राग जो भाषी
 रात क समय गाया जाता है।
 विहार = का०, ६। ल०, १३।
 [सं० पु०] (सं०) मनाविरोध और सुखप्राप्ति के लिये
 होनेवाला क्रांति। बौद्ध भिक्षुओं के
 रहने का स्थान।

विहीन = का०, २०, १७१। ल०, ५३।
 [पि०] (सं०) गृहीत। विना।
 विहल = का०, ४८, २६३ २६४, १३०, ८१।
 [पि०] (सं०) ल० ३०।
 घातुन। विमार। मनुष्य।
 विहलसा = का०, ८।
 [सं० स्त्री०] (हि०) घातुन का गमान। प्रसन्न क मरग।
 विहलसी = ल०, ३३।
 [पि०] (सं०) घातुन की तरह।
 वापि = पि०, ६६ १६६।
 [सं० स्त्री०] (सं०) सह। तरंग।
 वीचिन = वि०, १५३।
 [सं० स्त्री०] (ब्र० भा०) सह, तरंग। धरणात, मुग। चमक।
 वोषी = वि० ६८।
 [सं० स्त्री०] (सं०) सह। तरंग।
 वीणा = मा०, ३८। का० कु०, १२१ का०,
 [सं० स्त्री०] (सं०) २८२। वि०, १५६। ल०, ३६।
 ल० ४८।
 एक प्रकार का प्रसिद्ध वाद्ययंत्र।
 वाणाश्रुतकारो वाणी = का०, कु०, ४८।
 [सं० स्त्री०] (सं०) वीणा के स्वर में मिल जानेवाले स्वर।
 वार = का० कु०, ५२ ६६ १०६, १०८,
 [पि०] (सं०) ११३। का०, ५५, २४८। वि०, २२,
 ४०, ४२। म० ८, १०, १२, १५
 १६, १७, १८।
 वहादुर। पराक्रमी। शीयवान्। भाइ।
 लड़का। पति।
 वारकर्म = वि०, ६४।
 [सं० पु०] (सं०) वारो का काम। वीरता।
 वीरगाथा = ल०, ५३।
 [सं० पु०] (सं०) वीरो का कथा।
 वीरजन = का०, ११५।
 [सं० पु०] (सं०) वीर लोग।
 वीरता = का० कु०, १०६। ल०, ५२।
 [पि०] (सं०) शीर्ष। पराक्रम।
 [वीरशालक—कानन कुसुम ने पृष्ठ १११ पर
 संकलित पाँच पृष्ठों की कविता जितने

गुरु गोविंद सिंह के पुत्र जोरावर सिंह और पतेह सिंह, जो दीवार में चुनवा दिए गए थे, की धर्म पर आत्मबलिदान करने की शौर्यपूर्ण कथा बड़े ही साहित्यिक ढंग से कवि ने बखित की है।]

वीरभाव = म०, ८।

[सं० पुं०] (सं०) वीरता का भाव।

वीरभूमि = ल०, ५२।

[सं० स्त्री०] (सं०) वीरा को पैदा करनेवाली भूमि।

वीरवर = चि० ४८।

[मं० पुं०] (सं०) श्रेष्ठ वार।

वारविचित्र = का० कु०, १०१।

[सं० पुं०] (सं०) अद्भुत पराक्रमा।

वीरशृंगार रस = चि०, २२।

[सं० पुं०] (सं०) माहित्य में माने गए नव रसों में से दो प्रथम रसों के नाम।

वीरुध = का०, २५ २६, ८६, २८४। का०

[सं० पुं०] (सं०) कु०, २६।

प्र०, ३। चि०, ५७।

लता। वनस्पति। पीडा।

वीर्य = का०, ४।

[सं० पुं०] (सं०) शूक्र। रेत। पराक्रम। बल। शक्ति।

वृत्तों = भा०, ४५।

[सं० पुं०] (हिं०) ससृष्ट वृत्त का टिप्पणी बहवचन। कथा और छोटा फल। वह पतला ठठल जिसपर फूल लगता है।

वृद् = चि०, ६। म०, २, ५ १०।

[सं० पुं०] (सं०) समूह, झुण्ड।

वृद्ध = चि० ६६।

[मं० पुं०] (सं०) समूह भी। दल भी।

वृत्त = का० कु०, २५, १०१, १०२। का०,

[सं० पुं०] (सं०) ३२। चि० ४६। प्र० १४। म०, २४।

पद। तब।

वृत्त पत्र = ऋ०, ३०।

[मं० पुं०] (मं०) पेट का पत्ता।

वृत्त पात = का०, २३३।

[सं० पुं०] (हिं०) पेट का पत्ता।

वृत्ता = का०, ३४। का०, कु०, १०।

[मं० पुं०] (सं०) गोल घेरा। वृत्तात। हाल। बखित छत्र।

वृत्ति = प्र०, ४, २४। चि०, १५०। ऋ०, [सं० स्त्री०] (सं०) ७१।

जीविका। रोजी। पेशा। व्यवहार आचरण योग्य छान को सहायतार्थ दिया जानेवाला धन।

वृत्तघन = का०, १६०।

[सं० पुं०] (सं०) व्रतामृत नाम के अत्यंत प्रतापी दत्त को मारनेवाले दूद।

वृथा = का०, १७५ १६४, २१६।

[वि०] (सं०) व्यर्थ। बमतलब। फिजून।

वृद्ध = चि०, ६५ ७३, ७४। ल०, ५३।

[सं० पुं०] (सं०) बुढ़ा। पतित। विद्वान्।

वृद्धि = का०, ५८।

[सं० स्त्री०] (सं०) बढ़ती। अधिगता। उ नति।

वृश्चिकों = ल०, ७८।

[सं० पुं०] (सं०) विच्छुषो।

वृष = का० २८२, १७७।

[सं० पुं०] (सं०) सांड। एक राशि। बल।

वृषभ = का० २८३, २८६।

[सं० पुं०] (सं०) दे० 'वृष'।

वृषभ की = चि०, ७२।

[सं० पुं०] (मं०) बल का।

वृष्टि = का०, ६, १२, २०, ७३, १६४ २३६।

[सं० स्त्री०] (सं०) भ०, ६०।

वारिस। वर्षा।

वे = का० कु०, ७० २५, ३१, ५२। का०,

[सं०] (हिं०) ८, ५५ ६४ ७१ १४२ १४३ १८० १८३ २३८ २४५। ऋ० ५१। म०, ५, १०। ल०, ३३।

वह' का बहुवचन।

[वे कुछ दिन कितने सु दूर थे—नहर का सुपनिद्ध गीत पृष्ठ २७ पर सकलित। यह कविता मिलन क विश्वो में भरपूर है और उन मुदर दिनों का बखान करती है जय मावन के सुख सपन धन आँखों

की छाया मान मे घोर उग गमय
 क्षपरा का युव तेजा ही लगता था
 जमे हृन्धु रंजिन नत यान स भर
 चित्तिय प्रबर म युग न दाता भरे मूला
 वा भूम रहे हो। उग समय प्राण
 पनीहा क स्थर म घोमता था कीर
 हरियाली समय बरसती थी। यौरन
 क मद म निबला दृषा गय मुहुन
 मासती वे रजकण सा लगता था।
 जय न ल छायावा पट पर बिजला प्रम
 प्रणय का चित्र सीचती थी तो रूप
 क मधुर बिम रमृति क माध्यम स तिल
 उठने थे। यौरन व प्रेम मद स पुरित
 मिलन व य बुध दिन सचप्रुच ।वतने
 सु दर य ? मड कविता सय प्रथमजाग
 रण क १७ जुलाई १९३२ क भव म
 प्रकाशित हुई थी।]

वेग = का० कु०, ५३ ७२ ७५, १०१, १०६
 [सं० पु०] (सं०) ११६ १२५। का०, १५ ५२ २०२।
 चि०, १५६। म०, ७०। प्र०, २४।
 ल०, ६। ल० ७६।
 प्रवाह। बहाव। जार। तेजी। शीघ्रता,
 जल्दा।

वेगपूर्ण = का० कु०, ४४। म०, २। ल० ६६।
 [वि०] (सं०) प्रवाहपूर्ण। बहावदार। तेज। वेग से
 भरा हुआ।

वेगभरा = का०, ६५।
 [वि०] (सं०) प्रवाह से भरा हुआ।

वेगभरी = का०, १६० २२१।
 [वि०] (सं०) तेजा या प्रवाह से भरी।

वेगभरे = का० कु० १२।
 [वि०] (सं०) प्रवाह से भरे।

वेगवती = चि०, १५०।
 [वि०] (सं०) प्रवाह से भरी। बहावदार।

वेगसहित = का० कु० १२६। म०, ७।
 [सं० पु०] (सं०) प्रवाह के साथ। तेजी से। प्रवाहायुक्त।
 शीघ्रता से। जल्दी से।

वेगु = का ३३। का० कु०, ११४। का०,
 [सं० पु०] (सं०) १७८, २२४।

गनी, बागुरी। बाग।

वेगुवादन गुज = का०, ५०, ११२।

[सं० पु०] (सं०) व कुज जिनम गंगा का बानन होता है।

वेतनयुक्त = प्र०, १६।

[सं० पु०] (सं०) वेतनभावा। तनपाहू पानेवावा।

वेतसी = का०, १४६।

[सं० पु०] (सं०) वें। बटारानत।

वेद = म०, ६३।

[सं० पु०] (सं०) वाराविव घोर मचवा जात। दावों के
 बार सर्वमाय प्रथाया धामिर प्रथ
 जिनके नाम ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद
 घोर ध्ययवय है।

वेदगा सा = का०, ८६।

[वि०] (सं०) पाठा क समान।

वेदना = का०, ७, ११, ४०, ६२, ६६, ८८।

[सं० जी०] (सं०) का० कु० ६०। का० २८, ४०, ४२,
 ११६, १२० १७५, १७६, २१२।

२१, २१, ३० ४६।

थया, पाठा। हाशिव या मानसिक

दुःख। पष्ट तरलोक।

वेदनामय = का०, ८४।

[वि०] (सं०) वेदनायुक्त। दुःखपूर्ण।

वेदने = का०, ७५। म० ८८।

[सं० जी०] (सं०) वेदना का सर्वांगन वारणगत रूप।

वेदने ठहरा — भरता का १२ पत्तया का इत

कविता म कवि ने कहा है कि पाठा म
 ही मुझे सुख था। किसी प्रकार का
 सुख नहीं था। लेकिन मिलन के स्वप्न
 न उठे पीठित कर दिया। मेरे पास तो
 कवल मरा प्राण है। वेदने, तुम मेर
 साथ रहो, ही तो प्राण दूंगा।]

वेदिका = का० १८३ २१८।

[सं० जी०] (सं०) शुभ या धार्मिक कार्य के लिये बनाया गया
 लचा छायादार स्थल। यगादि के लिये
 निमित्त चौको घोर सहस स्थल। बुरभी।
 आसन, बठन का बुध लचा स्थान।
 यह चवुनरा जिसपर मकान बनता है।

वेदियाँ = का०, १६६।

[सं० जी०] (हि०) दे० 'वेदी' (बहुवचन)।

- वेदी = आ०, ६६। का०, ११४, ११६, २०१,
[सं० खी०] (हि०) २१५, २२४।
शुभ या घामिक वृत्त के लिये निर्मित
छायादार उपयुक्त भूमि।
- वेदीबनाला = का०, २१४।
[सं० खी०] (सं०) वेदिका की पवित्र लपटें।
- वेला = आ०, १२, ४०, ६०। का०, १५।
[सं० खी०] (सं०) ल०, ५६।
किनारा लट। सीमा। काल। समय।
समुद्र की लहरें।
- वेशा = का० कु०, ६, ११०, १११। का०,
[सद्यः पु०] (सं०) ५२, २५८ वि०, २२। भ०, ५८।
प्र०, १८, २५।
पहनावा पाशाक, पहनने के वस्त्र।
- वेप = का० कु० १२।
[सं० पु०] (सं०) दे० 'वश'।
- वेष = का० कु०, ८६।
[वि०] (सं०) बानून के अनुसार ठीक। विधि के
अनुसार। मविधान के अनुसार।
- वैभव = आ, २३। का० कु०, ११३। का०
[सं० पु०] (सं०) ६ ५६ ६८६। प्र०, १२। ल०,
३४, ४७।
विभव। एश्वय। धन मपति।
- वैभवहीन = का०, ८२।
[वि०] (सं०) विभव विहान सगतिहीन।
- वैद्वानर = का०, १८३। वि० १३६।
[सं० पु०] (सं०) धर्मि। चेतन परमात्मा।
- वैसा = का०, ८७ ६३ १४३। म० ५, २१।
[वि०] (हि०) उस तरह का। उन प्रकार का।
- वैसी = का०, २८, ६७, १५७ २८८।
[वि०] (हि०) दे० 'वसा'।
- वैसे = आ० २७। का० २८२। वि०
[सं०] (हि०) १७३। ल०, ६६।
उस तरह।
- वोही = का० कु०, ६।
[सं०] (हि०) दे० 'वही'।
- व्यग = आ०, ५७। ल०, ६८, ७६, ७६।

- [सं० पु०] [सं०] चुटकी, ताना, बोली शब्द का व्यञ्जना
के द्वारा प्रकट होनेवाला गूढ अर्थ।
- व्यग मलिन = ल० ११।
[वि०] [सं०] बोली बोलने या चुटकी लेने के कारण
अस्वच्छ। व्यग से दूषित।
- व्यग हास = ल०, ६७।
[वि०] (सं०) व्यगपूरुहमी। उपहास।
- व्यक्त = का० कु०, ७४। का०, १६, २७, ३५,
[वि०] [सं०] ५३ वि०, १६६।
स्पष्ट प्रकट। स्थूल। थडा।
- व्यक्ति = का०, ५०, ७०, १३२। प्र०, १६,
[सं० खी०] (सं०) १७।
मनुष्य, प्रादमा। व्यक्त होने की क्रिया।
- व्यक्तिगत = प्र०, १७।
[वि०] (सं०) व्यक्तिगत। क्रिया व्यक्ति से संबंधित।
- व्यजन = का०, ७३, ६०।
[सं० पु०] (सं०) पक्षा। भालर।
- व्यतीत = वि०, ३४, ४५। प्र० ८। ल०, २३।
[वि०] (सं०) गत, बीता हुआ।
- न्यथा = आ०, ११ ५२, ५४। का० कु० ८,
[सं० खी०] (सं०) २१। का०, ५४, १२६, २१५, २१७
२२६। का०, २७ ६१। ल०, ११,
२१, ३७, ४०।
पाठा, धरना, कष्ट, दुख।
- व्यथा गौठ = का०, २१३।
[सं०] (हि०) दुल की गाठ। व्याकुल वदना।
- व्यथाभार = का०, २४४।
[वि०] (सं०) दुख का वारु। वेदना का भार।
- व्याधायि = आ० १३, ५८।
[सं० खी०] (हि०) दे० 'वधा', 'दुःखवचन'।
- व्यथित = आ० ८, ६१। का० कु०, १७, ८०
[वि०] (सं०) ८८। का० ३१, ३७, १२०, २२१।
वि०, ६५ १४३ १४८। प्र०, १४।
ल०, ३३।
दुःखित। जिस किसी प्रकार की वेदना
या कष्ट हा। दुःखा।
- व्यथिता = का०, २४५।
[सं० खी०] (सं०) दुःखिनी स्त्री।

की छाया मात्र मे घोर उस समय
 धपरा का उखा लगा ही लगता था
 जैसे इंद्रधनु रंजित नल पान्न से भरे
 चित्तज संवर म युग व दोरों भरे झूठी
 का घूम रह ही। उग समय प्राण
 पपीक्षा व स्वर म वासता था घोर
 हरिधाली सवत्र धरसती थी। यीश
 के मद स निवना हुआ गम मुगुल
 मातता वे रजकण सा लगता था।
 जव न ल छावाच पट पर बिजला प्रेम
 प्रणय का चित्र लीचनी धी ली रूप
 क मधुर चित्र स्मृति क माध्यम स मिल
 उठन थ। योरन व प्रेम मद स पुरित
 मिलन व य कुछ दिन सचमुच कितो
 सु दर थ ? यह कविता सय प्रथमजाग
 रण क १७ जुलाई १९३२ व धन म
 प्रकाशित हुई था।]

वेग = का० कु०, ७३, ७२, ७५, १०१, १०६
 [सं० प्र०] (सं०) ११६ १२५। का० १५, ५२, २०२।
 वि०, १५६। ऋ० ४०। प्र० २४।
 ल०, ६। ल० ७६।
 प्रवाह। बहाव। जार। तजा। शीघ्रता,
 जल्दा।

वेगपूर्ण = का० कु०, ४५। म०, २। ल० ६६।
 [वि०] (सं०) प्रवाहपूर्ण। बहावदार। तेज। बग से
 भरा हुआ।

वेगभरा = का० ६५।
 [वि०] (सं०) प्रवाह से भरा हुआ।

वेगभरी = का० १६०, २२१।
 [वि०] (सं०) तेजी या प्रवाह से भरा।

वेगभरे = का० कु०, १२।
 [वि०] (सं०) प्रवाह से भरे।

वेगधरी = वि० १५०।
 [वि०] (सं०) प्रवाह से भरी। बहावदार।

वेगसहित = का० कु० १२६। म० ७।
 [सं० प्र०] (सं०) प्रवाह के साथ। तेजी से। प्रवहायुक्त।
 शीघ्रता से। जल्दी से।

वेगु = का० ३३। का० कु०, ११४। का०,
 [सं० प्र०] (सं०) १७८, २२४।

गरी, बानुरी। बाग।

वेगुवादन कुत्र = का०, कु०, ११२।

[सं० प्र०] (सं०) व कुत्र निनम गया का वादन होता है।

वेतायुक्त = प्र०, १६।

[सं० प्र०] (सं०) वानभागी। तनपाद पानेवाता।

वेतसी = का०, १५६।

[सं० प्र०] (वि०) वें। बगवाता।

वेद = म०, ६३।

[सं० प्र०] (सं०) वादाविषधी गन्वा शान। वायो क
 पार सवमान प्रपाय धामिष द्रव
 जिनके नाम द्वापे, मधुरे, माभदेव
 धीर धयवर्ण है।

वेदना सा = का०, ८६।

[वि०] (सं०) पाटा व तमान।

वेदना = का० ७ ११, ४०, ६२ ६६ ८८।

[सं० प्र०] (सं०) का० कु०, ६०। का० २८, ४०, ५२,
 ११६, १२० १७५ १७६, २१२।
 ल०, २१, ३० ४८।

व्यवा, पाठा। हासि या मानविष
 दुग। बट, तर-नीक।

वेदनामय = का० ८५।

[वि०] (सं०) यन्नायुक्त। दुस्तूल।

वेदन = का०, ७५। म० ८८।

[सं० प्र०] (सं०) वना का सवाजन वारणगत वन।

वेदने टहरा — भगा का १२ व सया का द्रव
 कविता म कवि ने कहा है कि पाठा म
 ही मुझे सुल था। किसी प्रकार का
 सुख नहीं था। सविन मिलन के स्वप्न
 ने उस पालित कर दिया। मर पास तो
 फल मरा प्राण है। वेदने सुम मेरे
 साथ रहो - ही तो प्राण द दू गा।]

वेदिका = का० १८३ २१८।

[सं० प्र०] (सं०) श्रुम या धामिक धर्म के लिये बनाया गया
 उचा छायादार स्थल। यज्ञादि के निधि
 निमित्त चौकी घोर सहस स्थल। कुरथी।
 आसन, यठने का कुछ ऊचा स्थान।
 यह चबूतरा जिसपर मकान बनता है।

वेदियों = का०, १६६।

[सं० प्र०] (हि०) दे० वेदी (बहुवचन)।

वेदी = आ०, ६६। का०, ११४, ११६, २०१,
[सं० खी०] (हि०) २१५, २८४।

शुभ या धार्मिक कृत्य के लिये निर्मित
छायादार उपयुक्त भूमि।

वेदीबनाला = का०, २१४।

[सं० खी०] (स०) वेदिका की पवित्र सपटें।

वेला = आ०, १२, ४०, ६०। वा०, १५।

[सं० खी०] (स०) ल०, १६।

किनारा तट। सीमा। काल। समय।
समुद्र की लहर।

वेश = वा० कु०, ६ ११०, १११। का०,

[सं० पुं०] (प्र०) ५२, २५८ चि०, २२। ऋ०, ५८।

प्रे०, १८, २५।

पहनावा, पोशाक, पहनने के वस्त्र।

वेप = का० कु०, १२।

[सं० पुं०] (स०) दे० 'वेश'।

वैध = का० कु०, ८६।

[वि०] (स०) कानून के अनुसार ठीक। विधि के
अनुसार। सविवान के अनुसार।

वैभव = आ, २३। वा० कु०, ११३। वा०,

[सं० पुं०] (स०) ६ ५६, ६६६। प्रे०, १२। ल०,
३४, ४७।

विभव। एश्वय। धन भक्ति।

वैभवंहीन = वा०, ८२।

[वि०] (स०) विभव विहान सयसिहीन।

वैश्वानर = वा०, १८३। चि० १३६।

[सं० पुं०] (म०) अग्नि। चेतन परमात्मा।

वैसा = वा०, ८७ ६३, १४३। म०, ५, २१।

[वि०] (हि०) उस तरह का। उस प्रकार का।

वैसी = वा०, २८, ६७, १५७ २८८।

[वि०] (हि०) दे० 'वसा'।

वेसे = आ० २७। वा०, २८२। चि०,

[प्र०] (हि०) १७३। न०, ६६।

उम तरह।

वोही = का० कु०, ६।

[म०] (हि०) दे० 'वही'।

व्यग = आ०, ५७। ल०, ६८, ७६, ७६।

[सं० पुं०] [म०] चुटकी, ताना, बोली, शब्द का व्यञ्जना
के द्वारा प्रकट होनेवाला गूढ अर्थ।

व्यग मलिन = ल० ११।

[वि०] [स०] बोली बोलने या चुटकी लेने के कारण
अस्वच्छ। व्यग से दूषित।

व्यग हास = ल०, ६७।

[वि०] (म०) व्यगमूह हसी। उपहास।

व्यक्त = का० कु०, ७४। का०, १६, २७, ३५,

[वि०] [स०] ५३ चि०, १६६।

स्पष्ट प्रकट। स्पूल। बडा।

व्यक्ति = वा०, ५०, ७०, १३२। प्रे०, १६,

[सं० खी०] (स०) १७।

मनुष्य, आदमी। व्यक्त होने की क्रिया।

व्यक्तिगत = प्रे०, १७।

[वि०] (स०) व्यक्तिगत। किसी व्यक्ति से संबंधित।

व्यजन = वा०, ७३, ६०।

[सं० पुं०] (सं०) पत्ता। झालर।

व्यतीत = चि०, ३५, ४५। प्रे०, ८। ल०, २३।

[वि०] (स०) गत बीता हुआ।

व्यथा = आ०, ११ ५२, ५४। का० कु०, ८,

[सं० खी०] (सं०) २१। का०, ५४, १२६, २१५, २१७,

२२६। ऋ०, २७, ६१। ल०, ११,

२१ ३७, ४०।

पीडा, कष्ट, दुःख।

व्यथा गाँठ = वा०, २१३।

[सं० खी०] (हि०) दुःख की गाँठ। व्याकुल वेदना।

व्यथाभार = का०, २४४।

[वि०] (सं०) दुःख का बोझ। वेदना का भार।

व्यथायें = आ०, १३, ५८।

[सं० खी०] (हि०) दे० 'पया' (बहुवचन)।

व्यथित = आ० ८, ६१। का० कु०, १७, ८०,

[वि०] (सं०) ८६। वा०, ३५, ३७ १२०, २२१।

चि०, ६५, १४३, १५८। प्रे०, १४।

ल०, ३३।

दुःखित। जिसे किसी प्रकार की वेदना

या कष्ट हुआ। दुःखा।

व्यथिता = का०, २४४।

[सं० खी०] (सं०) दुःखिनी स्त्री।

व्यर्थ = प्रा०, १०, ३६ । वा० पु०, १३ ।
 [वि०] (सं०) वा०, ३७, ३६, ८७, ८६, १२०,
 ११४, १६२, १६४ । पि० ११, ७३ ।
 भ०, ३७ ।
 निरर्थक । अर्थरहित । विपन्न, जिगता
 बोध पत्र त हो ।

व्यापकता = प्रा०, १६५ ।

[सं० पु०] (सं०) ग० १६, १७, १८, १९ ।

व्यापार = प्रा०, ७७ । वा०, ५६ । १२५, १८८ ।

[सं० पु०] (सं०) भ०, ४२ । ग०, १०, १३ ।

व्यापक, नाम, नाम । गद्यात्मिका ।

प्रायः शरीर-तर धरते वा नाम ।

व्यापक ।

व्यापि = प्रा० पु०, १ । ल०, ६० ।

[वि०] (सं०) जो व्याप्त हो जो व्याप्त होकर पत्रादा ।

व्याप्त हुआ ।

व्याप्त = प्रा०, ३२ । वा० पु०, १०८, ११०, १२३ ।

[वि०] (सं०) बिना वस्तु या स्थापना म अन्वयित ।

गोपीना पत्रादा हुआ ।

व्याली = प्रा०, ५ ।

[सं० स्त्री०] (सं०) मणिगा, नागिन ।

व्यालीसो = प्रा० १४ ।

[वि०] (हिं०) सर्पों का समान ।

व्याहृद् = चि०, ५४ ।

[क्रि० सं०] (सं० मा०) व्याहृत कर । व्याहृत त्रिधा का
 एक रूप ।

व्योम = प्रा० पु०, २४, ६४, ६६, ११२ ।

[सं० पु०] (सं०) का० १४, १६, २०, २६, ८८ ।

चि०, २३, ६७, ७४, १४१, १४६ ।

भ०, २४ । प्रे०, १० । म०, ३ ।

ल०, १६, ५६, ६८, ७५ ।

प्राकाश । अतिरिक्त । प्राप्तमान ।

व्योमवेश = चि०, ७२ ।

[सं० पु०] (हिं०) प्राकाश । अचली । रजनी । शिव ।

व्योमगगा = प्रा०, ८ ।

[सं० स्त्री०] (सं०) प्राकाश गगा ।

व्योमतल = प्रा०, ५१ ।

[सं० पु०] (हिं०) प्राकाश की सतह ।

व्योमबीच = प्रा०, ४६ । चि०, १८२ ।

[सं० पु०] (हिं०) प्राकाश मध्य । गगन के बीच म ।

व्योमभुक्ततासम = चि०, १४५ ।

[वि०] (हिं०) प्राप्तमान के मोतिया के समान । तारों
 के समान ।

व्यवहार = प्रा०, १८६ ।

[सं० पु०] (सं०) नाम, नाम । यथावत् । व्यापारण ।

व्यवधान = भ०, ६१ ।

[सं० पु०] (सं०) घाट, परदा । अन्वय । गृह । विच्छेद ।
 याथा ।

व्यवसाय = प्रा० १८२ ।

[सं० पु०] (सं०) धधा । जीविका निर्वह के निमित्त किया
 जानेवाला कार्य ।

व्यवस्था = प्रा०, १६८, २००, २७१ ।

[सं० स्त्री०] (सं०) प्रवच, इतजाम ।

व्यस्त = प्रा० १०, १३, १४, १५, ३३, ३५

[वि०] (सं०) ४६, ५१, ५३, ५६ । भ०, ८६ । ल०,
 ४४ ।

ध्वज्याया हुमा, यागुल च्यप्र ।

व्याकुल = प्रा०, ३१, ३३ । वा० १७, १६६ ।

[वि०] (सं०) वा० पु० १४, ६८, ८५ । वा०,
 ३६, ६५, १११, १३६, १६६, १६८,
 १८५, चि०, ६८, १४१ । भ०, ३८,
 ४५ । म०, ४ । ल० २६, ७० ।

अत्यंत उत्कृष्ट, यातर । ध्वज्याया
 हुमा, विव ।

व्याकुलता = प्रा० १६१ । चि १५३ । ल०, १२ ।

[सं० स्त्री०] (हिं०) कानरता । व्यस्तता । उत्कृष्ट ।

व्याकुलसी = प्रा०, २७, १२१ ।

[वि०] (हिं०) ध्वज्याई हुई सी । व्यस्त सी ।

व्याप्यो = प्रा०, २७१ ।

[सं० स्त्री०] (सं०) वरण, विश्लेषण । जटिल भ्रम का
 स्पष्टीकरण ।

व्याधि = प्रा० पु०, ७२ ।

[सं० स्त्री०] (सं०) बधेडा । रोग । विपत्ति ।

व्यापक = प्रा०, १६६, १७६ । ल०, ३२ ।

[वि०] (सं०) भरा वा ध्याया हुआ । घेरने या ढकने
 वाला ।

- ॐम सरोवर = चि०, १४६।
 [स० स्त्री०] (स०) आकाशरुपी सरोवर।
 व्रत = का० कु०, ११२।
 [स० पु०] (म०) मयुरा। वृ ण वा क्रोडाभूमि या लीला भूमि। समू२। गोष्ठ।
 व्रत कान्त = का० कु० १२५।
 [स० पु०] (स०) मयुरा क जगल। वृदावन के वन।
 व्रजभूमि = का० कु०, १११, ११४।
 [स० पु०] (स०) मयुरा और वृदावन की भूमि।
 प्रव्या = का०, ६३।
 [स० स्त्री०] (स०) दल। रगभूमि। घुमना फिरना। एकत्रित करना। आक्रमण।
 ब्रम्हा = का० कु० ११४।
 [स० पु०] ईश्वर। चतुर नन। सृष्टि कता, (ब्र० भा०) ब्रह्मा।
 त्रीङ्गा = का०, ६४ २६१।
 [स० स्त्री०] (स०) लज्जा, लाज, धम।
 श
 शक = चि०, ५०।
 [स० पु०] (ब्र० भा०) डर, भय, शका।
 शकर = चि०, ६१।
 [स० पु०] (स०) सहार करनेवाला। महादेव।
 शका = का० कु०, ५७ ५८। का०, १६६।
 [स० स्त्री०] (स०) चि०, ४। ऋ०, ६४। प्र०, २१।
 श्रान्त। भय। सदेह। खटवा।
 शकित = का० कु०, ८१।
 [वि०] (स०) भयातुर। डरा हुआ।
 शर = का० कु०, ११४।
 [स० पु०] (स०) धार्मिक दृष्ट्या पर बजाया जानवाला बड़े घोड़े का एक प्रकार का पवित्र वाजा। कवु।
 शपाश्रो = का०, १४।
 [स० स्त्री०] (हिं०) विजयिता। कमरा। स० शपा हिंदा बहुवचन।
 शरुल निपात = का०, १४।
 [स० स्त्री०] (स०) सपूर्ण नाश। पूण विनाश।

[शकुती—गंधार नरस मुगल का पुत्र एवं दुर्षोचन का मामा। यह शकुना नीर क नाम से विख्यात है। यह पाडवा का द्रुपी था। द्रापदा के स्वयंवर के समय ही यह पाडवा का समाप्त कर देना चाट्वा

था। युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में पाडवा के प्रति इसने दुर्षोचन के मन में शत्रुता जमाई। छत्र वपट द्वारा छूतक्रीडा (जुआ) कराकर युधिष्ठिर का सब कुछ इसने अपहृत करा लिया। द्वैतवन में पाडवा ने इनका रक्षा की। सहदेव ने महाभारत में इसका वध किया। इसने ही धृतराष्ट्र व साय गायारा का विवाह कराया था।]

शकुन्तला = चि० ५७ ५८, ५९, ६०, ६१ ६२।
 [स० स्त्री०] (स०) वरुव ऋषि की पतिता कथा।

[शकुतला—कार्निदाम वृत्र धमर नाटक अभिज्ञान शाकुतल का नायिका, महर्षि वरुव द्वारा पातित वरुव, दुयत वा पत्नी एवं भरत की माता थी। शतपथ ब्राह्मण में भी इसका अक्षरा के रूप में उल्लेख है। विश्वामित्र के तपकाल में अक्षरा मेनका इनका तनभग करने के लिये इंद्र द्वारा भजा गईं वा और मालिनी नदा के तट पर उसने शकुतला का जन्म दिया था। इसका मां मनका इनो छोड़कर इंद्रलोक चला गई और महर्षि वरुव ने इसका पालन पापण कन्या मानकर अपने आश्रम में किया। वरुव के आश्रम में ही हस्तिनापुर नरस दुष्यत उनका दशन करन भुगया खलत हुए आए। वही वरुव की अनुपास्थिति में इनका गायब विवाह इन शत पर हुआ कि इसका पुत्र हस्तिनापुर का सम्राट बनेगा। दुष्यत शकुतला का वही छोटा हस्तिनापुर लौट गए कि दून द्वारा वह उस वृत्तवा लेंगे। दुष्यत अपना वादा भूल गए और इस तुन पदा हुआ जिसका नाम भरत और मवदन रखा गया। वरुव ने देह इनके पतिगृह भजा। दुष्यत वा राजममाम जाने पर दुष्यत ने इनकी बात नहीं सुनी तब आकाशवाणी हुई कि अगर भरत युवराज नहीं

बाबाया जायगा ता राय्य हम्मातापुर पर अधिार कर राय्य का अधिारारा वनेगा। भाताशयाणा गुातर दयवा भगवाार विवा। कालिगय ने मरा भारत वा दय कया म कुत कयाया वा योग मिताया घट घट वि पुताया द्यवि क श्राय क कारण गुात वा म। गर्द भगूठी भयुताला द्वारा ता जाता है। दुयत क गायय निपाट को भगूठी मद्यना क गट म मिचना घोर दुयत का मया प्रण वा निर पान होना, मादि।]

शक्ति = का० ४१। का०, २४, ३१। का० [सं० स्त्री०] (सं०) कु० ३। का० ६, १४ ३१ ४६, ७२ ७६ १२५, १६५, १८६ १६६ १६६ २३७ २४४ २६२, २७३ २८६। चि० १४२। ल०, ६६ ७१। बल ताकत, पराक्रम। यह तत्व जिससे बाद काय या भ्रमप्राप्त सिद्ध होता है। प्रवृत्ति। माया। दुषा। एक प्रकार का शत्रु।

शक्ति कद्र = का० १६१। [सं० पुं०] (सं०) ग्रह जहाँ से शक्ति उत्पन्न हो। वह जिसमें विपुल शक्ति हो।

शक्ति चिह्न = का०, २५, २४०। [सं० स्त्री०] (सं०) शक्ति का चिह्न। शक्ति का प्रतीक।

शक्तिमती कहणा = चि०, १८७। [सं० स्त्री०] (सं०) दया की वह भावना जिसम कुष्ठ करने की सामर्थ्य हो।

शक्तिमयी = का०, २३८। [वि०] (हि०) शक्ति से युक्त। वनशाली।

शक्तिमान = चि०, १५३। [वि०] (हि०) पराक्रमी। बलशाली।

शक्तिर्यो = का०, १४। [सं० स्त्री०] (हि०) शक्ति का बहुवचन।

शक्तिशाली = का०, ५७। ल०, ७१ ७८। [वि०] (हि०) ताकतवर। बलिष्ठ। पराक्रमी।

शक्ति सुधा = का० कु०, ६३। [सं० स्त्री०] (सं०) शक्ति रूपी अमृत।

शक्ति श्रेय जीवत = का०, १६१। [सं० स्त्री०] (सं०) शिवा क शिवा शक्ति वा उद्गम। ज वा ता ज्वा म शक्ति मिग।

शक्तिदीन = का०, ३१।

[वि०] (सं०) धनश्री। पुत्रा।

शठगा = चि०, ६१।

[सं० स्त्री०] (सं०) भूगा। धानाका। पुत्रा।

शत = स० ३।

[वि०] (सं०) पताग का दूत। मी।

शतघ्नर्वा = ल० १४।

[सं० स्त्री०] (वि०) ल प्रहार के प्राचा शत्रुताय शानि।

शतदल = का०, ४६। का०, ७७५ १७८।

[सं० पुं०] (सं०) कमल।

शतदूशत = ल० ५३।

[सं० पुं०] शतदू—मत्तज तभी का प्राधान नाम। सबड़ा सततत्र।

शतपत्र = का० कु०, १७।

[सं० पुं०] (सं०) कमल। मोर। मना। सारग।

शत शत = का०, १६१ २४६, २८५। ऋ०, ५६। [वि०] (सं०) प्र०, १६। ल०, ६०।

सबड़ा यदूत स।

शतश = का० १६५। म०, १५।

[वि०] (सं०) सबड़ा। सीगुना।

शतादिद्यों = ल०, १३।

[सं० स्त्री०] धनक शक्तियों। धनेक शतको। बहुल समय।

शतु = का० कु०, २०। का० २३० २३८।

[सं० पुं०] (सं०) चि० ६४। म०, ६, ११, १२, २२। बरी। दुग्मन। एक भ्रमुर का नाम।

शतुन = चि०, ६५, ६७।

[सं० पुं०] (प्र० भा०) शतुप्रो।

शतु हृदय = चि०, ५१।

[सं० पुं०] (सं०) बरियों का दिल।

शतुता = ल०, ६६।

[सं० स्त्री०] दुग्मनी। घर।

शानि = का०, १७०।

[सं० पुं०] (सं०) सौर जपत् का सातवा मशुभ ग्रह। एक देवत।

- शपथ = ऋ०, ६७, ८७।
 [स० स्त्री०] (स०) वसम। सोग व।
 शब्द = क०, ८, १८। वा० कु०, १। वा०,
 [स० पु०] (स०) १६, १११, २४६। म०, १। ल०, ५८
 ७२, १११।
 साथव वणं समूह। ध्वनि। आवाज।
 सती के बनाए हुए पद।
 शयन = श्रौ०, १५। का०, ११८, १८६। ऋ०,
 [स० पु०] (स०) ५५।
 सोना, नींद लेना।
 शयन नृचा = का०, १८६।
 [स० पु०] (स०) साने का कर्मरा।
 शयनसार = श्रौ०, २।
 [स० पु०] (स०) सोने का नमरा।
 शय्या = श्रा०, ७६।
 [स० स्त्री०] बिछोना। पलंग।
 शर = का० कु० ६८। चि०, ४२, ५३, ५४।
 [स० पु०] (स०) वाण, तीर। भाले का फन्।
 शरजाल = चि०, ५३।
 [स० पु०] (स०) बाणों का समूह। तीरा का ढेर।
 शरजालहि = चि०, ४२।
 [स० पु०] (श० भा०) दे० 'शरजाल'।
 शरण = का० कु०, ६६। का०, १६१, १७१,
 [स० पु०] (स०) १८६ १६५। चि०, ६७। ल०, ६६।
 रक्षा। आश्रय। घर मकान।
 शरत्काल = का० कु०, १२२।
 [स० पु०] (स०) शरदो, का मौसम। शरत् ऋतु।
 शरद = श्रा०, ७१। का० कु०, ६७, वा०, २३,
 [स० स्त्री०] (स०) २७१। चि०, १७१। ऋ०, २३।
 एक ऋतु जो आश्विन और कार्तिक में
 पड़ती है। वर्ष। साल।
 शरद का सुन्दर नीलाकाश सर्वप्रथम मापुरी खड १,
 सख्या १, पृष्ठ ३, में सन् १९२४-५२
 प्रकाशित करना का गीत 'जसका
 शीपक दो बूँदें' देखिए दो बूँदें।
 शरद इट्टु = का०, १५३।
 [स० पु०] (स०) शरत् काल का स्वच्छ चद्रमा।
 शरद इदिरा = का०, २८।
 [स० स्त्री०] (स०) शरत् काल की लक्ष्मी, चाँदनी।
 शरद घन = का० कु०, १००।
 [स० पु०] (स०) शरत् कालीन बादल।

[शरद पूर्णिमा—इदु कुल] ३० किरण ४, काँसक
 १९६७ में सर्व प्रथम—इदु कुल—श्री
 चित्राग्र—सन् १९६१ पर परग
 के अंतर्गत एकवित्त ब्रजभाषा की
 रचना। पूव दिशा में छविधाम सुदर
 चद्रमा उदित है और अपनी कना
 बिखेर रहा है। आकाश में पूरा शशि
 शोभित है। मद मद वायु डोल रही
 है। सब धय घाग्य किए हुए चुप हैं
 कोकिल और कीर भी गद्दी बालत है।
 कभी कभी तमारा क स्वर से ठुम पत्र
 हिलते हैं। आकाश में चद्र शोभा बरसा
 रहा है, मानो प्रकृति के हृदय में शानद
 उमड रहा है। ऐसा लगता है कि
 मोहन मंत्र पढ कर ससार पर वह
 पराम बिखेर रहा है। निशापति को
 शक्तिशाली समझ कर अंधकार अपना
 अंग छिपान के लिये भाग रहा है और
 कदराशो में तथा वृद्धों का छाया में
 शरण ल रहा है। नदा, पृथ्वी, पवन,
 वन देश सभी ने नया वेश धारण कर
 लिया है और सब ने इस मुख के कारण
 मगल रूप धरा है। देखन में सब के
 सब मनोहर और अपूर्व सुंदर दिखाई
 पड रहे हैं।

- शरद प्रात = वा०, २२१।
 [स० पु०] (स०) शीतलता प्रदान करनेवाला प्रदेश।
 शरद ललाट = वा० कु०, २९।
 [स० पु०] (स०) शरत् के समान देदीप्यमान मस्तक।
 शरद शर्वरी = का०, कु०, १३।
 [स० स्त्री०] (स०) शरद की रात्रि। शरदक्षी नायिका।
 शरभ = ल०, ७६।
 [स० पु०] (स०) टिड्डी। हाथी का बच्चा। गैर।
 शरासन = चि०, १०६।
 [स० पु०] (स०) धनुष।
 शरी = का० कु०, १००। वा०, २६, ३६, ४८।
 [स० पु०] (स०) देह। तन।
 शरीरी = का०, २५४।
 [स० पु०] (स०) जीव, आत्मा।
 (वि०) शरीर धारी।

- शलभ = का०, १७६। ल० ७६। वा० १७६।
 [म० पु०] (स०) पतमा। पतिमा।
 शरता = का०, १३०।
 [स० स्त्री०] (हि०) मुदापन। शव की भाववाचक सहा।
 शरलित = का०, ८४।
 [वि०] (स०) मित्रिन। मिला हुआ, बिन विचित्र।
 शशाक = चि०, १४।
 [स० पु०] (स०) चद्रमा। कर्।
 शशा = ग्रा०, ३३, ३५। ४४, ७७। का०,
 [स० पु०] (स०) १७५ १८४। चि०, २८, ४५, १०१,
 १४६। ऋ०, २३ ७२।
 चद्रमा।

- शशि कला सी = का० कु०, १२०।
 [वि०] (हि०) चद्रमा की कला क समान।
 शशिकिरण = वा० कु० ८।
 [स० स्त्री०] (ग०) च मा वा किरण। रश्मि।
 शशिकिरने = ल० ८१।
 [स० स्त्री०] (हि०) चद्रमा का किरण।
 शशिलडसटश = का०, १६८।
 [वि०] (हि०) चद्रमा व टुकडे क समान।
 शशिसुख = ग्रा० १६।
 [म० पु०] (स०) चद्रमा क समान मुख।
 शशिलेला = वा० ११७ २२५ २३६।
 [स० स्त्री०] (सं) चद्रमा का रेखा। चद्रमा की किरणें।
 शशिशतदल = ल०, २५।
 [म० पु०] (स०) चद्रमा रूपा कमल।
 शशिसी = ल०, ३८।
 [वि०] (हि०) चद्रमा क समान।

[शाशा सी वह सुंदर रूप विभा—लटर मे पृष्ठ
 ३६ पर सफलित। शशिक क समान वह
 सुंदर रूप का विभा चाहे मुझे मत दिख
 लामो पर उस की पवित्र शातल छाया
 हिमच्छ का भीति बिचरतजाना।
 दिन व समान शशि तसारा रूपा स्वप्न
 स जगाने नही भाया है ८५ लिए
 मर जावन क सुप्न का रान जात
 जात रह जाना। इन जात की बला
 म भी क्या तुम ठहर कर विद्याम नही
 कराम? जीवन जित का रास्ता छाया-

पथ के समान है उस में विद्याम नहीं
 है। कबल चलते जाना है। तसारा
 व अभिनव कोलाहल में भरा प्रेम
 फल जाने दो ताकि वह एकांत भ्रमकार
 म जाकर फिर किरण बनकर लौटे।
 यह एक रहस्यवादी रचना है जिसमें
 रूप की माया में विश्वास न कर उस
 की अंतरात्मा के आलाक से प्रेम की
 बात कहा गई है।]

- शश्य = का०, ८२। चि०, १२७। प्र० ७।
 [म० पु०] (स०) ल०, ५१।
 नद्यो घासे। अनाज। खड़ी फसल।
 शश्यभरो = प्र०, ११।
 [वि०] (स०) अनाज से भरी। हरियाली से भरी।
 शश्य श्यामला = का०, ६३, १६४। चि०, १४३।
 [वि०] (स०) हरी भरा प्रतीति। हरियाला।
 शश्याप्रति = चि०, १३६।
 [स० स्त्री०] (म०) अनाज की बाला का समूह।
 शम्भ्र = वा० १४६। चि० ४२। म०, ५६।
 [स० पु०] (स०) फेंककर मारा जाने वाला अन्न।
 शम्भ्रयत्र = का०, १६६।
 [स० पु०] (स०) फेंककर मारा जानेवाला हथियार।
 शम्भ्रागार = चि०, ३१।
 [स० पु०] (स०) हथियार घर।
 शम्भ्रों = का०, १६१।
 [स० पु०] (हि०) फेंककर मारे जानेवाले हथियारों।
 शम्भ्रोंसा = वा०, २००।
 [वि०] (हि०) हथियार क समान।
 शहनाई प्र० १३।
 [स० स्त्री०] (हि०) एक प्रकार का बाजा।
 शात = ग्रा०, १२, ३७। वा०, ११। का०
 [वि०] (स०) कु० १४, १५, १८, २१, ४०, ४८,
 ५६, ८८, ९०, ९६, १२०। का०,
 ३०, ३१, ३४ ५०, ८५, ८६, ९३,
 १३६, १६०, १६३, २२३, २३०,
 २४५, २७२, २८०, २८१। चि०, ६६,
 ६९ ७३, १४४। ऋ १७ १६,
 ३३। प्र०, ३, ४ ६, ६, २५। म०,

७, ११। ल०, १२, १३, ३२, ४३, ५६।

स्वस्थ, हो हल्ला रहित। धीर, गभीर। सौम्य। जिसमें चोम, चिंता, उद्वेग दुख, आदि न हो।

शातकुटीर = प्र० २१।

[सं० पु०] (हि०) नीरव नोपडी।

शातचित्त = का० कु०, ५७। प्र०, ७।

[सं० पु०] (सं०) उद्वेग आदि से रहित चित्त। स्थिर।

शातमयी = का०, ७७। चि०, ७२।

[वि०] (हि०) शात, मौन, स्थिर।

शाति = का०, २५। का० कु०, ५३ ६२ ६३,

[सं० स्त्री०] (सं०) ६६, ११६, १२०, १२२। का०, ८, १०, २७। १२२, २३०, २३६, २५०। चि०, ४५, ५६, १४२, १६१, १७०, १६६। ऋ०, ३४, ३२। प्र०, ४, २१, २२, २६। म०, ७, २४।

स्तवता। सनाटा। अमगल आदि दूर करने का एक धार्मिक उपचार।

शाति देवी सी = का०, कु०, १००।

[वि०] (हि०) शाति का देवी के सहण।

शाति पुज = का०, १४६।

[सं० स्त्री०] (सं०) शाति का समूह। गभीर शाति।

शाति प्रात = का०, २५०।

[सं० पु०] (सं०) शाति रूपी प्रात काल।

शास्त्रिमय = का०, ६८।

[वि०] (सं०) शात, स्तव।

शासि राज्य = प्र०, ६।

[सं० पु०] (सं०) वह राज्य जिसमें शाति हो।

शासिवारि = ल०, ३२।

[मं० पु०] (सं०) पूजन का शातिदायक जल।

शासि हेतु = का० कु०, १४।

[क्रि० वि०] (सं०) शाति का कारण। शाति के लिए।

शास्त्रा = चि०, २६, ६८।

[सं० स्त्री०] (हि०) ढाली। विभाग। सड़। टहनी।

शास्त्रावली = का० कु० ५३।

[सं० स्त्री०] (सं०) वृद्ध की शालियों का समूह।

शाप = का०, १६३, १८५, १९१। चि०,

[अ० पु०] (सं०) ५८, ६०।

किसी के अनिष्ट की कामना से कहा गया कोपमय शब्द। धिक्कार। भयना।

शाप पाप = का०, २५४।

[सं० पु०] (सं०) भयना वा पाप।

शापित = का०, २८८।

[वि०] (हि०) धिक्कारा गया।

शापित सा = का०, २२७।

[वि०] (हि०) धिक्कारे गए के समान।

शारदघन धोच = ऋ०, २२।

[अ०] (हि०) शरदफालीन वादलो के मध्य में।

शारद चद्र = प्र०, १५।

[सं० पु०] (सं०) शरदफालीन चद्रमा।

शारदशशि = ऋ०, ७२।

[सं० पु०] (सं०) द० 'शारद चद्र'।

[शारदाष्टक—इदु कला १, किरण १, श्रावण १६६६ म प्रकाशित कविता। न छवों म शारदा की स्तुति इम मे की गई है। यह परपरागत वयन है। मगह म यह ३२ पंक्ति की ब्रज भाषा की कविता संकलित नहीं का गई है।]

शारदीय = चि०, १५४।

[वि०] (हि०) शरदकाल वा। शरद ऋतु सबधी।

[शारदीय महापूजन—इदु कला २, किरण ४, कालिका ६७ म सर्वप्रथम प्रकाशित और विन्नाधार म पृष्ठ १५६ पर संकलित। शारदा का स्वरूप धारण कर मैं भगवती ने आगमन किया है। विश्व म सुन्दर प्रकाश चारा द्वार छाया हुआ है। बार शीतल मुरमित पवन शधीर हो कर वह रहा है तथा आकाश नील स्वच्छ और नवीन ढग से आभित है। धाम से भरी दुई सारी धरती स सब को अयत मुस मिल रहा है। यह मा शारदा की मनोहर मूर्ति विश्व व्यापिनी है जो मक्के हृदय म आनन्द और उत्साह भर रही है। देवबालाएँ मुखप्रवक इनका पूजन करती हैं और तारागण इहें कुमुममाला पहनाते हैं।

चित्रा माता कूर्म के कारणों का दूत
 का भीरावा कर्मी है घोर मन्त्र
 ली उता मन्त्र का जग है। मभी
 मन्त्र में धारण गा है घोर कोटि कोटि
 बंड मी, मुद्दारा कोटि विभवपाणिनि,
 विभवपाणिना घोर विभवेन्द्र क मन्त्र
 में दण मुद्दारा जयजयकार करण है।]

- शागा = वि० ५८।
 [मं० श्री०] (मं०) ग्या। जगह। घावाग।
 शासि = क० ८।
 [मं०] (मं०) जड़हा ताम का घान। ग ता।
 शालियो = का० ३२ १४१।
 [मं० गी०] (हि०) घान को शालियो।
 शालीगता = का० १०३।
 [मं० श्री०] निपता। नम्रता। मन्त्रे घातार
 (मं०) विचार।
 शा मली = का० कु०, २५।
 [मं० प्र] (मं०) सेमल का मूठ।
 शावक = का० ४७, १४६, २४८। वि०, ४०।
 [मं० पु०] (मं०) जिया भा पनु या पनु का बघा।
 शास्त्रत = का० २७ १६३।
 [वि०] (मं०) चिरता। कभा नष्ट न हानेगता।
 मजर।
 शासक = का०, १६८ २५१।
 [मं० पु] (मं०) हाथिम। राजा जो शासन करता है।
 जिस मंड देन का अधिकार हो।
 शासन = का० १० २७। का० १७, २५ ३४
 [मं० पु०] (मं०) ३८ ८३, १७१, १८८, २०८। वि०
 १०६। ल० ४७ ७४ ७६ ७७,
 ७८, ८८, १६२ १६४ १६८।
 घाता, भादव। राजत्वकाल। निय प्रण।
 शासनदेश = का०, २६७।
 [मं० पु] (मं०) शासन की भाषा।
 शासित = का०, २६।
 [वि०] (हि०) जिसपर शासन किया जाय। प्रजा।
 शास्त्र = का०, कु०, १२०। का०, ११०।
 [मं० पु०] (मं०) किसी विषय का सार का ज्ञान जो प्रम
 से किया गया है।
 शास्त्र शास्त्र = का० २७२।
 [मं० पु०] (हि०) प्रत्येक शास्त्र।

- शास्त्र = का० २०२।
 [मं० पु०] (हि०) शास्त्र मन्त्र का पत्रवत्।
 शास्त्र शास्त्र = का०, २०, २२।
 [मं० पु०] (हि०) शास्त्र का शास्त्र। शास्त्राद।
 शान्ति = का०, २४। का० १८५।
 [मं० श्री०] (मं०) सुख। कर्मयो।
 शान्ति को = का०, १०६।
 [मं० श्री०] (वि०) सुख गा। पत्रा मी। घट्ट गा।
 (हि०) धनु की धारी क ममान।
 शान्तिरी = वि० १८५।
 [वि०] (का०) गिरार मन्त्रोपाता।
 [मं० पु०] (मं०) ग्या।
 शान्ति = का० कु०, १०६।
 [वि०] (मं०) जिया गिवा प्राप्त की हो। पत्रा
 लिंगा।
 शिखा = का० कु०, १२०। प्र० २१।
 [मं० गी०] (मं०) पिछा पत्रो तथा बार्द क्त्वा मंगी
 का त्रिया। ताम, उमर। मन्त्र।
 परामग।
 शिखर = का० ४३ ८८ ११६, १५८, १८६।
 [मं० पु०] () का० कु० ४३ ६६। वि०, १४३।
 पाटिया। मरि मा मन्त्रा क ऊर
 वा नु क त भाग। कर्णे। गुण।
 मरत।
 शिखा = का० कु० ७६। का० ११८। वि०,
 [मं० श्री०, (मं०) ४६। ल० ४६।
 घाटी बनना। घोंघा सत। दाप
 ता ली। प्रयाग किण्ण।
 शिखिण्य = का० कु०, १२४।
 [मं० पु०] (मं०) मन्त्रों का समूह। मुर्गी का समूह।
 घोडा का समूह। दाप का समूह।
 शिखी = वि० १५७।
 [वि० पु०] (मं०) शिखा या चोटीवाला मन्त्र। मुर्गी।
 सारस। घोडा। बल।
 शिखिल = का० २४ २७ ५२, ६८। का० कु०
 [वि०] (मं०) १२। का०, १० ६३, ६६ ८१, १४६,
 १८४, २१२। मं०, ३०, ४५, ५२,
 ७२। मं० २३। ल०, १०, २५, ४४।
 निष्क्रिय। सुस्त।

[शिविल—इंद्र बला ५, क्रिस्ता २, अग्रस्त १६१४
म सब प्रथम प्रकाशित तथा भ्रान्ता मे
शिविल ह प्रथमका तिसरी बिपकी के
अगतत सबनित । देखिए भरना ।]

शिविलपन = का०, १४१ ।

[सं० पु०] (सं०) जो धरावट के कारण धीमा पड गया
हो । धीमापन । सुखा के साथ ।

शिविल सी = का०, ७० ।

[वि०] (सं०) निष्प्रिय सा, मुक्त मद्य ।

शिर = का०, १७, २१६ । वि०, ४२, ६७ ।

[सं० पु०] (सं०) ७ । न० ४६ ।

निर भाया । चोग । सना का अग्रभाग ।

शिरमौर = का० कु०, ११३ ।

[वि०] (हि०) सवश्रु ।

शिररत्न = का० कु० १०६ ।

[वि०] (सं०) शिरामणि, सबसे उत्तम, श्रेष्ठ ।

शिरस्त्राण = का०, १७ ।

[सं० पु०] (सं०) लोह टाप, मोद । कूड ।

शिरहि = वि०, ६४ ।

[सं० पु०] (हि०) शिर वा । शया वा । छोटी का ।

शिरायें = का०, ४ ।

[सं० स्त्री०] (हि०) सं० शिरा वा हि० पद्वयन ।

शरीर म रक्त का छोटा नसें जिसके द्वारा
शरीर क विभिन्न अंगो म हारर रक्त
हृदय म पहुंचता है । जमीन के अंदर
वहनेवाला नाल ।

शिरीष = का०, ३०, २१ । का०, १७८ ।

[सं० पु०] (सं०) शिरस का वृक्ष । शारीर का मल कूनवाला ।

शिशोमणि = सं०, २०, ।

[सं० पु०] (सं०) शिर पर पहने के वा रत्न ।

(वि०) सबसे उत्तम, श्रेष्ठ ।

शिरोमहा = वि०, १३३ ।

[सं० पु०] (सं०) शिर के वान श्रेष्ठ ।

शिलहि = वि०, ७१ ।

[सं० पु०] (सं० भा०) शिला (बहुवचन) ।

शिला = का०, कु०, २६, १०६ । का०, ३ ।

[सं० स्त्री०] (सं०) पत्थर, चट्टान । गेरू । वपूर ।

शिलालयन = का०, २४७ ।

[सं० पु०] (वि०) शिला म लगन नो, शिना म लमी सा ।

शिलासवि = का०, २६ ।

[सं० स्त्री०] (सं०) चट्टाना की सवि या युकाए ।

शिल्प = का० कु०, ११० । का०, ८४ । प्रे०,

[सं० पु०] (सं०) २० । म०, २० । सं०, २६ ।

दस्तकारी, हाथ का बना कोई काम,
कारीगरी, कौशल ।

शिल्पकुसुम = का० कु०, ११० ।

[सं० पु०] (सं०) शिल्पकुसुम ।

शिल्पपूर्ण = का० कु०, ११० ।

[सं० पु०] (सं०) शिल्पमय, कलापूर्ण ।

शिल्पसाहित्य = का० कु०, १०६ ।

[सं० पु०] (सं०) कला मवयी साहित्य ।

शिल्पसी = का०, १६० ।

[वि०] (हि०) कला क सदृश । कला मयी ।

शिल्पसौंदर्य = का० कु०, १०६ ।

[सं० पु०] (सं०) कौशल की सुंदरता । शिल्प कला की
मनाहारिता ।

(शिल्पसौंदर्य—काननकुसुम के पृष्ठ १०७ पर
मकलित । यह मधुरा और भरतपुर के
आसपास जाट सरदार मूरजमल द्वारा
मुगल सम्राट आलमगीर द्वितीय की
सनाया को परास्तकर दिल्ली मर
प्राप्तमण के सक्षम म रची गइ रचना
ह । चोग तरफ यह धोर कालाहल
कया मचा हुआ है ? महाकाल का भरव
गचन क्या हो रहा है ? तोर क मुह से
दुहार करता हुआ प्रलय का पयाधि
आ रहा है । महा सषय म व्यवधित हा
होकर हृष्ट चदन दावागिन फला रहे
हैं । अथ मदिना के ध्वम घून उडा
रहै है । मुगल साम्राज्य के आद्यशिल्प
का दानाग का रुय आतामगार मुद
कये खाद रहा है । इसी वाच जान
राना मुयमल धूमकुतु क समान प्रकट
हृष्ट । उनकी प्रतिनिमा जाग उडी है ।
वह मानी मरिज्ज के प्रागण म राड
मव्याह्न के मूय की भाति तप रहे है ।

उत्तरे हाथ की मूर्ता मर्मिन्त्र के दर्शन पर पड़ी और मंगलमरमर की पीठ पर चारपातुर हो गई। दस दसों का बहलगायन सर्वगत व हाथ पर गज और उड़ती मातंगना धारम विद्या मन्त्रि सगर का मर मुन्त्र गजासम्प गधु पात्राण और विद्वत्त म एम नष्ट कर देंगे तो मर वि पनाय का एत मद्युन गमूना गगार ए पुत हो जायगा भक्ति सधन है यथा द्वाय धारता प्ररता म परिभनित हा गति है। द्वाय प्ररता के वाग्णु हा भारताय म्पि और माहित्य का मट्टा ही मुन्त्र मय ध्वस्त और तुम हो गया। भा म मरि कइता है कि ह भारत क ध्वस्त सि ग तुम कितना अधिक बाल का प्रहार सह चुके हो ? तुम का साज वं दम करण वेग म दयार मौन बहगा कि विप ने तुम्हें बव निमित्त किया था और शिल्प पूर्ण पत्थर तुम बव मिट्टा म मिल गए। यह रचना प्रसाजी का सास्टुतिक और कलात्मक अभिरवि का आरपाय करती है।]

शिल्पी = का० कु० ६, ७१।

[स० पु०] (स०) शिल्प का काम करनेवाला शिल्प का आ छा जानकार। राज। चित्रकार।

शिव = चि० १३६।

[स० पु०] (स०) कल्याण।

शिव = का०, १८५। चि०, २६। प्र०,

[सं० पु०] (सं०) २३।

कल्याण, मंगल। शुभ। हिंदुना व एत प्रथान देवता जिनमे सृष्टि व संहार तथा कल्याण दानो का जमता है।

शिविका = म० १, ३, ७।

[स० जी०] (सं०) पालका। डाली।

शिशिर = का०, ८८, २४ १७५, १८१। चि०,

[सं० पु०] (सं०) १८, २८, ३६। म०, ४६। प्र०, १६।

जाँझ, शीतल, माघ और फाटगुन

का महीना। शिशु। शिव। पञ्चाङ्ग। सात मंत्र।

शिशिरकण्य = का०, ३१। म०, ७१।

[सं० पु०] (सं०) शिव कण्य, पाग का रूँ। सानधन का मूण।

शिशिर प्रभजन पुग = का० पु०, १३।

[सं० पु०] (सं०) शिशिर पुग का वायु का मग।

शिशु = का० ६८। का० पु०, १०१। का०,

[सं० पु०] (सं०) ६४ १४१ १४४ २७८। चि०, १४१। म० २६, ३४ ४१। ल०, २६।

वायव बघना।

शिशुना = का० १३१।

[सं० जी०] (सं०) बगान। सपरान।

शिशुपाल = का०, पु० ११२ ११३।

[सं० पु०] (सं०) येनि दश व राजा का नाम शिशुना आशुण्णे से बध किया था।

शिशुसा = का० ६३ २३४।

[चि०] (चि०) यथा सा। बालिका के समान।

शिशुसाल = का० ४६।

[सं० जी०] (सं०) मद्यनी के बच्चे।

शिशुसिंह = का० पु० १०६।

[सं० पु०] (सं०) सिंह का बच्चा।

शिशुआचार = प्र०, ६।

[सं० पु०] (सं०) शिशु तथा उत्तम व्यवहार। मागत का सम्मान करना।

शिव्य = चि०, ५८।

[सं० पु०] (सं०) येना। चित्ते शिवा दी जाय।

शीघ्र = का०, ८० ६२, १०२ १२०। का०

[चि०] (सं०) कु०, ८० ६२ १०२ १२०। का०, १०, ५५। म० ८२। प्र० २१। म०, १२ १४ १७ २४। ल०, ७५।

अविलय। जन्म।

शीतल = का०, ११८, २५६। चि०, २४। म०,

[सं० पु०] (सं०) ६१।

ठडक। शीतलता। एक ऋतु का नाम।

शीतलकर = का० कु०, ५५। म०, ५६। म०, १६।

[सं० पु०] (सं०) शांतता करनेवाला। चक्रमा। कपुर।

शीतल = भा, १०, ३०, ३६, ४३ ६६। म०,

[वि०] (सं०) १४। का० कु०, २३, ३८, ४८, ५३, ५४, ५७ ७०, ७१ ६०, ६२, १४६, १५०। का०, ३ १८, २०, २३ २४, २६, ३१ ४४, ३७, ३८, ४८, ७६, ८५ १३६, १७७, १८३, १७४, २३६ २३८ २४८, २५८, २८०, २८१। नि० ११, ६३ १५४, १५८। ऋ०, १६, ३४ ३८, ४३, ६१, ७३, ८७। प्रे० ११, १५, २२। ल०, ६ १३, ३६, ४३।
ठग। शीतयुक्त। जड, मु त।

शीतल करना = म०, ३।

[क्रि०] (हिं०) ठडा करना।

शीतलकारी = का० कु०, १२६।

[वि०] (सं०) जड शीत ठग करनेवाली।

शीतलता = भा०, ७१। का०, ७७, १०१, १२२

[म० कु०] (हिं०) २०७। ऋ०, २१।

ठगपन। सर्दी। जडता।

शीतलवाई = चि०, २४।

[म० कु०] (प्र० भा०) ठगपन। सर्दी। जडता।

शीतल मद दयार = वा०, ५०।

[सं० पु०] (सं०) ठडी मद हवा।

शीतलवा सी = सं०, ३२।

[वि०] (हिं०) सर्दी के समान।

शीतल-दाह = वा०, २७।

[म० कु०] (सं०) ठग जलन।

शीताशु = चि०, १५३।

[म० कु०] (म०) चद्रमा। बपूर।

शीतातप = का० कु०, १४, ७३, ११०।

[सं० पु०] (सं०) सर्दी, गर्मी।

शील = चि०, २५, ४६ १५५, १६३। ल०,

[सं० पु०] (सं०) ७७, ७६।

सौजयता। वामल हृदय। चाल-ढाल। सकोच।

शीलनिवास = चि०, २२।

[वि०] (सं०) जिनमें शील हो, शिष्ट, शीलवान्।

शीश = प्रे०, १३।

[सं० पु०] (हिं०) मस्तक, मिर। शीपभाग, सबसे ऊपर का भाग।

शुक = भा०, २३। क० १६।

[म० पु०] (सं०) तोता। सुग्गा।

शुद्धीह = चि०, ५८।

[सं० कु०] (प्र० भा०) सुग्गी।

शुक = वा०, ६७।

[वि०] (सं०) चमफाला।

[सं० पु०] वाय। एक नक्षत्र का नाम। दानवों के गुरु, शुक्राचार्य।

शुकल = चि०, ३३। ऋ०, ८५।

[वि०] (म०) श्वेत धवन, रजत।

शुक्लपद्म = ऋ०, ८५,

[सं० पु०] (सं०) अमानस्था के बाद की प्रतिपदा से पूर्यामा तक के पंद्रह दिन।

शुक्ल रूप = चि०, ३३।

[वि०] (म०) विशाल, धवल, स्वच्छरूप।

शुचि = वा० कु० १०४, ११४। का०, २६,

[म० पु०] (सं०) २४४। चि०, ४६ ४८, ५३, ७२,

६८, १४५ १४६, १५२, १५५ १५८

१६१, १६२, १६४, १६८। ऋ०, ५३

म०, ४ ८। ल०, १२

स्वच्छता, पवित्रता।

(वि०) पवित्र, शुद्ध।

शुचितम = ऋ०, ३३।

[वि०] (सं०) अथवा पवित्र।

शुचिभायत = चि०, ७२।

[क्रि०] (प्र० भा०) सुदरता या स्वच्छता अर्थात् रागता ह।

शुचिसौ = चि० ७३।

[वि०] (प्र० भा०) स्वच्छता या शुचितापूजक।

शुद्ध = का०, कु०, ११४। वा०, ७६, १६६।

[वि०] (सं०) चि०, ५७। ऋ०, ७७। ल०, ७५।

स्वच्छ, निमल। पवित्र। बिना मिला बट का।

शुभ = क०, ३२। वा० कु०, १००, १०६।

[वि०] (सं०) वा०, ७७ १६५, १६२ २६२ २५१।

चि०, १५२, १६१। ऋ०, ५८, ७७।

म०, ७, १८।

मंगलकारी। मन्थानकारी। भलाई करनेवाला।

- शोभा = श्री०, २४। का० कु०, ३, ३३, ५४।
[म० स्त्री०] (सं०) बा०, ६। चि०, १५०, १६३, १६४।
वार्ति। चमक।
- शोभाधाम = बा० कु०, २०। चि०, २।
[सं० पुं०] (सं०) शोभा का घर।
[वि०] अ यत् शोभावाला।
- शोभाभिन ? = चि०, १३४।
[सं० स्त्री०] (हिं०) हे शोभावाला।
- शोभित = वा०, १८२, २७७। म०, ८।
[वि०] (सं०) सुशोभित। सुदर। शोभा से युक्त।
- शोभ = वा० कु० ३८।
[सं० पुं०] (वा०) कालाहल। ह ला, रोर। प्रसिद्धि।
- शोषण = वा०, १६६।
[सं० पुं०] (सं०) मोखना। नाश करना। चूना। पथि
नस्य का परमान करना।
- शोषित = ऋ०, ४०।
[वि०] (सं०) जिसका शरण किया जाय।
- शोष = न० ५१।
[सं० पुं०] (सं०) पराक्रम। शूरता। चीरता।
- श्याम = श्री० १८। का० १६०, १६४ १७६
[वि०] (सं०) १६० २६५। अ० २१ १६२, १६०।
सावला। काला।
- [सं० पुं०] श्रीगुण्य। मन्मथवट का नाम।
- श्याम छत्रा = वा० ६७।
[सं० स्त्री०] (सं०) माँसला शोभा।
- श्याम घन = ऋ०, ४६।
[सं० पुं०] (सं०) काला घन। घने काल बादल।
- श्यामननशाली = ऋ०, ७१।
[वि०] (हिं०) घने कला वाली।
- श्यामल = श्री० ३२ ७८। वा०, १६८ २३६,
[वि०] (सं०) २८४। चि० ६६। ऋ०, २४। प्र०,
४ ७। ल० ४४।
साँवल या काल रंग का।
- श्यामल घाटी = वा०, १६७।
[सं० स्त्री०] (हिं०) भँवरा घाटा।
- श्यामलता = श्री० ५४। वा० १७५।
[सं० स्त्री०] (सं०) माँसलारत। कलापन।
- श्यामला = प्र०, २४।
[वि०] (सं०) साँवला। काले रंग का।
- श्यामले = चि०, ३६।
[सं० स्त्री०] (सं०) हे सावली रंगवाली।
- श्याम सिंघार = वा०, कु०, ६०।
[सं० पुं०] (हिं०) काला सेवार।
- श्यामा = वा० कु०, १०, ५५। प्र० ५।
[सं० स्त्री०] (सं०) रवि। राधा। युवती। एक पक्षी।
- श्यामाध्वनि = श्री०, १३।
[सं० स्त्री०] (सं०) श्यामा नामक पत्रा का मधुर ध्वनि।
- श्यामाञ्ज्वल = वा० कु०, १००।
[सं० पुं०] (सं०) सुदर साँवला रंग।
- श्लथ = ल०, ४८।
[वि०] (सं०) शिथिल। मर। धामा। षका हुमा।
- श्लापद = वा०, १८६ २४८।
[सं० पुं०] (सं०) हिसक पगु (पत्रा मार कर नचने
वाल पशु)।
- श्लास = का० कु०, १६, २६। का०, १७, १३०,
१६७ २००, २२४, २२५, २५६।
प्र०, ११।
सास। प्राणशयु। प्राणियों को नाक से
हवा सोवन और निशालन की क्रिया।
- श्लास लेगा = का०, १५५।
[वि०] (हिं०) सताप लेगा।
- श्वेत = का० २५८।
[वि०] (सं०) उज्ज्वल, निवृत्त। सफेद।
- श्रद्धा = वा० ६२ १००, १०६, ११०, ११३
[सं० स्त्री०] (सं०) ११५ ११६, ११७, ११८, १२७,
१२८, १३२, १३४, १३६, १४०,
१४२, १४३ १४४, १४६, १५०,
१६०, १६२, १६६ १७५, १७६,
१८० १८२, १८३, १८६ १८६,
१९० २१४ २१५, २१६, २१८,
२२०, २२८, २२९, २३०, २३१,
२३६ २४१ २४७, २४५ २४६,
२८०। चि०, ५६।
व्यस्वत मनु का दया का नाम।
पुण्य भावना, घादर का भावना।
भास्वता। पवित्रता। सद्भावना।

श्रद्धामय = का०, २४४।

[वि०] (सं०) आस्था स परिपूष।

श्रद्धाविहीन = का० १६१।

[वि०] (सं०) श्रद्धा से अलग। बिना श्रद्धा के।

श्रद्ध = का, १३०, १३६, १४७, १४८,

[सं० जी०] (सं०) १५७, २१६, २५४।

हे श्रद्धा। कामायना ने श्रद्धा के लिये
मनु द्वारा विना गया सवोचन।

[श्रद्धा देखिए कामायिना के चरित।]

श्रम = का०, १४। का०, १०३, १०४ ११८,

[सं० पुं०] (सं०) १२३, १२८, १४६, १८१, २२४

२३६, २८३। चि०, १६१। प्र०

१४, २५।

थकावट। महनत। परिश्रम। दौडधूप।
शयिन्य।

श्रम लव विदु = का० कु०, १३।

[सं० पुं०] (सं०) महनत व कारण उत्पन्न कुछ बूढ़े,
बया। पसीने का बूढ़े।

श्रमित = चि०, १४६।

[वि०] (सं०) थकित। शिथिल।

शृखला = का० कु०, १२६। का०, १३।

[सं० जी०] (सं०) कडा। सिलसिला, श्रणी। जजार।
साबल। परपरा।

शृग = का० कु०, २८, १०४, १०५। का०,

[सं० पुं०] (सं०) ४७, १४१। प्र० २४।

पहाड की चोटी। शिखर। पशुआ की
सींग। सींग नामक वाद्ययंत्र।

शृगनाद = का०, १७८।

[सं० पुं०] (सं०) पहाड का चाटी पर से आनेवाला
आवाज। सींग नामक वाद्ययंत्र की
आवाज।

शृगार = आ०, १०। का०, ६, ३६, ५१, ५५।

[सं० पुं०] (सं०) स०, ७६।

सावट। सजाना। सिद्धर। गाहिय
के नौ रसा में से प्रधान रस।

शृगालिनी = चि०, ५१।

[सं० जी०] (हिं०) सियारिन।

शृगाली वृद्ध = सं०, १२।

[सं० पुं०] (हिं०) मियारिनो का समूह।

शृगीनाद = का० कु०, ८६।

[सं० पुं०] (सं०) सिगा नामक बाजे की आवाज।

श्रमविश्राम = सं०, १४।

[सं० पुं०] (सं०) थकावट के बाद का आराम। कार्य
विश्राम।

श्रम विदु = का०, १४३।

[सं० पुं०] (म०) स्वेद विदु, पसीने की बूढ़े।

श्रम-मीकर = आ० २७। का० कु० १२। का०,

[सं० पुं०] (सं०) १२६, २४५, २८३।

दे० 'श्रमविदु'।

श्रम-स्वेद = का०, १८१।

[सं० पुं०] (सं०) १० 'श्रमविदु'।

श्रमी = चि०, १४०

[सं० पुं०] (हिं०) २० श्रम।

श्रवणा = आ० २६।

[सं० पुं०] [हिं०] कानो।

श्रात = का०, २४ ३६, १४१, १५४ १६०

[वि०] (सं०) १६६, २१४, चि० २८, ३६। म०, ८।

थका हुआ। शात।

श्रात भवा = प्र० १६।

[सं० पुं०] (सं०) शात घर।

श्राति = का०, १८१।

[सं० पुं०] (सं०) थकावट। शाति। शिथिलता।

श्रावण = ऋ० २४।

[सं० पुं०] (सं०) घापाड के बाद आनेवाला मास।

श्री = का०, १००। म० ७।

[सं० जी०] कमना। लम्बी। धन। ब्रह्मा। विष्णु।
एक आदर सूचक शब्द जा नाम के आग
लगाया जाता है।

श्रीकलित = का०, ८१।

[वि०] (म०) तार्क्य स विभूषित।

श्रीकृष्ण = का० कु० १२३।

[सं० पुं०] (सं०) एक प्रमुख ऋषि। वसुदेव क पुत्र।

[श्रीकृष्ण जयन्ती]—दु कना ४ रस २ म अगस्त
१६१३ मे प्रनाडिन, कानन कुमुम का
आतन कयिता वृष्ट १०२ पर सक्कित।
दृग्ग ज माट्टमी क सवगर पर यह रचना
लिता गई है। यह लकी क कता चार

भाषा में है और इनका उद्गम श्रुतवात है। पहले कुछ जगत् में वात शब्दकार का वर्णन है। दूसरे गुरु में किंगी के प्रागमन की प्रतीक्षा है और तीसरे खंड में भवजन संसृष्ट करानात गुरु के प्रवट हान की चर्चा है। उतरे प्रागमन की पूजा समानता है और उनसे स्वागत का उपाय बताया है। चौथे खंड में भगवान् के प्रवट होने का वात है जिसमें सारे विश्व में आनंद छा गया है। गुरु भगवान् को परमानंद मय कर्म माग के प्रतीक्षा व रूप में प्रस्तुत किया गया है। यद्यपि यह कविता परंपरावादी है ता भी इनका भाषा में श्रेष्ठ है।

- श्रीमंत = का० ६१। फ०, ६६।
- [सं० पु०] (सं०) द्विधो दे सिर का माग। धनधान व्यक्ति।
- श्रीमाव् = का० कु० ६६।
- [सं० पु०] (सं०) विष्णु। शिव।
- [वि०] धनवात्, धनी।
- श्री सपत्न = का० कु०, १२।
- [वि०] धनवात्। बुद्धिमान्।
- श्रुति = वि०, ५१, १८८।
- [सं० श्री०] (सं०) वं विद्या।
- श्रुतिया = का, ६७।
- [सं० श्री०] (वि०) द्यो। विद्याप्रा।
- श्रुवा = वि० ६७।
- [सं० पु०] (सं०) कर्त्ता। वं कर्त्तरी जगत् पाप निमग्न हवन म धा हाना जाता है।
- श्रेनी = वि० ७१, ११०।
- [सं० श्री०] (सं०) श्रेणा।
- श्रय = का० १७। का० २३ २७४।
- [वि०] (सं०) धर्मि। व नर। वत्सागाहारी।
- [सं० पु०] व माग। मत्सापत्न। शक्ति।
- श्रीयिय = वि० ५०।
- [वि०] (सं०) मात्ति। मत्सापत्न।
- प
- पदानन = वि० ७२।
- [सं० पु०] (सं०) कात्तिव, का दत्त पदाननवाल है।

- स
- सकला = का०, १६६।
- [सं० पु०] (सं०) गदत्।
- सकलित = का०, ७६। वि०, १८। म०, १८।
- [वि०] (सं०) मध्यात, युता हुषा, पक्वित।
- सकल्प = का० पु०, ६१। का०, ३१, १०६।
- [सं० पु०] (सं०) १५८, १७२।
- पारा इराग, मत प, ह् विचार, घटल, - निश्चय।
- सकीणता = प्र०, २।
- [सं० श्री०] (सं०) मत्सापत्न, सुद्रता, च. चोत्पत्न।
- सकुचित = का० ३०। का०, कु० ८१, का०, १४ २७ १६३, १६७, १६५, १८६, २०, २६३।
- [वि०] (सं०) सक्ता, तग सिक्ता हुषा।
- सकुचित सी = वि०, ७६।
- [वि०] (वि०) मिक्ती हुई। गि, सक्ती मी, तग सी।
- सकुल = का० २८४।
- [वि०] (सं०) युक्ता परिपूर्ण। मिला हुषा। तग।
- सक्तेन = का० ६०। का०, २८, ५१, ७१ ८३, ८६, ८८, ११३, १८४ २७१ २८३।
- [सं० पु०] (सं०) का, २८, ३३ त०, २३, ७६। म० ४।
- इ गिन, इसारा एरान स्थान, बिल्ल।
- सक्तेष = का० कु० ६७, १०५। वि०, ७३।
- [सं० पु०] (सं०) शिव शम नञा, मिक्तीने की मागता।
- सक्तेष = का० ६६। का०, ८३, ६६, १६६, २२६। वि० १२ ३१, ४५, ७७, १४ १८, ६०, ६३, ६७, ७१, १००, १४४ १५८, १६३। फ०, ३६, ७८। प्र० १८।
- गद्वान, गाय। मिन्न। सासक्ति।
- सगम = का०, १०। वि०, १५०, १८८। प्र०, २२। म०, १५।
- [सं० पु०] (सं०) मिताव गमनवन, मत्न, वनमानवाल की मत्न यानो वा गान। गमगम।
- सगर = वि०, ७१ ५३, १००।
- [सं० पु०] (सं०) बुद्ध सगाम, नञाई। मिक्ति, सापत्न। नियम।

सगिनी = ल०, ६६।

[स० स्त्री०] (स०) माप रहनेवाली, सखी, सहचरी।
सहेली।

सगीत = का० कु० ७६। का०, ४५, ४६, ६४,

[स० पुं०] (सं०) १८० २२६, २२५, २६३। ऋ०,
५२। ल०, १५, ६०।
गान। नृत्य। लय, ताल, स्वर तथा नृत्य
का सामञ्जस्य से होने वाला मनोरम
कायक्रम।

सगीतज्ञ = का० कु०, ३१, ३८।

[स० पुं०] (स०) गायक, सगीत शास्त्र का जानकार।

सगीतात्मक = का०, २६३।

[वि०] (स०) सगीत से युक्त। सगीत संबंधी।

सग्रह = का० १३३, १४१। प्र० २१।

[सं० पुं०] (स०) सचय। एकत्र या इकट्ठा करना।
ग्रहण करना।

सद्य = ल०, ३३।

[स० पुं०] (स०) समूह, समुदाय, सगठित छात्र समाज।

सद्यप = का०, ३७ १४७, १५७, १७१, १६२,

[स० पुं०] (सं०) १६६, १६७, २४०, २६७।

हीठ। प्रतियोगिता। रगड़। वह
क्रिया जिसमें दा वस्तुएं आपस में रगड़
खाती हैं।

सधपन = का० कु०, १६६।

[सं० पुं०] (हि०) दखिये 'सधप'।

सधप-भूमिका = का०, १६६।

[स० स्त्री०] (सं०) सधप की प्रस्तावना। सधप का आरंभ।

सधात = का०, १५

[सधा स्त्री०] (सं०) कुड़, समूह। सगउन। सध। वध।
निवासस्थान।

सधाती = चि०, ११।

[सं० पुं०] (सं०) साधा, मित्र, सहयोगी।

सचय = का०, ८० १६६।

(सं०) चलना हुआ।

[सं० पुं०] (सं०) सग्रह। एकत्रीकरण। समूह। सग्रह।

सचरहि = चि०, ६३,

[वि०] (सं० भा०) धूमता हुआ। विचरण करता हुआ।
चलता हुआ।

सचरित = का०, १८४।

[वि०] (सं०) जिसका सचार हुआ हो। फँसता
हुआ। चलता हुआ।

सचार = का०, ४, ५६, ८२, ६०।

[सं० पुं०] (सं०) गमन। फलना। चलना।

सचारिणी = का० कु० १००।

[वि० स्त्री०] (सं०) गमन करनेवाली। फँसानेवाली।
चलती हुई।

सचित = का० कु०, १००। का० ३१ ३६, ३६,

[वि०] (सं०) ७० ७४, ८३, ११५, ११७ १२२,
१४८, १५४, १७१। ऋ०, ७६। ल०,
१७।

एकत्रित। पुजीभूत।

सजीवन = का०, २१८।

[स०] (सं०) जीवन शक्ति का उत्पादक।

सँजोवे = चि०, ३६।

[क्रि०] (प्र० भा०) सँजोना। प्रलंब्य करना। सजाना।

सज्ञा = का०, ३६। का० कु०, १०६। का०,

[सधा स्त्री०] (सं०) ६७। प्र०, १७।

नाम। बुद्धि। चान। व्याकरण के अनु-
सार विभी के नाम को सधा कहते हैं।

सतति = का०, १६६।

[सं० स्त्री०] (सं०) सतान। श्रोनाद।

सतान = का०, ११। का०, ११, ५८, ७७।

[सं० स्त्री०] (सं०) सतति। श्रोलाद। बाल बधे।

सताप = का० कु०, ६७। चि०, १६१।

[सं० पुं०] (सं०) दुख, ताप, जलन। मानसिक हलचल।

सताप हरण = का० कु०, ८६।

[सं० पुं०] (सं०) दुख को दूर करना। बट निवारण
करना।

सतापित = चि०, १६१।

[वि०] (सं०) दुखी। सताया हुआ। पीड़ित। सतप्त।

सतृत = का०, १६४।

[सं० पुं०] (सं०) पूरा सतृत। तृप्त।

सतुष्ट = का० कु०, ७। का०, ७१। प्र०, ७।

[वि०] (सं०) तृप्त। जिस सतोप हा गया हो।

सतोप = का० कु०, ८८। का०, २६, १२४।

[सं० पुं०] (सं०) तृप्त। सग्र।

सदिग्ध = का०, १८५।

[वि०] (सं०) सदेह पूर्ण। जिसमें सदेह हो।

सदेश = का०, ३८, ५०, ७६। वि०, ५८।

[सं० पुं०] (सं०) म०, १२ ल०, २३, ३३।

हानि चाल। समाचार। कोई महत्वपूर्ण समाचार।

सदेश विहीन = का०, ३४।

[वि०] (सं०) बिना किसी समाचार के। समाचार रहित। बिना सूचित किए हुए।

सदेह = आं०, २७, ४४। का०, ५४, ६६,

[सं० पुं०] (सं०) ८६ १०६, १६४, १८४, २६६। ल०, १३। सशय। शका। अनिश्चय, निश्चय का अभाव।

सपान = का०, कु०, ६८। का०, २६। वि०,

[सं० पुं०] (सं०) ५४।

निशाना बठाना। युक्त करना। कमान पर तार लगाना। सधि।

सधि = का० कु०, ११२। का० १५८, १३६,

[सं० स्त्री०] (सं०) २६१। म० १८, २४। ल०, १२। कि-ही दो का परस्पर मेल। संयोग। योग।

सधिपत्र = का० १०६।

[सं० स्त्री०] (सं०) सधि का पत्र। संयोग पत्रिका। कारनामा।

सध्या = आं०, ३०, ३३, ३७ ४७, ५२ ५६।

[सं० पुं०] (सं०) का० कु०, ३०, ५२, का०, ३८ ११६, ११७, १४२ १७५ १७६ १७६, १७७, १७८, १८३, २११, २२४, २३३ २७७, २८५। वि० ३६, १४५ १६०, १६१ १६३। ऋ०, ३५, ५८। प्र०, ७, ८, १०, ११, १३, १५। ल०, ३८, ४६, ५६, ६०, ७२, ७८।

दिव्यमान का बेला। सायनाल। शाम। प्रायों की एक प्रसिद्ध उपासना। सधिम्यत।

सध्या की लाली = का०, १००।

[सं० स्त्री०] (सं०) सायनालीन सूर्यास्त की लाली। सायनाल की प्राकाश की साधिया।

सध्याघन माला = का०, ३०।

[सं० स्त्री०] (हिं०) सायनाल के बादलों का समूह।

[सध्या तारा--सब प्रथम इन्द्र कला २, निशा १, श्रावण ६७, में प्रकाशित, फिर पत्रों के अंतगत पृष्ठ १६२ पर चित्राघार में प्रकाशित। तुम सध्या क श्रावण में सुदूर रंग के अमल रत्न की भांति भलवते हो। तुम्हें देख कर आनंद भी नहीं श्वाता। मुकुमार प्राची में सध्या आशा के समान तुम्हें धारणा करती है। निराश हृदयों को तुम्हें देख कर आशा दिखाई पड़ती है। तुम शांतिमय निशा की महापत्नी के राज्य चिह्न के समान हो। तुम्हें देख कर लोग श्रुभ की कल्पना करते हैं। यह कविता साहित्यिक है।]

सपत्न = का० १८।

[सं० स्त्री०] (हिं०) सपत्ति। धन। ऐश्वर्य। वभव।

सपत्ति = का०, १३। का० कु०, १३।

[सं० स्त्री०] (सं०) का०, ५८।

धन। विभव।

सपत्न = का० कु० ११३। का० १८१।

[वि०] (सं०) पूरा किया हुआ। सिद्ध। सहित। विभक्तमुत्त।

सपुट = आं०, २३। वि०, २६।

[सं० पुं०] (सं०) अजुलि। दोना। डिविया।

सपूण = का० कु०, ८७। का०, २६३।

[वि०] (सं०) सब बिलकुल, समाप्त पूण।

सवय = का०, ७५, १२४, १५२। ऋ०, ११।

[सं० पुं०] (सं०) सपक। लगाव। मिलना। नाता रिश्ता।

सवय विधान = का०, २७०।

[सं० पुं०] (सं०) सवय का नियम। विसा रिश्त का सामाजिक विधान।

सवद्ध = का०, २७३।

[वि०] (सं०) सवध युक्त बँधा हुआ। जुटा हुआ।

सवल = आं० ४४। का० २२२। ल०, ३१।

[सं० पुं०] (सं०) दे० सवत'।

सवोधन = का० कु०, ५५।

[सं० पुं०] (सं०) जगाना, पुकारना। सममाना बुझाना। व्याकरण का एक प्रकार।

[संभव] —स्कन्दपुराण का गीत जो पंच प्रथम मनोरथा
सन् १६२७ ई० मे प्रकृति हुआ था।
देखिए 'उग्रह हरे चरा भगोत भाज'।]

संभव = का०, २३०।

[वि०] (सं०) हा सफेद गाय। मुनिगिरी।

संभल = का०, २८३।

[सं० पु०] (सं०) एक स्वन।

संभार = का० कु०, १२। का०, ५१।

[सं० पु०] (हि०) रक्षा। हि०, ४८।

संभाग = का० कु०, ७५।

[सं० पु०] [सं०] हि०, ४८। भ०, ११। संभव।

संभोग = का०, ४५।

[सं० पु०] (सं०) उपयोग। व्यवहार। रति क्रीडा।
भाष्य सामग्री।

संभोग सेज = प्र०, १५।

[सं० पु०] (हि०) यह शय्या जिसपर रति क्रीडा हो।

संयम = का० कु०, ८८। का० ३६, ६६, २५१।

[सं० पु०] (सं०) वधन, राक। दबाव। परहेज। समाधि।
का साधन।

संयुक्त = का०, ४३। वि०, १५४।

[वि०] (सं०) दे० 'संयुक्त'।

संयुत = का०, २६।

[वि०] (सं०) संयुक्त। संवत्स। जडा हुआ।

संयोग = प्र०, १७ २३। म० १२।

[सं० पु०] (सं०) मिलाना। लगाव। मन्त्र।

संयोजक = का०, कु०, ११२।

[सं० पु०] (सं०) प्रतिभावाक। पोषण करनेवाला। आश्रय
देनेवाला।

संलग्न = का०, १६१, १८४।

[वि०] (सं०) संयुक्त। संयुक्त। जुडा हुआ।

संवर = का० कु० ३३।

[क्रि०] (त्र०भा०) सज करके।

संवदना = का०, ५३।

[सं० पु०] (सं०) बडाना। उत्साह।

संवन = का०, १८२, २५०, २५४, २७७।

[सं० पु०] (सं०) माग-व्यय। वह साधन जिसके आधार
पर कार्य हो। महाराज।

संवाद = का०, ६१। वि०, ५६। ल०, २१।

[सं० पु०] (सं०) वातालाप। समाचार। विवरण।

संवार = वि०, १५७।

[सं० ली०] हाल। समाचार। सवाद। वातालाप।

संवारत = वि०, ६३।

[क्रि०] (त्र०भा०) सवारना। सवारने को क्रिया।

संवारी = वि०, ३४, ४२।

[क्रि०] (त्र०भा०) संवार कर। संवारना।

संवेदन = का०, ३६, ३७ १६६।

[सं० पु०] (सं०) ज्ञान। इन्द्रिय का वह शारीरिक व्या
पर जिसके फलस्वरूप कोई अनुभूति
या चेतना का उद्भव होता है।

संवेदन भार-गुण = का०, १५४।

[सं० पु०] (सं०) संवदाभूत संवेदन।

संवेदनमय = का० २२६।

[वि०] (सं०) संवेदन संयुक्त।

संवेदनो = ल०, ७४।

[सं० पु०] (हि०) संवन का बहुवचन।

संश्लिष्ट = का०, ७३।

[वि०] (सं०) जुडा हुआ। संयुक्त।

संसय = वि०, ४०।

[सं० ली०] [हि०] शका। मुक्ता। संदेह। द्विविधा।

संसार = का०, १४। का० कु०, ८, १०, २६,

[सं० पु०] (सं०) ३०, ३१, ५२, ६३, ६४ ७२, १०६,

११६, १२५। वि०, ५६, ७२, १३६,

१४१, १४२ १५३, १६१। का०,

६१। प्र०, १०, २१, २६। ल०, १२,

३६, ७६। घा०, ६२।

मन्त्र, जगद, दुनिया मत्स्यलोक।

संस्कृत = घा०, ६५। का०, १६, २३, २६, ३४,

[सं० ली०] (सं०) ४५ ७२, ७६, १३२, १३४, १६५,

१६६, १६८ १८० १६२, २०७,

२५३, २६४, २८२, २८६, २६२।

ल०, ४३, ५०।

संसार। जगद।

[संस्कृत के वे सुदरतम क्षण यो ही भूल नहीं जाना—
स्कन्दपुराण का गीत, प्रसाद संगीत मे
पृष्ठ ८४ पर संश्लिष्ट। देखिए प्रसाद के
सानेठ या चतुदशपदियां पृष्ठ ३८२ पर।
इस गीत में मातृगुण के जीवन की

स्मृति है। यह कहकर बिना वह उच्छ्वसल थी अपने मन को मत बहलाना और यौवन कचे गुदर क्षण मोहा भुला मत देना। मादकता का तरल हृषी यौवन क प्याले म लहरा उठनी या और निश्वासी के बल अक्षर चूमन का लपकती थी और भी भौरों की भाँति मुकुल क परिारभ में कौपता रहता था जिस मे प्रेम का प्याला छुलक उठता था जो उछल लछल कर मेरे सुख नापता था। सजग सौदय सो गया। भीहे चपल हो कर मिलने चली। लहर हूव गई और मरे ही हाथ छाती को धिलने लगे। श्यामा का यह नखदान मनोहर मुक्तामो स गुथा हुआ था और मैं जावन के उस पार स्मृति की हसी उडाता हुआ चकित खडा रहा। तुम अपनी कठोर पीडा के भ्रम से मुझे बहकाने मे सुखी अवश्व हुए किंतु पहचाने हुए पथिक की भाँति रह रह कर मुझे देखने भी लगे। अतीत की यह स्मृतिर्षा क्षतनी भयुर हैं कि उन्हें स्मरणकर कभा कभी भूल कर ही सही मेरे पास आ जाया करो और मिल कर मधु सागर के तट पर प्रेम की हिलोरे उडा जाया करो। यह रचना अनुरोध शोपक से सुधा मे सितम्बर १९२१ ई० म सयप्रथम प्रकाशित हुई थी। देविए अनुरोध।

संस्कार = का०, १७१।
[सं०शु०] (सं०) विशिष्ट वृत्य। घम के दृष्टिकोण से किए जानेवाले जीवन के विभिन्न भव सरो के भावशयक परंपरागत कर्तव्य। मृतक की अत्येष्टि क्रिया।

संस्कृति = का०, ३१।
[सं०शु०] (सं०) भावार विचार। कला-कौशल तथा सम्पदा के क्षेत्र में बौद्धिक विकास। (भ०) 'कल्चर'।

सत्यानो = का, २०६।
[सं०शु०] (हि०) सत्यति के उरथान के लिये स्थापित समाज। अस्तित्व स्थापन। प्रत्यय, अथस्था।

सहर्षादलिविरतैरितीवगायल्लोलो = चि०, १३४।
[सं०शु०] (सं०) हर्ष स परिपूरा भौरों की गुजार का प्रानद।

सहार = का, २५३।
[सं०शु०] स) विनाश। गूयना। ध्वस।

सहारवारिणी = चि०, १००।
[वि०] (स) नाश करनवाली। विनष्ट कर्त्री।

सहार-वध्य = का०, २४०।
[वि०] (सं०) विनाश करने व योग्य।

सन्नव = चि० १६२।
[सं०वि०] (हि०) सक्लव। चिह्न के सहित।

सकना = का०, २, ११, १८। का० कुं, १४, २५, ११२। का० १७, २६, ६६, ८१, १०६, १२५ १२८, १४६, १४७, १६५, १७०, १८६, १८४ १८८, २१२, २१६, २२०, २५६, २७२।

चि०, ३, २६, २८, ५०, १०१, १५७। प्र०, २। म०, १३। ल०, ४७, ६७, ७१, ७५, ७७।

कुछ करने म समय होना।

सकमक = का०, ३३।
[सं०शु०] (सं०) कायशील, क्रियाशील या कमशील प्राणी वह क्रिया जो कर्म रखनी हो।

सक्ल = का० कुं, ५६, ८६, ६३, ६७। का०, २५, ५८, ८३, १५३, १६५, १७१, १७५, १८०, १८८, २२४, २३५, २३६, २४४, २६६, २७०, २७३।

चि०, ५२, ५४। क०, ३४। प्र०, १४। ल०, १३, ४३, ७७।

सपूर्ण। समस्त। समा।

सका = का० कुं, ८१। का०, १३५, १६३, १७०, १९०, प्र०, २३।

[क्रि०] (हि०) सकना क्रिया का भूतकालिक रूप। दे० 'सकना'।

सक्ति = चि०, १४७।
[क्रि०] (भ०भा०) दे० 'सकना'।

- सकुचाती = का०, २८०। चि०, ६१।
 [क्रि०] (हि०) दे० 'सकुचाना'।
 सकुचाना = सकुच करना। सकुचित करना।
 [क्रि०] (हि०) लजित करना।
 सकूलन = चि०, १७३।
 [सं० पुं०] (प्र० भा०) मनोहर लटो। कितारों पर।
 सक्रोध = का०, १६६।
 [सं० पुं०] (स०) क्रोध सहित। गुस्ते के साथ।
 सखा = प्रा०, ३६। चि०, ७१। प्र०, १०।
 [सं० पुं०] (हि०) मित्र। साथी। दोस्त। विद्वान्।
 सखियन = चि०, ५७, ६१।
 [सं० स्त्री०] (प्र० भा०) सभी सखियाँ।
 सखियो = चि०, ६१।
 [सं० स्त्री०] (हि०) सखी का बहुवचन। सहेलियो।
 सहचरिया।
 सखिहि = चि०, ५८।
 [सं० स्त्री०] (प्र० भा०) साक्ष्या। सहचरिया। सहेलिया।

- सखी = का०, ७४। चि०, २४, ५७, १६३।
 [सं० स्त्री०] (हि०) सहचरी। सहेली।
 सखी-गन = चि०, ५६।
 [सं० स्त्री०] (प्र० भा०) सखी गण। सखियों का समूह।

[सखी री। सुख किस को कहते हैं—विशाख की कविता। चंद्रलेखा और दरावली जो बहनें हैं, उनका गान। प्रसाद सगीत में पृष्ठ १० पर सकलित। ऐ सखी पता नही सुख किस को कहते हैं? केवल दुख सहते सहते सारा जीवन ही बीत रहा है। कहरा केवल मुदर कल्पना है। दया कहीं भी नहीं दिखाई पडी। निदम जगत् का हृदय सदा कठोर है। इस ससार को छोड़कर भ्रष्टा होता कही और चल कर बसते।]

- सखी-सग = चि० ६१।
 [क्रि० वि०] (हि०) सखी के साथ। सहेली के साथ।
 सखे = का०, ६१।
 [सं० पुं०] (हि०) सखा का संबोधन। मित्र। दोस्त, साथी। सहचर।

[सखे। वह प्रेममयी रजनी—चंद्रगुप्त का गीत।
 सुवासिनी भयना प्रतीत जो सुखमय था

और मादक था, उसे इत गीत में स्मरण कर रही है। प्रसाद सगीत में पृष्ठ ११८ पर सकलित। वह प्रममयी गानि जिसमें पत्ते शांत थे, चंद्रमा ठिठका खडा था, तारे मायव सुमना से हीरक हार गुय रहे थे, वह मधुमयी रजनी आँखा में स्वप्न बन गई। उम भ्रनात में आँखों में मंदिर विलास छलकता था जिससे उज्ज्वल आलीक खिल उठता था। मृदु वाता को हँसना हुई वायु-सुरभि सुधारता थी। अब वह प्रेम का रानि सपना हो गई है। यह विश्व मधु मंदिर सा स्मृतियों का भौंड म जग गया है और कवल मोठी भ्रकार उठ रही है जिसमें केवल तुमका दल रही है। सचप्रुध वह प्रेममया रजनी सपना बन गई।]

- सखेद = का०, १४६।
 [वि०] (सं०) दुख से। खेद के साथ।
 सघन = का०, ६, १४। का०, ३, १३, ८१, १२१, १४६, २२०, २५१, २६६, २६८, ३८१। चि०, १४६, १५०, १५८, १६३। ल०, ३८।
 घना, घविरल। ठाम।

[सघन बन दल्लरियों के नीचे—बामना का गीत 'प्रसाद सगात' में पृष्ठ ७४ पर सकलित। सघन बन लताम्रा के नीचे प्रात और साध्य विरछान न हृदय की योग्या क तार खींच दिए। मेर के गान लहलहा उठे जिन्हें मैंने आसुओं से सीचा था। मीन कविता मुखर हो उठी जिसमें बहुतों ने अपनी आँखें मीच लीं। स्मृति सागर में पलना के चुम्बू से आँख का जल उलीचत नही बनता। मनरपी नौका कहरा जल से ऊपर नीचे से भर गई। यह गीत सचप्रथम 'प्रतीत का गीत' शीर्षक से माधुरी वय ५, खंड २, सन् १९२७ ई० में प्रकाशित हुआ था। देखिए 'प्रतीत का गीत']

सच =
[वि०] (हि०)

सचमुच =
[म०] (हि)

सचराचर =
[सं० पुं०] (सं०)

सचेतनता =
[सं० स्त्री०] (सं०)

सचैव =
[वि०] (हि०)

सचचरित =
[वि०] (सं०)

सच्चा =
[वि०] (हि०)

सच्चा पुत्र =
[सं० पुं०] (हि०)

सच्चिदानन्द =
[सं० पुं०] (सं०)

सजग =
[वि०] (हि०)

सजधज =
[सं० स्त्री०] (हि०)

सजल =
[वि०] (सं०)

मा० ७०। का० कु०, ८४। का०, ६३। प्र०, ६ १६, २०। म०, २३। सत्य। वास्तविक। उचित। क०, २८। का० कु, ६५, १००। वा०, १६१ २००, २१४, २६०, २८७। प्र०, १०, १२, १६, २२। म०, १४, २१, २२।

अवश्य, निश्चय, वास्तव म।
सजा के चर और प्रचर सभा पदार्थ तथा प्राणा।

चेतनता। जड़ता का विरुद्धाधिक।
चेतनशील होना।

चिन १५२।
चन के साथ। धाराम से साथ। मौज के साथ। भानद तथा शालिवृक्क।

अन्धा चरित्रवाला। चरित्रवान्।
मा०, २४ ६५। क०, ३०। का० कु० ११४। का०, २१४। प्र०, ६, २३। ल०, ६६। सत्यवादा। वास्तविक। असली। उचित। यथाय।

म० ६।
याग पुत्र। असल पुत्र।

चि०, १७६।
परमात्मा। वह जो कि सद्, चित्त तथा ध्यानद से पूछ हो।

मा०, ५८ ७५। वा० कु०, ६८, १००। का० ३१, ५१ ५३, ७०, १२०, १६८, २०१ २०६, २३५ २६१। ल०, १०। सवधान। सचेत। होशियार।

म०, ४।
बनडन बनाव, श्रु गार। सजावट।
का०, ५६ ५७ ७५ ८१, १५३ १७६ २१७, २३४। वि०, ७३। जलयुक्त। मधुपूरित (नेत्र)।

सजा =

[क्रि०] (हि०)

[सं० स्त्री०]

सजाती =

[क्रि०] (हि०)

सजाना =

[क्रि० सं०] (हि०)

सजायो =

[क्रि०] (हि०)

सजाव =

[क्रि०] (हि०)

[सं० स्त्री०]

सजीव =

[वि०] (सं०)

सजीवता =

[सं० स्त्री०] (हि०)

सजे =

[क्रि०] (हि०)

सज्जन =

[सं० पुं०] (सं०)

सज्जनता =

[सं० स्त्री०] (सं०)

सज्जन कृत

[वि०] (सं०)

सज्जनहि =

[सं० पुं०] (प्र० भा०)

सञ्चित =

[वि०] (सं०)

पा०, कु०, १६, ३५। वा०, २१८।
मलट्टन हुषा; युषाभिन हुषा।
(पा०) दड।
म ७। प्र०, २।
सञ्चरता। सजाना क्रिया वा यत्नान-
पालित हप।
म०, ५१। प्र०, २ १३, २२। ल०,
१०।

भाना, युषाभिन करना, सँवारना।
मञ्जित करना, भूजित करना।
वि०, ६३, ७१।
मलट्टन करना, मलट्टन किया।
वि०, ५४। वि० ५२।
प्र० सजाना, सजाना क्रिया वा रूप।
सजकर।
सजाने की क्रिया या भाव। बनाय।
म १३। का० कु०, ६६ म०, ६२। प्र०, ४, २५।

देखिये 'सजा'। 'सजाना' क्रिया वा एव हप।
का०, ३३ ५२ ६५ ८३। ल० ३३।
जावन से युक्त, भोजनपूर्णा। तेजस्वा।
श्री०, २०, ४३। वा०, २१६।
मोजत्व। तेजत्व।
मा०, २३। म, ६। म० २०।
सजाना क्रिया वा एक रूप।
का० कु० ८५। वि० ११० १४०,
१६४। प्र० ८। म० १३, २३।

शरीक, भला भादमा। साधु पुरुष।
प्रियतम। उत्तम अ्यहार करनेवाला।
वि०, ११०।
सतई; साधुपन। शिष्टता। भलमनयाहव।
सोज य।
म०, १४।
साधु पुरुषों द्वारा किया गया।
वि०, ६८।
प्र० सज्जन।
वि०, २२। प्र०, १२।
साधनों से युक्त। आवश्यक। वस्तुमा
स युक्त।

सटेक = चि०, ४२ ।

[वि०] (हि०) सहारा के सहित । सप्रतिन ।

सटे से = का० कु०, ११५ । म०, १८ ।

[वि०] (हि०) होनावस्था के समान । विचार सदृश ।

सत = का०, २४१ । चि०, ४७ ।

[स० पु०] (स०) धर्म । सच, सत्य ।

सतत = आ० ६१ । का०, १६, ८१, ८३, ६१, ६२, ११०, १३०, १६१, १६१, १६२, १६२, १६६, १६४, १६५, २३५, २४१, २४२, २५७, २६७, २८८ । चि०, १६० । ऋ०, ८६ । ल०, १२, ३३ । सवदा । निरंतर । लगातार । सदा ।

सताना = का० कु०, १५ । का०, १२ ।

[क्रि०] (हि०) कष्ट देना । दुख देना । पीड़ित करना ।

सताने = का० कु०, १८ ।

[क्रि०] (हि०) दे० 'सताना' क्रिया का रूप ।

सती-छाया = का० कु०, २५ ।

[स० ली०] (हि०) साध्वी-छाया ।

सत्कर्म = चि०, १४० । म०, १८ ।

[स० पु०] (स०) अच्छे कार्य । सच्चा काम । मत्स्य क सत्कृत पालन । अच्छी कृति । उत्तम काम । अच्छा

[वि०] (म०) काम करनेवाला ।

सत्कविता = चि०, ६२, ११० ।

[स० ली०] (स०) अच्छी कविता, कल्याणकारी रचना ।

सत्ता = का० कु०, ६४ । का०, १६, २८, ५१, ६०, १६२, २५२ । ल०, ७८ ।

[स० ली०] (स०) अस्तित्व । शक्ति । सामर्थ्य

सत्य = आ०, १६ । क०, १७, २२, २३, २६

[वि०] (सं) ३१, ८८ । का० कु०, ६७, ८५, ६१, ६३, १२५ । का०, १८, १६, ५१, ५४, ५५, ५८, ११०, १११, १३४, १३८, १७७, २११, २५०, २८५, २८८ । चि०, १३६, १३६ । ऋ०, १६, ५२ । प्र०, १७ । म०, १२ । ल०, ७५, ७७ ।

ठीक । असल । वास्तविक । सच ।

सत्य प्रेम मय = प्र०, १० ।

[वि०] (स०) सच्चे प्रेम से युक्त (मित्र, मुहूद ।)

सत्य व्रत—[इंद्र कला ४, किरण १, जनवरी १६१३ में प्रकाशित कविता जो 'चित्रकूट' शीर्षक से पृष्ठ ६५ पर कानन कुमुम में भक्तित है । देखिए 'चित्रकूट' ।]

सत्य-सत्य = क०, २२ ।

[वि०] (स०) पूरा सत्य । वास्तविक ।

सत्य सुंदर = का० कु०, ५१ ।

[स० पु०] (स०) सौ श्रेयमय वास्तविक तत्व । सत्य और सुंदर ।

सदन = का० कु०, ५२ । चि०, ६१, १६२ ।

[स० पु०] (स०) गृह । घर । निवास, आवास ।

सदनहि = का० कु०, ६४ ।

[स० पु०] (प्र०भा०) घर में । गृह में ।

सदय = का० कु०, २३, ८४, ८६ । का०, २७, १५८ । चि०, ५२, १५३ ।

[वि०] (स०) दया के साथ । दयालु । कृपालु ।

सदय = का०, ५८ । ल०, ७८ ।

[वि०] (म०) धर्म क सहित । अहंकार से युक्त ।

सदा = आ०, ७१ । क०, १०, १४, १५, १७

[प्र०] (हि०) का० कु०, ४, २२, २७, २८, ८३, ६०, ६३ । का०, १६, २६, ८४, ६३, १०६, ११०, १२३, १२६, १५४, १६४, १६५, १६०, १६२, १६४, २०६, २४३, २७१, २८३ । चि०, १, १५, ४८, ५१, ६४, ६५, ११, १०५, १०६, ११०, १६६, १८६, १८८ । ऋ०, ४३, ५८ । प्र०, ८, २६ । म०, १०, १४, १६ ।

हमेशा । सवदा । नित्य ।

सदाहि = चि०, ६४ ।

[प्र०] (प्र०भा०) दे०, 'सदा'

सदृश = आ०, २३ । क०, १३, २८ । का० कु०

[वि०] (स०) ६०, ६३ । का०, ६, २७, २६, ३०, ४८, ५८, ६८, १२७, १६७ । ऋ०, ४५ । म०, ७ । ल०, ३४, ५० ।

समान । तुल्य । सा ।

सद्वै = का० कु०, ८७ । का०, ६४, १३६,

[प्र०] (हि०) १६१, १६३, १६६ ।

सवदा । सदा । हमेशा ।

सद्भाव = का० पु०, ८८। का०, ८८, १६४।
[सं० पु०] (सं०) प्र०, ८।

भ्रात्रे भाव। उचित भावना।

सन = वि०, ५३।

[सं० पु०] (हि०) एक प्रसिद्ध पीपे का रेशा जिससे रस्ती,
टाट आदि बनता है।

सनमान = वि०, १०१।

[सं० पु०] (ब० भा०) सम्मान, आदर, सत्कार।

सन-सन = का०, २४७।

[सं०] (हि०) हवा के तेज चलने से होनेवाली धावाज।
सनसन की ध्वनि।

सना हुआ = का०, ६८।

[क्रि०] (हि०) लिप्त। भ्रान्तप्रोत हुआ।

सनातन = का० पु०, ६३।

[सं० पु०] (सं०) अत्यंत प्राचीन, मनादि काल, बहुत
दिनों से चला आया हुआ व्यवहार।
नित्य, शाश्वत।

सनाय = का०, ७३, ८३।

[वि०] (सं०) रक्षक या सहायक स्वामी से युक्त।

सनी = वि०, ४७, १४६।

[वि०] (हि०) श्रोतप्रोत हुई, सनी हुई। युक्त, मिली
हुई।

सनी सी = का०, १६३।

[वि०] (हि०) मिली हुई सा।

सने = वि०, १५४, १८१, १८२।

[वि०] (हि०) मिल हुए, युक्त।

सनेह में चूर = वि०, १५।

[वि०] (हि०) अति स्नेह से भरा हुआ।

सनेही = वि०, ५७।

[वि०] (ब० भा०) वह जिसके साथ स्नेह या प्रेम हो।
प्रेमी।

सनेहू = वि०, ६४।

[सं० पु०] (ब० भा०) स्नेह प्रेम।

सन्नद्ध = का० पु०, ३। वि०, ४१। म०, ५,

[वि०] (सं०) १६।

समार, उद्यत, काम में पूरी तौर से
लगा हुआ। सलग्न।

सनाटे = का०, २०५। म०, ३१।

[सं० पु०] (सं०) वह अवस्था जिसमें बड़ी कुछ भी शक्ति
न हो नीरवस्था।

समागं = वि०, १५५।

[सं० पु०] (सं०) मन्थी राह।

सन्मानस = का० पु०, ६४।

[सं० पु०] (सं०) मानसराशर।

संभूत = वि०, ६४, ६८, ७३, १०३। म०, २२।

[वि०] (सं०) स०, ६७।

सम्ब, सामने।

संयो = वि०, ५।

[वि०] (ब० भा०) सना हुआ। श्रोत प्रोत।

सन्निकट = वि०, ६६।

[वि०] (सं०) निकट, पास।

सन्निति = का०, ८३।

[सं० स्त्री०] (सं०) समीपता। पहुँच। आगने सामने की
स्थिति।

सन्तुपवजम् = वि०, १३३।

[सं० पु०] (सं०) निश्चित ही बमल।

सपच्छ = वि०, ४१। प्र०, ७।

[सं० पु०] (सं०) अनुकूल या सत् पक्ष।

[वि०] (हि०) पक्ष या परत युक्त।

सपने = का०, ११, २६, ५३, ५६, ५७।

[सं० पु०] (हि०) का० पु०, ८७। का० ६८, १०५,

१०६, ११०, ११२, १२०, १३६

१६५, १७८, १८३, १८६, १८९

१९६, २०६। म०, ६५। प्र०, २३।

ल०, १६, २७, ४५।

स्वप्न वह मानसिक दृश्य या प्रक्रिया
जो मन्थी तरह नींद में आने का अव-
स्था में दिखलाई देती है।

सप्रीत = का० पु०, ४४। वि०, १६१।

[वि०] (सं०) प्रम से, प्यार से।

सपूत = वि०, ४८। म०, १८।

[वि०] (ब० भा०) सपुत्र, सायक या योग्य पुत्र।

सप्त = वि०, १६३।

[वि०] (सं०) गिनती में सातवीं।

सर्तापि = वि०, १३२।

[सं० पु०] (सं०) सात ऋषियों का समूह—गौतम भद्राज,
विश्वामित्र, जमदग्नि, वशिष्ठ, कश्यप

श्रीर श्रुति। अथवा मरीचि, श्रुति,
श्रुतिग, पुलह क्रतु, पुलम्प श्रीर
वशिष्ठ। वे सात तारे जो साथ रहकर
दृष्ट का परिक्रमा करते दिखलाई
पडने हैं।

सप्तसिधु = का०, ६।

[स०] (सं०) पजाब। मात नदिवा का प्रदेश।

सफरी = चि०, ८।

[वि०] (श्र) सफर म काम आनेवाला (छोटा श्रौर
हलका)।

[स्त्री०] [सं०] मछली।

सफल = वा०, ५८ १५४ १८२, १८३, १९८।

[वि०] (सं०) जिसमें फल लगा हा। जिसका कुछ
फल या परिणाम हो। जिसने प्रयत्न
करके काम निम्न कर लिया हो।
कामयाब।

सफलता = श्रा०, ४४। वा०, ४८, ५५, १३०,
[मं० स्त्री०] (सं०) १८१।

कामयाबी। प्रयत्न करके काय निम्न
कर लेने का भाव।

सव = वा०, ३ पृष्ठ से २६५ पृष्ठ तक ८४ बार।

[वि०] (हिं०) चि०, ४ पृष्ठ म ५२ पृष्ठ तक २६ बार।

प्र०, ६ पृष्ठ म ३१ पृष्ठ तक १२ बार।

म०, ७, ११, १४, २०। ल०, २१,

३०, ३१ ३४, ३५ ४३ ४८, ७८।

जिनका हो कुत्र, पूरा। सारा।

[सब जीवम बीता जाता है—स्वप्न का गीत, प्रमाद
मगीत में ८४ ६१ पर मननित। देव
रेना का यह गीत है। धूप टाँह के खेप
के ममान सारा जीवन बतना चपा
जा रहा है। हम भविष्य दं सख्य म
लगाकर स्वय प्रसिद्धि भागना जाता
है श्रौर न जा। नही छिद्र जाता है।
मध्य वा बुना, वाप वा लहरे, इवा
के भवे भन वा जल, इनम श्रुमी म
भा साहय नही दे जा इह राक सब
क्याकि इमरा जावन म जाता है।
इसलिए जो जीवन की बंशा है उा
बजन दा श्रौर मीठी माडा को भान
दो। हम वा जो कुछ माता है प्रास

बद कर के गाने दो क्याकि समय
बीतता जा रहा है।]

सवकुल = का०, १०६, २२७, २४८।

[मं०] (हिं०) मारा पूरा। सभी।

सवके = श्रा०, २०। का० कु०, ८४। का०,

[वि०] (हिं०) १०४, २३८। चि०, ३, ११, ४८,

१४, ५६, ६५, ७३।

समा के।

सवने = श्रा०, १५।

[सव०] (हिं०) सभी ने।

सव भूतन सँग = चि० ७३।

[मं० पुं०] (मं० भा०) सभी जावा के साथ।

सवन = का० कु०, ६६, १०६, ११७। का०,

[वि०] (सं०) १५। मं० ११। ल० ६६।

बलवान, ताकतवर। शक्तिशाली।

सवसे = वा०, १०५, १६५, २३६, २३०।

[मव०] (हिं०) समा से।

सर्वहि = चि० ८ १५, ६४, ६५, १०६, १४८,

[मव०] (मं० भा०) १५७।

सब लोगा ने। सभी तागा को।

सवही = चि०, ४७ ४८, ५०, ५५, १२५,

[मव०] (हिं०) १५६, १८५ १८६।

१० 'सर्वहि'

सत्रेरा = वा०, ११४। प्र० ११।

[मं० पुं०] (हिं०) प्रात काल।

सवै = चि०, १५१, १५५, १७२, १७६,

[वि०] (मं० भा०) समस्त, मपूर्ण, सभा।

सभा = वा० कु०, ४८ १११। वा०, ३०।

[मं० स्त्री०] (मं०) परिवद। समिति।

सभी = का०, १०, १३, ३१। वा० कु०, २,

[प्रय०] (हिं०) १५, ५१, ६२, ६७। वा०, ६, ६६,

८४, ८१ ८६, १५७, १६६, १८६,

१८६, २३०। प्र०, ४ २३। मं०, ३,

१, १०।

मय वाद। प्रयेक। हर एक।

सम = वा० कु०, ५४, ६७, १०८, १६३,

[वि०] (सं०) १६५, १८३, १९६, १९८, १९८,

२०१। वा०, १८, २३६, १। चि०, २२,

२८, ३०, ५०, ७२, ७४, १४३, १६०।
 ऋ०, २८, ३५।

बराबर। समान। सदृश।

समभङ्गा = क०, ११, १४, २२, १। वा० कु०, ३४,
 ८५, ८३, २२, १२१। वा०, ७ पृष्ठ
 से २८७ पृ० तक २७ बार। चि, २२,
 २८, ३०, ५२, ७२, ७४, १४२,
 १४३, १६०। ऋ० २८, ३५। प्र० ६
 १८, २२, २३। म० ३ १०, १४।
 ल०, १८, ६७।

जानकारा हासिल करना नान प्राप्त
 करना।

समतल = वा० १०६।
 [वि०](स०) सपाट। चौरस।
 समता = वा०, १७१। चि० २२। ऋ० ६२।
 [स० स्त्री०] (स०) प्र० १६, २३।
 बराबरी तु यथा समानता।

समचय = वा०, ५८, ७४।
 [वि०] (स०) मिश्रण। मेल। समलतल।
 समय = श्रि०, ३२। वा० कु० ४१, ५८
 [स० पुं०] (स०) ७६, ११६। वा० १८७। चि०,
 १५६, १५८। ऋ०, ४४। प्र०, २ ४
 ५। म०, ३। ल० २२।
 अवसर। मौका। वान।

समर = वा०, २६४। चि० ६७।
 [म० पुं०] (स०) युद्ध लडाइ। दूट।
 समरगम = वा० १५४, २८८।
 [वि०] (स०) पर रम। सवत सवग हर समय समान
 यात्रा प्राप्ति वा मान।

समरमता = वा०, ५४ १६२, २७४।
 [स० स्त्री०] (स०) मामरस्य।
 समरग = वा १४२, १५४।
 [वि०] (स०) शक्ति। सामर्थ्य। उपयुक्त, योग्य।
 समर्थन = वा ११०।
 [स० पुं०] (स०) हिमा मा वा प दण। किसी क विचार
 को ठीक रहना। अनुमान।

समरगण = वा०, ३१, ५७ ८१ ८५, १०४,
 [स० पुं०] (स०) १६०। ऋ०, ५। प्र० ७४।
 गौना, भे०। तत्र बताया।

समष्टि = पे० २३।
 [स० स्त्री०] (स०) यष्टि वा विरद्धाधिक। सभी अग्रा या
 व्यष्टिवा का अतभाव। समूह।

समस्त = वा०, ३३, ५६। ल० ६०।
 [वि०] (स०) सम्पूर्ण। सभी। सारा।
 समस्वर = वा०, ३१।

[स० पुं०] (स०) समान स्वर। एक स्वर।
 समस्या = श्रि०, १४। का०, २६५। म० ८।
 [स० स्त्री०] (स०) विरुद्ध प्रसंग। पहेली।

समस्याय = वा० १६४।
 [म० स्त्री०] (हि०) १० समस्या, वृत्तवचन।
 समार्ड = वा०, १६४।

[क्रि०] (हि०) आइ। स्था बनाइ।
 समागम = वा० कु०, १६।
 [स० पुं०] (स०) सभाग। मधुन। आगमन। सवग।

समाचार = म० १० १२।
 [म पुं०] (स०) खबर। खवाद।
 समाज = श्रि० ४८। का०, २६७। चि०, ६४।
 [म० पुं०] (स०) ऋ० ६६।

समात = गिराह झुड़। समुदाय।
 चि०, ८ १८, ३१ १८०।
 [क्रि०] (प्र० भा०) घटना। समा जाता।

समाता = श्रि०, ४८। ल०, १७।
 [क्रि०] (हि०) १० समात।

समाती = चि० १२।
 [क्रि०] (हि०) समाता क्रिया वा स्व तिग रूप।
 समादर = ऋ० ८०।

[स० पुं०] (स०) यश सम्मान।
 समाधि = श्रि०, ५५। वा० कु०, ५६। वा०,
 [स० स्त्री०] (स०) १७७।

श्रवण क ध्यान म मान होता। याग
 साधन वा चरम क्तन। मृत अस्थिया
 क गाडे चान वा स्थान।

[समाधि सुमन मव प्रथम इदु कता १ विरुण ११,
 अ० ६७ म प्रकाशित कविता। देविण
 वित्राधार'।]

समानि-गा = वा० २८७।
 गमाधि को तरह। विवाद भी

समाधि स्थान = वा कु० ७३ ।

[सं० पु०] (व०) समाधि लगाने का स्थान । समाधि का स्थान ।

समान = वा० कु० १० ७४, ९४ १०० । वा०
[वि०] (हि०) ३ ३४, ४१ ४५, ५० ५४, ८०,
९१, १०१ १५१ । चि०, २४, २९
५५ ६१, ८० १४१, १६६,
१७५ । प्रे०, ५ १०, म०, ५ ।
ल०, ५८ ।

बराबर । सम्यगुण ।

समाप्त = का० ६३ ११६ ।

[वि०] (सं०) खत्म । अंत ।

समाया = का० कु०, ६ ।

[क्रि०] (हि०) समाना क्रिया का भूतनामिक रूप ।

समिद्ध = का०, ३२ २३६ ।

[वि०] (म०) प्रज्वलित उराजित । भटकाया हुआ ।

समिध = चि० १०१ ।

[सं० पु०] (सं०) अग्नि, आग । तनल ।

समीप = आ०, २, ४१ ६२ । का० कु०,

[ग्रन्थ०] (सं०) १०५ । मा० १२६ १४३, १४८,

१७६ १६२, १८३, २२६, २७२,

२८५ । चि० ७२, ८६ । प्रे० १५ ।

ल०, ६६ ।

निकट, नजदीक, पास ।

समीपहि = चि०, ५७ ।

[अ य०] (ग्रन्था०) समाप में ही । नजदीक में । 'समीप' ।

समीपि = चि०, १५१ ।

[सं० पु०] (हि०) नजदीक । मध्या । पहाड़ी ।

समीर = आ०, ३३ । वा०, कु० १०० । वा०,

[सं० पु०] (सं०) ११, १२ २७ ३६, ३९, ६६, ६०

६८, १४६, १७७ २५०, २६३ ।

चि०, १०, ७१ १४०, १४३ १५७,

१६४, १८० । ल०, ३७, ४४ ।

वायु । हवा । बयार । पवन ।

[समीर स्पश कनी को नहीं खिनाता—विशाख का गान; प्रसाद संग्रह में पृष्ठ १८ पर सकलित । प्रमान्त का बधन है कि समीर के स्पश से कली नहीं खिलता अर्थात्

मरुद के आने से वह विकसित हानी है और खिलता है अर्थात् हृदय में वैराग्यरूपा पराग आने से स्वतः जीवन आनन्दमय हो जाना है ।]

समीरण = का० कु०, ३७ प्रे०, ६ ।

[सं० पु०] (सं०) समीर वायु । मलयज, पवन ।

समीरन = चि०, २६ ५६, १४६, १५२, २५७,

[सं० पु०] (ग्रन्था०) १६८, १८६ ।

समीरण ।

समुचित = वा, ७६ ।

[वि०] (सं०) ठाक । उचित । उपयुक्त ।

समुज्ज्वल = चि०, ७१, ७२ ।

[वि०] (सं०) अत्यंत उज्वल ।

समुम्भ = चि० १८, १८८ ।

[यु० अ०] (ग्रन्था०) समुम्भ करक ।

[सं० स्त्री०] (हि०) वृद्ध ।

समुम्भत = चि०, १०१ ।

[क्रि०] (ग्रन्था०) समुम्भना क्रिया का एक रूप । समझने का । समझ आना ।

समुम्भयो = चि० १६० ।

[क्रि०] (ग्रन्था०) समुम्भना क्रिया का भूतनामिक रूप ।

समुदाय = वा०, २५ ८२ । चि०, २६ ।

[सं० पु०] (सं०) लघु समाज जा किसान । वगैरे लघु

के नियम होता है । समूह ।

समुद्र ।

समुदित = वा० कु०, १०८ । चि०, १४८ ।

[वि०] (सं०) उदित । प्रकाशित । आनन्दित ।

समुद्र = आ०, २६ । का० ११ । का०, कु०,

[सं० पु०] (सं०) ५५, ८६ । वा०, १८२, २८८ । चि०,

१७८ ।

सागर । उदधि । पश्याधि । रत्नाकर ।

बड़ा सागर ।

समूह = चि०, १६६ ।

[सं० पु०] (सं०) झुंड । गिराह । समुदाय ।

समृद्ध = का० कु०, ८८ । का०, २२, २३८ ।

[वि०] (सं०) समृद्ध । एष्वयथा ।

समृद्धि = वा०, ६, ५८ ।

[सं० स्त्री०] (सं०) समृद्धता । एष्वयं ।

समेट = वि०, ५४। ऋ०, ३४।
[सूक्०कि०] (वि०) एकत्र कर।

समेटति = वि०, १५१।

[सूक्०त्रि०] (प्र०भ०) नटारती दृष्ट। एकत्रित करती दृष्ट।

समेटना = वा० ६६। ल०, २४।
[त्रि०] (दि०) बगारना। एकत्रित कराना।

समेटि = वि०, ५८।

[सूक्०त्रि०] (प्र०भा) बगार कर। समेट कर।

समेन = वा० ८३।

[प्र० य०] (स०) सहेन। साथ।

सम्मान = वा० कु०, ६८ ११। ऋ०, ७८।
[स० पु०] (स०) श्रावर इज्जत प्रशंसा।

सम्मूल = वा० कु०, ७२, १०८। वा०, १३१,
[वि०] (स०) १८१, २७८।
समूल। मामन। साथ।

सम्मेलन = प्र० ०५।

[स० पु०] (स०) जमघट। मिलाप। सगम।

सम्मोहन = घा०, ३३। वा० कु० १५४। प्र०
[स० पु०] (स०) १०।

माहित करने का वा भाव। वामश्रवण पंचवाण म स एक वा नाम।

सम्राजमम्भाजकुलेगिरिनिपि = वि०, १३४।

[स० पु०] (स०) सङ्गण सरणिन कुन क साम्राज्य म भा।

सम्राट = वा० कु०, ११६।

[स० पु०] (स०) गाहकार। नृपति, राजा। महाराजा
पिताय।

समृद्धि के = वि० १४८।

[त्रि०] (प्र० भा०) सहाय करक। सहारा द करक।

समृत्त-समृत्त = म०, १३।

[प्र०भ०] (दि०) रक रक। ठहर ठहर। माच साथ।

समृत्त = वा० कु० ८।

[वि०] (दि०) महारा। रक्षा।

समृत्तना = वा०, ६६। ऋ० ६१।

[त्रि०] (दि०) मगरा दना। सहायता करना।

[समृत्तन पो] वैसे प्यार—साथी का गात्र त्रिन
रूना गात्रा है। बाई धन प्यार का
का मनान ? का धन धन है। रट
र कर मषन उठा है मोर घाँवा म
धन धन दाना भर तागा है। प्यार व

राते पर जब काई चलता है ता यथा
के भार से कस गीले राते पर
फिसल उठता है। सचमुच यह कितना
सुखुमार है नि मन म रह रह कर
सिसर उठता है। सुहाग के मननन मे
यह छुईसुई सा हा जाता है और हस
उठता है। ऐसे सुखुमार और चंचल
प्यार का बाई कस सगले ?

समृहाला = वा०, २००।

[त्रि०] (दि०) 'समृहालना' क्रिया का भूतकालिक रूप।
प्र० धम ताना।

समृहाली = ल० १७।

[त्रि०] (दि०) समृहाला क्रिया का स्त्री लिंग रूप।

सर = वा० कु० ३४, ३५, १ व०, २७१,
[म० पु०] (स०) २८५। वि० ६६ १५७ १८६। ऋ०,
११। प्र० १३।
तालाव। स शिर।

सरद = वि०, २ ७०।

[वि०] (दि०) सग। जाटा, घात।

सरन = वि०, १७८।

[स० पु०] (प्र० भा०) सरण।

सरवस = वि० ५ १८५।

[वि०] (दि०) सनस्त। सब कुय। घमा चार्जे।

सरमाती = वा० कु० १८।

[त्रि०] (दि०) शम खाली दृष्ट।

सरल = मा० ११। वा० २८, ७४ ८३ ८४
८५ ८७, १०५ १२६, १५१, १६३,
१७८ २४१। वि० ५५, ७३, १७३,
१८५। ऋ०, ४१, ७०, ७६, ८४।
प्र० २ ५। म०, १४, ६६। ल०,
११, २३।
साधा। निरदल। निष्कण्ट।

सरल क्या = वा० कु० ७४।

[स० ल०] (दि०) माघारण क्या।

सरन सरन = ल० ४३।

[वि०] (स०) मन्थन सरल।

सरन स्वभाव = वि० ६।

[स० पु०] (दि०) शीघ्र स्वभाव। शीघ्रान।

सरस्वर = चि०, ८, २४, ४६, ६७ ।
 [सं पु०] (हि०) तालाव, सरोवर ।
 सरस्वर-जलहँ = चि०, ४५ ।
 [सं पु०] (ब्र० भा०) सरोवर के जल में भी ।
 सरस = का०, ६३, ८२, ६७, १०३, १३३,
 [वि०] (सं) १४३, २१७ । चि० ५५, १८१ ।
 भ०, ३८ । ल०, २३ ।
 मोठा । रसाला । भयुर । पीना ।
 ताजा । भावपूया ।
 सरस सीकर = ल०, २१ ।
 [सं० पु०] (सं०) पसीने का बूँदों । खेद विदु ।
 सरसाश्री = चि०, १७४ ।
 [क्रि०] (हि०) सरसाना क्रिया का एक रूप । शोभित
 करो । सरस बनाओ ।
 सरसात् = चि०, १५९ ।
 [वि०] (ब्र० भा०) दे० सरसाना' । सुशोभित होता है ।
 सरसाधि = चि०, २४ ।
 [पूव० क्रि०] बाण को लथप पर साधकर । तीर को
 (ब्र० भा०) सम्हाल कर ।
 सरसाय = चि०, १८० ।
 [क्रि०] (ब्र० भा०) शोभित हुए । 'सरसाना' क्रिया का एक
 रूप ।
 सरसावै = चि०, १६२ ।
 [क्रि०] (ब्र० भा०) सरसाना क्रिया का एक रूप । दे०
 'सरसाना' । लुभाती ।
 सरसि = चि०, १३४ ।
 [पूव० क्रि०] (ब्र० भा०) शानतिन हाकर ।
 सरसिज = श्रौ०, ६५ । चि०, १४ । भ०, २८ ।
 [सं पु०] (सं०) ल०, २० ।
 कमल । तीरज । शरीरविद ।
 सरसिज-वन = श्रौ०, २३ ।
 [सं पु०] (सं०) कमल का वन । प्रबुज-वानन ।
 सरसी = का० कु०, ३६ । का०, १७५ । चि०,
 [सं० ली०] (सं०) २३ ।
 छाटा तालाव ।
 [वि०] (हि०) शाश्वत । सिन्धी हुई ।
 सरसीहै = का० कु०, ३६ । का०, १७५ । चि०,
 २३ ।

[क्रि०] (ब्र० भा०) सुदूर लगती है । मुहावती है ।
 सरस्वती = का०, १६०, १६७ २०५ २४७ ।
 [म० ली०] (सं०) शारदा । भारती । विद्या । विद्या की
 शक्तिशाली देवी । इत्या ।
 सरसिहृद = का० कु०, ११८ ।
 [म० पु०] (का०) भारतवर्ष का मध्य भाग ।
 सरसह = का०, २८६ । चि० १७१ ।
 [पूव० क्रि०] (ब्र० भा०) सरसहना क्रिया का एक रूप । प्रशंसा
 करने ।
 सरसहना = चि०, २० ।
 [क्रि०] (ब्र० भा०) प्रशंसा करना । बड़ाई करना ।
 [ली० सं०] बड़ाई । प्रशंसा ।
 सरसहना = चि०, ६० ।
 [क्रि०] (ब्र० भा०) प्रशंसा करना । सरसहना क्रिया का एक
 रूप ।
 सरसाह = चि०, १८४ ।
 [क्रि०] (हि०) प्रशंसा वा । सरसहना क्रिया का
 एक रूप ।
 सरिता = श्रा०, ७६ । का०, ७३, २३३, २४३,
 [सं० ली०] (सं०) २४५ २४६ २४७, २६६, २७७ । चि०,
 १, २६, १७३ । भ० ३६ । प्र०, ३,
 १३ १४ १५ २६ । म०, ४ । ल०,
 २७, ७० ।
 नदी । नहर ।
 सरिता-तीर = चि०, ४५ ।
 [सं० पु०] (सं०) नदी का किनारा । बँधारा ।
 सरिस = चि०, ३० । भ०, ३६ ।
 [वि०] (हि०) समान । सदृश ।
 सरोज = श्रौ०, २८ । चि०, ३, २८, २६, ४६,
 [सं० पु०] (सं०) १८८, भ०, ११ ।
 कमल । जलज । पत्रज ।
 [सरोज—मन्वन्वन् इन्द्र माघ १६१३ ई० म प्रकाशिन
 श्रीर कानन कुमुम म पृष्ठ ३६ ३७ पर
 सकलित । यह प्रमाद को चतुदशपदा या
 सानेट है जो प्रमाद संगत म पृष्ठ १२३
 पर सकलित है । दक्षिण पृष्ठ ३८२
 प्रसाद को चतुदशदियर् या सानेट ।

सूक्तियां के साथ ही साथ सरोज की महिमा का रस में वर्णन है। परम धर्मगुरु स प्रज्ञान सरसा में सरोज रिल रहा है और भागी स भिन रहा है। नाथ लानिमा स जा सतुपिन हा गया या और जिसने प्रेमिया का मकरद नही दिशा या उ हा वमला व गल यह मिल रहा है। सा ग य हृदय का निष्कपट भाव मूय को देर वर प्रमुदित हो रहा है। यद्यपि जल में यह रहता है ता भी उम स उसका स्पश नही होना। यह पाठ पढ़ता है कि मनुष्य को लिप्न नही होना चाहिए।

तुम। उन लहरा में भी झटल हा जो तुम्ह विचलित बनना चाहता है। इमा रूप म कत प पय पर मनुष्य का स्थिर हुना चाहिए। यत् तुम्ह हवा भवभ रती ह ता भी उसे तुम परिमल दान करते हो। यह तुम्हारा सौज य है। तुम्हारे ही केशर के पान स मसुर परागताली हो रह है। भगवान तुम पर भपा कर यही हमारा हृदय रह रहा है।]

सरोजपत्रेनु = चि०, १३३।

[सं० पु०] (सं०) कमल क दल।

सरोजपराग = का० कु० ३६ १००।

[म पु०] (सं०) अरविद का मकरद। कमल पराग।

सरोजराजि = चि०, १३४।

[सं० सं०] (सं०) वमन की पत्तियाँ। कमल ल।

सरोज हृदय = का० कु०, ६०।

[सं० पु०] (सं०) कमल क समान सुकोमल हृदय।

सरोरुह = का०, १७६। चि०, १४३। ऋ०, ११।

[सं० उ] (सं०) कमल। अरविद।

सरोरुहारणि = चि०, १३३।

[सं० पु०] (सं०) वमनिना। कुटुदिना।

सरोवर = का० कु० ५५। का०, २३५। चि०,

[सं० पु०] (सं०) १५३। ऋ०, ११।

तालाव। सर। बावली। तटाग।

सग = का०, ७, १७, १८, ५३।

[सं० पु०] (सं०) सतार। सृष्टि। स्वर्ग। प्रवाह। स्वभान, प्रवृत्ति। तीर्थी।

सग प्रकुर = का०, २१०।

[सं० पु०] (सं०) जीवन विनाम।

सप = का०, २७।

[सं० पु०] (सं०) साप। कारा। भुजग।

सरटि = का०, २०५।

[सं० पु०] (सं०) मर सर पाँ या हाना। नौडन ती प्रिया म हातेयाना सनसनाहट।

सवज्ञ = का०, १६५।

[वि०] (सं०) सब कुछ या सभी वाता का पाता।

सवन = का० कु०, ७६, १०९ १११। ऋ०,

[अभ्य०] (सं०) ४४। प्र०, १४। म० १३। सभी जगह।

सवनसुलभ = का० कु० ६१।

[वि] (सं०) सभी जगह सुलभ। सुगम।

सवमगले = का० २४६।

[सं० खी०] (सं०) (मवापन)। सबका मगल करीवानी श्रय त् श्रद्धा।

सवस = चि० ३४।

[वि०] (प्र० भा) मवस्व सब कुछ। कुल। समस्त।

सवस्व = का० कु० ७३ ११३। का० १०४।

[वि] (सं०) प्र० १३ २० २२ २५। म० २। कुल। समस्त। सबस।

सवाग = का० २५२।

[सं० पु] (सं०) सपुण शरीर। सारा वदन, काया के सभा अवयव।

सलब्ध = का०, ४७।

[वि०] (सं०) लज्जा के साथ लज्जापूर्वक।

सलिल = का०, २८३। चि०, २३ १६०। ऋ०

[सं० पु०] (सं०) ३७। म०, ८। सं० १६, १४३। ध्रुव। जल। पय। नार।

सलोनी = चि० १४७, १५८।

[वि०] (सं०) सलोनी का छावाची रूप। दे० सलोने।

सलोने = चि०, ६३, १६२।

[वि०] (सं०) सुदर। नमकान। मनाहर।

सलोने श्रग पर पट्ट हो भालिन भी रग लाता है—विशास्य का गीत जिसमे चंद्र सेला ने सी रथ की प्रशंसा की गयी है। प्रसाद सगत म पृष्ठ ६ पर सन्निहित। यह वियेटरा धुन में दो पक्षिया की कविता है श्रिग म विगाल कहता है कि मलिन वख भी सुन्दर श्रग को नया रग दे देता है। कमन कीचड से सना रहता है फिर भी सुदर लगता है।]

- सवारत्त = वि०, १७८, १८५।
 [क्रि०] (३० भा०) मंत्राना। २० 'सवारना'।
 सविता = का०, २५।
 [म० पु०] (स०) मय। दिनार।
 सविनय = का० कु०, ६८। का०, १३१।
 [वि०] (हि०) नम्रतापूर्वक।
 सविलास = का०, ५४, ५९, ६८। फ० २८।
 [वि०] (हि०) आनंद तथा उल्लासपूर्ण।
 सवेरा = का०, १२०, २५८।
 [स० पु०] (हि०) सुबह। प्रातःकाल। दिन का प्रारंभिक प्रशं। मवेरा।
 सव्य-साची = का० कु०, १११। वि०, ३१।
 [म० पु०] (स०) श्रद्धा। सुतो के वृत्ताय पुन।
 सश्रीड = का०, ८६, ८४।
 [वि०] (स०) सज्ज।
 सशक = का० २४६। ल०, ७७।
 [वि०] (स०) शक से। शका से। डर से। २० 'सशक्ति'।
 सशक्ति = का०, २७१।
 [वि०] (स०) शक्ति। भयभीत। डरा हुआ।
 सशक्त = का० कु०, ६०।
 [वि०] (स०) बलवान। मजबूत। शक्तिशाली।
 समी = वि०, १४६।
 [म० पु०] (स०) शक्ति। राकावति। निशापति।
 सस्नेह = का० कु०, ६८। का०, ५४, १६२।
 [वि०] (स०) फ०, २५।
 स्नेह महिन। प्रेमपूर्वक।
 सस्वर = प्रे०, ११।
 [वि०] (स०) राग ने। मधुर राग स।

- सस्मित = का०, ८६।
 [वि०] (स०) मुस्कराता हुआ। चिह्न मना हुआ।
 सह = का०, २६, १७७, १७८। वि०, २८,
 [वि०] (स०) २६, ५३, ५५, ६३, ६४, ७१। म०,
 १७।
 सहित। समेत। साथ।
 सहकार = वि०, ७१।
 [स० पु०] (स०) शरीर के साथ मिलकर कार्य करने की प्रवृत्ति। सहयोग। सुगमिन् पदाय। ग्राम।
 सहचद = वि०, ७१।
 [वि०] (स०) चंद्रमा के साथ। चंद्र के सहित।
 सहचर = का० १३। का० कु० ६७ १०६।
 [स० पु०] (स०) का० १६, ७१ ८६, १८३। वि०,
 २८। प्रे०, ६, २०।
 साथी। सगा। मखा। सेवर।
 सहचर-मुत्त क्रीडा = का० कु० ६८।
 [स० पु०] (स०) खला द्वारा का पशु मुत्त की क्रीडा।
 सहचर-सी = का०, ६।
 [वि०] (हि०) साथी के समान। मूहद सी।
 सहचरी = का० कु० ११।
 [स० पु०] (स०) माया का स्त्रीवाची शब्द। पत्नी।
 साथी।
 सहज = का० कु०, १८ १००। का०, ३२।
 [वि०] (स०) ८६ ११२, १४३, १४७ १६४, १६६,
 १७१, १७७ १६७ १८८, २०८,
 २०६ २२४ २६८, २७८। वि०,
 ३०, ५६ ६३। प्रे०, ५। ल०, ५७।
 सरल, सुगम, साध रण। सगा (भाई)।
 स्वाभाविक।
 सहजमुद्रा = का० १२८।
 [म० पु०] (स०) स्वाभाविक आहृति। साधारण अवस्था।
 सहज-लज्ज = का०, १४७।
 [वि०] (स०) सरलता से ही मिलने वाला। साधारण
 टग म प्राप्त।
 सहजही = वि० ६६।
 [प्र० पु०] (हि०) साधारण ही। सरलता से ही।
 सहजै = वि०, ४ ४७।
 [वि०] (प्र० भा०) २० 'सहज'।

सहस्र = बा०, १११, १३७ १६६, २०२,
[त्रि०] (हि०) २३८, २४०, २६०। वि० ६ १०५।
सहस्र त्रिधा वा षट् सप्त। सहस्रा ह्यम्।

सहस्रा = बा०, १४ १६६, १६४, २१६, २५१।
[त्रि०] (हि०) म० २ ३ ६, ८।
भक्त्या। पार करता। यन्तस्त करता।

सहस्रे = वि० १८५।
[त्रि०] (हि०) 'सहस्रा' त्रिधा वा षट्।

सहयोगी = बा०, १८१।
[सं०] (सं०) साथी। सहकारी। सहयोग करनेवाला।

सहस्र = बा० ४१।
[वि०] (सं०) षण्णान् पुनरु। प्रारं यान् पुनरु।

सहस्राना = बा० ५०। बा० ८५ २११, २१६।
[क्रि०सं०] (हि०) मलना। निशा वायु यत्पया जाव
पर हाव फलना।

सहस्रारथि = वि०, ६६।
[वि०] (सं०) सारथा व सहस्र।

सहस्रवत्ता = बा० १५३।
[क्रि०] (हि०) सहस्र कर सक्ता, सहस्रा' त्रिधा वा षट्।

सहस्रा = बा० ३८ ५२ ७७ ६६ १०१ १०४
[प्र०] (हि०) १६६ १८६ २१४, ५७३। वि०
१/४। म०, ६०। प्र० १/१। त०
६६ ७२।
एकाएक। शकस्मान्।

सहायुभूति = बा० ३२। प्र० ०।
[सं०] (सं०) ह्यमदर्थी। दुख की देवदार दुःख होने
वा भार।

सहाय = बा०, ११०, १७१। वि०, ५० १४६।
[सं०] (सं०) सहायता। साधय। मदद। सहारा।

सहायक = बा०, १४। म०, २२।
[वि०] (सं०) सह मता करनेवाला। सहकारी।

सहाय्यता = बा० १८।
[सं०] (सं०) सहारा। साधय।

सहारा = बा० ४१। बा० ७० २३, २८, ७६।
[सं०] (हि०) म०, ४१। प्र० २१। म० २०।
साधय। नरामा। सहायता। सहारा।

सहायि = बा० १६, ४३। वि० २४ १०१,
[वि०] (हि०) १८२।

दे० 'सहाय'।

सहि = वि०, ३१, ५०, ५८।
[पूर्व०] (सं०) गह कर।

सहिना = बा०, ३०। बा०, ५१। वि०, १, ६,
[प्र०] (सं०) १४ २८ ५८ ६४ ६६, ७३, ७४
१४१। म०, ६० म० ६।

समा। माय।

सहि ना सहि हे = वि० १४०।
[त्रि०] (सं०) गह नही गर्हे। यन्ताय उकर गर्हे।

सहिही = वि० १६०।
[त्रि०] (प्र०) गह गही।

सही = बा० ७० ७५ ११२ ११३। बा०
[प्र०] (वि०) ११२। वि० १५ ३५ ३६, ४८।
'सहस्रा' त्रि। वा भूरात्वात्तर म्।

[वि०] तत्त्वा। तीक्ष्ण।

सहस्रदय = वि० १६४।
[वि०] (सं०) दयानु। रमित। ह्यमन्। भावु।

सहस्रदयता = बा० ६६। बा०, ०८८।
[सं०] (सं०) दयानुता भावुताय रमितता।

सहस्रतु = बा० १४०।
[वि०] (सं०) बारण गति।

सहस्र न भार = वि० ६७।
[त्रि०] (सं०) वजन नही गहता।

सहस्रो = वि० ३६, ४६।
[त्रि०] (सं०) सहस्रा त्रिधा वा भूतकालिता रूप। म्।

सा = बा० १६ ३० ४५ ५५ ५७ ५८
[प्र०] (सं०) ७३। बा० ७ ६० १४० २२३,
२४४, २६ २६६ २६८, २१५ बा०
७० १०, २८ ६१ ११२। वि० २२
५६। म० ७० म० ४ त०, १८
३० ३४ ३७ म० ८।

सहस्र। ममान।

साच = वि० २४, ६७।
[सं०] (सं०) साय, साधयत। उचित तीक्ष्ण।

साचहु = वि० २६ ५५।
[सं०] (सं०) सा च।

साचे = बा० १०१, १०५, १७२। वि० ४७
[सं०] (हि०) १७६।

साय। डालन व लिये बनाया हुआ

एक प्रकार का साँवा जिसमें कीई
बस्तु ढाकी जाती है। (बहुवचन)

- साम्भ = का० १७६। चि० ५७ ल० १४।
[सं० स्त्री०] (हिं) सायकाल, सध्या।
साम्भ-किरण-सी = का०, १७६।
[वि०] (हिं०) सायकालीन किरणों के समान।
साम्भ-सवेदे = चि०, ५७।
[सं० पुं०] (हिं०) प्रात साय।
साम्भ-सी = ल०, १४।
[वि०] (हिं०) सध्या के समान, सायकाल सहण
कात्री।
साय्य = क०, ७। चि०, १, ३६।
[वि०] (स०) सायकालीन।
सायकाल = का०, ८१।
[सं० पुं०] (सं०) सध्या समय। अंतिम पहर।
सायरो = चि०, १४८।
[वि०] (ब्र० भा०) गोपाल। प्रियतम।
सास = धा०, १० १२। का० कु०, ८५। का०,
[सं० स्त्री०] (हिं०) १६, २२, २२२, २४७, २७१।
म्बास। आस। जीवन। दम।
सासारिक = का० कु०, १०४।
[वि०] (सं०) लौकिक ऐहिक।
साकार = का०, ४८ ६०, १७५, २०६ २६४।
[वि०] (सं०) रूप या आकार वाला, स्थूल मूर्तिमान।
साक्षात् = ल०] ६६।
[अभ्य०] (सं०) सम्मुख। सामने प्रत्यक्ष।
[वि०] साकार।
साक्षी = का० कु०, ६४। का०, १८६। ल०, १
१३।
[सं० पुं०] (हिं०) गवाह। तटस्थ दशक।
सास = का०, ८६।
[सं० स्त्री०] (हिं०) मवादा राब, धाक।
साक्षा = चि०, ५५, ६६, १८४।
[सं० स्त्री०] (हिं०) शाखा, डाली, टाल।
सागर = धा, ४२, ४८, ६१। का० कु०, १। का०,
[सं० पुं] (हिं०) २६, ३१, ३४, ३५, ३६, ४८, १६६,
१७६, २०६, २८८। चि०, ६६,
१८५। प्र०, २२, २६। ल०, १६,
१५, १६, २०, ३४।
समुद्र, रत्नाकर। फाल।

- साचि = चि० २४।
[वि०] (हिं०) दे० 'साचि'। सचो।
साची = चि०, १८३।
[वि०] (हिं०) दे० 'साचि'।
साज = का०, ८७, ६२, १४२। चि०, ३३,
[सं० स्त्री०] (हिं०) ७१, ६४, १०६। ऋ०, ५६, ६७।
शू गार, सजावट, सजे हुए होने की
भवस्था।
साजती = चि०, १५५।
[क्रि०] (ब्र० भा०) सजाती।
साजहि = चि०, १५४।
[क्रि०] (ब्र० भा०) मजाती, साजती।
साजि = चि०, ६८, १००।
[पूर्वक्रि०] (ब्र० भा०) सजाकर।
साजै = चि० ७१।
[क्रि०] (ब्र० भा०) सजाते हुए।
साज्यो = चि०, ७१।
[क्रि०] (ब्र० भा) सजाया, ठाट बाट बनाया।
साडी = का० ३८।
[सं० स्त्री०] (हिं०) स्त्रिया के पहनने की धोती। भारतीय
महिलाओं के पहनने का एक प्रकार
का वस्त्र।
सात = ऋ०, ७६।
[वि०] (हिं०) चार और तीन के योग स बना (मटया)।
सात्विक = का० कु०, ५८, ६७। का०, ३७।
[वि०] (सं०) शुद्ध, पवित्र। सतीगुणा सत्व गुण के
उत्पन्न, निमल। विष्णु।
साथ = क०, ९, १६, २०, २६। का० कु०,
[सं० पुं०] [हिं०] २२, २६, २५, ३०। का०, ७३, ८३,
८८, ११०, ११७, १५७, १७६,
२१३, २१४। चि०, १७०। ऋ०,
६६। प्र०, २, ६, १८, २२, २४।
म० ३, २२।
सगति, सटवार। साथी। संगी। धर्मिष्ठता
क्यूतरा का फुड।
[अप०] सिवा, अतिरिक्त।
साय-साय = म०, १।
[अभ्य०] (हिं०) एक साथ, मिलकर।

साधिन = ल०, ४० ।
 [सं० शी०] (हि०) > साधी' (शी०) (बहुवचन) ।
 साधी = आ०, ७४ । का० कु०, २८, ५१ ।
 [सं० पु०] (हि०) का०, ७३, ६४, १०, १२६, १६० ।
 चिं० ५६ । प्र०, २४ ।
 मित्र, सगो, सहचर, सहयोगी, दोस्त ।
 सादर = म०, २३ ।
 [वि०] (सं०) आदर के साथ, सम्मान, मान सहित ।
 सादी = आ०, २२ ।
 [वि०] (हि०) सीधो, सरल, स्वैत ।
 साध = वा०, ४८ २२० ।
 [सं० पु०] (हि०) साधु पवित्र सात्विक ।
 [श्री०] (वि०) तालसा । उत्तम अग्रजा ।
 साधक = वा, ७५ । म० १८ ।
 [सं० पु०] (सं०) साधना करनेवाला, योगी, यति ।
 साधती = का० कु०, ८८ ।
 [क्रि०] (हि०) साधने की क्रिया करती ।
 साधन = वा० कु०, १०६ । वा० ३ ७१ ७५
 [सं० पु०] (सं०) ११५, १७१, १८१, १८३ ।
 जगिया । निष्पत्ति । आना । उपाय
 युक्ति । कारण हेतु तात्पर्य ।
 साधना = का० कु०, ७३ । वा०, ८८ ६३
 [सं० शी०] (सं०) १०६, १६२ १६३ २६८, २८० ।
 आराधना । तपस्या । सिद्धि ।
 साधारण = वा०, ११५ ।
 [वि०] (सं०) आसान सामान्य मासूला सहज, आम,
 सरल, सुगम, सभी से संबंधित ।
 साधि = चि०, ७२, १४६, १६३ ।
 [प्रव० क्रि०] (प्र० भा०) साध करके ।
 साधिना = वा० कु०, ७२ ।
 [सं० शी०] (सं०) साधना करनेवाली महिला ।
 साधिवार = वा० १४०, २३८ ।
 [क्रि० वि०] (सं०) साधिवार मत्त साधिवार स ।
 [वि०] जिन साधिवार प्राप्त हो ।
 साधु = व०, ३० ।
 [सं० पु०] (सं०) सज्जन, कुलीन आम सन, सत्युग्र ।
 साधन = वा० कु०, १२१, १ का०, ४५ ५८,
 [क्रि० वि०] (सं०) ८०, ६० । चि०, १४२ । म०, १७,
 २९ ।

मानदपूर्वक, आनंद सहित ।
 साधु = का०, २६ ।
 [सं० पु०] (सं०) समतल भूमि । पत्रत का चोटा । वन,
 जंगल । पल्लव । माग । पठित । मूय
 ज्ञानी ।
 सामुनय = चि०, ६६ ।
 [क्रि० वि०] (सं०) अनुनय सहित, विनय के साथ ।
 सामुराग = का०, १४८, २३६ ।
 [वि०] (सं०) अनुगम सहित, नेह के साथ, प्रेमपूर्वक ।
 साभिमान = का०, १५० ।
 [क्रि० वि०] (सं०) अभिमान क सहित ।
 सामजस्य = वा०, २७२ ।
 [सं० पु०] (सं०) अनुकूलता । शौचित्य । मेल ।
 सामग्री = वा० कु० ८५ । प्र०, १ ।
 [सं० शी०] (सं०) वस्तु । भावत । सामान चीज ।
 सामना = का० कु० ३०, ५०, ६८ । म०, २२ ।
 [सं० पु०] (हि०) ल० ७२ ।
 भेंट मुलाकात । मुकाबिला । ममत्त, सम्मुख ।
 सामने = व० १३ । वा० कु०, १६ ४८ ।
 [क्रि० वि०] (हि०) का० १८३, २८३ । म० ११ ।
 सम्मुख ।
 सामूहिक = का०, २०१ ।
 [वि०] (सं०) समूह से संबध रखनेवाला ।
 सामूह्य = चि०, ५३ ५६, ६१ ६६ ।
 [अभ्य०] (प्र० भा०) सामने, सम्मुख ।
 साम्राज्य = का० कु०, १०६ । चि० ४८ । ल०,
 [सं० पु०] (सं०) ७६ ।
 आधिपत्य । वह बड़ा राज्य जिसके प्रधान
 अपने छोटे छोटे राज्य हो । राज्य
 और उपनिवेश ।
 साम्राज्यस्थापन = वा० कु०, ११२ ।
 [सं० शी०] (सं०) विशाल राज्य की स्थापना । साम्राज्य
 का नींव ।
 सायक = चि० ४१ ।
 [सं० पु०] (सं०) बाल तीर । खड्ग । एव वण वृत्त ।
 सार = वा० १५७ १६८, १७७ २५१ ।
 [सं० पु०] (सं०) म०, ४२ ।
 तब टापय, निष्कप । शक्ति, बल ।
 उत्तम, प्रेष्ठ । इत ।

सारथि = चि०, ४८, १७७ ।
[म० पुं०] (ब्र० भा०) रथ हाकीनालाग, मूत ,स्यदन चालक । समुद्र, सागर ।

सारथी = का० कु०, ८, ११४, ११५ । चि०,
[स० पुं०] (सं०) ध्वज ।
दे० 'सारथि' रथ का चालक ।

सारथे = वा० कु०, ७२, ७३ ।

[स० पुं०] (सं०) सारथी का सवोगन ।

सारथ्य = वा० कु०, १११ ।

[सं० पुं०] (सं०) सरलता, स धापन, सहजता ।

सारस = चि०, ८३, ६८ ।

[मं० पुं०] (सं०) चंद्रमा । एक प्रकार का बड़ा पक्षी ।
हंस । कमल । झील का जल ।

सारस्वत = जा०, १६६, १६७ २०१, २०१,
[वि०] (सं०) २८३ ।

विद्वानो का । सरस्वती का । सारस्वत प्रदेश का ।

[स० पुं०] सरस्वती नदी पर स्थित पंजाब का एक प्रदेश ।

सारस्वतप्रदेश = वा०, १६०, १६८ ।

[म० पुं०] (सं०) सरस्वती का प्रदेश । सारस्वत प्रदेश ।

सारा = श्रा०, ६१ । का० कु०, ३१ । वा०,

[वि०] (हिं०) ३७, ६४, १२१, १६६ । का०, १६ ।
ल० ५० ।

समस्त मनुष्य, सन ।

सारिका = का०, १६ ।

[सं० स्त्री०] (सं०) मना, एक पक्षी ।

सारी = का०, १४, १ । का० कु०, १२ । वा०,
[वि०] (हिं०) ६६, १६१ । का०, ७६ ।

दे० 'सारा' ।

सारे = का०, १४ वा० कु०, ८ ५७ ५६ ।

[वि०] (हिं०) का०, २२४ । चि० १७८ । का०, ५१ ।
दे० 'सारा' ।

साथक = का० कु०, ३५ ।

[वि०] (सं०) उचित । सफल । उपकारी, गुणकारी ।
ग्रथ सहित ।

सावजनिक = का०, १३ ।

[वि०] (मं०) सबसाधारण समर्पित । सभी स
संबन्धित ।

सालवे = चि०, १३२ ।

[वि०] (सं०) शालव सहित ।

सालती = वा०, २१३, २६८ ।

[क्रि०] (हिं०) चुमती । कसकती । छेद करता ।

सालुवापति सालुवाधिपत = म०, ६, १२, १ ।

[सं० पुं०] (सं०) सालुव प्रदेश के राजा ।

साले = चि०, १३२ ।

[स० पुं०] (हिं०) साल का वृक्ष ।

सावधान = वा०, १६५ । चि०, १०६ ।

[वि०] (मं०) सचेत । सतक ।

सावन = ल०, ८२ ।

[म० पुं०] (हिं०) श्रावण । अमावस के बाद का महीना ।
यजमान । वरुण ।

सावन धन सधन = ल०, २७ ।

[सं० पुं०] (हिं०) भावन व धने बदल ।

साहस = श्रा०, ३८, १ । का०, २७ । का० कु०,

[सं० पुं०] (सं०) ८१ । का०, १६४, २०१, २३६,
२४७, २४६ । चि०, ४१, १८४ ।
ल०, ६६ ।

मानसिक दृढता जा किसी बड़ कार्य
करने की ओर प्रवृत्ति करता है ।

हिंसन ।

साहसिक = वा०, २०० ।

[वि०] (सं०) निर्भीक । पराक्रमी । डक्कू । हठ ला ।

सिचकर = श्रा०, ७१ ।

[सुब० क्रि०] (म० भा०) पाना पाकर । भोग जान पर ।

सिचत = चि० ५७ ।

[सं० पुं०] (हिं०) जल छिड़कना । साचना, ।

सिचन हंतु = का०, कु० १३ ।

[क्रि० वि०] (मं०) सीचने के लिये ।

सिचा = वा० कु०, ६३ ।

[क्रि०] (म० भा०) साचना क्रिया का भूतकालिक रूप ।

सिचाव = का०, ५६ ।

[सं० स्त्री०] (हिं०) सिचाई । पालवन क लिए पीया मे
पाना देना ।

सिचित = वा०, २६३, २६१ । चि०, २७८ । प्रे०

[वि०] (सं०) २२ । म०, २४ ।

सिचा हुआ । भागा हुआ । तर ।

सौख्यती = ल०, ५६ ।
 [कि०] (हि०) काम करने का ढग जानने का प्रयत्न कथता ।

सौखना = का०, ६३ १६६ । चि०, १७२ ।
 [कि०] (हि०) जानना । नान प्राप्त करना । काम करने का ढग जानना ।

सौव = चि०, १३६ ।
 [स० स्त्री०] (ब्र० भा०) सीमा ।
 सीडी = का०, ११० ।
 [स० स्त्री०] (हि०) ऊँचे स्थान पर बढने का वह साधन जिसमें एक के बाद एक पर रखने का स्थान बना हो । नितेनी । सीपान ।

सीत = चि०, १४१ ।
 [स० पु०] (ब्र० भा०) शीत, सर्दी ।
 सीतल = चि०, १७३ ।
 [वि०] (ब्र० भा०) ठंडा शीतल ।
 सीना = का० कु १०१ ।
 [स० स्त्री०] (स०) मयाणा पुष्टपोतम आ रामच द्रवी का धर्म पत्नी । जोनी हुई भूमि ।

सीधी = ग्रां० २२ । का०, १४० ।
 [वि०] (हि०) जो टेढ़ा न हो, सरल । जो अपने लक्ष्य का आर हा । भ ला, शा त । मुशीला ।

सीप = का० कु ७३ । ल०, ३४ ।
 [स० पु०] (स०) सीपा, समुद्री साप का सफे चमकीला आवरण । एक जलजंतु विशेष ।

सीपी = ग्रां० २३, ७२ । का० २२३ । चि० १८१ ।
 [वि०] (हि०) सीप ।

सीम = ऋ० २२ ।
 [अव्य०] (हि०) समान । सुष्य ।

सीमा = का०, १३१ १३४, १३६, १६५, २०५
 [स० स्त्री०] (स०) २१०, २३८ । चि०, ५३, प्रे०, ७, १६ १७ ।

ह, मरह । वह प्रतिम स्थान जहाँ तक कोई काम हा सखा हा या होना उचित हो ।

सीमामयी = ल० ७० ।
 [वि०] (स०) गामा सं मुक्त या पिरा हुआ । वह बिनका आदि अत मासुम हो ।

सीमायें = वा०, २३६ ।
 [स० स्त्री०] (स०) सीमा का बहुवचन ।
 सीमाविहीन = ल०, ३ ।

[वि०] (स०) सीमा रहित, प्रसीम, अनत ।
 सीमित = का०, १३३ ।
 [वि०] (स०) वह जो सामा के अंदर हो या जिसकी सीमा हो ।

सीरी = चि०, १८० ।
 [वि०] (हि०) शरीतल ।
 सीवन = ल०, ११ ।
 [स० पु०] (स०) सीने का काम । सिलाई का टाँका, दरार, सधि ।

सीस = का० कु०, ५ । चि०, १६० ।
 [स० स्त्री०] (ब्र० भा०) सिर, शीश ।
 सीसी = चि०, २३ ।

[स० स्त्री०] (हि०) सीतार सूचक शब्द । सी सी ।
 सु = चि०, १३६ १४०, १४५, १५६ ।
 [अव्य०] (हि०) सुदरता या श्रेष्ठता का बोधक । उत्सव ।

सुदर = ग्रां० २० । का०, ८ । का०, कु०, १६ ।
 [वि०] (स०) ३०, ३४ ३६, ३८, ३९, ४१, ४२, ४३ । ५१, ५६ । का० ३०, ४५ ५७, १०६ १२०, १४८ २६२, २६३, २६४ । चि०, १४, २१ ५६, १६० ।
 ऋ०, २२, २८ । प्र० २ ।
 शोभाशाला, छविमान ।

सुदरी = का० कु० ३०, ३१, ६७ । ऋ० २६ ।
 [स० स्त्री०] (स०) सुदर नारा, ललना ।
 सुअग सो = चि०, ७० ।

[वि०] (ब्र० भा०) अन्धे अग के समान ।
 सुअनोखिये = चि०, २४ ।
 [वि०] (ब्र० भा०) विचित्र, घनाला, विवक्ष्ण ।

सुअन = चि०, १३६ ।
 [स० पु०] (स०) अन्धा अन्न, वह अन्न जो सत् कर्म म प्रयाग किया जाय ।

सुनद्यु = चि०, १६४ ।
 [अव्य०] (ब्र० भा०) बुद्ध चिचित् ।
 सुवम = म० ११ ।
 [स० पु०] (स०) अन्धा कर्म, सत्कर्म ।

सुकलोल = चि०, २३ ।

[सं० पु०] (स०) श्रामोद प्रमोद, क्रीडा ।

सु वहत = चि०, ५१ ।

[सं० पु०] (ब्र० भा०) अचञ्चल कहता है । अचञ्छी बात ।
बोलना है ।

सुकीर्ति = चि०, ४८, ६६ ।

[सं० क्री०] (स०) अचञ्छी कीर्ति, सुप्रशंसा ।

सुकुमार = श्रां, ७१ । का०, ४६, ४७, ६० । चि०

[वि०] (सं०) ४७, ५६, ७४, १७३ । म०, १३ ।
ल०, २३ ।

सुकुमारता = का०, ६३, ६४ ।

[सं० क्री०] (सं०) सुधीमलता ।

सुकुमारि = का०, १२५ । चि०, २४ ।

[वि०] (ब्र० भा०) दे० 'सुकुमारी' ।

सुकुमारी = चि०, ५८, १६० । म०, २२ ।

[वि०] (सं०) सुकीमलांगी । सुदर कीमल अगो वाली ।

सुकुमारीन्सी = का० कु०, ३४ ।

[वि०] (हिं०) कीमलांगी के समान ।

सुकुसुमित = चि०, १५ ।

[वि०] (सं०) अचञ्छी तरह पुना हुआ । विकसित ।
सुदर फूलों से युक्त ।

सुकृत फल = का० कु०, १०१ ।

[सं० पु०] (सं०) उत्तम कर्मों का फल, पुण्य ।

सुनेतु = म०, ८ ।

[सं० पु०] (सं०) सुदर पताका ।

सुनवि = श्रा०, ८ ।

[सं० पु०] (सं०) अचञ्छे बवि ।

सुवेश = चि०, ६ ।

[सं० पु०] (सं०) सुदर वेश या बाल ।

सुकौन = चि०, १६६ ।

[सव०] (हिं०) वह कौन ।

सुख = श्रा०, ११, १२, १३, २७, ४०, ४५,

[सं० पु०] (सं०) ४६, ५०, ५३, ५५, ५७, ७४, ७५,
७६, ७६ । का०, १०, १३, ३० । का०
कु०, ७, २२, १८, ३३, ५१, ६३,
६६, ७५, ६७ । का०, ६, ७, ८, १६,
२८, ३०, ३२, ३५, ४०, ५३, ५४,

८४, ८७, ६०, ६६, ११०, ११२

११५, ११७, ११६, १२५, १२६,

१२६, १३०, १३१, १३३, १३५,

१३६, १४७, १४८, १५४, १५८,

१७६, २१०, २२१, २२८, २३७,

२६६, २६६, २८१, २८२, २८३,

२८८, २८६, २९१, २९३ । जि०, १,

३, ५, १४, १५, २१, २२, २३, ३२,

३३, ३५, ४६, ६६, ५०, ५१, ५३,

५८, ६१, ६२, ६३, ६४, ७१, ६४,

१४३, १४८, १५०, १५४, १७७,

१८१, १८५ । म०, ३३, ३६, ४६,

८१, ८८ । प्र०, २, १०, १४, २३ ।

ल०, २५, ४५, ४७, ४८, ७८ ।

वह अनुकूल और प्रिय अनुभव जिसके

सदा हानि रहने की कामना हो ।

सुख की सीमा नहीं—विशास्य का गीत, प्रसाद

संगीत में पृष्ठ २८ पर सक्लित । चन्द्रलेखा

का कथन है सुख असीम है और इसकी

नित्य नूतन रचना होनी है । मनुष्य की

जितनी आवश्यकता बढ़ जाती है उतने

हो इस के नये नये रूप बदलत जाते हैं ।

वास्तव में सच्चा सुख तो सतोष है जो

इम ममार में मिलता है और ऐसे

मानस में शाल सराज की भाँति खिलता

है जो पूरा काम हो, अर्थात् जो कामना

रहित हो ।

सुख आकर = चि०, ७१ । ल० ३६ ।

[वि०] (सं०) सुख का समूह । मुख का घर ।

सुखकारी = श्रां० ५४ । का० कु०, ४७, ४८,

[सं० पु०] (हिं०) ६६ । प्र० १४ ।

सुख उपनय करनेवाला ।

सुखद = का०, १३ । का० कु०, १४, १०४ ।

[वि०] (सं०) का०, २५, १८२, २३६, १४१, २४२,

चि०, ११, ३६, ५८, ५९, ६६, ७०,

७४, १०१, १४८, १५०, १५४, १७१,

म०, ८८ । प्र०, १, १६ ।

सुख देनेवाला, सुपनाई ।

मुख-साज = चि०, ५४, १७०, १८६ ।
 [सं० पुं०] (हि०) मुख की मामग्री ।
 मुख साधन = का, १६०, १७१, १६२, १७२,
 [सं० पुं०] (सं०) १८२, १८४ १६१, १६८ ।
 मुख का साधन या उपाय । मुर्तन का
 चोतक ।
 मुख-सानो = चि०, १६० ।
 [वि०] (श्र० भा०) मुख म सनी हुई, मुखमय ।
 मुख-सीमा = वा०, १३६ ।
 [सं० स्त्री०] (सं०) मुख की मामा या सीमान मुख,
 अस्थायी आनन्द, सामारिक मुख का
 सूचक शब्द ।
 मुखलाकर = ऋ०, ५१ ।
 [क्रि०] (हि०) 'मुखाना' क्रिया का प्रथम कालिक रूप ।
 मुख सूत्र = का० कु०, ३१ ।
 [सं० पुं०] (सं०) मुख प्राप्त करने का सूत्र, वारण या
 उपाय, मुख का आहार । मुख रूनी
 ढोरा ।
 मुख से = प्र० १२ ।
 [वि०] (हि०) मुखपूर्वक ।
 मुख सो = चि०, ७५, १०६ ।
 [वि०] (श्र० भा०) मुखपूर्वक ।
 मुख सौरभ-स्तरग = वा० १५३ ।
 [सं० पुं०] (सं०) मुख रूपी मोरम की लहर । आनन्दमय
 जीवन ।
 मुख-स्वप्न = वा०, २६, ३७ १७० ।
 [सं० पुं०] (सं०) आनन्दमय स्वप्न, मुख का सपना ।
 मुखार्ई = चि०, १८१ ।
 [क्रि०] (श्र० भा०) मुखान्तर (प्रवकालिक क्रिया) ।
 मुखाय = चि०, ३४ ।
 [क्रि०] (श्र० भा०) मुखान्तर । (प्रवकालिक क्रिया) ।
 मुखी = का०, २६ । का० कु०, ६६ । वा०, १३२,
 [वि०] (हि०) १३५ १५४, १५७, १७६ १६३,
 २२८ । चि०, १८२ । प्र०, २३ ।
 वह जिसे मुग या आनन्द प्राप्त हो ।
 मुखो = श्रि०, ४८ । का० कु०, २३ । वा०,
 [सं० पुं०] (हि०) १३६, १४८ ।
 मुख का गुरुवचन रूप ।

मुख्याति = चि०, ४८, ६७ ।
 [सं० स्त्री०] (सं०) सुप्रसिद्धि ।
 मुगध = का० कु०, ११६ । का०, १६२ । चि०,
 [सं० स्त्री०] (सं०) ३८, ५६, १३६, १४३, १६५, १६६,
 १८० । म०, १९ । ल०, ६०, ७६ ।
 सुदर गध, वह गध जो आनन्द देनी हो ।
 मुगधित = वा० कु०, ३७ । म०, ३ ।
 [वि०] (सं०) मुगध से पूरा, जिमम मुगध हो ।
 मुगाठिहि वीघो = चि०, ७४ ।
 [क्रि०] (श्र० भा०) गंठ की अच्छी तरह बाध ली ।
 भलोभाति चेत ली ।
 मुगारव = वा०, ६ ।
 [सं० पुं०] (सं०) अच्छा प्रतियोग ।
 मुगड = चि०, १६२ ।
 [वि०] (श्र० भा०) सुदर, मामाशाली ।
 मुघर = का० कु०, १३ । चि०, ७०, १००,
 [वि०] (हि०) १४७, १५८ ।
 दे० 'मुघड' ।
 मुघरार्ई = वा०, १०५ । ऋ०, १६ । ल०, ४३ ।
 [सं० स्त्री०] (हि०) सुदरता, मुघरता ।
 मुघार = चि०, २३ ।
 [वि०] (सं०) अच्छी तरह, सुदर ढग से ।
 मुचि = चि०, २४, ४७, ५५, ६०, ७०,
 [सं० स्त्री०] (श्र० भा०) १४१ ।
 पवित्र, निमल ।
 मुचिर्चिद-वर्देने = चि०, ६१ ।
 [सं० पुं०] (श्र० भा०) निमल चद्रमा के समान मुख ।
 मुचित्त = चि०, ११ ।
 [सं० पुं०] (सं०) मु यवस्थित चित्त या मन । चित्ता-
 रहित मन । वह चित्त या मन जिसम
 विकार न हो ।
 मुचिरेण = चि०, १३३ ।
 [अ य०] (सं०) यद्वत काल तक ।
 मुचूर = चि०, २३ ।
 [ग० पुं०] (श्र० भा०) सुदर नूला ।
 मुखेली = चि० ६५ ।
 [सं० स्त्री०] (श्र० भा०) सुदर शिष्या या सुदर दासी ।

सद्यप्रथम प्रकाशित हुई थी ।]

सुधाकर = चि०, २८ ७१। ऋ०, ३८।

[सं० पु०] (सं०) चंद्रमा ।

सुधारि = चि०, ११०।

[ऋ० सं०] (श्र० भा०) 'सुधारना' त्रिधा का पूवक, लिक रूप । सुधार कर ।

सुधाधारन = चि०, १७७।

[सं० स्त्री०] (श्र० भा०) मुधा को धाराए । अमृत की धाराए ।

सुधावण = वा० कु० ४२।

[सं० पु०] (सं०) सुधा ऋ द्विदु । अमृतकरण ।

सुधावलश = वा० कु०, ५६।

[सं० पु०] (सं०) अमृत घट ।

सुधा भरी सी = चि०, १७०।

[वि०] (स) सुधा क भरने क समान ।

सुधा नीर = का० कु०, ३।

[सं० पु०] (सं०) जलरूपा अमृत ।

सुधानिधि = प्र०, २२।

[सं० स्त्री०] (सं०) सुधा का सागर या सुधा का कोष । चरमा वा सूचक शब्द ।

सुधामदाकिनी = का० कु० ३१।

[सं० स्त्री०] (सं०) सुधा बरमानवाली धाकाशगमा । सुग्ग या अमृत रूपी गगा ।

सुधामय = का०, ८७ । वा० कु०, ७६ । का०,

[वि०] (सं०) १६१।

सुधा स युक्त या परिपूरण ।

सुधार = प्र०, १७ । चि०, ४२, १५६।

[सं० पु०] (सं०) सुधारने की क्रिया या भाव, सवार ।

सुधारत = चि०, ६०, १६१, १६६, २८७।

[ऋ०] (श्र० भा०) सुधार करता है, दोग दूर करता है । अथनी गलतियाँ दूर करता है ।

सुधारना = वा० कु० १००।

[ऋ०] (सं०) दोष या ब्रुटे दूर करना ।

सुधारस = चि०, १२८, १७५।

[सं० पु०] (सं०) अमृत रस ।

सुधारी = चि०, १०१, १०६।

[ऋ०] (हिं०) सुधार किया । परिवर्तन किया ।

सुधारे = चि०, ५०, १७६।

[ऋ०] (हिं०) सशोधन किये । ठीक किए ।

सुधासागर = प्र०, २५।

[सं० पु०] (सं०) सुग्ग का समुद्र ।

सुधासिचन = ऋ०, ६१।

[सं० पु०] (सं०) अमृत सिचन ।

सुधासिधु = का०, २०७।

[सं० पु०] (सं०) अमृत का समुद्र ।

सुधालोत = ऋ०, ४६।

[सं० पु०] (सं०) अमृत का सेता या प्रवाह ।

सुधि = चि०, ३५, १७२, १७४। प्र०, २।

[सं० स्त्री०] (सं०) यात्र, स्मरण । खबर लेना ।

सुधीरज = चि०, ३५।

[सं० १०] (हिं०) प्रज्ञान धय ।

सुन = वा० कु०, ६, ५६, १। का०, ६०, १७८

[पूव०ऋ०] (हिं०) २०१। चि०, १८७। प्र०, १३। ल०, ७१।

सुनकर । श्रवण करके ।

सुनकर = का० कु०, ४८।

[ऋ०] (हिं०) सुनना क्रिया वा पुनर्वाचिक रूप ।

सुनत = चि०, ५१, १७२।

[ऋ०] (श्र० भा०) सुनता है ।

सुनती = ल०, ६५।

[ऋ०] (हिं०) सुनती है ।

सुनती सी = का०, १४४।

[ऋ० वि०] (हिं०) सुनने के सदृश, श्रवण करना सी ।

सुनते सुनते = का० कु०, ७६। प्र०, १८।

[श्र व०] (हिं०) श्रवण बरत करते ।

सुनना = प्रॉ०, १३, १४, १५, ७८। ऋ०,

[ऋ०] (हिं०) ३१। का०, १०, ५७, ७०, ८५, ६६,

१४५, १७६, १७७, १८४, १६३,

२११, २३३, २४४, २४८, २७५,

२८१। चि०, ६०, ६६, १४१, १७६,

१८६, १८७। ऋ०, ७३। प्र०, ४,

१३, १०, १०। ल०, १०, ११।

काना स शब्द या कर्ण हुई बात का

ज्ञान प्राप्त करना। किसी बात या प्राथना पर ध्यान देना।

सुन पडना = म०, १।

[क्रि०] (हि०) सनाई पडना।

सुनते = का०, १५४।

[क्रि०] (हि०) सुनने की आज्ञा देना।

सुन लो = क०, ३१।

[क्रि०] (हि०) सुनने की आज्ञा देना।

सुनहला = ग्रा०, ५४। का०, २३ ३८, १६८

[वि०] (हि०) २२०, २७३। ऋ०, २८।

स्वयंभू, सोने के रंग का।

सुनहु = वि०, ५०।

[क्रि०] (प्र० भा०) सुनी।

सुना = का० कु० ४७।

[क्रि०] (दि०) 'सुनना क्रिया का भूतकालिक रूप।

सुनाजा रे = ल० २८, २६।

[क्रि०] (हि०) सुनाओ। सुना जाओ।

सुनाना = का० कु०, ७६। वा०, ३७, ४५, ७६

[क्रि०] (हि०) ८५ १२७, २६७, २७८। वि०, ११,

६०, ६१, १७८ १८६। ऋ०, ३५।

प्र० ८, ५, १३, २४। म०, ११ १२।

ल०, १२, १५ ४७, ७३, ७७।

काई बात किसी को सुनने के लिये

कहना।

सुनि = वि०, ४१ ४६, ५०, ५२ ६७, २७,

[क्रि०] (हि०) ७३, ६३, १४७, १४८।

सुनकर।

सुनिये = क०, २२। वि०, ५७, ७१।

[क्रि०] (हि०) सुनने के लिये निवेदन करना।

सुनि सकत = वि०, ५१।

[क्रि०] (प्र० भा०) सुन सकता है।

सुनिहित = का०, ८१, १२७।

[वि०] (हि०) भली भाँति समझा हुआ।

सुनि है = वि० ६४।

[क्रि०] (प्र० भा०) सुनिये।

सुनी = क०, २२। वि०, १८।

[क्रि०] (हि०) सुनना क्रिया का भूतकालिक रूप।

सुनीति = वि०, १५।

[क० पु०] (द०) शत्रु या मुदर नाति।

सुनील = वि० २३।

[वि०] (द०) त्रिपका वर्णों बरून नाता हा। उष्ण।

सुन = वि०, ३, ५। ल०, १३।

[क्रि०] (द०) सुनना क्रिया का भूतकालिक रूप।

सुनै = वि० ४७, ६१, १६७।

[क्रि०] (प्र० भा०) सुनना क्रिया का भूतकालिक रूप।

सुनो = क० १५। वा० कु०, ८१, ८२।

[क्रि०] (हि०) वा० १८६। वि० १८६, १८७।

सुनने के लिये आज्ञा देना।

सुपसिनी = वि० ६।

[स० ख०] (स०) सुन्दर वमसिनी। दे० 'पसिनी'।

सुपागति = वि० १५१।

[स०] (प्र० भा०) भला भाँति परिपक्व करती है। शत्रुता तरह पागता या पाक करता है।

सुपाठ = का०, कु०, ३६।

[क० पु०] (स०) सुदर सवक।

सुपाणिपल्लव = वा० कु०, १६।

[स० पु०] (स०) सुदर हाथ रूपा पल्लव।

सुपेक्षे = वि०, १०७।

[क्रि०] (प्र० भा०) भला भाँति देखे।

सुप्रभात = वा० कु०, १११। वि०, ४६। ऋ०,

[स० पु०] (स०) २१।

सुदर प्रभात। शत्रुता सुबह।

सुप्रसन्न = वि०, १५४।

[वि०] (स०) शत्रुता प्रसन्न।

सुप्रमत्त = वा० कु०, ७८।

[स० पु०] (स०) प्रमत्तचित्त आनन्द। प्रम का आनन्द।

सुप्रागण = वा० कु० ६२।

[स० पु०] (स०) सुन्दर आगण।

सुप्त = का० ११ १३। का० ११७।

[वि०] (पु०) = साया हुआ। अक्रियशील। नीद्रा मग्न।

सुप्ति = ऋ०, ३५।

[स० खी०] (स०) साया। शयन।

सुफल = वि०, ३२।

[स० पु०] (स०) सुदर फल या परिणाम।

सुवरन = चि०, १७६।
 [म० पु०] (ब्र० भा०) स्वर्ण। सुदर रग।
 सुवरसत = चि०, २६।
 [क्रि०] (ब्र० भा०) मली भ्रंति बरसती है।
 सुवाजहि = चि०, ४७।
 [क्रि०] (ब्र० भा०) मधुर ध्वनि हाती है।
 सुवाल = चि०, २५ २४५।
 [म० पु०] (सं०) सुदर बालक।
 सुदीर = चि०, ४२।
 [सं०] (हिं०) सुदर, वीर।
 सुभग = चि०, २२, ५५, ६६।
 [वि०] (सं०) सुदर। ऐश्वर्य युक्त।
 सुभट = चि०, ५३।
 [वि०] (सं०) वार, माहसी, प्रचड वीर।
 सुभद्रा = वा० कु०, ११२।
 [सं०] (सं०) श्रीकृष्ण की वहन तथा अजुन का पत्नी का नाम। दुगा रा एव रूप। एव नदी।
 मुभाव = चि०, ४६, ५६ १७३।
 [सं० पु०] (ब्र० भा०) स्वभाव, प्रवृत्ति।
 सुभावति = चि०, १८०।
 [क्रि०] (ब्र० भा०) अच्छी लगना है।
 सुभीता = वा०, १६०।
 [म० पु०] (हिं०) सुगमता, सहूलियत।
 सुभ्रातृस्नेह = वा०, कु०, १०३।
 [सं० पु०] (सं०) भाई का सुदर एव पवित्र स्नेह।
 सुमगल-मूल = वा० कु०, ६३।
 [वि०] (सं०) सुख और कल्याण को जड। शुभमगल का उत्पादक।
 सुमति = चि०, ५०, १०७।
 [सं०] (सं०) सुबुद्धि। अच्छे विचार। अच्छी राय।
 सुमधुर = चि०, ६०।
 [वि०] (च) अत्यंत मधुर। मद।
 सुमत = आ०, १५, ४५, ७३। का०, कु०, ६३। का०, ५०, ५७, ६६, १३३, १८२, २६३, २६४। २८४, २८५, २६२, २६३। चि०, ४, १४, २४, २६, ५५, ६६, ७३, ६१, १४३, १५२,

१५३, १६७, १७३, १७६। ऋ०, २२, ३६, ५४, १ ल०, ३, ६३।
 गुण। सुदर मन। निश्चय भाव।

सुमन मरद = ल०, ७६।
 [म०, पु०] (सं०) गुणराग, गुणरज, गुणधून।
 सुमन रग = ल०, ४६।
 [सं० पु०] (सं०) पुण का रग।
 सुमन-सा = का०, १०१।
 [वि०] (हिं०) पुण के समान।
 सुमन-सुगभि = वा० कु०, १२४।
 [सं०] (सं०) पुण की सुगंध।
 सुमन-स्पश = वा० कु०, ६७।
 [वि०] (सं०) वा० कु० ६७।
 फन सा कोमल स्पश वाला।
 सुमनावली = चि० १५१।
 [म०] (सं०) पुण्या की पत्निया।
 सुमनो = वा०, १४६, २८५। ल०, १२, ४३।
 [सं० पु०] (सं०) पु पा, पुनो।
 सुमनोहर = चि० ७०, १४३।
 [वि०] (सं०) अति मनारप। मन की आनवित कर-
 वाला, अत्यंत सुदर।
 सुमल्ल = चि०, ५३।
 [सं० पु०] (सं०) सुदर पहलवान।
 सुमहोत्पल = चि०, १४६।
 [म० पु०] (सं०) सुदर महत्तर कमल।
 सुमुखि = चि०, २५।
 [सं०] (सं०) सुदर मुखवाली (सुदरी)।
 सुसूर = चि०, ४६।
 [सं०] (ब्र० भा०) सुदर मूल।
 सुमेहदी = चि०, १६८।
 [सं०] (हिं०) एक वास्पति जिसकी पत्निया पीस कर हाथ पर म लगाइ जाती हैं। स्त्रिया के मार का एव विशिष्ट उपकरण।
 सुमोद = चि०, १०३।
 [सं० पु०] (सं०) सुदर आनंद।
 सुयत-सा = का० कु०, ११६।
 [सं० पु०] (हिं०) सुदर वन के समान।
 सुयज्ञ = चि०, १४०।
 [सं०] (सं०) कल्याणकारी यज्ञ।

सुयशसता = ऋ०, २४।
 [सं० पु०] (सं०) सुरातिष्ठा ततिरा।
 सुयामिनी = चि०, ४८।
 [सं० ऋ०] (सं०) चाँना रात। मु दर रात।
 सुयुद्धभूमि = चि०, ६३।
 [सं० ऋ०] (हि०) मु दर मग्राय स्वयत्। रणत्वेत्।
 सुयोवन = वा० कु०, ११४।
 [सं० पु०] (सं०) दुर्योधन।
 [सुयोवन—'० दुर्योधन'।]
 सुरग = चि० ५६। ल०, ४६।
 [वि०] (सं०) सुर रग वाना। सु दर। रसपूज। सँज
 बाह्य भादि को छद्मयत् स जिजा
 शयवा गदार उद्याने क लिए उगके
 पाड़े खोदकर बनाया हुआ गहग मोर
 लवा गड्डा।
 सुरजित = चि०, १०१।
 [वि०] (सं०) सोप्यमय।
 सुर = का०, ३१। चि०, २६, १००। ऋ०,
 [सं० पु०] (सं०) ४५।
 देवता। स्वय म रहनेवाले प्राणा।
 सुरक्त = चि०, १००।
 [वि०] (सं०) मु दर रक्त। सू र लात्।
 सुरधनु = वा०, १०६ २५८।
 [सं० पु०] (सं०) इन्द्रधनुष।
 सुरधनु-सा = वा०, २३५।
 [वि० पु०] (हि०) इन्द्रधनुष क लमान।
 सुरनारि = चि० १४६।
 [सं० ऋ०] (सं०) देवतामा की स्त्रियाँ।
 सुरनारी = चि०, ५६।
 [सं० ऋ०] (सं०) देवतामा की स्त्रियाँ।
 सुरवालाग्री = वा०, ८, ७४।
 [सं० ऋ०] (सं०) देवतामा का तक्षुण्ण।
 सुरवालाय = का०, १।
 [सं० ऋ०] (सं०) देवतामा का तक्षुण्ण।
 सुरभि = का० ६३, ८६, १५३। चि०, २२,
 [सं० ऋ०] (सं०) ३६। ऋ० ४६, म०, १६। सुगधि।
 सुरभी, गाय।
 सुरभिचूष = का०, १७६।
 [सं० पु०] (सं०) सुगधित घृति।

सुरभित = वा०, कु०, ५१, ७२। वा०, ८, १०,
 [वि०] (सं०) १३, ६७, १८२, २२१। चि०, २४,
 ५५, १४८।
 सुर्गम स सना हुआ। सुर्गमित, सुर्गम-
 मय। मरुका हुआ।
 सुर्गमिपूज = वा० कु०, ३४, ६७। प्रे०, २।
 [वि०] (सं०) सुर्गम स भरा हुआ। सुर्गम पूज।
 सुरभिमय = वा०, ६२। वा०, ११।
 [वि०] (हि०) सुर्गम स भरा हुआ।
 सुरभि-सचय-नाश-ना = वा० कु०, ६७।
 [वि०] (हि०) सुर्गम मचित करनेवाले रात्राने क
 मरुका। पराग काग के ममान।
 सुरभी-महि = वा० कु० ६०।
 [वि०] (सं०) सुर्गमयुक्त।
 सुरभी = वा० कु०, ५२। चि०, १०३।
 [सं० ऋ०] (हि०) गाय। सुर्गम।
 सुरस्य = चि०, १३६। ल०, ७०।
 [वि०] (सं०) सु दर, रमणीय।
 सुर-वग = वा०, १६१।
 [वि०] (सं०) देवतामा वा सन्तुह।
 सुरस = वा० कु०, ७३। चि० १५५।
 [सं० पु०] (सं०) सु दर रात।
 सुरसरि = चि० ७१।
 [सं० ऋ०] (सं०) गगा।
 सुरमग्नि-नीर = चि० ६६।
 [सं० पु०] (सं०) गगा का तट।
 सुरसरी = चि०, ७३। ऋ०, ३४, ७६।
 [सं० ऋ०] (सं० भा०) गगा।
 सुरसरि हू को मद प्रवाह = चि०, ६६।
 [सं० पु०] (सं० भा०) गगा वा भा धामा बहाव या मद
 प्रवाह।
 सुरमुदरी-वृद = का० कु० १०४।
 [वि०] (सं०) देवतामाँ को स्त्रिया का मन्तुह।
 सुर-रमशान = का० ३।
 [सं० पु०] (सं०) देवतामा का मरुका।
 सुरा = वा०, ११।
 [सं० ऋ०] (सं०) शराव। मदिरा।
 सुराका = चि०, १४०।
 [सं० ऋ०] (सं०) चाँदना युक्त रात। सु दर राति।

सुराग = वा०, १६८ ।
 [स०पु] [सं०] सुदर राग ।
 सुराजत = वि०, २२ ।
 [वि०] (ब्र०भा०) शोभित ।
 सुराज्य = वि०, ३३, ४५, ४८ ।
 [सं०पु०] (स०) सुदर राज्य ।
 सुरीति = का० कु०, ११३ ।
 [सं०जी०] (सं०) मुबार रीति, अच्छा व्यवहार ।
 सुरचि = का०, ८३ । वि०, ५५, ५६ ।
 [सं०जी०] अच्छी इच्छा, उत्तम चर्चि ।
 सुरचिपूर्ण = वा०, १४६ ।
 [वि०] (स०) सुरचि से युक्त ।
 सुरूप = वि०, २२ ।
 [सं०पु०] (सं०) वह रूप जो क्षण प्रतिक्षण नवीनता
 अनुभव कराये, सुदर स्वरूप ।
 सुलखात = वि०, १५१ ।
 [क्रि०] (ब्र०भा०) भली भाँति दिखाई देता है ।
 सुलखि = वि०, १६४ ।
 [पू०क्रि०] (ब्र०भा०) भली भाँति दखकर ।
 सुलच्छ = वि०, ४१ ।
 [सं०पु०] (ब्र०भा०) सुदर उद्देश्य ।
 सुलभना = का०, ४५, ४६, ६६, ७४, ७७, १७७ ।
 [क्रि०] (हि०) उलभना का विपरीतार्थक भाव । उल
 भन न रहना ।
 सुलभो = अ०, ६७ ।
 [वि०] (हि०) स्पष्ट, सुलभो हुई ।
 सुलतान = स० ६८ ६९, ७१, ७२, ७७ ।
 [सं०पु०] (अ०) दादशाह नवाब ।
 सुलभ = का०, ८६ । अ०, ५३ । स० १२ ।
 [वि०] (स०) जो सरलता से प्राप्त हो, सुगम ।
 सुललित = वि० ४५ ।
 [वि०] (स०) बहुत सुदर ।
 सुलागति = वि०, १५१ । प्रे०, १ ।
 [क्रि०] (ब्र०भा०) अर्थात् लगता है ।
 सुलोच = वि०, १४० ।
 [सं०पु०] (सं०) उत्तमोत्तम भाव, सुखमय सत्कार ।
 सुवदा = का० कु०, १२० ।
 [सं०पु०] (सं०) विशाल वक्षस्व ।

सुवर्ण-सा = स०, ३८ ।
 [वि०] (हि०) सुवर्ण के सदृश कातिमान ।
 सुवारिद-वृद = वा० कु०, ५३ ।
 [वि०] (सं०) सजल मेघवाला ।
 सुवासित = अ०, ७६ ।
 [वि०] (सं०) सुगन्धित ।
 सुविकास = वा० कु० ७२ ।
 [सं०पु०] (सं०) समुन्नति, भलीभाँति विकसित होने का
 भाव ।
 सुविचार = स०, १२ ।
 [सं०पु०] (सं०) उत्तम विचार ।
 सुविपची = वि० ४७ ।
 [सं०पु०] (सं०) सुदर एवं सुमधुर वादिनी, चीणा ।
 सुविभात = वि० १४२ ।
 [क्रि०] (ब्र०भा०) भना लगता है ।
 सुविरव = वि०, १३६ ।
 [सं०पु०] (सं०) सुखमय विश्व ।
 सुविस्तृत = स०, १६ ।
 [वि०] (सं०) विशाल, हर घोर कला हुमा ।
 सुव्याप्त = वि०, १३६ ।
 [वि०] (सं०) भलीभाँति प्रसारित ।
 सुव्रना = स० २२, २६, ३० ।
 [सं०जी०] (सं०) कठिन व्रत का पालन करनेवाली ।
 सुशस्त्र = वि०, ४२ ।
 [सं०पु०] (सं०) तीखी धारवाले शस्त्र ।
 सुशीतलकारी = अ०, ३० ।
 [वि०] (सं०) सुख शांति प्रदान करीयाला ।
 सुशील = स०, २३ ।
 [वि०] (सं०) शीतरान ।
 सुशोभित = वा०, ४६ ।
 [वि०] (सं०) यथा भाँति शोभा प्राप्त ।
 सुपमा = वा०, २ । का० कु०, ३६, ५१, ६७ ।
 [सं०जी०] (सं०) वा०, ६६ ८३, ८७, ९२, १८८,
 २३५, २६३ । वि०, १६८ । अ०,
 ६५ । प्रे०, २५ ।
 सौंदर्य, शोभा, सुदरता ।

सेना = बि०, ४५, ६४, ६५। ६८।
 [सं० पु०] (हि०) फौज, सिपाहियों का समुदाय।
 सेनापति = बि०, ६३, ६५, ६७। म०, १४।
 [सं० पु०] (सं०) सेनानायक।
 सेवक = वा० कु०, ८७।
 [बि०] (सं०) सेवा करनेवाला। जिसमें सेवा का भाव हो।
 सेवत = बि०, ७१।
 [क्रि०] (ब्र० भा०) सेवा करता है।
 सेवा = क०, २१। का०, २८२, २८६। बि०
 [सं० स्त्री०] (हि०) ६४। म०, ६५। म०, २४।
 निष्काम परिचर्या।
 सेवाम् = बि०, १३४।
 [सं० स्त्री०] (सं०) सेवा।
 सेस = बि०, ६।
 [बि०] (हि०) बाकी। बचा हुआ।
 [सं० पु०] (सं०) शेषनाम।
 सैनन = बि०, १७६।
 [सं० पु०] (ब्र० भा०) सक्नेती। इमारती।
 सैनप = बि०, ६, ६७, ६८। म०, ११,
 [सं० पु०] (ब्र० भा०) २१।
 सैनप, सैनपति।
 सैनहि = बि०, ४२।
 [सं० पु०] (ब्र० भा०) इशारे से।
 सेना = बि०, ६५।
 [सं० स्त्री०] (ब्र० भा०) दे० 'सेना'।
 सैनानी = बि०, ७१।
 [सं० पु०] (हि०) सेनापति।
 सैनिक = का० कु०, १०८। म०, १, २, ३,
 [सं० पु०] (सं०) ४, १२।
 सिपाही।
 सैन्य = का० कु०, ६६, ११४। बि०, ६३,
 [सं० पु०] (सं०) ६४, ७१। म०, ७, २४।
 दे० 'सैन्य'।
 सो = बि०, ६६, ६६, म० ७, १३६,
 [म०] (ब्र० भा०) १४२, १४५, १५१, १५२, १५५,
 १६६, १६७, १७३।
 से। समान, बुन्प।

सो = बि०, ५५, ५६, ७१।
 [म०] (ब्र० भा०) समान। बुन्प।
 सोई = का०, १६६, २४०। म०, १६।
 [सव०] (हि०) यही।
 [क्रि०] (हि०) शयन करना। सोया।
 सोऊ = बि०, १७२। म०, ३५।
 [मर्व०] (ब्र० भा०) वह भी। यही।
 सोरु = ल०, ४२।
 [सं० पु०] (सं०) शोच, दुःख।
 सोच = क०, १७। वा० कु०, ६८। ल० ४२।
 [सं० पु०] (हि०) शोच चिन्ता।
 [क्रि०] चिन्ता करो।
 सोचकर = वा०, ७७।
 [क्रि०] (हि०) विचार कर।
 सोचती = ल० ६७।
 [क्रि०] (ब्र० भा०) विचार करती है।
 सोचना = वा०, कु० ६४। वा०, ६४, ७०,
 [क्रि०] (हि०) १०६, १६०, १६७ १८३, १८५,
 १८६, २०७, २२८।
 विचार करना।
 सोच रही = का०, १४२।
 [क्रि०] (हि०) विचार कर रही।
 सोचें = बि०, १०६।
 [क्रि०] (ब्र० भा०) विचार करें।
 सोच्यो = बि०, १८४।
 [क्रि०] (ब्र० भा०) विचार किया।
 सोत = बि०, ६२।
 [सं० पु०] (ब्र० भा०) सोत सोता। भरना।
 [क्रि०] (हि०) शीद लेना, शयन करना।
 सोनयुही = म०, ५४।
 [सं० स्त्री०] (हि०) स्वर्ण युषिका। एक प्रकार का पीली
 बूही।
 सोना = म०, ३६, ५२, ५३, ६५। का० कु०,
 [सं० पु०] (हि०) १५ ५६, ६३ ८६ १४६, १५२,
 का०, २, ३, २४, ३७ ४०, ५५, ६६,
 ६७, ७०, १०६, १७२ १७६, १८६,
 २३३, २३५, २६२, २८४। बि०,
 १५, ४१। म०, ५४। म०, ५, १, म०,
 ११, ३१, ४५।
 पुण्यविशेष। स्वण।

सोने की सिकता = का०, १४२ ।

[स० स्त्री०] (सं०) सुनहले रजकण । सुव की किरणों से प्रतिभिषित मिरुना राशि ।

सोपान = का०, २०६ ।

[सं० पुं०] (सं०) मीठी ।

सोभा = चि०, ६१, ।

[स० स्त्री०] (हि०) शोभा । सौंदर्य ।

सोम = का०, २४, २५, ७८, १०६, ११६, ।

[सं० पुं०] (मं०) ११७ १२८, १३४, २८६ ।

चंद्रमा । अमृत ।

सोमपान = का०, ११६, १३४ ।

[सं० पुं०] (सं०) सोमरस पीनेवाला पात्र । चपक ।

सोमरस = का० कु०, ११४ ।

[सं० पुं०] (सं०) सोमलता का रस । एक प्रकार का मादक पेय जिसे वदिक युग में लोग पीते थे ।

सोमलता = का०, १०६, २७७ ।

[सं० स्त्री०] (सं०) एक प्राचीन लता जिसके रस का सेवन वदिक युग में लोग मादक रस के रूप में किया करते थे ।

सोमवाही = का०, २८६ ।

[वि०] (सं०) अमृत को वहन करनेवाली । सुधाभयी । सुवासिनी ।

सोया = का०, १६८, १७६, १८०, २३६ ।

[क्रि०] (हि०) ल०, ३१ ।

शयन किया, सो गया ।

[वि०] प्रसुप्त, निद्रित ।

सोया सदेश = का०, ११ ।

[सं० पुं०] (हि०) अन्वयन सदेश । छिया सदेश ।

सोयेगी = भा०, २७ ।

[क्रि०] (हि०) सोना का भविष्यत् क लिक रूप ।

सोहई = चि०, ४६ ।

[क्रि०] (प्र० भा०) शोभित हाता है ।

सोहत = चि०, ६ ६३, १५०, १५४, १६० ।

[वि०] (प्र० भा०) शोभित ।

सोहै = चि०, ११, ६६ ।

[क्रि०] (प्र० भा०) शोभित होता है ।

सौंदर्य = भा०, ३३, ६३ । का० कु०, ५०, ५१ ।

[सं० पुं०] (सं०) ७८, ६८ । का० १०२, १२५, १५१, ।

१८७, २२४ । चि०, १४० । अ०, ३५ ।

६६ । प्र०, १८, २४, २५ । ल०, ७६ ।

सुंदरता । वह शोभा जिसमें अद्भुत

आकर्षण हो ।

[सौंदर्य—सब प्रथम इंदु कला ३, किरण ४ म प्रका

शित और वानन पुष्पम म पृष्ठ ५० ५१

पर सकलित ७ पदा की कविता । आकाश

में नीले धन को देख कर किस भाशा में

बयो खड़े हुए ह ? चकोरो को उल्लास

बयो हुआ है और क्या यहाँ चंद्रमा क

पूरा विकाम है ? अमरो का पत्ति कमल

पात को दख कर क्या कारण है कि

गुजार कर रही है ? कंठी में खिल हुए

इन फूलों को देख कर हृदय क्या उन

पर माहित होता है ? वास्तव में यहाँ

सौंदर्य की शोभा है । इस का आभा से

लोहे का हृदय भी पिघल जाता है क्या

कि सुंदर चेहरा दख कर मन, हृदय

सभी कुछ रसमग्न हो जाते ह । इंदु क

देखकर जिस में सौंदर्य का केवल एक

विंदु है इसे हम प्रिय दशन मानने हैं

किन्तु पूरासौंदर्य को प्रभा ही सवत्र है

और सब म प्रियदशन है । मानवीय ह

या प्राकृत हा सभी सुपमा दिव्य शिल्प

के कला कौशल की प्रतीक हैं । इन

सौंदर्य को जी भर कर दलो और हृदय

म अकित कर लो । जब यह चित्र हृदय

म पूरा रूप से अपना स्थान बना लग

तो सत्य और सुंदर का स्वर

साक्षात्कार हो जायगा ।]

सौंदर्य जलधि = का० १६३ । चि०, १३६, २३६ ।

[मं० पुं०] (सं०) सौंदर्य सागर या अगाध सुंदरता ।

सौंदर्य-प्रेम निधि = प्र०, २६ ।

[सं० स्त्री०] (सं०) प्रतिशय सुंदर प्रेमी ।

सौंदर्यमयी = का०, ६६, १ अ०, ६० । प्र०, २४

[वि०] (सं०) ल०, ६६, ७६ ।

सुंदरी ।

सुयशन्ता = ऋ०, २४।
 [म० व०] (म०) सुरानिली लतिका।
 सुयामिनी = चि०, ४८।
 [म० श्लो०] (म०) चाँदना रात। सुदर रात।
 सुयुद्धभूमि = चि० ६३।
 [स० श्लो०] (हि०) सुदर मन्थन स्थल। रत्ननेत्र।
 सुयोधन = वा० कु०, ११४।
 [म० वृ०] (स०) दुर्षोदन।
 [सुयोधन—३० दुर्षिन'।]
 सुरग = वि० ५६। ल०, ४६।
 [वि०] (स०) सुर रत्न वाता। सुदर। रत्नपूय। सँय,
 वाक्चक्र शक्ति की सहायता से किला
 भयवा शान्तर उठाने के लिए उसके
 पीछे स्थापित बनाया हुआ महग गौर
 बरा गण्डा।
 सुरजित = वि० १०१।
 [वि०] (स०) शीतलमय।
 सुर = का० ३१। चि० २६, १००। ऋ०,
 [स० वृ०] (स०) ४२।
 देवता। स्वयं म रहनेवाले प्राणा।
 सुरक्त = चि०, १००।
 [वि०] (स०) सुदर रत्न। गूर लाल।
 सुरघनु = वा० १७६, २५८।
 [म० वृ०] (स०) इन्द्रियुव।
 सुरयतुन्ना = वा०, २३५।
 [वि० ५] (दि०) इन्द्रियुव रत्नमान।
 सुरनारि = चि० १५६।
 [म० श्लो०] (स०) देवतामा का द्विधा।
 सुरनारी = चि०, ५६।
 [म० श्लो०] (म०) देवतामा का द्विधा।
 सुरनातामा = वा०, ६, ७६।
 [स० श्लो०] (स०) देवतामा का तृणशो।
 सुरवाताय = वा०, १।
 [स० श्लो०] (स०) देवतामा का तृणशो।
 सुरभि = वा०, ६३, ८६, १२३। चि०, २२,
 [स० श्लो०] (म०) ३६। ऋ० ४६, म०, १६। सुगवि।
 सुरमा गाय।
 सुरभिपूजा = वा०, १७६।
 [स० वृ०] (स०) सुगवि धृति।

सुरभित = का०, कु०, ५१, ७२। वा०, ८, १०,
 [वि०] (म०) १३, ६७, १८२, २२१। चि०, २४,
 ५५, १५८।
 सुगव से बना हुआ। सुगवि, सुगव-
 मय। महकता हुआ।
 सुरभिपूजा = वा० कु०, ३४ ६७। प्र०, २।
 [वि०] (स०) सुगव से भरा हुआ। सुगव पूजा।
 सुरभिमय = आ० ६२। का०, ११।
 [वि०] (हि०) सुगव से भरा हुआ।
 सुरभि-सचयनोप-सा = का० कु०, ६७।
 [वि०] (दि०) सुगव सचिन करनेवाले सजाने के
 सहज। पराग काव के समान।
 सुरभी-सहित = का० कु०, ६०।
 [वि०] (स०) सुवायुक्त।
 सुरभी = का० कु०, ५२। चि०, १०३।
 [म० श्लो०] (हि०) गाय। सुगव।
 सुरभ्य = चि० १३६। ल०, ७२।
 [वि०] (स०) सुदर, रमणाय।
 सुर-वर्ग = वा०, १६१।
 [वि०] (स०) देवतामा का समूह।
 सुरस = वा० कु०, ७३। चि०, १५५।
 [म० वृ०] (स०) सुदर रस।
 सुरसरि = चि० ७१।
 [स० श्लो०] (स०) गंगा।
 सुरसरि-तीर = चि० ६६।
 [स० वृ०] (स०) गंगा का तट।
 सुरसरी = चि०, ७३। ऋ०, ३७, ७६।
 [स० श्लो०] (प्र० भा०) गंगा।
 सुरसरि हू वो मद प्रवाह = चि०, ६६।
 [स० वृ०] (प्र० भा०) गंगा का सा घामा बहाव या मद
 प्रवाह।
 सुरसुदरी-वृद्ध = वा० कु० १२७।
 [वि०] (स०) देवतामा की श्रिया का समूह।
 सुर रमणान = वा० ३।
 [म० वृ०] (म०) दरताय का मरण।
 सुरा = वा०, ११।
 [स० श्लो०] (स०) शराव। मन्त्रि।
 सुराना = चि०, १७०।
 [स० श्लो०] (म०) चाँदना पुत रात। सुदर राति।

सुराग = वा, १६८ ।

[सं०] [सं०] सुदर राग ।

सुराजत = चि०, २२ ।

[वि०] (ब्र०भा०) शांभित ।

सुराज्य = चि०, ३३, ४१, ४८ ।

[सं०पु०] (सं०) सुदर राज्य ।

सुरीति = वा० कु०, ११३ ।

[सं०जी०] (म०) सुचार रीति, अच्युता व्यवहार ।

सुरचि = वा०, ८३ । चि०, १५ ५६ ।

[सं०जी०] अच्युती इच्छा, उत्तम रुचि ।

सुरचिपूणै = का०, १४६ ।

[वि०] (सं०) सुरचि स युक्त ।

सुरूप = चि०, २२ ।

[सं०पु०] (सं०) वह रूप जो लक्षण प्रतिलक्षण नवीनता अनुभव कराये, सुदर स्वरूप ।

सुलखार्त = चि०, १५१ ।

[क्रि०] (ब्र०भा०) भली भांति दिखाई देता है ।

सुलखि = चि०, १६४ ।

[पु०क्रि०] (ब्र०भा०) भली भांति देखकर ।

सुलच्छ = चि०, ४१ ।

[सं०पु०] (ब्र०भा०) सुदर उद्भव ।

सुलक्षना = का०, ४५ ४६ ६६, ७४, ७७, १७७ ।

[क्रि०] (हि०) उलक्षना वा विपरीतार्थक भाव । उलक्षन न रहना ।

सुलक्षी = श्रौ०, ६७ ।

[वि०] (हि०) स्पष्ट, सुलक्षी हुई ।

सुलतान = ल० ६८ ६९, ७१ ७३, ७७ ।

[सं०पु०] (अ०) बादशाह, नाब ।

सुलभ = का०, ८६ । ऋ०, ५३ । ल०, १२ ।

[वि०] (सं०) जो सरलता से प्राप्त हो, सुगम ।

सुललित = चि०, ४१ ।

[वि०] (सं०) वहुत सुदर ।

सुलागति = चि०, १५१ । प्र०, १ ।

[क्रि०] (ब्र०भा०) अच्युती लगता है ।

सुलोक् = चि०, १४० ।

[सं०पु०] (सं०) उत्तमोत्तम लोच, सुलभय ससार ।

सुवण = का० कु०, १२० ।

[सं०पु०] (सं०) विशाल वस्तुस्थल ।

सुवणन्ता = ल०, ३८ ।

[वि०] (हि०) सुवण के सदृश कातिमान ।

सुवारिदचृद = वा० कु०, ५३ ।

[वि०] (सं०) सजल मेघमाला ।

सुवासित = ऋ०, ७६ ।

[वि०] (सं०) सुगन्धित ।

सुविकास = वा० कु०, ७२ ।

[सं०पु०] (सं०) समुप्राति, भलीभांति विकसित होने का भाव ।

सुविचार = ल०, १२ ।

[सं०पु०] (सं०) उत्तम विचार ।

सुविपची = चि०, ४७ ।

[सं०पु०] (सं०) सुदर एव सुमधुर वादिनी, वीणा ।

सुविभात = चि० १४२ ।

[क्रि०] (ब्र०भा०) भना लगता है ।

सुविश्व = चि०, १३६ ।

[सं०पु०] (सं०) सुखमय विश्व ।

सुविस्तृत = म०, १६ ।

[वि०] (सं०) विशाल, हृष्ट और फेला हुआ ।

सुव्यात = चि०, १३६ ।

[वि०] (सं०) भलीभांति प्रसारित ।

सुव्रता = क०, २२, १६ ३० ।

[सं०जी०] (सं०) बँटन व्रत का पालन करनेवाली ।

सुसख = चि०, ४२ ।

[सं०पु०] (सं०) सीखी धारवाले शख ।

सुशीतलकारी = ऋ० ३० ।

[वि०] (सं०) सुगुन शा त प्रदान करनेवाला ।

सुशील = क०, २१ ।

[वि०] (सं०) शीलवान ।

सुशीभित = क०, ४६ ।

[वि०] (सं०) भनी भांति शोभा प्राप्त ।

सुपमा = श्रौ० २ । का० कु०, २६ ५१, ६७ ।

[सं०जी०] (सं०) का०, ६६ ८१ ८७ ९२ १६८, २३५, २६३ । चि०, १६८ । ऋ०, ६५ । प्र०, २५ ।

सौंदर्य, शोभा, सुदरता ।

सुपुति = का०, २०५ ।
 [सं० स्त्री०] (सं०) सुनिद्रा ।

सुमगौ = वि०, १०७ ।
 [सं० पुं०] (ब्र० भा०) मनोहरकूल सग, स गम । सुखदायक सग ।

सुसवाद = वा०, १६७ ।
 [सं० पुं०] (सं०) मनोहार कथायनयन ।

सुसोहति = वि०, ५० ।
 [क्र०] (ब्र० भा०) सुशोभित होता है ।

सुस्वादु = का० पुं०, १०१, १०५ । वि०, १०१,
 [वि०] (सं०) १५५ ।
 स्वादिष्ट । रस । को तुम करनेवाला (मानन) ।

सुस्मित = धा०, ६५ ।
 [वि०] (सं०) प्रशंसित मुस्फुरा वटभरा ।

सुस्मित-सा = का०, १६८ ।
 [वि०] (हिं०) सुहाय्य गा । विशेष । स्निग्धता का भाव ।

सुहाग = वा०, ६७, १००, २१६ । वि०, २ ।
 [सं० पुं०] (सं०) भ०, २१ । ल० ११ ।
 सधवा या सोभाग्य ती रहने क दशा ।

सुहागिनी = धा० ६१ । का० १५६ ।
 [वि०] (सं०) सोभाग्यवता । सधवा ।

सुहात = का० पुं०, ५, ८५ । का०, २६० ।
 [क्रि०] (ब्र० भा०) प्रच्छा लगता है ।

सुहाती = वा० पुं०, ५, २ । प्रा०, ४० ।
 [क्रि०] (हिं०) प्रच्छा लगता है ।

सुहाया = भ०, ६९ ।
 [क्रि०] (ब्र० भा०) सुहा लगता । शोभित हुआ ।

सुहावत = वि० ५६ ।
 [क्रि०] (ब्र० भा०) प्रच्छा लगता । शोभित होता है ।

सुहावन = वि०, ११ ।
 [वि०] (ब्र० भा०) मत्पार ।

सुहावनी = वि० ५३ ।
 [वि०] (ब्र० भा०) मनोहारिणी ।

सुहावन = वि० ५१ ।
 [वि०] (ब्र० भा०) दे० सुहावना ।

सुहावे = वि०, १० ।

[क्रि०] (ब्र० भा०) प्रच्छा लगता । प्रच्छा लगता है, शोभित होता है ।

सुहास = वा०, २५० । भ०, ६५ ।
 [सं० पुं०] (ब्र० भा०) गिनचोर हगो ।

सुहिंदी = वि०, १६४ ।
 [सं० स्त्री०] (ब्र० भा०) गुदर हिन्दी । पवित्र शिष्ट ।

सुहिया = वि०, १४ ।
 [सं० पुं०] (ब्र० भा०) गरलहृदया, गरल हृदयवाली ।

सुहीते = वि०, ३० ।
 [सं० पुं०] (ब्र० भा०) सरल हृदय से ।

सुहृद = वा० पुं०, ३०, ८५ ।
 [वि०] (सं०) मित्र । गुदर हृदयवाला, हितपी ।

सुश्रा = वा०, १११ ।
 [सं० पुं०] (ब्र० भा०) सुग्गा ।

सुक्ति = का०, १४० ।
 [सं० स्त्री०] (ब्र० भा०) गानवद क उक्ति ।

सुक्षम = वि०, १५३ ।
 [वि०] (ब्र० भा०) सक्षिप्त, महीन, चाभीक, प्रति लघु ।

सुक्ष्म = वि०, १५३ ।
 [वि०] (सं०) > 'सूक्ष्म' ।

सूख = भ० ३१ ।
 [वि०] (सं०) 'सूख' का सूख रूप ।

सूखत = वि० १६३ ।
 [क्रि०] (ब्र० भा०) शुष्क होता है ।

सूखते = का० १३४ ।
 [वि०] (ब्र० भा०) शुष्क होत हुए ।

सूखना = भ०, ३१ । प्र० २ ।
 [क्रि०] (हिं०) शुष्क होना ।

सूखा = धा०, २८, ७८, ७६ । क० १६, १७ ।
 [वि०] (हिं०) वा० ५ ११० १३३, १६० १६४, २८१ । भ०, ६४ । ल०, ६, ३७, १०, ५२, ६७, ५६ ।
 शुष्क हुआ । तारत निन्दुर ।

सूखी सी = धा०, १६ ।
 [वि०] (हिं०) मुरकाई सा ।

सूखे से = क०, २७० ।
 [वि०] (हिं०) सूखे हुए से । शुष्क व समान ।

सूचक = का०, १७।
 [वि०] (सं०) सूचना देनेवाला।
 सूक्तना = का० कु०, ८।
 [त्रि०] (हिं०) दिनाई देना।
 सूक्ती = वि०, ५७।
 [क्रि०] (हिं०) दिखाई दी।
 सूत = वि०, १४१।
 [सं० पुं०] (सं०) सारथी। महर्षि वेदव्यास के पुत्र का नाम। धामा।
 सूत = का० कु०, ३३, ७५, ८६, १०६,
 [सं० पुं०] (सं०) १५८। ऋ०, १६।
 जनेऊ, यगोपवीत। धामा। कष्टभूषण।
 'गागर म सागर' जसा म त व्यक्त करने वाला स द।
 सूतदार = का०, २०६।
 [सं० पुं०] (सं०) नाट्यशाला का व्यवस्थापक। प्रमुख नट। एक मणमकर जाति।
 सूताधारिणी = का०, ५।
 [वि०] (सं०) नाट्यशाला की प्रमुख व्यवस्थापिका। नटी।
 सूघ = वि०, २६, ६१।
 [वि०] (व० भा०) सरल। साधा।
 सूधी = वि०, १६, ५८।
 [वि०] (व० भा०) सरल। सीधे, वजनारहित।
 सूघो = वि० ५६, ५६ ६३ ७४।
 [वि०] (व० भा०) निष्कण्ट। निश्च्युत।
 सूना = श्री० ६६। का०, ३, ६७ १४४,
 [वि०] (हिं०) १५१, १६०, २१६। ऋ०, ८२।
 प्र०, १४। ल०, ७४।
 एकाव। नीरवना का भाव। रिक्त।
 सूना सपना = का०, ३८।
 [सं० पुं०] (हिं०) मूला स्वप्न।
 सूनी = का० १७६।
 [वि०] (हिं०) रिक्त।
 सूनी सास = का० १७०।
 [सं० स्त्री०] (सं०) शिथिल।
 सूने = श्री० ४०, ५१, ७९। का०, ६२, १६०,
 [वि०] (हिं०) १७६, २०, ४० ३८, ४४, ५८।
 एकाव। शू. ५। रिजन।

सूनेपन = ल०, ६, ३६।
 [सं० पुं०] (हिं०) नीरवता।
 सूवा = का० कु० ११६, १२१।
 [सं० पुं०] (का०) प्रातः प्रदेश।
 सूवर = वि० १६४।
 [सं० पुं०] (सं०) मूय।
 [वि०] (हिं०) ष्या, दृष्टिहीन।
 सूय ताप = का० कु०, १४०।
 [सं० पुं०] (सं०) मूय की गरमी।
 सूर्यमल्ल = का० कु०, १०८, १०६।
 [सं० पुं०] (सं०) एक हिंदू योधा।
 सूयसे = का० कु०, ११३।
 [वि०] (हिं०) मूय के समान।
 सूर्य्य = वि०, ७२। प्र०, १४।
 [सं० पुं०] (सं०) मान दिवकर। दिवाकर।
 सूर्य्यकेतु = वि० ६६।
 [सं० पुं०] (हिं०) मूय की पताका।
 सूजन = का०, ८८, २२५, २५३, २६३। वि०,
 [सं० पुं०] (म०) १५६। ल०, १४, ६।
 सृष्टि या निर्माण करने की क्रिया।
 पालन। सर्जन।
 सृष्टि = का०, २५। का० कु०, ८७। का०, ५,
 [सं० स्त्री०] (सं०) ८, ६, १२, १७, १६ २३, ५६, ५८,
 ६६, ७०, ७१, ७३, ११६, १२२,
 १२३, १७०, १८२, १८५, १८६,
 १६०, १६१, २३६, २८८। ऋ०,
 ५७।
 ज म, उत्पत्ति। निर्माण, सजना।
 सृष्टि कुज = का०, १६१।
 [सं० स्त्री०] (सं०) सृष्टि रूपा कुज।
 सेज = का०, १३। का० कु०, ६३। का०, ८८,
 [सं० स्त्री०] (हिं०) १७५। वि०, ४६। ऋ०, ७०।
 प्र०, २।
 शय्या। आराम से सोने योग्य बिस्तर।
 सेतु = का०, १४७।
 [सं० पुं०] (सं०) पुत्र। दास।
 सेनप = का० कु०, ११६।
 [सं० पुं०] (सं०) सनापति।

सेना = चि०, ४५, ६४, ६५ । ६८ ।
 [सं पु०] (हि०) फौज, सिपाहियों का समुदाय ।
 सेनापति = चि०, ६३, ६५, ६७ । म०, १४ ।
 [सं पु०] (सं०) सेनानायक ।
 सेवक = का० पु०, ८७ ।
 [वि०] (सं०) सेवा करनेवाला । जिसमें सेवा का भाव हो ।
 सेवत = चि०, ७१ ।
 [क्रि०] (प्र० भा०) सेवा करता है ।
 सेवा = क०, २१ । का०, २८२, २८६ । चि० [सं० स्त्री०] (हि०) ६४ । ऋ०, ६५ । म०, २४ । निष्काम परिचर्या ।
 सेवाम् = चि०, १३४ ।
 [सं० स्त्री०] (सं०) सेवा ।
 सेस = चि०, ६ ।
 [वि०] (हि०) बाकी । बचा हुआ ।
 [सं० पु०] (सं०) शेषनाम ।
 सैनन = चि०, १७६ ।
 [सं० पु०] (प्र० भा०) सकेतो । इशारो ।
 सैनप = चि०, ६, ६७, ६८ । म०, ११, [सं० पु०] (प्र० भा०) २१ ।
 सैनय, सेनापति ।
 सैनहि = चि०, ४२ ।
 [सं० पु०] (प्र० भा०) इशारे से ।
 सैना = चि०, ६५ ।
 [सं० स्त्री०] (प्र० भा०) दे० 'सेना' ।
 सैनानी = चि०, ७१ ।
 [सं० पु०] (हि०) सेनापति ।
 सनिक = का० कु०, १०८ । म०, १, २, ३, [सं० पु०] (सं०) ५, १२ । सिपाही ।
 सैन्य = का० कु०, ६६, ११४ । चि०, ६३, [सं० पु०] (सं०) ६४ ७१ । म०, ७, २४ । दे० 'सना' ।
 सा = चि०, ६६, ६६ म० ७, १ १३६, [म०] (प्र० भा०) १४२, १४५, १४१, १४२, १४५, १६६, १६७, १७३ । से । समान, तुल्य ।

सो = चि०, ५५, ५६, ७१ ।
 [म०] (प्र० भा०) समान । तुल्य ।
 सोई = का०, १६६, २४० । ल०, १६ ।
 [सव०] (हि०) यही ।
 [क्रि०] (हि०) शपा करता । सोना ।
 सोऊ = चि०, १७२ । ल०, ३५ ।
 [सव०] (प्र० भा०) वह भी । यही ।
 सोन = ल०, ४२ ।
 [सं० पु०] (सं०) शोक, दुःख ।
 सोच = क० १७ । का० कु०, ६८ । ल० ४२ ।
 [सं० पु०] (हि०) शोक चिन्ता ।
 [क्रि०] चिन्ता करा ।
 सोचकर = का०, ७२ ।
 [क्रि०] (हि०) विचार कर ।
 सोचती = ल०, ६७ ।
 [क्रि०] (प्र० भा०) विचार करती है ।
 सोचना = का०, कु० ६४ । का०, ६४, ७०, [क्रि०] (हि०) १०६ १६७ १८३, १८५, १८६ २०७, २२८ । विचार करना ।
 सोच रही = का०, १४२ ।
 [क्रि०] (हि०) विचार कर रही ।
 सोचै = चि०, १०६ ।
 [क्रि०] (प्र० भा०) विचार कर ।
 सोच्यो = चि०, १८४ ।
 [क्रि०] (प्र० भा०) विचार किया ।
 सोत = चि०, ६२ ।
 [सं० पु०] (प्र० भा०) स्रोत सोता । भरता ।
 [क्रि०] (हि०) नींद लेना शयन करना ।
 सोनजुही = का०, ५४ ।
 [सं० स्त्री०] (हि०) स्वया मूर्धिका । एक प्रकार की पोलो जूहा ।
 सोना = का०, ३६, ५२, ५३, ६५ । का० कु०, [सं० पु०] (हि०) १५, ५६ ६३, ८६ १४६, १५२, का०, २, ३ २४, ३७, ४०, ५५, ६६, ६७, ७०, १०६, १७२, १७६, १८६, २३३, २३५, २६२, २८४ । चि० १५, ४१ । ऋ०, ५४ । प्र०, ५, । ल०, ११, ३१, ४५ । पु०पविशप । स्वण ।

सोने की मित्रता = का०, १४२ ।

[सं० ङी०] (सं०) मुनहूने रजकग । सूर्य को किरणों से प्रतिभसित सिरुना राशि ।

सोपान = का०, २०६ ।

[सं० पुं०] (सं०) मीठी ।

सोभा = चि०, ६१, १ ।

[सं० ङी०] (हिं०) शोभा । सौंदर्य ।

सोम = का०, २४, २५, ७८, १०६, ११६, ११७, १२८, १३४, २८६ ।

[सं० पुं०] (सं०) ११७, १२८, १३४, २८६ ।

चंद्रमा । अमृत ।

सोमपान = का०, ११६, १३४ ।

[सं० पुं०] (सं०) सोमरस पीनेवाला पान । चपक ।

सोमरस = का० कु०, ११४ ।

[सं० पुं०] (सं०) सोमलता का रस । एक प्रकार का मादक पेय जिसे वैदिक युग में लोग पीते थे ।

सोमलता = का०, १०६, २७७ ।

[सं० ङी०] (सं०) एक प्राचीन लता जिनके रस का सेवन वैदिक युग में लोग मादक रस के रूप में किया करते थे ।

सोमवाही = का०, २८६ ।

[वि०] (सं०) अमृत को बहाने करनेवाली । मुधामयी । मुयासित ।

सोया = का०, १६८, १७६, १८०, २३६ ।

[क्रि०] (हिं०) ल०, ३१ ।

ध्यान किया सा गया ।

[वि०] प्रसुप्त, निद्रित ।

सोया सदेश = का०, ११ ।

[सं० पुं०] (हिं०) अथक सदेश । छिपा सदेश ।

सोयगी = भा०, २७ ।

[क्रि०] (हिं०) सोना का भविष्यत् क लिक रूप ।

सोहई = चि०, ४६ ।

[क्रि०] (ब्र० भा०) शामिल होता है ।

सोहल = चि०, ६, ६३, १५०, १५४, १६० ।

[वि०] (ब्र० भा०) शामिल ।

सोहै = चि०, ११, ६६ ।

[क्रि०] (ब्र० भा०) शामिल होता है ।

सौंदर्य = भा०, ३३, ४३ । का० कु०, ५०, ५१, ५२, ५३, ५४, ५५, ५६, ५७, ५८, ५९, ६०, ६१, ६२, ६३, ६४, ६५, ६६, ६७, ६८, ६९, ७०, ७१, ७२, ७३, ७४, ७५, ७६, ७७, ७८, ७९, ८०, ८१, ८२, ८३, ८४, ८५, ८६, ८७, ८८, ८९, ९०, ९१, ९२, ९३, ९४, ९५, ९६, ९७, ९८, ९९, १००, १०१, १०२, १०३, १०४, १०५, १०६, १०७, १०८, १०९, ११०, १११, ११२, ११३, ११४, ११५, ११६, ११७, ११८, ११९, १२०, १२१, १२२, १२३, १२४, १२५, १२६, १२७, १२८, १२९, १३०, १३१, १३२, १३३, १३४, १३५, १३६, १३७, १३८, १३९, १४०, १४१, १४२, १४३, १४४, १४५, १४६, १४७, १४८, १४९, १५०, १५१, १५२, १५३, १५४, १५५, १५६, १५७, १५८, १५९, १६०, १६१, १६२, १६३, १६४, १६५, १६६, १६७, १६८, १६९, १७०, १७१, १७२, १७३, १७४, १७५, १७६, १७७, १७८, १७९, १८०, १८१, १८२, १८३, १८४, १८५, १८६, १८७, १८८, १८९, १९०, १९१, १९२, १९३, १९४, १९५, १९६, १९७, १९८, १९९, २००, २०१, २०२, २०३, २०४, २०५, २०६, २०७, २०८, २०९, २१०, २११, २१२, २१३, २१४, २१५, २१६, २१७, २१८, २१९, २२०, २२१, २२२, २२३, २२४, २२५, २२६, २२७, २२८, २२९, २३०, २३१, २३२, २३३, २३४, २३५, २३६, २३७, २३८, २३९, २४०, २४१, २४२, २४३, २४४, २४५, २४६, २४७, २४८, २४९, २५०, २५१, २५२, २५३, २५४, २५५, २५६, २५७, २५८, २५९, २६०, २६१, २६२, २६३, २६४, २६५, २६६, २६७, २६८, २६९, २७०, २७१, २७२, २७३, २७४, २७५, २७६, २७७, २७८, २७९, २८०, २८१, २८२, २८३, २८४, २८५, २८६, २८७, २८८, २८९, २९०, २९१, २९२, २९३, २९४, २९५, २९६, २९७, २९८, २९९, ३००, ३०१, ३०२, ३०३, ३०४, ३०५, ३०६, ३०७, ३०८, ३०९, ३१०, ३११, ३१२, ३१३, ३१४, ३१५, ३१६, ३१७, ३१८, ३१९, ३२०, ३२१, ३२२, ३२३, ३२४, ३२५, ३२६, ३२७, ३२८, ३२९, ३३०, ३३१, ३३२, ३३३, ३३४, ३३५, ३३६, ३३७, ३३८, ३३९, ३४०, ३४१, ३४२, ३४३, ३४४, ३४५, ३४६, ३४७, ३४८, ३४९, ३५०, ३५१, ३५२, ३५३, ३५४, ३५५, ३५६, ३५७, ३५८, ३५९, ३६०, ३६१, ३६२, ३६३, ३६४, ३६५, ३६६, ३६७, ३६८, ३६९, ३७०, ३७१, ३७२, ३७३, ३७४, ३७५, ३७६, ३७७, ३७८, ३७९, ३८०, ३८१, ३८२, ३८३, ३८४, ३८५, ३८६, ३८७, ३८८, ३८९, ३९०, ३९१, ३९२, ३९३, ३९४, ३९५, ३९६, ३९७, ३९८, ३९९, ४००, ४०१, ४०२, ४०३, ४०४, ४०५, ४०६, ४०७, ४०८, ४०९, ४१०, ४११, ४१२, ४१३, ४१४, ४१५, ४१६, ४१७, ४१८, ४१९, ४२०, ४२१, ४२२, ४२३, ४२४, ४२५, ४२६, ४२७, ४२८, ४२९, ४३०, ४३१, ४३२, ४३३, ४३४, ४३५, ४३६, ४३७, ४३८, ४३९, ४४०, ४४१, ४४२, ४४३, ४४४, ४४५, ४४६, ४४७, ४४८, ४४९, ४५०, ४५१, ४५२, ४५३, ४५४, ४५५, ४५६, ४५७, ४५८, ४५९, ४६०, ४६१, ४६२, ४६३, ४६४, ४६५, ४६६, ४६७, ४६८, ४६९, ४७०, ४७१, ४७२, ४७३, ४७४, ४७५, ४७६, ४७७, ४७८, ४७९, ४८०, ४८१, ४८२, ४८३, ४८४, ४८५, ४८६, ४८७, ४८८, ४८९, ४९०, ४९१, ४९२, ४९३, ४९४, ४९५, ४९६, ४९७, ४९८, ४९९, ५००, ५०१, ५०२, ५०३, ५०४, ५०५, ५०६, ५०७, ५०८, ५०९, ५१०, ५११, ५१२, ५१३, ५१४, ५१५, ५१६, ५१७, ५१८, ५१९, ५२०, ५२१, ५२२, ५२३, ५२४, ५२५, ५२६, ५२७, ५२८, ५२९, ५३०, ५३१, ५३२, ५३३, ५३४, ५३५, ५३६, ५३७, ५३८, ५३९, ५४०, ५४१, ५४२, ५४३, ५४४, ५४५, ५४६, ५४७, ५४८, ५४९, ५५०, ५५१, ५५२, ५५३, ५५४, ५५५, ५५६, ५५७, ५५८, ५५९, ५६०, ५६१, ५६२, ५६३, ५६४, ५६५, ५६६, ५६७, ५६८, ५६९, ५७०, ५७१, ५७२, ५७३, ५७४, ५७५, ५७६, ५७७, ५७८, ५७९, ५८०, ५८१, ५८२, ५८३, ५८४, ५८५, ५८६, ५८७, ५८८, ५८९, ५९०, ५९१, ५९२, ५९३, ५९४, ५९५, ५९६, ५९७, ५९८, ५९९, ६००, ६०१, ६०२, ६०३, ६०४, ६०५, ६०६, ६०७, ६०८, ६०९, ६१०, ६११, ६१२, ६१३, ६१४, ६१५, ६१६, ६१७, ६१८, ६१९, ६२०, ६२१, ६२२, ६२३, ६२४, ६२५, ६२६, ६२७, ६२८, ६२९, ६३०, ६३१, ६३२, ६३३, ६३४, ६३५, ६३६, ६३७, ६३८, ६३९, ६४०, ६४१, ६४२, ६४३, ६४४, ६४५, ६४६, ६४७, ६४८, ६४९, ६५०, ६५१, ६५२, ६५३, ६५४, ६५५, ६५६, ६५७, ६५८, ६५९, ६६०, ६६१, ६६२, ६६३, ६६४, ६६५, ६६६, ६६७, ६६८, ६६९, ६७०, ६७१, ६७२, ६७३, ६७४, ६७५, ६७६, ६७७, ६७८, ६७९, ६८०, ६८१, ६८२, ६८३, ६८४, ६८५, ६८६, ६८७, ६८८, ६८९, ६९०, ६९१, ६९२, ६९३, ६९४, ६९५, ६९६, ६९७, ६९८, ६९९, ७००, ७०१, ७०२, ७०३, ७०४, ७०५, ७०६, ७०७, ७०८, ७०९, ७१०, ७११, ७१२, ७१३, ७१४, ७१५, ७१६, ७१७, ७१८, ७१९, ७२०, ७२१, ७२२, ७२३, ७२४, ७२५, ७२६, ७२७, ७२८, ७२९, ७३०, ७३१, ७३२, ७३३, ७३४, ७३५, ७३६, ७३७, ७३८, ७३९, ७४०, ७४१, ७४२, ७४३, ७४४, ७४५, ७४६, ७४७, ७४८, ७४९, ७५०, ७५१, ७५२, ७५३, ७५४, ७५५, ७५६, ७५७, ७५८, ७५९, ७६०, ७६१, ७६२, ७६३, ७६४, ७६५, ७६६, ७६७, ७६८, ७६९, ७७०, ७७१, ७७२, ७७३, ७७४, ७७५, ७७६, ७७७, ७७८, ७७९, ७८०, ७८१, ७८२, ७८३, ७८४, ७८५, ७८६, ७८७, ७८८, ७८९, ७९०, ७९१, ७९२, ७९३, ७९४, ७९५, ७९६, ७९७, ७९८, ७९९, ८००, ८०१, ८०२, ८०३, ८०४, ८०५, ८०६, ८०७, ८०८, ८०९, ८१०, ८११, ८१२, ८१३, ८१४, ८१५, ८१६, ८१७, ८१८, ८१९, ८२०, ८२१, ८२२, ८२३, ८२४, ८२५, ८२६, ८२७, ८२८, ८२९, ८३०, ८३१, ८३२, ८३३, ८३४, ८३५, ८३६, ८३७, ८३८, ८३९, ८४०, ८४१, ८४२, ८४३, ८४४, ८४५, ८४६, ८४७, ८४८, ८४९, ८५०, ८५१, ८५२, ८५३, ८५४, ८५५, ८५६, ८५७, ८५८, ८५९, ८६०, ८६१, ८६२, ८६३, ८६४, ८६५, ८६६, ८६७, ८६८, ८६९, ८७०, ८७१, ८७२, ८७३, ८७४, ८७५, ८७६, ८७७, ८७८, ८७९, ८८०, ८८१, ८८२, ८८३, ८८४, ८८५, ८८६, ८८७, ८८८, ८८९, ८९०, ८९१, ८९२, ८९३, ८९४, ८९५, ८९६, ८९७, ८९८, ८९९, ९००, ९०१, ९०२, ९०३, ९०४, ९०५, ९०६, ९०७, ९०८, ९०९, ९१०, ९११, ९१२, ९१३, ९१४, ९१५, ९१६, ९१७, ९१८, ९१९, ९२०, ९२१, ९२२, ९२३, ९२४, ९२५, ९२६, ९२७, ९२८, ९२९, ९३०, ९३१, ९३२, ९३३, ९३४, ९३५, ९३६, ९३७, ९३८, ९३९, ९४०, ९४१, ९४२, ९४३, ९४४, ९४५, ९४६, ९४७, ९४८, ९४९, ९५०, ९५१, ९५२, ९५३, ९५४, ९५५, ९५६, ९५७, ९५८, ९५९, ९६०, ९६१, ९६२, ९६३, ९६४, ९६५, ९६६, ९६७, ९६८, ९६९, ९७०, ९७१, ९७२, ९७३, ९७४, ९७५, ९७६, ९७७, ९७८, ९७९, ९८०, ९८१, ९८२, ९८३, ९८४, ९८५, ९८६, ९८७, ९८८, ९८९, ९९०, ९९१, ९९२, ९९३, ९९४, ९९५, ९९६, ९९७, ९९८, ९९९, १००० ।

[सं० पुं०] (सं०) ७८, ६८ । का० १०२, १२५, १५१, १८७, २२४ । चि०, १४० । ऋ०, ३५, ६६ । प्र०, १८, २४, २५ । ल०, ७६ ।

मुदरता । वह शोभा जिसमें अद्भुत आकृषण हो ।

[सौंदर्य—सब प्रथम इन्द्र कला ३, किरण ४ में प्रकाशित श्रीर वानन धुमुम में पृष्ठ ५० २१ पर सफलित ७ पदा की कविता । आकाश में नीले धन को देख कर विष भाशा म क्या सख हुए हैं ? चकोरो को उल्लास क्यों हुआ है श्रीर क्या यही चंद्रमा का पूरा विकास है ? अमरा की पत्ति कमल-पात को देख कर क्या कारण है कि गुजार कर रहो है ? वंश में खिल हुए इन पूजा की देख कर हृदय क्यों उन पर मोहित होता है ? वास्तव में यही सौंदर्य की शोभा है । हम की शोभा स खोहे का हृदय भा पिघल जाता है क्यों-कि सुदर चेहरा देख कर मन, हृदय सभी कुछ रसमग्न हो जाते हैं । इन्द्र को देखकर जिस में सौंदर्य का केवल एक विदु है इसे हम प्रिय दशन मानते हैं, किंतु पूरासौंदर्य का प्रभा ही सवन है श्रीर सब में प्रियदशन है । मानवीय हो या प्राकृत हो सभी सुपमा दिव्य शिल्पी के कला कौशल की प्रतीक हैं । इस सौंदर्य की जो भर कर देना श्रीर हृदय में अंकित कर ला । जब यह चित्र हृदय में पूरा रूप में अमरा स्थान बना लगा तो सत्य श्रीर सुदर का स्वत साक्षात्कार हो जायगा ।]

सौंदर्य जलचि = का० १६३ । चि०, १३६, २३६ ।

[सं० पुं०] (सं०) सौंदर्य सागर या अगाध सुदरता ।

सौंदर्य-प्रेम निधि = प्र०, २६ ।

[सं० ङी०] (सं०) प्रतिशय सुदर प्रेमी ।

सौंदर्यमयी = का०, ६६, १ । ऋ०, ६० । प्र०, २४ ।

[वि०] (सं०) ल०, ६६, ७६ ।

सुदरी ।

सौंदर्य-सुधा-सागर = प्र०, २५ ।
 [सं पुं] (सं) सौंदर्य रूपी सुधा का समुद्र । अग्रतम
 सौंदर्य ।
 सोपना = का० कु०, ७६ । ऋ०, ४४, ८१ ।
 [क्रि०] (हिं०) समर्थता करना, सुसुप्त करना, सहजना ।
 सोपि = वि०, ५ ।
 [क्रि०] (त्र० भा०) सोपकर ।
 सोह = वि०, १७८ ।
 [सं पुं] (ब० भा०) सपथ । सपथने ।
 सो = व०, १८, १८, २४, २७ ।
 [प्रथ] (ब० भा०) एक सो ।
 सोजय = वा० कु०, ३७ ।
 [सं पुं] (सं) सुजनता, सज्जनता ।
 सोदामिनी सधि सा = का०, १६ ।
 [वि०] (हिं०) बिजला की कीव के समान ।
 सोय = का०, १२ ।
 [सं पुं] (सं) महल ।
 सो वार = का०, १८३ ।
 [प्रथ] (हिं०) धनेक वार ।
 सोभाग्य = म० ३० । ल०, ७०, ७३ ।
 [सं पुं] (सं) सुहाग । अच्छा भाग्य ।
 सोप्यो = वि०, ३४ ६५ ।
 [क्रि० सं०] (ब० भा०) 'शोपना' क्रिया का पूराभूतकालिक
 रूप, शोप दिना ।
 सोमनस्य = वा० १८३ । म०, २४ ।
 [सं पुं] (सं) भक्तमनसाहृत, शिष्टता, प्रेम, सतीव ।
 सोम्य = का० कु०, ६२ । का०, २४२ २४४,
 [वि०] (सं) २७१ । प्र०, ५ ।
 अन्धे स्वभाववाला, नम्र, सुशील
 सुन्दर, सोम या चन्द्रमा से सबध
 रखनेवाला, चन्द्र ।
 सोरचक्र = क० २० ।
 [सं पुं] (सं) सोर मडल ।
 सोरभ = प्रा०, ३१, ४३ । का० कु०, १५
 [सं पुं] (सं) ३४ ५७, १०१ । का० ११, ४६,
 ४८, ५७, ६४, ६८, १३२ । वि०
 २, १४, १५ १८, २३, २४, ४६,
 ५५, ६१, १५८, १६७, १७०, १७३,
 १७५ । ऋ०, १६ ३५, ५६ ।
 सुगंध ।

सौरभित = वा० कु०, १६ ।
 [वि०] (हिं०) सुगन्धित ।
 सोहाद = प्र०, २४ ।
 [सं पुं] (सं) मृदु' शान भा वार, सज्जनता, मित्रता ।
 सोहाद प्रेम = वा० कु०, १११ ।
 [सं पुं] (सं) सुहृदा के द्वारा मिलनेवाला प्रेम ।
 स्पलन = वा० १२२, १६८ ।
 [वि०] (सं) निश्चिंत होना । पतन, गिरना, चूना ।
 स्तभ = का० २१४, २१८ ।
 [सं पुं] (सं) स्तम्भा तना । शरार । दहावट, किंसा
 का रोचने का प्रयोग ।
 स्तभा = वा०, १८२ ।
 [सं पुं] (हिं) स्तम्भ' का बहुवचन ।
 स्तब्ध = क० १० । वा०, कु०, २६, ६३ ।
 [वि०] (सं) वा० ३, ६१ । ऋ०, ४८ । प्र०, १३ ।
 स्तमित । दृढ़ । पक्का । मंद । धीमा ।
 स्तर = प्रा०, ३७ । का०, १६०, २४६ ।
 [सं पुं] (सं) स्तर, परत अस्तर ।
 स्तर-स्तर = वा० १४, २३६ ।
 [प० २०] (सं) सतह सतह ।
 स्तवक = का०, २६६ ।
 [सं पुं] (सं) कृत्रो वा गुच्छा । स्तुति करनेवाला ।
 स्तवन = व०, ३१ ।
 [पुं] (सं) स्तुते । यथागत, कीर्ति, गाथा ।
 स्तिमित = वा० १५७ ।
 [वि०] (सं) आश्रय, भोगा दुष्प्र । ठहरा हुआ,
 स्थिर, निश्चल ।
 स्तूप = का०, ५६ ।
 [सं पुं] (सं) मीनार । ऊँचा टीला । दृढ़ । अस्थियो
 तथा स्तुतिबिम्बो को दब कर बनाया
 हुआ ऊँचा दृढ़ ।
 स्त्री = म०, १० ।
 [सं की०] (सं) पत्नी । नारी, भामिनी । मादा ।
 स्थन = वा०, १५७ । प्र०, २२ ।
 [सं पुं] (सं) तल, जमीन, धरातल ।
 स्थल पत्र = का० कु० १२१ ।
 [सं पुं] (सं) मूषि म होनेवाला कर्म । पुताव ।
 स्थान = व०, १३, १४, २० । का, १०,
 [सं पुं] (सं) १६३ । म०, ३ ।
 भावाध, स्थल । ठौर । मू भाग ।

स्थापित = वा० कु०, ७३, ६८, १०१, १०६ ।
 [वि०स०] (सं०) प्रतिष्ठित, जिसकी स्थापना हुई हो ।
 स्थित = वा० कु०, १२५ ।
 [वि०] टिका हुआ । आसीन । उपस्थित ।
 विध्वान । अवलंबित ।
 स्थिति = का०, २४१ । १० ७७ ।
 [सं०श्री०] (सं०) अवस्था । दशा । पद । आवास ।
 अस्तित्व ।
 स्थिर = वा०, ५७, १२४, २४८, २६२,
 [वि०](सं०) १८४ । प्रे०, २६ ।
 निश्चित । ठहरा हुआ । निश्चल, शांत ।
 स्थूल = का०, १६७ ।
 [वि०](सं०) मोटा । मोटी । बिना परिश्रम के समझ
 में आने वाला । इन्द्रियग्राह्य पदार्थ ।
 स्नात = वा० कु०, १६, ३१, १०० । का०,
 [वि०](सं०) १२ । वि०, १८६ ।
 नहाया हुआ । जिसके सम्पूर्ण अङ्ग पर
 कोई प्रभाव पड़ा हो ।
 स्नान = आ० २४ ।
 [सं०पु०] (सं०) स्वच्छ अथवा शीतल करने के लिए
 सारा शरीर जल से धोना या जल
 राशि से प्रवेश करना । नहाना । धूप,
 वायु आदि के सामने इस प्रकार बठ्या,
 लेटना या साना कि सारे शरीर पर
 उसका पूर्ण प्रभाव पड़े ।
 स्निग्ध = का०, ११५२, २५१ । प्रे०, १२, १८ ।
 [वि०] (सं०) म, ८, २५ । ल०, १२, २३ ।
 चिकना । जिसमें स्नेह भरा हो ।
 स्निग्धालोक = ऋ०, ७३ ।
 [सं०पु०] (सं०) प्रेम का प्रकाश । स्नेह की आभा ।
 स्नेह = आ०, २८, ६८ । का०, ३, २५ । वा०
 [सं०पु०] (सं०) कु०, ७८ । का०, ८१, ११६, १४८,
 १७६, १८०, १८६, २०८, २२६,
 २२८, २४३, २४४ । वि०, १४७ ।
 प्रे०, १६ । ऋ०, ४१, ५८ ।
 मोह । प्यार । स्नेह । मुदुलता । चिक
 नाई । नेह ।
 स्नेहमयी-सी = का०, २२१ ।
 [वि०] (सं०) स्नेहभरी के समान ।

स्नेह सवल = का०, ८८ ।
 [सं०पु०] (सं०) प्रेम का आधार ।
 स्नेह सहित = प्रे०, १० ।
 [सं०पु०] (वि०) स्नेह के साथ । प्रेम के सहित ।
 स्नेह-सा = वा०, ८६ ।
 [वि०] (हिं०) प्रेम के सदृश ।
 स्नेहार्हाविगन = ल०, २६ ।
 [सं०पु०] (सं०) स्नेह से गले मिलना ।
 स्पदन = का०, १६, ३४, १६१, १६४, २१५,
 [सं०पु०] (सं०) २५२ । ल०, २८ ।
 कपन, धीरे धीरे कपना । स्फुरण । हृदय
 या अंग का कपन ।
 स्पदन हीन = वा० कु०, १५ । ऋ०, १९ ।
 [वि०](सं०) स्फुरण रहित । कपहीन ।
 स्पन्दमान = चि०, १३२ ।
 [वि०](सं०) स्तब्ध करता हुआ । हृष्य में गुदगुदी
 पैदा करना हुआ ।
 स्पदित = वा०, ५४, २५४, २६३ ।
 [वि०](सं०) काँपता या फटकता हुआ, स्फुरित ।
 स्पर्धा = का०, १६, २ । प्रे०, १७ ।
 [सं०श्री०](सं०) द्वेष, टाह । सघप, वैभवस्य । होड,
 चढाऊपरी ।
 स्पृशं = आ०, ५४ । वा० कु०, ४१, ५५,
 [सं०पु०](सं०) १०० । वा०, १२, ४७, ६७, ६६,
 ९४, २१५, २६२, २८६, २६१ ।
 ऋ०, १६, ६४ । प्रे०, ८ ।
 छूना । छू जाना । दबने या का छू जाने
 का अनुभव ।
 स्पष्ट = वा० कु०, ३०, १०२ । वा०, ११६,
 [वि०] (सं०) १६८, १८६, २४९ । मे०, ६ ।
 साफ । सुव्यक्त । साफ समझ में आने
 और दिखाई देनेवाला ।
 स्पृहणीय = वा०, २७, ८८ ।
 [वि०] (सं०) बहुत अच्छा । जिसकी कामना करना
 उचित या योग्य हो ।
 स्फटिकशिला आसीन = वा० कु०, ६५ ।
 [वि०] (हिं०) स्फटिक शिला पर विराजमान (स्फटिक
 एक प्रकार का सफेद पारदर्शी पत्थर है,

जो बक की तरह श्वेत मोर बिना होता है।

स्फीत
[वि०](स०)

= वा० कु०, २६। का०, ७।
फला हुआ। समुद्र। फूला हुआ। बढ़ा हुआ। वद्धित।

स्फुट
[वि०](स०)

= वि०, १३३।
फुटकर। सद्बट, प्रबन्ध, व्यक्त।
विवसित। रिना हुआ।

स्फुलिंग
[स० पु०](स०)

= वा०, १६०।
चिनगारी।

स्फूर्ति

= का० ४७ ६३। ४०। वि०, १४१
[स० खी०](स०) १४४। ल० ६०।
तेजी। फूर्ती। स्फुरण होना। उत्तजना।

स्फोट

= का० ५।
फूट पटना, विस्फोट।

स्मरण

= का० कु०, ६०, ८१ ६७। वा०, १७,
[स० पु०](स०) ४०, २५०। ऋ० १५। प्र०, ७, ६।
म० ६।
किसा देखा सुना धनुषभूति या पदो
हुई वात का पुन ध्यान में आना। याद
आना।

स्मशानवासी

= प्र० २०।
[वि०](स०) शिव का एक नम प्रमशान पर निवास
करनेवाले मरणपर रहनेवाले। मृत
प्रत आदि का सूचक।

स्मित

= वा०, कु० २१। वा०, ६८। ऋ०,
[स० पु०](स०) २२, ६५। १६६। ल०, ३४।
मद मुस्कराहट। धामी मुसकान।

स्मित रेखा

= वा०, १०६।
[स० पु०](स०) मद हास की रेखा।

स्मितलतिका प्रवाल

= वा० १५२।
[वि०](स०) मद हँसी जिसम लाल अक्षर भूगे की
लतिका क समान सुशोभित हावे हैं।
स्मित
[वि०](स०) = का०, १७ १६६, १७८ २२१, २२४,
२५६, २७३, २९०। ल०, २८।
हसी, मुसकान।

स्मृति

= धा० १४, ३५ ७४ ७५। का० कु०,
[स० खी०](स०) ६६, ७३, ७७, ११०। का०, २४,
७०, १२, ११५, ११७, १६०, १७५,

जो बक की तरह श्वेत मोर बिना होता है।

[स्मृति]—साय प्रथम इडु कला १, किरणा १२, भाषा १६६७ विप्रभो में प्ररागिन व्यव प्रसंग का एव प्रसंग।

स्मृति पथ

= वा० ३६।
[स० पु०](स०) स्मरण रूपा भाग।
स्मृति रेखा = धा०, २२।
[स० खी०](स०) स्मरण विद्वा। यात्पार। स्मृति की रेखा।

स्मृतियाँ

= धा० ६।
[स० खी०](स०) स्मरणा। यादगारा। नीति तथा दान आदि का विवेचना मवषा धमशास्त्र।

स्मृति सी

= धा०, १।
[वि०](हिं०) स्मरण लक्ष्य।
स्मृति सौरभ = ऋ०, ४३।
[स० पु०](स०) स्मरण रूपा सुगम। यात् का सुगमि।

स्रस्त

= प्र०, २५।
[वि०](स०) च्युत। शिथिल।
स्रुवा = वा० कु०, ११४।
[स० खी०](स०) लकडा की वह बलछी जिससे हवन के समय अग्नि में धी आदि की आहुति दी जाती है।

स्रुवा

[स० खी०](स०) लकडा की वह बलछी जिससे हवन के समय अग्नि में धी आदि की आहुति दी जाती है।

श्लोत

= वा०, १४। का० कु०, ६६, ११६।
[स० पु०](स०) वा०, ४। ऋ०, १५, ३६। म० ४, ८।
घाघ, पाना का बहाव। भरणा, पानी का सोता। नदी, मूल। उद्गम।
= का० २७०।
[स० पु०](हिं०) सात वा बहुवचन। दे० 'श्लोत'।
स्वगत = का० २२८।
[वि०](स०) अर्पण में आया या लाया हुआ। स्वत, अर्पण घाय।

श्लोतो

= का० २७०।
[स० पु०](हिं०) सात वा बहुवचन। दे० 'श्लोत'।

स्वगत

= का० २२८।
[वि०](स०) अर्पण में आया या लाया हुआ। स्वत, अर्पण घाय।

स्वचेतन

= का० १८२।
[स० पु०](स०) धयनी चेतना। आत्मवत्ता। आत्म-स्थित चेतनात्मक सत्ता।

स्वच्छ = का० कु०, ६, १३, २६, ३०, ५३ ।
 [वि०] (सं०) ५६, ६६, ६६, १२२, १२६। का०,
 ३०, ३४, ५७, २३३। चि० १,
 २४, १५३। ऋ०, २८, ८६, ६४।
 प्रे०, ४, १२, २४। म०, ४।
 शम। शुद्ध। पावन। निमल। उज्वल।
 स्वच्छद = का० कु०, २२। का०, ६६। १६०,
 [वि०] (सं०) २८३। चि०, १, ३४। प्रे०, १७,
 २६।
 स्वाधीन। स्वतंत्र। निरंकुश। मनमाना
 आचरण करनेवाला। स्वेच्छाचारी।
 स्वच्छद सुमन = का०, ६६।
 [सं० पुं०] (सं०) स्वच्छदना रूपी सुमन।
 स्वच्छ शरीर = का० कु०, १००।
 [सं० पुं०] (सं०) निर्मल तन।
 स्वच्छशीला = का० कु०, ५७।
 [वि०] (सं०) सहज निमल रहनेवाली।
 स्वच्छसुंदर = का० कु०, ४२।
 [वि०] (सं०) साफ सुधरा।
 स्वच्छस्नेह = का०, कु०, ७१।
 [सं० पुं०] (सं०) पवित्र प्रेम। निमल नेह। निरच्छल प्रेम।
 स्वच्छ-स्वच्छद = का०, कु०, ७१।
 [वि०] (सं०) निमल उमुक्त। पूण उमुक्त।
 स्वजन = का०, १८६, २४६।
 [सं० पुं०] (सं०) आत्मीय जन। कुटुंबी, नातेदार।
 स्वजनो = का० १६४।
 [सं० पुं०] (हि०) स्वजन का बहुवचन।
 स्वतंत्र = का०, १५४, १६३, १६८।
 [वि०] (सं०) स्वाधीन, मुक्त।
 स्वतन्त्रता = का०, ६६, १७०। प्रे०, १६।
 [सं० स्त्री०] (सं०) स्वाधीनता। स्वच्छदता, निरंकुशता।
 स्वत्व = का०, १३। का०, १६२, २७२।
 [सं० पुं०] (सं०) अपनत्व। निजत्व।
 स्वदेश = का० कु०, ६०। ल०, ६६।
 [सं० पुं०] (सं०) निज देश। मातृभूमि।
 स्वधम्म = चि०, ६६।
 [सं० पुं०] (सं०) निज धर्म। अपना धर्म।
 स्वप्न = का० कु०, १२५। का०, ८, ७०,
 [सं० पुं०] (सं०) ७७, १५८, १६६, १८६, २१४, २७३,
 २८६। ऋ०, ४१, ८८। प्रे०, १६,

२२। ल०, ११, ७६।

मन म उठी हुई ऊची कल्पनाएँ।
 निद्रा अवस्था में दिखलाई देनेवाले
 दृश्य और परिस्थितियाँ।

स्वप्नपथ = का०, ८८।

[सं० पुं०] (सं०) स्वप्न का मार्ग। स्वप्न रूपी रास्ता।

स्वप्नमयी = आ०, ६५।

[वि०] (हि०) स्वप्निल। स्वप्न से युक्त।

स्वप्नलोक = का०, ३५। चि०, १४। ऋ०, ५४।

[सं० पुं०] (सं०) कल्पना जगत्।

स्वप्नसदृश = प्रे०, १६, १८।

[वि०] (सं०) स्वप्नसमान। सपने की तरह।

स्वप्नसवेरे = आ०, १७।

[सं० पुं०] (हि०) भोर का सपना। आशापूर्व स्वप्न।

स्वप्न-सी = का०, २८। का०, ८३।

[वि०] (हि०) सपने के सदृश।

स्वप्नो = का०, ६७। ल०, १२।

[सं० पुं०] (हि०) दे० 'स्वप्न' (बहुवचन)।

स्वभाव = का०, २६४। चि०, ५७, ६१, ऋ०

[सं० पुं०] (सं०) ध०।

मनोवृत्ति। आदत। मिजाज। प्रवृत्ति
मुख्य गुण।

स्वभाव मकरद = चि०, १७७।

[सं० पुं०] (सं०) स्वभावरूपी पराग।

स्वभाववश = का० कु०, ६४।

[सं० पुं०] (सं०) स्वाभाविक गति से आदत के बशीभू
होकर।

स्वयं = आ०, २४, ६८। का०, ६, ३०। का

[अर्थ०] (हि०) कु०, ८१, ६२, ६६, ११४। का०, ६

१६, ६७, ६८, ८१, ८६, ६२, ६१

११६, ११७, १२६, १६०, १६१, १६१

१७२, १८४, १८५, २०६, २०६, २४

२५२, २७२। ऋ० ध०, ४५, प्रे०

२४। म०, ८, १२, ल०, १७, १

८६।

सुद। अपने प्राप।

स्वर = आ०, ७, २६। का०, १०। का० कु

[सं० पुं०] (सं०) १०, ४५, ४८, ११८। का० ११, २

६३, ६८, १५०, १७६, १७८, १८

१८४, १६३, २२४, २४०, २५२, २६०,
२६१, २८६। चि०, ५८, १४७।
प्र०, ४, १०। ल०, २७, ३३, ४५।
ध्वनि, ध्यावाज, योती।

स्वरलहरी = का० कु०, ८१। का०, १८२, २१८।
[सं० जी०] (सं०) ऋ०, ५५। ल०, २६।

ऊँचे-नीचे स्वरो की वह लहर या क्रम
जो प्रायः संगीत आदि के लिये उत्पन्न
की जाती है।

स्वरूप = का०, १६६, २४३, २५४। चि० ७१।
[सं० पु०] (सं०) प्र०, १६, २४। म०, १४।

व्यक्ति, पदार्थ, वायु आदि की आश्रित,
फनक, मूर्ति, चित्र।

स्वरो = का०, १७८।

[सं० पु०] (सं०) स्वर का बहुवचन।

स्वर्गागा = भ्रा०, १७, ५४, ५६। का०, कु०, ६६।

[सं० जी०] (सं०) का०, १४२।

आकाशगगा।

स्वग = आ०, ५६। का०, ११६, १२७, १२८

[सं० पु०] (सं०) १३१ ३६२, १६२। चि०, ६८।

ऋ०, २६। प्रि०, ८, २४। ल० १२।

वकुठ। देवधाम। पुण्य भ्रातामयो का
निवास स्वस। तीसरा लोक। इद्र
लोक।

स्वगमाहि = चि० ६८।

[सं० पु०] (सं०) स्वग म।

स्वर्गीय = का० कु०, १६, १२०। का०, १४८।

[वि०] [सं०] ऋ, १६। ल० ३२।

स्वग मे रहनेवाले। मृत। स्वर्गसवधी।

स्वर्गीयभाव = का० कु०, १०३।

[सं० पु०] (सं०) ईश्वरीय भावना। अत्यंत पवित्र एवं
आवर्ण्य भावना।

स्वर्गीया सुखमा = चि०, ७३।

[सं० जी०] [सं० भा०] स्वर्गीय सुख। सौंदर्य। अपरिमित
मानद। प्रलीकिक शोभा।

स्वण = का०, २४७। ल० ७१, ७५।

[सं० पु०] (सं०) सोना। सुवर्ण। वचन। ध्वन।

स्वणानुश = का० १८२।

[सं० पु०] (सं०) सोने का घडा। सुवर्ण घट।

स्वण किरण सी = का०, २२८

[वि०] (सं०) सुनहली किरण के समान।

स्वण किरन = का०, ८१।

[सं० जी०] (हि०) सुनहरी किरण। वनक किरण।

स्वणत्तचित = का०, १७।

[वि०] (सं०) स्वर्ण वा बना हुआ। स्वणजटित।

स्वणघट = ऋ० ५९।

[सं० पु०] (सं०) स्वर्ण बलश सोने का घडा।

स्वण छत्र = चि०, ४८।

[सं० पु०] (सं०) सोने वा ताज। सोने का छाता।

स्वण जल = का० कु०, ८।

[सं० पु०] (सं०) सुनहला पानी। सोने का पानी।

स्वणमय = ऋ०, ५८।

[वि०] (सं०) सोने से युक्त। स्वर्णम। सोने की।

स्वणमयी = ल०, ७०।

[वि०] (सं०) 'स्वणमय' का स्त्रीलिंग।

स्वण विलास = ऋ०, ६६।

[वि०] (सं०) धन का वासनामय आनंद।

स्वण शालियो = का०, २८।

[सं० जी०] (हि०) धान की सुनहली चालें।

स्वण शतदल = आ० ६८।

[सं० पु०] (सं०) स्वर्णम जलज। सोने का कमल।

स्वण-सा = का०, १६०।

[वि०] (हि०) सोने के समान। वनक के समान।

स्वणसृष्टि = आ० ६६।

[सं० पु०] (सं०) स्वर्णलोक।

स्वर्णाक्षर = म०, ९।

[सं० पु०] (सं०) सोने के अक्षर। (मुग्धा०) सदा चमकता
हुआ लेख अमर लेख।

स्ववश = का०, १६७, १८३।

[सं० पु०] (सं०) अपने वश में या अधिकार।

स्वस्थ = का० कु०, ४, १०१। का०, ४ ३१,

८७, ११२, १२६, २१९।

[वि०] (हि०) आरोग्य। नीरोग। लडुस्त्व। मला
चगा।

स्वांग = ऋ०, ६४।

[सं० पु०] (हि०) किसी के अनुपम चारण किया जाने
वाला बनावटा वप या रूप। वश।
नकल। भांडवर्।

स्वागत = का० कु०, २६, ३०। का०, ६६,
[सं० पु०] (सं०) १०२, १६६। चि०, ७२। ल०, ३२।
अभिनदन। अम्ययना। अगवानी।
आदर-सत्कार।

स्वातत्रमयी = का०, १६१।
[वि०] (सं०) स्वतत्र, मुक्तिपुक्त।

स्वाती = का०, २२३। ल०, ३५। चि०, १५८।
[सं० श्लो०] (सं०) एक नक्षत्र का नाम। ज्योतिष के
सत्तार्दन नक्षत्रों में से पंद्रहवाँ नक्षत्र।

स्वातीकन = का०, २३५।
[सं० श्लो०] (सं०) स्वाता की वृद्ध।

स्वाती विन्दु = का० कु०, ४३।
[सं० श्लो०] (सं०) स्वाती नक्षत्र में बरसी हुई जल की वृद्ध।

स्वाद = का० कु०, ३४। प्र०, २३।
[सं० पु०] (सं०) रसजय अनुभव, रसानुभूति। आनंद।
किसी वस्तु के खाने पीने से जीभ का
होनेवाला अनुभव।

स्वाधिकार = का०, १३६।
[सं० पु०] (सं०) अपना अधिकार, स्वाधीनता, स्वतंत्रता।

स्वाधीन = का०, १३। म०, १४।
[वि०] (सं०) जो किसी के अधीन न हो। स्वतंत्र,
आजाद।

स्वानुभूति = का० कु०, ९४।
[सं० श्लो०] (सं०) अपने मन में होनेवाला ज्ञान। अपना
अनुभव, अपना ज्ञान।

स्वाप = का०, २७३।
[सं० पु०] (सं०) निद्रा, नींद। अनाल।

स्वाभाविकता = का०, ७३।
[सं० श्लो०] (सं०) स्वभाव से या आप से आप होने का
भाव। प्रकृत, नसर्गिकता, सुदरतीपन।

स्वामिनि = का०, १६६।
[सं० श्लो०] (सं०) मालकिन गृहणी।

स्वामी = का० कु०, ८७। का०, १९७। चि०,
[सं० पु०] (सं०) ७४, १६१। म०, ३, १२, १८।
मालिक। पति, शीष्टर। घर का प्रमुख
व्यक्ति स्वत्वाधिकारी।

स्वायत्त = का०, ६।
[वि०] (सं०) जिसपर अपना अधिकार हो। जो
अपने ही अधीन हो।

स्वारथ = चि०, ३६, १७३, १८५।
[सं० पु०] (सं०) अपना लाभ, अपनी भलाई, स्वार्थ।

स्वारथरत = चि०, ५७।
[वि०] (सं०) अपनी ही भलाई में लगा रहनेवाला।
स्वार्थी।

स्वाथ = का०, कु०, ६३ ११२, ११५। का०,
[सं० पु०] (सं०) १३२। म०, ४१, ७७। प्र०, १०,
१६।
अपना अथ या उद्देश्य, अपना मतनव।

स्वार्थी = चि०, १८६। प्र०, २२०।
[वि०] (सं०) अपना ही अथ साधनेवाला, अपना ही
मतलब निकालनेवाला, मतलबी,
खुदगर्ज।

स्वार्थो = का०, १६५।
[सं० पु०] (सं०) स्वाथ का बहुवचन।

स्वावलंबन = का०, १८२।
[सं० पु०] (सं०) अपने ही भरोसे रहकर अपने ही बल
पर काय करना।

स्वास्थ्यकर = म०, २१।
[वि०] (सं०) तड़ुहस्ती बनानेवाला, आरोग्यवधक।

स्वीकार = का०, १८, १६, २३। का० कु०, ११६
[सं० पु०] (सं०) का०, २६।
मनाने या ग्रहण करने की क्रिया
अंगीकार। मजूरी।

स्वीकृति = का० १२३, २६८।
[सं० श्लो०] (सं०) स्वीकार करने का भाव या क्रिया,
अंगीकार, मजूरी।

स्वेद = का० कु०, २४। का०, १५७। चि०, ५।
[सं० पु०] (सं०) पसीना, अम कण।

स्वेद कण = चि०, २८।
[सं० पु०] (सं०) पसीन की वृद्ध।

ह

हत् = का०, १३०।
[अ०] (सं०) छेद, शोक या दुःखवोधक शब्द।

हंसना = श्रा०, ५ बार। क०, १ बार। का० कु०,
[क्रि०] (हि०) ६ बार। का०, ५७ बार। चि०, ११
बा०। ऋ०, ५ बार। म०, १ बार।
ल०, १५ बार।
हाम काना। उपहास करना। मुठ
खोलकर प्रसन्नता प्रकट करने के लिये
हा हा करना।

[हँसी आती है मुझको तभी—सबप्रथम माधुरा पृष्ठ
२, खंड २, सन् १९२४ मध्या १ मे
'बुद्ध नहीं' शीपक से प्रकाशित तथा
भरना म सन्कलित। देखिए 'बुद्ध नहीं'।]

हफनाहव = चि० ५७।
[श्रा०] (श्रा० + का०) जवरदस्ती। व्यर्थ।
हजार = चि०, ४२।
[वि०] (का०) बहुत, घनेक। दस सौ।
हजारो = का० कु०, ५।
[वि०] (का०) हजार का बहुवचन।
हट जाना = का० कु०, ७९, १०२। का०, ८६,
[क्रि०] (हि०) २१९। चि० ६६। प्र०, ९।
सरक जाना। खिसक जाना। न रह
जाना। विचलित हो जाना।

हटना = का० कु० ५ ६। का० २३, २८।
[क्रि०] (हि०) १३६। म० ४, १२।
सरफना खिसरना। विचलित होना,
न रह जाना।

हठ = का० कु०, ५। का० १६१।
[सं०] (सं०) जिद। दृढ़ प्रतिज्ञा।

हठि = चि०, ६६।
[पूर्व० क्रि०] (श्रा०) हठ करके। जिद करके।

हठीले = ल० ६।
[वि०] (हि०) दृढ़प्रतिज्ञ। जिद्दी। बात के पक्के।

हतचेत = का० २५४।
[वि०] (सं०) बेमुप घचेत बेहोश।

हत्तचेतन = का० २२८।
[वि०] (सं०) धमुष।

हत्तभाग्य = का० ११। का०, ८८।
[वि०] (सं०) भभाग्य, भाग्यहीन।

ह्ताश = का०, ५२, १८, १६६, २१४।
[वि०] (सं०) ऋ० ३३।

जिसरा शानाए ष्ट हो गई हा, निराश।

ह्येली = का० १२७।

[सं०] (सं०) वरतन।

हम = श्रा०, ३०, ३२, ३६, ३७। का०, १०
[सव०] (हि०) १३, १५, १६ २० २५। का० कु०,

७, १०, २०, ३१, २२, २७, ६१।
का०, ७, ६ २१, ३२ ७२, ७३,
७४ ६२, ११४ १२७, १२८, १२९,
१३१ १३६ १४७ १६१, १६८,
१२२ २२५, २६०, २६१, २७८,
२७८, २८३। चि० १४, २६, ३१,
३३ ५८ ३०, ६१, ६४ ७२, ७३,
७४। ऋ० ४६।
मैं वा बहुवचन।

हमको = श्रा०, १७। क०, ११। चि०, ६४
[सव०] (हि०) १८६।

मुभना का बहुवचन।

हमहू = चि०, ६४, ७४।

[सव०] (श्रा०) हम भा।

हमारा = श्रा० ११, १५ १६, २५ २८, ३०,
[सव०] (हि०) ६७। क० १० १२, २० २६।

का० कु० ३१, ३२ ३३ ३६। का०,
१७, १२८, १३१, १३२, १८४, २६७,
१६६, २२८ २६०। चि०, ५०, ६०,
६१ ६४ ६८ ७१, ७३, १५७, १७६,
१८३ १८७। ऋ०, ५ २६, ३०, ५३,
म०, १२।
मेरा वा बहुवचन।

हमारा प्रेमनिधि सुंदर सरल है—दो पक्तियों का
अजातशत्रु का गीत जिसमें पद्मावती
का उदयन के प्रति अपन प्रेम का सत्ज
दिशनात अभिव्यक्त किया है। वह अपन
प्रेम निधि को सुंदर और सरल मानती
है। उमम गरल का कोई अश नहीं है।

[हमारा हृदय—इडु कना ३, किरण १, जनवरी
१९१५ न प्रकाशित। मेरी कचाई मे

जो भाव व्यक्त किए गए हैं वही भाव हम कविता में है। यह कविता किसी सप्रश्न में नहीं तो गई है।]

[हमारे जीवन का उल्लास—अज्ञातशत्रु का गीत। यह कौमल को कुमांगी का प्रेमगात है। पूर न टन म उसने केवन यह एव ही गीत गाया है। यह कविता निक पाच पंक्तियों का है।]

[हमारे निबला के वन कहाँ हो—सफ़दगुण का गत। प्रना सगान न पृष्ठ ८६ पर सकलित। यह ममन गान है जिसे खिशां पुाप मिल कर गते है। भगवान् से हममें प्रायना और मानृगत का गई है कि हूणा स चाण मिल। स्त्रिया कहती हैं कि हम निबला के जल और हम दीना के सबन, तुम कटा हो? पुष्ट कहन हैं भगवान् तुम सचमुच नहीं हो, कवल तुम्हारा नाम हा नाम है? क्या कवल यह मुनन भर का है कि तुम सर्वत्र हो? फिर स्त्रिया कहती हैं सुना था कि जब भक्तो ने तुम्हें पुवारा तभी तुमने उनकी पुकार सुना, यह विश्वास हम को भी दा। सचमुच हम बुद्धि न तुम कहा हा? मानृगुण कटा है हे प्रभा विश्वास द कर अपना बना ला। चाहे जहा भा हा हम स्वच्छद विचरण करें, यह शक्ति ह्य दा।]

[हमारे वक्ष में वन कर हृदय अज्ञातशत्रु का गात। इस गात म दक्षन अपन प्रेम के प्रति मागना का विश्वास दिताने का यल करता है। यह गीत चार पंक्ति का है। हमारी छाती में हृदय वन कर तुम्हारा सौंदर्य समा जायगा और स्वय एकाकार हो कर तुम्हारा छवि का रसीला गान गाएगा। फिर हमारी तुम्हारा हृदय म चेतना ही अलग न रह पाएगा और सारे मक्षर में धनेन यह हृदय तुम्हारी पूजा करेगा।]

हमी = का० कु०, ३३। का०, २८७।
[सव०]।(हि०) मैं भी का बहुवचन।

हमे = का०, १३, २६। का०, २२०। क०,
[सव०]।(हि०) ३०। म०, ५।
हमकी।

हमेश = चि०, ६८।

[अ०य०]।(ब्र०भा०) नदा, सदा।

हय = चि०, १८१। म०, ६। ल०, ३३।

[स० पु०]।(स०) इद्र। घोडा।

हयन = चि०, ११।

[स० पु०]।(ब्र०भा०) हय का बहुवचन, घोडा।

हय पद-वज्र = म०, २।

[स० पु०]।(हि०) घोडे के वज्र के समान परा मे।

हर = का० कु०, २६। का०, २४४।

[वि०]।(स०) हरण करनेवाला। प्रत्येक। शिव।

हर एक = का० कु०, ६, ६३।

[वि०]।(का०) एक एक, प्रत्येक।

हरखत = चि० ६६, ७०, १०।

[क्र०]।(ब्र० भा०) प्रप न हाता है।

हरखात्रो = चि०, १८४।

[क्र०]।(ब्र०भा०) प्रपन करो।

हरखाय = चि०, १२६।

[पू० क्रि०]।(ब्र०भा०) प्रपन हाकर।

हरखावा = चि०, १२७।

[क्रि०]।(ब्र० भा०) प्रपन हुआ।

हरजाई = चि०, १६३, १८३।

[वि०]।(का०) आबारा। हर जगह घूमने वाली।

[की०]।(का०) -यभिचारिणा स्त्री। वधवा।

हरण = चि०, ६७, १०७।

[स० पु०]।(स०) छीनना, छुटना। मिटाना, नाश।

हरते = का०, ८२।

[क्रि०]।(हि०) मिटाते।

हरने = का० कु०, ८। ल०, १३।

[अ०य०]।(हि०) मिटाने के लिए।

हर्म = म०, ३।

[स० पु०]।(अ०) जनानखाना, अत पुर।

हरमे = ल०, ७७।

[स० स्त्री०]।(प०) खेल स्त्रिया, विवाहिता स्त्रियां।

हरयाली = का०, १००।

[म० स्त्री०]।(हि०) दे० 'हरियाली'।

हर लेना = का०, २४४।

[क्रि०]।(हि०) दे० 'हरना'।

हरपायो = चि०, ५८, ७३।

[क्रि०]।(ब्र० भा०) प्रपन हुआ।

हरपावत

- हरपावत = चि०, २६ ।
 [क्रि०](प्र०भा०) प्रसन्न करता है ।
 हरपाहि = चि०, २२ ।
 [क्रि०] (प्र०भा०) प्रसन्न होत है ।
 हरपित = चि०, ६२ ।
 [वि०] (प्र० भा०) मानदित ।
 हरपी = चि० ५६ ।
 [क्रि०](प्र० भा०) प्रसन्न हुई ।
 हरस = चि०, १८१ ।
 [सं० पुं०](प्र०भा०) 'हर्य' ।
 हर हर = चि०, ६५ ।
 [वि०] (हि०) धूम्राधार, हरहराती हुई ।
 हरा = का० कु०, १०१ । वा० १६१, १८२,
 [वि०] (हि०) १६१, २२३ । ऋ०, ५० ।
 प्रसन्न । ताजा । हरे रग का ।
 हरि = चि० १५२, १८४ ।
 [सं० पुं०] (सं०) शिव, विष्णु वृष्ण । मार्ग । बन्दर ।
 [पुव क्रि०] (हि०) हरण कर ।
 हरिचद = चि०, १६५ ।
 [सं० पुं०] (प्र० भा०) हरिश्चन्द्र ।
 हरिचन्दन = वा० कु०, १०७ ।
 [सं० पुं०] (सं०) एक प्रकार का चन्दन । चीन्ना ।
 हरिचन्द्रादि = चि० ४७ ।
 [सं० पुं०] (सं०) शिव, चन्द्रमा आदि ।
 हरिण = वा० कु०, ४२ ।
 [सं० पुं०] (सं०) हिरण्य ।
 हरित = का० कु०, ३ । वा०, १७५, २८१ ।
 [वि०] (सं०) वि०, १४६, १५७ । ऋ०, १६, २३,
 ४१, ल०, १५, २० ।
 मानदित । हरा ।
 [हरित वन नुसुमिा है द्रुम वृद—सबप्रथम 'मसताप'
 गोपक म मायुगं वृष्ठ २, लंङ २,
 सन् १९२५, सख्या २ म प्रकाशित
 और म्ना में सक्तित । दविए
 'मसताप' ।]
 हरियाती = ऋ०, ६२ ।
 [सं० स्त्री०](हि०) दे० 'हरियाती' ।
 हरियानिन = चि०, ७० ।
 [सं० स्त्री०](प्र०भा०) दे० 'हरियातियों' ।

- हरियातियों = का० कु०, ५३ ।
 [सं० स्त्री०](हि०) हरियाला का बहुवचन । हरे भरे भूमि
 रगे ।
 हरियाली = का०, १७ । का०, कु०, ५२ । का०,
 [सं० स्त्री०](हि०) २२३, २५७ २८१, २८३, २८५ ।
 चि०, २८, ७० । ऋ०, ३६ । म०, २ ।
 हरे भरे पेठ पीधो का विस्तार । हरापन,
 हरीतिमा ।
 हरिश्चन्द्र = का०, ३१ ।
 [सं० पुं०] (सं०) मूयवश के प्रतापो और सत्यनिष्ठ
 एक राजा का नाम ।
 हरिश्चन्द्रादि = वा०, १६०, २२५ । प्र०, १४ ।
 [सं० पुं०] (हि०) हरिश्चन्द्र वर्गह ।
 हरिहै = चि०, १८५ ।
 [क्रि०](प्र०भा०) हरेगा ।
 हरिहो = चि०, १८५ ।
 [क्रि०](प्र०भा०) हरेगा ।
 हरी = चि०, ११, १५१, १६८ ।
 [सं० पुं०](प्र०भा०) दे० 'हरि'
 [वि०] हरित ।
 हरी भरी = का० २८५, प्र०, १५, २२ ।
 [वि०] (हि०)
 हरा भरा, हरियाली स पूण ।
 हरे = का० ८ । वा० कु० ३३, ५४ चि०, ११ ।
 [वि०] (हि०) प्र०, १ ।
 हरा का बहुवचन ।
 हरे-हरे = का० कु० २५ । प्र० ३ । म०, २ ।
 [वि०] (हि०) हरे-हरे रग के । हरा का बहुवचन ।
 ह्य = वा० कु०, १२६ । वा०, १३०, २३५ ।
 [सं० पुं०] (सं०) चि०, १४३ । प्र०, २३ । म०, ६ ।
 प्रसन्नता, मान, खुशा ।
 ह्य-विपाद = चि०, ५६ ।
 [सं० पुं०] (सं०) प्रसन्नता और मोन ।
 ह्य-योग = वा०, २२७ ।
 [सं० पुं०] (सं०) प्रसन्नता और विपाद ।
 ह्यन = वा० १८१ ।
 सं० पुं०] (सं०) भूमि जातने का एक प्रविद्ध उपकरण ।
 ह्यना = वा०, १४३ ।
 [वि०] (सं०) = भाद्या । पाड़ा । कम वजनी ।

हलकासा = का०, ६८ ।
 [वि०] (हि०) ओछा सा ।
 हलकी = का०, ११२, १८०, २१५, २१६ ।
 [वि०] (हि०) ल०, ६६ ।
 हलका का खोर्निग ।
 हलकी सी = का०, १०३ । ऋ०, ४८ ।
 [वि०] (स०) ओछा सा ।
 हलचल = का०, ५, १८, २४, ५०, १६६, १८५, १८७ ।
 [स० स्त्री०] (स०) २२१ । ऋ०, १७ ।
 खलबली, तहलका, ब्राति ।
 हलाहल = का०, १३, २६५ । ऋ० ४६ ।
 [स० पुं०] (पुं०) समुद्र मयन से निकला हुआ मयकर विप । प्रचंड विप ।
 हवन = प्र० १६ ।
 [स० पुं०] (स०) होम ।
 हवन-धूम = चि०, ३३ ।
 [स० पुं०] (प्र० भा०) होम का धुआँ ।
 हवा = ऋ०, ६४ ।
 [स० स्त्री०] (प्र०) वायु, पवन । यश, कीर्ति ।
 हविष्य = का०, ७ । चि० १३६ ।
 [वि०] (स०) बलि । हवन करने योग्य पदार्थ ।
 हसी = का० कु०, ३३ ।
 [स० स्त्री०] (हि०) हास ।
 हस्तगत = का० कु०, ११६ ।
 [वि०] (स०) हाथ में आया हुआ, प्राप्त, हासिल ।
 हस्ता = चि०, १३२ ।
 [क्रि०] (प्र० भा०) हमत ।
 हहराड = चि०, १५८ ।
 [पूर्व० क्रि०] (प्र० भा०) हहर कर ।
 हा = का० कु०, ३० । का०, २५, ४०, ६६, ७५ ।
 [प्रत्यय०] (हि०) ६६, २०८, २३३ । म०, २३ । ल०, ७५ ।
 स्वीकृति, समर्थन आदि का बोधक शब्द ।
 हाफ = का०, ३६ १६८ ।
 [वि० पुं०] (हि०) श्रम के भार से जल्दी जल्दी बननेवाली साँस का गति ।
 हासी = चि०, ४६, ६३, ७० ।
 [वि०] (हि०) हसी ।

हाँ हाँ = का० कु०, २०, १२४ ।
 [प्र० य०] (हि०) ठीक ठीक ।
 हाय = का०, २० । का० कु०, ३४, ५८, १०६, ११६ । का०, ७८, १४६, १६८, २०१, २१६, २४८ । ऋ०, ३६, ७२ ।
 प्र०, २ । ल०, ७३, ७४ ।
 कर, हस्त ।
 हायन = चि०, ८ ।
 [स० पुं०] (प्र० भा०) हाथा ।
 हाथो = का०, ६ । का०, १४२ २२६ । ऋ०, १७७ । प्र०, १६ । ल०, ५३, ७८ ।
 [स० पुं०] (हि०) ४७ । प्र०, १६ । ल०, ५३, ७८ ।
 हाय का बहुवचन ।
 हानि = घा०, ४५ ५० ।
 [स० स्त्री०] (स०) क्षति, नुकसान, घाटा । बुराई ।
 हाय = का०, १७ २५ २६ । का० कु०, ४८, १७० । ऋ०, ३८, ४८, ५४, ६१ । प्र०, १३ । ल०, ७४ ।
 शोक, दुःख आदि का बोधक शब्द ।
 हार = का० कु०, १८ । का०, १४ । का०, ११, ५५, ६६ । चि०, ४८, ७१, १८७ । ऋ०, ४२, ७४, ६३ । ल०, ७३ ।
 विफलता, पराजय ।
 [स० पुं०] (स०) माला ।
 हारना = का० कु०, ११२ । का०, १०४ चि०, ६६ । ल०, २३ ।
 पराजित होना । विफल होना ।
 हारी = का० कु०, ३३ । का०, १०४, १०६ ।
 [वि०] (हि०) पराजिता । हारी हुई ।
 हारो = घा० १६ । का० १७१, २०६, २६६ ।
 [स० स्त्री०] (हि०) म०, २१, २२ ।
 पराजयों, विफलताघा ।
 [स० पुं०] (हि०) मालामाला ।
 हाल = का० कु०, ११२ । चि० २३ ।
 [स० पुं०] (हि०) दशा । परिस्थिति । समाचार । विवरण ।
 हाला = ल०, ४७ ।
 [स० स्त्री०] (का०) शराब ।
 हास = का०, ३८, ८७, १४२, १५३, १६१, १८७ । प्र०, १४ । ल०, २५ ।
 [स० पुं०] (स०) २५४ । चि०, १३३ । ऋ०, २३ ।
 हँसी । ठाली । हास्य, हँसने की क्रिया या भाव ।

हासी रेखा = चि०, ६५।

[म० स्त्री०] (ब्र० भा०) हँसी की रेखा।

हासा = का०, १, ५। ल०, १४।

[सं० पुं०] (हिं०) हास का बहुवचन। हँसिया।

हाहानार = घ०, ७, ७७। का०, १३, १६४।

[सं० पुं०] (मं०) नास स पत्राकर चाखना चिल्लाना।
हाय हाय करना, कुहराद।

हिडोला = का० कु०, ६६।

[सं० पुं०] (हिं०) पालना। झूठा।

हिडोले = का०, २४६। प्रि० १।

[सं० पुं०] (हिं०) झूठा।

हिंदी = चि०, १६४।

[वि०] (का०) हिं० देश का, भारत का, भारतीय।

[सं० स्त्री०] हिं० देश का भाषा। भारत राष्ट्र की भाषा।

हिम = का०, ६।

[वि०] (सं०) मार वाट करनेवाला।

हिंसन = का० १४६, २४८।

[सं० पुं०] (मं०) प्रगर करनेवाला रिदवो, घातक।

हिम्मा = का० २७। का० १३६, १४४, २६६।

[सं० स्त्री०] (सं०) दूसर का मारने काटने या पाडा पहु
बने का वृत्ति।

हिंसा मुरत = का० १३६।

[म० य०] (हिं०) दूसरा को बट पटवाने म मिलनेवाला
घन नय मुप।

हिचन = का० ८८।

[सं० स्त्री०] (हिं०) मानसिक हाववत।

हिचनना = का० ४२।

[वि०] (हिं०) दरना, प्राणा पाया करना।

हिचरी = स्त्री, ७६। का० ८४।

[सं० स्त्री०] (हिं०) पट या कना वा वायु का बुध रह-
रक कर मन के मग स बाहद निकलने
का शारिरिक काम व्यापार। माशाकुल
घरघरा म निरादमया प्राणवायु का रुक
रक कर निकलना वा वायु व्यापार।

हिचरी सी = का०, १६०।

[वि०] (हिं०) हिचरी क समान। प्रवरज।

हित = का०, ४६। का०, १४४, २२२,

[सं० पुं०] (सं०) २०८। चि०, १४ ६८ १३, १०६,
१४७, १८८।
बन्धन, मगल।

हितकर = का०, १२। चि०, ६२।

[वि०] (सं०) लाभप्रद, कल्याणप्रद।

हिम = का० ३०। का०, १५। का० कु०, ६।

[सं० पुं०] (सं०) का०, ३, २३, २४, ८७, २५४, २५७,
२६८, २६२, २६३। चि०, ४। का०,
३८, ६०। प्रि०, २४।
पाना, तुपार। चद्रमा।

हिमकणिका = का०, ६५।

[म० स्त्री०] (मं०) घोला। तुपारकण।

हिमकन = का० २०६, २८४। का०, १७।

[सं० पुं०] (हिं०) ल०, २४, ३६।

दे० 'हिमकण'।

हिमकर = का० १८, ४२, ५१, ५६। का०,

[सं० पुं०] (सं०) १२५, २५३, २५७। ल०, २६।

शोलकर, चद्रमा।

हिम खड = का० कु०, १०५। का० ४८। का० २२।

[सं० पुं०] (सं०) हिमकण। बक का खड या टुकड़ा।

हिमगिरि = का०, २८। का० कु०, १०४, १०५।

[सं० पुं०] (सं०) का०, ३, ३०, ५१, ३१। चि०,
६४, ६६।

बक का पहाड। हिमालय।

[हिम गिरि के उत्तु ग शिखरपर—सबप्रथम 'मन
का चिंता' शोपक स प्रमद्वर १६२८ में
प्रकाशित कामायना का आदि प्रथ।
दे राए कामायना' मोर 'मन का चिंता'।

हिमगिरि सी = चि० ७२।

[सं० पुं०] (ब्र० भा०) हिमालय क मतान।

हिमतल = का० १७५।

[सं० पुं०] (सं०) बक की तन या तह। बर्कीली जमान।

हिमचवल = का० ३।

[वि०] (सं०) बर्की का मतान हरज।

हिमनग सरिता = का०, १६०।

[सं० स्त्री०] (सं०) बर्कीला नदा हिमालय स निकली
हुद नदा।

हिमलता = का० कु०, १०४।

[सं० स्त्री०] (सं०) बक का लता, हिम रूपी लता।

हिमविंदु सी = का० कु०, ६७। अ०, ३५। ल.,

[वि०] (हि०) ७६।

धूम की बूदा के समान।

हिमशिलाओ = का०, १६।

[सं० ली०] (हि०) बक की चट्टानों।

हिमशीतल = का०, २१, १६७।

[वि०] (सं०) हिम के समान ठंडा।

हिमशैल = ल० १५।

[म० पु०] (सं०) हिमगिरि।

हिम शृंगो = का०, ००।

[म० पु०] (हि०) बक का चाटियों।

हिमसर = का०, कु०, १०५।

[म० पु०] (ब० भा०) बक का तालाब।

हिमाशु = का० कु०, ११०।

[सं० पु०] (सं०) चंद्रमा।

[हिमाद्रि तुंग शृंग से प्रबुद्ध शुद्ध भारती—अलका न यह उद्बोधन गात चद्रगुप्त ने गाया है। यह युद्धकालिक प्रयाग गीत की भाँति हिंदी का एक श्रेष्ठतम श्रोजस्वी गीत है जो प्रसाद सगत में पृष्ठ ११७ पर संकलित है। हिमालय के उच्च शिखर से प्रबुद्ध शुद्ध भारती स्वयंप्रभा स्वतंत्रता तुम्हारा उद्बोधन कर रही है। हे वीर पुत्रो, तुम दृढ़ प्रतिज्ञ और अमर हो, सोच लो पुण्य का रास्ता प्रशस्त है, उसपर बड़े चलो। मातृभूमि के सपूता, तुम्हारी इसमें ही कीर्ति है कि शत्रु सेना के सागर में साहसा जवानों, तुम दाडक ज्वाला की भाँति चलो। तुम महान् वार हो, विजयी बना और युद्धपथ पर बढ़ते चलो, बढ़ते चलो।]

हिमानी = का० १८ १७५, २५७।

[म० लो] (सं०) पाला। बरफ। खेचियर।

हिमालय = का०, २६। वि०, ५५।

[सं० पु०] (हि०) भारत के उत्तर में स्थित, ससार का सबसे ऊँचा पर्वत।

[हिमालय के आगमन में—स्वर्गपुष्ट में वीरो का समवेत गान जिसमें भारत की महिमा

वर्णित है। यह बड़ा सुंदर राष्ट्रगान है और पृष्ठ ६८ ६९ पर प्रसाद संगीत में संकलित है। हिमालय के प्रागण में ऊचा न सवप्रथम जागरण का उपहार दिया। सूर्य का किरणों का हीरक हार उसे पहनाया और उसका अभिनदन किया। भारत जागा, सारे ससार को जगाने लगा और विश्व में फिर ऐसा आलोक फैला कि सब न शयकार नष्ट हो गया और सारी सृष्टि शाक रहित हो गई। सप्तसिंधु में नन्तम स्वर में साम संगीत का गान यहाँ हुआ और प्रलय से ही हमने सारे ससार का रक्षा का। दवाचि जस स्वामी हमारी राष्ट्री यता के विवाम के प्रतीक हैं और पुरंदर जस सागा के इतिवत् से हमारा इतिहास लिखा गया है। भगवान् बुद्ध जा हमारा एक निर्वाचित प्रतिनिधि मान थे, उन्होंने मागर स भी श्रविक बिरतृत और श्रयाह सागर पार धम का प्रचार किया। धर्म के नाम पर जो बनि होती थी उसे हमने बद दिया। सारे ससार को हमने शान्ति सदेश दिया और आनंद का सधन प्रकाश फलाया। इस देश न रोगों को यद् वताया कि सन के अल्लो की नहीं, धम की धारा पर जय होती है और इस दश के (श्रयोक् जस) सत्राट् भी भिक्षु का भाँति रहते हैं तथा घर घर धम कर दया का प्रचार करते हैं। यवनों का दान की और चीन को हम ने धम का दृष्टि दी। हमने स्वर्ण-भूमि को शील का रत्न और सिंधल का धर्म की नई सृष्टि दी। हमने कम्पा किसी से कुछ छीना नहीं और हमारी देश सदा प्रकृति का पालना रहा। हम आर्यों की जम भूमि यही रही है। हम कहीं से टाप ही है। प्राणी सर्पों और भस्मा में हम ने जातियों का उत्थान और पतन देखा है और सब कुछ खड़े हा

कर हँसते हुए भेला है। हम तो ऐसे
बीर हैं जो प्रलय म पते हुए हैं।
हम चरित्रवान, शक्तिवान, वीर और
सपन रहे हैं और दग बात का हमें
भीरव और गव रहा है कि हम जिंसा को
विप न नहीं देख सकते। हम दान करने
लिये सचय करते रहे हैं और शक्ति
को देवता मानते रहे हैं। हमारी वाणा
में सत्य, हृदय में तेज और प्रतिभा में
अपार दृढ़ता रहा है। हम वही दिव्य
शाय सतान हैं। हमारे भीतर वही
रक्त है, वही साहस है, वही ही पान है,
वही ही शक्ति है, वही ही शक्ति है
और हमारा देश भी वही भाषों का देश
है। हमारे हृदय म सदा यह अभिमान
रहे और सदा यह उल्कास बना रहे कि
हम जीए तो उसा देश के लिए सदा
जाएँ और अपने प्यारे भारतवप पर
हम अपना सब कुछ न्योछावर कर दें।]

हिमालय शृंग = ल०, ७६।

[सं० पु०] (सं०) हिमालय की चोटा।

हिमालय सा = प्रे०, २२।

[सि०] (सं०) हिमालय के समान शीतल, उ नन
और प्रसिद्ध।

हिय = सि०, पृष्ठ ५ से १८६ तक ३८ बार।

[सं० पु०] (सं० भा०) हृदय।

हियपट = सि०, ३४।

[सं० पु०] (हि०) हृदय पटन।

हिये = सि०, ५ पृष्ठ से १७६ पृष्ठ तक ३८ बार।

[सं० पु०] (सं० भा०) हृदय म।

[हिये में चुभ गई—चंद्रलला के विवाह के अवसर पर
विशाख २ गाया गया सखियों का गीत।
प्रसाद संगीत में पृष्ठ २५ पर मकलित।
एन्य में ऐसा मधुर मुस्कान चुभ गई
जिसने ऐसा आँखों का धार जमान
बसाया कि मन लुट गया। मन का
चौकड़ी भरना मिट गया और उस में

प्रेम का गान उठा। दा पवित्र हृदय
मित और दो भराए और एकाग्र हो
गय।]

हिये लाई = सि०, ६३।

[सूय० मि०] (सं० भा०) हृदय म लाकर।

हियो = सि०, ११, १५०। १८४।

[सं० पु०] (सं० भा०) हृदय भी।

हिरण्यमय = स० १०।

[सि०] (सं०) गुरहता, सोने का।

हिलना = सि०, २६, ५०। ५०, १०। ५०।

[सि०] (हि०) पु०, ३६, ६८। ५०, ११। सि०,
२६, ५५, ६०, १४७ १७८। ५०,
५३।

अपने स्थान से कुछ दूर या उपर
होना। कपिन होना।

हिलकोर = सि०, ६०, ११०।

[सं० पु०] (हि०) लहर, तरंग।

हिलाता हुलाता = सं०, ३०।

[सि०] (वि०) घूमना फिरना। हिलना।

हिलाता = का० पु०, ४८।

[सि०] (हि०) झिलने कि क्रिया का ता।

हिलाती = का० पु०, ३६, ७७।

[सि०] (हि०) हिलाता का स्त्रीलिंग।

हिलाते = का० पु० १६।

[सि०] (हि०) हिलाना हुआ।

हिनामिला = का० पु०, ६५।

[सि०] (हि०) अत्यधिक पारचय वाला। घनिष्ठ मित्र।

हिलोर = सि०, ८ २८। ५०, १४०। सि०,

[सं० जी०] (हि०) १५० १६०। ५०, २८।

तरंग, लहर।

हिलोल = का० १०१।

[सं० पु०] (सं०) मौज, उमग, तरंग।

ही = सि०, ३६, ४८, ७२, ७३। क० १८

[सूय०] (हि०) २०, २८, ३०। सं०, ६६, ६८, ६९,
७०।

निश्चयात्मकता का बोधक शय्य।

हीतल = सि०, १७३, १८५।

[सं० पु०] (सं०) हृदय पट। हृदय तल।

हीन = भा०, ५४ । का०, १५, ५६ । चि०,
[वि०] (सं०) १५, ३१, ५३, १७० ।
रहित ।

हीय = चि०, ५० ।
[सं० पु०] (ब्र० भा०) हृदय ।

हीरक = चि०, २३, १६० । ऋ०, ७० ।
[सं० पु०] (सं०) हीरा ।

हीरक पात्र = ऋ०, ५३ ।
[सं० पु०] (सं०) हीरे का वतन ।

हीरक गिरि = का०, २५४ ।
[सं० पु०] (सं०) हीरे का पहाड़ । ऐसा पहाड़ जो देखने
में हीरे सा लगता हो ।

हीरकतार = चि०, २४ ।
[सं० पु०] (हि०) हीरे का तार ।

हीरकाभास = चि०, २१ ।
[सं० पु०] (हि०) हीरे का ग्रामावाला ।

हीरन के = चि०, ७१ ।
[सं० पु०] (ब्र० भा०) हीरे के ।

हीरे = भा०, ३० । का० २८४ ।
[सं० पु०] (हि०) हीरा का बहुवचन ।

हुकार = वा०, कु०, ४३, १०७, ११४ । का०,
[सं० पु०] (सं०) १८४ १८५, २६७ । म०, ५ ।
गरज, गजन ।

हुकारत = चि०, ५३ ।
[क्रि०] (ब्र० भा०) हुकार करते हुए । हुकार करते हैं ।

हुकारो = ल०, ४६ ।
[सं० पु०] (सं०) हुकार का बहुवचन ।

हुआ = भा०, १८, २१, ३८, ५५ । क०, ११
[क्रि०] (हि०) २८, २९ । का०, कु०, १६ ३३, ३४,
५०, ५१ । वा०, १०, पृष्ठ से २७७,
पृष्ठ तक १९ बार । म०, ५, ६ । ल०
१०, ७२, ७३, ७५, ७७, ७९ ।
होना क्रिया का भूतकालिक 'रूप' ।

हुआ सा = का०, ८ पृष्ठ से १९८ तक २० बार ।
[क्रि० वि०] (हि०) ऋ०, ३० । म०, ५ ।
हाने के समान । लगभग समान ।

हुई = का०, १११ । म०, २१, *२ ।
[क्रि०] (हि०) होना क्रिया के भूतकालिक रूप हुआ का
छ गिग ।

हुए = वा०, २१९ । ल०, ४२, ५९, ७७,
[क्रि० वि०] (हि०) ७८, ७९ ।
होने के निकट ।

हुलसाइ कै = चि०, ९ ।
[पूव० क्रि०] (ब्र० भा०) प्रसन्न करना ।

हुलसावन = चि० १६१ ।
[महापु०] (ब्र० भा०) प्रसन्न करने की क्रिया ।

हुलसावही = चि०, ६९ ।
[क्रि०] (ब्र० भा०) प्रसन्न करते हैं ।

हुलसी = चि०, १४६ ।
[क्रि०] (ब्र० भा०) प्रसन्न हुए ।

हुलसे = चि०, ५९ ।
[क्रि०] (ब्र० भा०) प्रसन्न हुए ।

हुलास = चि०, ६ ।
[सं० पु०] (ब्र० भा०) आनन्द, प्रसन्नता ।

हुक = ल०, ४२ ।
[सं० स्त्री०] (सं०) हृद की वेदना । पीडा ।

हुजिये = का० ११ ।
[क्रि० वि०] (ब्र० भा०) होइये ।

हुत्तरी = ०७४ ।
[सं० स्त्री०] (सं०) हृदय का तार ।

हुत्तरी ऋनकार = प्र०, १३, ।
[सं० पु०] (हि०) हृदय के तारा की भकार । अत करण
की मधुर ध्वनि ।

हुत्तल = का०, २४८ ।
[सं० पु०] (सं०) अत करण ।

हुत्पल = वा० कु०, १२० ।
[सं० पु०] (सं०) हृदय का परदा ।

हुत्मार = वा० कु०, ८४ ।
[सं० पु०] (सं०) हृदय रूपी तालाव ।

हृदय = घां०, २०। वा०, कु०, २६ गु० ले
 {सं० पु०} (सं०) २३ पृष्ठ तब १६ पार। वा०, १ गु० से
 २७४ पृष्ठ तब ४३ पार। वि०, १७३
 १७७, १८६, १८८। ऋ०, १४, १६
 २७। प्र०, ५। म०, १६ २०। ल०
 १८, ३१।

मनः। गलेजा। दिन। मध्य।

[हृदय का सौंदर्य—भरना का गात। मन्त्रि म ए ए
 स० क० दूर चीजें भीर एव से एव
 मनोहर दृश्य हैं। पर शांत हृदय का
 सौंदर्य तेजा है जो धवल चरित्रों से भी
 उज्वल तथा सवाधिर रम्य है।]

[हृदय की सब व्यथाओं की उद्धाना—विद्याल
 का गीत जो प्रसाद संगीत म पृष्ठ २३
 पर सङ्कलित है। विद्याल का चंद्रसेवा
 के प्रति कथन है कि मरे हृदय म जो
 पीडा है बाहे तुम सो सी भिड़की दा
 मैं तुमम प्रवच्य प्रबट बह गा। यदि
 तुम मुझे बताने नहीं दोगी तो घुटा हो
 कर तुम्हारे प्रेम की धारा म बहूँगा।
 हृदय तो मीने अपना तुम को दे दिया
 है। नहीं, नहीं, तुमने स्वयं ही ले
 लिया है, इसलिए मैं तुम्हारा हो
 गया हूँ।]

[हृदय के कोने कोने से—विद्याल में नरदेव को प्रार्थना।
 यह प्राथना अत्यंत पञ्चाक्षाप व स्वर मे
 मुखरित हुई है। प्रसाद संगीत म पृष्ठ ४०
 पर सङ्कलित। हृदय के कोने कोने से कोमल
 मध्यम दोर्ब पथम स्वर मन कंठ न से
 उठते हैं। चंद्रमा स्तंभ अविचल राडा
 हैं। कोई भाव नहीं उठता है यद्यपि
 वह निमल है क्योंकि हृदय नहीं रहा।
 प्रव उम देख कर सतीप नहीं होता है।
 वह मेवों मे छिप कर सा रहा है और
 तेजोम हो गया है। इसलिए तुम आओ
 तो कुछ अच्छा लगेगा और हृदय का
 भाव तुम्हारे स्पर्श से अपनी जडता
 खो देगा। किंतु सत्वयुव भव में लज्जित
 हैं क्योंकि जो कुछ मीने घुरे कम किए हैं

उनका पत्र धव मित रहा है। धव गुन
 मर शांत पर परमा भावो शांति मी भी
 हृदय व वावो वावो म मुग्ध पुकार मन्त्रे।

[हृदय गद्दि मेरा गुन्य था—रदु कता ५ दिना
 ३ गिावर १६१७ म गर्ग प्रथम
 मकरंद विदु क धीगा प्ररानि।
 दर्नाग मारं विदु काना कुमुम म पृष्ठ
 २३ पर सङ्कलित।]

[हृदय मे दिया रदु द्रग द्रग से—रदु कता ५,
 विरला २, पररवा १८१७ म धन
 प्रथम प्ररानि मीर भरना म विनोद
 विदु क धंतर्गन सारनि। देतिरं
 भरना।]

हृदय अंधेरी मोनी = ल०, २६।

{सं० ली०} {हि०} हृदयस्वी अंधेरी कानो। अगान से मरा
 हृदय।

हृदय-उदार = वा० कु०, ११६।

{वि०} {सं०} दयानु। उगार हृदयवाता।

हृदय-शंत = ऋ०, ६२।

{सं० पु०} {सं०} धायल दिल। दूटा हृदय।

हृदय-नमल = घां०, १२। प्र०, २३।

{मं० पु०} {सं०} हृदयस्वा कपल।

हृदय-कुमुद = वा०, ३५।

{सं० ली०} {सं०} हृदय स्वी कुँई।

हृदय-गगन = वा० कु०, ७६। वा०, ५ ११५

{सं० पु०} {सं०} प्र०, १६ १८।

हृदयस्वा धावावा।

हृदय गुफा = ऋ०, ८२।

{सं० ली०} {हि०} हृदय स्वी गुफा।

हृदय-दौर्बल्य = वा० कु० ११५।

{सं० पु०} {सं०} राग। मन की कमजोरी।

हृदय-मटल = वा०, ५८।

{सं० पु०} {सं०} हृदय का परदा।

हृदय-भूछिना = वा०, १८१।

{सं० ली०} {सं०} हृदय का संगीत।

हृदय रत्न = वा० कु०, ५०। ल०, ५०। प्र० २०।

{सं० पु०} {सं०} हृदय का रत्न।

हृदय वीणा = ऋ०, १७।
 [म० श्लो०] (स०) हृदय की वीणा हृदयही वीणा।
 हृदयवेदना = का० कु०, २२।
 [स० श्लो०] (स०) दिल का दर्द। पतर का पीडा।

[हृदयवेदना—इंद्र कला ३, किरण १२, नवंबर १९१२ में प्रकाशित तथा कानन कुसुम में पृष्ठ २२ २३ पर सकलित। हे प्राण प्रिय, मुनो। हृदय की वेदना व्याकुल हो कर क्या कह रही है। तुम्हारी विरह वेदना यह दिन रात सुख से सहती है यद्यपि तुम्हारी यह मधुर पाडा पा कर हम दिन रात मस्त रहते हैं और तुम्हारी स्मृति के साथ स्वच्छंद हो कर क्रीडा किया करते हैं। यह वेदना तुम्हारी निवृत्त नूतन मूर्ति चित्रित करती है। तुम्हें न पा कर तुम्हारी स्मृति की छाया में अपना दिन गिनती है और जब तुम्हें वह स्मृति देखती है तो तुम्हारी विनय करती है। तुम्हारी वक्र दृष्टि से भी उसे सताप मिल जाता है। जब तुम थोड़े दयालु हो जाते हो तो उस के मन पर नव धन से छा जाते हो और जो आशु की कथा होनी है वह उसके धावों को शांत बना देती है। तुम्हारी निवृत्त और सदाय दोना मूर्त्तियाँ इसे भाती हैं और किसी भी रूप में तुम्हें पा कर हृदय की वेदना को सुख मिलता है। यह हृदय की वेदना ध्यान वचित होने पर व्याकुल हो जाती है और कुद हो कर बड़ी पीडा देती है। इसलिए हे प्रियतम, इसकी केवल तुम्हारा एक सहारा है। इस से अपना खेल खेला करो। मैं तो इन्हें भूल गया हूँ तुम्हारा प्रेममयी पीडा पा कर। लेकिन यह तुम्हें कभी नहीं भूलता।]

हृदय-महें = चि०, ७७।
 [स० पु०], प्र० भा० हृदय में।
 हृदय-समाधि = भा०, १२।
 [म० श्लो०] (स०) हृदय की समाधि।

हृदय सवस्व = का० कु०, ३१।
 [स० पु०] (स०) हृदय की सारी पूँजी।
 हृदयाब्धि = का० कु०, ७५। ऋ०, ५६।
 [स० पु०] (म०) हृदय रूपी समुद्र।
 हृदयासन = चि०, १८०।
 [स० पु०] (स०) हृदय का आसन।
 हृदयेश = का०, कु०, १४।
 [स० पु०] (स०) हृदय का आधीश्वर प्राणेश। प्राणप्रिय। स्वामी पति।
 हृदयो = भा० २२। का०, १३५, १६४,
 [वि० पु०] (हि०) १७१। प्र०, ११, २२। ल०, १७।
 हृदय का बहुवचन।
 हृदगत = का० कु०, १०२।
 [वि०] (स०) आंतरिक, मन में बँठा या जमा हुआ।
 हृदयन = का० कु०, ११६।
 [स० पु०] (स०) हृदय रूपी यत्र।
 हे = का०, २१, २५, २६, २७, ३०। का०,
 [सबोधन] (हि०) ३७। चि०, १४०। ल०, १४, १६।
 सबोधन का चिह्न।

[हे सागर सगम श्रृणु नीर—सबप्रथम जागरण में १२ फरवरी, सन् १९३२ में प्रकाशित यद्यपि यह गीत पुरी में कवि ने सागर के किनारे मकर सत्राति के अवसर पर मर्वा १९८८ में लिखा था। यह गीत रहस्यवादी है और लहर में पृष्ठ १५ १६ पर सकलित है। महा गभीर अतलात सागर अपना यह नियत काल छोड़ कर, लहरों के भीषण हासा और खारे उच्छ्वासों का छोड़ कर तथा युग युग की मधुर कामना के बधन ढोले कर नदी से मिलता है। जहाँ नदी मिलती है वहाँ नीलिमा और भदलाभा दोना हैं। इन नदी की मधु लेखा का तुपन कब वहाँ दशन किया। यह बलरव गान बरती हुई अतीत के युग का गाथा गाती तुपमें मिलती है जो अनत मिलन का स्वर बन कर फेन के रूप में तरता है। वह बधनमयी व्याकुल हो कर तुम

से मिल कर धमन मुक्त होने के लिए दोही जाती है। एसा करने में यह दस्तानों की धमन तथा घोर गृधरी की हरी छाया छाड़ मुमग मिल कर विद्याम गीतकी है। यह मुमग परम विद्याम गीतकी है। यह परम मुक्ति ही जाय की धमनमुक्ति का परम सपना है। निरस्तम गीत ध धामा व नीचे धामन ज्वाति की यह धमन व धमनमुक्त हागी धमाय विराट् म धामा का बिलानारण्य कष्ट होगा यह भाव धमन दिखामा गया है।]

हेतु = बि०, ३४, ७३ ३२।

[सं० पु०](सं० भा०) हिम, हेतु। वारण।

हेतु = का०, १४, ६४। बि०, ३१ पृष्ठ ३

[सं० पु०](सं०) १७४ पृष्ठ तन १३ बार। म०, २२। वारण। अभिप्राय। उद्भव

हेम = का०, ३७। का०, २४।

[सं० पु०](सं०) हिम, पाला। सोना। नाग केसर।

हमकूट = का०, २६२। बि०, ५६।

[सं० पु०](सं०) हिमालय के उत्तर का एक पर्वत।

हेमलेखा-सी = का०, २२२।

[बि०](हि०) सुवर्ण का रत्न व समान।

हेमवती-ध्याया = का०, १६६।

[सं० जी०](सं०) सर्वाणि ध्याया। स्वरा के समान धमकाली ध्याया।

हेमाम = का० कु० १००। प्र०, १

[बि०](सं०) स्वरा की धमक, सोने की धमक।

हेमाम ररिम = का०, ७८।

[सं० जी०](सं०) सर्वाणि किरण। सोने की धमकवाली किरण।

हेरि = बि०, १५० १६१, १७०, १८२।

[पु० व० क्रि०](सं० भा०) दक्षक। लक्षक।

है = सभी पुनर्वा म धनक पृष्ठा पर।

[ध० य०] होना क्रिया का वर्तमानकालिक रूप (एकवचन)।

होइये = बि०, १७८।

[क्रि०](सं० भा०) हो जाइये।

होरे = म०, ६६।

[पु० व० क्रि०](सं० भा०) होकर।

हागा = का०, ४६ ४४ ५६। का०, २३, २५।

[क्रि०](हि०) का०, ३८, ११७, ११६, १२६, १३०, १३२, १४६, १६२। म०, ४०, ५१, ७७।

होनी की हाना क्रिया का भविष्यत् कालिक रूप।

होना = का०, पृष्ठ ३८ व ६४ पृष्ठ तक १८ बार।

[क्रि०](हि०) का० ११, २२। का० कु०, २, ८, १०, ११, १४, ३० ५३। का०, ८ पृष्ठ से २६० पृष्ठ तक ७५ बार। म०, १५। म०, ५, ६, १२, १३। म०, १३, २६, ४४, ७२, ७३, ७७।

धरना। काम का सपन किया जाना। उदात्तविध, अतिरिक्त धामि गृधित करने-वाला संयुक्त क्रिया।

होय = बि०, ६५, ६८५।

[क्रि०](सं० भा०) होव।

हो रहा = का० कु०, १०। का०, १३, २६,

[क्रि०](हि०) ५४, ८१, ८३, ८९, ११५, १३४, १४५।

हाना क्रिया का एक रूप।

होली = का०, ६१।

[क्रि०](हि०) जलाना। भस्म करना। हो गयी।

[सं० जी०](हि०) हिंदुवा का एक प्रतिष्ठ धार्मिक त्योहार जो फाल्गुन की पूर्णों की होली जलाकर और उसके दूरत दिन रंग धनीर सेभत हुए मनाया जाता है। यह नव वर्षारंभ का उभाव है। पुराणों व अनुमार होलिका हिरण्यकशिपु की बहन और प्रह्लाद की क्रूमा थी।

[होली का गुलाल—सबप्रथम इट्टु के हानी विशेषाकर म सवत् ६७ में प्रकाशित। इस भविता में प्रेम के रंग में हाली का गुलाल फाग म रजित दिखाया गया है।]

[होली की रात—धरना का गीत। जैसे होली की रात में भाग जलती है उसी प्रकार

चाँदनी रात में कोकिल का गान, गुलाल का सौरभ, चंद्रमा की सिन्धु प्रभा, जलाशय में तारों की हीरक पाँत, और सभी फाग खेल रहे हैं फिर भी कवि के हृदय में जलन है जब कि सारा ससार शांत है। यह ऐसा झूलिये है कि होली की रात में होलिका भी तो जलायी जाती है। यह उसका प्रतीक है।]

होने = चि०, ३३, ३६।

[क्रि०](श्र०भा०) सपन हो, पूर्ण हो।

होस = चि०, १२।

[सं०जी०](वि०) सालसा, चाह, उरकट कामना, मन की हविस उरमाह, ललक।

ह्रद = का०, २८४।

[सं० पु०] (सं०) सरोवर, तालाब, सर।

ह्रास = का०, १४, ७६।

[सं० पु०] (सं०) नाश। पात। कमी।

ह्वै = चि०, १६६, १६७।

[पूव० क्रि०] (श्र० भा०) होकर।

से मिल कर बधन मुक्त होने के लिये दौड़ी जाती है। ऐसा करने में वह देव-लोक की भ्रमृत कथा और पृथिवी की हरी छाया छाड़ तुमसे मिल कर विभ्राम माँगती है। यह तुममें परम विभ्राम मागता है। यह परम मुक्ति ही जब की बधनमुक्ति का परम सपना है। निस्सीम नील अकाश के नीचे भ्रानद ज्वालि को यह भोल बब बधनमुक्त हागी भ्रयाद विराट् में भ्रामा का विलीनीकरण कष्ट होगा यह भाव इमम दिखाया गया है।]

हेतु = चि०, ३४, ७३ ३२।

[स०पु०](प्र०भा०) हेतु, हेतु। वारण।

हेतु = का०, १४, ६४। चि०, ३१ पृष्ठ ४

[स०पु०](स०) १७४ पृष्ठ तक १३ बार। म०, २२।

कारण। अभिप्राय। उद्देश्य

हेम = भा०, ३७। का० २४।

[स०पु०](स०) हिम, पाला। सोना। नाग केसर।

हेमपूट = का०, २६२। चि०, ५६।

[स०पु०](स०) हिमालय के उत्तर का एक पर्वत।

हेमलेखा सी = का०, २२२।

[वि०](हि०) सुशय का रेश के समान।

हेमवती-छाया = का०, १६६।

[स०जी०](स०) सर्वाणि छाया। स्वण के समान चमकीली छाया।

हेमाभ = का० कु०, १००। प्र०, १

[वि०](स०) स्वण की झलक, सोने की चमक।

हेमाभ रश्मि = का०, ७८।

[स०जी०](स०) सर्वाणि किरण। सोने की चमकवाली किरणें।

हरि = चि०, १५० १६१, १७०, १८२।

[प्र०क्रि०](प्र०भा०) देयकर। लखकर।

है = सभी पुस्तका म धनेक पृष्ठा पर।

[पद्य०] हाता क्रिया का वर्तमानकालिक रूप (एकवचन)।

होइये = चि०, १७८।

[क्रि०](प्र०भा०) हो जाइये।

होके = स०, ६६।

[प्र०क्रि०](प्र०भा०) होकर।

होगा = भा०, ४६ ५४ ५६। क०, २३, २५।

[क्रि०](हि०) का०, ३८, ११७, ११६, १२६, १३०, १३२, १४६, १६२। स०, ४०, ५१, ७७।

हिंदी की हाता क्रिया का भविष्यत् कालिक रूप।

हीना = भा०, पृष्ठ ३८ से ६४ पृष्ठ तक १८ बार।

[क्रि०](हि०) क० ११, २२। का० कु०, २, ८,

१०, ११, १४, ३०, ५३। का०, ८ पृष्ठ से २६० पृष्ठ तक ७४ बार। ऋ०, १५। म०, ५, ६, १२, १३। ल०, १३, २६, ४४, ७२, ७३, ७७।

घटना। काय का संपन्न किया जाना। उग्रस्थिति, मस्तित्व भ्रांति सूचित करनेवाली समुक्त क्रिया।

होम = चि०, ६५, १८५।

[क्रि०](प्र०भा०) हाव।

हो रहा = का० कु०, ३०। का०, १५, २६,

[क्रि०](हि०) ५४, ८१, ८३, ८९, ११५, १३४, १४५।

हीना क्रिया का एक रूप।

होली = भा०, ६१।

[क्रि०](हि०) जलाना। भस्म करना। हो गयी।

[स०जी०](हि०) हिंदुओं का एक प्रसिद्ध धार्मिक त्योहार

जो फाल्गुन की पूर्णों की होली जलाकर और उसके दूसरे दिन रंग भरीर खेनत हुए मनाया जाता है। यह नव वर्षारंभ का उगव है। पुराणों के अनुसार होलिका हिरण्यकशिपु की बहन और प्रह्लाद की क्रुभा थी।

[होली का गुलाल—सर्वप्रथम इद्रु के होली विनोयाक म सबत् ६७ में प्रकाशित। इस कविता में प्रेम के रंग में होली का गुलाल फाग में रजित दिखाया गया है।]

[होली की रात—करना का गीत। जैसे होली की रात में भाग जलती है उसी प्रकार

चाँदनी रात में कोकिल का गान, गुलाल का सौरभ, चंद्रमा की सिन्धु प्रभा, जलाशय में तारा की हीरक पाँव, भीरे सभी फाग खेल रहे हैं फिर भी कवि के हृदय में जलन है जब कि सारा ससार शतल है। यह ऐसा झलिये है कि होली की रात में होलिका भी तो जलायी जाती है। यह उसका प्रतीक है।]

= चि०, ३३, ३६।

[क्रि०](प्र०भा०) सपन हो, पूर्ण हो।

होस = वि०, १२।

[सं०जी०](दि०) लालसा, चाह, उत्कट कामना, मन की हविस उत्साह, सलक।

ह्रद = का०, २८४।

[सं० पु०] (सं०) सरोवर, तालाब, सर।

हास = का०, १४, ७६।

[सं० पु०] (सं०) नाश। पात। कमी।

है = चि०, १६६, १६७।

[पुव० क्रि०] (प्र० भा०) होकर।

★ प्रसाद की रचनाएँ : कालक्रमानुसार

- १ शोकीच्छवास—सन् १९१० ।
- २ चित्राधार— ,, १९२४ तथा १९२८ ।
- ३ कानन कुसुम— ,, १९१३ तथा १९२६ ।
- ४ प्रेमपथिक— ,, १९१४ ।
- ५ झरना— ,, १९१८ तथा १९२७ ।
- ६ भ्रातृ—साहित्य सदन, चित्राधार, झाँसी से सन् १९२५ ।

- में प्रथम सस्करण । सन् १९३३ में भारतीय भंडार, प्रयाग से सशोधित एवं परिवर्द्धित द्वितीय सस्करण ।
- ७ ककुलालय—सन् १९२८, भारती भंडार ।
 - ८ महारणा का महत्व—सन् १९२८, भारती भंडार ।
 - ९ लहर—सन् १९३५, भारती भंडार ।
 - १० कामायनी—सन् १९३५, भारती भंडार ।
 - ११ प्रसादमगीत—सन् १९५७ ।

★ 'इंदु' में प्रकाशित 'प्रसाद' की कविताओं का कालक्रम

कला—१

- किरण १, श्रावण ६६ वि०
 किरण २, भाद्रपद ६६ ,,
 किरण ३, आश्विन ६६ ,,
 किरण ४, कार्तिक ६६ ,,
 किरण ५, अग्रहण ६६ ,,
 किरण ६, पौष ६६ ,,
 किरण ७, फाल्गुन ६६ ,,
 किरण ८, वशाख ६७ ,,
 किरण ११, ज्येष्ठ ६७ ,,

किरण १२, अषाढ़ ६७ ,,

कला—२

किरण १, श्रावण ६७ ,,

किरण २, भाद्रपद ६७ ,,

१ शारदाशुक	कविता
१ प्रेमपथिक	ब्रजभाषा
१ शारदीय शोभा	कविता चित्राधार
२ मानस	" "
१ प्रेम राज्य, पूर्वार्द्ध	" "
१ कर्ना मुख	" "
१ धनवासिनी बाला	" "
१ रसाल मजरी	" "
१ अयोध्याद्वार	" "
१ भारत	" "
२ समाधि सुमन	" "
१ स्मृति	" "
२ रमाल	" "

१ प्रायना	" "
२ सध्या तागा	" "
३ वर्षा मे नदी कूल	" "
१ पावस	" "
२ इद्रधनुष	" "
३ चित्र	" कानन कुसुम
४ नीरद	" चित्राधार

क्रिस्ट ३, धार्मिक ३७ वि०

क्रिस्ट ४, धार्मिक ३७ "

क्रिस्ट ५, धार्मिक ३७ "

क्रिस्ट ६, धार्मिक ३७ "

क्रिस्ट ७-११, धार्मिक ३७ से ज्येष्ठ ६८, सयुक्तक

कथा-३

क्रिस्ट १, धार्मिक सुकल ६८ "

क्रिस्ट २, धार्मिक ६८ "

क्रिस्ट ३, धार्मिक ६८

	कविता	चित्राधार
१ विमा	"	"
१ अष्टमूर्ति	"	"
१ शारदीय महापूजन	"	"
२ विनय	"	"
३ प्रभातिक कुसुम	"	"
४ शरत् पूर्णिमा	"	"
५ सता	"	"
६ विस्मृत प्रेम	"	"
१ जल विहारिणी	"	कानन कुसुम
१ नोरव प्रेम	"	चित्राधार
१ होनी का गुनाल	"	"
२ विमर्जन	"	"
३ पदोन्म	"	"
१ प्रभो	"	कानन कुसुम
२ रजनीगषा	"	"
३ देवमंदिर	"	"
४ भारतेन्दु प्रकाश	"	चित्राधार
१ एकांत में	"	कानन कुसुम
२ ठट्टी	"	"
३ बाल लीड़ा	"	"
१ राजराजशरी	"	"
२ न० वर्णन	"	"
३ कलन विनाश	"	कानन कुसुम
क-वर्णन	"	चित्राधार
स-वर्णन	"	"
ग-वर्णन	"	"
ब-वर्णन	"	"
ड-वर्णन	"	"
च-वर्णन	"	"
छ-वर्णन	"	"
ज-वर्णन	"	"
झ-वर्णन	"	"
ञ-वर्णन	"	"
ट-वर्णन	"	"
ड-वर्णन	"	"
ण-वर्णन	"	"
त-वर्णन	"	"
थ-वर्णन	"	"
द-वर्णन	"	"
ध-वर्णन	"	"
न-वर्णन	"	"
प-वर्णन	"	"
फ-वर्णन	"	"
ब-वर्णन	"	"
भ-वर्णन	"	"
म-वर्णन	"	"
य-वर्णन	"	"
र-वर्णन	"	"
ल-वर्णन	"	"
व-वर्णन	"	"
श-वर्णन	"	"
ष-वर्णन	"	"
स-वर्णन	"	"

क्रिस्ट ४, धार्मिक ३७ "

क्रिस्ट ५, धार्मिक ३७ "

क्रिस्ट ६, धार्मिक ३७ "

क्रिस्ट ७, धार्मिक ३७ "

क्रिस्ट ८, धार्मिक ३७ "

क्रिस्ट ९, धार्मिक ३७ "

क्रिस्ट १०, धार्मिक ३७ "

क्रिस्ट ११, धार्मिक ३७ "

क्रिस्ट १२, धार्मिक ३७ "

क्रिस्ट १३, धार्मिक ३७ "

क्रिस्ट १४, धार्मिक ३७ "

क्रिस्ट १५, धार्मिक ३७ "

क्रिस्ट १६, धार्मिक ३७ "

क्रिस्ट १७, धार्मिक ३७ "

क्रिस्ट १८, धार्मिक ३७ "

क्रिस्ट १९, धार्मिक ३७ "

क्रिस्ट २०, धार्मिक ३७ "

क्रिस्ट २१, धार्मिक ३७ "

क्रिस्ट २२, धार्मिक ३७ "

क्रिस्ट २३, धार्मिक ३७ "

क्रिस्ट २४, धार्मिक ३७ "

क्रिस्ट २५, धार्मिक ३७ "

क्रिस्ट २६, धार्मिक ३७ "

क्रिस्ट २७, धार्मिक ३७ "

क्रिस्ट २८, धार्मिक ३७ "

क्रिस्ट २९, धार्मिक ३७ "

क्रिस्ट ३०, धार्मिक ३७ "

कला ३, सन् १९१२

किरण १०, सितंबर
किरण ११, अक्टूबर

किरण १२, नवंबर

कला ४, सन् १९१३

किरण १, जनवरी

किरण ५, मई

किरण ६, जून

कला ४, सन् १९१३

किरण १, जुलाई
किरण २, अगस्त

किरण ३, सितंबर

कला ५, सन् १९१४

किरण १, जनवरी

१ मर्म क्या कविता काननकुमुम
१ विनोद विदु " चित्राधार
क—कमला कमल पर "
ख—वरत सनमान को "
ग—बताओ कौन जोर है "
घ—जीवन नैया सर्वया

१ हृदय वेदना कविता काननकुमुम

१ सत्यधन (चित्रकूट) " वानन कुसुम
२ भारत (प्रथम अतुकात अरिल) "
३ कहलालय कविता गीतानाट्य
४ वसतोत्सव चित्राधार
क—मिलि रहे माते भयुकर
ख—मले अनुराग मे रहे हो

१ कल्या ध्यान कविता काननकुमुम
२ भक्ति योग " "
३ निशीथ नदी " "
१ दलित कुमुदनी " "
२ प्रथम प्रभात " "
३ भूल गजल "

१ विनोद विदु चित्राधार
१ बूब हमारी सवया
२ प्रेमोपालम—अहो नित प्रेम करत दिन गयो
३ उचार दियो भक्त उचार हृद को गीत
१ नमस्कार काननकुमुम

१ विदाई चित्राधार
१ नमस्कार वाननकुमुम
२ श्रीकृष्ण जयती
१ देह चरण म प्रीति चित्राधार

१ पतित पावन काननकुमुम
२ रमणी हृदय "
३ खोलो द्वार भरना

किरण २, फरवरी	१ याचना २ रंजन ३ विनोद बिंदु क—एन्य मे छिप रहे हग डर से ख—आया दखो विमल बगत ग—समा धो करिमे सुदर राका घ—मिले श्रीधर इन घरणा की पून	कानन कुसुम " " भरना भरना भरना भरना
किरण ३, मार्च	१ हा सारथे रथ रोव दो २ मकरंद बिंदु क—श्रीर जय कहिहै तब कहिहै ख—नाथ नहिं फीकी परे गुहार ग—मधुप ज्यो बँज देख मङ्गरावै घ—मेरे प्रेम की प्रतिवाज	कानन कुसुम चित्राधार " " भरना भरना
किरण ४, अप्रैल	१ गंगा सागर २ विरह ३ मोहन	काननकुसुम " "
किरण ५, मई	१ मिलन है पलक पर दे २ मकरंद बिंदु क—तुम्हारी सञ्चिह निराली बात ख—प्रिय स्मृति कज में लवलीन ग—पाईं आँव सुख की घ—आसुन अहाल	" चित्राधार " " भरना भरना
किरण ६, जून	१ महाराणा का महत्व	"
कला ५, सन् १९१४	१ शिविल १ प्रियतम २ मकरंद बिंदु क—आज इस घन की अधियारा म ख—हृदय नहिं मेरा भूय रहे ग—आज तो नीके नेह निहारो घ—यह सब तो समुभवो पहिले ही ङ—भूलि भूलि जात	भरना " " काननकुसुम चित्राधार " "
किरण २, अगस्त	१ मेरी कचार्ई	भरना
किरण ३, सितम्बर	२ तेरा प्रेम (तेरा प्रेम हलाहल प्यारे) १ प्रेम पथ	भरना प्रेमपथिक
किरण ४, अक्टूबर	१ चमेली	"
किरण ५, नवम्बर		
किरण ६, दिसम्बर		

कला ६, सन् १९१५

किरण १, जनवरी

किरण २, फरवरी

किरण ३, मार्च

किरण ४, अप्रैल

किरण ५, मई

१ तुम्हारा स्मरण

२ हमारा हृदय

१ अचना

२ प्रत्याशा

१ स्वभाव

१ विनय

२ मधुकर बीत चनी अद रात

१ बस न राका

कानन कुमुम

भरना

"

"

"

"

उधशी

भरना

कला ७, सन् १९१५

किरण २, अगस्त

किरण ३, सितम्बर

किरण ४ - ५, अक्टूबर सप्टम्बर

१ नशान

१ मुखभरी नीद (स्वप्नलोक)

१ मिल जाओ गये

भरना

भरना

कानन कुमुम

कला ८, सन् १९२७

किरण १, जनवरी

किरण २, फरवरी

किरण ३, मार्च

१ अनुनय (मुघा सोकर स नहला दो) (चद्रगुप्त)

१ तेरा रूप (भरा ननों म, मन में, रूप) (स्क्रगुप्त)

१ जान दो (धूप छाह के लेख सदृश) (स्क्रदगुप्त)

★ 'जागरण' में प्रकाशित रचनाओं का कालक्रम

वर्ष १ खंड १, मार्च, सं० १९८८

बसंतपंचमी ११ फरवरी १९३२

२२ फरवरी, ३२

२२ मार्च, ३२

१८ जून, ३२

१७ जुलाई, ३२

१ ले चन वहा मुनावा देकर ।

२ अरी वरुणा का शांत कछार

१ हे सागर सगम अरुण नील

२ ज्वालाला—त्रय नाल निशा अचल में
नक्षत्र हूब जात है ।

१ मेरी भाषा का की पुतला म

१ वे कुछ निन कितने मुदर मे

लहर

लहर

लहर

घामू ?

लहर

लहर ?

किरण २, फरवरी	१ याचना २ रागन ३ विनोद बिंदु क—एक मे छिन रहे इग डर से ख—आया देखो विमल वगन ग—आमा को करिये मुदर राफा घ—मिले शीघ्र इन धरणा की धूल	कानन कुसुम " " भरना भरना भरना भरना
किरण ३, मार्च	१ हा सारथे रथ रोब दो २ मकरद बिंदु क—शौर जग कहिहै तब कहिहै ख—नाथ नहि कीकी परं गुहार ग—मधुप ज्यो बँज देख मङ्गरावै घ—मेरे प्रेम को प्रतिराग	कानन कुसुम चित्राधार " " " " चित्राधार
किरण ४, अप्रैल	१ गगा सागर २ विरह ३ मोहन	काननकुसुम " "
किरण ५, मई	१ मिलन है पलक पर दे २ मकरद बिंदु क—सुम्हारी सबहि निराली वात ख—प्रिय स्मृति कज में लखलख ग—पाई शौच सुर की घ—प्रांसुन अ हात	" चित्राधार " " " " चित्राधार
किरण ६, जून	१ महाराणा का महत्व	"
कला ५, सन् १९१४		
किरण २, अगस्त	१ मिथिल १ प्रियतम २ मकरद बिंदु क—आज इस घन की अविपारा मे ख—हृदय नहि भरा शू य रहे ग—आज तो नीके नेह निहारो घ—पट सब तो समुभवो पहिले ही ङ—भूलि भूलि जात	भरना " " काननकुसुम चित्राधार " "
किरण ३, सितम्बर		
किरण ४, अक्टूबर	१ मेरी कवाई २ तेरा प्रेम (तेरा प्रेम हलाहल ध्यारे)	भरना
किरण ५, नवम्बर	१ प्रेम पथ	प्रेमपथिक
किरण ६, दिसम्बर	१ चमेली	"

कला ६, सन् १९१५

किरण १, जनवरी

किरण २, फरवरी

किरण ३, मार्च

किरण ४, अप्रैल

किरण ५, मई

१ तुम्हारा स्मरण

२ हमारा हृदय

१ अचना

२ प्रत्याशा

१ स्वभाव

१ विनय

२ मधुकर बात चला अन्न रात

१ बस न राका

कानन कुसुम

भरना

"

"

"

"

उवशी

भरना

कला ७, सन् १९१५

किरण २, अगस्त

किरण ३, सितम्बर

किरण ४, अक्टूबर सप्तुकाक

१ शन

१ मुलभरी नींद (सवप्नलोक)

१ मिल जाओ गले

भरना

भरना

कानन कुसुम

कला ८, सन् १९२७

किरण १, जनवरी

किरण २, फरवरी

किरण ३, मार्च

१ अनुनय (सुना साकर से नहला दो) (चंद्रगुप्त)

१ तेरा रूप (भरा नानी मे, मन मे, रूप) (स्कन्दगुप्त)

१ जा दो (धूप छाह के लेख सदृश) (स्कन्दगुप्त)

★ 'जागरण' में प्रकाशित रचनाओं का कालक्रम

वर्ष १ खंड १, माघ, स० १९८८

वसंतपंचमा ११ फरवरी १९३२

२२ फरवरी, ३२

२२ मार्च, ३२

१८ जून, ३२

१७ जुलाई, ३२

१ ले चव वहा भुवावा देकर :

२ अरी वक्षणा का श्रात कछार

१ हे सागर सगम अक्षय नील :

२ ज्वालाला—जब नाम निघा अचल में
नक्षत्र हूव जात ह

१ मेरी शाला का की पुतला म

१ थ कुछ दिन तितने सुदर थ

लहर

लहर

लहर :

श्राव ?

लहर

लहर ?

★ 'माधुरी' में प्रकाशित रचनाओं का कालक्रम

वर्ष १, खंड १, सन् १९२२	स० ३,	१ दीप झूपर संख्या बली आ रही थी	भरना
वर्ष २, खंड १, सन् १९२३ २४ स० १,		१ वय शूय हृदय म प्रेम जलधि माता वय फिर फिर धावेगी	भरना
" " "	स० ४	१ अश्वस्थियन विश्व के लीरव निर्जन म	भरना
वर्ष २ खंड २, सन् १९२४	स० २	१ भगवतीय हरित वन कुसमित हैं द्रुम वृद	भरना
" " "	स० ३	१ चसत ! तू भाता है, फिर जाता है !	भरना
" " "	स० ४	१ तुम जीवन जगत व विकास विश्व वद व हो	। भरना ।
" " "	स० ५	१ बाबू का बला ! मौल बचाकर न किरफिरा कर दा	। भरना ।
" " "	स० ६	२ कुछ नदी हसी घाली है मूझको तभी ।	भरना
वर्ष ३, खंड १, १९२४ २५	स० १	१ हृदय का सीश्य नदी की विस्तृत बेना घाट	भरना ।
" " "	स० २	१ दो बूँदें शब्द का सु दर नात भाकाश	भरना
		१ सात और समस्या शू य गगन मे खाचता जम च द निरास	स्व दगुत
वर्ष ३ खंड २, सन् १९२५,	स० १	१ विषाद कौन प्रवृत्ति के वरुण काव्य सा	भरना
वर्ष ४, खंड १, सन् १९२५ २६ स० १	स० १	१ मया क प्रति । मया अलका का । बवल बिरहूसा	। अजातशत्रु
वर्ष ४, खंड २, १९२६	स० १	१ अपरिवित निजन गोधुलि प्रा तर म ग्यान पण कुटा क द्वार :	अजातशत्रु
" " "	स० ४	१ पतझड समि चल बसत बाला अवल स किस घातक सीरभ म मस्त	अजातशत्रु
" " "	स० ६	१ माझ मत शिचे वाण के तार	अजातशत्रु
वर्ष ५, खंड २, १९२६ २७	स० १	१ आहू निवल मत बाहर दुर्वल आहू	चन्द्रगुत
" " "	स० ३	१ पुति धायूव प्रम का प्रनाति उर उपजी सुसाई सुख	विनाभार
वर्ष ५, खंड २, १९२७	स० ३	१ अनात का गीत सधन वन बल्लरियों क नीचे	वामना
वर्ष ६ खंड २, १९२७ २८	स० १	१ बिनाई आहू वदना मिना विदाई	स्व दगुत
वर्ष ७ स० १, १९२८ २८	स० १	१ इद्रजाल ! और दला वह सु दर हश्य, नयन वा इ द्रजाल अभिराम	कामायनी
वर्ष ८, खंड १, १९२९ ३०	स० १	१ कौन कौन हा तुम खीचकर यो मूझ अपनी ओर	। कामायनी ।

★ 'हंस' में प्रकाशित रचनाओं का कालक्रम

मई, १९३०

जनवरी १९३१

मप्रल १९३१

१९३२ 'आत्मकथाक'

मार्च १९३३

- १ मानवता का विवास डरो मत ओ भ्रमृत सतान
कामायनी
१ प्रलय का छाया लहर
१ आह रे वह अधीर यौवन ”
१ मधुप मुनगुना कर कह जाता ”
१ वसुधा के अचल पर यह क्या,
कन कन सा गया बिखर ”

★ 'प्रेमा' में प्रकाशित रचना का कालक्रम

जनवरी १९३१

- १ जीवन सगात क्या कहूँ, क्या कहूँ मैं भ्रमपुत्र
वाम यनी

★ 'मनोरमा' में प्रकाशित रचनाओं का कालक्रम

खंड २, १९२७, भाग २, सं० ५

अक्तूबर १९२६

१९२७ सं० १

- १ उलझन अगस घूम की श्याम लहरियाँ स्कंदगुप्त
१ तारिका के प्रति बिखरी किरण अलख व्याकुल हो
१ सबोधन उपड कर चली भिगोते धाज स्कंदगुप्त

★ 'जागरण' (प्रेमचंद जी द्वारा संपादित)

वर्ष १, २२ अगस्त, १९३२

१९ अक्तूबर १९३३

- १ जग का सजल बालिमा रजनी मे लहर
१ शिखर पर परो वे नीचे जलघर हो,
बिजली से उनका खेल बने ध्रुवस्वामिनी

★ 'सुधा' में प्रकाशित रचनाओं का कालक्रम

वर्ष १, खंड, १

वर्ष २, खंड, १

- १ अनुरोध सस्टिति के वे मु दरतम क्षण
या ही भूल नहा जाना स्कंदगुप्त
१ मनु का चिंता हिमगिरि के उत्तुंग शिखर पर
कामायनी

★ 'गंगा' में प्रकाशित रचना का कालक्रम

मागसीप सं० १९८७ वि० नम्बर १९३०

- १ गंगा श्रद्धि सिद्ध तू अचल हिमालय से ते प्रायी
(संग्रहों में अप्रकाशित)

परिशिष्ट ए

पत्र पत्रिकाए विनय रचनामां वा पवन विमा गवा है ।

१ दडू, २ जागरण, ३ माधुरी, ४ सुधा, ५ हृग, ६ प्रेमा, ७ मनारमा, ८ जागरण २, ९ गंगा, १० वीणा, ११ सरस्वती, १२ नागरीवधारिणी पत्रिका, १३ द्विवेदी अभिनन्दन प्रथ ।

परिशिष्ट ए

जीव जंतु

अलि, अली, अश्व हन उष्ट्री, कच्छर, बस्तूरी मुग, कुरग कामधेनु, कुजर कनभ केसरी, केहर, बौध, काविल, काकिला, कायल राजन, गण्ड, गाय, मिडिनी, चर्बई चक्क, चकोर चकागी, चक्राव, चातक, चातकी, जुगू किन्नी, तितली, विमिगल, वुरग नाहर, पतंग परंग, पपीहा, पिक, कणा मुग, भ्रमर, मकहा, मतंग, मरुपि, मधुकर, मक, मधुखरी, मधुर, माल, मरालिनी, मराती, मयूर, मिलिद, मान, मुग, मृगछोना, मुगी, मोर, राजहंस, श्रुप, श्रुपम, बुखिक, व्याला, याल, शरभ, शलभ, शिली शुक्र, श्रुगली, शेर, श्यामा, सप, सिला, सिंह, सिहिरी, सुरभा, हंस, हय, हारण, हरिणा, हरिण शावक, हाथी ।

श्रुतुएँ और मास

श्रुतुनायक, श्रुतुपति, कुसुम श्रुतु शीघ्र, चम, ज्येष्ठ, निदाघ, पतञ्ज, पावस, वरसात, मधु श्रुतु माघव श्रुतु, बसत शरद, शिशिर, शीत, सावन ।

बेला ।

पर्वत ।

परावती, धनुंद गिरि, उगर गिरि, केशवाग, हिमगिरि, भूपर मुगति ।

पंग-उपांग

पंगुना, घंतिवा, घघर, घनामिका, घनचें, घसिव, घास, घानन, घाशासन, उंगती, बँठ, कच, बटाघ, बटि बगाम, बर, बधु, कुंतन, केन कोङ, गर, गान, गला, गान, गा, गुन्ना, चत, चमङ, चरग, चरन, चन, चिकुर, चितवन, छाती जटा, जाम, डग, जिन, रंग, दसन, रैन, दृष्टि, र्ह, रधन, रल, रगि, रेर, रल, रलर, रण पाय, पुगरी पुतनी, बदन, बाम, बाम, बाहुँ, दात, भुत्र, भुट्टि भीह, रत मरुकर, मरिध, मांत, मुष, मुंर रक्त, रंधिर, रोप, रामराला रामाला रामावलि, मर, मट, लोचन, बद्ध बरल, बरल गिर, श्रवण, गिर, मुगारण, सुवच्च ह्येवी, हाय, हिय, हियप, रिपनत ह्रदान, ह्रप । जाति और वश

घघर, घनाम, घाम इनाहु वश, विनरिमा, विराल, बीरव वश, चंद्रिय, उत्री, गषव पाव, चद्रकुल, गापकुल, चाडाल, चारण, तातार मुक, मुषव दस्तु दातक, देर, दस्य पावर, नाग, पारसि पाडक, विगाव, पौर, वा चारी, बनचर, ब्राह्मण, भारती, भारतवासी, प्रबवाला, वीर, मुगल, मुगलमान, म्नेवक, यच्च, यवन यादव, याया वत, रघुकुल, रघुवशी, विम, सारस्वत, हिंदी, हिङ्ग ।

रंग :

अरुण, अरुणिमा, अरुणादि, भारक्तिम, उज्ज्वल काला, कालिमा काले, कुंकुम, गुलाबी मारक, गौर, चपक, धवल, नील, नीला, नीलिमा, नीलाञ्जल, पीत, पीला, रक्तारण, रक्तिम, लाहित, ताल, श्याम, शोण, श्यामल, सुतह्ला, स्वर्ण, हरित, हरा ।

